# लेख-सूची


| सं० | विषय | लेखक | पृष्ठ |
| --- | --- | --- | --- |
| १ | वेद की शिक्षाएँ | ... | ५३७ |
| २ | मानस पाप | श्री पं० गंगाप्रसादजी एम० ए० रिटायर्ड जज | ५३८ |
| ३ | स्वप्न संसार | श्री ज्ञानी | ५४२ |
| ४ | आर्यसमाज और उसकी प्रगति | श्री पं० नरदेव शास्त्री | ५४६ |
| ५ | सम समुच्चयवाद | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी | ५५१ |
| ६ | आर्य्य विवाह एक्ट | | ५५४ |
| ७ | सुमन संचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | ५५८ |
| ८ | महिला-जगत् | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | ५६३ |
| ९ | साहित्य समीक्षा | श्री धर्मदेव विद्या वाचस्पति | ५७१ |
| १० | आर्य समाज की चिनगारियाँ | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी | ५७५ |
| ११ | दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारक सम्मेलन, मद्रास के ग्यारहवें अधिवेशन के सभापति पं०रामनारायण मिश्र (काशी) का अभिभाषण | | ५७८ |
| १२ | The Spiritual Approach | | ५८५ |
| १३ | "Swami Dayanand on Unity" by K.B. Pathik. | | ५८६ |
| १४ | सन् १९४१ | श्री पं० रामगोपाल जी विद्यालङ्कार सम्पादक वीर "अर्जुन" | ५९० |
| १५ | सम्पादकीय ... | ... ... | ५९२ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १५ | पौष १९९७ | जनवरी १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११६ | अङ्क ११

## * वेद की शिक्षाएं *

अपध्वान्तमूर्णु हि पूर्धि चक्षुः । साम० ४।१।३७

हमारा अन्धकार दूर करदो और हमारी आंखें खोलदो।

Remove the darkness of our ignorance and open our eyes to see Truth and Reality

* * *

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम । यजु० २५।११

हम कानों से उत्तम बात ही सुनें ।

May we always hear nice and peaceful things with our ears

# मानस पाप

( ले०—श्री पं० गंगाप्रसाद जी एम० ए० रिटायर्ड चीफ जज )

—o—

कुछ लोगों का कहना है कि कलियुग में मानस पाप पाप नहीं होता। यह बड़ी भयंकर भूल है। क्योंकि मानस पाप सब पापों का मूल है, जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा है, "यन्मनसा मनुते तद् वाचा वदति, यद् वाचा वदति तत् कर्मणा करोति।" अर्थात् मनुष्य जैसा मन से विचार करता है, वैसा वाणी से कहता है, और जैसा वाणी से कहता है वैसा कर्म से करता है।

कुछ मनुष्य यह युक्ति दिया करते हैं कि यदि हम वास्तव में शरीर से बुरा कर्म न करें, तो केवल मन में बुरे विचार होने से क्या हानि हो सकती है, और यदि कुछ होगी तो हमको ही होगी, किसी दूसरे को उससे क्या हानि पहुंच सकती है। फिर केवल बुरे विचारों का मन में आना पाप क्यों माना जाय?

इस विषय पर कृष्ण महाराज ने 'गीता' में कहा है—

## दुर्विचारों का फल विचार करने वाले व्यक्ति को

"कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारी स उच्यते॥"

गीता अध्याय ३। ६

अर्थ—जो मनुष्य कर्मेन्द्रियों को रोक कर बैठा हुआ मन से इन्द्रियों के विषयों का ध्यान करता है, वह मूढ़ात्मा मिथ्याचारी है। और भी योगिराज कृष्ण गीता में कहते हैं—

ध्यायतो विषयान्पुंसः सङ्गस्तेषूपजायते।
सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते।
क्रोधाद्भवति सम्मोहः सम्मोहाद् स्मृति विभ्रमः।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥"

अध्याय २। ६२-६३

अर्थ—विषयों का ध्यान करने से मनुष्य को उनके साथ संग व राग पैदा

होता है, उससे काम अर्थात् तीव्र इच्छा पैदा होती है। काम की पूर्ति न होने से क्रोध उत्पन्न होता है। क्रोध से मूढ़ता होती है। मूढ़ता से स्मृति में दोष आता है। स्मृति के बिगड़ने से बुद्धि नष्ट होती है और बुद्धि के नाश से उस मनुष्य का नाश हो जाता है।

इन श्लोकों में कृष्ण महाराज ने मनुष्य के धार्मिक वा राजनैतिक पतन का कैसा अच्छा चित्र खींचा है। केवल मन में विषयों का ध्यान करने से वह सीढ़ी दर सीढ़ी गिरता जाता है और अन्त मे उसकी बुद्धि का नाश होकर सर्वनाश हो जाता है। क्योंकि मनुष्य में बुद्धि ही तो ऐसी वस्तु है जिससे मनुष्य और पशु मे भेद होता है, जब बुद्धि नष्ट हो गई तो मनुष्य मे शेष रहा ही क्या ?

इससे स्पष्ट है कि मानस पाप से मनुष्य को स्वय साधारण हानि नहीं किन्तु बड़ी भारी हानि होती है जिससे उसका सर्वनाश हो सकता है। बुरे विचारों से दूसरे लोगों को भी भारी हानि पहुंचती है। क्योंकि एक मनुष्य के बुरे विचारों से मानस वातावरण दूषित होकर अन्य मनुष्यों के मनों को हानि पहुंचती है। इसकी कुछ व्याख्या की आवश्यकता है।

यदि हम एक पानी के तालाब में पत्थर फेंकें तो उससे पत्थर के चारों ओर लहर फैलती है। इसी प्रकार यदि एक घण्टी बजायी जाय तो घण्टी से वायु मे लहर पैदा होकर चारों ओर फैलती है। जो आंखों से नहीं दीखती है, क्योंकि जल की अपेक्षा वायु सूक्ष्म है। इसी तरह यदि एक दीपक जलाया जावे तो उससे आकाश में लहरें पैदा होकर चारों तरफ फैलती हैं। इन्हीं लहरों के द्वारा दीपक का प्रकाश फैलता है। आकाश वायु से भी सूक्ष्म है।

मानसतत्त्व जिसके द्वारा विचार एक मनुष्य के मन से दूसरे मनुष्यों के मन तक पहुँचते हैं आकाश से भी अधिक सूक्ष्म हैं और वह भी उसी तरह सर्वत्र फैला हुआ है जैसा कि आकाश और वायु। उसमें भी लहरें होती हैं। जब कोई मनुष्य बुरा विचार अपने मन में करता है तो उससे मानसतत्त्व में लहरें पैदा होकर चारों ओर फैलती हैं। जैसे एक दुर्गन्धित पदार्थ से वायु में लहरें होकर दुर्गन्धि चारों ओर फैलती है और आसपास की सारी वायु में दुर्गन्धि फैला देती है, उसी प्रकार एक मनुष्य के विचार मानसतत्त्व में लहरें उत्पन्न करके सारे मनुष्य वातावरण को दूषित कर देते हैं। जैसे दुर्गन्धित वायु से उन मनुष्यों का स्वास्थ्य जो उसमें श्वास लेते हैं हानि पहुंचती है, उसी प्रकार एक मनुष्य के विचारों से

वातावरण मलिन होकर उन मनुष्यों को हानि पहुंचाती है जो वहां रहते व कार्य करते हैं।

## उस व्यक्ति को जो दुर्विचारों का लक्ष्य हो

मनुष्य के बुरे विचारों में उस मनुष्य को विशेष हानि पहुँचनी सम्भव है जिसके विरुद्ध ये विचार किये गये हों जैसे ईर्ष्या, द्वेष, घृणा आदि के विचार। क्योंकि ऐसे विचारोंकी लहरें उस मनुष्य पर विशेष प्रभाव डालती हैं जो उनके लक्ष्य हों। इससे सिद्ध है कि मन में बुरे विचारों को स्थान देने से विचार करने वालों को हानि होती है जो उनका लक्ष्य हो उसकी भी हानि होती है और समाज के लिये हानि होती है। इसलिये बुरे विचारों को मन में आने ही नहीं देने चाहिये और जो आवें तो उनको तुरन्त ही निकाल देना चाहिये। इसके सम्बन्ध में वेद के नीचे लिखे मंत्र हैं:—

## मानस पाप के सम्बन्ध में वेद मन्त्र

परोपेहि मनस्पापं किमशस्तानिशंससि ।
परेहि न त्वा कामये वृक्षां वनानि संचर गृहेषु गोषु मे मनः ॥

अथर्व० ६।४५।१५

अर्थ—हे मन के पाप दूर हटजा, क्या बुरी बातें बताता है। हटजा, तुझको मैं नहीं चाहता। वनों वृक्षों में फिरता रह, मेरा मन घर में और गो आदि में पशुओं की पालना में है।

अपेहि मनस्पतेऽपक्राम परश्चर ।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः । ऋ० १० । १६४ । १

अर्थ—हे मनको पतित करने वाले कुविचार! हटो, दूर भागो, परे चलो। दूर के विनाश को देखो। जीवित मनुष्य का मन बहुत सामर्थ्य से युक्त है॥

## उनका आशय

हम अपने घर के स्वामी हैं। हमें अधिकार है कि यदि कोई चोर-डाकू या अन्य दुष्ट पुरुष आवे तो उसको घर में आने से रोक देवे, और यदि आजाये तो निकाल देवें। इसी प्रकार अपने मन रूपी मन्दिर के हम स्वामी हैं। यदि कोई दुर्विचार उसमें आवे तो उसे रोक देवें और आजावे तो निकाल देवें।

ऊपर लिखे मंत्रों के कैसे प्रबल शब्दों में दुर्विचारों को मन से हटा देने का उपदेश है। और दुबारा, तिबारा ऐसे विचारों के लिये कहा गया है कि दूर हटजा

और परे चलो इत्यादि । कोई मनुष्य यह प्रश्न कर सकता है कि ऐसे शब्दों से क्या लाभ ? इन शब्दों में मानस बल ( Thought power ) और उसके द्वारा आत्म चिकित्सा Hypnotism का गूढ़ रहस्य छिपा हुआ है। जो लोग Hypnotism से शारीरिक रोगोंकी चिकित्सा करते हैं वे रोगी से कहलाते हैं कि मेरा रोग दूर होरहा है मै स्वस्थ हो रहा हूँ इत्यादि इन शब्दों का रोगी पर बहुत प्रभाव पड़ता है और उसका रोग दूर होने लगता है इस क्रिया को Suggestions...देना कहते हैं दूसरे मनुष्य Operator कहलाने की आवश्यकता इसलिये होती है कि रोगी Subject की संकल्पशक्ति (Will power) से कम रहती है यदि किसीमनुष्य की संकल्प शक्ति अच्छी बलवती हो तो वह स्वयं कहेगा कि हे मेरे रोग हटजा, भागजा, दूर हो जा मै अब तेरे वश में नहीं हूँ। इस क्रिया को Autosuggestion कहते हैं और यदि दृढ़ इच्छा और संकल्प के साथ ऐसे शब्द कहे जावें तो उनका रोग दूर करने में बड़ा प्रभाव होता है। दुर्विचारों के दूर करने में भी ( जो आत्मिक रोग है ) ऐसे शब्दों का प्रयोग प्रभावशाली होता है। ऊपर लिखे मन्त्रों में उक्त शब्दों के प्रयोग का यही रहस्य है और महत्त्व है।

---

# स्वप्न संसार

[ श्री ज्ञानी ]

---

हम सब स्वप्न लेते हैं। परन्तु क्यो? स्वप्न क्या है? क्यो आते हैं? क्या ये सच भी होते हैं? इन प्रश्नों का उत्तर, संक्षेप मे, हम यहा देने का प्रयत्न करेंगे।

आप काम समाप्त करके कुछ देर यो ही खाली बैठिये। यद्यपि शरीर निश्चेष्ट है परन्तु मन अपनी उधेड़ बुन मे लगा हुआ है। उसे खाली बैठने की आदत नही। जैसे पशु निकम्मे बैठे जुगाली करते रहते हैं, वैसे मन भी एक तरह की जुगाली किया करता है। उसने जिन कामों को देखा, सुना व किया है, उन्हे बारम्बार मानसिक क्षेत्र मे दुहराता है। कभी अपने आप ही मुस्कराने लगता है और कभी बैठा बैठा उदास हो जाता है

यही दशा रात को सोये हुए होती है। मन के विचारो का तॉंता बधा हुआ है। वही दिन भर के काम हम रात को भी दुहरा रहे होते हैं। यद्यपि शरीर सोता है, परन्तु मन यथापूर्व जाग्रत है। उसकी जुगाली दिन-रात समान-रूपेण होती रहती है।

× × ×

मनोविज्ञान के पण्डितो ने हमारे मन के दो विभाग किये हैं। एक बाह्य (Conscious) और दूसरा अन्तर (Sub-conscious)। बाह्य-मन वह है जो जाग्रत अवस्था मे बुद्धि की सहायता से काम करता है। अन्तर मन वह है जो हृदय की छुपी हुई वासनाओं को प्रकाश मे लाता है।

इन दो भेदो का कारण यों समझाते हैं। बचपन से ही मनुष्य में अनेक स्वाभाविक प्रवृत्तियॉं होती हैं। कुछ तो सहज ही पूरी हो जाती हैं और कुछ के पूरा होने में रुकावटें पेश आती हैं। ये इच्छाएं पूरी न हो सकने के कारण हृदय के अन्तर भाग मे जा छुपती हैं और समय समय पर अपना सिर उठाती हैं। इन्हें अंग्रेज़ी में Repressions कहते हैं। हिन्दी मे हम इन्हें वासनाएं कह सकते हैं।

× × ×

आप एक ज़मीन में हल चलाकर, सुहागा फेर कर, पानी देकर गेहूं बोइये। थोड़े दिनों बाद आप देखेंगे कि गेहूं के साथ कुछ और पौदे भी सिर उठा रहे हैं। आप हैरान होंगे कि ये कहां से आए? आप ने तो केवल गेहूं बोए थे।

ज़मीन की सतह के अन्दर अप्रत्यक्ष रूप से अनेक बीज विद्यमान होते हैं। वे अनुकूल अवस्थाएं पाकर अंकुरित होते हैं। ठीक यही दशा हृदय के अन्तर भाग में छुपी वासनाओं की है।

हम जिन व्यक्तियो को प्राय: धार्मिक व कर्मनिष्ठ समझते है उनकी वास्तविक परीक्षा तो तभी होती है जब विषय-वासना के वायु-मण्डल मे रहकर भी वह अपनी कर्त्तव्य परायणता का परिचय दे।

प्राय: प्रत्येक मनुष्य मे "जैकिल आर हाइड" का दुरंगापन होता है। वह दिन के वक्त या समाज के सामने, भले आदमी की जो नक़ाब पहिनता है, वह एकान्त मे, अथवा रात्रि में उतर जाती है। तब वह अपनी वासनाओं के नग्न रूप मे होता है। यही कारण है स्वप्नावस्था मे हम जिन कमजोरियो का प्रदर्शन करते हैं उन्हे जानकर, दिन के समय हमे स्वयं लज्जा आती है।

इसीलिये मनोवैज्ञानिको की दृष्टि मे हमारी स्वप्नावस्था जाग्रत की अपेक्षा अधिक सत्य है। स्वप्न-संसार,में कोई भौतिक प्रतिबन्ध नहीं। कोई समाज का विधि-निषेध नही। कोई कृत्रिम भय अथवा प्रलोभन नहीं।

डाक्टर फ्रायड से जब स्वप्न का कारण पूछा गया तो उत्तर में उसने केवल दो शब्द कहे :— Wish pt lpilment- अर्थात् इच्छापूर्ति। जिन इच्छाओं को हम किन्ही कारणों से दिन के वक्त या जाग्रत अवस्था म पूरा नही कर सकते, उन्हें हम रात के समय स्वप्न-अवस्था में आसानी से पूरा करने का प्रयत्न करते हैं।

उदाहरणार्थ—एक दरिद्र दिन में तो दाने दाने का मोहताज है, लेकिन रात के समय स्वप्न की हालत मे बड़े २ महल देखता है जिन मे अनेक दास दासिया उसकी सेवा के लिये तत्पर हैं। और भण्डार नानाविधि भोज्य पदार्थों से भरपूर है।

इसी प्रकार एक विधवा जिसका पति उसे मंझधार मे छोड़कर "उस पार" चला गया है। जिसे दिन भर रोते विलपते बीतता है, वह रात के समय, स्वप्न-जगत में अपने पतिदेव से अत्यन्त प्रेम-पूर्वक मिलती है और हंसी खुशी में शरद् ऋतु की लम्बी रातें भी झपकियों में काट देती है। उसके लिए दिन की अपेक्षा रात अधिक सत्य है।

शायद यही कारण है कि संसार के धर्माचारियों ने स्वर्ग का वर्णन स्वप्नात्मक किया है। जहा दूध और शहद की नदिया बहती हैं और फला फूला से असंख्य वृक्ष फूल रहे हैं।

फिर स्वर्ग में प्रवेश अमीरों के लिए उतना ही कठिन है जितना ऊंट के लिए सुई के नकुए से गुज़रना।

वह स्वप्न-संसार या स्वर्ग तो केवल मात्र उन दुखियों और दरिद्रों का है जो वहाँ दिन रात कराहते गुजारते हैं। जिनके पेट की आग केवल श्मशान की आग में ही बुझती है।

× × ×

क्या स्वप्न सच भी होते हैं? इसका उत्तर "हा" और "नही"—दोनों में दिया जा सकता है। संसार की प्रायः सब घटनाओं का परस्पर कारण कार्य सम्बन्ध है। जैसे एक अंकुर से दूसरा अंकुर फूटता है वैसे ही एक घटना से दूसरी घटना का प्रादुर्भाव होता है।

दिन के समय जब हम विचारो मे तल्लीन होते है तब हम सहज ही अनेक परिणामों पर पहुँचते हैं जिनमे कुछ ठीक और कुछ गलत साबित होते हैं।

यही दशा स्वप्नों की है। उनमें भी कई सच और कई झूठ होते हैं। आखिर स्वप्न दिन के विचारो का प्रतिबिम्ब मात्र ही तो है!

हा! एक बात है। मनुष्य के अन्तर्हृदय की कुछ गुप्त शक्तिया हैं जिन्हे हम अभी तक पूरी तरह से नही समझ पाए। उदाहरणार्थः—"टैली पैथी" और "क्लेयर वायेंन्स"—दूर होती हुई घटनाओ को देखना व सुनना।

मान लीजिए कि हमारा एक मित्र देहली से चलकर लखनऊ आ रहा है। उसने हमे अपनी रवानगी का खत नहीं लिखा। पर क्योकि वो हमारे बारे मे लगातार सोच रहा है और हमसे मिलने का बहुत इच्छुक है, सभव है कि उसकी यह तीव्र इच्छा किसी अप्रत्यक्ष रूप से हम तक पहुचे और दिन मे अथवा रात्रि मे हठात् यह विचार उत्पन्न करे कि अमुक व्यक्ति देहली से लखनऊ आ रहा है।

इसी प्रकार किसी निकटतम संबन्धी के विषय मे भी हम जान सकते हैं। मानो एक हमारी छोटी बहिन हैं जिसे हम चाहते हैं। हठात् वह बीमार पड़ती है। उसके माता-पिता चिन्तित हैं। डाक्टर भी निराशा की सूचना देता है।

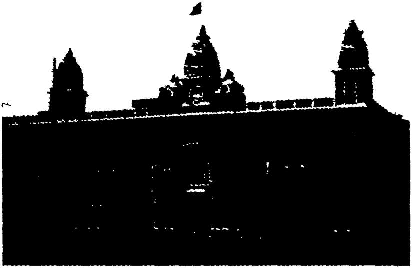
हम हजारों मील दूर बैठे हुए भी अपनी तीव्र इच्छा शक्ति से उस बहिन का पूरा हाल जान सकते हैं। दिन के समय क्योंकि बाहर का कोलाहल हमें विक्षिप्त सा रखता है, इसलिए रात्रि की शान्ति में हम अपनी बहिन की बीमारी का सारा रूप एक स्वप्न के आकार मे देखते हैं। और हमारे आश्चर्य का ठिकाना नही जब अगले दिन हमे खत मिलता है जिसमे हू बहू वही लिखा होता है।

पाठकों ने शायद ऐसे अनेक व्यक्तियों के विषय में पढ़ा होगा जो रात को, नींद मे अपनी समस्याओं को सुलझाया करते हैं।

एक गणितज्ञ है। कोई कठिन प्रश्न उसके सामने है। हल नहीं सूझता। दिनभर

देहली का दर्शनीय भवन

आर्यसमाज दीवानहॉल



आर्यसमाज दीवानहॉल का ५५वा वार्षिकोत्सव २४, २५, २६ जनवरी १६४१
मे होना निश्चित हुआ है इसके उपलक्ष मे २४ जनवरी १६४१ को
बड़े समारोह के साथ नगरकीर्तन का जलूस निकलेगा।

मेहनत की है लेकिन फिजूल। थककर सो जाता है। रात को स्वप्न में वो उसका हल बड़ी आसानी से पा जाता है।

एक डाक्टर है। किसी मरीज ने सब चिन्हों को देखकर भी उसकी बीमारी को नहीं समझ सका। बहुत इलाज किए, लेकिन फायदा नहीं हुआ। इसी चिन्ता में सो जाता है। आप उसकी प्रसन्नता का अनुमान कीजिए जब स्वप्न की अवस्था मे वह अपने रोगी की शारीरिक दशा को चित्रवत् देखता है और फौरन रोग का निदान समझकर चिकित्सा भी लिख देता है।

इसी प्रकार एक कवि है। उसने काश्मीर की घाटियों में सन्ध्या समय अकस्मात् एक रमणीय दृश्य देखा है। चाहता है उस दृश्य को सुन्दर शब्दो मे चित्रित करे। परन्तु शब्द बराबर जुड़ते ही नहा। बहुत प्रयत्न किया। सब व्यर्थ। आखिर सो जाता है। कुछ ही देर में रात की ठण्डी हवा और चारों ओर शान्त वायु मण्डल उसके दिमाग को तरो ताजा बना देते हैं। अब कविता स्वयमव फूट पड़ती है। और वह स्वप्न में मस्त होकर अपनी कविता गा रहा है।

× × ×

क्या हम स्वप्नो पर काबू पा सकते हैं? अवश्य। जैसे हम अपने दिन के विचारा को रोक सकते हैं, वैसे ही रात्रि के स्वप्नो को भी। ये दोनो ही मन के विकार ह जो खुद बखुद ( Mechanı cally ) हुआ करते ह।

इनको बुद्धि द्वारा रोका जा सकता है। दिन के समय जब आप किसी अनुचित विचार को कर रहे होते हैं तो बुद्धि हठात् आज्ञा देती है "हाल्ट"! थम जाओ। विचारो की फौज फौरन रुककर "अटैन्शन" ( सावधान ) हो जाती है।

इसी प्रकार यदि आप अपनी बुद्धि को प्रेरणा कर दें कि अमुक अमुक विचार सरणी को नहीं आने देना, तो वो स्वयमेव दिन और रात—दोनो समय इसका ध्यान रखेगी।

अस्तु स्वप्न का विषय बहुत लम्बा है। बालक से लेकर वृद्ध तक सभी इस विषय में थोड़ा बहुत अनुभव रखते हैं। हम चाहते हैं कि हमारे पाठक "स्वप्न-संसार" के विषय में गंभीरता से सोचें और स्वप्नों को स्वयमेव समझने का प्रयत्न करें।

आर्यजगत् के धुरीणों से

# आर्यसमाज और उसकी प्रगति

( ले०—श्री० पं० नरदेव, शास्त्री, वेदतीर्थ, ज्वालापुर )

आर्यसमाज की प्रगति का इतिहास एक मनोरञ्जक इतिहास है। उससे बहुत बोध हो सकता है। उसका मनन करनेके पश्चात् अपने अनुभव को सम्मुख रखकर हम अपनी वर्तमान गति-विधि में अभीष्ट परिवर्तन भी कर सकते हैं। अनुभव तो यही बतलाता है कि हमको अपनी गति-विधि मे बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ेगा। सब से पहिले हमको अपनी संस्थाओं को सँभालना पड़ेगा। वर्तमान प्रणाली की आर्य समाज द्वारा प्रचलित संस्थाओं को तो उसी गति-विधि में जाना पड़ेगा, उसी प्रणाली पर चलना पड़ेगा जिसपर कि शासक वर्ग का शिक्षा विभाग चलाता रहेगा, इसीलिए उस विषय में हम कुछ नहीं लिखेंगे।

## आर्य संस्थायें

हम उन संस्थाओं के विषय में लिखेंगे जो प्राचीन शिक्षा-दीक्षा के प्रचार तथा प्रसार के लिए खोली गई हैं और जिन्होंने गत तीस-चालीस वर्ष में बहुत कुछ कार्य किया है और जिनमें समय की गति को देखते परिवर्तन की आवश्यकता प्रतीत होने लगी है। इन प्राचीन संस्थाओं में तीन ही प्रमुख संस्थायें हैं—इन तीनों में अभीष्ट परिवर्तन होने से शेष छोटी मोटी संस्थाओं में स्वयं परिवर्तन हो जायगा। इन तीनों संस्थाओं में दो सशुल्क संस्थाएँ हैं। एक महा-विद्यालय निःशुल्क है और समय की गति देखते संचालकों को स्वयं आश्चर्य हो रहा है कि संस्था कैसे चल रही है। कांगड़ी गुरुकुल और महाविद्यालय ज्वालापुर दोनों संस्थाएँ सट गई हैं। दोनों के खेत मिल रहे हैं। ईश्वर जाने इन दो संस्थाओं को इतने समीप लाने में ईश्वर का क्या हेतु है।

गुरुकुलों का अनुभव बतला रहा है कि इन्होंने संसार पर आर्य समाज की बहुत कुछ धाक जमादी है—काम भी बहुत कुछ किया है, शिक्षा प्रसार भी बहुत कुछ हुआ। आर्य जगत् में विद्वानों की संख्या बढ़ाने में भी ये गुरुकुल कारण हुए

हैं पर यह भी मानना पड़ेगा कि जिस उद्देश्य से ये संस्थाएँ चलाई गईं उतना मनोरथ तो पूर्ण न हो सका है। सब अनुभव यह बतला रहा है कि इन संस्थाओं मे निम्नलिखित परिवर्तन करने चाहिए—क्योंकि सब गुरुकुल सब बातों को पूर्ण नहीं कर सकते हैं—

( १ ) एक गुरुकुल केवल वेदगुरुकुल नाम से चले और वहा केवल वैदिक विषय का अध्ययन—अध्यापन—अनुसन्धान होता रहे—यह गुरुकुल आर्यसमाज के गौरव बढाने के लिए पर्याप्त होगा।

( २ ) एक गुरुकुल केवल षट् शास्त्र के अध्ययन अध्यापन के लिए हो जहा उस दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित तैयार किए जाएँ इसका नाम शास्त्र गुरुकुल रहे—

( ३ ) एक गुरुकुल व्याकरण, साहित्य के लिए रहे। इसमे व्याकरण साहित्य के अच्छे अच्छे पण्डित बन सकेंगे इस गुरुकुल का नाम वेदाङ्गगुरुकुल रख सकते हैं—

( ४ ) एक गुरुकुल केवल चिकित्सा शास्त्र के लिए रहे। इस गुरुकुल का नाम आयुर्वेद गुरुकुल रहे।

( ५ ) एक गुरुकुल औद्योगिक गुरुकुल के नाम से रहे जिसमे थोडी-सी धार्मिक शिक्षा के साथ साथ कला-कौशल सिखाया जावे—

इस प्रकार पाच गुरुकुलों के चलने से ब्रह्मचारिगण साधारण शिक्षा के पश्चात् अपने रुचि के अनुसार किसी गुरुकुल मे पढ सकते हैं—इस प्रकार एक गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ हुआ ब्रह्मचारी दस-बारह वर्ष मे कुछ न कुछ बनकर निकलेगा ही। सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम निभालेंगे यह बात अनुभव विरुद्ध है। पहिला काम गुरुकुल कांगड़ी सँभाल सकता है, दूसरा काम शास्त्र-गुरुकुल, महाविद्यालय ( ज्वालापुर ) चला सकता है। चिकित्सा गुरुकुल को वृन्दावन चलावे—इस प्रकार बटकर काम होने से आर्य जगत् की ज्योति चमकेगी। अब रही सशुल्क-निशुल्कः की बात, वह इस तरह निमटाई जा सकती है कि जिस लड़के का पिता और गुरुकुल के अध्यापक यह निर्णय करें कि यह ब्रह्मचारी देश और धर्म के काम के है और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् देश-धर्म के ही काम करेंगे उन्हीं अधिकारी ब्रह्मचारी को निशुल्क शिक्षा दी जावे। शेष सब व्यय अपने व्यय से पढ़ें—

महाविद्यालय ज्वालापुर का गत तैंतीस वर्ष का मेरा यह अनुभव है कि

इस संस्था ने ग़रीबों का बहुत उपकार किया किन्तु अच्छे घर के लड़कों के संरक्षकों ने ग़रीब बनकर, किसी प्रकार महाविद्यालय, में प्रविष्ट कराकर, अनुचित लाभ भी बहुत उठाया।

जो गुरुकुल शुल्क लेते हैं उनको चाहिये कि ब्रह्मचारीपर जितना व्यय होता हो ( वस्त्र-भोजन-शिक्षा आदि सब का सब ) सब ले लेवें पब्लिक पर वृथा भार न डालें न चन्दा मांगें। निःशुल्क संस्थाएँ मांगने की अधिकारी रहें। पर इन निःशुल्क संस्थाओं में बड़े परीक्षण तथा निरीक्षण के पश्चात् ब्रह्मचारी प्रविष्ट हों।

## शिक्षा शास्त्री

आर्य समाज के बुद्धिमान् कहीं एक जगह पर एकत्रित होकर विचार करें तो निःशुल्क सशुल्क का विवाद मिट सकता है। यदि शीघ्र ही इस विषय पर विचार न किया जायेगा तो आर्य जगत् की संस्कृत शिक्षा देनेवाली संस्थाएँ हैं खतरे में।

जब गुरुकुलों से शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करके निकलने वाले ब्रह्मचारी ही सरकारी परीक्षाओं के पीछे दौड़ते हैं और अपनी संस्थाओं द्वारा प्राप्त उपाधियों की उतनी परवाह नहीं कर रहे हैं तब आर्य जगत् में एक बड़े संस्कृत कालेज की बड़ी आवश्यकता है जिसमें केवल सरकारी संस्कृत परीक्षाओं की तैयारी करायी जाय। इसकी पाठ्यप्रणाली ७-८ वर्ष से अधिक की न हो मैं समझता हूं यदि ऐसा कालेज खुल सका तो छात्रों की संख्या की कमी नहीं रहेगी।

यह आशा रखना कि गुरुकुलों में भी सब ब्रह्मचारी एक ही गुरुकुल में एक साथ पढ़ते हुए एक जैसे निकलेंगे—दुराशा मात्र है। विद्यार्थियों की बुद्धि, रुचि आदि पर भी बहुत कुछ निर्भर रहेगा।

कांगड़ी गुरुकुल, महाविद्यालय ज्वालापुर, गुरुकुल वृन्दावन, तथा इनके अनुकरण करने वाली संस्थाओं में एक अच्छी बात है कि ये सरकारी सहायता नहीं लेती ये स्वतन्त्र हैं। फिर हम इन संस्थाओं को अधिक उपयोगी क्यों न बनाने का प्रयत्न करें।

उन संस्थाओं की सञ्चालक-सभा-समितियां अपनी आन को स्थिर रखने अथवा अपने गौरव को बचाये रखने की इच्छा से परस्पर सहयोग नहीं कर रही हैं। इतने वर्षों के अनुभवों के पश्चात् अब भी वे ही पुरानी भावनायें अथवा धारणायें बनी रहीं तो, है व्यर्थ सी बात।

एक बार सयुक्त प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा महा विद्यालय सभा के अधिकारियों ने बैठ कर कुछ बातें की थीं पर फिर कुछ नहीं हुआ। संयुक्त प्रांतीय आर्य प्रतिनिधि सभा की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर शिक्षा सम्मेलन हुआ था, जिसका संयोजक मै ही था। कतिपय उपयोगी प्रस्ताव पास हुए पर व्यर्थ. कुछ नहीं हुआ। उसके निश्चय संयुक्त प्रांयीय आर्य प्रतिनिधि सभा की फाईलों की शोभा बढ़ा रहे हैं।

एक बार समस्त निःशुल्क गुरुकुलों की भी सभा हुई थीऔर यह यत्न किया गया कि सब एक सूत्र में ओत-प्रोत होकर अपना एक पृथक् संगठन किया जाय पर वहां भी बड़े छोटे का प्रश्न उठकर मामला ठप हो गया। निःशुल्क संस्थाओं के सामने तो कठिन प्रश्न उपस्थित है। ये अपना विस्तार तो कर नहीं सकती। हां, छोटा सा सुन्दर रूप रखकर 'जब तक निभे तब तक' के अनुसार उपयोगी काम कर सकती हैं। ऐसी सुन्दर लोकोपयोगी सस्थायें धनाभाव, साधनाभाव के कारण कष्ट अनुभव कर रही हैं यह सखेद आश्चर्य की बात है। पिछले हैदराबाद सत्याग्रह के अवसर पर यहां के ब्रह्मचारियों ने अधिक से अधिक संख्या में सत्याग्रह मे भाग लेकर सिद्ध किया है कि ये संस्थायें कितनी उपयोगी हैं। इनका अस्तित्व कितना उपयोगी है। अस्तु इन बातों को लिखने का यह अवसर नहीं है।

प्रश्न है सशुल्क गुरुकुलों को अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का और निशुल्क गुरुकुलों को जीवित रखकर गरीब होनहार छात्रों की सरक्षा तथा संदीक्षा द्वारा आर्य समाज के हित सम्पादन का।

## दूसरा विषय है प्रचार का

### परिवर्तन आवश्यक

आर्य समाज के विद्वानों तथा कर्णधारों का कर्तव्य है कि इस विषय पर भी ध्यान देकर प्रचार कार्य की प्रणाली में भी प्रबल परिवर्तन करके प्रचार कार्यको अधिक फलदायक बनाने की चेष्टा करें। आर्यसमाज के प्रारम्भिक काल में आर्यसमाज के प्रवर्तक को झाड़ झंका साफ करने की आवश्यकता पड़ी। उसके पश्चात् भी अधिक खंडनात्मक तथा न्यून मण्डनात्मक प्रचार प्रथा चल पड़ी। पश्चात् आर्यसमाज का समस्त ध्यान सस्थाओं के रक्षण, धारण, पोषण में लगा। उन दिनों ऐसा प्रतीत होने लगा कि मानों प्रचार कार्य की आवश्यकता ही नहीं रही। प्रचार कार्य सर्वथा बन्द सा हो गया। जनता ने समझ लिया कि संस्थाओं से ही

सब काम चल जायगा । बहुत जोर लगाया । अनुभव ने बताया कि प्रचार की ओर ध्यान न देना बड़ी भारी भूल थी । फिर प्रचार की ओर ध्यान बढ़ने लगा किन्तु प्रचार प्रणाली में विशेष परिवर्तन न हुआ । आर्य समाज की धाक सर्वत्र बैठ गई । आर्यसमाज के तीक्ष्ण तर्क वितर्कों से संसार के नानापंथियों का मुख बन्द हो गया । किन्तु संसार हमारी ओर आकृष्ट न हुआ । हमारे आध्यात्मिक शून्य किन्तु केवल सांसारिक बुद्धि से चलाए हुए आन्दोलनों और प्रचारों से संसार ऊब गया । हमने, हमारे उपदेशकों ने, प्रचारकों ने, नेताओं ने, कार्यकर्ताओं ने आर्य जगत में कोई ऐसा उत्कृष्ट आकर्षक वातावरण उत्पन्न नहीं किया जो संसार अपने आप हमारी ओर खिंच आता । सब हमसे भयभीत हैं, सब हमसे दूर खड़े हैं, हमारी प्रशंसा चहुँ ओर है पर प्रशंसा करने वाले स्वयं बहुत दूर खड़े होकर प्रशंसा करते रहते हैं । सारांश ऐसा ढंग हो, ऐसी कार्य प्रणाली हो जिसमें स्वाभाविक आकर्षण रहे । शायद वह त्याग तपस्या की मात्रा से ही हो सकेगा । बहुत बोलने और काम करने का समय गया । थोड़ा बोलने और अधिक से अधिक कर दिखाने का समय आया । ईश्वर हमें शक्ति देवे ।

# सम समुचय वाद

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह ।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते । ईश० ११

महर्षि दयानन्द जी ने सत्यार्थ प्रकाश में इस मन्त्र के अर्थ करते समय अविद्या के अर्थ कर्मोपासना और विद्या के अर्थ ज्ञान किये हैं और श्री शकराचार्य जी ने अविद्या के अर्थ कर्म करके विद्या के अर्थ उपासना किये हैं। इसी प्रकार मृत्यु के अर्थ महर्षि ने मौत करके अमृत के अर्थ मोक्ष किये हैं और श्री शकराचार्य जी ने मृत्यु के अर्थ मौत ही किये है परन्तु अमृत के अर्थ देव लोक की प्राप्ति किया है।

मुख्य भेद यह है जहा महर्षि जी विद्या को ज्ञान मानकर सम समुचय के पक्षपाती है वहां शकराचार्य जी मोक्ष का साधन केवल ज्ञान को मानकर इस मन्त्र में आए 'उभयंसह' पद से डर कर विद्या के अर्थ उपासना करके क्रम समुचय की घोषणा करते हैं ज्ञानी के लिये कुछ कर्तव्य नहीं उनका यह सिद्धांत है इसलिये वह कर्म को ज्ञान का साधन मानकर ज्ञान होने पर कर्म त्याग का सिद्धांत मानते हैं और महर्षि जी ज्ञान होने पर भी वैदिक कर्म करने का विधान करते हैं अतः उनको उभयंसह पद का डर नही प्रत्युत उनका पक्ष इसके सर्वथानुकूल है अतः वह विद्या शब्द का अर्थ ज्ञान करते हैं।

दूसरा भेद यह है महर्षि जी अविद्या के अर्थ कर्म, उपासना दोनों मानते हैं क्योंकि कर्म की न्याईं उपासना भी मानसिक कर्म है और कर्म के साधन मन, वाक शरीर होने से उपासना भी कर्म के साथ मिल जाती है शंकराचार्य जी ने अविद्या के अर्थ केवल कर्म ही किये हैं जहां कर्म अर्थ में दोनों आचार्य सहमत हैं वहां ज्ञान में भेद है।

इसी प्रकार मौत को पार करने में दोनों आचार्य सहमत हैं परन्तु जहां महर्षि जी विद्या के अर्थ ज्ञान करके मोक्ष प्राप्ति 'अमृतमश्नुते' लिखते हैं वहां शंकराचार्य जी देवलोक प्राप्ति तक ही जाते हैं क्योंकि मोक्ष ज्ञान से होती है जब विद्या के अर्थ ज्ञान नहीं है तो अमृत के अर्थ मोक्ष क्यों हो।

श्रीशंकराचार्य जी जैसा धुरन्धर विद्वान् जहां और स्थानों पर अमृत के अर्थ मोक्ष लिखता है वहां सम समुच्चय के डर से इस प्रकरण में वह अर्थ छोड़ देते हैं।

अब अन्य पुस्तकों में इस भाव के पोषक जो वाक्य हैं वह भी सम समुच्चय की पुष्टि अर्थ लिखना उचित प्रतीत होता है।

तपसा किल्विषं हंति विद्ययाऽमृतमश्नुते।

मनु० अध्याय १२, १०४

इस श्लोक में तप से किल्विष नाश और विद्या से मोक्ष की प्राप्ति लिखी है। भेद केवल अविद्या और तप तथा किल्विष और मृत्यु का है दोनों का भाव एक ही है जो सम समुच्चय का द्योतक है।

हारीतस्मृति में इससे भी स्पष्ट लिखा है यथा

यथाश्वा रथहीनाश्च रथाश्चाश्वैर्विना यथा।<br>
एवं तपश्च विद्या च उभावपि तपस्विनः॥<br>
यथान्नं मधु संयुक्तं मधु चान्नेन संयुतम्।<br>
एवं तपश्च विद्या च संयुक्तं भेषजं महत्॥<br>
द्वाभ्यामेव हि पक्षाभ्यां यथा वै पक्षिणां गतिः।<br>
तथैव ज्ञानकर्मभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम्॥ ७, ९-११

जिस प्रकार अश्व रथ बिना और रथ अश्व बिना काम करने में अशक्य है उसी प्रकार तपस्वियों के लिये तप तथा ज्ञान दोनों ही चाहिये।

जिस प्रकार अन्न मधु संयुक्त और मधु अन्न सहित लाभदायक हैं इसी प्रकार तप और ज्ञान दोनों ही मिलकर सुखद हैं।

जैसे दो पक्षों से पक्षी की गति अच्छी होती है इसी प्रकार ज्ञान और कर्म से ब्रह्म को प्राप्त होता है इन श्लोकों में प्रधान जो दो हैं उसमें तप और विद्या शब्द हैं और तीसरे में कर्म और ज्ञान शब्द हैं यह शब्द एकार्थ से वाचक हैं इसलिये यह भी कर्म और ज्ञान का समुच्चय ही प्रतिपादन करते हैं। व्यवहार में भी ऐसा ही प्रतीत होता है यदि किसी को ज्ञान है और वह उसके पश्चात् कुछ कर्म न करे तो उसे किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। इसी प्रकार यदि कोई कर्म तत्परता से करता है परन्तु उसका ज्ञान नहीं है केवल अन्ध

परम्परागत श्रद्धा से कर्म करता है वह भी सफल नहीं होता है यदि कोई ज्ञान प्राप्त करके तदनुकूल कर्म करे तो सफल होता है इसी लिये ईशोपनिषद् में

अन्धन्तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।

ततो भूय इव ते तमो य उ विद्याया रता ।। ईश० ९

जो केवल कर्म करते है वह अधकारमय योनियों को प्राप्त होते हैं और जो विद्या अर्थात् ज्ञान का ही आश्रय लेते है वह उससे अधिक अधकार को प्राप्त होते हैं।

इसी प्रकरण मे वह मन्त्र पढा गया है जो इस लेख के आरम्भ मे लिखा है अत महर्षि का प्रतिपादन किया हुआ मार्ग ज्ञान कर्म का सम समुचय ही ठीक है।

इस विषय मे श्री बालगगाधर तिलक जी ने भी गीतारहस्य मे विचार किया है वह स्वयं वेदाकित विचारों वाले थे। तो भी उन्होंने सम समुचयवाद का वहा भली प्रकार मण्डन किया है जो सज्जन देखना चाहे वहा देख सकते है।

—स्वतंत्रानन्द

---

# आर्य्य विवाह ऐक्ट*

## विस्तृत व्याख्या

( १ )

गत बीस वर्षों मे केन्द्रीय धारा सभा ने समाज सुधार के क्षेत्र म कई उल्लेखनीय कार्य्य किए हैं। उन मे से एक १६३७ का "आर्य्य विवाह ऐक्ट" है। आर्य्य समाजियो के पारस्परिक अन्तर्जातीय विवाहो को कानून सम्मत और इस ऐक्ट से जो विवाह पूर्व हुए हें उन्हे वैध बनाने के उद्देश्य से श्रीयुत घनश्यामसिंह जी गुप्त एम० एल० ए० (मध्य प्रदेश) ने यह बिल केन्द्रीय सभा मे प्रस्तुत किया था। यद्यपि इस कानून का मुख्य सम्बन्ध आर्य्य समाजियों से है, तथापि इस कानून से हिन्दू समाज का बहुत हित होने की संभावना है। पिछले कुछ समय से विविध जातियो के नवयुवकों के हृदयो मे अन्तजातीय विवाह का प्रश्न बहुत आन्दोलित होता रहा है। हिन्दू समाज के बड़े बूढ़े लोग और परम्परा इस नवीन विधान के विरुद्ध रहे हैं, परन्तु सब से बड़ी कठिनाई कानूनी थी। इस ऐक्ट से आर्य्य समाजियो की तो कठिनाई पूर्णतया दूर हो गई है और देव समाजियो तथा राधा स्वामियो को भी जिन मे बहुत से अन्तर्जातीय विवाह हो चुके हैं इस प्रकार के कानून की शायद आवश्यकता होगी और वे भी आर्य्य समाजियो की नाई इस ऐक्ट जैसा कोई कानून बनवाने के लिए उत्साह ग्रहण करेंग। परन्तु यदि हिन्दुओं की समस्त जातियों के अन्तर्जातीय विवाहो को वैध बनाने के लिए "हिन्दू विवाह ऐक्ट" बन जाय तो पृथक् जातियो के लिए विशेष कानूनो के बनाए जाने की आवश्यकता मिट जायगी

## ब्राह्मो विवाह कानून

अन्तर्जातीय विवाहो की समस्या के हल के लिए सब से पहला कानून १८७२ ई० मे "स्पेशल मैरेज ऐक्ट" अर्थात् विवाहो का विशेष कानून के नाम से बनाया गया था। इस ऐक्ट को ब्राह्मो-विवाह कानून भी कहते हैं। यह कानून बंगाल के ब्रह्म-समाजियो के आन्दोलन के फलस्वरूप पास हुआ था। यत: अन्तर्जातीय विवाहों के सम्बन्ध मे इस के पश्चात् जो कानून बनाए गए हैं, उन पर इस कानून का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा। अत: इस कानून तथा इसकी धाराओ का संक्षेप मे कुछ परिचय देना आवश्यक है। ब्रह्म-समाजियों का दृष्टिकोण यह था कि मूर्ति पूजा और संस्कारो के मामले म उनका विश्वास सनातनी हिन्दुओं जैसा नहीं

---

* १६३७ का १६वा कानून

है और वे हिन्दुओ के विवाहों धार्मिक स्वरूप को स्वीकार नहीं करते हैं। अत उनकी इच्छाओं की पूर्त्यर्थ उक्त कानून पास हुआ था। इस कानून के अनुसार सिविल विवाह होते हैं और यह उन व्यक्तियों पर लागू होता है जो यह घोषणा करने के लिए उद्यत हों कि उनका सम्बन्ध प्रसिद्ध धर्म्मों यथा हिन्दू धर्म्म, मुसल्मानी धर्म्म, ईसाइयत, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पार्सी और यहूदी धर्म्मों म से किसी से नहीं हैं। इस विवाह का रूप तथा क्रियाए निम्न प्रकार हैं —

(१) वर और वधू दानो को रजिस्ट्रार क सामने यह घोषणा करनी चाहिए कि वे उपयुक्त धर्म्मों में से किसी धर्म को नहीं मानते हैं। ( धारा स० २ )

(२) वर की अवस्था १८ वर्ष और वधू की १४ वर्ष से कम नहा होनी चाहिए। यदि वर और वधू में से कोई २१ वर्ष का आयु से कम हो तो घोषणा पत्र पर सम्बन्धित व्यक्ति क पिता अथवा सरक्षक को हस्ताक्षर करने चाहिय। ( धारा स० २, २, ३ )

(३) वर और वधू के व्यक्तिगत कानून के अनुसार विवाह सम्बन्धी जो बातें निषिद्ध हो, उन स वे दोनो मुक्त होने चाहिए। ( धारा स० २, ४ )

(४) विवाह का रूप धार्मिक कृत्यो से मुक्त रहेगा और वर और वधू प्रत्येक को राजस्ट्रार के सामने एक घोषणा करनी होगी। और उस पर तीन गवाहो की साक्षी होगी कि वर और वधू एक दूसरे को अपना वैध पात अथवा अपनी पत्नी मनोनीत करता है (धारा १८)

(५) वर और वधू को विवाह क समय अविवाहित होना आवश्यक है और जब तक विवाह सम्बन्ध रहेगा तब तक स्त्री और पुरुष म से कोई भी दूसरा विवाह न कर सकेगा। ( धारा २ (ई) और धारा १५ )

(६) इण्डियन डाइवोर्स ऐक्ट ( Indian Divorce Act ) अर्थात् "भारतीय तलाक कानून" में वर्णित कारणों में से किसी कारण के आधार पर विवाह का विच्छेद हो सकता है। धारा स० १७ )

## घोषणा मात्र से कोई धर्म्म विहीन नहीं हो जाता

अब वर और वधू १८७२ के कानून के अनुसार विवाह के समय घोषणा करते हैं कि वे अहिन्दू हैं तब यह प्रश्न उपस्थित होता है कि बतौर हिन्दू के समाज में उनकी जो स्थिति है उस पर उस घोषणा का क्या असर होता है। जायदाद के उत्तराधिकार के मामले में उन पर और उनके बच्चों पर उनका व्यक्तिगत कानून लागू होना चाहिए। अथवा ( इण्डियन सेक्सेशन ऐक्ट ) 'भारतीय उत्तराधिकार का कानून' १९२१ में कलकत्ता हाई कोर्ट में इस

विषय पर बहस हुई थी कि कानून के अनुसार होने वाली घोषणा का उत्तराधिकार पर क्या प्रभाव पड़ता है। एक विधवा ने इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार अपने पति की जायदाद के तिहाई भाग के लिए दावा किया था और कारण यह बतलाया था कि उसकी शादी १८७२ के ऐक्ट के अनुसार हुई थी और उस ने अपने पति के साथ घोषणा की थी कि वे हिन्दू नही हैं न्यायाधीश ने एक प्रसिद्ध अभियोग के आधार पर यह फैसला दिया था कि कोई हिन्दू ब्रह्म-समाजी बन जाने से हिन्दू समाज से बहिष्कृत नही हो जाता और १८७२ के ऐक्ट के अनुसार घोषणा कर देने से हिन्दू समाज से पतित नहीं हो जाता। स्वयं ऐक्ट की धाराओ के अनुसार कई मामलो मे वर और वधू पर उनका व्यक्तिगत कानून लागू होता है। इसके समर्थन मे निम्न वाक्यांश दिया जाता है।

"मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूं कि घोषणा कर देने मात्र से कोई व्यक्ति हिन्दू धर्म्म के सब उद्देश्यो से मुक्त हो जाता है, यह स्वीकार नही किया जा सकता। घोषणा तो ऐक्ट के उद्देश्यों की पूर्त्यर्थ एक साधारण वक्तव्य है। मुझे ज्ञात है कि इस ऐक्ट का उद्देश्य उन व्यक्तियो को सहायता करने का था जो हिन्दू रीति रिवाजो के अनुसार विवाह कराना पसन्द नहीं करते थे और उन मे से कुछ रिवाज उनके लिए हानिकारक भी थे और जो इसी लिए विवाह का ऐसा रूप चाहते थे। जो बेकानून सम्मत हो और वर वधू दोनो पर बाध्य हो। साथ ही रूढ़िवादी हिन्दू धर्म्म में जो रूप नियत किया हुआ है उस से भिन्न हो।

१९२८ ई० मे बम्बई प्रान्त मे एक ऐसा ही मुकद्दमा हुआ था। उस में भी एक विधवा ने जिसका विवाह १८७२ के ऐक्ट के आधीन हुआ था इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट के आधीन अपने पति की आधी जायदाद का दावा किया था। उस मुकदमे मे भी न्यायाधीशों की यह सम्मति थी कि १८७२ के कानून के आधीन विवाह होने मात्र से वर वधू व्यक्तिगत कानून से मुक्त नही समझे जाते हैं।

उपर्युक्त दो मुकदमो से जो परिणाम निकला है उसका एक और मुकदमे से समर्थन होता है। मुकदमा इस प्रकार था कि अपने पति की मृत्यु पर एक हिन्दू विधवा को कुछ जायदाद प्राप्त हुई थी। पुनर्विवाह करने पर हिन्दू विधवाओ के पुनर्विवाह ऐक्ट के अनुसार यह जायदाद उस से छिन जानी चाहिए थी। १८७२ के ऐक्ट के आधीन जो घोषणा होती है. उसने वही घोषणा पुनर्विवाह के अवसर पर की थी, वह हिन्दू नहीं है। प्रश्न यह उठा था कि हिन्दू विधवाओ के पुनर्विवाह के कानून के अनुसार जायदाद के छिन जाने की धारा इस मामले में लागू हो सकती है या नही ? विधवा की ओर से वकीलों ने यह कहा था कि यह वह हिन्दू नही रही है इस लिए जायदाद की ज़ब्ती की धारा उस पर नही लगनी चाहिए

परन्तु अदालतों ने यह फैसला दिया कि १८७२ के आधीन हुई घोषणा के होते हुए भी हिन्दू विधवाओं का कानून लागू होगा।

इस सम्बन्ध में कलकत्ता हाई कोर्ट के एक प्रसिद्ध मुकदमे का उल्लेख करना आवश्यक है। यह मुकदमा भगवानकोर बनाम बोस का था। कोई हिन्दू ब्रह्म समाजी बन जाने पर हिन्दू रहता है वा नहीं। इस प्रकार के मुकदमों में इस मुकदमे से बहुत सहायता मिलती है। न्यायाधीशों की सम्मति यह थी कि हिन्दू धर्म्म विश्वास के मामले में अपने अनुयायियों को बहुत छूट देता है और कोई हिन्दू यदि रूढिवादी हिन्दू धर्म्म के रीति रिवाजों और अनुष्ठानों को नहीं मानता वा करता है तो केवल इसी बात से वह हिन्दू धर्म्म से पृथक् नहीं हो जाता है। साथ ही ब्रह्म समाजी बन जाने मात्र से उस पर से व्यक्तिगत कानून का शासन नहीं उठ जाता है।

ऊपर के मुकदमोंसे यही परिणाम निकलता है कि जो हिन्दू ब्रह्मोविवाह ऐक्ट के लिए ब्राह्म होनेकी घोषणा करता है वह उत्तराधिकार के मामलों में हिन्दू कानून से मुक्त नहीं होता।

# सुमन संचय

## ( १ )

### आत्म तत्त्व

एक दिन सायंकाल के समय शंकर की किसी संन्यासी से भेंट हो गई। संन्यासी उनके असाधारण तेज को देखकर बड़ा प्रभावित हुआ और उस ने इन्हें होनहार बालक समझकर इन से पूछा, "तुम कौन हो ?" शंकर ने मन्द हास्य से उत्तर दिया 'मैं नहीं जानता।' संन्यासी ने उनके मनोभाव को समझकर फिर पूछा 'क्या वास्तव में तुम नहीं जानते कि तुम कौन हो ?' शङ्कर ने फिर वही उत्तर दिया और विनम्र होकर प्रार्थना करने लगे 'महात्मन् ! कोई ऐसा उपाय बतलाइए जिस से मैं जान सकूं कि मैं कौन हूँ ?' संन्यासी बोला 'यही तो जीवन का वास्तविक तत्त्व है, पर संसार में रहकर नहीं जाना जा सकता' यह सुनकर शङ्कर ने कुछ गम्भीर होकर दृढ़ता पूर्वक कहा 'महात्मन् ! यह तत्त्व तो आपके अन्तःकरण में ही वर्तमान है। उसकी खोज के लिए कहीं अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं है। आत्म चिन्तन और आत्म दर्शन से ही उसकी उपलब्धि हो सकती है' शङ्कर की यह मर्मयुक्त गूढ़-वाणी सुनकर साधु बड़े विस्मित हुए और आशीर्वाद देकर वहां से विदा हो गए।

## ( २ )

### सन्तान-प्राप्ति

एक दिन महात्मा बुद्ध को मगध के एक राजा ने अपने महल में भोजन के लिए आमन्त्रित किया। वह राजा निस्सन्तान था। अन्ध विश्वास से प्रेरित होकर राजा की तीनों रानियों ने अपने दुकूल ( ओढ़ने के वस्त्र ) राज प्रसाद में बिछवा दिए जिस से महात्मा बुद्ध के उन पर चलने से उन्हें पुण्य प्राप्ति हो। जिस समय महात्मा बुद्ध राज-प्रासाद में प्रविष्ट हुए और उन्हों ने वे वस्त्र देखे तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ और वे उन वस्त्रों से हटकर अपने सिंहासन पर जा बैठे। महात्मा

के इस व्यवहार से राजा और उनकी रानियों को दुख और आश्चर्य हुआ। महात्मा बुद्ध उनके मनोभाव को समझ गए और बोले। राजवर्ग ! विस्मित होने की आवश्यकता नहीं है। राज धर्म्म का यथोचित रीति से पालन करो। इसी रीति से आपको सन्तान का सुख मिल सकता है। अन्य कोई मार्ग नही है।

( ३ )

## सत्य-प्रियता

गोपाल कृष्ण गोखले जब चतुर्थ श्रेणी मे पढ़ते थे तो एक दिन उन के अध्यापक ने उनकी श्रेणी के सभी विद्यार्थियों को गणित के कुछ प्रश्न दिए और घरसे करके लाने की आज्ञा दी। दूसरे दिन जब प्रश्नोंके उत्तर देखे गए तो गोखले को छोड़कर और किसी भी विद्यार्थी के सब प्रश्न शुद्ध न थे। गोखले के सब प्रश्नों को शुद्ध देखकर अध्यापक महोदय बड़े प्रसन्न हुए और गोखले की बड़ी प्रशंसा कर उसे प्रथम नम्बर पर बैठने की अनुमति दी तथा अन्य विद्यार्थियों की भर्त्सना की। अपनी अतथ्य विजय प्रशसा सुनकर गोखले फूट फूटकर रोने लगे। लड़कों और अध्यापक को यह देखकर बड़ा अश्चर्य हुआ, किन्तु सत्य रहस्य क्या है ? यह कोई न जान सका। अन्त मे अध्यापक के प्रेम पूर्वक बहुत समझाने बुझाने पर जब गोखले का रोना कुछ शान्त हुआ और उन से आग्रह पूर्वक उसका कारण पूछा गया तो वे बोले 'गुरु जी ! ये सब प्रश्न मैंने स्वयं नहीं किए है अपितु दूसरे से पूछकर किए हैं। मैने झूठ बोलकर झूठी प्रशसा पाई है। अतः मैं अपराधी हूँ, मुझे दण्ड दीजिए।' गोखले की यह बात सुनकर सब विद्यार्थी आश्चर्य चकित हो उनकी ओर देखने लगे। अध्यापक ने अत्यन्त प्रसन्न होकर गोखले को हृदय से लगा लिया और विद्यार्थियों को सम्बोधन कर कहने लगे, 'बालको ! देखो, सचाई इसे कहते हैं' इस अपराध के प्रायश्चित में गोखले एक सप्ताह पर्य्यन्त अपनी श्रेणी में अन्तिम स्थान पर बैठते रहे।

( ४ )

## मित्रता

डामन और पिथिमस दो मित्र थे। दोनों में बड़ा प्रेम था। एक बार उस देश के अत्याचारी राजा ने डामन को फांसी का हुक्म दिया। डामन के स्त्री बच्चे बहुत दूर समुद्र से उस पार रहते थे। उसने उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की।

राजा ने कहलवाया कि डामन के बदले मे यदि कोई दूसरा आदमी जेल मे रहने को तय्यार हो और यदि डामन समय पर न पहुच सके तो उसी को फासी पर चढा दिया जाय। यह उसे स्वीकार हो तो डामन नियत समय के लिये घर जा सकता है।

पिथिमस ने डामन से बिना पूछे ही यह शर्त स्वीकार करली और प्रतिज्ञा पत्र लिख दिया। प्रतिज्ञा पत्र के लिखे जान पर डामन जेलखाने से निकलकर आया और पिथिमस जेलखाने में डाल दिया गया।

पिथिमस सोच रहा था, 'हे भगवन्! डामन समय पर न लौटे तो बडा अच्छा हो' समय व्यतीत होने लगा। हवा अनुकूल न होने से डामन की नाव समय पर न पहुँच सकी। फासी का समय निकट आ गया। उस समय पिथिमस हर्ष और शोक के बीच झूल रहा था। जब वह सोचता कि डामन नही आया और मुझे फासी हो जायगी तब वह आनन्द मे मग्न हो जाता। दूसर ही क्षण जब यह विचार आता तो वह शोक मग्न हो जाता कि 'अभी मुझे फासी हुई तो नहीं इसी बीच मे यदि वह आ पहुचा तो मेरा मनोरथ असफल हो जायगा। वह बडे व्यग्र चित्त से बार बार भगवान् से प्रार्थना करता 'हे प्रभो! डामन के आने मे देर हो जाय और मै फासी पर चढा दिया जाऊँ।' उधर डामन नाव मे यह सोच कर अधीर हो रहा था कि 'कहीं मै न पहुच सका तो मेरे पिथिमस को फासी हो जायगी।'

समय हो गया। डामन नहीं पहुचा। पिथिमस को फासी के मचान पर चढाया गया। वह बडा प्रसन्न था। लोगों ने चिल्लाकर कहा 'डामन ने बहुत बुरा किया' समय पर नही आया। इस बात को पिथिमस सहन न कर सका और कहा 'कई दिन से हवा विपरीत चल रही है' इसी से वह नही आ सका। उस पर किसी को रोष नहीं करना चाहिए। इतना कह कर वह जल्लाद से बोला, भाई! समय हो गया है, अब तुम देर क्यों कर रहे हो।" उसे एक एक क्षण असह्य हो रहा था। जल्लाद तय्यार हुआ।

इसी बीच मे दूर से बडे जोर की आवाज सुनाई दी। 'ठहरो, ठहरो। मै आ पहुचा' लोगों के देखते ही देखते डामन पागल सा हुआ घोडा भगाता हुआ आया और घोडे की पीठ से कूद कर फासी के तख्ते पर जा खडा हुआ। पिथिमस को गले लगाकर बोला, 'ईश्वर को धन्यवाद है जो उन्होंने तुम्हारी प्राण रक्षा की।

डामन के आजाने से पिथियस बड़ा दुखी हुआ। उस ने निराशा भरे शब्दों में कहा 'भगवान ने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी। तुम २ मिनिट बाद क्यों नही पहुंचे।'

इस अद्भुत दृश्य को वह राजा भी मंच पर बैठा हुआ देख रहा था। वह मंच से उठा। लोगों में हाहाकार मच गया। फांसी के तख्ते के समीप आकर गद् गद् वाणी से बोला 'तुम दोनों मचान से उतर जाओ। मै ऐसे अनुपम जोड़े को तोड़ना नहीं चाहता! मेरी ईश्वर से प्रार्थना है कि दो के साथ तीसरा मैं भी ऐसा ही बन जाऊं।' यह कहकर उसने दोनों मित्रों को अपने बाहु पाश में बांध लिया। उपस्थित नर-नारियों ने हर्ष में करतल ध्वनि की और तीनों का अभिनन्दन किया।

( ५ )

## सच्चा साधु

एक साधु ने ईश्वर प्राप्ति की साधना के लिए कठोर तप करते हुए—६ वर्ष एक गुफा मे व्यतीत किए। वह अपनी तपस्या पर अभिमान करने लग गया। एक बार एक रोगी व्यक्ति अपनी स्त्री तथा बच्चों के साथ उस वन-प्रदेश मे गया। उस साधु को देखकर उन लोगों को बड़ी तसल्ली हुई कि आवश्यकता पड़ने पर वह उन्हें सहायता देगा। इसी बीच में उसकी औषधि जो वह नगर से लाया था समाप्त हो गई और उसका छोटा भाई जो आने वाला था न आया। ऐसी अवस्था में उसकी स्त्री स्वयं नगर को जाने के लिए उद्यत हुई। और अपने एक छोटे बच्चे को साधु के पास भेजकर कहलवाया कि वे उसकी अनुपस्थिति मे उस रोगी की देख रेख करने का कष्ट करें। बच्चे ने जाकर साधु को अपनी माता की प्रार्थना सुनायी। यह प्रार्थना सुनकर वह आग बबूला हो गया, और उसका हाथ पकड़े हुए उन लोगों के पास पहुंचा और कहा 'तुमने इस बच्चे को मेरी तपस्या में विघ्न डालने के लिए क्यों भेजा।' उसकी माता ने हाथ जोड़ कर कहा 'महाराज। मैं यहां अकेली हूं। पति देव रोगी हैं। चल फिर नहीं सकते। मैं औषधि लेने नगर जा रही थी। पीछे उनकी देख-रेख रखने का आपको कष्ट देने का साहस किया था। यदि आप यह कष्ट नहीं उठा सकते हैं तो न उठाएँ। इस बच्चे को क्षमा करें।' यह सुनकर साधु अपनी गुफा की ओर चल दिया और कहा 'खबरदार! मेरी तपस्या में विघ्न डाला। यदि विघ्न डाला तो तुम सब को भस्म कर दूँगा।' उस स्त्री ने हाथ जोड़ कर कहा 'महाराज! क्रोध न करें! ईश्वर की

सिद्धि और तपस्या किसे कहते हैं आप इसे सीखें !" साधु महोदय पुनः जल गए और बोले ? 'क्या हमसे भी बढ़ कर कोई ईश्वर भक्त हो सकता है ?' स्त्री ने कहा 'महाराज ! ऐसा न कहें। यदि आप सचमुच ईश्वर भक्त बनना चाहते हैं तो आप पास के ग्राम के उस भिखारी का अनुकरण करें जो कविता गाता हुआ इधर उधर भटकता और भीख मांगता फिरता है।"

साधु बिना कुछ कहे अपनी गुफा में चला गया। रात्रि को उसे स्वप्न देख पड़ा जिसमें किसी ने प्रेरणा की यदि तेरी इच्छा ईश्वर प्राप्ति की है तो तू सचमुच उस भिखारी का अनुकरण कर। इस स्वप्न की प्रेरणा से वह उस भिखारी की खोज में चल दिया। और उसे खोजकर उससे पूछा 'भाई ! तू ने ऐसे कौनसे सत्कर्म किए हैं जिनके कारण ईश्वर तुझ पर इतने अधिक प्रसन्न हैं ?"

उसने तपस्वी साधु को प्रणाम करके कहा 'पवित्र महात्मन ! मुझ से हँसी न कीजिये। मैंने न तो कोई सत्कर्म किया, न कोई तपस्या की और न कभी प्रार्थना की। मैं तो कविता गा गाकर लोगों का मनोरंजन करता हूँ और ऐसा करते जो रूखा सूखा टुकड़ा मिल जाता है, उसी को खाकर सन्तोष मानता हूँ। तपस्वी साधु ने फिर आग्रह पूर्वक पूछा 'नहीं नहीं !! तूने कोई सत्कार्य अवश्य किया है। भिखारी ने नम्रता से कहा 'महाराज। मैंने कोई सत्कार्य किया हो, ऐसा मेरी जान में तो नहीं है।"

इस पर साधु ने उससे फिर पूछा 'अच्छा, बता. तू भिखारी कैसे बना ?'

भिखारी कहने लगा 'महाराज ! एक दिन की बात है। मैंने देखा एक ग़रीब स्त्री घबराई हुई सी इधर उधर दौड़ रही है। उसका चेहरा उतरा हुआ है। पता लगाने पर मालूम हुआ कि उसके पति और पुत्र कर्ज के बदले में गुलाम बनाकर बेच दिए गए हैं। बहुत सुन्दर होने के कारणकुछ लोग उस पर अपना क़ब्जा करना चाहते हैं। यह जानकर मैं उसे ढाढस देकर अपने घर ले आया और उसकी अत्याचार से रक्षा की। फिर मैंने अपनी सारी जायदाद साहूकारों को देकर उसके पति और पुत्रों को गुलामी से छुड़ाया और उन्हें उस स्त्री से मिला दिया। इस प्रकार मेरी सारी सम्पत्ति चली जाने से मैं दरिद्र हो गया और आजीविका का कोई साधन न रहने से मैं अब कविता गा गाकर लोगों को रिझाता हूँ और इसीसे जो टुकड़ा मिल जाता है उसी को लेकर आनन्द मानता हूँ। पर इससे क्या हुआ ? ऐसा काम क्या और लोग नहीं करते ?

भिखारी की कथा सुनते ही तपस्वी साधु की आंखों से मोती जैसे आंसू झड़ने लगे और उस भिखारी को हृदय से लगाकर कहने लगा 'मैंने अपने जीवन में तेरा जैसा कोई काम नहीं किया। तू सचमुच आदर्श साधु है।'

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# महिला-जगत्

( नवम्बर के अङ्क से आगे )

## सन्तान शिक्षण

### माता की पदवी प्राप्त करने वाली कन्याओं के जानने योग्य बातें

( ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक )

पाठ ६

केशव कि मेले मे खो जाने के समाचार से घर में कुहराम मच गया था। सुशीला और दमयन्ती बिलख २ कर रो रही थी। कमला की मा पागल बनी फिरती थी। कभी द्वार पर जाती और कभी छत पर जाती। उसे चैन न थी। कभी चुपचाप खड़ी होकर माथा पीट कर कहती "मैं हत्यारो ऐसा जानती तो मुन्ना को मेले में न ले जाती।"

इसी बीच मे कमला ने घर में प्रवेश किया। उसे देख कर कमला की माँ रोने लगी। कमला ने रोने का कारण पूछा, परन्तु बुढ़िया ने कुछ न कहा। सुशीला ने आकर कहा, 'जीजी !! अम्मा केशव को मेले में ले गई थी। वहाँ केशव खो गया है।' पिता जी सुबह से उसे तलाश करते फिरते हैं। अभी तक तो लौटे नहीं हैं।"

केशव के खो जाने की घटना कमला के लिये मानो कोई बड़ी घटना न थी। उसने अपनी सहज मुस्कान के साथ कहा, 'अम्मा ! कोई चिन्ता मत करो। आपका केशव अच्छी तरह घर आ जायगा।' इस सुखद बात को सुनकर सुशीला बड़ी प्रसन्न हुई और उसने कमला से पूछा, 'क्या जीजी !! आपको केशव का पता लग गया है। मालूम पड़ता है केशव मिल गया है और यह बात आप हम से छिपा रही हैं।'

दमयन्ती ने सुशीला की बात का समर्थन करते हुए कहा, 'शील ! बात तो कुछ ऐसी ही जान पड़ती है।'

इतने मे ही कमला के पिता केशव को गोद में लिए हुए घर आए। सुशीला और दमयन्ती केशव को लेने दौड़ी। कमला की माँ चुपचाप खड़ी रही। उसके मुँह से केवल

मात्र यह निकला, 'परमात्मा ने मेरा मुह उज्ज्वल कर दिया।' कमला को देखकर केशव गोद से उतरा और कमला को चिपट कर रोने लग गया। कमला ने उसे जी भर कर प्यार किया। कमला के पिता ने कमला की पीठ पर हाथ फेर कर और कमला की माँ की ओर इशारा करके कहा, 'हमारी कमला बड़ी चतुर है। इसने केशव के गले म घर का पूरा पता लिख कर काग़ज़ का एक पर्चा लगा दिया था। यदि यह पर्चा न होता तो न मालूम केशव कहाँ होता।"

यह सुन कर सुशीला और दमयन्ती आश्चर्य मे डूब गई और उत्सुकता पूर्वक पिता जी के हाथ मे से कागज का वह पर्चा लेकर पढने लगी।' कमला ने मुस्करा कर कहा—

'पिता जी ! चलो भोजन करलो। आज सब निराहार हैं। मैंने सबको बहुत समझाया और तसल्ली दी पर मेरी किसी ने न सुनी। मुझे विश्वास था आपका केशव सकुशल घर आ जावगा।"

भोजन इत्यादि से निवृत्त होकर सुशीला और दमयन्ती कमला बहिन के पास बैठ गई। दमयन्ती ने कहा, जीजी !! बच्चों की रक्षा और शिक्षादि के सम्बन्ध म हम और बहुत सी बाते जाननी हैं। आप तो बड़ी चतुर हैं ? कृपा करके हमें विस्तार पूर्वक ये सब बातें समझा दो।'

कमला ने कहा, 'आज का पाठ बन्द रहेगा। कल इन बातो की चर्चा करेंगे।'

सुशीला ने कहा, 'दमयन्ती ! कल ही ठीक रहेगा। आज जीजी का मन ठीक नहीं देख पड़ता है। उधर 'केशव' भी उनका पीछा नहीं छोड़ता है। बेचारा सहमा हुआ है। भारी मेलों में जाने से मुझे तो वैसे ही घृणा थी, परन्तु आज तो मैं इन मेलों के बडी खिलाफ हो गई हूं। परमात्मा ने बड़ी कुशल की कि केशव के शरीर पर कोई भूषण न था नहीं तो उसका जीवन भी खतरे मे पड़ जाता।'

दमयन्ती ने कहा, 'जीजी से ऐसी भूल हो जाय, यह असम्भव है। अनियन्त्रित मेले में जाने के मैं भी विरुद्ध हूं।'

दूसरे दिन दोपहर को तीनों बहनें एक स्थान पर बैठ गई। पाठ प्रारम्भ होने से पूर्व दमयन्ती ने कहा, 'जीजी !! आज मैं एक पण्डित जी के व्याख्यान मे गई थी। उसमे उन्होंने एक माता की मूर्खता का बड़ा अच्छा चित्र खींचा था।'

सुशीला ने उत्सुकता से पूछा 'हमें भी सुनाओ' दमयन्ती ने कहा—

'उन पण्डित जी ने बतलाया कि किसी गृहस्थ ने उन्हें आग्रह पूर्वक अपने यहां भोजन के लिये आमन्त्रित किया। जब पण्डित जी भोजन के लिये उनके घर पर पहुँचे तो उनकी माता ने अपने २ बालकों को पण्डित जी को प्रणाम करने के लिये कहा। लड़कों को

यह बात सिखाई नहीं गई थी अतः लड़कों ने प्रणाम न किया । इस पर माता बच्चों पर बड़ी झुँझलाई और उनस जबरदस्ती करने लग गई। परन्तु लड़कों ने प्रणाम न किया। बच्चों के कपड़े बड़े मैले और गन्दे थे। उनके मुँह पर राल और नाक बह रही थी। पंडित जी को माता के उस दुराग्रह पर बड़ा क्रोध आया और उन्होंने कहा कि बच्चों को इस प्रकार सताने से क्या लाभ? आप उन्हें प्रणाम करने के लिये कहती हैं परन्तु उन्हें आपने इतना गन्दा बना रखा है कि देखने को तबियत नहीं करती। इस पर उन बच्चों का पिंड छूटा।

कमला ने कहा माता पिता को इन बातो की ओर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। बच्चो की सफाई के सम्बन्ध मे हम इससे पूर्व के पाठ में पर्याप्त चर्चा कर चुके हैं। बालक बड़े अनुकरण शील होते हैं। उन्हें स्वच्छता का पाठ पढाने के लिये माता पिता इत्यादि को स्वयं सदा स्वच्छ वस्त्र पहनने तथा स्थान स्वच्छ रखना चाहिए। इसके साथ ही स्वच्छ रहने की माता पिता को ताड़ना भी रखनी चाहिये।

जब बच्चे कुछ बड़े हो जायँ और बोलने लग जाय तभी सबस प्रथम उन्हें पिता का नाम घर तथा ग्राम इत्यादि बता देने चाहिए जिससे यदि वे कहीं खो जायँ तो पूछने पर अपना पता बतावें। मैंने एक बालक को देखा वह मेले मे खो गया था। जब उससे पूछा गया कि किसका बेटा है तो उसने कहा 'चाचा' का। जब चाचा का नाम पूछा गया तो चुप हो गया। यदि वह चाचा शब्द के बदले अपने पिता का नाम बता देता तो अवश्य कुछ पता चल जाता, परन्तु उसका कुछ पता न चला।

बहुधा मातायें अपने रोते हुए बालकों को चुप करने अथवा उन्हें दंगे से रोकने के लिये उनके मन में डर उत्पन्न कर देती हे कि सोजा नही लूलू आ जायगा। बाबा जी पर पकड़वा दूंगी। कंजरी झोली में डालकर ले जायगी। इसी प्रकार भूत प्रेत आदि का डर बिठला देती हैं। इस प्रकार का चित्त पर बैठा हुआ भय प्रायः मृत्यु पर्यन्त बच्चों के मन मे बना रहता है। उनके हृदयों में इस प्रकार का भय नही उत्पन्न करना चाहिये। मेरे पड़ोस मे एक पढ़ी लिखी माता थी। उनकी सास उनके बच्चो को प्रायः इसी प्रकार डराया करती थी। माता के मना करने पर भी वे न मानती थी। एक बार उनके एक बच्चे को इतना भय दिखाया गया कि वह इसी भय के कारण मर गया।

बच्चों को केवल ईश्वर का भय दिलाना चाहिये, उन्हें समझाना चाहिए, कि वह सब स्थानों पर हमारे अच्छे और बुरे कर्मों को देखता तथा पापी को दण्ड देता है। हम अपना कोई कर्म उससे छुपा नहीं सकते। वह हर समय और हर स्थान पर हमारी रक्षा करता है।

सन्तान के नाम श्रेष्ठ और सार्थक रखने चाहिए। जिससे बड़े होने पर अपने नाम

पर उन्हें लज्जित न होना पड़े। नाम का प्रभाव मनुष्य के जीवन पर बहुत पड़ता है। बच्चों को अपने नाम को सार्थक करने की प्रेरणा माता पिता तथा गुरुजनों की ओर से मिलनी चाहिए। मेरा विचार सार्थक और श्रेष्ठ नामों की एक पुस्तक तैयार करने का है जिससे माता पिता अपने बच्चो का नाम रखने में उससे सहायता ले सकें।

माता पिता को अपनी सन्तानों का पालन पोषण इस रीति से करना चाहिए कि उनसे व्यवहार में कोई भेद भाव न हो। सबको समान दृष्टि से देखकर लालन पालन होना चाहिये पुत्र और पुत्रियों के पालन में विशेष सावधानता वर्तनी चाहिए। जो माता पिता ये भाव रखते हैं उनके इस व्यवहार से सन्तानों में प्रेम और सौहार्द का अभाव हो जाता है और इसके बड़े भयंकर फल दृष्टिगोचर होते हैं।

बच्चों को दण्ड देने की क्रिया माता पिताओं को सीखनी चाहिए। यों ही अन्धाधुन्ध ढग से बच्चों का ताड़ना करने या दण्ड देने से लाभ के बदले हानि हो जाती है और बच्चे सुधरने के स्थान में बिगड़ जाते हैं। अत. दण्ड देने में बड़ी सावधानता बर्तने की आवश्यकता होती है, सबसे पहले माता पिता को यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि निरपराध बच्चे को दण्ड न दिया जाय और अपराधी बच्चा दण्ड से बच न जाय। जो मातापिता इसके विपरीत आचरण करके निरपराधी बच्चे को दण्डित करते और अपराधी को छोड़ देते हैं वे अपने बच्चों मे स्वत: ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करने का कारण बनते हैं।

बच्चे को दण्ड देने के भी कई प्रकार हैं। सबसे पहले माता-पिता को प्रेम और क्षमा से काम लेना चाहिये। यदि बच्चे से पहली बार कोई अपराध हो जाय तो उन्हे प्रेम पूर्वक समझाना चाहिए। यदि दूसरी तीसरी बार अपराध हो जाय तो अपराध के अनुसार दण्ड देना चाहिए। बच्चों को उसकी मन चाही वस्तुऍ कुछ समय के लिए बन्द कर देनी चाहिए और उन्हें करना चाहिये कि यदि आगे अपराध नहीं करोगे तो वह वस्तु मिलेगी अन्यथा नहीं। एक प्रकार यह हो सकता है कि अपराधी बच्चे के सामने निरपराधी बच्चों की प्रशंसा और उसकी निंदा करके उसे उसके अपराध का दण्ड देना चाहिए। एक प्रकार यह भी हो सकता है कि जो अपराध बच्चा करे अर्थात् यदि वह कूड़ा कर्कट करे या घर बार बिगाड़े और समझाए से न माने तो उससे कूड़ा कर्कट उठवाए और घर साफ कराए। इस प्रकार उस अपराध का दण्ड उसे अनायास मिल जाता है। यदि कोई बच्चा माता पिता का कहना न माने या तो उसका खाना बन्द कर दिया जाय, या उसे ताड़ना की जाय, परन्तु यदि बालक बार बार वही अपराध करे तो एक बार ही अच्छी ताड़ना दे दी जाय जिससे वह उसे याद रहे। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि बड़े बच्चों को बार बार कठोर ताड़ना देना अच्छा नहीं।

इससे बालक ढीठ और निडर होकर निर्लज्ज हो जाता है। बच्चो को सबके सामने फटकारना वा झिझकारना न चाहिए। जब बच्चा क्रोध म हो तब उससे क्रोध से नहा बोलना चाहिए उसके क्रोध को कोई खेल इत्यादि की वस्तु देकर शान्त कर देना चाहिए। क्रोध के समय ताड़ना का भी बच्चे पर कोई प्रभाव नहीं होता किन्तु चुप रहने से बच्चे को पर्याप्त ताडना हो जाती है। जब क्रोध शात हो जाय तब एकान्त म शिक्षा के लिए उसे ताडना दे। प्यार से काम लेकर उसे उत्साहित करना चाहिए। सक्षेप में बच्चे मे माता पिता की आखों का भय उत्पन्न करना चाहिए। मार पीट वा छडी बेंत का नहा। जहा तक हो सके बच्चों में ऐसी भावना विकसित करनी चाहिए कि वे माता पिता क सामने अपनी बात बिना डर व भय से कह देवें। शारीरिक दण्ड जहा तक बन पडे नहा देना चाहिए। दण्ड मे यह देखना चाहिए कि बच्चे का शारीरिक और मानसिक विकास कुठित न हो।

दमयन्ती ने कमला की ये सब बातें सुनकर कहा—जीजी! दण्ड के सम्बन्ध म हमने एक कहानी पढी है। आपकी बात उस कहानी से बिल्कुल सत्य सिद्ध होती हैं।

कमला ने प्रसन्न होकर कहा 'दमयन्ती! मुझ भी अपनी कहानी सुनाओ।'

दमयन्ती ने कहा 'जीजी! एक बार एक राजा के सामने तीन अपराधी प्रस्तुत किए गए। उस राजा ने दो अपराधियां को तो १०, १० बेत लगवा कर बाहर निकाल दिया परन्तु तीसरे अपराधी को जिसका अपराध उनकी अपेक्षा बडा था, मारा-पीटा नहा वरन् उसे बहुत बुरा भला कहकर बाहर निकलवा दिया।' जब तीनो अपराधी राज महल के बाहर चले गए तो राजा के मन्त्री ने राजा से कहा 'महाराज! जिन अपराधियों का अपराध साधारण था उन्हें तो आपने बेंतो से पिटवाया। परन्तु जिस का अपराध बहुत बडा था उसे आपने कुछ भी दण्ड न देकर केवल बुरा भला कहकर बाहर निकाल दिया। आपकी यह दण्ड व्यवस्था मेरी समझ मे नहीं आई।' इस पर राजा ने उत्तर दिया 'मन्त्री जी! मेरी दण्ड व्यवस्था उचित थी वा अनुचित इसका पता आपको थोड़ी देर मे ही लग जायगा। मैंने अपराधियों को उचित ही दण्ड दिया है।' राजा के इस कथन से मन्त्री को सन्तोष न हुआ और वह अपनी जगह पर बैठ गया। इसी बीच म एक राजकर्मचारी दौड़ता हुआ राजमहल में आया और राजा के सामने हाथ जोड़कर कहा 'महाराज! आपने जिन ३ अपराधियो को दण्ड दिया था उनमे से एक जिसे आपने बुरा भला कहा था, आत्म हत्या करके हमारे सामने मर गया है। यदि श्रीमान् चाहे तो अपनी आँखों से देख सकते हैं। 'राजा ने प्रसन्न भाव में कहा मन्त्री जी को ले जाओ।' राजा के इस वाक्य को सुनकर मन्त्री हाथ जोड़कर बोला, 'महाराज आपकी दण्ड व्यवस्था ठीक थी,

यह बात अब मेरी समझ मे आ गई है। आपने तीनों अपराधियों को उनकी मानसिक अवस्था को दृष्टि मे रखकर ही दण्ड दिया था।'

कमला ने कहा 'दमयन्ती ! तुम मेरी बात को भली भाति समझ गई हो। दण्ड के सम्बन्ध में अब और कुछ कहने की जरूरत नहा रही है।'

'बच्चो की सबसे मुख्य शिक्षा इसी बात की है कि उनमे आज्ञा पालन की आदत पड़ जाय। जिस बालक ने यह बात सीख ली, मानो उसने ससार की सब बातें सीख ली। अच्छी माताएँ आज्ञा पालन की आदत अपने बच्चो म डालने की विशेष चिन्ता रखती हैं। एक बार नैपोलियन अपने भाइयों के साथ अपने चचा क कमरे म खेल रहा था। उनके चचा घर म अकेले थे। उनके पास धन भी पर्य्याप्त था, परन्तु वे बड़े कृपण थ। अपने भतीजो को जो अपनी विधवा मा के आश्रय मे पल रहे थे और निर्धन थे, मागने पर भी व एक फूटी कौड़ी न देते थे और सदैव ग़रीबी का मिस करके बच्चो को टाल दिया करते थे। उस दिन नैपोलियन के भाइयों ने उनकी अलमारी से रुपयो का थैली निकाल ली। इस पर उनके चचा बडे लज्जित हुए और बच्चो से थैली छीनने लग गये। बच्च थैली देते न थ। अकस्मात् वहा नैपोलियन की माता देवी लाटेशिया आ गई। उसने देखा कि बच्चो और उनके चचा मे थैली के लिये छीना झपटी हो रही है। उसने तत्काल बच्चा को थैली देने के लिए आज्ञा दी। इधर मा के मुँह से आज्ञा निकला और उधर थैली अल्मारी म पहुँच गई। बच्चा के आज्ञापालन के इस भाव से उनके चचा बड़े प्रभावित हुए और बच्चे तथा देवी लाटेशिया की भूरि २ प्रशसा करने लग गए। रामायण मे तुम लोगा ने भरत और श्री रामचन्द्र जी की आज्ञापालन की श्रेष्ठ कथाएँ पढी और सुनी होगी।

बच्चों की शिक्षा और लालन-पालन मे माता को यह बात ध्यान म रखनी चाहिए कि 'यथा समय प्यार दुलार और यथा समय दुतकार फटकार' इससे बालक आज्ञाकारी हो जाते हैं। चतुर माताओं को तो अपने बच्चों को ताड़ना करने की आवश्यकता भी नहा होती। वे बातों ही बातो मे बालक को शिक्षा दे देती हैं। जब बालक दगा करने लगते हैं तो सबको अलग २ करके खेल मे लगा कर उनका दगा मिटा देती है। बीच २ म आप भी उनके खेल को देखती रहती है और थोडी देर पीछे उनसे खेल समाप्त करा देती है। यदि बालकों की इच्छा खेल समाप्त करने की नहा देखती तो उनकी प्रार्थना पर थोड़ी देर की आज्ञा और दे देती है। बालक अपनी इच्छा पूरी होते देख कर प्रसन्न हो जाते और फिर स्वय ही खेल समाप्त करके माता के पास आ जाते हैं। उस समय माता उनके इस आज्ञा पालन की प्रशसा करती और अपनी प्रसन्नता प्रकट करती है। जब बालक किसी वस्तु के लिए मचलते

हैं और माता का कहना नहीं मानते तो वह वस्तु उन्हें नही देती और इस ढग से मना करती है कि उसकी आज्ञा का भग करने की बच्चों को हिम्मत नही होती।

वह बालकों के सामने कोई बुरी बात नही कहती और न कोई बुरा शब्द मुँह से निकालती है। न गाली देती है न बकती है न मुँह चढ़ाती है। उसे भय होता है उसकी देखादेख बच्चे भी वैसा न करने लग जायें।

'जब से बालक बोलने लगे तभी से उनके साथ मधुर वचन बोले जायें। सदैव आदर सूचक शब्दों मे उन्हें बुलाना वा शिक्षा देनी चाहिए।

'बालको मे यह भी टेव डालनी चाहिए कि वे वस्तुओं को आपस में बाटकर खायें। उन्हे हाट बाजार में न खाने दें वरन् घर लाकर ही खाने का स्वभाव डालना चाहिए।

'बालको के सामने किसी से हँसी मजाक नही करना चाहिए और न बालको से करना चाहिए। नही तो उनमें भी यह आदत घर कर जायगी। अपनी बुराई भी बालको के सामने न करनी चाहिए नहीं तो उनमें माता पिता के प्रति आदर का भाव कम हो जायगा। अच्छी बात कहने मे कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

'बालकों की छोटेपन से ही प्रणाम, नमस्ते इत्यादि की आदत सिखानी चाहिए। प्रात: काल उठते ही वे गुरुजनो को प्रणाम करें रात्रि को सोते समय भी प्रणाम करके सोयें। जब कोई बड़ा आदमी घर आए वा जाए तो उसे भी प्रणामादि करें। जब दूसरा के घर जाएँ तो दङ्गा न करें। जो बालक अपने घर आये उनसे न लड़े वरन् प्यार से बोलें और खेलें। जहा दो मनुष्य बातें कर रहे हो वहा न जायें यदि जायें तो चुपके बैठे रहें।

बच्चो को इधर उधर निरुद्देश्य आवारा नही फिरने देना चाहिए। खेलने के समय खिलाना चाहिए परन्तु नियत समय पर तमाम दिन नहीं। बच्चों को सभ्यता पूर्वक बैठकर बातें सुनने वा देखनें का अभ्यास भी कराना चाहिए। माता पिता को देखना चाहिए कि आठ वर्ष की अवस्था के पश्चात् लड़कियों को लड़कों मे खेलने न दिया जाय और बड़ी लड़कियो को एक चारपाई पर सोनें नहीं देना चाहिए। बच्चो मे प्रारम्भ से ही ऐसी आदत डालनी चाहियें कि वे गुरुजनों और बड़े बूढ़ों की मान मर्यादा का ध्यान रखें। अपने से अधिक आयु वाले का कभी निरादर न करें वरन् सदैव उनका मान करें। किसी को कुरूप, लँगड़ा, लूला व अंगहीन देख कर हँसे नहीं वरन दुखी को देखकर दुखी हो और उनके साथ सहानुभूति का व्यवहार करें।

इतना कह कर कमला ने कहा, 'हमारा आज का पाठ बहुत लम्बा हो गया है परन्तु ?

बच्चों की शिक्षा का विषय इतना विस्तृत है कि इस पर जितना कहा जाय कम है। अब मैं तुम लोगों से पूछती हूं कि इस पाठ से तुमने क्या बात सीखी है?'

सुशीला ने उत्साह से कहा, 'जीजी !! बच्चो की शिक्षा के सम्बन्ध मे हमने आज बहुत सी बाते सीख ली हैं ? यदि ये बातें क्रिया मे आ जायें तो हमारी सन्तानों के श्रेष्ठ बनने मे कोई सन्देह न हो। परन्तु इन बातोंको जानते और समझते हुए भी इनका पालन नही होता ? इसका कारण हमारी समझ मे नही आया ?

कमला ने कहा, 'शील ! तुमने यह बहुत अच्छी बात उठाई है। इसका मुख्य कारण यह है कि हमारे मन कुसंस्कारों मे फँस गए हैं कि हम अच्छे मार्ग को जानते हुए भी बुरे मार्ग पर चल रहे हैं। हमारा चारों ओर का वातावरण जिसमे हम रहते हैं बहुत दूषित हो गया है और इसके कारण अच्छे संस्कार दब से रहे हैं। चतुर माता पिता अपने बच्चो को अच्छे वातावरण में रखने का यत्न करते और उन्हें उसी में घूमने फिरने देते हैं। परन्तु वे बालक धन्य हैं !! वे माता पिता धन्य हैं !! जिनमे स्वाभाविक पवित्रता और उसके कारण अच्छे रास्ते पर रहने की दृढता होती है। वे बच्चे कितने ही बुरे वातावरण मे क्यो न रहे उन पर कुसंगति का प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु सब ही बच्चे इस प्रकार के नहीं होते, अत: हमें पूरी २ सावधानता करनी पड़ती है। संसार के महापुरुषों का जीवन प्राय: इसी स्वाभाविक पवित्रता से बनता है, परन्तु इसके लिए माता-पिता को बड़ा त्यागी, संयमी और शुद्धाचारी बनना पड़ता है।

अब तुम जाओ और अपना काम देखो।

---

# साहित्य समीक्षा

## "गीता परिशीलन"

---

ले०—विद्याभास्कर—श्री रामावतार शास्त्री वेदान्त तीर्थ मीमांसा रत्न प्रकाशक "तत्व ज्ञान मन्दिर" अमलनेर जिला पूर्व खान देश पृष्ठ लगभग ४८२ मूल्य ३॥)

यद्यपि भगवद् गीता पर अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैत तथा शैववाद की दृष्टि से अनेकों भाष्य हो चुके हैं तथापि प्रतीत होता है कि अभी विद्वान् विचारक उस विषय पर अपने विचार प्रकट करने से थके नहीं हैं। श्री रामावतार शास्त्री जी ने 'गीतापरिशीलन' नाम से एक नवीन विचार सरणी को जनता के सामने रखने का प्रयत्न किया है। प्रकाशको के शब्दों में यह "भगवद् गीता के अद्वैत सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप में जनता के समक्ष रखने वाला, गीता के प्रचलित भाष्यों से प्रायः प्रत्येक श्लोक में महत्वपूर्ण नवीनता रखने वाला, ज्ञान मार्ग तथा कर्मयोग मार्ग को अभिन्न बताने वाला, कर्म हीन ज्ञान मार्ग को अस्वीकार करने वाला, भक्ति तथा ज्ञान की एकता को स्वीकार करने वाला, सत्य को गीतानुसार प्रवाहित न करके गीता को सत्यानुकूल प्रवाहित करने वाला, सत्य, ईश्वर, सुख, अद्वैत, पुनर्जन्म, कर्मफल, मुक्ति, योग, ज्ञान, भक्ति, यज्ञ, अनासक्ति, संन्यास, अवतार, विश्व, वर्णव्यवस्था, शास्त्र आदि विषयों पर संसार के समक्ष नवीन विचार रीति लाने वाला अपने ढंग का सुचिन्तित नवीन भाष्य है।"

कोई भी विचारशील पाठक इस बात से इन्कार नहीं कर सकता कि इस पुस्तक में उपर्युक्त प्रायः सभी विषयों में अत्यन्त नवीन विचारों को ( जिन्हें विचित्र का नाम दिया जाए तो भी अनुचित न होगा ) प्रकट किया गया है। उदाहरणार्थ पृ० ३५४ पर विद्वान् लेखक कहते है "जिस समय मनुष्य इस अपनी फलाशा नाम की भ्रान्ति को पहचानेगा उस समय उसे जो भ्रान्ति शून्य स्थिति दीखेगी वही मनुष्य का आराध्य सच्चा ईश्वर होगा।" पृ० ३३८ पर वे लिखते हैं "अनासक्ति ही गीता के ईश्वर का स्वरूप है। उसके कथनानुसार मनुष्य को सम्पूर्ण जगत् के उत्पादन, रक्षा तथा विनाश करने वाले किसी सर्व व्यापी ईश्वर को बाह्य जगत् में से ढूँढने का वृथा प्रयत्न नहीं करना पड़ता किन्तु अपने मन को शान्त

और सुखी बनाने वाले अनासक्ति रूपी सर्व ईश्वर का दर्शन अपने ही मन में करना होता है।" "गीता के वर्णनानुसार मन की इन्द्रियातीत अर्थात् इन्द्रियों के बन्धन से मुक्त रहनेवाली त्रिगुणातीत अवस्था ही ईश्वर है।" पृष्ठ ३५६

"श्रीमद्भगवद्गीता के पारिभाषिक शब्दों का कोष" पृष्ठ ४६६ पर "ईश्वर" शब्द के निम्न दो अर्थ दिये हैं।

(१) मनुष्य को शक्तिमान् रखने वाली अनासक्ति नाम की मानसिक अवस्था।

(२) विषय सुख बाटने वाली अज्ञानियों की कल्पित सत्ता।

इन प्रकरणों को पढ़ने पर पाठको को ऐसा प्रतीत होता है कि योग्य लेखक के विचारानुसार भगवद्गीता जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के कारण भूत सर्व व्यापक, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करती। किन्तु—

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके, सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥ १३ । १३
बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च।
सूक्ष्मत्वात् तदविज्ञेयं, दूरस्थ चान्तिके च तत् ॥ १३।१५
अविभक्तं च भूतेषु, विभक्तमिव च स्थितम्।
भूतभर्तृ च तज्ज्ञेयं, ग्रसिष्णु प्रभविष्णु च ॥ १३ । १६

इत्यादि सैकड़ों ब्रह्म स्वरूप प्रतिपादक श्लोकों के गीता मे होते हुए जिनमे ईश्वर को जगत् का कर्ता तथा धारक बताया गया है इस प्रकार की स्थापना कैसे की जा सकती है। यही प्रश्न है।

पृष्ठ ३७६ पर योग्य लेखक कहते हैं "अपने अधिकार से बाहर निकल कर मृत्यु के अनन्तर जहाँ मनुष्य का लेशमात्र भी अधिकार नहीं है वहाँ किसी अवस्था को पाने की इच्छा करना मनुष्य का अज्ञान है। इस अज्ञान ने ही 'पुनर्जन्मवाद' या शरीरात होने पर मिलने वाली किसी मुक्ति नामक अलौकिक अवस्था की कल्पना कराई है।"

पृष्ठ ३७३ पर श्री पण्डित रामावतार जी लिखते हैं, "वर्तमान मे शरीर के विद्यमान होने से अपने को बड़ा मानना तथा शरीर रहित मुक्ति की कल्पना करना भ्रान्ति है।"

पृष्ठ ३७७ में श्री पण्डित जी लिखते हैं, "अपने जीवन काल से बाहर के विषय में बातें कहना और ऐसी बातो पर विश्वास करना, मिथ्या प्रलाप करना और मिथ्या जाल मे फँस जाना है। मनुष्य का कर्त्तव्य केवल जीवन काल से सम्बन्ध रखता है। इस सीमा से बाहर के लिए जो कोई जो कुछ सोचता है सब कर्त्तव्य भ्रष्टता है सब मानव जीवन के लक्ष्य से

पतित होना है। ऐसी बातें मनुष्य को कर्तव्य से हटाने वाली और अकर्तव्य या अज्ञान में फँसाने वाली हैं।"

यदि श्री पण्डित रामावतार जी का तात्पर्य यह है कि मनुष्य क्रियात्मक जीवन को उच्च बनाने की ओर अधिक ध्यान दे तो वह बात ठीक है किन्तु उपर्युक्त रीति से जिस प्रकार के शब्दो में उसे प्रकट किया गया है मेरे विचार मे वे भ्रम जनक हैं। उनसे साधारण पाठकों पर ऐसा प्रभाव होता है कि मानो पुनर्जन्मवाद गीतादि सम्मत नहीं। और वह मनुष्य को कर्तव्य-मार्ग से पतित करने वाला है। "बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन।" ( गीता ४। ५ ) प्रयत्नाद् यतमानस्तु योगी संशुद्धकिल्बिषः। अनेक जन्मसंसिद्धस्ततो याति परां गतिम्॥ ( ६। ५ ) इत्यादि अनेक श्लोको में गीता पुनर्जन्मवाद का स्पष्ट शब्दों मे प्रतिपादन करती है। मरणान्तर मुक्ति का भी उसमें स्पष्ट प्रतिपादन है।

गीता परिशीलन परिशिष्ट ८ वें प्रकरण में 'कर्मानुसार देह प्राप्ति' का शीर्षक देकर विद्वान् लेखक कहते हैं, भोगासक्ति ही कर्मानुसार जन्म होने की कल्पना का आधार है। यह मन्तव्य गीता को मान्य नहीं है। गीता कहती है कि कर्मफलानुसार नाना प्रकार के जन्म होने की बात उन भोगासक्त अज्ञानी मनुष्यों की घड़ी हुई है जिनके पास व्यवसायात्मिका बुद्धि नहीं है।······गीता में कहीं भी इस सिद्धान्त का समर्थन नहीं कि शुभाशुभ जन्म किन्हीं शुभाशुभ कर्मों के फल के रूप में प्राप्त होते हैं।

गीता ने जान बूझकर इन सब प्रचलित कुविश्वासो की उपेक्षा की है और केवल मनुष्य की ज्ञानमयी स्थिति का वर्णन किया है जैसा कि ऊपर संक्षेप में दिखाया गया है गीता में पुनर्जन्म और अनेक जन्म सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन है। गीता के छठे अध्याय के अन्तिम ( ४० से ४७ तक ) श्लोक इस विषय में स्पष्ट हैं जिनमें योग भ्रष्ट के योगियों के कुल में उत्पन्न होकर उन्नति करने का उल्लेख है। १४ वें अध्याय के

'यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु, प्रलयं याति देहभृत्।
तदोत्तमविदां लोकान्, अमलान् प्रतिपद्यते ॥१४॥
रजसि प्रलयं गत्वा, कर्मसङ्गिषु जायते।
तथा प्रलीनस्तमसि, मूढयोनिषु जायते ॥१५॥

इत्यादि श्लोक कर्मानुसार उत्तम मध्यम वा अधम योनियों में जन्म का स्पष्ट प्रतिपादन करते हैं। श्री पं० रामावतार जी ने गीता के २ य अध्याय के जिन श्लोकों की ओर निर्देश किया है उनमें कर्म फल में आसक्ति की निन्दा की गई है न कि कर्म फल सिद्धान्त से इन्कार किया गया है यह उस प्रकरण को देखने से स्पष्ट ज्ञात होता है।

एक विचित्र और आश्चर्य जनक बात यह है कि 'गीता परिशीलन' के सुयोग्य लेखक महोदय ने जो अनेक स्थापनाएँ की हैं उन में से बहुतों को गीतादि के प्रमाण देकर पुष्ट करनेका प्रयत्न बहुत कम किया है इससे सर्वसाधारण ही नहीं विद्वानो के लिए भी उन विषयो पर प्रमाण पूर्वक विचार करना ज़रा कठिन हो जाता है। अनासक्ति पर योग्य लेखक ने विशेष बल दिया है जो निस्सन्देह गीता का मुख्य सिद्धान्त है। इस प्रकार योग्य लेखक के अनेक विचारों से न सहमत होते हुए भी हम उनके परिश्रम की तथा नवीन विचार सरणी और स्वतन्त्र विचारकता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते। अगले संस्करण में यदि योग्य ग्रन्थकार अपनी स्थापनाओ को गीतादि के प्रमाण उद्धृत करके पुष्ट करने का प्रयत्न करेंगे तो विद्वानो कों उन पर विचार करने में अधिक सुगमता होगी। आशा है विद्वन्मण्डली इस ग्रन्थ में प्रकाशित नवीन विचारों पर निष्पक्ष रूप से विचार करेगी और 'गीता' पर विस्तृत साहित्य में नवीन वृद्धि का अभिनन्दन करेगी।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

---

# आर्य्य समाज की चिनगारियां

## ( १ )

## स्वर्गीय श्री राजपाल जी शहीद

श्री राजपाल जी का जन्म-स्थान अमृतसर है। आपका बाल्य-काल वहा ही व्यतीत हुआ। आप पढ़ाई समाप्त करके जब कार्य-क्षेत्र में आये तो आप महाशय कृष्ण जी का जो प्रकाश नाम का समाचार पत्र है उसके मैनेजर बने। कार्य काल में दोनों का सम्बन्ध इस प्रकार का हो गया कि आप व्यवहार में भ्राता से बन गए।

प्रकाश का कार्य करते करते आपके चित्त में विचार आया कि आर्यसमाज के साहित्य प्रचार के लिये तथा आय वृद्धि के लिये पुस्तकालय खोलना चाहिये। तब आपने सरस्वती पुस्तकालय खोला। पश्चात् मास्टर लक्ष्मण जी रामनगरी ने अपना आर्य नाम का पुस्तकालय गुरुकुल को देदिया। तब महात्मा मुन्शीराम जी ने वह पुस्तकालय श्री राजपाल जी को सौंप दिया तबसे उसका नाम आर्य पुस्तकालय भी सम्मिलित हो गया।

आपने अनेक पुस्तकें छपवाईं उन पुस्तको में एक लघु पुस्तक छपवाई जिसका नाम रंगीला रसूल था इस पुस्तक पर लेखक का नाम न था और उस पुस्तक के लेखक को आर्यसमाज में भी बहुत कम व्यक्ति जानते हैं।

सरकार के रिपोर्ट विभाग ने उस पुस्तक को आपत्ति जनक नहीं समझा अत: उस पर कोई रिपोर्ट न की गई। परन्तु महात्मा गाधी जी को वह लघु पुस्तक रुचि कर न हुई उन्हों ने अपने नव-जीवन पत्र में उसके विरुद्ध लिखा। उनके लेख के पश्चात् सरकार ने उसे जप्त कर लिया और मुसलमानों में आन्दोलन खड़ा होगया और श्री राजपाल जी पर अभियोग चलाया गया।

अभियोग के समय भी मुसलमान आन्दोलन करते रहे और प्रथम न्यायालय में आपको ६ मास की कैद हो गई और हाईकोर्ट में अपील की गई अपील मे आप बरी हो गए।

न्यायालय में भी उनसे लेखक का नाम पूछा गया आपने उत्तर दिया जब पुस्तक प्रकाशन के समय मैंने उसपर नाम नहीं लिखा तो मेरा कर्तव्य है मैं अब भी नाम न बताऊँ। और आप ने नाम नहीं बताया।

उनके अभियोग से छूटने और नाम न बताने पर मुसलमानो के कोप का भाजन आप

ही बने, आप पर प्रथम खुदाबख्श ने आक्रमण किया दैवयोग से उस समय श्री स्वामी वेदानन्द तीर्थ जी और लेखक वहा थे उस आक्रमण मे आप बच गए।

उसके लगभग १ वर्ष पश्चात् आप पर दूसरा आक्रमण इल्मदीन ने किया, जिस मे आप शहीद होगए।

इस घटना से मै केवल यह दिखाना चाहता हूं कि श्री राजपाल जी ने अपनी जान देना अच्छा समझा परतु उस पुस्तक के लेखक का नाम कही न बताया जैसे पजाबी कविने कहा हैं,

'वारसशाह न भेद सन्दूक खुले भावे जानदा जिन्दयें दुरजाय' आपने जान दी पर भेद न खोला।

इस हत्या मे महात्मा गाधीजी भी कारण है वह चाहे अजान पन से हो चाहे जान कर हो।

यही बात एक बार महामना मालवीय जी को बताई गई आपने उस समय कहा था ऐसे व्यक्तियो पर आर्यसमाज जितना अभिमान करे थोड़ा है, जो व्यक्ति भेद न बता कर जान देता है वह महात्मा है।

जो सज्जन बिना प्रयोजन, बिना पूछे, एक की बात दूसरे को बताते फिरते ह उनको इस महात्मा के चरित्र से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

( २ )

## सरदार हरीसिंह जी आर्य

सरदार हरीसिंह जी का जन्म ग्राम भैणी रोड़ा जिला लुध्याना मे हुआ था। बाल्यावस्था मे आपने गुरमुखी पढी और पखोवाल के प्राइमरी स्कूल मे थोड़ा उर्दू पढा फिर आप अपने कृषि कार्य्य मे लग गए।

एक पण्डित नारायण दास जी बड्डदी निवासी ने भैणी रोड़ा मे भागवत् की कथा आरंभ की उस कथा के श्रोतायो मे सरदार हरीसिंह जी भी थे। आपने उनसे आर्य भाषा (हिन्दी) की वर्णमाला सीखी और एक दिन प्रार्थना की कि महाराज आप गायत्री पाठ की महिमा वर्णन करते हैं यदि मुझे गायत्री मन्त्र सिखादे तो बड़ी कृपा होगी। मैं इसका पाठ ( जप ) किया करूंगा।

पण्डित जी ने उत्तर दिया आप शूद्र हैं ( आप जाट थे ) आपको गायत्री मन्त्र सिखाना पाप है। आपको दुःख तो हुआ परन्तु उपाय कोई न था। एक दिन आप रायकोट किसी कार्य वश गए वहा बाजार मे आर्य समाजी उपदेशक उपदेश कर रहा था आप भी वहाँ खड़े हो गए। लोग उसको नास्तिक कहते थे। इनको वहा से चले जाने की प्रेरणा करते थे।

उपदेश की समाप्ति पर आपने उससे कहा "महाराज! मैं नट हूं और गायत्री सीखना चाहता हूं।" वह साथ ले गए और इनको संध्या की पुस्तक देकर उसमें से गायत्री बता दी। आपने उसे कण्ठस्थ किया।

अब कुछ संस्कृत पढ़ने की अभिलाषा हुई, तब गृह कार्य करके प्रति दिन रायकोट जाने लगे जो चार कोस की दूरी पर था और संस्कृत पढ़ी।

आपने अपने ग्राम और समीप वर्ती ग्रामो में आर्य समाज का प्रचार किया। आर्य समाजी होने से आपका आचार इतना शुद्ध होगया जिस से प्रत्येक पुरुष उनका विश्वास करता था। वह कभी झूठ न बोलते थे, सर्वदा परोपकार में यत्न शील रहते थे। एक बार ग्राम में कुछ विवाद हो गया और उसके निर्णय के लिए थानेदार ग्राम में आया, वह थानेदार भी घूसादि दोषो से रहित था। उसने आकर लोगो से पूछा और वादि प्रतिवादि के साक्षियो सहित बियान लिखे। इतना करने पर भी वह किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँचा। कि ठीक २ क्या बात है। वह चिन्ता में निमग्न था। उसने ग्राम वासियो से पूछा आपके ग्राम में कोई ऐसा व्यक्ति है जिसे लोग सत्य वक्ता समझते हैं। सब ने कहा कि इस समय ऐसा हरिसिंह आर्य है। उसने इनके पास चौकीदार भेजा परन्तु हरिसिंह जी ने उसे कह दिया मेरा वहाँ कोई काम प्रतीत नही होता अतः क्षमा करें।

तब थानेदार ने फिर आदमी को भेजा और कहा कि मैं आप से मिलना चाहता हूं तब आप वहाँ आ गए जहाँ थानेदार ठहरा था।

थानेदार ने कुछ वार्तालाप के पश्चात् कहा इस अभियोग के विषय में आप कुछ बतायें 'हरिसिंह जी ने कहा, यह मेरा काम नहीं है।' बल देने पर आपने कहा "मेरे कहने का आपको क्या लाभ क्योकि आपकी फायल पर जो है वह करना है।" थानेदार ने कहा "नहीं आप जो कुछ कहेंगे मुझे विश्वास है वह सत्य होगा और मैं वैसा ही करूँगा।" तब आपने कहा वादि, प्रति वादि को बुला लो, जब वह आ गए आपने उनसे कहा देखो भाई मैं न तो आपका गवाह हूं न और कुछ हूं फिर आप इस विषय में मुझे क्यो डालते हैं। यदि आप चाहते हैं कि मैं कुछ बताऊँ तो बताने से पहले मैं आपसे पूछता हूं यदि आप मेरे कहने पर अमल करें तब तो मैं कह देता हूं अन्यथा मुझे जाने दे।

अन्त में वह दोनों कहने लगे आप ग्राम में रहते हैं सब कुछ जानते हैं अब हम कुछ न करके आपके सामने हैं आप जो कहेंगे हम वही करेंगे। तब उन्होने जो कुछ कहा उसे दोनों ने स्वीकार किया और थानेदार प्रसन्नता से वही निर्णय लिख कर ले गया।

उसके पीछे भी जिस व्यक्ति ने सरकारी न्यायालय की शरण न लेनी हो वह उनके पास जाकर निर्णय प्राप्त करते थे।

अब उनका भतीजा सरदार सम्पूर्ण सिंह है जो आर्य समाज का काम करता है।

उनके सत्य वक्ता पन की समीपवर्ती ग्रामो में जहा चर्चा थी वहाँ निरभिमान, निष्पक्षता की भी धाक थी आप अपने ग्राम में अन्य समय में कन्याओं को अपने गृह पर पढ़ाया करते थे क्योंकि ग्राम में स्त्री शिक्षा का प्रचार न था। —स्वतन्त्रानन्द

## दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचारक-सम्मेलन, मद्रास के
### ग्यारहवें अधिवेशन के सभापति
# पं० रामनारायण मिश्र (काशी) का अभिभाषण

---

हिन्दी-प्रेमी बहनो और भाइयो,

मुझे आपकी आज्ञा काशी में मिली और मैं आपकी सेवा के लिये यहां मद्रास में उपस्थित हूँ। मैं अब तक यह न जान सका कि मैं इस सम्मान के लिये क्यों चुना गया। मैं न तो सुलेखक हूँ न सुवक्ता, न नेता हूँ, न महारथी। हां, संभव है कि आपने मेरे द्वारा काशी-नागरी प्रचारिणी सभा का इसी प्रकार आदर करना उचित समझा हो, क्योंकि 'सभा' से मेरा घनिष्ठ संबंध है और उसी के नाते मैंने काशी में आपके यात्री-मंडल का संवत् १९९० (सन् १९३४) में स्वागत किया था जो आपका संदेश लेकर उत्तर भारत गया था। हिन्दी भाषा की प्रगति के इतिहास का हम उसे एक भावोत्पादक अध्याय समझते हैं। हमने तो वह दिन भी देखा था जब हमारे ही संयुक्त प्रदेश में, जहां के निवासियों की मातृभाषा हिन्दी है, लोग अपनी भाषा से इतने उदासीन थे कि विदेशी भाषा को सीखना और उसे शिक्षा का माध्यम बनाना गौरव की बात समझते थे। उन दिनों हम विदेशी भाषा अँगरेज़ी बोलने का अभ्यास करते थे और विदेशी लिपि फारसी के प्रयोग से ही अपना लाभ समझते थे। ऐसे ही समय संवत् १९५० (सन् १८९३) में, ४७ वर्ष हुए, नागरी प्रचारिणी सभा काशी का जन्म हुआ। सभा ने हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को संवत् १९६७ (सन् १९१०) में जन्म दिया। उस समय तक सभा ने केवल १७ वर्ष तक हिंदी-प्रचार के क्षेत्र में काम किया था। सम्मेलन ने ८ बरस के अनंतर संवत् १९७५ (सन् १९१८) मे दक्षिण भारत में हिंदी-प्रचार की योजना तैयार की। यह सम्मेलन के उज्ज्वल कार्यों का एक उदाहरण है। ९ बरस तक सम्मेलन के अंतर्गत रहकर आपने अपने को संवत् १९८४ (सन् १९२७) में स्वावलंबी बना लिया। तब से यहां दिन दूनी रात चौगुनी उन्नति हो रही है। इसी लिये मैं कहता हूँ कि आपके प्रतिनिधियों की उत्तर-भारत-यात्रा हिंदी में नवयुग उत्पन्न करने

-वाली एक महत्त्वपूर्ण घटना थी जिस पर नागरीप्रचारिणी सभा से अधिक और कौन आह्लादित हो सकता था जिसने हिंदी के वे पुराने दिन देखे थे। मैं नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से आपको बधाई देता हूँ।

मद्रास की यह मेरी दूसरी यात्रा है। संवत् १९८६ (सन् १९२९) में हमारा यात्रीदल यहां से श्री रंगनाथ, श्री मीनाक्षी देवी और सेतुबन्ध रामेश्वर की यात्रा करता हुआ लंका के रास्ते विदेश गया था। उस समय मद्रास नगर के बाजारों में और मन्दिरों के आस पास तो हमें हिंदी बोलने वाले मिले थे, पर शहरों से दूर और साधारण श्रेणी के लोगों में भी टूटी फूटी अँगरेजी बोलने वाले बहुत अधिक मिले थे। आपने मुझे यह अच्छा अवसर दिया है कि मैं इस बेर यह देख सकूँ कि दैनिक व्यवहार में और साहित्यिक क्षेत्र में हिन्दी यहां कितनी आगे बढ़ गई है निस्सन्देह आगे बढ़ी ही होगी। क्योंकि इस शुभ कार्य पर नौ लाख रुपये के लग-भग खर्च हुआ है और एक लाख देवियों और सज्जनों ने अब तक परीक्षाएँ दी हैं। ऐसी उन्नति का फल उन्हीं लोगों तक सीमित नहीं रहा करता जो केवल परीक्षा में बैठते हैं, बल्कि इसका प्रभाव अन्य सहस्रों नर-नारियों पर भी पड़ना स्वाभाविक है। मेरा विश्वास है कि इस समय तक हिन्दी की आवाज सारे प्रान्त में आपके द्वारा गूंज गई होगी।

हिन्दी का कार्यक्षेत्र चार हिस्सों में बांटा जा सकता है :—

पहला वह क्षेत्र है जहां की मातृभाषा हिन्दी है, जैसे संयुक्त प्रान्त, बिहार, मध्यप्रदेश, राजपूताना, मध्यभारत और पूर्वी पंजाब। इस क्षेत्र की सब से बड़ी विशेषता यह है कि यहां बड़े २ कवि, सन्त और सुलेखक हुए हैं, जिन्हों ने हिन्दी को अलंकृत किया है।

साथ ही यहां हिन्दी-साहित्य का गौरवपूर्ण भण्डार छिपा पड़ा है जिसकी ओर यदि ध्यान न दिया तो वह नष्ट हो जायगा और भारत के अमूल्य साहित्यिक धन को हम खो बैठेंगे। नागरीप्रचारिणी सभा ने वर्षों से हस्तलिखित हिन्दी ग्रन्थों की खोज का विभाग खोल रखा है। जो ग्रन्थ मिले हैं उन में से बहुतों को प्रकाशित भी किया है।

हिन्दी का दूसरा कार्यक्षेत्र वह है जहां की भाषा की शब्दावलि में संस्कृत के शब्द पाए जाते हैं और जहां की लिपि देवनागरी का ही रूपान्तर है, जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल। गुजरात के सम्बन्ध में तो इतना ही कहना पर्याप्त

है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी ने गुजरात में पैदा होने पर भी हिन्दी को व्यापक बनाने की जितनी चेष्टा की है उसके लिए हम लोग उनके सदा अनुगृहीत रहेंगे। महाराष्ट्र के भी हम ऋणी हैं जिस ने हिन्दी को प्रोत्साहन दिया और अपनाया। बंगाल पहले तो हिन्दी की ओर झुका था। राजा राममोहन राय ने हिन्दी में पुस्तकें लिखी थीं। बाबू शारदाचरण मित्र ने एक लिपि विस्तार परिषद् खोली थी और बाबू नवीनचन्द्र राय ने पंजाब में हिन्दी का प्रचार किया था। इधर बंगाली विद्वानों ने हिन्दी की ओर कुछ कम ध्यान दिया है। उनको अपनी मधुर भाषा पर स्वाभाविक अभिमान है, पर हिन्दी के राष्ट्रभाषा बनने से किसी प्रान्त की भाषा दब नहीं जायगी। यह आशंका निराधार है, क्योंकि राष्ट्रभाषा का प्रयोग तो अन्तःप्रान्तीय व्यवहार के लिए किया जायगा और यथार्थ में भी किया ही जाता है। मुझे स्वयं पूर्वी बंगाल, उड़ीसा और आसाम का अनुभव है। वहां हिन्दी से साधारण काम अच्छी तरह चल जाता है। सन्तोष की बात है कि सर मन्मथनाथ मुकर्जी और डा० श्यामाप्रसाद मुकर्जी ने इन दिनों हिन्दू सभा के अधिवेशनों में इस बात को स्वीकार किया है कि हिंदी ही राष्ट्रभाषा-पद को प्राप्त कर सकती है।

हिन्दी का तीसरा क्षेत्र वह है जहां की भाषा और लिपि हिन्दी से बिलकुल ही भिन्न है, जैसे मद्रास प्रांत। आपके प्रांत में हिन्दी स्वच्छ राष्ट्रीय भाषा होने का रूप धारण करती है। यहां पहुँचकर उसे आपके ऐसे उत्साही, कार्यकुशल और देश भक्त प्रचारक मिल गये हैं। आपके प्रांत की भाषाएँ बड़ी प्राचीन, सम्पन्न और उन्नत हैं। हिंदी उन्हें अपने उच्च आसन से उतारने नहीं आई है और ऐसा वह कर भी नहीं सकती। वह तो भावों और विचारों के आदान-प्रदान के लिये आई है। वह यहां व्यवहार में सुविधा देना चाहती है। जहाँ वह अपना साहित्य आपके सामने रखती है वहां वह इसके लिये भी उत्सुक है कि आप अपनी तामिल, तेलुगु, मलयालम और कन्नडी भाषाओं के उत्तम साहित्य का रसास्वादन उसे कराएँ। शेक्सपियर और उमर खैयाम का अनुवाद तो हम हिन्दी में पाते हैं, पर खेद की बात है कि आपके सुकवियों और सन्तों की ललित एवं उत्कृष्ट रचनाओं के अनुवाद से हिन्दी वंचित है। इस कमी को पूरा करने का इधर प्रयत्न आरंभ हो गया है। आपके ये कवि और सन्त उसी संस्कृति के पोषक थे जिसके पुजारी हम आपकी ही तरह हैं।

सुनने में आया है, पर इस बात पर विश्वास नहीं होता, कि इस प्रांत के कुछ भाइयों की ऐसी धारणा है कि हिन्दी का उत्तर भारत से आकर राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित होना उत्तर का दक्षिण पर नया आक्रमण ही है, जैसा कि कहा जाता है कि प्राचीन आर्यों ने किया था। राष्ट्र के एकीकरण के पवित्र आयोजन के अन्दर जिन्हे आक्रमण की गंध आती है उनके संबन्ध में क्या कहा जाय। ऐसे लोग अंतःप्रांतीयता का स्वप्न भी नहीं देख सकते।

और हिन्दी का चौथा क्षेत्र भारतवर्ष से बाहर है जहां भारतीय लोग अपना देश छोड़कर बस गए हैं; जैसे लंका, ब्रह्मदेश, सिगापुर, मारिशास, फिजी, ट्रिनीडाड आदि। इस चौथे कार्य क्षेत्र की ओर अभी हमारा ध्यान नहीं गया है। पर इस ओर हमारी असावधानी हमारे लिये घातक हो रही है। नागरी प्रचारिणी सभा के एक उत्साही सभासद ने लंका में कुछ पाठशालाएँ खोली थीं। उनमें प्रवासी हिन्दुस्तानियों के अतिरिक्त बौद्ध भिक्षुओं ने भी हिंदी पढ़ना शुरू कर दिया था। पर धनाभाव के कारण काम बंद हो गया। हमारे एक दूसरे सभासद ने फारस की खाड़ी के एक टापू मस्कत और मत्रा में नागरीप्रचारिणी सभा खोली है। हमारे पास अनेक स्थानों से बुलाहट के पत्र चले आ रहे हैं। कई उपनिवेशों में हिंदी के पुस्तकालय खुले हैं। ये सब बातें प्रमाणित कर रही हैं कि वहां के भारतीयों को अपनी देश भाषा से प्रेम है, पर इन उपनिवेशों की ओर हमारे नेताओं का ध्यान अब तक नहीं गया। कई प्रमुख हिंन्दी भक्तों और दानवीरों का इस विषय की ओर सभा ने ध्यान दिलाया, पर कुछ फल न निकला। क्या ही अच्छा हो यदि एक बेर महात्मा गांधी इस ओर ध्यान दे दें। उपनिवेशों की अवस्था का ज्ञान उनसे अधिक हमारे देश में किसी को नहीं है उनके ध्यान देते ही जादू का सा असर होगा। बिखरी हुई शक्तियां एकत्र हो जायेंगी और इस काम के लिये धन-जन की कमी न रह जायगी। पर जब तक इस महान कार्य के लिये महात्मा जी का आशीर्वाद नहीं प्राप्त होता, क्या तब तक यह काम रुका रहेगा?

आप तो समुद्र तट के निवासी हैं। आपके लिये जल और थल दोनों मार्ग खुले हैं। इसलिये क्या यह कठिन है कि इस प्रांत के कुछ उत्साही मित्र, जिन्हें निकट वर्ती लंका आदि द्वीपों में जाने का अवसर मिलता रहता है, हिन्दी का संदेश वहां पहुँचायें और हिन्दी प्रचार को वहां किसी रूप में संगठित कर दें। हिंदी बोलने वाले थोड़े बहुत उन स्थानो में व्यापार आदि के लिए पहले ही से

मौजूद हैं, इसलिये उन लोगों की सहानुभूति प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

आपने अपने एक वार्षिक विवरण में लिखा है कि लिपि के झगड़ों ने आपके मार्ग में कुछ बाधा नहीं डाली। झगड़े दो ही रूप धारण करते हैं। लिपि सम्बन्धी अथवा भाषा सम्बन्धी। देवनागरी लिपि पर तो आक्षेप होना ही नहीं चाहिए। उसके सम्बन्ध में हजरत ख्वाजा हसन निजामी लिखते हैं:—

"हिंदी रस्म उल्खत हिंदुस्तान का है जो हमारा मौजूद वतन है और हमारे हिंदू पड़ोसियों और मुल्की भाइयों का रस्म उल्खत है। इस वास्ते हमें भी इस रस्म उल्खत की तरक्की और हिफाजत में हिस्सा लेना चाहिए।"

जनाब हारूं खां साहब शेरवानी प्रोफेसर, उस्मानियां कालेज हैदराबाद और भी स्पष्ट शब्दों में कहते हैं—

"इसमें किसी किस्म का शुबहा करने की गुञ्जाइश ही नहीं है कि हिंदी में तो हत्तुलमकदूर हर तहरीर का मकसद यही होता है कि पढ़ने वाला वही पढ़े जो लिखने वाले ने लिखा है।"

आगे चलकर प्रोफेसर साहब ने यहां तक कह दिया है कि "मौजूदा रस्म उल्खत उर्दू में यह खूबी नहीं पाई जाती है।"

इसलिये, जैसा मै ऊपर कह चुका हूँ, लिपि पर तो झगड़ा होना ही न चाहिए पर हमारे दुर्भाग्य से किसी प्रान्त में रोमन और किसी में फारसी लिपि इसके मुकाबिले में खड़ी कर दी जाती है। आसाम के पहाड़ी हिस्से में कांग्रेसी सरकार ने भी हिन्दुस्तानी की शिक्षा रोमन अक्षरों में देने की आज्ञा दी थी। ईसाई पादरियों की इच्छा पूरी हुई और अब रोमन को हटाना भी एक कठिन समस्या हो गई। कश्मीर में एक कमेटी बैठी थी। उसने सिफारिश की कि प्रारम्भिक शिक्षा उर्दू भाषा और फारसी लिपि में दी जाय। उर्दू भाषा तो रह गई, पर वहां के महाराज ने देवनागरी को भी रहने दिया। समझ में नहीं आता कि इतनी बात पर वहां आन्दोलन क्यों खड़ा किया जा रहा है।

झगड़े का दूसरा रूप भाषा सम्बन्धी है। हमारे सामने 'हिन्दुस्तानी' नाम लाकर खड़ा कर दिया गया है। कुछ दिनों तक लोग इसके चक्कर में आ गये थे, पर अब सर तेजबहादुर सप्रू भी, जो 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी' (प्रयाग) के कई बरस तक सभापति थे, इस शब्द से दूर भागते हैं और हरूनऊ विश्ववि-

थालय के वाइस चांसलर श्री हबीबुल्ला साहब ने स्पष्ट कह दिया है कि हिन्दुस्तानी का इस देश में अस्तित्व नहीं है। सच्ची बात तो यह है कि हिन्दुस्तानी के नाम पर विदेशी अरबी, फारसी के शब्दों का प्रयोग खुल्लमखुल्ला किया जा रहा है। दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आपने भी हिन्दुस्तानी रीडर के दूसरे भाग में साधारण बातचीत में गुरु नानक के मुँह से 'खुदा' शब्द कहलाया है, जब कि हम जानते हैं कि जिन बालकों और बालिकाओं के हाथ में यह पुस्तक पड़ेगी वे अपने घर पर 'खुदा' शब्द का प्रयोग कभी न करते होंगे। प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत सभापति श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी हिन्दुस्तानी की इस नीति के विरुद्ध हैं। उनका मत है कि हिन्दी में प्रचलित संस्कृत शब्दों को रहने देना चाहिए, क्योंकि सब प्रान्तीय भाषाओं में संस्कृत शब्द मिलते हैं। अन्तः प्रान्तीयता के भाव को बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि जो शब्द भिन्न-भिन्न प्रान्तीय भाषाओं में प्रचलित हों उनके स्थान पर अरबी और फारसी शब्दों को नहीं लाना चाहिए। मै यह भ्रम दूर कर दूँ कि हम लोग फारसी या अरबी या अंग्रेजी के विरोधी नही हैं। ऐसे जो शब्द आ गये हैं और जिन्हें जन साधारण समझ लेते हैं उन्हें अवश्य रखना चाहिए। नए आवश्यक शब्दों को भी लेना चाहिए। पर पारिभाषिक शब्दावली में संस्कृत की सहायता के बिना काम नहीं चलेगा। बहुत से ऐसे शब्द हैं जो पहले से संस्कृत में मौजूद हैं। उन्हें छोड़ कर हम अरबी या अंग्रेजी के शब्द नही लेंगे। संतोष की बात है कि इस विषय में महात्मा गांधी श्री सम्पूर्णानन्द से सहमत हैं।

हिन्दी को साम्प्रदायिकता से दूर रखना है। यह हिन्दू और मुसलमान दोनों की बनाई हुई है। यह ठीक है कि हिन्दू धर्म के कई सुन्दर ग्रन्थ हिन्दी में हैं, पर यह भी ठीक है कि कई मुसलमानों ने हिन्दी में अपने धर्म का गुणगान किया है। हिन्दी में एक पुरानी हस्तलिखित पुस्तक मिर्जापुर में एक मुसलमान सज्जन के पास है। दोहे, चौपाइयों में वह मुहम्मद साहब का जीवन चरित है। उसकी भाषा बड़ी सुन्दर है। उक्त मुसलमान सज्जन नित्य उस पुस्तक का पाठ करते हैं। जायसी, रसखान और रहीम के शुभ नाम से तो लोग परिचित ही हैं। ऐसी अवस्था में साम्प्रदायिकता के नाम से हिन्दी उर्दू का झगड़ा खड़ा करना एक प्रकार का देशद्रोह है। हमें आशा है कि दक्षिण भारत इस कलङ्क से बचा रहेगा।

इस युग में आप हिन्दी के द्वारा उत्तर और दक्षिण भारत का जो सम्बन्ध सूत्र फिर से दृढ़ करने का अनुष्ठान कर रहे हैं वह एकदम नया नहीं है। वस्तुतः ७ वीं ८ वीं शती से, जब उत्तर भारत में उन्नति और विकास का क्रम समाप्त प्रायः हो चुका था, दक्षिण ने इस क्रम को बनाए रखने का भार अपने ऊपर ले लिया था। ७ वीं ८ वीं शती में भगवत जैसे अद्वितीय ग्रन्थ की रचना द्रविड़ भारत में हुई। सम्वत् ८४५ (७८८ ई०) में केरल प्रदेश में श्री शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव हुआ जिन्होंने बौद्ध सम्प्रदाय के दार्शनिक तथ्य को, जो इस समय वज्रयान आदि के दलदल में सड़-गल रहा था, एक नया रूप देकर पुनः प्रचारित किया और गिरे हुए नैतिक जीवन को उठाया। फिर तो वेद के भूले हुए अर्थ का फिर से प्रकाशन ( सायण भाष्य के रूप में ), स्मृतियों का समयानुकूल उदार विवेचन ( पाराशर-माधवीय के रूप में ) तथा श्री रामानुज, श्री मध्व और श्री बल्लभ के धार्मिक सुधार रत्नाकर के तट पर हुए और वहां से उत्तर भारत में आये। इनमें से श्री रामानुज का व्यक्तित्व तो ऐसा महान् हुआ जिसने रामानन्द के द्वारा कबीर जैसे सन्त को उत्पन्न किया और जो तुलसी जैसे योग्य पुरुष के निर्माण का कारण हुआ। दक्षिण की नटराज प्रतिमा इस जागृति का मूर्त्त रूप है।

मुझे विश्वास है कि उत्तर और दक्षिण का यह पुरातन सम्बन्ध दृढ़तर होता जायगा और इस सम्बन्ध के सबसे उत्तम साधन हिन्दी को भी दक्षिण भारत से बल और वैभव प्राप्त होगा। इसका श्रेय होगा आपके प्रचारक मंडल को।

अन्त में मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देकर सादर और सप्रेम नमस्कार करता हूँ।

---

# THE SPIRITUAL APPROACH

(WITH ACKNOWLEDGEMENTS TO THE *STATESMAN*)

THE communal problem not only stands in the way of our political progress, it prevents our presenting before the world the Indian achievement—the working out of human unity. For it must be admitted that there is an Indian way—the "Hindustani way"—and that it is in this way that India solved her human problems in her long history.

In the same light of India's history, again, is to be answered the question, of Indo-British relationship which should serve as the basis of the larger synthesis of the East and the West. On Britain and India rests the task of forging the cultural bond between Europe and Asia, of widening the affections of the human family. And the spirit that worked through the late Rev. C. F. Andrews is surely still at work, for the great tradition of Britain cannot but produce her great men for the accomplishment of this great cause.

Our internal problem has run deep down into the whole scheme of life of the two great ancient peoples. If only they were true to their heritage, they might not only improve their own affairs but also give a lead to the modern nations at this juncture of the world's history. The Indian techniques of humanism and the arts of peace have a vital use for a world now desperately fighting its way to a solution of race relations. We are thus sadly failing in our duty to ourselves as well as to the world at large. It may sound conceited, but in fact it is something for which we have to be utterly ashamed.

**India's Fundamental Unity**

The cultural, social and historical unity of the peoples of India was at one time normal. Seldom did people bother

about these relationships. That these are questioned to-day indicates the shaking of the very foundations of Indian unity. It amounts to a negation of the very best of Hinduism and Islam in India. The questioning of our fundamental unity is far from a case of simple scepticism. We have been distracted by illusion. The feeling of a common lot, before it grows well into a conviction, is scared away by the illusion of our antagonism. Illusion is the issue of darkness, and it lies in ambush along the shadowside of our mind. It will clear away as soon as fhe light is lit.

It is dangerous when false notions appear as facts of life. Arguments fail where obsessions prevail. The political and economic logic of common nationalism can hardly be listened to as long as there is the psychological background of communal distrust. However much possessed we may be of the political technique, we bulid ill if we forget the human base of our national existence. And that base is to be rendered compact by means of such non-violence as will recoil even from thinking in terms of antagonism.

### More than Pacts Wanted

Unfortunately, our past history, as we read it in schools, shows us in a wrong perspective. All care is bestowed on teaching that we were enemies. It is, however not told when and how the enemies came to terms and joined hands in building the composit Hindustani civilization. Our education does not help to open our eyes to the common cultural heritage of Hindu-Moslem India. On the contrary, it hypnotizes us into the belief that throughout these historic centuries we only sought to destroy each other, and thus it will be idiocy to try to unite for the future in the face of such a past. The result is, in our ignorance and prejudice, we are groping in a wilderness of sordid interests for search of a pact. We are unable to visualize that the whole matter is one of heart—of love and understanding such as our ancestors

of all communities achieved with ease. A long line of saints and artists, rulers and administrators, refused to perceive differences and led the country along a path of amity and brotherliness.

A pact is not synonymous with unity. Its character is separative. It brings into focus how much one party can get out of the other. Unity, on the contrary, is born of the desire to contribute to the common objective. But neither the objective is seen nor the accommodation made until there is love and trust, until there is a feeling of relationship to inspire mutual sacrifice and to remove the fear that one's sacrifice will be used exclusively for the other. The way the mind works is the essential thing; the thought of safeguards comes or does not come as this work goes on.

### False History

Our mind has been perverted by false history. The true history of mediæval India has to be re-written to reveal how, through centuries and living together, the Hindus and Mussalmans became imbued with the sense of a common destiny, how they began to think, alike, act alike and feel alike, in spite of occasional wranglings, even as brothers, and how their like-mindedness found expression in common creative energy and was consummated by the union of their religious and social, cultural and political life. If their enmity was real, more real was their unity. During the political crises in the life of a people it is the points of unity that are to be stressed, and not the points of difference. Rather let us think of the beautiful Indo-Saracenic dome of the Taj, wherein the tall steeples of Madura and the flat domes of Arabia met and mingled, than of those two original styles exclusively. Similarly, concentrate on the meeting points of our religious and cultural life, on the Kabirs and Nanaks of Indian history.

### Politics and Economics Secondary

Communalism is a tangle of many knots. The work of untying them depends on efforts from various directions at the same time. But to most of us only politics and economies loom large in the composition of the whole trouble. And what is being ignored is the psychological issue, the classic issue of a mind diseased.

Yet the fact remains : mind matters most. The attitude of mind borne towards the ideals which another holds dear directs the course of their relation on the outer surface of life. Their conception of values, even the conceits they cherish, are by no means less real than the arithmetic of ratios in political and economic deals. Sentiments make up the very substance of human relations. It is these that decide the character, and colour, the texture of their intercourse in more tangible matters. Mental issues are fundamental. To what is due the demands for safeguards if not a psychological condition ! That demand will diminish as this condition improves, as our fear of each other will be in control.

Our little minds, the minds of most of us who flutter about with the demonstrational cry of "practical politics" and "concrete issues" might do well to ponder over the intangible aspect of reality, to move along the psychological lines of approach to the political problem.

### The Mental Factors Primary

Claims and counter-claims lead inevitably to a conflict if we seek to be too practical. And what but a mind initiated to believe in human kinship, a mind guided by human consideration, can recognize the point where different interests must merge in, mutual good-will ? What will set the limit to self-interest if there be no final appeal to human interst ? Love of power invents what arguments may suit it, greed of dossession has a knack of persuading us to justify encroach-

ment. Politics degenerates into an instrument of intrigue, economics into a design of dispossessing others if they are not subordinated to the moral laws of life. A mind chastened by the highest ideal of national integrity and softened by the milk of human kindness, such a mind alone can help us to get the best out of politics and economics.

None need deny the truth of the market, the vast place allotted to it in life. But the calamity begins when it seeks to absorb the whole of life—leaves not a yard for the altar, the sanctuary of the soul where man loves and lives for others, dreams and fils up the spirit, brings forth a new world of good and beauty, and behaves, even if it be for the few inspired moments, like his great Creator in miniature.

## Swami Dayanand on Unity

*( In Delhi Darbar of 1877 )*

*By* K. B. Pathik

Oh Lord ! Let my country awake,
When this Communal Tension should break,
Which has brought enmity and hatred in its wake,
Deep, Deep, in our Unity's Lake,
Let's strive to crushes heads,
Of all such poisonous snakes,
Which have put our Country's honour at stake,
With the Staff of determination of our own make.

# सन् १९४१

( लेखक—श्री पं० रामगोपाल जी विद्यालङ्कार सम्पादक वीर "अर्जुन" )

संसार ने संकट का एक और वर्ष समाप्त करके सन् १९४१ में प्रवेश कर लिया। सन् १९३९ के अन्त में सन् १९४० का भविष्य जैसा अन्धकारमय और अनिश्चित दीख रहा था, इस समय ( सन् ४० के अन्त ) में नये वर्ष ( सन् ४१ ) का भविष्य उस से भी कुछ अधिक ही भयंकर, अन्धकारमय और अनिश्चित दीख रहा है।

सन् ३९ के अन्त में ब्रिटेन और जर्मनी एक दूसरे के विरुद्ध युद्ध की घोषणा तो कर चुके थे, परन्तु दोनों की आमने सामने टक्कर न होने के कारण जय-पराजय का निश्चय करना अत्यन्त कठिन था। अप्रैल मास के पश्चात् जर्मन वायु तथा स्थल सेनाओं ने परस्पर सहयोग पूर्वक युद्ध करने के जो नये प्रकार, नारवे, हालैंड, वेल्जियम, और फ्रांस के रण-क्षेत्रों में प्रकट किये, उनका सन् ३९ के अन्त तक संसार को परिचय न था। इस के विपरीत. ब्रिटेन और फ्रांस की साधन-सम्पन्नता का संसार को भली भांति परिचय था और इस कारण सब को आशा यही थी कि जर्मनीको इन दोनों मित्र-राष्ट्रोंके सामने बुरी तरह मुंहकी खानी पड़ेगी। परन्तु सन् ४० ने घटनाओं का ऐसा अकल्पित प्रदर्शन किया कि जानकारी रखने का दावा करने वालों को अपनी कल्पनायें मिथ्या सिद्ध होती देखकर आश्चर्यित हो जाना पड़ा।

अब सन् १९४० के अन्त में भी स्थिति बहुत कुछ वैसी ही होने के कारण, सन् १९४१ के विषय में कुछ कल्पना या भविष्य-वाणी करना कुछ जोखिम का काम है। पश्चिमी और मध्य यूरोप के प्रायः सभी देश इस समय जर्मनी के दबाव में आ चुके हैं। यूरोप की सब से बड़ी स्थल-शक्ति फ्रांस भी जर्मनी से पराजय स्वीकार कर चुकी है। परन्तु साथ ही गत कुछ महीनों में यह भी प्रायः निश्चित हो चुका है कि जर्मनी की स्थल-सेना यूरोप की अन्य स्थल-सेनाओं से प्रबल होते हुए भी, वह ब्रिटिश जल-सेना का रक्षा-जाल भेदकर यूरोप के पश्चिमी तट से आगे बढ़ने में असमर्थ है। उसकी वायु-सेना भी इतनी बलवान नहीं है कि वह ब्रिटिश वायु-सेना को अपेक्षा दृष्टि से देख सके।

ब्रिटिश जल-सेना जर्मन आक्रमण को रोकने में पूर्णतया समर्थ होने के

अतिरिक्त, जर्मनी द्वारा पराजित यूरोप का आर्थिक घेरा डालने में भी प्रायः पूरी २ सफल हुई है। इस कारण यद्यपि सम्भावना तो यही है कि ब्रिटिश सेनाओं के यूरोप की भूमि पर उतरे बिना भी जर्मनी को केवल आर्थिक कारणों से ही पराजय मानना पड़ जायगा तथापि यह बात निश्चय-पूर्वक नहीं कही जा सकती क्योंकि जिस प्रकार की नई युद्ध-विधियों के बाद को प्रकट होने के कारण सन् ३९ के अन्त की आशायें मिथ्या सिद्ध हो गई थीं, उसी प्रकार की कुछ युद्ध-विधियां प्रकट होने की सम्भावना अब भी सर्वथा नष्ट नहीं हुई।

अब कुछ मास से जमनी और ब्रिटेन में जो अमानुषिक वायु-युद्ध चल रहा है उस से यह भी भय पूर्णतया बना हुआ है कि इन दोनों देशों में हार-जीत चाहे जिसकी हो, युद्ध की समाप्ति से पहले पहल ये दोनों एक दूसरे को इतना बरबाद और मलियामेट अवश्य कर देंगे, कि विजेता अपनी जीत का सुख अनुभव करने योग्य न रहजायेगा।

संयुक्तराष्ट्र अमरीका के प्रेजिडेन्ट रूजवेल्ट ने यद्यपि यह बात निश्चय-पूर्वक कह डाली है कि जर्मनी और उसके मित्र युद्ध नहीं जीत सकेंगे तथापि जब दोनों पक्षों के साम्पत्तिक तथा नागरिक विनाश की दशा का चित्र आंखों के सामने आता है तब उक्त आशा हृदय को शान्त तथा आश्वस्त नहीं कर सकती।

युरोपियन युद्ध के विषय में उक्त सम्भावनाओं के अतिरिक्त जब हम उसके कारण बिगड़ी हुई संसार की आर्थिक दशा पर दृष्टिपात करते हैं तब परिस्थिति और भी अधिक अन्धकारमय दीखने लगती है। अमरीका और रूस के सिवा संसार का कोई राष्ट्र ऐसा नहीं, जिसकी आर्थिक दशा युरोपियन युद्ध के कारण बिगड़ती न जा रही हो। सन् १९४१ में युद्ध समाप्त हो जाने का निश्चय न होने के कारण परिस्थिति और भी चिन्तनीय हो गई है।

भारत की आन्तरिक दशा भी सन् ४० में सन् ३९ की अपेक्षा खराब रही और सन् ४१ में उसके अधिक बिगड़ जाने के लक्षण प्रकट हो रहे हैं। भारत की राष्ट्रीय शक्तियां और ब्रिटिश शासक दोनों ही अपनी-अपनी बात पर अड़े हुए हैं। इस कारण हमें भय है कि सन् १९४१ का वर्ष संघर्ष मे ही बीतेगा। इन सब कारणों से सन् १९४१ का वर्ष सन् ४० की अपेक्षा अधिक कठोर तथा कष्टप्रद आता दीख रहा है। हमें वह अच्छा लगे या न लगे वह आ तो गया ही है। हमें उसका धीरता से सामना करने के लिये तैयार रहना चाहिए।

# सम्पादकीय

## गढ़वाल और डोला पालकी

गढ़वाल (सयुक्त प्रान्त) जिले में आर्यों [शिल्पकारों] तथा दलित भाइयों को बिठो अर्थात् राजपूतों (सवर्णों) इत्यादि की जिन ज्यादतियों और अत्याचारों का शिकार बनना पड़ता है उनका समाचार पत्रों द्वारा गढ़वाल जिले के बाहर की जनता को कभी २ किञ्चित् आभास मिल जाता है। गढ़वाल की डोला पालकी की जटिल समस्या से तो भारत की प्रायः समस्त हिन्दू जनता भले प्रकार परिचित हो गई है। गढ़वाल मे दो वर्ग हैं। एक बिट और दूसरा शिल्पकार। शिल्पकारों में बढ़ई, दरजी और लुहार इत्यादि हैं तथा बिटों में राजपूत तथा ब्राह्मण इत्यादि हैं। बिट लोग आर्यों (शिल्पकारों) तथा दलित भाइयोंके सामाजिक अधिकारों यथा विवाहमें डोला पालकी इत्यादिके निकाले जानेपर आपत्ति करते रहे हैं और उनका दुराग्रह यहां तक बढ़ा है कि एक एक बारात को ६-६ महीने अपने अधिकार रक्षा के लिए डटने के लिये बाधित होना पड़ा है तथा कभी २ वह दुराग्रह मारपीट और अन्य प्रकार के अत्याचारों तक में भी परिणत हुआ है। परन्तु धन्य हैं! गढ़वाल के आर्य भाई। जो सब प्रकार के कष्टों और अत्याचारों को सहकर भी हतोत्साहित न हुए और अपने सामाजिक अधिकारों की रक्षा के लिये प्राण-पण से प्रयत्न करते रहे। उनके यत्नों तथा दृढ़ता के फलस्वरूप इलाहाबाद के हाई कोर्ट तक ने डोला पालकी निकालनेके उनके अधिकार को स्वीकार किया। प्रान्तकी सरकार ने भी इस अधिकार के उपयोग में उन्हें पूरी २ सहायता दिलाई। इस सुगमता के फलस्वरूप गत कुछ वर्षों में लगभग ८०० बरातें डोला पालकी के साथ निकल चुकी हैं।

परन्तु गत वर्ष से अब तक ४ बरातें भिन्न भिन्न इलाकों में आर्यों की रोकी गई हैं। अन्तिम बारात १-१२-४० को बिजौली (चांदकोट) में रोकी गई।

बारात रोकी ही नहीं गई बरन् बारात वालों को पीटा तथा उनका डोला पालकी भी जला दिया गया है। यह भी विदित हुआ है कि सरकारी कर्मचारियों के अपने कर्त्तव्य का ठीक २ पालन न करने से भी स्थिति इतनी खराब हुई है। जिला उपसभा बिजनौर तथा सार्वदेशिक सभाके कार्यकर्त्ता घटना स्थलपर हो आये हैं तथा आर्यों की सहायता करने का यत्न कर रहे हैं। इस २०वीं शताब्दी में इस प्रकार की दुर्घटना और ज्यादतियों का होना खेद जनक है, परन्तु स्वयं सरकारी आज्ञाओं और स्थापनाओके उल्लंघनपूर्वक इन घटनाओं का होना बहुत आश्चर्यजनक है। इसमें सन्देह नहीं गढ़वाल प्रान्त शिक्षा इत्यादि की दृष्टि से बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है और वहां की अधिकांश प्रजा अज्ञान अन्धकार में डूबी हुई है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं होना चाहिए कि सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति तक में कानून को हाथ में लेने का उनका साहस बढ़ने दिया जाय। जहां तक हमें विदित हुआ है बिटों ने सरकारी कर्मचारियों पर भी आक्रमण किया है। देखना यह है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार इस स्थिति का किस प्रकार हल करती है।

## जन गणना

पिछले अंक में हमने जन गणना के सम्बन्ध में आर्य्य भाइयो के कर्त्तव्य तथा कार्य्य पद्धति पर प्रकाश डाला था। हमें यह जानकर प्रसन्नता है कि सार्वदेशिक सभा गत ४-५ मास से आर्य्य भाइयों को जन-गणना सम्बन्धी जो निर्देश आर्य्य समाजो और प्रान्तिक सभाओं के द्वारा भिजवा रही है उनके पालन के लिए उनमें काफ़ी उत्साह और जागृति उत्पन्न हो गई है। जन-गणना का कार्य्य बहुत बड़ा और परिश्रम साध्य है। इसके लिए आर्य्य भाइयो को और भी अधिक उत्साह से काम करना होगा। इस कार्य्य की सफलता में प्रकाशन कार्य्य बहुत बड़ा भाग रखता है। सार्व० सभा जन-गणना सम्बन्धी पर्य्याप्त साहित्य समाजों में भेज चुकी है और आगे भी भेजती रहेगी परन्तु आर्य्य समाजों को इतने पर ही सन्तोष करके नहीं बैठ जाना चाहिए। उन्हें स्वयं अपने यहाँ विज्ञप्तियों इत्यादि के वितरण द्वारा प्रकाशन की व्यवस्था करनी चाहिए। कुछ समाजो ने ऐसा करना आरम्भ भी कर दिया हैं। कान्फ्रेन्सों की योजना करके आवश्यक निर्देश जन-साधारण तक पहुँचाने चाहिएँ। इस दिशा में भी आर्य्य जनता कार्यवाही कर रही हैं। कई स्थानों पर बड़ी २ सफल कान्फ्रेंसें हुई हैं। प्रचार का यह भी सफल साधन है इससे भी पूरा पूरा लाभ उठाना चाहिए।

## श्री स्वामी जी महाराज की दक्षिण-भारत की प्रचार-यात्रा

सार्वदेशिक सभा की प्रार्थना पर श्री० पूज्य नारायण स्वामी जी ने १५ नवम्बर से हैदराबाद राज्य और दक्षिण भारत की प्रचार-यात्रा स्वीकार की थी और उन्होंने १५ नवम्बर को दक्षिण भारत के लिए देहली से प्रस्थान किया था। इस प्रचार-यात्रा में उन्होंने लगभग ३५ स्थानों में भ्रमण किया और २६ तथा २७ दिसम्बर ४० को मदुरा में रहकर 'प्रथम दक्षिण भारतीय आर्य्य सम्मेलन' का नेतृत्व किया। श्री० पं० गंगा प्रसाद जी उपाध्याय, श्री० पं० केशव देव जी ज्ञानी, श्री० पं० धर्म्मदेवजी विद्यावाचस्पति, श्री० पं० मदनमोहन जी विद्याधर, श्री० साधु शिव प्रसाद जी प्रभृति सभा के कार्य्य कर्ताओ स्थानीय समाजों तथा आर्य्य प्रतिनिधि सभा निज़ाम राज्य के अधिकारियों और कार्य्य कर्ताओं ने स्वामीजी महाराज को इस प्रचार यात्रा में बहु मूल्य योग दिया। दक्षिण भारत की आर्य्य हिन्दू जनता ने स्वामी जी महाराज का स्थान २ पर उनके भव्यपद के अनुरूप जो भव्य स्वागत किया है और बड़ी से बड़ी संख्या में उपस्थित होकर उनके उपदेश से लाभ उठाया है उन सबसे यह प्रमाणित हुआ है कि आर्य्य समाज के प्रति उनका अगाध प्रेम है।

मदुरा की आर्य्य कान्फ्रेंस भी, जो समाचार अब तक हमें प्राप्त हुए हैं उनके अनुसार बड़ी सफलता से सम्पन्न हुई है।

स्वामी जी के भ्रमण तथा मदुरा कान्फ्रेन्स के विस्तृत समाचार हम आगामी अंक में देने का यत्न करेंगे।

## परिषद् की परीक्षाएँ

भारतवर्षीय आर्य्यकुमार परिषद् के परीक्षा मन्त्री श्री० पं० देवव्रत जी धर्म्मेन्दु ने हमारे पास परिषद् का एक निश्चय भेजा है जिसमें सार्वदेशिक सभा से प्रेरणा की गई है कि वह परिषद् की परीक्षाओं को अपने अधिकार क्षेत्र में अधिकाधिक लोक-प्रिय बनाने के लिए प्रान्तीय सभाओं तथा आर्य समाजों को निर्देश देवें। आर्य्यकुमार परिषद् की यह माँग उचित ही है। हम पिछले किसी अंक में इन स्तम्भों में इन परीक्षाओं की उपादेयता तथा इनकोलोक-प्रिय बनाने की आवश्यकता आर्य जगत् के सम्मुख रख चुके हैं। एक बार पुनः उसी आवश्यकता पर बल देते हुए परिषद् के निश्चय का बल पूर्वक समर्थन करते हैं। हमें आशा है प्रान्तिक सभाएं और आर्य्य समाजें गम्भीरता पूर्वक इस विषय पर विचार करके परिषद् की माँग को क्रिया में लाने के लिए क्रियात्मक उपाय करेंगी।

## आर्य समाज की स्थापना तिथि में परिवर्तन

आर्य्य समाज स्थापना दिवस आर्य्य पर्व पद्धति के अनुसार इस समय तक आर्य्य जगत् में चैत्र शुक्ल ५ को मनाया जाता रहा है। श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ने १९३७-१९३८ में इस पत्र में दो लेख लिखे थे जिनमें आर्य समाज बम्बई के शिला लेखों के आधार पर यह सिद्ध करके कि आर्य्य समाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ल प्रतिपदा होनी चाहिए इस पर्व की तिथि के परिवर्तन की माग की थी। उधर आर्य्य समाज बम्बई तथा बड़ौदा की आर्य्य कुमार महासभा ने अपने पुराने रिकार्ड तथा पंचागों के आधार पर श्री स्वामी जी की माँग का समर्थन किया था। यह विषय सार्वदेशिक सभा की अन्तरङ्ग सभा मे दो बार विचारार्थ प्रस्तुत हुआ। पहली अन्तरङ्ग सभा ने बम्बई आर्य समाज की पुरानी रिपोर्ट तथा जामे जमशेद नामक समाचार पत्र के स्थापना दिवस विषयक लेख के फोटो मँगा कर विचार करना आवश्यक समझा, क्योंकि जामे जमशेद पत्र में स्थापना दिवस की तिथि चैत्र शुक्ल ५ और पुरानी रिपोर्ट मे भी यही तिथि अङ्कित हुई बतलाई गई थी। स्व० श्री पण्डित लेखराम जी तथा देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय कृत स्वामी जी महाराज के जीवन चरित्रों मे भी इस तिथि का अनुसंधान किया गया।

पुरानी रिपोर्ट का फोटो प्राप्त हो गया था परन्तु जामे जमशेद नामक पत्र का लेख उपलब्ध नहीं हो सका। उपर्युक्त रिपोर्ट तथा मुखोपाध्याय जी के जीवन चरित्र में यह तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा ही अंकित है। अतः सभा ने १५-१२ ४० की बैठक मे आर्य्यसमाज की स्थापना तिथि चैत्र शुक्ला प्रतिपदा स्वीकार करके परिवर्तन करना स्वीकृत कर दिया है। अब आगे यह पर्व्व चैत्र शुक्ला ५ के स्थान में चैत्र शुक्ला प्रतिपदा को मनाया जाया करेगा।

## गुरुकुलों का एकीकरण

हमने सार्वदेशिक के पिछले किसी अंक में इन स्तम्भों मे विशेषतः गुरुकुल कांगड़ी तथा वृन्दावन के संकेत से गुरुकुलों के शिक्षण इत्यादि के एकीकरण की आवश्यकता पर बल दिया था। इस अंक मे अन्यत्र श्री पं० नरदेव जी शास्त्री का एतत् विषयक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें इस आवश्यकता का समर्थन होता है। उन्होंने जो प्रस्ताव एकीकरण के सम्बन्ध में रक्खा है वह इस प्रकार है—

**(१) एक गुरुकुल केवल वेदगुरुकुल नाम से चले और वहां केवल वैदिक विषय का अध्ययन—अध्यापन—अनुसन्धान होता रहे—यह गुरुकुल आर्यसमाज के गौरव बढ़ाने के लिए पर्याप्त होगा।**

(२) एक गुरुकुल केवल षट शास्त्र के अध्ययन अध्यापन के लिए हो जहां उस दर्शन के प्रकाण्ड पण्डित तैयार किए जाये इसका नाम शास्त्र गुरुकुल रहे—

(३) एक गुरुकुल व्याकरण, साहित्य के लिए रहे। इसमें व्याकरण साहित्य के अच्छे अच्छे पण्डित बन सकेंगे इस गुरुकुल का नाम वेदाङ्ग गुरुकुल रख सकते हैं।

( ४ ) एक गुरुकुल केवल चिकित्सा कार्य के लिए रहे। इस गुरुकुल का नाम आयुर्वेद गुरुकुल रहे।

( ५ ) एक गुरुकुल औद्योगिक गुरुकुल के नाम से रहे जिसमें थोड़ी सी धार्मिक शिक्षा के साथ २ कला-कौशल सिखाया जावे।

इस प्रकार पाँच गुरुकुलों के चलने से ब्रह्मचारी गण साधारण शिक्षा के पश्चात् अपनी रुचि के अनुसार किसी गुरुकुल में पढ़ सकते हैं। इस प्रकार एक गुरुकुल में प्रविष्ट हुआ ब्रह्मचारी दस बारह वर्ष में कुछ न कुछ बनकर निकलेगा ही। सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम निभा लेंगे यह बात अनुभव विरुद्ध है। पहला काम गुरुकुल काँगड़ी सम्हाल सकता है, दूसरा काम शास्त्र गुरुकुल महाविद्यालय ( ज्वालापुर ) चला सकता है। चिकित्सा गुरुकुल को वृन्दावन चलावे। इस प्रकार बटकर काम होने से आर्य जगत् की ज्योति चमकेगी। अब रही सशुल्क-निशुल्क: की बात, वह इस तरह निमटाई जा सकती है कि जिस लड़के का पिता और गुरुकुल के अध्यापक यह निर्णय करें कि यह ब्रह्मचारी देश और धर्म के काम के हैं और शिक्षा समाप्ति के पश्चात् देश धर्म के ही काम करेंगे उन्हीं अधिकारी ब्रह्मचारी को निःशुल्क शिक्षा दी जावे। शेष सब स्वयं अपने व्यय से पढ़ें।

हम बलपूर्वक इस प्रस्ताव का समर्थन करते हैं। क्या हम आशा करें कि गुरुकुल के संचालक इस पर विचार करके इसे क्रिया में लाने का यत्न करेंगे।

सार्वजनिक संस्थायें इस प्रकार के वाञ्छनीय परिवर्तनों से जीवन-लाभ ही करतीं तथा अपनी आवश्यकता और उपादेयता को दृढ़ करती हैं। फिर आर्य समाज जैसी प्रचारक समाज के लिये आगा पीछा होना ही नहीं चाहिए। हमारे सामने ईसाई मिशन के कतिपय उदाहरण हैं जब कि उसने अपनी कई संस्थाओं में अपनी प्रचार पद्धति में आमूल चूल परिवर्तन तथा कई संस्थाओं को बन्द करके अपनी शक्ति, अपने परिश्रम और कार्य को बढ़ाया और संतुलित किया है। हमारा जैसा समाज तो रूढ़ियों के विच्छेद के लिए प्रादुर्भूत हुआ है फिर उसके विच्छेद और नव जीवन प्राप्ति और संचार के लिए उसे हर समय उद्यत रहना चाहिए। हमें इस बात का दुख है कि आर्य समाज जैसी प्रगतिशील संस्था भौगोलिक और

कृत्रिम सीमाओं के भीतर बन्द किया जा रहा है और आर्य समाज के हिताहित और कार्य क्षमता को इन सीमाओ के भीतर केन्द्रित करके सोचा जा रहा है। हमें तो प्रांतीयता और स्थानीयता से ऊपर उठ कर आर्य समाज का हिताहित सोचना चाहिए। प्रबंध की दृष्टि से जो विभाग आर्य जगत के हुए हैं वे कभी भी किसी दशा में भी आर्य समाज के विशाल हित के मार्ग में बाधक नहीं बनने देने चाहिए हमे यह बात विशेषतया संस्थाओं के सम्बन्ध में ही लिखनी पड़ रही हैं। अनावश्यक संस्थाओ के बन्द करने वा उनमें आवश्यक परिवर्तन में उपर्युक्त बात बड़ी बाधक सिद्ध हुई है। अतः अब समय है कि उससे ऊपर उठकर उनमें आवश्यक परिवर्तन करके आर्यसमाज का विशाल हित संपादित किया जाय।

## हिन्दू महासभा की प्रभाव-वृद्धि

'*हिंदू महासभा की प्रभाव वृद्धि*' शीर्षक लेख में वीर अर्जुन ने महासभा के मदुरा सम्मेलन की कार्यवाही के हवाले से यह ठीक ही परिणाम निकाला है कि हिन्दू महासभ का प्रभाव अब बढ़ रहा है। इसके मुख्य कारण पर प्रकाश डालता हुआ वह लिखता है:—

हिन्दू महासभा का प्रभाव इस प्रकार बढ़ते जाने का सबसे बड़ा कारण काग्रेस की भ्रात साम्प्रदायिक नीति है। काग्रेसी नेताओं ने यह अनुभव करके कि उनकी स्वराज्य-प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण होने में अपने घर की सबसे बड़ी रुकावट मुसलमानो की साम्प्रदायिकता है, उनके विषय में यह नीति स्वीकार करली है कि उनको सन्तुष्ट करने के लिए उनकी उचित अनुचित प्रत्येक माग को पूरा कर दिया जाय और ऐसा करते हुए हिन्दुओं की उचित तथा मौलिक आवश्यकताओं तथा अधिकारो की भी उपेक्षा करनी पड़े तो कुछ परवाह नहीं। बस, हिन्दू महासभा की प्रभाव-वृद्धि कांग्रेस की इसी भ्रात नीति की प्रतिक्रिया मात्र है। यदि काग्रेस मुसलमानों को सन्तुष्ट करने के लिए अदूरदर्शी नीति पर न चलती तो न हिन्दू महासभा के नेताओ का काग्रेस का विरोध करने की आवश्यकता पड़ती और न हिन्दू जनता कांग्रेस का साथ छोड़ कर महासभा की तरफ़ को झुकती। कांग्रेस और हिन्दू महासभा के राजनैतिक लक्ष्य प्रायः एक होने के कारण इन दोनों संस्थाओं का विरोध अथवा संघर्ष साम्प्रदायिक क्षेत्र में ही होता है।

मुस्लिम लीग तथा ब्रिटिश शासकों की नीति के कारण उक्त विरोध और भी बढ़ता जा रहा है। कांग्रेस की भ्रांत साम्प्रदायिक नीति के कारण ही, मुस्लिम लीग की अकड़ दिन प्रति-दिन बढ़ती जा रही है। विशेषतः तब से जब से कि कांग्रेस ने प्रांतों में मन्त्रि-मंडल बनाना स्वीकार किया था परन्तु काग्रेसी नेताओं ने अब तक भी मुस्लिम लीग की पाकिस्तान

आदि अनुचित मांगों का विरोध करने का साहस नहीं दिखाया। फलतः हिन्दुओं पर प्रतिक्रिया होकर उनका झुकाव हिन्दू महासभा की ओर बढ़ता जाता है।

उधर ब्रिटिश शासकों ने जानबूझकर हिन्दू जनता पर काँग्रेस का प्रभाव जितना है उतने से भी कम दिखाने के लिये ही, अब हिन्दू महासभा को भी हिंदुओं की प्रतिनिधि संस्था के रूप में स्वीकार कर लिया है। इसका परिणाम यह होगा कि अब काँग्रेस के विरुद्ध एक संस्था न रह कर, मुस्लिमलीग और हिन्दू महासभा ये दो संस्थायें हो जायँगी। यदि कॉंग्रेस ने अपनी साम्प्रदायिक नीति में परिवर्तन न किया तो केवल सरकारी व्यवहार में ही नहीं जनता के व्यवहार में भी कॉंग्रेस हिन्दू महासभा को अपना प्रबल प्रतिस्पर्धी बना बैठेगी।

## केसरी मरहटा की हीरक जयन्ती

पूना के केसरी और मरहटा दो प्रसिद्ध पत्र हैं। इनके जन्म दाता स्व० लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक थे। इन दोनों पत्रों का संचालन 'केसरी मरहटा' नामक संस्था के द्वारा होता है। इस संस्था को स्थापित हुए ६० वर्ष हो गये हैं और ४ जनवरी को इसने 'हीरक जयन्ती' मनाई है। केसरी और मरहटा सचमुच बड़े भाग्यशाली समझे जाने चाहिऍं जिन्हें अपने सफल जीवन के ६० वर्ष व्यतीत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। हम दोनों पत्रों की अभिवृद्धि की कामना करते हुए संस्था के संचालकों को हृदय से बधाई देते हैं।

* ओ३म् *

न० ११, ( १५-१२-४० ) २००.

* विद्या धर्मेण शोभते *

# भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद्

की

धार्मिक परीक्षाओं का

## तिथि-पत्र

सम्वत् १९९७

| तारीख | नाम परीक्षा | नाम प्रश्न पत्र | समय |
|---|---|---|---|
| १२-१-४१ | प्रथम खण्ड | प्रथम पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | " | द्वितीय पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |
| १९-१-४१ | द्वितीय खण्ड | प्रथम पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | " | द्वितीय पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |
| २६-१-४१ | तृतीय खण्ड | प्रथम पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | सिद्धान्त शास्त्री | प्रथम पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | तृतीय खण्ड | द्वितीय पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |
| " | सिद्धान्त शास्त्री | द्वितीय पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |
| २-२-४१ | तृतीय खण्ड | तृतीय पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | सिद्धान्त शास्त्री | तृतीय पत्र | १० बजे से १ बजे तक |
| " | तृतीय खण्ड | चतुर्थ पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |
| " | सिद्धान्त शास्त्री | चतुर्थ पत्र | १॥ बजे से ४॥ बजे तक |

नोट—(१) प्रत्येक प्रश्न-पत्र ठीक समय पर ही प्रारम्भ होगा।

(२) समय के समाप्त होने ही उत्तर पुस्तकें ले ली जावेंगी।

निवेदक—

देवव्रत धर्मेन्दु

परीक्षा मन्त्री।

कार्यालय, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली

# आर्य पर्वों की सूची

२६—६—१९९७
६—१—१९४१

सार्वदेशिक सभा आर्य समाजों की सूचना के लिये प्रति वर्ष स्वीकृत आर्य पर्वों की सूची प्रकाशित किया करती है। इस वर्ष की सूची निम्न प्रकार है:—

| क्रम सं० | नाम पर्व | देशी तिथि | सौर तिथि | अंग्रेजी तिथि |
|---|---|---|---|---|
| १. | मकर संक्रान्ति | पौष सुदी १५ | २९ ६ १९९७ | १३।१।१९४१ |
| २. | बसन्त पञ्चमी | माघ सुदी ५ | १९।१०।९७ | १।२।४१ |
| ३. | सीताष्टमी | फाल्गुण बदी ८ | ७ ११।९७ | १९।२।४१ |
| ४. | दयानन्द जन्म दिवस | ,, ,, १३ | १२।११।९७ | २४।२।४१ |
| ५. | लेखराम तृतीया | ,, सुदी ३ | १७।११।९७ | १।३।४१ |
| ६. | बसन्त नव सस्येष्टि (होली) | ,, ,, १५ | २९।११।९७ | १४।३।४१ |
| ७. | नव सम्वत्सरोत्सव | चैत्र सुदी प्रतिपदा | १४ १२।९७ | २८।३।४१ |
| ८. | आ. स. स्थापना दिवस | चैत्र सुदी प्रतिपदा | १४ १२।९७ | २८।३।४१ |
| ९. | राम नवमी | चैत्र सुदी ९ | २३।१२।९७ | ६।४।४१ |
| १०. | हरि तृतीया ( तीज ) | श्रावण सुदी ३ | ११।४।१९९८ | २७।७।४१ |
| ११. | श्रावणी उपाकर्म | श्रावण सुदी १५ | २२।४ ९८ | ७ ८।४१ |
| १२. | सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस | श्रावण सुदी १५ | २२।४ ९८ | ७ ८।४१ |
| १३. | कृष्णाष्टमी | भाद्रपद बदी ८ | ३०।४०।९८ | १५।८।४१ |
| १४. | विजय दशमी | अश्विन सुदी १० | १४।६।९८ | ३०।९।४१ |
| १५. | दयानन्द निर्वाण दिवस ( दीपावली ) | कार्तिक बदी १५ | ३।७।९८ | २०।१०।४१ |
| १६. | श्रद्धानन्द दिवस | | पौष ९ सौर | २४।१२।४१ |

**सुधाकर एम. ए.**
मन्त्री

---

नोट सं० १—देशी तिथि के घट बढ़ जाने से अंग्रेजी तिथि में परिवर्तन हो सकता है।
नोट सं० २—सौर वर्ष बैशाख से आरम्भ होता है। सौर तिथियां ज्ञान मण्डल काशी के पञ्चाङ्ग के अनुसार दी गई हैं।

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१—ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते है पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा मे हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब मे ही कंस का राज था। इस पुस्तक मे २७३ पृष्ठ है और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशको तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसलमान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २)

२—मेरी अबीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किसकूट नीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगड़ा कर अबीसीनिया को हड़प लिया आँखें देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है मूल्य केवल ॥)

३—हमारी जापान यात्रा— इसमे लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्वकी अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १॥)

पुस्तक मिलने का पता:—

बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार
बाँदा (यू० पी०) जी० आई० पी० रेलवे।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

फरवरी १९४८ ओ३म् Reg No L 2121

ऋग्वेद यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक—प्रो० सुधाकर, एम० ए
स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक
वार्षिक मू० स्वदेश ५), एक प्रति का ≈) विदेश में १० शि० वार्षिक

अथर्ववेद सामवेद

# लेख-सूची


| संख्या | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | वेद की शिक्षायें | | ६०१ |
| २. | आत्मिक बल | स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्दजी सरस्वती | ६०२ |
| ३. | मन मन्दिर | श्री बा० पूर्णचन्द्र जी ऐडवोकेट | ६०६ |
| ४. | वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण | श्री रामानन्द चटर्जी स० माडर्न रिव्यू | ६१२ |
| ५. | आर्य विवाह एक्ट | गतांक से आगे | ६१८ |
| ६. | सुमन सञ्चय | रघुनाथप्रसाद पाठक | ६२१ |
| ७. | आर्यसमाज की चिनगारियाँ | श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्द जी महाराज | ६२८ |
| ८. | देशी राज्य और आर्यसमाज | आर्य मार्तण्ड | ६३३ |
| ९. | श्री म० नारायणस्वामी जी का दक्षिण भ्रमण वृतान्त | श्री महात्मा नारायण स्वामी जी | ६३५ |
| १०. | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी का बंगालादि भ्रमण वृतान्त | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी | ६४७ |
| ११. | प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेंस मदुरा की रिपोट | श्री शिवचन्द जी | ६५२ |
| १२. | जनगणना १९४१ | मंत्री सार्व० आ० प्र० सभा | ६६१ |
| १३. | बैतूल की दुर्घटना | गणेशदत्त आर्य बैतूल | ६६२ |
| १४. | सम्पादकीय | | ६६७ |


---

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १५ | माघ १९९७ | फरवरी १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११६ | अङ्क १२


## * वेद की शिक्षाएँ *

अक्षैर्मा दीव्यः । ऋग्० १०।३४।१३

जुआ मत खेलो ।

Do not gamble.

* * *

जाया तप्यते कितवस्य हीना । ऋग्० १०।३४।१०

जुएबाज की स्त्री दीन-हीन होकर दुःख पाती रहती है ।

The wife of a gambler in her miserable plight has to face a hard lot.

# आत्मिक बल

[ ले०—स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्द सरस्वती ]

—+—

आजकल हमारे अधिक भाई कार्य का आरम्भ करके मध्य में ही छोड़ देते दिखलाई देते हैं, जिससे ज्ञात होता है कि उनको उस काम के करने की शक्ति न थी। आप कहेंगे कि जब वह शिक्षित चिन्ता रहित बलवान् हैं, तो किस प्रकार कहा जा सकता है कि उसमें उस कार्य के करने की शक्ति न थी। हमने जहां तक परीक्षा की है, उससे विश्वास हो गया है कि प्रत्येक कार्य का होना आत्मिक बल के आधीन है। यद्यपि शारीरिक बल और धन का बल भी सांसारिक कार्यों के करने के लिये एक आवश्यकीय पदार्थ है; परन्तु आत्मिक बल के होने पर ये सब वस्तुयें उत्पन्न हो जाती हैं और इनके होने पर आत्मिक बल का होना निश्चित नहीं और न इनसे आत्मिक बल उत्पन्न हो सकता है। अब प्रश्न यह होता है कि आत्मिक बल क्या पदार्थ है? जिसके होने से समस्त कार्य पूर्णरूप से हो सकते हैं और जिसके न होने से बहुधा धनों की विद्यमानता में भी कार्य नहीं हो सकता। इसका उत्तर यह है कि ज्ञान और प्रयत्नवाली शक्ति को आत्मा कहते हैं और ज्ञान और प्रयत्न उसके गुण कहलाते हैं और गुणों के बढ़ने का नाम बल का बढ़ना कहलाता है। इसलिये आत्मा में ज्ञान और प्रयत्न की निर्बलता आत्मिक निर्बलता है और ज्ञान व प्रयत्न का बढ़ना ही आत्मिक बल है। हमारे बहुत से मित्र कह देंगे कि "न्यायशास्त्र" में जीवात्मा के ये लक्षण लिखे हैं—सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। तुमने पहले चार क्यों छोड़ दिये, और अन्त के दो क्यों रख लिये? इसका उत्तर यह है कि पहिले चार तो शरीरस्थ आत्मा के गुण हैं, उदाहरण—कोई मनुष्य हाथ से लकड़ी कुल्हाड़ी की शक्ति से काटता है, अब लकड़ी काटना कुल्हाड़ी से मिले हुए हाथ का कार्य है केवल हाथ का नहीं; क्योंकि न तो बिना कुल्हाड़ी के हाथ काट सकता है और न बिना हाथ की सहायता के कुल्हाड़ी काट सकती है, जबकि दोनों में से पृथक्-पृथक् कोई भी काटने की शक्ति नहीं रखता और मिलकर बराबर काट सकते हैं, तो वह मिले हुओं का धर्म है एक का नहीं। इसी प्रकार सुख दुःख और इच्छा, द्वेष, सूक्ष्म

शरीर के साथ आत्मा को प्रतीत होते हैं न एकाकी ( अकेले ) आत्मा को प्रतीत होते हैं और न अकेले शरीर को। यदि अकेले आत्मा के गुण मान लिये जावें तो सुषुप्ति की दशा में भी इनका अनुभव करना चाहिये; परन्तु सुषुप्ति की दशा में किसी को भी सुख, दुःख, इच्छा द्वेष विदित नहीं होते, इससे निश्चय होता है कि यह आत्मा के धर्म नहीं। यदि अकेले शरीर के मान लें तो मृतक में भी होने चाहिए; परन्तु मृतक में यह गुण नहीं, जिससे प्रकट होता है कि ये गुण आत्मा और शरीर के मेल से उत्पन्न होते हैं।

प्रिय पाठक महाशयो! हमारे अनेक मित्र कहेंगे कि सुषुप्ति काल में आत्मा को ज्ञान नहीं रहता, इसी कारण उस समय सुख दुःख आदि विदित नहीं होते. नहीं तो आत्मा में यह गुण सदैव रहता है; परन्तु उनका यह कहना ठीक नहीं; क्योंकि आत्मा किसी काल में ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता और किसी द्रव्य के गुण, ज्ञान और प्रयत्न से रिक्त नहीं हो सकता और किसी द्रव्य के गुण उसकी विद्यमानता में उसे छोड़ कर जा ही नहीं सकते। फिर किस प्रकार माना जा सकता है कि चैतन्य आत्मा के गुण, ज्ञान और प्रयत्न पृथक् हो जावें, जबकि वह विद्यमान हो और प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है, तो द्रव्य के होने के लिये गुणों का होना आवश्यक है—परन्तु अधिकांश मित्र यह कहेंगे कि क्या कारण है कि जो सुषुप्ति की दशा का ज्ञान प्रतीत नहीं होता। इसका उत्तर यह है कि ज्ञान दो प्रकार का है—एक स्वाभाविक, दूसरा नैमित्तिक, स्वाभाविक ज्ञान तो वह है कि जो बिना किसी इन्द्रिय और मन के सम्बन्ध के रहता है, जैसे अपने होने का ज्ञान। दूसरा ज्ञान पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होता है, जैसे रूप-ज्ञान के लिये रूपवाली वस्तु और रूप के ग्रहण करने वाली इन्द्रिय अर्थात् चक्षु और रूप के प्रकाश करने की शक्ति, जैसे सूर्य-दीपक इत्यादि का होना आवश्यक है। आत्मा ज्ञानी होने पर भी बिना इन तीन पदार्थों के रूप का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता और शब्द ज्ञान के लिये कान, आकाश और शब्द का होना आवश्यक है। इसी प्रकार बाह्य पदार्थों का ज्ञान बिना साधनों के हो ही नहीं सकता; परन्तु अपने ज्ञान अथवा आन्तरिक पदार्थों के जानने के लिये किसी बाह्य साधन की आवश्यकता नहीं।

प्यारे पाठको! ऊपर के दृष्टान्तों से आपने समझ लिया होगा कि जिन पदार्थों के लिये साधनों की आवश्यकता है वे बाह्य पदार्थ हैं और जिनका ज्ञान

बिना साधनों के होता है, वह उसका अपना गुण है। अब सुख-दुःख, इच्छा, द्वेष का होना बिना मन की वृत्ति संयोग के नहीं हो सकता। जब हम किसी पदार्थ को देखते हैं, तो इच्छा उत्पन्न होती है।

जब उसको बुरा समझते हैं तो उसमें द्वेष हो जाता है और जिस पदार्थ का संयोग आत्मा के अनुकूल प्रतीत होता है उसे सुख मानते हैं और जब आत्मा के प्रतिकूल होता है, उसे दुःख कहते हैं। इसलिये यह गुण मन के कारण से उत्पन्न होते हैं और सुषुप्ति काल में जबकि इन्द्रिय, मन और बुद्धि अपना-अपना काम छोड़ देते हैं तब सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष सर्वथा नहीं रहते, केवल ज्ञान और प्रयत्न जो आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, वे शेष रह जाते हैं। अब यह शङ्का होगी कि सुषुप्ति समय में आत्मा को किस वस्तु का ज्ञान रहता है और वह किसके लिये प्रयत्न करता है ? इसका उत्तर यह है कि सुषुप्ति काल में आत्मा को अपने होने का ज्ञान होता है और वह शरीर की उस न्यूनता को जो जागृत अवस्था के दुःखों से उत्पन्न हो गई है, पूरा करने के लिये प्रयत्न करता है।

अब यह शङ्का हो सकती है कि जब महात्मा गौतम ऋषि ने अपने दर्शन में जीवात्मा के छः गुण माने हैं और महर्षि कणाद ने इससे भी अधिक तो तुम्हारा कहना किसी प्रकार सत्य नहीं हो सकता। इसका समाधान यह है कि विचारपूर्वक महात्मा गौतम का दूसरा सूत्र तो पढ़ो, जिसमें महात्मा गौतम ने इन गुणों को मिथ्या ज्ञान की सन्तान में बतलाया है, इसलिये ये चार जीवात्मा के गुण नहीं हो सकते। प्रिय पाठको ! महात्मा कणादजी ने अपने वैशेषिक-शास्त्र में आत्म संयोग से ही कर्म माना है और बिना आत्मा के कर्म हो ही नहीं सकता। जैसा कि लिखा है—

**आत्म संयोग प्रयत्नाभ्यां हस्ते कर्म ॥ वै० ५ । १ । १**

जब आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है, तब ही हाथ में कर्म अर्थात् कार्य करने की शक्ति होती है, बिना आत्मा के संयोग के नहीं होती।

**तथा हस्त संयोगाच्चमुसले कर्म ॥ वै० ५ । १ । १**

और जब आत्मा से युक्त हाथ मूसल से सम्बन्ध उत्पन्न करता है, तो मूसल में कार्य करने की शक्ति आ जाती है। यहां हाथ से सारे शरीर के अङ्ग प्रयोजन हैं और मूसल से सर्व प्रकार के बाहरी शस्त्र अर्थात् साधन, जिनसे मनुष्य कार्य

लेते हैं, इसी प्रकार अन्य भी समझना चाहिए।

मित्र वर्गो! जब यह निश्चय हो गया कि आत्मा के ज्ञान और प्रयत्न दो गुण हैं और इन दोनों का नाम आत्मिक बल है और घटने का नाम आत्मिक बल की हानि है।

तब यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि इनके बढ़ने और घटने का कारण क्या है? इसका उत्तर यह है कि संसार में हमें एक नियम विदित होता है कि जहां जिसके सदृश पदार्थ मिलते हैं वहां उसकी उन्नति होती है। जहां विरुद्ध मिलते हैं, वहां हानि। जैसे वर्षा ऋतु में जब कि चारों ओर पानी बरस रहा हो और ठण्डी पवन के झोंके वेग से चल रहे हों, उस समय यदि आप एक दियासलाई की तिली जलायेंगे, तो कठिनता से जलेगी; परन्तु उसको ग्रीष्म ऋतु में जब कि लू अर्थात् गर्म वायु बह रही हो, जलाना चाहो तो बड़ी आसानी से जल जायगी। दूसरे यदि रोगी को जिसको गर्मी के कारण ज्वर आता है मगर औषधि देते चले जावें तो गर्मी के बढ़ने से रोग बढ़ता जायगा। यदि ठण्डी औषधियां दी जावें, तो रोग निवृत्त हो जायगा। इससे प्रकट है कि सदृश पदार्थों के सयोग से उन्नति और विरुद्ध के संयोग से हानि होती है।

अब जानना चाहिए कि कौन - कौन से पदार्थ हैं, जो आत्मा को मिलते हैं, उनमें से कौन - कौन अनुकूल और कौन प्रतिकूल हैं। इसका विचार करने से जहां तक ज्ञात होता है वे दो ही पदार्थ हैं, एक प्रकृति—दूसरा परमेश्वर, जिनसे आत्मा का सम्बन्ध उत्पन्न होता है। जीव चैतन्य और शरीर के सम्बन्ध से गति वाला, प्रकृति परिवर्तनवाली और ज्ञान शून्य है। परमेश्वर ज्ञान स्वरूप और स्वाभाविक क्रियावान् और आनन्द स्वरूप है। प्रिय पाठक! जबकि प्रकृति ज्ञान शून्य और क्रिया रहित है और जीव ज्ञान सहित और क्रियावान् है, तो जो प्रकृति से अपना सम्बन्ध करेंगे, तो उससे ज्ञान और क्रिया की उन्नति तो होती नहीं, हां प्रकृति के गुण उसमें प्रतीत होने लगेंगे। यद्यपि प्रकृति में जीव के सम्बन्ध से क्रिया उत्पन्न हो जायगी, तथापि कुछ अंश ज्ञान का भी संयोग से प्रतीत होगा, परन्तु जीव के यह दोनों गुण न्यून होते चले जायेंगे, जितनी प्राकृतिक शक्तियां उसके ज्ञान और क्रिया की शक्ति अधिक होती जायगी, जैसे जितने समय तक दीपशलाका धूप में पड़ी रहेगी, उतनी ही तीव्र होती चली जावगी।

भ्रातृवर्ग! अब यह तो सिद्ध हो गया कि आत्मा का बल ईश्वरोपासना है।

अनेक पाठक कहेंगे कि यह केवल कथन मात्र ही है। परन्तु यदि वे विचार पूर्वक लौकिक इतिहासों का अवलोकन करें तो उन पर विदित हो जायगा कि आत्मिक बल ईश्वर भक्तों का ही भाग है।

अर्थात् अनुसन्धान तो कीजिये कि क्या कारण था कि राजा हरिश्चन्द्र इतनी आपत्तियों के उपस्थित होने पर भी अपने सत्य पर दृढ़ रहे? क्या कारण था कि महात्मा रामचन्द्र जी ने पिता की आज्ञा पाते ही राज्य को तुच्छ समझकर त्याग दिया और बन को चले गये? क्या कारण था कि लक्ष्मण जी ने सब प्रकार के सुखों का परित्याग कर भाई के साथ बन को जाना स्वीकार किया? क्या कारण था कि सीता जो ऐसी सुकुमारी रानी ने बनों में भ्रमण करना स्वीकार किया और राज्यादि आनन्दों की कुछ भी इच्छा न की? क्या कारण था कि राजा मोरध्वज अपने पुत्र के शरीर को चीरे जाने पर भी प्रसन्न चित्त रहे। क्या कारण था कि महात्मा भर्तृहरि जी ने अपने सारे राज्य को तुच्छ जान, जंगल जाना स्वीकार किया? क्या कारण था कि गुरु तेग बहादुर यवनों के हाथ से मृत्यु को प्राप्त होने से भयभीत न हुए? क्या कारण था कि गुरु गोविन्दसिंह के दोनों लड़के दीवार में चुने जाने पर मृत्यु से न डरे, क्या कारण था कि महात्मा पूरण भक्त ने सहस्रों आपत्तियों को सहन किया परन्तु उसकी आत्मा पाप की ओर आकर्षित न हुई, क्या कारण था, महात्मा हकीकतराय ने १६ वर्ष की अवस्था में यवनों के हाथ से मरना स्वीकार किया परन्तु धर्म को न त्यागा? क्या कारण था कि महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वतीजी महाराज ने सारे भारतवर्ष का शत्रु बनना ईंट पत्थर खाना उत्तम समझा, परन्तु अधर्म का मूलोच्छेद किया और धर्म के विरुद्ध चलना महापाप समझा। आप विचारोगे तो प्रत्यक्ष ज्ञात होगा कि वह आत्मिक बल का ही कारण था कि जिसने इन महात्माओं को संसार के सम्मुख विजयी किया।

प्रिय पाठकवृन्द! क्या आपने कभी विचार नहीं किया कि वह कौनसे कारण हैं, जिन्होंने रानी पद्मिनी को प्रचण्ड अग्नि में भस्म होकर मरना स्वीकार कराया, परन्तु यवन बादशाह की बेगम बनना अस्वीकार किया? क्या कारण था कि जिसने राजा दाहिर की रानी को चिता में जलकर मरने पर कटिबद्ध किया, वह कौन-सी शक्ति थी, जिसने कृष्णकुमारी को जलती हुई चिता पर बिठा दिया? कहां तक गिनायें इस भारत भूमि में असंख्यात दृष्टान्त हैं—जिनके नाम सूर्य्य के

समान इस संसार में प्रकाशित हैं। आप इसका उत्तर यही देंगे कि धर्म भाव इनमें था, जिसने इन सुकुमारी सतियों को प्रसन्नतापूर्वक इन आपत्तियों के सहने को सन्नद्ध कर दिया। यह धर्म क्या वस्तु है केवल ईश्वरोपासना। बस आप समझ गये होंगे कि संसार में धर्म और अधर्म या पाप और पुण्य जो दो शब्द हैं इनका आशय केवल ईश्वरोपासना और प्रकृति की उपासना है। ईश्वर उपासना धर्म है जिससे आत्मिक बल मिलता है और वह ऐसे उन्नति के कार्य करता है जिससे संसार में सुखों की प्राप्ति होती है। दूसरे ईश्वरोपासना से ईश्वरीय शक्ति अर्थात् वैदिक ज्ञान की प्राप्ति होकर जीव की ज्ञान शक्ति बढ़ जाती है। संसार में जितने योगी हुए हैं, जिन्होंने अपने आत्मा को प्रकृति से अलग करके ज्ञान की ओर लगाया है वे सब संसार में ज्ञानी और विद्वान् कहलाये और अद्य पर्यन्त उनका नाम और कार्य संसार में विख्यात है। परन्तु जितने प्रकृति के उपासक हुए, जिन्होंने आत्मिक हानि को प्राप्त किया वे दास होकर चले गये उनके जीवन में मूर्खता और दुःख ने आक्रमण किया। मरने के पश्चात् भी कष्ट के अतिरिक्त कुछ न मिला और आज उन्हें कोई जानता भी नहीं।

प्रियवरो! आत्मा एक राजा है, जिसकी राजधानी यह शरीर है, इन्द्रिय, बुद्धि इत्यादि मन इसके कर्मचारी है। यदि यह राजा बलवान् होता है तो अपने कर्मचारियों पर शासन करता है और अपनी इच्छानुसार उन से काम लेता है, उस समय उसके कर्मचारी उसके दास होकर उसको प्रत्येक प्रकार का सुख देते है। परन्तु जिस समय निर्बल हो जाता है, उस समय कर्मचारी उसको दबा लेते है और वह प्रत्येक से विनय करता है, वह उनके लिये भोजन का यत्न करता है, यद्यपि यह कार्य इन कर्मचारियों का था कि अपना भोजन प्राप्त करते अर्थात् अपने विषयों को भोगते हुए भोजन अर्थात् बाह्य पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करते परंतु आत्मा को निर्बल देखकर ऐसे आलसी और अहंकारी हो जाते है कि राजा को स्वयं इनके भोजन का सन्देह लगा रहता है, उसकी सारी स्वतन्त्रता और प्रधानता बिक जाती है, वह अपने आपको राजा के स्थान में दास अनुभव करने लगता है। अब उसका कार्य्य यह होता है कि साईस की भांति घोड़ों के पालन पोषण में लगा रहे, उसे अपने उस मार्ग का ध्यान तक नहीं रहता कि कहां जाना है? वह जिन कार्य्यों को प्रबलता की दशा में तुच्छ समझता था, उस निर्बलता की दशा में उसको एक आवश्यकीय कार्य्य समझ लेता है और पदार्थों का ज्ञान

उसे प्रबलता की दशा में सुगमता से हो सकता था अब वह उसके विचार में अधिक गुरु दृष्टि आते हैं। भ्रातृवर्गो! यह तो आप जानते हैं कि जिस राजा की प्रजा अयोग्य है, वह प्रजा सदैव अकृतकार्य रहती है। राजा का कार्य राजा से होता है, दास से नहीं। इसी प्रकार जिस जाति का मुखिया अयोग्य है, उसकी भी यही दशा होती है। इसी प्रकार प्रबल आत्मा के कार्य निर्बल आत्मा से नहीं हो सकते और संसार में भी देखा जाता है कि जिस मनुष्य की इन्द्रिय उसके वश में नहीं, उसका कुटुम्ब उसके वश में नहीं रहता और जो अपने कुटुम्ब पर शासन न कर सके, वह अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता और जो अपने मुहल्ले पर शासन नहीं कर सकता, वह अपने ग्राम पर शासन नहीं कर सकता और जो ग्राम पर शासन नहीं कर सका, वह प्रान्त पर शासन नहीं प्राप्त कर सकता और जो प्रान्त के योग्य नहीं, वह देश पर क्योंकर शासन कर सकता है, और जो एक देश पर भी शासन नहीं कर सकता है, वह संसार पर किस प्रकार हुकूमत कर सकता है? यहां से पता मिलता है कि संसार में सब से बड़ी उत्तीर्णता की सोपान आत्मा इन्द्रिय और मन पर शासन के लिये आत्मा को अत्यन्त भारी शक्ति की आवश्यकता है, क्योंकि ये इन्द्रियां संसार के सहस्रों पदार्थों को मन के द्वारा सन्मुख करके आत्मा को धोका देना चाहती हैं। परन्तु प्रबल आत्मा जिसकी ज्ञान गुण परमात्मा की प्रबल शक्ति से सहायता पाकर उन्नति कर चुका है जिसको प्रत्येक पदार्थ का यथार्थ ज्ञान है, वह इन इन्द्रियों और मन के वशीभूत नहीं हो सकता। जो इन्द्रियों और मन को वश करने योग्य बल आत्मा में रखता है, वह कृतमार्य्य हो सकता है।

---

# मन-मन्दिर

[ ले०—श्री बा० पूर्णचन्द जी ऐडवोकेट ]

( ६ )

## मनसा परिक्रमा

अघमर्षण मन्त्र पर विचार करते हुए हमने लिखा था कि सृष्टि-उत्पत्ति की अवस्था पर विचार करने से हमारे अन्दर यह धारणा उत्पन्न हो सकती है कि ईश्वर सर्वव्यापक और सृष्टि का रचयिता है और कर्मफल प्रदाता है। धारणा के बाद ध्यान की विधि है। हमारा मन अति चंचल है और प्रकृति के प्रलोभन में पड़ कर ईश्वर विमुख हो जाता है। ध्यान की विधि से अभिप्राय यह है कि हमारा मन ईश्वर चिन्तन का ऐसा अभ्यासी हो जावे कि छओं दिशा और तीनों काल, हर दशा, हर अवस्था और हर वस्तु में ईश्वर की सत्ता और उसकी विभूति को अनुभव करें और ईश्वर की न्याय-व्यवस्था को हर परिवर्तन में अनुभव करें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनसा परिक्रमा के छः मन्त्र सन्ध्या की विधि में रखे गये हैं।

## परिक्रमा

स्थूल-पूजा की विधि में परिक्रमा या "परकम्मा" एक प्रचलित अङ्ग है। मथुरा वृन्दावन में सारी बृज-भूमि की परकम्मा होती है। हिन्दुओं के मन्दिरों में बहुधा परकम्मा के लिये स्थान बना रहता है, परन्तु स्थूल-पूजा में जो पैरों से चल कर परिक्रमा होती है वह मानसिक परिक्रमा से बिल्कुल भिन्न है। यह कहना चाहिये कि उल्टी ही है। मन-मन्दिर में प्रवेश करके जब जीवात्मा एकाग्रचित्त होकर ईश्वर की पूजा के लिये जब बैठता है तो उस समय मनसा परिक्रमा से अभिप्राय यह है कि आसन पर बैठकर बलवती धारणा के साथ इस बात का अभ्यास करे कि मन को सब स्थानों में घुमा दे और ईश्वर-चिन्तन से पृथक् न होने दे। जिससे लाभ यह होगा कि मन के सामने कोई भी चीज आ जावे तो उसको देखकर वह विचलित न होगा और ईश्वर को सदैव ध्यान में रखेगा।

## परकार से उपमा

हमें एक गोल चक्र या 'सरकिल' बनाने के लिए परकार की आवश्यकता होती है। परकार से हम यदि सुन्दर और सुडौल चक्र बनाना चाहें तो आवश्य-

कता इस अभ्यास की है कि परकार का एक पैर दृढ़ता से कागज पर जमा रहे और हिलने न पाये और दूसरा पैर घूमकर चारों तरफ हो आवे और फिर पहले पैर की केन्द्र में आकर केन्द्रित हो जावे। यदि जमा हुआ पैर जरा भी हिल गया तो चक्र या गोलाकार शुद्ध, सुन्दर न बनेगा।

## ध्यान से अभिप्राय

हमें सब दिशाओं में मन को घुमा कर इस बात का अभ्यास कराना है कि ईश्वर सदैव और हर स्थान में व्यापक है सर्वज्ञाता भी—और ईश्वर के प्रभाव से इस ब्रह्माण्ड का कोई भी परमाणु या कोई भी प्राणी बाहर नहीं है।

## ईश्वर का स्वरूप

हम ईश्वर को जड़ जगत् और चेतन जगत् में दो रूपों में समझ सकते हैं। जड़ जगत् में सारी रचना का वह विभिन्न कारण है और जो कुछ जड़ जगत् में रूप परिवर्तन होता है वह सब ईश्वरीय नियमों के आधार पर और किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए। इन ही जड़ जगत् के पदार्थों के द्वारा चैतन्य जगत् में जितने प्राणी हैं उनका पालन पोषण होता है। इन्हीं के द्वारा जीवन की रक्षा होती है। इन ही से दण्ड विधान की व्यवस्था होती है। इन्ही से ईश्वर की दया प्रकट होती है और इन्हीं से ईश्वर का रोष। इस जड़ जगत् में बहुत से पदार्थों के बड़े सुन्दर और आकर्षक रूप हैं। बहुतों के भयानक और भय उत्पन्न करने वाले रूप हैं। जो आकर्षक हैं उनके प्रलोभन से बचने की आवश्यकता है। जो भयानक हैं उनके भय से निर्भय होने की आवश्यकता है। यदि हम प्रलोभन में फँस गये तो हमारा नाश होगा और यदि भयभीत हो गये और कर्त्तव्य से विमुख हो गये तो महान् हानि होगी। सुख और दुख दोनों में एक महान् रक्षक की आवश्यकता है सुख में अभिमान से बचाने के लिए। अभिमान से ईर्षा और द्वेष उत्पन्न होता है उनसे बचाने के लिए और असन्तोष तथा तदुत्पन्न द्वेष भावों के निवारणार्थ एक महान् रक्षक और अटल व्यवस्थापक की आवश्यकता है। इसी प्रकार चैतन्य जगत् में एक ऐसे न्यायकारी की आवश्यकता है जिसका न्याय अटल हो और जिसकी न्याय व्यवस्था में न हमारे हस्तक्षेप की आवश्यकता हो और न गुञ्जाइश। चेतन्य जगत् मे बहुत कुछ परस्पर का द्वेष बदला लेने के भावों के आधार पर है हम अपने सुख में कमी का कारण दूसरे प्राणियों को समझते हैं या दुख की वृद्धि में दूसरों को कारण मानते हैं। यद्यपि विचार

में रखा जावे सुख और दुख हमारे ही कर्मों का फल है और हम ही उसके कारण हैं। अन्य प्राणी जिनके द्वारा हमें अच्छे या बुरे कर्मों के फल प्राप्त होते हैं वह सब कर्म फल प्राप्त कराने के निमित्त हैं। चाहे इस निमित्त बनने का परिणाम उनको भी भोगना पड़े। यदि हमारे अन्दर यह भाव सदैव बना रहे कि परमात्मा अपनी न्याय व्यवस्था से सदा हमें और औरों को कर्मों का फल प्राप्त कराता रहता है तो हम बदला लेने के भावों से बचे रहेंगे और कानून को अपने हाथ में लेने के अपराध से बचे रहेंगे। यदि हम जड़ जगत् में प्रलोभन और भय से सुरक्षित रहे और अन्य प्राणियों से व्यवहार में बदले की भावना से सुरक्षित रहें तो हम अपने जीवन को सफल और धार्मिक बना सकेंगे। और हमारा ध्यान सफल और पूर्ण रहेगा। किसी भी दशा में ईश्वर को न भूलेंगे और यही ध्यान की क्रिया का लाभ है। इन मनसा परिक्रमा के छओं मन्त्रों में इन्हीं दोनों प्रकार के भावो की पूर्ति की शिक्षा है।

## मन्त्रों के दो भाग

इन मन्त्रों में दो भाग हैं। पहले भाग में किसी एक विशेष दिशा को लक्ष में रखकर जड़ जगत् के किसी एक महान् आकर्षक पदार्थ को लक्ष में रखकर परमात्मा को लक्ष मे रखकर महान् रक्षक कहा गया है ईश्वर को अधिपति रक्षक बताकर यह भी बताया गया कि काहे मे रक्षा करता है और किससे रक्षा करता है और उनके रक्षक होने पर हम उनको बार बार नमस्कार करते हैं। दूसरे भाग में अर्थात् "योऽस्मान् द्वेष्टि य वय द्विष्मस्त वो जम्भेदध्म." इन शब्दों से परमात्मा के न्यायकारी होने की शिक्षा मिलती है। इन शब्दों का अभिप्राय यह है कि जिनसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करते हैं हम इस द्वेष के न्याय को परमात्मा की न्याय व्यवस्था पर छोड़ते हैं। इस आकाश और पृथ्वी के बीच में जितने लोक हैं उन सब मे जीवात्माओं के न्याय की व्यवस्था ही हो रही है। यदि इस सारे ब्रह्माण्ड को हम परमात्मा का एक विराट शरीर मान लें तो यह आकाश और पृथ्वी उसके दोनों जबड़े के समान हैं जिस प्रकार इस हमारे छोटे शरीर में हमारे जबड़े के ये दांत इसलिए हैं कि हम जो कुछ खायें और ग्रहण करें उसको पीसकर सारे शरीर में यथा योग्य पहुचा दे और विभाजित कर दें। इसी प्रकार विराट ब्रह्माण्ड रूप शरीर में जन्म मरण सुख दुख के चक्करों में इस न्याय की प्रक्रिया और व्यवस्था यदि हमसे बुराई करने वाले को स्वयं कुछ बुराई का फल ईश्वरीय व्यवस्था के आधार पर मिलने वाला है तो हम अपनी भावनाओं को क्यों दूषित करें और अपने को अधिक अपराधी बनावें अब हम इन छओं मन्त्रों के पहले भाग को पृथक् पृथक् दर्शाने का यत्न करेंगे।

# वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण

( लेखक—श्री रामानन्द चटर्जी सम्पादक माडर्न रिव्यू )

पं० चन्द्र गुप्त वेदालङ्कार ने भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली के सम्बन्ध में समाचार पत्रों में एक वक्तव्य प्रकाशित कराया है जिसका प्रतिवाद हमने अभी तक नहीं पढ़ा है। उस वक्तव्य का कुछ भाग इस प्रकार है :—

"हिन्दू राष्ट्र के लिए यह बड़ी चिन्ता का विषय है कि केन्द्रीय सरकार ने 'वैज्ञानिक शब्दावली' के निर्माण के लिए सर अकबर हैदरी के प्रधानत्व में जो परामर्श दातृ समिति बनाई है उसमें ६ मुसल्मान, ४ हिन्दू और २ यूरोपियन हैं। इस समिति की बैठकें 'उस्मानिया विश्व विद्यालय' के प्रांगण में हैदराबाद (दक्षिण) में हुई थी जहां शिक्षा का माध्यम फारसी मिश्रित उर्दू है। समिति के ४ सदस्य उस्मानिया विश्व विद्यालय के हैं तथा एक सदस्य अलीगढ़ विश्व विद्यालय का है। हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस तथा गुरुकुल कांगड़ी की नितान्त उपेक्षा की गई है और इनका कोई भी व्यक्ति समितिमें लिए जाने योग्य नहीं समझा गया है। समिति ने 'आल इण्डिया अंजुमन तरक्किए उर्दू' के मन्त्री श्रीयुत डा०अब्दुलहक को अपना सदस्य मनोनीत करना आवश्यक समझा है, जब कि हिन्दी की पूर्ण उपेक्षा की गई है क्योंकि हिन्दी साहित्य सम्मेलन अथवा नागरी प्रचारिणी सभा का कोई भी व्यक्ति न मनोनीत किया गया है और न विशेष रूप से आमन्त्रित किया गया है। जहां तक हिन्दी का सम्बन्ध है उपर्युक्त अन्जुमन तथा साहित्य सम्मेलन और नागरी प्रचारिणी सभा के उद्देश्य एक जैसे ही हैं।

मद्रास, महाराष्ट्र, बंगाल और गुजरात से कोई व्यक्ति समिति में न लिए जाने का सरकार के पास क्या उत्तर है। जहां संस्कृत पर आश्रित वैज्ञानिक शब्दावली पहले से ही निर्मित है। हिन्दुओं और हिन्दी के प्रति सरकार की उपेक्षापूर्ण गति विधि के ये उज्ज्वल प्रमाण हैं।

भारतवर्ष की एक वा समस्त भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली का निर्माण साम्प्रदायिक विषय नहीं है। न यह राजनैतिक विषय ही है भारत सरकार के शिक्षा विभाग के इस प्रकार के कार्य को हाथ में लेने से कोई आपत्ति नहीं हो सकती यदि वह कार्य राजनैतिक रूप ग्रहण न करे।

यतः पंडित चन्द्रगुप्त वेदालङ्कार के वक्तव्य का प्रतिवाद नहीं किया गया है अतः ठीक है ऐसा माना जा सकता है।

परामर्श दातृ समिति में मुस्लिम सदस्यों और मुस्लिम संस्थाओं के प्रतिनिधित्व की प्रचुरता का किसी भी आधारपर समर्थन नहीं हो सकता। वर्तमान काल में भारतीयों द्वारा जो वैज्ञानिक सफलतायें प्राप्त हुई हैं सही अर्थों में उनका श्रेय हिन्दुओं को प्राप्त है। भारतवर्ष की भाषाओं में जो मौलिक वैज्ञानिक साहित्य उपलब्ध होता है वह सब प्रायः हिन्दुओं के ही परिश्रम का फल है। हिन्दुओं की अपेक्षा मुसल्मानों में वैज्ञानिक शिक्षण का अधिक प्रचार नहीं है। यदि मुसलमान लोग इस बात के लिए कि उनमें वैज्ञानिक शिक्षा का हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक प्रचार है प्रसिद्ध होते और विज्ञान के क्षेत्र में उनकी सफलताएँ अधिक महत्वपूर्ण होतीं तो परामर्श दातृ समिति में उनकी प्रधानता पर न्यायतः कोई आक्षेप न होता। परन्तु सचाई इसके सर्वथा विरुद्ध है।

यह सत्य है कि 'उस्मानिया विश्व विद्यालय' गत कई वर्षों से यूरोप के वैज्ञानिक तथा अन्य ग्रन्थों के अनुवाद एवं उनके अनुसार अपने ग्रन्थों को बनाने के कार्य में लगा हुआ है। परन्तु इसी प्रकार का कार्य एक शताब्दी से अधिक समय से विज्ञान के विषय पर लेखों और पुस्तकों के रूप में बंगाल तथा भारत के अन्य कतिपय भागों में हो रहा है भले ही किसी संस्था के द्वारा संगठित रूप में न हो रहा हो। इसके अतिरिक्त गुजराती हिन्दी, बंगाली, मराठी तथा कदाचित अन्य कतिपय वर्तमान भारतीय भाषाओं में वैज्ञानिक शब्दावली संकलित हुई हैं। इन तथ्यों की उपेक्षा करना बुद्धि संगत नहीं है। जिन संस्थाओं ने यह कार्य्य किया है वे 'उस्मानिया यूनिवर्सिटी' की अपेक्षा अधिक पुरानी हैं और उनको अधिक सफलताओं का श्रेय भी प्राप्त है। उदाहरण के लिए कलकत्ता विश्व विद्यालय को ले लीजिए। संयुक्त प्रान्त की 'नागरी प्रचारिणी सभा' और बंगाल की 'बंग साहित्य परिषद्' उस्मानिया यूनिवर्सिटी अथवा उर्दू साहित्य की उन्नति के लिए स्थापित अन्य किसी संस्था से कदाचित पूर्व स्थापित हुई थीं।

समिति में मुसल्मानों की प्रधानता से भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली में अरबी शब्दों की भरमार हो जाने की आशंका हो सकती है। अरबी भाषा का भाषा के रूप में कोई विरोध नहीं हो सकता। समय के प्रवाह के कारण भारतीय भाषाओं में अरबी के जो शब्द प्रविष्ट होकर स्वाभाविक

बन गए हैं उन पर भी आपत्ति नहीं हो सकती । भारतीय भाषाओं में से अरबी के शब्दों के बहिष्कार या निष्करण का टर्की जैसा यहां कोई आन्दोलन भी नहीं है। परन्तु अरबी के शब्दों के नवीन प्रवेश पर उचित रीति से आपत्ति हो सकती है और ऐसा करना आवश्यक भी है। भारत की एक भी भाषा यहां तक कि उर्दू और पश्तों भी जो सीमा प्रान्त के कुछ भागों में बोली जाती है सेमेटिक नहीं है।

भारतीय भाषाएँ जिनका अपना साहित्य है आर्य्य अथवा द्रविड़ भाषाएँ हैं। जितनी आर्य्य भाषाएँ हैं उन्हें जिन नए शब्दों की आवश्यकता होती हैं, वे सब संस्कृत से लेती हैं अथवा संस्कृत शब्दों और धातुओं से उन्हें बनाती हैं। द्रविड़ भाषाओं में संस्कृत के शब्दों की प्रचुरता है। ये भाषाएँ अपनी आवश्यकता के अनुसार नए शब्द संस्कृत से, अपनी पुरानी शब्दावली से अथवा धातुओं से ले सकती अथवा बना सकती हैं। अरबी से नए शब्दों के लेने की न आवश्यकता होती है और न उनके लिए स्थान ही होता है निस्सन्देह उन मुसल्मानों के लिए जिनकी मातृ भाषा उर्दू है हम कोई कानून नहीं बना रहे हैं। वे अपने आप स्वयं सन्तुष्ट कर सकते हैं अथवा करेंगे।

यह सत्य है कि कतिपय मुसलमानों अथवा मुसलमान वंशों ने भारतवर्ष के विविध भागों पर शासन किया है और उनके शासन-काल में विदेशी शब्द भारतीय भाषाओं में प्रविष्ट हुए हैं। अब भी उन भाषाओं में वे शब्द विद्यमान हैं। परन्तु इन शब्दों का साधारणतया सेना, देश के आन्तरिक शासन, भूमि की व्यवस्था, कर, दस्तकारी और भवन निर्माण विद्या से सम्बन्ध रहा है। साथ ही चित्र कला, संगीत, वस्तुओं के क्रय-विक्रय और इस प्रकार की अन्य वस्तुओं से भी ये शब्द सम्बन्धित रहे हैं। उन दिनों में वैज्ञानिक शिक्षण और अनुसन्धान के लिए कोई यत्न नहीं हुआ था और यही कारण था कि अरबी के वैज्ञानिक शब्दों को आश्रय प्राप्त हुआ था।

हमारी प्राचीन संस्कृत साहित्य में बहुत से वैज्ञानिक शब्द हैं। उनका सम्बन्ध साधारणतया गणित, रसायन शास्त्र, आयुर्वेद और शिल्प इत्यादि विद्याओं से है। इस विषय पर जानकारी प्राप्त करने के लिये श्रीयुत पी. सी. राय कृत 'हिन्दू रसायन विद्या' का इतिहास और सर बी. एन. सील कृत 'हिन्दुओं की व्यावहारिक विद्यायें' नामक पुस्तक पढ़नी चाहिए।

## चीन और जापान में वैज्ञानिक शब्दावली

भारतवर्ष जैसे विशाल देश की भाषाओं के लिये वैज्ञानिक शब्दावली बनाना सरल कार्य नहीं है। यह कार्य फुर्सत के समय का कार्य नहीं है और भारतवर्ष में प्रचलित नौकरशाही रीति से भी पूर्ण होने वाला कार्य नहीं है।

हमने अपने पत्र के गताङ्क में यूरोपीय शब्दावली के सर्वाङ्गीण प्रवेश का विरोध किया था। हमारा पक्ष प्रोटन, न्यूटरन, इलैक्ट्रन, ( Pioton. neutron, election ) आदि शब्दों को उनमें बिना कोई हेर फेर किये ले लेने का है। और 'आक्सीजन' तथा इस जैसे शब्दों को भी स्थान दे देने का है।

चीनियों और जापानियों ने इस कार्य को किस रीति से सम्पादित किया है यह जान लेना भी उपयोगी होगा। विश्व भारती में एक चीनी विभाग है। हमने आचार्य क्षितीश मोहन सेन शास्त्री एम॰ ए. से पूछा था कि वे कृपा करके मालुम करके हमें सूचित करें कि चीन के पण्डितों ने यह कार्य किस प्रकार किया है। उनका उत्तर 'प्रवासी' के पिछले अङ्क में प्रकाशित हुआ है। अभी हाल में श्रीयुत टी. एफ. नामक एक बड़े चीनी पण्डित शान्तिनिकेतन में आये हुए हैं। उनका कथन है कि चीन और जापान की वैज्ञानिक शब्दावलियों का चीनी और जापानी भाषाओं में सकलन तथा निर्माण हुआ है। यूरोप की भाषाओं के वे शब्द जो पहले से इन दोनों भाषाओं में प्रचलित थे, रहने दिये गये हैं। थोड़े यूरोपियन भाषाओं के शब्द भी रक्खे गये हैं। चीन में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण के लिये एक समिति बनी हुई है जिसके अध्यक्ष श्रीयुत डा० के. सी. चेन हैं। ये रसायन शास्त्र के धुरन्धर पण्डित हैं। पहले इसके अध्यक्ष डा० एस. सी. सिन थे जो भूगर्भ शास्त्र में निष्णात थे। यह समिति वैज्ञानिक शब्दावली तय्यार कराती है और विविध वैज्ञानिक विषयों पर पुस्तकों का निर्माण भी कराती है और पुस्तकों के लिखे जाने के पश्चात् उनकी जांच करती है। जापान में इसी प्रकार कार्य होता है। यतः जापान में वर्तमान कालीन वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार चीन की अपेक्षा पहले हुआ था अतः चीन की वैज्ञानिक शब्दावली की अपेक्षा जापान की शब्दावली में यूरोपीय शब्दों का अनुपात कुछ अधिक है।

चीन और जापान के लिये यह सबसे अच्छी बात है कि उनमें एक ही मुख्य भाषा है। अतः इन दोनों देशों में वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण का कार्य अपेक्षाकृत सरल है। परन्तु भारतवर्ष में बहुत प्राचीन भाषाओं के कारण

जिनके अपने साहित्य भी हैं यह कार्य अधिक कठिन और जटिल है।

रूस में भारतवर्ष की अपेक्षा अधिक मुख्य भाषाएँ थीं। पिछले दिनों रूस की एक खबर प्रकाशित हुई थी कि वहां बोल्शविक क्रांति का इतिहास ५७ भाषाओं मे प्रकाशित हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि इन भाषाओं के साहित्य को रूस की सरकार प्रोत्साहित करती है। इन भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण कार्य का परिचय प्राप्त करना मनोरञ्जक और शिक्षाप्रद होगा। केन्द्रीय सरकार के शिक्षा विभाग को चीन जापान और रूस के कार्य से सहायता लेनी चाहिए। इस विभाग को उन देशों के सम्बन्धित अधिकारियों से विचार परिवर्तन करना चाहिए।

## वैज्ञानिक शब्दावली के निर्माण की रीति

भारतवर्ष मे बहुत सी मुख्य भाषायें हैं। अतः प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या यह सम्भव है कि समूचे भारत की एक ही वैज्ञानिक शब्दावली हो और साथ ही एक ही भाषा हो सकती है? समूचे भारतवर्ष की एक ऐसी भाषा के निर्माण और विकास मे जो पढ़ने लिखने और साहित्य की एक मात्र भाषा हो, पर्याप्त समय लगेगा। हो सकता है अनिश्चित भविष्य मे हमारी ऐसी एक भाषा हो, परन्तु इङ्गलिश को वह स्थान प्राप्त न होगा। इस बीच मे, वर्तमान परिस्थितियों में, वर्तमान भारतीय भाषाओं की वैज्ञानिक शब्दावली के लिए हमें प्रयत्न करना चाहिए, जिनमें हमारा उद्देश्य यह होना चाहिए कि जहां तक सम्भव हो अधिक से अधिक सम्मिलित वैज्ञानिक शब्द लिखने चाहिए। वर्तमान शब्दों का समान अनुपात होना सम्भव नहीं है।

संस्कृत से निकली हुई समस्त भाषाओं में एक से शब्द हो सकते हैं। द्रविड़ भाषाओं में भी ऐसा हो सकता है। उर्दू भाषा में भी भावना के अतिरिक्त इन शब्दों के प्रयोग में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। यदि भावना विजयी हो तो उर्दू में अरबी और फारसी के शब्द लिये जा सकते हैं।

इस विषय से सम्बन्धित समस्त समस्याओं पर कार्यवाहि करने के लिये एक केन्द्रीय समिति होनी चाहिए। और इस समिति के कार्य में सहायता देने के लिये प्रान्तों में छोटी २ उपसमितियां होनी चाहिए। कार्य के सतुलन के लिये प्रत्येक समिति में एकाध सरकारी व्यक्ति होना चाहिए। केवल मात्र सरकारी

ओहदे के विचार से इन समितियों में और कोई अधिकारी नहीं होना चाहिए। सदस्यों की वैज्ञानिक और साहित्यिक योग्यता ही मुख्य होनी चाहिए। जहां तक सम्भव हो भाषा सम्बन्धी क्षेत्रों के प्रसिद्ध २ व्यक्तियों और विज्ञान वेत्ताओं को समिति में लेना चाहिए। श्रीयुत पी. सी. राय इस समय हमारे प्रसिद्ध विज्ञानवेत्ता हैं और अपनी मातृ भाषा में वैज्ञानिक विषयों के अच्छे लेखक हैं। जहां तक और जितनी बार सम्भव हो उन जैसे व्यक्तियों के परामर्शों से लाभ उठाना चाहिए। जब तक सम्भव हो रवीन्द्र नाथ ठाकुर से भी विचार परिवर्तन करना चाहिए।

( माडर्न रिव्यू )

---

# आर्य्य विवाह ऐक्ट

विस्तृत व्याख्या

[२]

( गताङ्क से आगे )

## १९२३ का विशेष विवाह संशोधन ऐक्ट

( Special Marriage Amendment Act of 1923 )

जब सर हरिसिंह गौड़ ने अपना १९२३ का विशेष विवाह संशोधक बिल प्रस्तुत किया था तब उनका उद्देश्य यह था कि १८७२ के कानून की घोषणा किए बिना हिन्दुओं, मुसल्मानों और ईसाइयों आदि के पारस्परिक विवाहों को सुगम बनाया जाय। उनका एक और उद्देश्य यह था कि १८७२ की हिन्दू धर्म्म के परित्याग की घोषणा किए बिना हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया तथा सुगम बनाया जाय। १९२३ से पूर्व जैसा कि पहले वर्णन किया जा चुका है १८७२ का कानून बहुत थोड़े मनुष्यों पर लागू होता था अर्थात् ब्रह्मसमाजियों पर तथा उन थोड़े से व्यक्तियों पर लागू होता था जो अपने को अहिन्दू अथवा ग़ैर मुस्लिम होने की घोषणा कर देते थे। परन्तु बहुसंख्यक हिन्दू अपने धर्म्म के परित्याग तथा अन्तर्जातीय विवाहों को कानून सम्मत निर्धारित कराने के उद्देश्य से आवश्यक घोषणा करने के लिए उद्यत नहीं होते थे। वे हिन्दू बना रहना और साथ ही अन्तर्जातीय विवाह भी करना चाहते थे। ऐसे व्यक्तियों को अन्तर्जातीय विवाहों के लिए समर्थ बनाने के लिए १९२३ के ऐक्ट के द्वारा यह विधान किया गया था कि अपने धर्म के परित्याग की घोषणा किये बिना हिन्दू, जैनी और सिक्ख इत्यादि अन्तर्जातीय विवाह कर सकते हैं। दूसरे शब्दों में अन्तर्जातीय विवाह वैध नियत कर दिए गये थे परन्तु इस रियायत के साथ कुछ कठिनाइयां भी कर दी गई थीं जिनके कारण उन बहुसंख्यक हिन्दुओं के लिये यह कानून अनुपयोगी बन गया था; जिनकी हिन्दू समाज से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के लिये मरज़ी नहीं थी।

जब सर हरिसिंह गौड़ ने अपना बिल प्रस्तुत किया था तो उन्हें धारा सभा के मुसल्मान तथा रूढ़िवादी हिन्दू सदस्यों के विरोध का सामना करना पड़ा था।

मुस्लिम सदस्यों को तो उन्होंने इस प्रकार संतुष्ट किया था कि उक्त ऐक्ट मुसलमानों पर लागू न होगा। रूढ़िवादियों की कतिपय शर्तों को मानने के लिये बाध्य होकर उन्होंने रूढ़िवादियों को शान्त किया था। परन्तु उन शर्तों से इस बिल की समाज सुधार की उपयोगिता पूर्णतया नष्ट हो गई थी।

इस ऐक्ट के आधीन विवाह करने वाले हिन्दुओं पर जो कठिनाइयां लगाई गई हैं वे इस ऐक्ट की २२ वीं से २५ वीं धारा तक में हैं, और वे इस प्रकार हैं:-

धारा २२—सम्मिलित परिवार के सदस्य को यह विवाह परिवार से पृथक् कर देगा।

धारा २३—इस कानून के अधीन विवाह करने वाले व्यक्ति का यह अधिकार न होगा कि वह धार्मिक और लोकोपकारक संस्थाओं का प्रबन्ध करे।

धारा २४—इस कानून के आधीन विवाह करने वाले व्यक्ति और उसकी सन्तानों पर उत्तराधिकार के मामलों में १६२५ का 'इण्डियन सक्सेशन' ऐक्ट लागू होगा।

धारा २५—इस कानून के अधीन विवाह करने वाले व्यक्ति को गोद लेने का अधिकार न होगा।

## १६२३ के कानून की १८७२ के कानून के साथ तुलना

१६२३ के ऐक्ट के पास होने के बाद से अब तक इस कानून के अधीन बंगाल में प्रतिवर्ष ५० के औसत से विवाह हुए हैं और सन् १६३१ से यह संख्या प्रतिवर्ष १०० तक पहुंच गई है। ये व्यक्ति इन विवाहों के परिणामों को भली भांति समझते हैं या नहीं, यह जानना बड़ा मनोरञ्जक होगा। यह सम्भव है जब बाद में उनके और उनकी सन्तानों के जायदाद पर उत्तराधिकार का प्रश्न उठेगा तब वे अपनी पसन्द पर दुख और पश्चाताप अनुभव करेंगे। यद्यपि घोषणा करने से इन्कार कर देने से वे हिन्दू धर्म्म के दायरे में बने रहने के लिये उत्सुक थे परन्तु कदाचित ऐसा करने से हिन्दू समाज, सामाजिक प्रणाली और प्रथाओं से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु से उन्होंने अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।

इसलिये १८७२ और १६२३ के कानूनों के अनुसार होने वाले विवाहों के कानूनी स्वरूप की तुलना करना उपयोगी होगा। यह ऊपर वर्णन किया जा चुका है कि १८७२ के कानून के अधीन अहिन्दू होने की घोषणा कर देने से वर और वधू हिन्दू धर्म से परित्यक्त नहीं हो जाते और उन पर तथा उनकी सन्तानों पर

उत्तराधिकार के मामलों में उनका व्यक्तिगत धर्म लागू होता है। १८७२ के अधीन विवाह करने में यह बहुत बड़ा लाभ है। अन्तर्जातीय विवाह को कानून सम्मत बनाने के लिये स्त्री और पुरुष अहिन्दू होने की घोषणा मन को मार कर केवल ऐक्ट की शर्त को पूरा करने के लिये करते थे। इसका परिणाम यह था कि अन्त-र्जातीय विवाह करने वालों को दो बुराइयों में से एक बुराई का चुनाव करना पड़ता था। एक ओर तो १८७२ के कानून के अधीन उन्हें यह घोषणा करनी पड़ती थी कि वे हिन्दू नहीं हैं, यद्यपि उत्तराधिकार के मामलों में उन पर उनका व्यक्तिगत धर्म लागू होता था। दूसरी ओर १९२३ के कानून के आधीन अहिन्दू होने की घोषणा करने से इन्कार कर देने से वे आत्म-सुख अनुभव कर सकते थे परन्तु धारा सभा ने उन पर एक बड़ी निर्मम शर्त आरोपित कर दी थी और वह यह थी कि विवाह करने वाले स्त्री और पुरुष तथा उनकी सन्तानों पर उत्तराधिकार की एक विदेशी प्रणाली लागू होगी जिन व्यक्तियों ने १९२३ के कानून के आधीन अन्तर्जातीय विवाह किये हैं। यदि उनको यह निर्णय करने की स्वतन्त्रता दे दी जाय कि वे अपने कानून के द्वारा शासित होना पसन्द करेंगे अथवा 'इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट' के द्वारा, तो यह नितान्त असम्भव है कि वे अपने निजी कानून के मुकाबले में उत्तराधिकार की वैदेशिक प्रणाली को पसन्द करें। यद्यपि वैदेशिक प्रणाली स्त्रियों के अधिकार के मामले में बड़ी उदार है। सौभाग्य से आर्य समाजियों के सम्बन्ध में यह कठिनाई अब दूर हो गई है, परन्तु गैर आर्य समाजी हिन्दुओं के मामलों में अब भी यह बड़ी गम्भीर समस्या है कि वे १८७२ और १९२३ के कानूनों में से किस के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह करें।

जिन लोगों के हृदयों में हिन्दू कानून और समाज व्यवस्था के प्रति कोई प्रेम है उनके लिये १९२३ का कानून बड़ा घातक उपाय है। १८७२ के कानून के आधीन अहिन्दू होने की घोषणा करना भले ही मन को मारकर क्यों न की जाय, उत्तम है इसकी अपेक्षा कि १९२३ के कानून की कड़ी शर्तों को अपने तथा अपनी सन्तानों के ऊपर लादा जाय।

# सुमन-संचय

## ( १ )

## कर्त्तव्य की वेदि पर

अनन्त और बसन्त दो अभिन्न हृदय मित्र थे। अनन्त सेनापति और बसंत देश का सर्वाधिकारी था।

एक बार उस देश पर शत्रु ने एक बड़ी सेना लेकर आक्रमण किया। अनन्त स्वयं सामना करने के लिए रणक्षेत्र में गया। ३-४ दिन पर्य्यन्त तुमुल संग्राम हुआ और अन्त में अनन्त की सेना विजयी रही। वह सेना अनेक सैनिकों के साथ शत्रु के सेनापति को बन्दी करके अपने शिविर में ले गई और इन पर कड़ा पहरा बिठाया गया। बिना सेनापति की आज्ञा के उनसे मिलने जुलने और बात-चीत करने का निषेध कर दिया गया।

एक दिन रात के बारह बजे एक नवयुवती उस शिविर के द्वार पर उपस्थित हुई और उसने प्रहरि को अपने आने का उद्देश्य समझाकर बन्दी हुए सेनापति से मिलने की आज्ञा चाही। पहरेदारों ने आज्ञा देने से इन्कार कर दिया। इस पर उसने एक चिट लिखकर अनन्त ( सेनापति ) से मिलने की इच्छा प्रगट की।

सन्तरी चिट लेकर अनन्त के शिविर में गया। चिट पढ़कर वह तत्काल द्वार पर आया।

नवयुवती ने अभिवादन करके कहा:—

"सेनापते ! मैं आपसे एक भिक्षा मांगने आई हूँ। मेरा एकमात्र भाई मृत्यु-शय्या पर पड़ा है और पिता के दर्शनों के लिए छटपटा रहा है। यदि उसे देखने भर के लिए आप पिता जी को मुक्त कर देंगे तो हम पर बड़ा उपकार करेंगे। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि आपके साथ किसी प्रकार का विश्वासघात न होगा।"

नवयुवती की यह बात सुनकर, अनन्त ने कहा, "बहिन ! मुझे तुम्हारे साथ सहानुभूति है परन्तु सेना का नियन्त्रण मुझे यह आज्ञा नहीं देता कि मैं तुम्हारे पिता को घर जाने की आज्ञा दूं। मैं विवश हूँ।"

यह उत्तर सुनकर नवयुवती रोने लगी। उसने रोते हुए कहा, "सेनापते! मैं आपसे पूछती हूँ कि क्या सेना का नियन्त्रण मनुष्यत्व से ऊपर है?" यह बात अनन्त के मर्म पर जाकर लगी। उसने ठंडी श्वास ली और बिना कुछ कहे सेना-पति को घर जाने की आज्ञा देदी।

दूसरे दिन दोपहर को शिविर में सैनिक-न्याय-सभा लगी थी। अनन्त कई सैनिकों के घेरे में नीचा मुँह किए दण्ड आज्ञा की प्रतीक्षा में खड़ा था। बसन्त एक ऊंचे आसन पर बैठा दंडाज्ञा लिख रहा था। कुछ देर के उपरान्त सैनिक नियन्त्रण का उल्लंघन करने के अपराध में अनन्त को मृत्यु दंड की आज्ञा सुनाई गई। शिविर में सन्नाटा छा गया। अनन्त बन्दीगृह में डाल दिया गया।

तीसरे दिन अनन्त चरखी के निकट ले जाया गया। हजारों स्त्री पुरुषों की भीड़ लग गई। बसन्त चर्खी के निकट बैठा। उन दिनों यह चरखी भी फांसी और सूली की नाई बध करने का एक यन्त्र था। अनन्त को चरखी के भीतर बन्द कर दिया गया। उपस्थित नरनारी चिल्ला उठे। बसन्त ने एक दो की आवाज लगाई। तीसरी आवाज के सुनते ही अनन्त की आंखें बसन्त की आंखों से जा मिलीं। इधर चरखी का पहिया घूमा और उधर बसन्त ने अनन्त के देखते ही देखते जेब से पिस्तौल निकालकर अपने हृदयपर फायर किया और तत्क्षण मर गया। दोनों मित्रों के इस दुखद अन्त पर उपस्थित नरनारी बिलख २ कर रोने लगे और देश भर में कुहराम मच गया।

( २ )

## उपकार का बदला

इन्द्रदेव नामक एक लड़का एक अत्याचारी स्वामी का दास था। जिन दिनों की यह कहानी है उन दिनों मालिकों का अपने दासों पर एकाधिपत्य होता था। वे उन्हें जिस प्रकार चाहें चलाते थे। उनको क्रय-विक्रय करने तथा जान से मारने तक का उनको अधिकार प्राप्त था। देश का कानून दासों पर होने वाले अत्याचारों और अनाचारों को रोक न सकता था। उन दिनों दासों की स्थिति पालतू पशुओं से भी अधिक खराब रहती थी।

इन्द्रदेव का स्वामी उसे बहुत मारता, पीटता और तङ्ग करता था। इन्द्रदेव उसके अत्याचारों से बहुत दुखी था और उस निर्दयी स्वामी के अत्याचारों से बचने के लिये मृत्यु को अच्छा समझता था।

एक दिन उसके स्वामी ने बिना किसी अपराध के उसे कोड़ों से पीटा और मारते २ उसे अधमरा कर दिया। होश आने पर इन्द्रदेव उसके घर से भाग गया और एक ऐसे सघन बन में पहुंचा, जो सिंह, चीते इत्यादि हिंसक जन्तुओं से परिपूर्ण था। बड़े २ शिकारियों और साहसी व्यक्तियों को भी उस बन में जाते भय लगता था। इन्द्रदेव अपने जीवन से तंग आ गया था, अतः उस बन में जाते हुए उसे भय न लगा। वह चाहता था कि कोई हिंसक जन्तु उसे मार दे और वह निर्दयी स्वामी के अत्याचारों से मुक्त हो जाय।

उस बन में रहते हुए उसे ३-४ दिन हो गये थे। एक दिन प्रातःकाल जब वह सोकर उठा तो उसने देखा कि एक बड़ा सिंह उसके पास बैठा हुआ है। सिंह को देख कर उसके होश उड़ गये। उसने आंखें बन्द कर लीं और परमात्मा को धन्यवाद दिया कि उसने अनायास ही मृत्यु को मेरे पास भेज दिया है। उसने सिंह की ओर अपनी दृष्टि फेरी। उसने देखा कि सिंह अपना एक पंजा ऊपर को उठाये हुए है और दर्द से कराह रहा है। उसने साहस को हाथ में लेकर सिंह के पंजे को अपने हाथ में लिया और ध्यान पूर्वक देखने पर विदित हुआ। कि उस पंजे में एक बारीक कांटा चुभा हुआ है। उसी की पीड़ा से सिंह व्याकुल है। उसने यत्न से उस कांटे को निकाल लिया और सिंह की व्याकुलता तत्क्षण दूर हो गई।

पीड़ा दूर होने पर सिंह बड़ा प्रसन्न हुआ और उस दिन से उन दोनों में बड़ा प्रेम हो गया। इन्द्रदेव उस सिंह की गुफा में रहने लगा और सिंह उसका पालन करने लगा।

इन्द्रदेव के मालिक ने देश के राजा से उसके भाग जाने की रिपोर्ट करके उसको तलाश करने की प्रार्थना की। राजा ने उसके तलाश करने की आज्ञा दे दी और राज कर्मचारी इन्द्रदेव को ढूंढ कर लाने के लिये भेजे गये। १५-२० दिन की तलाश के पश्चात् उस बन में इन्द्रदेव मिल गया और वे उसे नगर में ले गये। स्वामी की प्रेरणा पर राजा ने भाग जाने के अपराध में इन्द्रदेव को मृत्यु दण्ड की आज्ञा सुनाई। इन्द्रदेव की प्रार्थना और निर्दोषता पर कोई ध्यान न दिया गया।

उन दिनों हाथी, शेर इत्यादि जन्तुओं के द्वारा भी मृत्यु दण्ड दिये जाने की प्रथा थी। उस राजा के चिड़िया घर में बहुत से हिंसक जन्तु पले रहते थे।

राजा ने एक सिंह को ८-१० दिन पर्यन्त भूखे रखने की आज्ञा दी और निश्चय किया कि उसी के द्वारा इन्द्रदेव का बध कराया जाय।

नियत दिन और नियत समय पर इन्द्रदेव सिंह द्वारा मरवाये जाने के लिये राजमहल के विशाल आंगन में लाया गया। दर्शकों से वह आंगन भर गया। उसमें तिल रखने भर को भी स्थान न था। राजा एक ऊँचे आसन पर बैठा। उस भूखे सिंह का कटहड़ा लाया गया। उस भयंकर सिंह को देख कर दर्शक मारे भय के कांपने लगे। भूख के मारे सिंह व्याकुल था और पिंजड़े में जोरों से दहाड़ लगा रहा था। उसकी दहाड़ से पृथ्वी कांप रही थी। इन्द्रदेव उसके पिंजड़े के पास ले आया गया। उसने घुटने टेक कर राजा से प्रार्थना की 'महाराज! मैं निर्दोष हूँ। स्वामी के अत्याचारों से तंग आकर ही मैं उसके घर से भागा था। मैं प्राण दान की भिक्षा मांगता हूँ।' सहृदय नर-नारी उसकी दशा को देख कर रोने और राजा से उसकी मुक्ति के लिये प्रार्थना करने लगे। परन्तु राजा बड़ा कठोर था। उसने उन प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान न दिया।

सिंह का पिंजड़ा खोला गया। राजप्रसाद लोगों के चीत्कारों से गूँज गया। सिंह गर्जन करके इन्द्रदेव पर झपटा और उसे मारने के बजाय वह उसके पैरों में लेट गया और आधी आंखें बन्द किये हुए उसे प्यार करने लगा। इस दृश्य को देख कर सब लोग आश्चर्य में डूब गये। सिंह का यह व्यवहार किसी की समझ में न आया। मञ्च से उठ कर राजा इन्द्रदेव के पास गया और इस आश्चर्य जनक व्यवहार का कारण पूछा। इन्द्रदेव ने कहा 'महाराज! यह सिंह वह एक मात्र प्राणी है जिसे संसार में मैं अपना कह सकता हूँ। आज अपने बिछुड़े हुए स्नेही से मिल कर मैं बड़ा प्रसन्न हूँ।' यह कह कर उसने सिंह और अपनी मित्रता का सब वृत्तान्त सुनाया। वह वृत्तान्त सुन कर सब अवाक् रह गये। राजा ने तत्काल आज्ञा दी "इन्द्रदेव! मैं तुम्हें मुक्त करता हूँ और साथ ही तुम्हारा मित्र भी मुक्त किया जाता है।"

( ३ )

## संगठन की भावना

पांडव तेहरवें वर्ष का अपना अज्ञातवास व्यतीत कर रहे थे। दुर्योधन को जब उस स्थान का पता लगा जहां वह ठहरे हुए थे तो वह बड़ा प्रसन्न हुआ और उनको अपने राजसी ठाठ का दिग्दर्शन कराने के लिये बन प्रदेश को चल

दिया। मार्ग में गन्धर्वों ने उस पर आक्रमण किया और उसे पराजित करके बन्दी बना लिया।

जब भीम और अर्जुन को दुर्योधन की इस दुर्दशा का पता लगा तो उनके हर्ष का पारावार न रहा और वह इस समाचार को सुनाने के लिये धर्मराज युधिष्ठिर के पास गये। दुर्योधन के बन्दी किये जाने के समाचार को सुन कर युधिष्ठिर चुप हो गये और गहरे श्वास लेने लगे। उनकी अवस्था को देख कर भीम और अर्जुन को बड़ा आश्चर्य हुआ। अर्जुन ने पूछा, 'महाराज! आप मौन क्यों हैं? क्या इस समाचार से आपको दुख हुआ है?'

यह सुन कर युधिष्ठिर के नेत्रों में आंसू आ गये। उन्होंने गम्भीर भाव में कहा—

"अर्जुन! मुझे इस समाचार से सचमुच दुख हुआ है। दुर्योधन के बन्दी हो जाने से मुझे जितना दुख हुआ है उससे कहीं अधिक दुख मुझे हम लोगों के पतन से होरहा है। क्या इस समाचार में प्रसन्न होने की कोई बात है?" यह कहते २ वे रुक गये। पुनः तीव्र स्वर में बोले—

'पार्थ! दुर्योधन और हम में शत्रुता है। इसके नाते हम ५ और वे १०० हैं परन्तु किसी तीसरे शत्रु के मुक़ाबले में हम १०५ हैं। धिक्कार है हमारे जीवन को यदि हम तीसरे शत्रु के द्वारा अपने भाइयों के पराभव को न केवल देखें और चुप ही रहें वरन् उस पर हर्ष मनाएँ।'

यह सुनकर भीम और अर्जुन ने चुप चाप महाराज युधिष्ठिर के चरणों को स्पर्श किया और अपने शिविर को चले गए।

( ४ )

## प्रताप के जीवन का अन्त

वीरवर प्रताप के जीवन का सायंकाल था। शत्रु द्वारा जीते हुए अपने ३२ क़िलों पर उन्होंने पुनः अधिकार जमा लिया था। मानसिंह के हृदय की विद्वेष की अग्नि लगभग शान्त हो चुकी थी और मुग़ल सम्राट् अकबर प्रताप की वीरता, कष्ट सहिष्णुता और दृढ़ व्रत पर मुग्ध हो चुके थे। मुग़लों की सेना मेवाड़ से वापस बुला ली गई थी। यह सब होते हुए भी चित्तौड़ का उद्धार न कर सकने के कारण महाराणा अपने त्याग और कष्ट सहिष्णुता के व्रत पर दृढ़ थे। उन्होंने उदयपुर के निकट पिशोला सरोवर के तट पर अपनी कुटियाएँ बनाई हुई थीं और

वे उन्हीं में निवास करते थे। इन्हीं कुटियों से राज्य का सूत्र संचालन होता था। उन्हीं कुटियों में उनका दरबार लगता था वहीं राजकीय विषयों पर मन्त्रणा होती थी और अनेकानेक विषयों पर तर्क वितर्क और विचार होते थे। कुटियां परम पवित्र थीं। इनमें विलास की सामग्री न थी, निरर्थक शोभा का आडम्बर न था। जो था वह परम पूजनीय, परम पावन और परम अनुकरणीय था। इन कुटियों में जिस उच्च हृदय तथा उदात्त विचारों का निवास था दिल्ली और आगरे के स्वर्ण जटित महलों में उसका शतांश भी दृष्टिगोचर न होता था।

एक बार पिशौला सरोवर के तट पर बनी हुई इन झोंपड़ियों में से एक में महाराणा के ज्येष्ठ पुत्र अमर सिंह जा रहे थे। झोंपड़ी नीची थी। अमर सिंह की असावधानी के कारण उनकी पगड़ी एक बांस से अड़ी और भूमि पर गिर पड़ी। अमर सिंह खिल मिला उठे और वे उसी समय उदयपुर के राजमहल को लौट गए। प्रताप सिंह यह दृश्य देख रहे थे। अपने पुत्र के इस व्यवहार से उन्हें बड़ा दुख हुआ और उनकी आंखों में आंसू आ गए। उनके हृदय में यह आशंका हुई कि अमर सिंह अपने गौरव की रक्षा न कर सकेगा। बस इस घटना ने प्रताप के हृदय पर बड़ा गहरा धक्का लगाया। एक तो चिन्ताओं और कष्टों से उनका शरीर क्षीण पहले से ही था इस चिन्ता ने उनके शरीर की रही सही चेतनता को दूर कर दिया।

प्रताप मृत्यु-शय्या पर पड़े थे। उनका कष्ट बढ़ रहा था। उनके विश्वस्त सरदार इस समय चारों ओर से उन्हें घेर कर बैठे हुए थे। वे क्षण २ में उनकी बदलती हुई अवस्था की आलोचना कर रहे थे उनका शरीर बराबर हिल रहा था। इस अवस्था में भी एक बार महाराणा के मुँह से बड़े जोर से 'हाय' निकली। उनकी अवस्था देखकर सरदार गण और भी कांप उठे। एक सरदार ने पूछा 'महाराणा! क्या कारण है कि इस अन्तिम समय में आप जैसे पुण्यात्मा को इतना कष्ट हो रहा है। महाराणा की चिर निद्रा में भी अब कौन सा विषय बाधा पहुँचा रहा है।'

महाराणा ने कष्ट से कहा 'हा! इतने दिनों का उद्योग, इतने दिनों का परिश्रम, इतने दिनों का कष्ट सब वृथा हो गया। मुझे आशा नहीं है कि अमरसिंह अपने गौरव की रक्षा कर सकेगा। आप लोग भी अमर सिंह का साथ देंगे। वह अपनी मातृ भूमि की शत्रुओं के हाथ से रक्षा न कर सकेगा और आप लोग भी

उसी का साथ देंगे। इसी चिन्ता के कारण प्राण नहीं निकलते। इतना कहते २ प्रताप की आंखों में आंसू आ गए। वे व्याकुल होकर आकाश की ओर देखने लगे और धीरे २ अमर सिंह की उपर्युक्त घटना सुनाई।

इसके बाद दुर्बलतावश वे चुप रह गए फिर बोले 'मैं अपने अंतिम समय में भविष्य अच्छी तरह अपनी आंखों से देख रहा हूं। सरदार गण! अब ये झोंपड़ियां न रहेंगी। इनके बदले बड़ी २ सुन्दर अट्टालिकाएँ बनेंगी और उनमें भोग की सामग्री उपस्थित होगी। अमर अपने देश की वास्तविक अवस्था को भूलकर अपनी कुलमर्यादा को त्यागकर उन अट्टालिकाओं में आनन्द करेगा। हा! जिस व्रत के लिए मैं २५ वर्षों तक जंगलों मे भटकता रहा जिसके लिए अपने सब प्रकार के सुखों को तिलाञ्जलि दे दी, जिसके लिए मैने अपने देश को मरुभूमि में परिणत किया, अमरसिंह द्वारा उसकी रक्षा न होगी। अमर सुखों में कर्त्तव्य को भूल जायगा और इसमें कोई सन्देह नहीं कि आप लोग भी उसका ही साथ देंगे। बस मुझे यही दुख इस अन्तिम समय में शान्ति प्राप्त नहीं करने देता।'

इतना सुनते ही सब सरदार एक स्वर से बोल उठे 'हम लोग प्रतिज्ञा करते है कि महाराणा जिस व्रत का उद्यापन किए बिना ही त्यागकर चले जाते हैं उसको हम लोग अक्षरशः पालन करेंगे और अमरसिंह को कदापि पथभ्रष्ट न होने देंगे।

इतना सुनते ही आकाश का एक प्रबल नक्षत्र टूट पड़ा और प्रताप अनन्त की गोद में विलीन हो गए।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

---

# आर्य्य समाज की चिनगारियाँ

## सत्य

लाला गंगाराम जी गुड्स क्लर्क आजकल अमृतसर में रहते हैं। आपका जन्म जिला गुजरां वाला मे हुआ था। आपने रेलवे की नौकरी की थी। नौकरी के समय मे आप पर अनेक संकट आये आपने उनको हंस कर झेला। आप रेलवे मे नौकर होते हुए भी किसी अधीन सेवक से जो स्टेशन पर नौकर होते हैं कोई काम न लेते थे। किसीसे जल न मंगवाते थे किसी से सामान न उठवाते थे जो बिना टिकट आया आप उसको छोड़ते भी न थे।

एक बार आप कोटा की ओर थे। मैनेजर की धर्मपत्नी सखियो सहित गाड़ी से उतरी। आपने टिकट मागा उसने कहा फिर दिखा दूंगी आपने विश्वास कर लिया और वह सायंकालको बिना टिकट दिखाए लौट गई, कुछ मास पश्चात् वह उसी प्रकार सैर करने को फिर आ गई आपने फिर टिकट माँगा आपने फिर टाल दिया। आपने रिपोर्ट करदी कि यह देवी अपनी सहेलियो सहित फर्स्ट क्लास के डिब्बे मे पहले आई और अब आई इसने न पास दिखाया न टिकट दिया। क्या इसको इस प्रकार आने की आज्ञा है। रिपोर्ट का होना था कि वहा खलबली मच गई आपको धमकाया गया आपने धैर्य से कहा आप आज्ञा दे दे मै न पूछूँगा अन्त मे मैनेजर महोदय ने किराया दिया और आपकी बदली चमन के पास करदी गई।

एक बार आपसे लायन क्लीयर देने मे बड़ी भूल हो गई आपको उस भूल का ज्ञान भी न हुआ। अन्त में पता लग गया और आपसे उत्तर माँगा गया स्टेशन मास्टर ने आपसे उत्तर लिखने को कहा आपने दूसरे दिन उत्तर लिखा और उसमें साफ लिख दिया कि मुझ से भूल हो गई है इस भूल का परिणाम भयानक हो सकता था ईश्वर की दया है कि कोई दुर्घटना नहीं हुई। मुझे दुःख है कि मुझ से भूल हो गई। मुझे इस भूल के बदले मे जो दण्ड दिया जायगा मैं उसे प्रसन्नता से स्वीकार करूँगा। मुझे उसमे कोई दुःख न होगा, जब स्टेशन मास्टर ने उसे पढ़ा तो कहा क्या नौकरी से पृथक् होने की इच्छा है। उत्तर दिया नहीं, तब उन्होंने कहा इस उत्तर से तो आप डिसमिस होंगे। तब उन्होंने कहा, सत्य

तो यही हैं और क्या लिखूँ। उन्होंने कहा और कुछ लिखो, आप कागज को ले गये और दूसरे दिन वही उनको देकर कहा मेरी आत्मा और लिखना नहीं मानती जो सत्य है वह लिख दिया है। जो कुछ होगा वह भुगतना होगा, स्टेशन मास्टर ने वह भेज दिया। जिस समय आफीसर ने वह पढ़ा तो उसे फायल कर दिया और इनको कोई भी दण्ड न दिया। किसी ने आफीसर से कहा, आपने बड़ा अपराध होने पर इसे क्यो छोड़ दिया। उसने कहा, मै वर्षों से काम करता हूँ आज तक किसी व्यक्ति ने भी इस प्रकार साफ २ स्वीकार नही किया, जैसे इन्होने किया है इसी कारण इनको कोई दण्ड नही दिया गया। उसके पश्चात् उनके सत्य-भाषी होने की चर्चा रेलवे मे आम हो गई।

अन्त मे उनको अमृतसर के स्टेशन पर लगाया गया और उनके सत्यभाषी, सत्यमानी, सत्यकर्ता होने के कारण उनको अमृतसर स्टेशन पर माल चढ़ाने और उतारने का ठेका भी दिया गया। वह लेना न चाहते थे और कहते थे इसमे घाटा होगा। आफीसर ने कुछ अधिक देकर उनको ठेका दिया। जब साल समाप्त हो गया तो आपने आफीसर से कहा अधिक की आवश्यकता नही जैसा और ठेकेदार लेते थे वैसा ही दिया जाय उसी से निर्वाह हो जायगा। मैं प्रथम ठेकेदारो की बातों के आधार पर कहता था कि घाटा होगा और अब काम करने से पता लगा कि उनका कथन ठीक न था।

इस प्रकार आपका सत्य पर अटल विश्वास था और सत्य ने उनकी संकट मे भी रक्षा की।

## सत्य

स्वर्गीय ला चिरंजीव भारद्वाज जी आर्य समाज के मुख्य कार्य कर्ताओ मे से एक थे। वह आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मन्त्री पद पर रहे उस समय उन्होंने आर्य भाषा मे सभा के कार्यालय का सब कार्य लिखना और लिखवाना आरम्भ किया। आप एक समय आर्य समाज बच्छोवाली (लाहौर) के प्रधान थे उस समय जब आर्य समाज का उत्सव हुआ तो अपील के पश्चात् कोषाध्यक्ष ने आपको रिपोर्ट की कि धन इतना जमा हुआ है आपने उसकी घोषणा की कि उत्सव पर इतना धन जमा हुआ है। सायंकाल को जब आप हिसाब देखने लगे तो पता लगा कि उस जोड़ मे कुछ ऐसा धन भी सम्मिलित है जो वास्तव में उत्सव का इस साल का चन्दा नहीं है जैसे कोई पिछले साल में वचन दिया गया वह इस साल में

आकर अब प्राप्त हुआ और कुछ धन जो शतांश का था इसमें जमा हो गया है। आपने रात को उत्सव मे फिर घोषणा की कि सायंकाल को जो मैंने धन की घोषणा की थी वह ठीक न थी वास्तव में धन उससे न्यून है और ठीक-ठीक राशि बता दी।

तब आर्य समाजियों ने आप से कहा प्रधान जी आपने ठीक नहीं किया जब घोषणा हो चुकी थी अब चुप रहना ही ठीक था आपने धन घटा कर समाज के काम को लाभ नहीं पहुंचाया। आपने उत्तर दिया अब तो जनता यही कह सकती है आर्य समाज के उत्सव पर धन न्यून हुआ है यदि मैं ठीक २ न बताता तो जनता यह कहती आर्य समाज का प्रधान झूठ बोलता है मैं आर्य समाज के प्रधान को झूठा कहने की अपेक्षा धन न्यून होना अच्छा मानता हूँ।

इसका उत्तर आर्यों के पास भी कुछ न था।

आप जैसे सत्य प्रेमी थे उसका दूसरा परिचय न्यायालय में मिला जब उनके वकील ने कहा आप ऐसा कहें आपने कहा जो सत्य है मैं वही कहूँगा उसके उल्टा न कहूँगा। न्यायाधीश ने अपने फैसले में उनके सत्य भाषण की भूरि २ प्रशंसा की थी।

आपने अपनी सन्तान के नाम, सत्य व्रत, सत्य काम, सत्यवती, सत्य निष्ठा रखा जिसमें से सत्यवती का बाल्यावस्था में देहान्त हो गया था शेष तीन संतानें आज कल देहली में हैं।

—स्वतन्त्रानन्द

# देशीराज्य और आर्यसमाज

[ देशी राज्यो म आर्य्य समाज की कठिनाइयो, आर्य भाइयो के कष्टों तथा आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के उत्तरदायित्व को जिसके कार्यक्षेत्र में अधिकाश देशी राज्य हैं हम भली भाति अनुभव करते हैं। उसे हम केवल यह विश्वास दिला सकते हैं कि आर्यसमाज के कार्य को सुगम और प्रशस्त बनाने के लिए उसके यत्नों म जो उसने व्यवस्थिततरूप मे आरम्भ किये हुए हैं समूचे आर्य जगत की सहानुभूति और आवश्यक सहायता उसे प्राप्त रहेगी।
—सम्पादक सार्वदेशिक ]

आर्य प्रतिनिधि सभा के वृहदधिवेशन में इस वर्ष देशी राज्यों के विषय में काफी चर्चा रही। स्थान स्थान के देशी राज्य निवासियों ने अपनी २ कष्ट कथाये सुनाईं। सबसे बुरी हालत मुसलमानी रियासतों में रहने वाले हिन्दुओं की है। सीहोर (भूपाल) में जो वहां के आर्यसमाज के प्रमुख कार्यकर्ताओं पर कसाइयों ने घातक आक्रमण किया उसकी तहमें यह बात थी कि वहां के आर्यों ने एक हिन्दू बालक की, जिसको-मुसलमानों ने बहकाकर मुसलमान बना लिया था, शुद्ध करके पुनः हिन्दू बना लिया था। इसी से चिढ़कर मुसलमानों ने हमला बोल दिया। मुसलमानी रियासतों में नवाब लोग आर्य समाज को फूटी आंख भी नहीं देखना चाहते हैं, अतः वहां पर आर्य समाज का प्रचार होना अत्यन्त कठिन है। इधर कई हिन्दू राजाओं की यह हालत है कि वे अपनी शेखी और शान इसी में समझते हैं कि लोग उनको निष्पक्ष कहें और इस निष्पक्षता को बताने के लिये वे हिन्दुओं को उचित मांगों को भी ठुकरा देते हैं और मुसलमानों को हिन्दुओं के अधिकार छीनकर दे देते हैं। कई राजा हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के बनिस्बत अपने देशी नरेशों की बिरादरी को अधिक निकट समझते हैं। हैदराबाद आन्दोलन के समय में कई हिन्दू देशी रजवाड़ों ने अपने यहां से सत्याग्रही जत्थे वगैरह जाने में रोक थाम की। इसका मुख्य कारण यही था कि वे कहते थे कि हैदराबाद रियासत एक देशी रजवाड़ा होने के कारण हमारे निकट हिन्दुओं से भी अधिक है। अतः हम उनकी सहायता करेंगे, हिन्दुओं की नहीं। इन हिन्दू रजवाड़ों को हिन्दुओं ने ही हिन्दू धर्म के संरक्षण के लिये बनाया था परन्तु बात अब उल्टी हो गई है। इन रजवाड़ों ने हिन्दुओं और हिन्दू संस्कृति के प्रति उपेक्षा-

धृति धारण करली है। मुसलमान रजवाड़े तो अपनी मुस्लिम प्रजा को संरक्षक मान उनको प्रोत्साहन देते रहते हैं। परन्तु हिन्दू रजवाड़ों ने हिन्दू प्रजा को अपना संरक्षक मानना छोड़ दिया है। इन रजवाड़ों ने पोलीटिकल डिपार्टमेंट को ही अपना संरक्षक मान लिया है और वह जैसे इनको नचाता है वैसा ही नाच नाचने लगते हैं। यह अपने निज की हानि लाभ पर कोई विचार नहीं करते। अगर पोलीटिकल रेजीडेण्ट का इशारा हो गया है कि आर्यसमाज खतरनाक वस्तु है, इसको नहीं बढ़ने देना चाहिए तो बस यह अपनी सारी ताकत आर्यसमाज के बल की हानि में लगा देंगे। हाल में ही राजस्थान की कुछ रियासतों में एक नया क़ानून जारी हुआ है जिसका नाम "पब्लिक सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट" है, इस एक्ट के अनुकूल जिस संस्था की रजिस्ट्री न कराई उस संस्था को गैरक़ानूनी घोषित करके यह देशी रजवाड़े बन्द कर देंगे, लेकिन इस क़ानून में धार्मिक मन्दिर, मस्जिद और गिरजे नहीं आते। आर्यसमाज ने यही कहा था कि जिस प्रकार मन्दिर, मसजिद और गिरजों की रजिस्ट्री नहीं हो सकती उसी प्रकार आर्यसमाज मन्दिरों की भी रजिस्ट्री नहीं होनी चाहिये। इसका उत्तर देशी राज्य के दीवानों ने यह दिया कि तुम्हारे यहां मन्त्री प्रधान और अन्तरंग सभा आदि होती है इसलिये यह सभा है मन्दिर नहीं। अतः तुम्हे रजिस्ट्री कराना पड़ेगा। इसका उत्तर आर्यसमाज की ओर से यह दिया गया कि यह तो कोरा प्रबन्ध के नाम में भेद है। मन्दिर वाले कहते हैं कि मन्दिर का प्रबन्ध अमुक महन्त या उसका चेला या उसका नियत किया हुआ पुजारी करेगा। मुसलमान यह कहते हैं कि हमारी मसजिद का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ मुल्ला करेगा। ईसाई यह कहते हैं कि हमारे गिरजे का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ पादरी करेगा। इसी प्रकार आर्यसमाजी यह कहते है कि हमारे मन्दिर का प्रबन्ध हमारा नियुक्त किया हुआ मन्त्री करेगा। हम पूछना चाहते हैं कि आर्यसमाज ने ही कौनसा जुल्म किया है जो मन्दिर, मसजिद, गिरजों की तो रजिस्ट्री नहीं कराई जाती और आर्यसमाज की रजिस्ट्री पर जोर दिया जाता है? आर्यसमाज का इतिहास त्याग, तप और बलिदान का इतिहास है। आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द ने देशी राजाओं को अपना शिष्य बनाया क्योंकि वह जानते थे कि इनके द्वारा हिंदू जाति की रक्षा हो सकती है। यह आर्य समाज का ही प्रताप है कि आर्यसमाज ने अपने भजनों और व्याख्यानों द्वारा देशी राजाओं के पूर्वज—जैसे राम, कृष्ण,

शिवाजी, महाराणा प्रताप, दुर्गादास राठौर, झांसी की महारानी, छत्रसाल आदि महाराजाओं के गुणगान कर देशी रजवाड़ों की प्रतिष्ठा बढ़ाई। अतः इन देशी राजाओं को आर्यसमाज का कृतज्ञ होना चाहिये और आर्यसमाज को अपनी संस्था समझकर इसके हर एक कार्य में सहयोग देना चाहिए। परन्तु यहां तो बात ही उल्टी चल रही है। और बजाय इसके कि आर्यसमाज के कार्यों में सहयोग दिया जावे हर प्रकार से मार्ग में रोड़े अटकाये जाते हैं।

## सिरोही राज्य का वृतान्त

सिरोही राज्य का वृतान्त ले लीजिए। यहां पर केवल आबूरोड में एक आर्यसमाज थी, सिरोही दरबार को पत्र, चिट्ठी और डेपूटेशनों द्वारा लिखते २ थक गये कि जब ईसाई मुसलमानों के लिये परमात्मा की उपासना का स्थान आप बनने देते ? और रुपये देने पर भी आर्य मन्दिर के लिये जमीन क्यों नहीं लेने देते ? परन्तु ये कोई उत्तर नहीं देते। आर्य भाइयों ने गत १५ वर्षों से रेलवे के पास जो पी० डबल्यू० डी० का किराया के लिये एक छोटा सा क्वार्टर था उसे किराया पर ले रक्खा था। और वहीं पर बैठ कर अपनी प्रार्थना और उपासना कर लेते थे। परन्तु सरकार को यह भी न रुचा और उसे भी खाली करा लिया। अब बिचारे आर्य भाई कहां मिलकर सत्संग करें ? क्या यह घोर अन्याय और धार्मिक पक्षपात नहीं ? आर्य भाई शान्ति प्रिय हैं। वे झगड़ा टंटा नहीं करना चाहते। इस वास्ते वारी वारी एक दूसरे के घर पर जाकर पारिवारिक उपासना कर लेते हैं। परन्तु आर्य पुरुषों को यह सोचना है कि इस तरह से काम कब तक चलेगा ? आर्य भाइयों ने रेलवे वालों से भी लिखा पढ़ी की थी कि आप रेलवे की जमीन से ही थोड़ा सा टुकड़ा दे दें जहां पर हम आर्य मन्दिर बना लें। परन्तु वहां के इञ्जीनियर साहब ने और एजेण्ट साहब ने यही उत्तर दिया कि जब तक सिरोही दरबार का हुक्म नहीं आयेगा हम जमीन नहीं देंगे और सिरोही दरबार किसी हालत में आर्यसमाज मन्दिर बनाने के हक में नहीं हैं। ऐसी दशा में हम इन देशी नरेशों को कैसे समझावें।

## रचनात्मक कार्यक्रम

उपरोक्त बातों से आर्य पुरुषों को घबराना नहीं चाहिये। क्यों कि धर्म का इतिहास बलिदानों और विपत्तियों का इतिहास है। आर्य प्रतिनिधि सभा हर प्रकार के वैध उपायों द्वारा आन्दोलन कर रही है। देशी रियासतों की कठिनाइयों को दूर करने के लिये एक पृथक् उपसमिति बना दी गई है। और "पब्लिक सोसायटीज एक्ट के मामले को सुलझाने के लिये दूसरी उपसमिति बना दी गई है। यह उपसमितियां बड़ी लगन से अपना कार्य कर रही हैं।

( आर्य मार्तण्ड )

### श्री महात्मा नारायणस्वामी जी का

# दक्षिण भ्रमण-वृत्तान्त

यह वृत्तान्त दो भागों में विभक्त होगा। पहले भाग में हैदराबाद दक्षिण का वृत्तान्त और दूसरे में मद्रास प्रान्त तथा दक्षणीय देशी रजवाड़ों का हाल होगा।

**पहला भाग—**

**दक्षिण हैदराबाद राज्य ( १७ नवम्बर से ३ दिसम्बर तक )**

पहली बात जिसके लिये मुझे इस राज्य का कृतज्ञ होना चाहिये यह है कि बिना किसी के प्रार्थना किये राजकर्मचारियों ने मेरे राज्य में प्रविष्ट न होने की आज्ञा को लौटा लिया। दूसरी बात मेरे स्वागत से सम्बन्धित है। जहाँ जहा मैं गया वहा की आर्य तथा हिन्दू प्रजा ने जी खोलकर मेरा स्वागत किया और यदि मैं कहूं कि कहीं कहीं वह सीमा का उलंघन करने वाला था तो कदाचित अनुचित न होगा। उदाहरण के लिये तुलजापुर को लीजिए— वहा के आर्य भाइयों ने जुलूस के साथ मेरे बैठने के लिये चौदह बैलों की एक खुली हुई बैलगाड़ी का प्रबन्ध किया था जिसमे मेरे बैठने का स्थान सड़क से ३ गज़ से कम ऊँचा न होगा। सात गाड़ीवान बैलों को चलाने के लिये साथ थे। हुजूम जो साथ था उसका ठिकाना न था। लगभग ४ घण्टे तक प्रत्येक प्रकार का ट्रैफिक बन्द रहा परन्तु स्टेट की पुलिस ने जलूस मे सहायता देने के सिवा, और कोई दूसरे प्रकार की बात विचारी ही नहीं, अस्तु इस कृतज्ञता के प्रकाश करने के बाद अब मैं भ्रमण वृत्तान्त को अङ्कित करता हूं।

**हैदराबाद सिटी**

मैं १५-११-४१ को देहली से चलकर १७ नवम्बर को प्रातःकाल हैदराबाद पहुँचा। स्टेशन पर श्री विनायकराव जी बैरिस्टर नगर के प्रतिष्ठित सज्जनो और सहस्रों नागरिकों के साथ मिले उनके साथ मे प्रस्तावित निवास स्थान गोपाल बाग में पहुँचा।

**हैदराबाद में प्रचार**

शहर में ६ जगहों पर नियम पूर्वक व्याख्यान और उपदेश दिये गये।

(१) देवीदीन बाग आ० स० सुलतानपुर बाज़ार।

(२) आर्य समाज शालीबण्डा।

(३) आर्य समाज चन्द्रिकापुर ( हुसैनी आलम )।

(४) ,, ,, धूलपेठ।

(५) आर्य समाज गोशा महल ।

(६) ,, ,, सिकन्दराबाद ( एक विशाल मैदान मे ) ।

**निम्न संस्थाओं का निरीक्षण किया गया—**

(१) केशव मेमोरियल स्कूल ।

(२) प्राथमिक हिन्दी पाठशाला धूलपेठ ।

(३) अनाथालय आर्य समाज किशन गंज ।

(४) लड़कों का गुरुकुल—एक मन्दिर के समीप ।

(५) केशव स्कूल के लिये प्रस्तावित स्थान ।

**अन्य कार्य**

(१) आर्य समाज सुलतान बाजार में दो व्यक्तियों ने वानप्रस्थाश्रम में प्रवेश किया ।

(२) आर्य समाज चन्द्रिकापुर के मन्दिर का उद्‌घाटन किया गया ।

(३) धूलपेठ के अभियुक्तों के परिवारों की सहायता कई मास से रुकी हुई थी । प्रसन्नता की बात है कि लिखने पर सार्वदेशिक सभा के मन्त्री जी ने सहायता पुनः जारी कर दी ।

(४) आर्य समाज धूलपेठ के मन्दिर के लिये २०००) की जरूरत है । सार्वदेशिक सभा को लिखने पर ज्ञात हुआ कि समाज ने अपेक्षित फार्म की खाना पूरी करके नहीं भेजी है । पं० नरेन्द्रजी को फार्म शीघ्र भिजवा देने के लिये सूचना दे दी है । विश्वास है अब फार्म भरकर सभा के कार्यालय मे आ गया होगा और सभा से अपेक्षित धन भेज दिया गया होगा ।

(५) आर्य समाज शालीबण्डा ने मन्दिर के लिये एक मकान क्रय कर लिया है । मकान के पाटने के लिये ५००) धन प्रेरणा करने पर सभा ने देना स्वीकार कर लिया है । विश्वास है इससे पटाई का काम पूरा हो जावेगा और यदि कुछ कमी पड़ी तो समाज के सभासद् और सहायक उसकी पूर्ति कर लेगे ।

हैदराबाद को छोड़ते हुए जो प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा है वह यह है कि शहर के आर्य और हिन्दुओं में दिन प्रति दिन जागृति बढ़ती जा रही है और सत्याग्रह के परिणाम से प्राय: सभी समझने लगे हैं कि उनका सिर ऊँचा हो गया है और आम तौर से हिन्दू जनता में आर्य समाज के लिए प्रेम और श्रद्धा का भाव पैदा हो गया है ।

**आर्य समाज सूर्य्यापेठ**

हैदराबाद से मोटर के रास्ते से ८० मील के फासिले पर सूर्य्यापेठ तिलंगाने में है । वहाँ पहुँच कर उपदेश दिया गया । यहाँ के आर्य सज्जन सम्पन्न और उत्साही हैं । उन्होंने

एक विशाल आर्य मन्दिर क्रय कर रक्खा है और उत्साह से सब कार्य करते हैं।

सूर्य्यापेठ से लौटते हुए राइन गोड ग्राम के निकट एक प्राचीन शिव मन्दिर है। जिसमे पत्थर की खुदाई का अत्यन्त बारीक काम हुआ है और दर्शनीय है।

## आर्य समाज निज़ामाबाद

हैदराबाद से निज़ामाबाद रेल के रास्ते पर है। २२-११ ४० को प्रातः साढे छः बजे चल कर १२ बजे दिन के निज़ामाबाद गाडी पहुँचती है। इसी गाड़ी से मैं निज़ामाबाद पहुँचा।

यहाँ एक गोशाला है जिसका अच्छा प्रबन्ध है और व्यवसायिक ढग से चलाई जाती है। शाला के प्रबन्ध कर्ताओं की इच्छानुसार उसे देखा गया। गौशाला के साथ फलों की एक वाटिका भी थी। सभी प्रबन्ध गोशाला का अच्छा प्रतीत हुआ।

रात्रि में समाज की ओर से सगठित एक विशाल सभा म व्याख्यान दिया गया। दूसरे दिन २३ ११ ४० को प्रात.काल रेड्डी बोर्डिङ्ग हाउस मे जाकर विद्यार्थियों को उपदेश दिया गया। उसके बाद समाज के मैदान मे आकर दयानन्द अनाथालय का उद्घाटन किया गया और झण्डा फहराने के बाद व्याख्यान दिया गया। तीसरे पहर ३ बजे के बाद चल कर रात को ८ बजे हैदराबाद पहुँच कर विश्राम किया।

## आर्य समाज उदगीर

हैदराबाद से प्रातःकाल चलकर ५॥ बजे सायकाल उदगीर पहुँचा शरीर शिथिल सा हो गया और कई घण्टे तक थकान रहा। रात्रि मे आर्यसमाज की वृहद् सभा मे व्याख्यान दिया गया। यहाँ के नवयुवक बडे उत्साही हैं। आर्य समाज का नगर पर अच्छा प्रभाव है। दूसरे दिन प्रात.काल दूसरा व्याख्यान देकर अहमदपुर के लिये मोटर से यात्रा की गई।

## आर्य समाज अहमदपुर

उदगीर से १ बजे दिन के चलकर सायकाल ५ बजे अहमदपुर पहुँचे, टाउन हाल में ठहरने का प्रबन्ध था। वहाँ ठहरकर कुछ आराम किया। रात्रि मे नगर की विशाल सभा में व्याख्यान दिया। अहमदपुर से दूसरे दिन चलकर रास्ते मे आर्यसमाज चाकूर और एक और ग्राम मे ठहरे और वहा की सभाओं मे सक्षिप्त से व्याख्यान देकर लातूर के लिए यात्रा की गई।

## आर्य समाज लातूर

अहमदपुर से चलकर सायंकाल लातूर पहुँचे। नगर से बाहर अनेक आर्य भाई अच्छी खासी भीड़ के साथ उपस्थित थे उनके साथ नगर कीर्तन करते हुए निवास स्थान

पर पहुँचे। रात्रि में नियत स्थान पर व्याख्यान दिया गया। सभा का स्थान बड़ा और जन समूह से भरा हुआ था।

दूसरे दिन प्रातःकाल फिर उसी स्थान पर दूसरा व्याख्यान देकर कलम के लिए यात्रा की गई।

## आर्य समाज उस्मानाबाद

कलम के रास्ते में उस्मानाबाद पड़ता है। वहाँ पहुँचते ही उस्मानाबाद के आर्य भाइयों ने सड़क पर रोक लिए प्रसन्नता और अप्रसन्नता के साथ दो घण्टे वहाँ ठहरना पड़ा वहाँ के लोगों ने उचित रीति से शिकायत की कि उनका स्थान प्रोग्राम मे क्यो नही रखा गया। उनसे आगे के लिए ध्यान रखने का वादा किया गया बहुत से नगर के प्रतिष्ठित वकील तथा अन्य सज्जन भी आ गए थे उनसे उपयोगी बात चीत करने के बाद कलम के लिए यात्रा फिर जारी की गई।

## आर्य समाज कलम

२८ नवम्बर की सायंकाल कलम पहुँचे। रास्ते के अन्त में वर्षा होने लगी थी इस-लिए भीगते भागते नगर मे पहुँचे। वहाँ प्रत्येक प्रकार के आराम का प्रबन्ध था इसलिए कुछ दिक्कत नहीं उठानी पड़ी।

कलम आर्य समाज का बड़ा केन्द्र है। यहाँ एक अच्छी कन्या पाठशाला है जिसमें १०० से अधिक कन्यायें शिक्षा पाती हैं। एक उत्तम कोटि की व्यायाम शाला है जिसमे लकड़ी, लेजम, तलवार के अलावा अन्य प्रचलित व्यायाम और कुश्तीके खेल सिखलाये जाते हैं। यह सभी कृत्य मुझे दिखलाए गए और मुझे इस उन्नत व्यायाम शाला को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस केन्द्र के आधीन ५० रात्रि पाठशालायें ग्राम निवासियों मे शिक्षा प्रसार के लिए भिन्न भिन्न स्थानों पर खुली हुई है। कई उपदेशक इस केन्द्र की ओर से निरन्तर आस पास प्रचार करते रहते हैं यहाँ के कार्य विस्तार के कारण मुझे यहाँ ३ दिन ठहरना पड़ा। यहाँ दो बड़ी सभायें दो बड़े बड़े स्थानों पर की गईं एक कलम नगर निवासियों के लिए दूसरी दूर २ से आए हुए कृषकों तथा अन्य ग्राम निवासियों के लिए। दोनों मे श्रोतृवर्ग के अनुरूप उपदेश दिया गया। यह नगर आर्य समाज के कार्य विस्तार के कारण आर्य नगर सा प्रतीत होता है। इस सब कार्य का श्रेय श्रीयुत कथले जी को है जो एक व्यापारी थे और जिन्होंने अपना समस्त कार्य छोड़कर केवल आर्य समाज के काम के लिए अपने को अर्पण कर रखा है। इनके इन सभी कार्यों मे आर्थिक सहायता देने को दो व्यापारी सज्जन हैं उनमें से एक मारवाड़ी सज्जन के यहाँ ठहरा था। मुझे यह देखकर

बड़ी प्रसन्नता हुई कि उनके छोटे छोटे बच्चे नित्य प्रति मिलकर संध्या और हवन करते हैं।

**एक आवश्यक बात**

कथले जी ने जो गरीबी का जीवन अपनाया है उसका फल यह हुआ कि उनका लड़का शिक्षा से प्रायः वंचित सा हो रहा था। वह गुरुकुल वृन्दावन मे पढ़ता था और मासिक भोजनादि व्यय न दे सकने के कारण घर वापिस चला गया था। मैंने बालक को बुलाकर उससे बात चीत की और एक चिट्ठी गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता जी के नाम लिखकर कथले जी को दे आया था कि वे इस चिट्ठी के द्वारा बालक को फिर गुरुकुल भेज देवें।

( ३ ) कथले जी को १२) मासिक देने पड़ते थे। मैंने उस समय इस धन का प्रबंध यह किया था कि जब तक उसका कुछ प्रबन्ध न हो जावे उस समय तक ६) मासिक मैं किन्ही से भिजवा दिया करूँगा और बाकी ६) आर्य्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य दे दिया करे। मेरे पास अभी तक कोई सूचना नही आई कि वह बालक गुरुकुल पहुँचाया गया या नहीं इसलिए मैंने ६) भिजवाने का कुछ प्रबन्ध नही किया।

**इस सम्बन्ध में मेरी सम्मति यह है कि यदि सम्भव हो तो सार्वदेशिक सभा दक्षिण प्रचार निधि से उस बालक की शिक्षा का प्रबन्ध कर देवे। यदि वह बालक गुरुकुल न जाना चाहे तो उसी ओर किसी स्कूल में उसके पढ़ने का प्रबन्ध कर देना चाहिये।**

**आर्यसमाज तुलजापुर**

कलम से १-१२-४० को ११ बजे दिन के, तुलजापुर के लिये प्रस्थान किया गया। तुलजापुर इस ओर प्रसिद्ध तीर्थ है और उसकी प्रसिद्धि एक प्राचीन देवी के मन्दिर से है। जिसके लिए कहा जाता है कि शिवा जी प्रत्येक बड़ा कार्य्य इस देवी के दर्शन के बाद किया करते थे। अस्तु इस समय यहाँ आर्य्य समाज का बोलबाला है। हम लगभग १२ बजे दिन के तुलजापुर के निकट पहुँच गये थे। बाहर ही बहुत से आर्य्य भाई मिले और उन्होंने एक वाटिका में बाहर ही कुछ देर वहा ठहरने का प्रबन्ध कर दिया था। वहा भोजनोपरान्त कुछ विश्राम किया ४ बजे दिन से वही १४ बैलगाड़ी वाला जलूस प्रारम्भ हुआ और सायंकाल, रास्ते में उस प्रसिद्ध देवल को देखते तथा उसके भीतर जाकर उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक देवी की मूर्ति को देखते हुए, निवास स्थान पर पहुँचे। रात्रि में एक बड़ी विशाल सभा मे जिसमें लाउड स्पीकर का प्रबन्ध था व्याख्यान दिया गया।

२ दिसम्बर को ३ बजे दिन के तुलजापुर से चल कर ४॥ बजे सायंकाल शोलापुर पहुँचे। वहा पं० वंशीलाल जी ने मेरे ठहरने का प्रबन्ध डाक्टर जी० एल० दत्ता प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालिज शोलापुर के बंगले पर किया था।

## आर्य्यसमाज शोलापुर

शोलापुर २ और ३ दिसम्बर को हम ठहरे थे। एक व्याख्यान कालिज के विद्यार्थियों के लिए कालिज के लेक्चर हाल मे दिया गया और दूसरा २ दिसम्बर की रात्रि को तिलक चौक में दिया गया।

शोलापुर के निवास काल मे पं० वंशीलाल जी आदि सज्जनों के साथ आर्य्यसमाज मन्दिर के लिए दो स्थान देखे गये जिन्हें पहले से तजवीज किया हुआ था।

( १ ) यह स्थान था जिसमें कुछ छोटी २ खपरेलें पड़ी हुई थी जैसे और किराये पर उठी हुइ थी जिसका ३०) मासिक किराया आता था। यहा मन्दिर बनाने के लिए इन सब को तोड़कर नये सिरे से मन्दिर बनाना पड़ता। इस भूमि का मूल्य ११०००) बतलाया गया।

( २ ) दूसरे स्थान में अच्छे अच्छे कुछेक मकान बने हुए थे जिनका मासिक किराया ७०) मिल रहा है। इसमे इनके सिवा कुछ मकान टूटे पड़े हुए हैं। यदि उन्ही मे आर्य्य मन्दिर बनाया जावे जो तीन मंजिल का अच्छा खासा मकान ६ या ७०००) की लागत से बन सकता है। ये सब १३०००) को मिलेगा।

ये दोनों जगह शहर के बीच मे हिन्दुओं के मुहल्लो मे हैं। मेरी सम्मति दूसरे स्थान के लिये है कि वह ले लिया जावे। बीस हजार रुपये खर्च करने से मन्दिर भी बन जायगा और ७०) मासिक की आय भी बनी रहेगी। यह मानो २० हज़ार का एक प्रकार का investment ही होगा। इसलिए इसे शीघ्रता से ले लेने की आवश्यकता है।

× × ×

यहाँ हैदराबाद राज्य का मेरा भ्रमण समाप्त होता है। पं० दत्तात्रेय प्रसाद जी वकील इस भ्रमण में बराबर मेरे साथ रहे और उन्होंने प्रत्येक सम्भव आराम मुझे देने का बराबर यत्न किया जिसके लिए मैं उन्हें हार्दिक धन्यवाद देता हूं।

स्टेट के इस भ्रमण से यह बात स्पष्ट हो गई कि स्टेट के लोग अब आर्य्यसमाज से झगड़ा नहीं करना चाहते और आर्य्यसमाज के प्रचार मे बाधा भी नही डालना चाहते। परिणाम स्वरूप आर्य्यसमाज स्टेट मे बराबर वेग के साथ बढ़ रहा है।

३ दिसम्बर की रात मे मद्रास एक्सप्रेस से मैं मद्रास चला गया। पं०दत्तात्रेय प्रसाद जी अपनी इच्छानुसार मद्रास तक गए थे वहा से हैदराबाद लौट आए।

## मद्रास प्रान्त—

### मद्रास शहर

४ दिसम्बर को सायंकाल ५॥ बजे मैं मद्रास सेंट्रल स्टेशन पर पहुँचा। स्टेशन पर पं० केशवदेव जी ज्ञानी तथा शर्मा जी, आदि अनेक प्रतिष्ठित पुरुष मिले। उनके साथ निवास स्थान पर पहुँच कर विश्राम किया गया। ६ दिसम्बर से प्रचार का कार्यक्रम था। इसलिए ५-१२-४० का खाली दिन मद्रास की सैर करने मे खर्च किया गया और निम्न-स्थान देखे गए—

(१) दक्खन हिन्दी प्रचार कार्य—मद्रास मे हिन्दी प्रचार की छोटी सी एक बस्ती बन गई है जिसमें अनेक निवास स्थान, छापाखाना, प्रकाशन गृह, पुस्तकालय, वाचनालय तथा कार्यालय आदि सम्मिलित हैं। यह सभा हिन्दी प्रचार का बड़ा उपयोगी काम कर रही है। अनेक जगह इसके उपदेशक काम करते हैं। अनेक शाखायें हैं अनेक परीक्षायें तथा उसके केन्द्र हैं।

(२) थियोसोफिकल सोसाइटी अडयार—यह कौलीनी ससार की समस्त सोसाइटियों का केन्द्र है। इसका प्रकाशन गृह प्रसिद्ध है। पुस्तकालय भी अच्छा है। इमारते अच्छी बनी हुई हैं। यहा एक बड़ का प्रसिद्ध पेड़ है जिसकी ऊपर से आई हुई शाखायें भूमि के भीतर चली गई हैं और Pillars के ढंग की मालूम होने लगी है। बड़ी बड़ी सभायें इस वृक्ष के नीचे होती हैं। आयु की दृष्टि से यह पेड़ दुनिया म दूसरे दरजे का समझा जाता है।

(३) Eliot Beach—मद्रास के समुद्र के किनारे इसलिए प्रसिद्ध हैं कि वे किनारे ही से इतने गहरे हैं कि बड़े बड़े जहाज उन किनारो तक आ जाया करते हैं।

(४) मछली भवन (Aguarium)—यहाँ सैकड़ो प्रकार की मछलियाँ हैं। एक मछली है जिसका घोड़े का सा मुंह है और जिसे sea horse कहते हैं।

### बाबू जगन्नाथप्रसाद कन्या पाठशाला

६ दिसम्बर को मद्रास से १०–१२ मील के फासले पर बाबू जगन्नाथप्रसाद कोषाध्यक्ष आर्य समाज मद्रास ने अपनी कोठी बनाई है और उसी के पास यह पाठशाला है। पाठशाला अच्छी हालत में है।

गुजरात संघ लोअर फोर्ट (lower fort) मे गुजरात निवासियों ने अपना एक संघ बना रखा है। उसी संघ की ओर से रात्रि मे व्याख्यान दिया गया।

७ दिसम्बर को निम्न स्थानों पर व्याख्यान दिए गए—

(१) हिन्दुस्तानी हितैषी मंडल की ओर से Vallabha Agraharam, Triplicane में।

(२) आर्य समाज पालियन थोप की ओर से Kulti Thamberan St. Parambur में।

८ दिसम्बर को आ० स० चाइना बाजार में प्रातः १० बजे दिन के व्याख्यान दिया गया।

सायंकाल को Triplicane में एक आर्य कान्फ्रेंस का उदघाटन करते हुए व्याख्यान दिया गया।

सायङ्काल पं० धर्मदेव जी आगए रात्रि में उनके साथ बंगलौर के लिए यात्रा की गई।

## बंगलौर

प्रातः ६॥ बजे बंगलौर पहुँचा। स्टेशन पर बंगलौर के अनेक आर्य भाई मिले। बंगलौर छावनी समाज के प्रधान श्री शंकर राव जी वकील की कोठी में ठहरे।

(१) दिन में स्त्री समाज में शंका समाधान का समय था। अनेक देवियों ने प्रश्न किए, उन्हें उत्तर दिए गए। इन देवियों को बड़ी चिन्ता जो इनके प्रश्नो से प्रकट हुई यह थी कि आर्य्या बनने से पहले जो वे राम नामादि का जप करती रही थीं कहीं वह सब अकारथ तो न जायगा।

(२) रात्रि में आ० स० बंगलौर छावनी की ओर से टौन हाल में व्याख्यान दिया गया।

(३) १० दिसम्बर को प्रातःकाल सिटी आर्य समाज बंगलौर के मन्दिर में व्याख्यान दिया गया।

(४) रात्रि में वैश्य बोर्डिङ्ग हाउस के बड़े हाल में व्याख्यान दिया गया।

(५) श्रीयुत हरनामदास कपूर की माता जी ने १००) सार्व० सभा के वेद प्रचार निधि के लिए दान दिए।

(६) ११ दिसम्बर को प्रातःकाल गुरुकुल केन्‌री में जाकर ब्रह्मचारियों तथा ग्राम निवासियों को उपदेश दिया गया।

(७) रात्रि में National High School के हाल में Vedic ideal of life विषय पर व्याख्यान दिया गया।

म० शंकरलाल तथा हरनामदास जी कपूर को कुछेक आवश्यक बातें उपासना के प्रकरण से सम्बन्धित समझाई गईं।

## आर्य्यसमाज मैसूर

१२-१२-४० को प्रात: काल बंगलौर से चलकर ११।। बजे दिन के मैसूर पहुँचे।

आर्य्य समाज मन्दिर में, जो किराए का मकान था, उपनिषद् की कथा की गई। मन्दिर समाज का अपना नही था इसलिए उपस्थित सदस्यों का ध्यान, इस कमी की पूर्ति के लिए दिलाया। प्रसन्नता की बात है कि एक देवी ने ५००) देने का वचन देकर अन्यों को उत्साहित कर दिया और १०००) से कुछ अधिक धन के वादे उसी समय हो गए। अधिकारियो ने विश्वास दिलाया कि अब यथा सम्भव शीघ्र मन्दिर बन जावेगा। १३-१ -४० की रात्रि मे टौन हाल में व्याख्यान दिया गया।

खाली समय में मैसूर की सैर की गई कुछेक बातें यहा अंकित की जाती हैं :—

( १ ) मैसूर की संस्कृत लायब्रेरी में अच्छे-अच्छे हस्तलिखित ग्रंथ उपस्थित हैं। उनके सम्बन्ध में अनेक विद्वान् देख भाल करते रहते हैं।

( २ ) एक पहाड़ी पर राजमहल जो नया बनाया गया है दर्शनीय है।

( ३ ) उसी पहाड़ी पर एक देवी का प्रसिद्ध मन्दिर है जिसने महिषासुर का वध किया था। मन्दिर से बाहर लगभग २५ फ़ीट ऊँची एक मूर्ति उसी असुर की बनाई हुई है। मूर्ति अच्छी बनाई गई है। इसी असुर के नाम से इस राज्य का नाम महिषूर=मैसूर पड़ा है।

## गुरुकुल अनाथालय चंचन काटी

१४ दिसम्बर को मैसूर से ४० मील के फ़ासिले पर कार के द्वारा जाकर इस गुरुकुल को देखा गया और ब्रह्मचारियो तथा ग्राम निवासियों को उपदेश दिया गया।

## एक विशेष नोट करने योग्य बात

यह गुरुकुल एच० के० पट्टानियाह महाशय ने बड़े परिश्रम से बहुत सा धन खर्च करके चला रखा है। यह महाशय उस जाति में से हैं जिसकी आबादी ४० लाख है और जिसे उच्च जातियों ने वेद पढ़ने के अधिकार से वंचित कर रक्खा है। पट्टानियाह महोदय का यत्न है कि इस संस्था से कुछ संस्कृत के विद्वान् तय्यार करके भिन्न भिन्न स्थानो पर जहा २ इस जाति के लोग आबाद हैं उन्हे नियुक्त कर देवें ताकि वे इस जाति के लोगो और विशेष कर बच्चों को वेद पढ़ाकर वेद पढ़ने और न पढ़वाने के भेद को दूर कर दें। उनका यह यत्न स्तुत्य और हमारी सहानुभूति और सहायता का पात्र है। पट्टानियाह दृढ़ आर्य्य हैं इन्हें थोड़ी सहायता देने से इनकी समस्त जाति निकट भविष्य मे आर्य्य बन सकती है जो ४० लाख की संख्या मे है जैसा कि कहा जा चुका है। इसलिये मेरी सम्मति में यह विषय अधिक ध्यान देने के योग्य है।

लौटते हुए मैसूर का वह प्रसिद्ध स्थान देखा गया जहां कावेरी नदी से बहुमात्रा में बिजली निकाली जाती है राज्य ने इसके निकट ही एक बड़ी सुन्दर वाटिका बना दी है जिसे वृन्दावन कहते हैं और जिसमें फव्वारों की बहुतायत है और रात्रि में बिजली की रोशनी में उनका दृश्य अपूर्व हो जाता है। इसी वाटिका में कुछेक भोंदुओं ने एक कावेरी की मूर्ति पैसा बटोरने के लिये बना रक्खी है।

१५ दिसम्बर को यहा से मंगलौर के लिए यात्रा की गई।

## आर्य्यसमाज मंगलौर

१६-१२-४० की सायंकाल ५ बजे, २४ घण्टे रेल मे रहने के बाद मंगलौर पहुँचे। ६ बजे एक घण्टे के बाद ही व्याख्यान का समय था इसलिये व्याख्यान दिया गया।

नोट—अरवियनसी का किनारा और प्रकाश स्तम्भ Light house देखने योग्य है।

## आर्यसमाज कारकल

१७ दिसम्बर को दोपहर बाद कारकल के लिए मोटर कार से २५ मील यात्रा की। वहा के प्रधान महोदय आगए थे इसलिए यात्रा मे कोई असुविधा नहीं हुई। ५ बजे सायंकाल वहाँ पहुँचते ही आध घण्टे के बाद एक विशाल सभा मे व्याख्यान दिया गया।

नोट—कारकल ऋषि दयानन्द के जीवन चरित्र मे अंकित श्रीमती रमा बाई का जन्म स्थान है।

यहाँ का राम समुद्रम और उसके समीपवर्ती जैन मन्दिर और बाहुबल स्वामी का ४५ फ़ीट ऊँचा st tue देखने योग्य हैं।

## आर्यसमाज उडपी

१८ दिसम्बर को दोपहर के बाद मोटर द्वारा ४० मील की यात्रा करके उडपी पहुँचे। उडपी माधवाचार्य का जन्म स्थान है और उनके यहाँ आठ मठ हैं। एक विद्वान् ने अपनी वक्तृता में कहा कि इन मठों के केवल भोजन व्यय से एक यूनिवर्सिटी चल सकती है। यहाँ आर्यसमाज का विशाल मन्दिर और उसके साथ ही एक बड़ा अहाता है मन्दिर के विशाल हाल में व्याख्यान दिया गया। और एक सज्जन के यहाँ उसी समय भोज रक्खा गया था इसलिए उसमें आंशिक भाग लेकर रात्रि ही में वहा से चलकर कारकल वापिस आगए और वहीं विश्राम किया गया।

## आर्य समाज मंगलौर

१६ दिसम्बर को प्रातःकाल बस में चल कर १० बजे दिन के फिर मंगलौर आ गये।

यहाँ उस दिन तीसरे पहर दो घण्टे का समय शंका समाधान के लिये रक्खा गया था। कई अच्छे सुशिक्षित विद्वान् वास्तविक जिज्ञासा के साथ आये और शंकायें कीं और उत्तर प्रत्युत्तर के बाद सन्तुष्ट होकर चले गये।

### आर्य समाज कन्नानोर

दोपहर को रेल द्वारा मंगलौर से कन्नानोर पहुँचे। यहाँ स्टेशन पर साधु शिवप्रसाद जी अच्छे और नगर के प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ स्टेशन पर मौजूद थे। उनके साथ उनके निवास स्थान पर जाकर विश्राम किया गया। रात्रि में एक बहुत बड़ी सभा में जिसमें पाँच सहस्र से कम व्यक्ति न होंगे, व्याख्यान दिया गया।

### एक दूसरी विशेष नोट करने योग्य बात

यहाँ कन्नानोर के आस पास एक थिया जाति आबाद है जिसकी आबादी २० लाख है। इस जाति के एक गुरु "नारायण गुरु" के नाम से बहुत प्रसिद्ध हैं। उन्होंने इस जाति को एक सूत्र में पिरोकर उन्हें तीन मानने योग्य बातें बतलाईं। एक ईश्वर, एक धर्म, एक जाति। इस जाति में अच्छे शिक्षित विद्वान्, वकील और डाक्टर सभी प्रकार के व्यक्ति हैं और सभी उपर्युक्त ३ सिद्धान्तों के मानने वाले हैं। साधु शिवप्रसाद का इस नगर में और इस जाति के बीच बड़ा मान है। उन्होने आर्य बन कर अब इस जाति में वैदिक धर्म का प्रचार करना शुरू किया है कि इन उपर्युक्त ३ सिद्धान्तों के मानने वालों ही का नाम आर्य है और यही वैदिक धर्म है और इसी धर्म का आर्य समाज प्रचार करता है।

### आर्य समाज कालीकट

२१ दिसम्बर को दोपहर कालीकट पहुँच कर के. सी. भल्ला महोदय के यहाँ ठहरे और विश्राम किया। दूसरे दिन हंसराज हाल की बुनियाद रक्खी गई और उसी सभा में उपदेश दिया गया। रात्रि में मदुरा के लिये यात्रा की गई।

### प्रथम दक्षिण आर्य सम्मेलन मदुरा

२३ दिसम्बर को १०-३० बजे दिन के मदुरा पहुँचा। इस बीच में उपर्युक्त सम्मेलन का प्रधान भी बन गया था इसलिये उसी दृष्टि से मदुरा में श्री पण्डित गंगाप्रसाद जी उपाध्याय ने स्वागत का सफल प्रबन्ध किया था।

मदुरा शहर में मीनाक्षी विद्यालय में ठहरे, जहाँ पहले से सम्मेलन का कार्यालय था और उपाध्याय जी तथा अन्य सज्जन वहाँ ठहरे हुए थे।

सम्मेलन की रिपोर्ट सभा के कार्यालय में पहुँच चुकी होगी, इसलिये उसका विवरण यहाँ अङ्कित करना अनावश्यक है।

मदुरा में आर्य समाज का इस अवसर पर बड़े पैमाने पर और विद्वत्तापूर्ण प्रचार हुआ जिससे नगर का शिक्षित और विद्यार्थी वर्ग बड़ा प्रभावित हुआ। मदुरा में यों कहना चाहिए कि भूमि तय्यार हो गई बीज डालने की कमी है। यहा कुछ काल तक बाबू शिवचन्द्र को छोड़ देने से, विश्वास है कि अच्छा आर्य समाज बन जावेगा।

सम्मेलन में वीर सावरकर का व्यवहार बड़ा श्रेष्ठ था, वे रोगी होने पर भी सम्मेलन में आये और अच्छे शब्दो में आर्य समाज और स्वामी दयानन्द को याद किया।

### रामेश्वर और धनुष कोटि

केवल देखने के उद्देश्य से मैं यहा ( इन स्थानो में ) आया था। रामेश्वरम् वह जगह है जहा से रामचन्द्र जी का पुल बनवाकर लंका को जाना कहा जाता है।

धनुष कोटि—रामेश्वर से ७ मील के फासिले पर वह स्थान है जहाँ से आज कल सीलोन को स्टीमर आदि जाया करते हैं। दोनो जगह समुद्र के सिवा और कोई दर्शनीय वस्तु नहीं है। रेल का रास्ता इन जगहों का अवश्य सुहावना है। रेल की सड़क के दोनों ओर मीलों तक समुद्र हैं, उनके बीच में रेल पर मनोरञ्जक है। यहाँ से लौट कर फिर मदुरा आये और मदुरा से ट्रैवेंड्रम की ओर यात्रा की।

### ट्रैवेंड्रम और कन्याकुमारी

प्रात: ८ बजे ३०-१२-४० को मदूरा से चलकर सायंकाल ६ बजे ट्रैवेंड्रम पहुँचे।

३१ दिसम्बर को निम्न कार्य किये गये:—

( १ ) ग्रन्थ शाला ( पुस्तकालय ) तथा वाचनालय जो ट्रावनकोर के एक राजकुमार के नाम से खोला गया है देखा गया।

( २ ) एक स्त्री शाला को देखा गया जहा अरक्षित स्त्रियो की रक्षा की जाती है।

( ३ ) तीसरे पहर अनाथ बालिकाओं का आश्रम तथा स्कूल जिसमें दस्तकारी आदि की शिक्षा दी जाती है, देखा गया और बालिकाओं को उपदेश दिया गया।

( ४ ) ग्रंथशाला के उत्सव में शरीक होकर व्याख्यान दिया गया।

( ५ ) सायंकाल ५ बजे कन्याकुमारी के लिए बस में यात्रा की गई और ६-३० बजे वहां पहुँचकर राज्य के छत्रम में विश्राम किया गया।

१-१-४१ को दिन में प्रात:काल कन्याकुमारी की सैर की गई। जहा अरबियनसी, बंगाल की खाड़ी और हिन्दुस्तान का समुद्र मिलते हैं वह स्थान दर्शनीय है वहा स्नान करने के लिये अच्छे घाट बने हुए हैं। यह स्थान ट्रावनकोर राज्य के अन्तर्गत है। वहा एक विवेकानन्द पुस्तकालय है। उसके प्रबन्धकर्ता ने बतलाया कि यहा २००० मछुए रहते थे

और वे सभी ईसाई हो गए थे अब उनके प्रयत्न से ३०० से अधिक शुद्ध होकर फिर हिन्दू हो गए हैं। बाकी के लिए यत्न जारी है। कन्याकुमारी से वापिस होकर ट्रेवेंड्रम से १ १ ४१ की रात्रिमें मदरासके लिए यात्रा की और ३ १-४१को छः बजे Igmire पहुँचकर वहां से घोड़ा गाड़ी करके मदरास सेण्ट्रल पहुँच कर उसी समय ८ बजे बम्बई के लिए यात्रा की। ४ को बम्बई पहुँचा ५ को आ० स० माटुङ्गा में उपदेश दिया गया और वहाँ से वापिस होकर उसी रात देहली के लिए यात्रा की गई जहा ७-१-४१ को प्रातः पहुँचकर यात्रा समाप्त की गई।

—नारायण स्वामी

---

## श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज की

# बंगाल, आसाम का भ्रमण वृत्तान्त

मैं १६-१२-४० को देहली से चलकर १७ को कलकत्ता पहुँचा और १३-१-४१ को कलकत्ता से चलकर १५-१-४१ को देहली आया। इस अवसर में आर्य समाज आसनसोल और कलकत्ता तथा गाड़ो बागान का उत्सव किया और निम्न आर्य समाजों में गया— बजवज (कलकत्ता) राजशाही, गौरङ्ग (राजशाही) शिवपुर, चाँदपुर (आर्य समाज नहीं आर्य समाजी हैं) मेदनीपुर इसी जिला में बाँधागुड़ा, दीघादमंट। आसाम में गोहाटी (यहाँ आर्य समाज था अब एक साल से बन्द है उस आर्य समाज का सम्बन्ध प्रादेशिक सभा पंजाब से था) नौगाँग, गोलाघाट, सिवसांगर, सिलहट, शिलाङ्ग (यहाँ भी प्रादेशिक सभा पंजाब के आधीन आर्य समाज था परन्तु आजकल कोई नहीं है उपदेशक गृह पर गए हुए हैं जो संभल मुरादाबाद के रहने वाले हैं सम्भव है उनका न रहना ही कारण हो)

**आसाम की आबादी १९३१ की जन गणना के अनुसार**

| | | | |
|---|---|---|---|
| सर्व संख्या | ९२४७८५७ है | जैन | २८०३ हैं |
| इनमें पुरुष | ४८४४१३३ हैं | बौद्ध | १५०४५ हैं |
| स्त्रिएँ | ४००३७२४ हैं | मुसलमान | २७८०५१४ हैं |
| सर्व हिन्दू | ५२०४६५० हैं | ,, पुरुष | १४६१७६२ हैं |
| हिन्दू पुरुष | २७५१६५७ हैं | ,, स्त्रिएँ | १३१८७९२ हैं |
| ,, स्त्रिएँ | २४५२९९३ हैं | ईसाई | २४९२४६ हैं |
| आदि निवासी | ९९२३९० हैं | ,, पुरुष | १२४०४५ हैं |
| सिख | २७९० हैं | ,, स्त्रिएँ | १२५२०१ हैं |

**विभाग**

आसाम चार भागों में विभक्त है—सूरमा घाटी, आसाम घाटी, देशी राज्य, सीमाप्रांत।

(१) सूरमा घाटी। सिलहट का सार खासिया जयन्ती हिलज़, नागा हिलज़, रोसाई हिलज़, पांच भागों में विभक्त (जिले हैं)।

(२) आसाम घाटी, ग्वालपाड़ा, कामरूप, दरंग, नोगाँग सिवसागर लखीमपुर, गाडर हिलज (जिले हैं)।

( ३ ) देशी राज्य—मनीपुर खासी स्टेट्स, ( छोटी २ रियासतें हैं )

( ४ ) सीमाप्रान्त सदीया ( ब्रह्मा की सीमा ) काली पाडा ( तिब्बत की सीमा )

बंगाल प्रान्त इससे पृथक् है।

## उपदेशक

आर्यसमाज के बंगाल आसाम मे निम्न उपदेशक हैं—

पं० दीनबन्धु जी वेद शास्त्री आसाम में हैं उनके सहकारी चार प्रचारक हैं। जिनमे से एक मनीपुरी, दूसरा खसिया जयन्तीया, तीसरा पाटनी और चौथा नमशूद्र है आसाम में कुल पांच उपदेशक हैं।

## बंगाल में

पं० जितेन्द्रनाथ जी मल्ली, पं० श्रीकृष्णचन्द्र जी मोजमदार ( कलकत्ता के समीपवर्ती समाजो मे काम करते हैं। पं० भुवनमोहन जी जिला मेदनीपुर में, पं० प्रियदर्शन जी जिला राजशाही में हैं उनके साथ एक श्री सूर्यकान्त जी हैं।

इस प्रकार बंगाल में भी पाँच उपदेशक हैं सब मिलाकर १० उपदेशक बंगाल आसाम में हैं और ईसाइयों के १९ मिशन केवल आसाम मे काम करते हैं।

जिला सिलहट और ग्वाल पाड़ा मे ग्रामो में भी कुछ समाजे हैं, आसाम में और किसी जिला मे अभी तक नही है।

इस प्रकार बंगाल, आसाम में कई जिले ऐसे हैं जहां आर्यसमाज का नाम मात्र भी प्रचार नहीं है न्यून से न्यून प्रत्येक जिला मे एक उपदेशक होना ही चाहिए।

## आर्थिकावस्था

श्री जुगलकिशोर विरला जी आर्य प्रतिनिधि सभा बंगाल आसाम को जो धन देते हैं वह इस प्रकार है :—

२००) प्रतिमास आसाम प्रचार के लिए।

१००) प्रतिमास बंगाल प्रचार के लिए।

६०) प्रतिमास दारजलिंग प्रचार के लिए।

८०) प्रतिमास जनगणना के लिए।

यह नियत रूप से है इसमें ८०) फरवरी तक है फिर बन्द हो जायेंगे इसके अतिरिक्त जब कभी सभा विशेष आवश्यकता अनुभव करती है उस समय उन से धन प्राप्त कर लेती है इनके अतिरिक्त सेठ दीपचन्द जी पोद्दार भी प्रतिमास सहायता देते हैं कुछ और भी दानी होंगे परन्तु कलकत्ता में जैसा होना चाहिए वैसा नहीं है।

## जनता की रुचि

जनता मे जो लिखे पढ़े व्यक्ति हैं वह अनुभव करते हैं कि उनकी सहायता होनी चाहिए वह धर्म विषय मे मार्ग निकालने मे असमर्थ प्रतीत होते हैं जबसे पाकिस्तान की चर्चा चली है उस समय से यह अपने आपका असहाय अनुभव कर रहे हैं। क्योंकि कांग्रेस इस विषय मे कुछ न करेगी यह ऐसा विचार रखते हैं। मैं जिनसे मिला हू वे आर्यसमाज का स्वागत करते हैं परन्तु अभी आर्यसमाज को धन देने के लिए उद्यत नहीं हैं उनको यह भी भ्रम है कि आर्य समाज के पास धन बहुत है, वह बंगाल, आसाम मे चाहे तो लाखों रुपये प्रति वर्ष व्यय कर सकता है। वह मनोयोग देने को उद्यत है। यदि न्यायालय मे कोई विवाद हो तो वकील भी मिल जायेंगे। परन्तु अभी इनसे धन न मिलेगा।

जो साधारण जनता है, वह आर्य समाज का स्वागत करती है। धर्म की दृष्टि से इस समय सनातन धर्मी, ब्राह्मण भारतीय सेवा संघ, हिन्दू मिशन, रामकिशन मिशन, काम करने वाले हैं। इनम से सनातन धर्मी तो जो हैं वही हैं। रामकिशन मिशन औषधालय द्वारा सेवा करता है, वह धर्म परिवर्तनादि से उदासीन ही है। ब्राह्मण समाज भी सनातन धर्म की श्रेणी का शाक्त समुदाय है, शेष भारतीय सेवा संघ है जिसके नेता स्वामी प्रणवानन्द जी हैं। हिन्दू मिशन शुद्धि करता है और विशेष कर ईसाइयों को मिलाता है। परन्तु उनके मार्ग में कठिनाई है, वह शुद्धि करके किसमें शामिल करे, यह उसे सूझता नहीं है। हिन्दुओं की पुरानी जातीयता दृढ़ है, वह नए को आने नहीं देती हैं। शुद्ध होने पर भी यदि नीच ही रहना है तो ईसाई रहना उससे उत्तम है, यह प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है। इस अवस्था मे साधारण जनता को आर्य समाज का ही आश्रय प्रतीत होता है और वह प्रसन्नता से आने को उद्यत हैं। परन्तु आर्य समाज के पास धन और उपदेशक नहीं हैं। आर्य समाज से वह लोग उपवीत लेकर आर्य हो जाते हैं और अपना नाम आर्य ही बतलाते हैं। जाति पात का भेद आर्य समाज मे नहीं है। अतः वह सब मिलकर आर्य बिरादरी बन जाते हैं और उनमे कहीं २ तो विवाह सम्बन्ध भी आर्य दृष्टि से हो गये हैं। इसलिए साधारणतया वह छोटी जातियाँ आर्य समाज का स्वागत करती हैं। परन्तु उनके पास धन नहीं है। अतः वे धन कैसे दें।

जहाँ २ आर्य समाजे हैं वहाँ मुसलमान परिवार दो या चार अथवा अधिक आर्य समाज में सम्मिलित होकर आर्य बन गए हैं। अतः शुद्धि कार्य भी हो सकता है।

इस प्रकार शिक्षित, अशिक्षित, धनी, निर्धन, बड़े, छोटे आर्य समाज को चाहते हैं अब एक प्रश्न मांस भक्षण का है इस समय जो बंगाली, आसामी आर्य समाजी हैं उनमें

अधिक से अधिक पाँच प्रतिशतक मॉस न खाते हों तो न खाते हों शेष सब खाते हैं मैं इस बात को साफ करने के लिए एक घटना लिख देता हू। हम एक आर्य समाज में गए उस आर्य समाज के प्रधान के गृह पर ठहरे। जो शिक्षित हैं, प्रतिष्ठित हैं। भोजनके समय उनकी धमपत्नी ने भोजन परसा परन्तु प्रधान जी उस चौक म न बैठकर पृथक् चौके मे दूर बैठे और कहा महाराज जी आज मेरा परिवार मुझे छोड़कर सब वैष्णव हैं। चौके म निरा मिष भोजन बना है मेरी स्त्री, बालक यही भोजन करगे मैंने अपने लिए स्वय मत्स्य बनाया है वह चौके स बाहर बनाया है। अत मैं इस समय चोक म आपके साथ बैठकर भोजन न करूँगा आदि। इससे आप अनुमान करले कि मॉस क विषय में क्या अवस्था है अनेक स्थानों पर जहा हमने भोजन किया वहा बगाली आसामी सज्जन हमारे साथ बैठे उन्होने हमारे कारण उस समय मॉस न बनाया था न खाया हो था।

जिला सिलहट और सुन्दर वन में आय समाजी ऐसे भी हैं जिनका व्यौपार ही मछली का है। उसम से एक ने किसी समय कहा था। आप मुझे आय समाजी माने या न माने मैं आर्य समाजी हू और वैदिक धर्म पर मर मिटने को उद्यत हू परन्तु माँस छोड़ना असम्भव है। मैं अपने आपको किसी से न्यून आय समाजी नही मानता हू मेरे में यह दोष है इसका फल मुझे परमात्मा जो चाहे दे इत्यादि।

मूर्ति पूजा के विषय म मुझ भय था कि बगाल मूतिपूजा को न छोड सकगा परन्तु वहा आकर पता लगा कि वह एसी बात नहा है हा एक बात अवश्य है सभव है किसी समय न्यायालय म अभियोग हो उस समय पता लगेगा कि न्यायाधीश क्या सम्मति रखते हैं।

बगाल में अनेक जमीदार हैं उनकी सपत्ति देव सपत्ति है अर्थात् उनक किसी पूर्वज ने अपनी जायदाद देवता के नाम करदी और उसके प्रबन्ध के लिए उसकी सतति ही नियत की गई। उस सज्जन ने यह इस दृष्टि से किया था इस सपत्ति को कोई व्यसनी होकर नष्ट न करदे अब उसकी औलाद म जायदाद बट गई है और उस देवता की पूजा अपने अपने हिस्से के अनुसार उनकी सतान करती हैं। वह भी एक पुजारी नियत कर देते हैं वह पुजारी देवता की पूजा करता है उसके जीवन निर्वाह के लिए कुछ धन दिया जाता है शेष जायदाद को जमींदार स्वय भोगता है। इस रीति से जमींदार जिस जायदाद का स्वामी है वह जायदाद देवता के नाम की है। पजाब में आप एक महन्त समझलें किसी महन्त ने जायदाद मन्दिर, गुरुद्वारे के नाम करवादी उसी प्रकार की बंगाल की

अवस्था है वह जमीदार न मूर्ति पूजा करता है न पुजारी ही है। कई जमीदार नास्तिक भी हैं यदि वह आर्य समाजी बन जायें तो संभव है किसी समय कोई भाई अभियोग चलाए उस समय देखें क्या निर्णय होगा अभी तक तो जो आर्य समाजी हैं वह आर्य होकर पुजारी से पूर्ववत् कर्म करवाते हैं स्वयं कुछ नहीं करते हैं पूछने पर कह देते हैं हमारे पूर्वज ने जायदाद रक्षार्थ ऐसा किया था हम भी कोई नष्ट नहीं करते हैं उन्होंने यह कब लिखा था उनकी संतति में कोई आर्य समाजी न होगा।

आसाम में मूर्ति पूजा पहले से ही नहीं है यहाँ १६ वीं शताब्दी में श्री शंकरदेव जी हुए थे उन्होंने जो प्रचार किया उसमें मूर्ति का स्थान नहीं है उनके जो मन्दिर हैं वह यह 'नाम घर' के नाम से प्रसिद्ध हैं प्रत्येक ग्राम मे नामघर अवश्य होगा उसमें कोइ मूर्ति नहीं होती सब सत्संगी लोग उसमें आकर बैठते हैं विशेष समय मे सम्मिलित भी होते हैं और बैठकर संकीर्तन करते हैं इसलिए आसाम में मूर्तिपूजा का प्रश्न ही नहीं है।

इसी प्रकार आर्यसमाज के सिद्धान्तों का प्रचार भली प्रकार हो सकता है। प्रचार में सनातन धर्मी प्रतिबन्धक न होंगे। मुसलमान, ईसाई प्रतिबन्धक अवश्य होंगे। परन्तु इधर का मुसलमान पंजाब वा यू० पी० का मुसलमान नहीं है सहनशील हैं। उदाहरणार्थ मैंने एक आर्य को देखा म० सूर्यकातजी जो प्रथम मुसलमान अपनी स्त्री सहित आर्य बना उसका भ्राता भी मुझे मिला उससे बातचीत करने पर उसने कहा जमाल ( सूर्यकांत का प्रथम नाम ) की इच्छा है वह आर्य रहे वा मुसलमान वह मेरा भाई है। मैंने सुना है कि उसके माता-पिता भी उससे स्नेह करते हैं उसका पिता तो सुना है प्रसन्न है वह कहता है पहले इसमें कई व्यसन थे अब इसने व्यसन छोड़ दिए हैं अतः यह अब अच्छा होगया है। अनुमान है यदि यत्न किया जाय मुसलमान भी आर्य हो जायेंगे।

## विशेष चिन्तनीय

अबदाल नाम की जाति है जिनके रीति रिवाज हिन्दुओं से ही मिलते हैं। १९२१ तक वह अबदाल भी लिखे जाते थे परन्तु १९३१ में उनको मुसलमान ही लिख दिया गया क्योंकि मुसलमानों में इस गणना में भी जाति उड़ा दी गई है इसलिए उस जाति को चेतन करना कठिन हो गया है ( यह अबदाली मलकाने जैसे मुसलमान थे। लेखक )

२० सहस्र मोची हैं जो हिन्दू हैं परन्तु इन पर अब मुसलमानी प्रभाव पड़ रहा है यदि उनकी रक्षा न की जाय तो १९४१ में तो निश्चय नहीं १९५१ में वह अवश्य मुसलमान लिखे जायेंगे हिन्दू अनुभव करते हैं कि वह मर रहे हैं परन्तु उनके गुरु ब्राह्मण और अन्य नेता कोई मार्ग नहीं बतलाते हैं जिससे रक्षा हो वह मार्ग केवल आर्यसमाज ही बता सकता है।

—स्वतन्त्रानन्द

# प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेन्स मदुरा की

# रिपोर्ट

( ले०—श्री शिवचन्द्र जी संयोजक मन्त्री, प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेन्स, मदुरा )

---

## वैदिक प्रचार और व्याख्यान माला

यद्यपि मुख्य कान्फ्रेन्स की तिथियाँ ता० २६ तथा २७ दिसम्बर थी। परन्तु नियमित प्रचार ता० २४ दिसम्बर से आरम्भ हो गया था और निरन्तर ता० ३० दिसम्बर तक प्रातः, सायं तथा रात्रि में होता रहा। प्रातः सन्ध्या, यज्ञ, प्रार्थना तथा उपासना होती थी। इसके अध्यक्ष श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति तथा श्री पं० मदनमोहन जी विद्याधर थे। प्रातः ६ बजे से ११ बजे तक व्याख्यान होते थे और सायं ५ बजे से रात्रि के १० बजे तक व्याख्यान होते थे। इस प्रचार के सिलसिले में जिन महानुभावों के व्याख्यान हुए उनके नाम इस प्रकार हैं—श्री पूज्य विद्वद्वर पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए०, श्री पं० धर्मदेवजी विद्यावाचस्पति, श्री पं० मदनमोहनजी विद्याधर, श्री पं० केशवदेवजी ज्ञानी, श्रीयुत शिवचन्द्र जी, श्रीयुत के. सी. भल्ला जी, श्री प० सुधाकर जी, श्रीयुत साधु शिवप्रसाद जी, श्री पं० धर्मकाम जी। जनता दत्तचित्त होकर व्याख्यानों को श्रवण करती थी। आरम्भ मे ही जनता को यह कह दिया जाता था कि व्याख्यानों की समाप्ति पर जो भी जिस विषय पर चाहे प्रश्न कर सकता है। मूर्ति पूजा, अवतारवाद, कांग्रेस हिन्दू महासभा, आर्य समाज मे अन्तर, देश में रोटी की समस्या किस प्रकार हल हो सकती है, विषयों पर जनता की ओर से प्रश्न होते थे जिनका पूर्ण रूप से समाधान किया जाता था।

## दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा का निर्माण !

ता० २६ दिसम्बर को मध्यान्ह को १ बजे से श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज की अध्यक्षता में दक्षिण भारत की समाजों से आए हुए प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई जिसमें विद्वद्वर श्री पूज्य पं० गंगाप्रसादजी ने उन समस्त बातों पर प्रकाश डाला कि किस प्रकार मदुरा में यह प्रथम दक्षिण भारत आर्यन कान्फ्रेन्स बुलाई गई ! आपने इस अवसर पर दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा बनाने का विचार प्रगट किया जिसका सब ही प्रतिनिधियों ने हार्दिक स्वागत किया और विचार के पश्चात् सर्व सम्मति से निश्चय हुआ

कि प्रान्तीय प्रतिनिधि सभा का निर्माण किया जावे, उसका नाम दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा रखा जावे और उसका हैडक्वाटर मद्रास रखा जावे। सभा के पदाधिकारियों तथा अन्तरङ्ग सभा के सदस्यों का निर्वाचन हुआ। प्रतिनिधि सभा निर्माण सम्बन्धी प्रस्ताव तथा अधिकारी तथा अन्तरङ्ग सदस्यों के नाम अन्यत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं।

## समाजों के प्रतिनिधियों की सूची जो उक्त बैठक तथा कान्फ्रेन्स में उपस्थित थे

दक्षिण भारत की १२ आर्यसमाजों के २६ प्रतिनिधि कान्फ्रेन्स में तथा उक्त बैठक में सम्मिलित हुए थे जिनकी सूची निम्न प्रकार है—

| Serial No. | Name of Aryasamaj | Serial No. | Name of Delegats |
|---|---|---|---|
| 1. | Chinabazar, Madras | 1. | Syt. M. B. Sharma ji |
| | ,, | 2. | ,, J. P. Gupta ji |
| | ,, | 3. | ,, Pt. K. Gnani ji |
| | ,, | 4. | ,, M. Krishna Rao ji |
| | ,, | 5. | ,, K Shriramlu ji |
| | ,, | 6. | ,, M. E. Lognatham ji |
| | ,, | 7. | ,, P. M. Natesan ji |
| | ,, | 8. | ,, Pt. M. Sundaram ji |
| | ,, | 9. | ,, Inder Sen ji |
| | ,, | 10. | ,, V.N. Kumar Swamji |
| 2. | Peramboor, Madras | 11. | ,, M. Adikesavloo ji |
| 3. | Mangalore | 12. | ,, U Gopal Nayak ji |
| | ,, | 13. | ,, B. Mohanappa Thingalaya ji |
| 4. | Bhaktivilas yelwal Road, Mysore | 14. | ,, Dharam Rajan ji |
| | ,, | 15. | ,, Ramaswami ji |
| | ,, | 16. | ,, Kuroji Rao Damodarji |
| 5. | Cantonment Bangalore | 17. | ,, H. Kapur ji |
| | ,, | 18. | ,, Anup Chand ji |
| 6. | Shri Rampore, Bangalore | 19. | ,, Pt. Dharam Devji Vidyavachaspati |
| | ,, | 20. | ,, ,, Sudhakar ji |
| 7. | Tenali | 21. | ,, ,, Madan Mohan Vidyadhar ji |
| 8. | Kuchipudi | 22. | ,, ,, Gopdev ji |
| 9. | Cuddappah | 23. | ,, A. Raghavendra Raoji |
| 10. | Kottayam | 24. | ,, Pt. Narayan Dev ji |
| | ,, | 25. | ,, Pt. Abhaya Deva ji |
| 11. | Karkala (S.K.) | 26. | ,, K. Venkateswarulu ji |
| | ,, | 27. | ,, Keshava Ram Chandra Shenoy ji |
| 12. | Cannanore | 28. | ,, Sadhu Shiv Prasad ji |

२६वें एक सज्जन श्री M. K. Ringaswami Iyanger नामक चोला-पुरम जिला त्रिचनापल्ली निवासी ने अपने यहाँ आर्यसमाज खोलने का वचन दिया था और उन्होंने प्रतिनिधि बनने की इच्छा प्रकट की थी। अतः विशेष रूप से उन्हें भी प्रतिनिधि बना लिया गया था।

श्री ला० नारायणदत्तजी (नई देहली) कोषाध्यक्ष सार्वदेशिक सभा तथा श्री म० कृष्ण जी ( लाहौर ) उपप्रधान सार्वदेशिक सभा भी उक्त प्रतिनिधियों की बैठक तथा कान्फ्रेन्स में उपस्थित थे।

## कान्फ्रेन्स का प्रथम दिवस

ता० २६ दिसम्बर को ठीक ४-३० बजे सायंकाल को श्री महात्मा नारायण स्वामी जी के सभापतित्व में कान्फ्रेन्स की कार्यवाही आरम्भ हुई। पण्डाल को चित्रों, पताकाओं तथा केले के पत्तों से यथाशक्ति सजाया गया था।

प्रारम्भ मे श्री पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति ने वैदिक प्रार्थना की। इसके पश्चात् मीनाक्षी विद्याशाला की छात्राओं ने वन्देमातरम् गायन किया। इसके पश्चात् श्री स्वागता-ध्यक्ष जी तथा प्रधान के भाषण पढ़े गए और २ प्रस्ताव पास हुए।

## उपदेशकों की बैठक

ता० २७ दिसम्बर को मध्यान्ह मे १ बजे से श्री पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज के प्रधानत्व में दक्षिण भारत के उपदेशकों की एक बैठक हुई जिसमे इस बात पर विचार हुआ कि भविष्य में दक्षिण भारत में वैदिक धर्म का प्रचार किस प्रकार अधिक सफलता और तीव्र गति प्राप्त कर सकता है। लगभग सबही उपदेशकों ने अपने अपने अनुभव तथा कठिनाइयाँ श्री पूज्य स्वामी जी महाराज के सम्मुख रक्खे। अन्त में श्री पूज्य स्वामी जी महाराज ने सबको निर्देश देते हुए बतलाया कि जितना समय और जितनी शक्ति आप व्याख्यान ( Public lectures ) में व्यतीत करते हैं उससे कहीं अधिक लोगों के साथ व्यक्तिगत सम्पर्क तथा प्रेम बढ़ाकर उनको वैदिक धर्म तथा आर्य समाज के सम्बन्ध में उनसे समय समय पर मिलकर, रुचि बढ़ानी चाहिए और उनके मानसिक सन्देहों को मिटाकर ज्ञान की वृद्धि करनी चाहिए।

## कान्फ्रेंस का दूसरा दिन

सायंकाल को ४॥ बजे से कान्फ्रेंस का पुनः खुला अधिवेशन आरम्भ हुआ और शेष प्रस्तावों पर जो अन्यत्र प्रकाशित किए जा रहे हैं, वक्तृताएँ हुईं और सब प्रस्ताव सर्व सम्मति से स्वीकृत हुए। आज के दिन इसी समय स्वातन्त्र वीर श्री बैरिस्टर सावरकर का जलूस नगर में निकल रहा था, जलूस के साथ भीड़ अपार थी।

जलूस के समाप्त होते ही श्री सावरकर जी आर्य कान्फ्रेंस में पधारे। श्री सावरकर जी के पधारने से पूर्व ही आर्यन कान्फ्रेंस पण्डाल जनता से खचाखच भरा हुआ था। अतः बहु संख्यक जनता को निराश होकर पण्डाल के बाहर ही खड़े होकर कान्फ्रेंस की कार्यवाही को सुनना पड़ा। पण्डाल के बाहर भी लाउड स्पीकर्स का प्रबन्ध था। अतः बाहर भी जनता बड़ी सुगमता के साथ व्याख्यान सुनती थी।

स्वातन्त्र वीर नेता ने अपने संक्षिप्त ओजस्वी पूर्ण अंग्रेजी भाषण में कहा कि "हिन्दू महासभा और उसके नेता हिन्दू संगठन का सर्व प्रथम बिगुल बजाने वाले नहीं थे किन्तु हिन्दू संगठन का इस देश में सर्व प्रथम बिगुल बजाने वाले नेता ऋषि दयानन्द थे और उनके अनुयायी और उनकी स्थापित की हुई संस्था आर्य समाज सबसे अधिक हिन्दू सङ्गठन का कार्य कर रही है। अतः प्रत्येक व्यक्ति को आर्य समाज मे सम्मलित होना चाहिए और दक्षिण भारत के कोने २ मे आर्य समाजे स्थापित हो जानी चाहिएं। आर्य समाज ने हिन्दू धर्म की रक्षा का सबसे अधिक कार्य किया है। इसके बाद आपने पाकिस्तान की योजना का विरोध किया।

इस समय कान्फ्रेंस में श्री डाक्टर मुन्जे और श्री डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंग भी आ गए थे श्री महाशय कृष्ण ने जो पूर्व से उपस्थित थे पाकिस्तान विरोधी प्रस्ताव को उपस्थित करते हुए भाषण दिया जिसका समर्थन तथा अनुमोदन श्री डाक्टर मुन्जे तथा श्री डाक्टर सर गोकुलचन्द नारंग ने किया।

इसके पश्चात् शुद्धि प्रस्ताव पर भाषण हुए। यह प्रस्ताव भी सर्व सम्मति से स्वीकृत हुआ।

### कृतज्ञता प्रकाशन

अन्त मे उन सब स्थानीय महानुभावो को जिन्होने कान्फ्रेंस को सफल बनाने मे सहायता दी थी सबको धन्यवाद दिया गया, जिनके नाम निम्न प्रकार है—

1. Syt. N. M. R. Subbraman, Chairman, Municipal Board
2. „ Doctor Ram Subramanyam of Harley's Nursing Home
3. „ „ Yagayanarrayan „ „ „
4. „ A. Rangaswami Aiyar, Advocate, Chairman, Reception Committee, Aryan Conference.
5. „ A Narayan Aiyar, Advocate
6. „ Doctor Varadrajlu Naidu, General Secretary, Reception Committee All India Hindu Mahasabha Session.
7. „ Sitaramya, G. O. C. Volunteer Corps. Hindu Mahasabha Session.
8. „ P. K. Raghvan, Municipal Councillor.

9. „ Jambuswami Rao, Agent, Indian Bank
10 „ R S Naidu, Bar at-Law Executive officer, Meenakshi Temple
11 „ Seshaya, Head Master, Meenakshi Vidyashala
12 „ Seth Gaggo Bhai Proprietor, Truthful Manufacturing Co
13 „ Chimman Lal A Parikh, a leading Gujrati businessman.
14 „ Gaibi Lal ji Secretary Gujrati Association
15. „ Secretary Sourastra Old Boys' Association
16. „ President Sindhi Association
17 „ Krishnmachari, a local Congress worker
18 „ Kappuswami Clerk of the Conference
19 „ All the Press Reporters of Madura
20 „ Mahalingam of Madras जिन्होने अंग्रेजी भाषण का अनुवाद तामिल मे किया था। शान्ति पाठ के पश्चात् कान्फ्रेंस की कार्यवाही समाप्त हुई।

## विधवा विवाह सहायक कान्फ्रेन्स

ता० २६ दिसम्बर को सायकाल को आर्यन कान्फ्रेन्स पण्डाल मे विधवा विवाह सहायक कान्फ्रेन्स विद्वद्वर श्री पूज्य प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय एम० ए० के सभापतित्व मे हुई। इस कान्फ्रेन्स को सफल बनानेका श्रेय Sriyut Chettiar जो मद्रास विधवा विवाह सहायक सभा के मन्त्री हैं तथा श्री सेठ गग्गो भाई Proprietor Truthful Manufacturing Co. Madura को है।

## श्रीयुत एन० सी० चटर्जी का अंग्रेज़ी में एक विशेष व्याख्यान

ता० ३० दिसम्बर को सायकाल श्रीयुत एन. सी. चटर्जी बार-एट-ला कलकता तथा बगाल प्रान्त के एक प्रमुख नेता का एक विशेष व्याख्यान आर्यन कान्फ्रेन्स पण्डाल में श्री पूज्य प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय एम. ए. के सभापतित्व में हुआ। आपका भाषण अन्यत्र प्रकाशित किया जा रहा है।

## कान्फ्रेन्स की विशेष सफलतायें और भावी परिणाम

इस कान्फ्रेंस से जो विशेष सफलता प्राप्त हुई और शुभ परिणाम निकले वे निम्न प्रकार हैं—

( १ ) समस्त भारतवर्ष मे एक ही ऐसा प्रात रह गया था जिसमें अभी तक प्रातीय प्रतिनिधि सभा का निर्माण नही हो सका था। प्रत्येक आर्य भाई और बहिन को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि इस कान्फ्रेन्स की सफलता का श्रीगणेश ही दक्षिण भारत आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना से हुआ। इस सभा की स्थापना का सब से अधिक श्रेय श्री पूज्य महात्मा

नारायण स्वामी जी महाराज तथा विद्वद्वर श्री पूज्य प० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, एम० ए० को है। और इस महान कार्य के लिए आप दोनो महानुभावो का नाम दक्षिण भारत के आर्यसमाज के इतिहास में अमर रहेगा। आप दोनो ने आर्यसमाज के क्षेत्र में दक्षिण भारत की एक बहुत बड़ी कमी को पूर्ण किया है।

( २ ) दक्षिण भारत की साधारण जनता तो क्या इधर के शिक्षित समुदाय ने मद्रास आदि मुख्य स्थानो को छोड़कर हैदराबाद आर्यन सत्याग्रह के पश्चात् भी आर्यसमाज का केवल नाम ही सुना हुआ था, उनको आर्यसमाज के सिद्धान्तो, शिक्षाओ तथा कार्य का कुछ भी ज्ञान न था। इस कान्फ्रेन्स के पश्चात् समस्त दक्षिण भारत के शिक्षित समुदाय में आर्यसमाज के मिशन की चर्चा होने लगी है चूंकि इस कान्फ्रेन्स का Press Propaganda साधारणतः भारतवर्ष के समस्त समाचार पत्रो में और मुख्यतः मद्रास प्रान्त के समाचार पत्रों में आर्यसमाज के इतिहास में शोलापुर आर्यन कांग्रेस के दूसरे नम्बर पर हुआ था। समझदार लोग मूर्ति पूजा आदि विषयों पर मतभेद रखते हुए भी अब आर्यसमाज की बात को बड़े प्रेम और आदर के साथ सुनते हैं और शिक्षित जनता में विशेषतः युवको में आर्यसमाज के विषय में अधिक जानने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो रही है।

( ३ ) मदुरा नगर में जो दक्षिण भारत की मथुरा समझी जाती है और उसके आस पास भी आर्यसमाज का निकट भविष्य बड़ा उज्ज्वल दृष्टिगोचर होता है! ईश्वर ने चाहा तो मदुरा का पौराणिक गढ़ किसी दिन वैदिक धर्म और आर्यसमाज की प्रगतिओ का केन्द्र बन जावगा।

## आर्यसमाज चायना बाजार मद्रास का सहयोग

आर्य समाज चायना बाज़ार मद्रास के समस्त आर्य भाइयों ने इस सम्मेलन को सफल बनाने के लिए पूरा पूरा उद्योग किया था। श्री मान्यवर सेठ मानक जी भाई शर्मा, श्री मान्यवर सेठ जगन्नाथ प्रसाद जी, श्रीयुत इन्द्रसैन जी, श्रीयुत बी० एन० कुमार स्वामी, श्रीयुत केशवदेवजी ज्ञानी, श्रीयुत एम० कृष्णराव, श्रीयुत गणेशजी आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। आर्यसमाज चायना बाज़ार मद्रास ने कान्फ्रेंस को सफल बनाने के लिए ४००) की आर्थिक सहायता प्रदान की जिसमें सब से अधिक भाग ऊपर लिखित चार महानुभावो का था! ये महानुभाव हमारे विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

× × ×

## South India Arya Pratinidhi Sabha

A meeting of the delegates from various Arya Samajes in South India took place on 26th December 40 at 1 p m in the premises of Meenakshi Vidyashala, Madura, on the occasion of the First South India Aryan Conference, with a view to form the Provincial Arya Prathinidhi Sabha for South India The following resolutions were passed at the meeting —

1 Resolved that a Provincial Arya Pratinidhi Sabha be formed

2 Resolved that the Provincial Arya Pratinidhi Sabha be called the South India Arya Prathinidhi Sabha

3 Resolved that the headquarters for the South India Arya Prathinidhi Sabha should be at Madras

Election of Office bearers and Members of the Working Committee for the year 1941 —

(1) President—Pandit Gopa Dev, Kutchipudi—Proposed by Pt Madan Mohan and seconded by Mr K Ramaswami

(2) Secretary—M Krishna Rao Madras—Proposed by Pandit K Jnani & seconded by Pt Dharma Dev

(3) Vice Presidents—Mr Gnanendra Prabhu, Mysore—Proposed by Mr. T K Damodar & seconded by Mr K Ramaswami

(4) „ Pandit Narayan Dev, Kottayam—Proposed by Mr Raghavandra Rao & seconded by Pt Sudharkarji.

(5) Asst, Secy—Shri V. N Kumaraswami,—Proposed by Sjt. Inder Sen ji seconded by Pt Dharma Dev ji

(6) Treasurer—Sjt J P Gupta Madras—Proposed by Pandit K. Jnani Seconded by T K Damodar

### Working Committee

(7) Shri T K. Damodar, Mysore
(8) „ Inder Sen ji, Madras
(9) „ H D Kappoor ji, Bangalore Cantt
(10) „ K Venkateshbrabhu, Karkala, S Kanara
(11) „ Raghavendra Rao, Cuddappah
(12) „ Shankar Rao ji, B A B L, Bangalore Cantt,
(13) „ P M. Natesan, Madras
(14) „ Ramakrishnaiyya, Tenali.
(15) „ Gopal Nayak, Mangalore, S. Kanara

**S. Chandra** — *Organising Secretary*

**Narayanswami** — *President,*

FIRST SOUTH INDIA ARYAN CONFERENCE.

## Resolution of the First South India Aryan Conference held at Madura on 26th and 27th December 1940

(1) This Conference places on record the services to the cause of Arya Samaj, rendered by the late Acharya Rama Devjee, Governor and Principal, Gurukal Kangri (Haridwar), Dr, Balkrishnajee, M. A. Ph. D., Principal, Raja Ram College, Kolhapur, L. Rama Prasadji, member of the D. A. V. College Society and a distinguished journalist, Pandit M. J. Sharma of Madura and Pt- Somanath Rao Sharma of Madras Arya Samaj, a well-known Telugu Poet and expresses its deep sorrow at their sad demise. It prays to the Almighty for the peace of these noble souls and conveys heartfelt condolence to the members of their bereaved families.

( Moved from the Chair )

(2) Realising the great and urgent need for spreading the gospel of the Vedas and seeing that the Vedic culture is gradually losing its ground in the South, this Conference calls upon all the Vedic Missionaries working in the South and all lovers of Vedic Culture to devote all their energies to the formation of Arya Samaj centres at different parts so that the humanitarian work done by the Arya Samaj in the north may be extended to these parts also. It also requests the public to lend its whole hearted support for this noble work.

Moved by: Sadhu Shiva Prasadji, Vedic Missionary of Cannanore.

Seconded by: Vedwan Pt. Narayan Devaji Siddhanta Bhooshana, Kottayam,

Supported by: Pandit Dharma Deva Vidya Vachaspati, Bangalore.

(3) Seeing that almost all the original Arya Samajic literature is in Hindi which is not intelligible to the masses of South India, this Conference requests the Sarvadeshik Arya Prathinidhi Sabha and other agencies to contribute towards the publication of Arya Samajic literature in the languages of the South.

Moved by: Pandit Sudhakarji Siddhanta Visharad, Bangalore.

Seconded by: Pandit Abhaya Devji Rashtra Bhasha Visharad, Kottayam.

(4) This Conference declares that the Shuddhi movement is a vital necessity for the consolidation of the Hindus and Aryas and there fore calls upon all lovers of the Sanatan Vedic Dharma of South ern India to actively interest themselves in the reclamation by Shuddhi Sanskar of those who have for some reasons taken to alien faiths and are now willing to come back by the process of Shuddhi

Moved by Sjt S Chandra

Seconded by Sjt K C Bhalla Editor Harbinger Calicut

(5) In the opinion of this Conference the present day hereditary caste system of which untouchability in all its forms an off shoot is anti vedic and chiefly responsible for many of our social evils This Conference therefore urges upon all its workers to devote themselves whole heartedly to the abolition of this pernicious system and solve the problem of untouchability and for this this Conference recommends inter caste dinners and inter caste marriages

Moved by Pandit Dharma Deva Vidya Vachaspati Bangalore
Seconded by Sadhu Lakshmanandaji of Madras

(6) This Conference is definitely of opinion that Arya Bhasha (Hindi) is the only language which can be the Lingua franca of this country.

Therefore it call upon all lovers of the Aryan culture to make it a point to learn and propagate it

Moved from the Chair

(7) This Conference notes with a sense of grief that efforts are being made by interested people to vivisect Mother India by putting forward the scheme of Pakistan which is not only impracticable impolitic, absurd, vicious and detrimental to the interests of the country but is a positive danger to the Aryan culture and civilisa tion. Therefore this Conference calls upon all Aryas and other lovers of the country to oppose this Scheme vehemently in a well organised manner

Moved by Mahashey Krishna, Lahore
Seconded by Dr B S Moonje
Supported by Dr Sir Gokul Chand Narang, Lahore

\+ + +

## The summary of the lecture delivered by Shriyut N C Chatterjee Bar at-Law of Calcutta and a prominent leader of Bengal on 28th December at the Aryan Conference Pandal

Swami Dayanand Sarswati was the first prophet of Swaraj for India It was he who had first preached that the political slaves cannot be spiritually free Some slanderers of Aryasamaj call it a communal movement and some call it only a religious and social movement But as a matter of fact, it is a mighty national movement for the renaissance of India Swami Dayanand was pained to find that the Hindus were suffering from so many social evils and had farsaken the path of the Holy Veda To bring reforms in these directions he founded the institution of Arya samaj The message of Rishi Dayanand will bring peace not only to India but to the entire world Rishi Dayanand came to the world with a message of freedom for all I would not have come to Madura if you would not have opened the Meanakshi Temple for the Depressed Classes Dayanand fought like a brave man for the social improvement of the depressed classes He raised his voice against the unreasonable and dogmatic Brahmanical customs Dayanand gave true conception of Varnashram according to Shastras He entered into Tapsya to find the real truth His Guru Virjanand asked him to preach only one God Mahrishi Dayanand was a greater reformer than Luther Dayanand has given Aryasamaj such a life that it has contributed so much to the awakening of India First who thought of Hindu consolidation was Dayanand Another contemporary movement known as Brahmo Samaj is dead but Aryasamaj is still alive and gaining gradual momentum The philosophy of the Vedas as preached by Dayanand and Aryasamaj is bold and invigorating The Vedic Dharam preached by them is not only meant for India but for the entire humanity

---

दक्षिण भारत म सार्वदेशिक सभा का प्रचार कार्य सभा के उपमन्त्री श्री प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय के निरीक्षण म हो रहा है। मदुरा कान्फ्रेंस की सफलता तथा आर्य प्रतिनिधि सभा मद्रास की स्थापना के लिये श्री प० जी ने जो परिश्रम किया है और जिसके फलस्वरूप ये दोनों कार्य्य शानदार सफलता के साथ सम्पन्न हुए हैं उसके लिए प० जी विशेष धन्यवाद के पात्र हैं।

—सम्पादक सार्वदेशिक

# जनगणना १९४१

## विज्ञप्ति सं० ६

जैसे पहिले सूचना दी जा चुकी है, जनगणना दो प्रकार की है.—

(१) प्रारम्भिक जनगणना ( Preliminary Census ) जो कि कुछ प्रान्तों में जनवरी के तीसरे सप्ताह से शुरू हो जायगी और कुछ में फरवरी के प्रारम्भ से शुरू हो जायगी।

(२) अन्तिम जनगणना ( Final Census ) जो कि २७, २८, फ़रवरी और १ मार्च को होगी। प्रारम्भिक जनगणना में ही जनगणना सम्बन्धी सारा कार्य होता है और सब प्रश्नों के उत्तर लिखे जाते हैं। उस जनगणना में गणक ( Enumerators ) प्रत्येक घर में जाकर जनगणना सम्बन्धी प्रश्नों का उत्तर लिखते हैं। अन्तिम जनगणना तो साधारण उपस्थिति ( General Roll call ) की तरह होती है इसलिये प्रारम्भिक जनगणना के सम्बन्ध में सचेत रहने तथा निम्न प्रकार कार्य करने की आवश्यकता है:—

१ यह देखना चाहिये कि आपके यहां कोई गृह ऐसा तो नहीं जिस पर नम्बर न लगा हो। यदि कोई ऐसा घर हो तो उसकी सूचना तत्काल जिले अथवा तहसील के जनगणना अफसर को देनी चाहिए।

२ यह देखना चाहिए कि गणक लोग प्रश्नों का वही उत्तर दर्ज करते हैं जो कि प्रत्येक व्यक्ति दर्ज कराता है। अन्यथा लिखने वाले की रिपोर्ट तत्काल जनगणना अफसर को करनी चाहिए। गलत लिखने वाला जनगणना एक्ट १९३९ के अनुसार दण्डनीय है।

३. भारत सरकार की ओर से प्रत्येक व्यक्ति को यह स्वतन्त्रता दी गई है कि वह प्रश्न नं० ३ ( जाति ) तथा प्रश्न नं० ४ ( धर्म ) के उत्तर में जो कुछ लिखायेगा वही लिखा जायगा। गणकों को कोई अधिकार न होगा कि वह इन प्रश्नों के उत्तर में अपनी ओर से कुछ और लिखे। इसलिए प्रत्येक आर्य को यह अधिकार है कि वह सार्वदेशिक सभा की आज्ञानुसार धर्म के कोष्टक में "वैदिक धर्म" लिखाये और "नसल, कबीला, जाति" के कोष्टक में आर्य लिखाये। यदि कोई गणक ऐसा लिखने से इन्कार करे तो उसकी सूचना तत्काल प्रान्त के जनगणना सुपरिन्टेन्डेन्ट को तार द्वारा तथा प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा और सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को पत्रों द्वारा देनी चाहिये।

४ प्रश्न न० १८ ( मातृभाषा ) के उत्तर मे अपनी मातृभाषा लिखवानी चाहिये । जो हिन्दी जानते और बोलते हों वे अवश्य हिन्दी लिखायें ।

५ अन्य भाषा ( प्रश्न न० १६ ) जिनकी मातृ भाषा बगाली मराठी, तामिल इत्यादि हो वे इस प्रश्न के उत्तर मे अपनी भाषा "हिंदी" अवश्य लिखावें ।

६ प्रश्न सख्या २० ( लिपि ) Script इस प्रश्न क उत्तर मे देवनागरी अथवा हिन्दी लिखानी चाहिये ।

## आवश्यक सूचना

अधिकतर प्रान्तों मे सरकार की ओर से यह निश्चय किया गया है कि हिन्दी और उर्दू बोलने वालों की जबान 'हिन्दुस्तानी" लिखी जावे । सार्वदेशिक सभा की ओर स सरकार से निवेदन किया जा रहा है कि वे हिन्दी बोलने वालों को हिन्दी लिखाने की आज्ञा दे । इस निवेदन क सम्बन्ध मे सरकार का अन्तिम निश्चय क्या होगा यह कुछ नहीं कहा जा सकता । इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रश्न स० २० (लिपि) के खाने मे हिन्दी अथवा देवनागरी अवश्य लिखाई जाये ।

## अन्तिम निवेदन

प्रत्येक आर्य समाज तथा आर्य का यह कर्तव्य है कि वे जन गणना तक के बाकी दिनों मे अपने शहर गली कूचा तथा इर्द गिर्द के ग्रामों मे घूमकर प्रत्येक व्यक्ति तक सार्वदेशिक सभा की आज्ञा पहुँचाये इसके लिये निम्न प्रकार की परचिया छपाकर घर २ पहुचानी चाहिये ।

| | स० ४ | स० ३ | स० १८ | स० २० |
|---|---|---|---|---|
| प्रश्न | धर्म | नसल, कबीला जाति | भाषा | लिपि |
| उत्तर | वैदिक धर्म | आर्य | हिन्दी | देवनागरी या हिन्दी |

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिये कि ये पर्चिया हरिजनों के घरों में अवश्य पहुच जायें । हरिजनों पर विधर्मी लोग किसी प्रकार का दबाब डालकर उनकी गणना किसी विधर्म मे न करादें, इस सम्बन्ध मे आपको सचेत होना चाहिये ।

इस बात पर भी दृष्टि रखनी चाहिये कि विधर्मी लोग, अपनी सख्या को बढाने के लिये कोई अनुचित उपाय न कर सकें । यदि इस प्रकार की कोई शिकायत हो तो इसकी सूचना जनगणना अफसर को देनी चाहिये ।

सुधाकर एम० ए०

मन्त्री—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली ।

# बैतूल (सी० पी०) की दुर्घटना

आर्य समाज चिचोली जिला बैतूल का रजत जयन्ती महोत्सव बड़े समा-रोह पूर्वक ता० २५ से २७ दिसम्बर तक मनाया गया। अन्य वक्ताओं के साथ श्रीमान् धर्मवीर पं० ज्ञानेन्द्र देव जी सूफी मौलवी फाजिल देहली भी तशरीफ लाए थे। आप जन्म से मुसलमान हैं परन्तु वैदिक धर्म की महत्ता का प्रकाश आपकी आत्मा पर पड़ा और आपने उसे स्वीकार किया।

सम्भवतः एक जन्म के मुसलिम भाई को वैदिक धर्म का प्रचार करते देखकर हमारे चिचोली पोलिस के सब इन्सपेक्टर साहब जनाब अहमद खां के हृदय को चोट पहुँची और चूँकि आप मुसलिम सम्प्रदाय के विकट पक्षपाती हैं आपने आर्य समाज के जलसे में विघ्न पैदा करने की इच्छा से अपनी टेबल और कुर्सी "कमला नेहरू पंडाल" के अन्दर जहां कि करीब एक हजार महिलाएँ बैठी थीं रख ही नहीं दी किन्तु आप भी वहां जाकर नोट लेने की गरज से डट गए। आपके दो मातहत भी साथ में थे। श्रीमान् सब इ० सा० से समाज के एक स्वयं सेवक ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वे कृपाकर उस स्थान से जहां कि स्त्रियां बैठी हैं और जो स्थान केवल स्त्रियों के लिए ही रिजर्व है और जहा 'महिला मण्डल' के साइन बोर्ड भी लगे हुए हैं दूसरे स्थान पर या मंच के पास हट जावें और यहा तक कि उनकी कुर्सी टेबल भी उठाने के लिए स्वय सेवक स्वयं तैयार था परन्तु जैसा ऊपर लिखा है जनाब सब इ० सा० विघ्न डालने की इच्छा से बिगड़कर बोले कि "तुम बड़े खूबसूरत हो और तुम्हारी औरतें बड़ी खूबसूरत हैं मैं कुछ उनसे लिपटा तो जाता नहीं साले आर्यों की औरतें अभी तो फायशा रंडियों की तरह प्रोसेशन में गाना गाते हुए घूम रही थीं और अब बड़ी पर्दानशीन बन गई हैं।" इस पर स्त्रियों और मर्दों में बहुत बड़ी उत्तेजना हो गई परन्तु समय का विचार करते हुए सामाजिक नेताओं ने बड़े प्रयत्न से परिस्थिति को सम्भाला और जनता को शान्त किया यहां तक कि जनता में अधिक जोश न पैदा हो जाए इस भावना से सब इ० सा० की काली करतूत पर जो प्रस्ताव जनता लाने की इच्छा कर रही थी वह भी पेश नहीं किया गया।

दूसरे दिन ता० २६ को सायङ्काल के समय जलसा करीब ८ बजे रात्रि को समाप्त होने पर जनता अखाड़े का खेल देखने जा रही थी कि पण्डाल के बाहर बाजार में जनाब सब इ० सा० के हृदय में पुनः कौन सी साम्प्रदायिक लहर उठी और उनका किससे झगड़ा हुआ कहा नहीं जा सकता किन्तु उनके कथन से जो उन्होंने सैकड़ों व्यक्तियों के सामने कहा यह प्रतीत हुआ कि किसी एक व्यक्ति ने उन्हें मार दिया । इस दुर्घटना पर आर्य समाज ने खेद प्रदर्शित किया । इस बात का बतंगड़ बनाया जा रहा है और किसी एक स्थान पर ५ आर्य गिरफ्तार कर लिए हैं और अभी जांच जारी है आर्य भाइयों को गिरफ्तार करने पर जब कि वे चिचोली से बैतूल लाये जा रहे थे, तथा जिस दिन हमारे जिले के श्रीमान् कप्तान साहब जनाब वली उल्ला साहब भी चिचोली में ही हाजिर थे, इन गिरफ्तार हुए आर्य बन्धुओं को हिन्दू तथा आर्यों के हृदय में भय और आतंक फैलाने की इच्छा से उन्हें २० कानिस्टबिलों के द्वारा, हथकड़ी लगाकर बस्ती भर में उनका प्रदर्शन कराया। अफवाह गरम है कि इस जोश में होश खोकर कई आर्य भाइयों को गिरफ्तार करने वाले हैं। विश्वस्त सूत्र से यह भी पता चला है कि गिरफ्तारी करने के पश्चात् कुछ मुसलमान पुलिस कर्मचारियों ने गिरफ्तार शुदा भाइयो का यज्ञोपवीत तोड़ने की भी चेष्टा की परन्तु वे कामयाब न हो सके। हम जिले तथा प्रान्त के बड़े बड़े आफीसरान से यही प्रार्थना करते हैं कि वे बहुत बारीकी के साथ वास्तविक परिस्थिति की जांच करें और जो दोषी हो उन्हें ही उचित दण्ड दे। बिना कारण इस छोटे से झगड़े को जिसे जनाब सब इ० साहब ने संभवतः मोल लिया है साम्प्रदायिक रंग न दिया जाय, देखिये आगे क्या होता है?

ह० गणेशदत्त आर्य
प्रेसीडेण्ट जिला कांग्रेस कमेटी तथा
मन्त्री आर्य समाज श्रद्धानन्द भवन चिचोली
ता० ७—१—४१ डाक० चिचोली जि० बैतूल ( सी० पी० )

# सम्पादकीय

## जन गणना और श्री० स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी कार्यकर्ता प्रधान सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य

वीर सावरकर ने अपने २२ जनवरी के वक्तव्य में आर्य समाजियों को प्रेरणा की है कि वे आगामी जन गणना में अपने को हिन्दू लिखावें। चूँकि आर्य लोग हिन्दुओं से पृथक् अपनी गणना कराते हैं इसलिए उन्हें भय है कि कहीं सरकार धीरे २ सिक्खों की भांति आर्यों की भी हिन्दुओं से पृथक् गणना करने पर उतारू न हो जाय। यह बहुत अच्छा होता यदि वीर सावरकर इस विषय पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा से पत्र-व्यवहार करते जिससे जन गणना जैसे अखिल भारतीय विषयों पर आर्य सामाजिक जगत मार्ग प्रदर्शन और प्रकाश ग्रहण करता है।

जन गणना के उद्देश्य के लिए 'हिन्दू' शब्द साधारणतया रूढ़िवादी 'हिन्दुओं' का द्योतक होता है और 'आर्य' शब्द से सुधारवादी हिन्दुओं का बोध होता है। ब्रह्म समाजी भी सुधारवादी हिन्दुओं की कोटि में परिगणित होते हैं। इन सब का योग अन्य हिन्दुओं के योग में सम्मिलित होता है। सन् १८६१ से सरकार इसी प्रथा का अवलम्बन करती आ रही है। सुधारवादी अङ्ग प्रत्येक समाज का जीवन तत्व होता है। अतः उस अङ्ग की उन्नति को अङ्कित कराना एक विशेष महत्व रखता है। आर्य समाज का उद्देश्य हिन्दू समाज को नव जीवन प्रदान करके उसकी आदिकालीन महिमा को पुनः प्रतिष्ठित करना है जिसका 'आर्य' शब्द से आभास मिलता है। हिन्दुओं के हितों और उनकी रक्षा के अपने उत्साह में आर्य समाज किसी के सामने नहीं झुकता। हिन्दू हित के लिए प्रत्येक सम्भव त्याग करने में आर्य समाजी सदैव सब से आगे रहे हैं और इस समय हिन्दू हितों की रक्षा किस प्रकार हो सकती है, इस बात को भी वही अच्छी तरह जानते और समझते हैं। अस्पृश्यता और जात-पांत की

त्रुटियों को निर्मूल करके हिन्दू जाति के संगठन के लिए आर्य समाज मैदान में डटा हुआ है।

अतः स्वयं हिन्दू संगठन के कार्य्य के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि सुधारवादी हिन्दुओं (आर्यों) की उन्नति हो। वीर सावरकर की आशंका भ्रम पर आश्रित है। आर्यों ने कभी भी यह स्वीकार नहीं किया है कि वे हिन्दुओं से पृथक् हैं और भविष्य में भी उनकी यही स्थिति रहेगी।

सिक्खों का उदाहरण ठीक नहीं है क्योंकि सिक्खों की प्रबल प्रेरणा पर ही सरकार ने उन्हें पृथक् परिगणित और अङ्कित किये जाने की आज्ञा दी है। क्योंकि वे पृथक् राजनैतिक अधिकारों के लिए अपने वर्ग को पृथक् अङ्कित कराना चाहते थे। हिन्दुओं से पृथक् अपनी स्थिति की कल्पना भी आर्य समाजियों ने कभी नहीं की है।

अन्त में मैं समस्त देश के आर्यों को प्रेरणा करता हूँ कि वे अपनी सुनियन्त्रित और सुसंगठित शक्ति की गौरवमय परम्परा की रक्षा करते हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के आदेशों का पालन करें और आगामी जन गणना में 'धर्म' और 'जाति' के प्रश्नों के उत्तर में क्रमशः 'वैदिकधर्म' और 'आर्य' लिखायें।"

श्री प्रधान जी का उपर्युक्त वक्तव्य स्वयं अपने में स्पष्ट है।

वीर सावरकर जी आर्य समाज के नियमित सदस्य न होते हुए भी उसके बड़े प्रेमी और प्रशंसक हैं। हिन्दू हित के लिए आर्य समाज की भावना और उसके कार्य पर उन्हें कोई आशंका नहीं है। फिर हमारी समझ में यह नहीं आया कि उपर्युक्त वक्तव्य का निकालना उन्होंने क्यों आवश्यक समझा। निश्चय ही आर्य समाज की जन गणना विषयक नीति के सम्बन्ध में उन्हें भ्रम हुआ है।

हमें विश्वास है कि आर्य समाज की नीति के उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह विषय उन पर भली भांति स्पष्ट हो जायगा और यह विषय विवाद का विषय न बनने दिया जायगा।

आर्य विवाह ऐक्ट में आर्य समाजियों की परिभाषा में आर्य समाजी हिन्दुओं के एक वर्ग के रूप में स्वीकृत हो चुके हैं। यों कहिए आर्य समाजी हिन्दुओं के दायरे से बाहर नहीं हैं। इस क़ानूनी परिभाषा की विद्यमानता में आर्य समाजियों को हिन्दुओं से पृथक् अङ्कित किये जाने की आशङ्का हो ही नहीं सकती। आशा है हमारे आर्य और हिन्दू भाइयों की ओर अमवशात् असमञ्जसता

में आर्य समाजियों को 'हिन्दू' अङ्कित किए जाने का यत्न तथा प्रचार कर रहे हैं। भ्रान्ति मिट जायगी और वे इस प्रकार के प्रचार में अपनी शक्ति और परिश्रम व्यर्थ न गवांयेंगे।

## गढ़वाल और डोला पालकी की समस्या

गढवाल के आर्यों ( शिल्पकारों ) की डोला पालकी की समस्या पर गतांक मे प्रकाश डालते हुए हमने आशा प्रकट की थी कि वहा ११२४० से जो २ बारातें रुकी हुई है वे शीघ्र निकल जायगी और इस प्रकार समस्या जटिल न बनने दी जायगी। परन्तु इन पंक्तियो को लिखते समय तक हमे इन बारातो के निकलने की कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई है। उधर सवर्णों के अत्याचारों के विरुद्ध आर्य्यों का असन्तोष बहुत बढ गया है और यह समाचार प्राप्त हुआ है कि वे मुसल्मानों के साथ मिलकर सत्याग्रह के उपाय का आश्रय लेने की सोच रहे हैं। महात्मा गाधी जी भी इस ओर से विशेष चिन्तित प्रतीत होते हैं। उन्होंने जब तक ये बाराते नहीं निकल जाती हैं तब तक के लिए गढवाल के सत्याग्रहियो को सत्याग्रह करने से रोक दिया है और उन्हें प्रेरणा की है कि वे इस समस्या को हल करने का यत्न करें। हरिजन सेवक संघ भी इस दिशा मे प्रगति शील है। सरकार इस सम्बन्ध में क्या कार्यवाही कर रही है यह हमे विदित नहीं हुआ है। उसे शीघ्र से शीघ्र इस दिशा में हस्ताक्षेप करके इस समस्या को हल करना चाहिए। ऐसा न हो कि उसकी उदासीनता से मामला और भी खराब हो जाय।

गढवाल के आर्य भाइयो के कष्टों को हम भली भांति अनुभव करते हैं। सवर्णों के घोर अत्याचारों के होते हुए भी उन्होंने जिस दृढ़ता और धर्म प्रेम का परिचय दिया है उसको सामने रखकर जब हम मुसलमानो के साथ मिलकर उनके सत्याग्रह करने के समाचार पर सोचते हैं तो हमे यह समाचार बिलकुल गलत प्रतीत होता है। हम यह कल्पना भी नहीं कर सकते कि गढ़वाल के हमारे आर्य भाई एक क्षण के लिए भी ऐसी बात सोच सकते हैं। कष्टों मे ही धर्म प्रेम का परिचय दिया जाता है, यह बात गढवाल के आर्यबन्धुओ के सामने रखे जाने की आवश्यकता नहीं है। इस बात का वे वर्षों से अच्छा परिचय देरहे हैं।

आर्य समाज पर इस समस्या के उचित हल की सबसे अधिक उत्तरदायिता है। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा तथा जिला उपसभा बिजनौर तीनों मिलकर इसके हल के लिए प्रयत्नशील हैं। सभा के प्रचारक आर्य भाइयों की सहायतार्थ गढ़वाल गए हुए हैं। स्थिर प्रचार तो गढवाल प्रान्त मे वर्षों से हो रहा है फिर भी उसे और भी व्यवस्थित करने और बढाने के लिए उपाय किए जा रहे हैं जिससे इस प्रकार की समस्याएं निर्मूल हो जावें।

## बैतूल की दुर्घटना

पाठक अन्यत्र बैतूल की दुर्घना में एक मुस्लिम पुलिस इन्सपेक्टर द्वारा आर्य देवियों के अपमान के दुखद समाचार पढ़ेंगे।

यदि ये समाचार सत्य हैं और जिनके सत्य न होने में हमें कोई विशेष सन्देह नहीं है विशेषतः जिम्मेवार व्यक्तियों और संस्थाओं के अनुसंधानों के प्रकाश में, तो कौन ऐसा आर्य व हिन्दू होगा जिसे अपनी माताओं और बहनों के अपमान से दुख और रोष न होगा। इस अवसर पर आर्य भाइयों ने स्थिति पर काबू रखकर दूर दर्शिता और शान्ति का अच्छा परिचय दिया है। सरकार को चाहिये कि वह आर्य समाजियों के इस रुख का आदर करे और इस मामले की खुली और निष्पक्ष जांच कराके अपराधी को उचित दण्ड दे जिससे भविष्य में इस प्रकार का साहस करने का किसी को साहस न हो और यह घटनाएँ दुहराई न जायें। स्त्री जाति के सम्मान की रक्षा प्रत्येक सभ्य समाज और सरकार का एक उच्चतम कर्तव्य माना गया है। देखना है कि सरकार इस मामले में अपने इस कर्तव्य का कैसा पालन करती है?

## आर्यसमाज दीवान हाल देहली

आर्यसमाज देहली का ५६ वा वार्षिकोत्सव गत २४, २५, २६, जनवरी को सदैव की नाई समारोह पूर्वक समाप्त हुआ। इन दिनों यह समाज दीवान हाल म स्थित है जो देहली नगर का एक दर्शनीय भवन है और जिसका चित्र सार्वदेशिक के गताङ्क में प्रकाशित हो चुका है। यह भवन आर्यसमाज के अनन्य भक्त स्वर्गीय दीवानचन्द जी के दान से 'दीवानचन्द ट्रस्ट' द्वारा बनाया गया है।

आर्य समाज दीवान हाल के आधीन कई संस्थाएँ सफलता पूर्वक चल रही हैं। इस समाज की आर्य कन्या पाठशाला देहली की प्रसिद्ध कन्या शालाओ मे से है। गत वर्ष तक वह पाठशाला ऐंग्लो वर्नाक्यूलर मिडिल तक स्वीकृत थी। इस वर्ष 'बोर्ड आव सेकैन्डरी एजुकेशन' से हाई स्कूल के रूप मे स्वीकृत हुई है। इसके अतिरिक्त यह पाठशाला हिन्दी रत्न भूषण और प्रभाकर की परीक्षाओं की भी व्यवस्था करती है। ३१ मार्च १९४० को पाठशाला में ३६० कन्याएँ थीं। पाठशाला का वार्षिक बजट १३३६७) का है।

इसी प्रकार पाटौदी हाउस में एक आर्य अनाथालय १९१६ से अपना कार्य कर रहा है। इस समय इसमें ८५ बालकों और ४० बालिकाओं का पोषण और शिक्षण हो रहा है। इसमें बच्चों को स्कूलीय तथा कला कौशल यथा कढ़ई, दर्जी पेंटिंग इत्यादि के कामों की शिक्षा दी जाती है। इस वर्ष का बजट १३०९५) का है।

भूली भटकी स्त्रियों की रक्षा तथा विधवाओं और असहाय देवियो की सहायता आदि के लिए इस समाज के आधीन 'आर्य वनिता विश्राम आश्रम' नामक एक संस्था चल रही है। सर्व साधारण जनता तथा सरकारी क्षेत्रों में इस संस्था का अच्छा मान है। इसका वार्षिक व्यय ६८० रु० के लगभग है। श्री सेठ जुगलकिशोर जी बिड़ला के दान से ही इस आश्रम का अधिकाश व्यय चलता है।

इस समय आर्य समाज दीवान हाल के प्रधान श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० तथा मंत्री श्री बा० केदारनाथ जी बी० ए० हैं।

इन संस्थाओं के अतिरिक्त आर्य समाज की ओर से उपदेशक और भजनोपदेशक नियुक्त हैं जो देहली तथा उसके आस पास सफलता पूर्वक प्रचार करते रहते हैं।

यह नोट अपूर्ण रहेगा यदि इस सम्बन्ध मे हम देहली की आर्य सामाजिक प्रगतियो के प्राण श्रीमान् लाला नारायणदत्त जी के नाम का उल्लेख न करें। देहली में आर्य समाज की प्रगति को विस्तृत और गहरा बनाने मे जिन लोगो का उल्लेखनीय योग रहा है उनमें श्री लाला जी का नाम एक विशिष्ट स्थान रखता है। श्री लाला जी दीवानचन्द ट्रस्ट के भी मन्त्री हैं। दीवान हाल उन्हीं के एक मात्र परिश्रम का फल है।

## श्री सर राधाकृष्णनन् और भारतीय संस्कृति

**कलकत्ता की शिक्षा कान्फ्रेन्स में भाषण करते हुए सर राधाकृष्णनन ने गत २१ दिसम्बर को उपर्युक्त विषय पर निम्न प्रकार प्रकाश डाला:—**

"ऋग्वेद की महिमा पर बात चीत करते हुए एक प्रसिद्ध लेखक ने कहा था कि यदि मानव जाति को अपने सबसे पुराने लेख या ग्रन्थ को देखने की इच्छा हो तो उसे ऋग्वेद देखना चाहिए। उन्हें यह भी विदित होगा कि उपनिषदो की शिक्षा और विचार धारा का यूनानी सभ्यता के विकाश पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

वर्तमान अवस्थाओ को भी देखने से विदित होगा कि इन आदर्शों ने संसार की विचार धारा पर पर्य्याप्त प्रभाव डाला है। गत १०० वर्ष से पश्चिमी देशो मे जो जागृति फैल रही है, उस पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि इस जागृति मे भारत के विचारों का बहुत बड़ा प्रभाव है। इटली, जर्मनी और अमेरिका की जागृति तथा रोम्या रोला जैसे बीसियों उच्चकोटि के लेखको ने भारत के विचारो से प्रकाश ग्रहण किया था।

यद्यपि भारतवर्ष की राजनैतिक और आर्थिक अवस्थायें ऐसी नहीं हैं, जिन पर गर्व किया जा सके तथापि हमारी संस्कृति अकेली ऐसी है, जो अब तक जीवित है और जो संसार की विचार धारा को प्रभावित कर रही है। संक्षेप में भारतीय संस्कृति की महिमा यही है।"

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१—ईराक की यात्रा— लखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलात हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू। सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते है पर पूर्णरूप स प्रकाश डाला है। लखक न इस पुस्तक मे सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा मे हुआ था और कस का बध भी अरब म ही हुआ क्योंकि अरब म ही कस का राज था। इस पुस्तक म २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक है। विद्यार्थियो, उपदेशका तथा हिन्दू मात्र क पढने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसलमान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोडकर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजार बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २।)

२ मेरी अबीसीनिया यात्रा— लखक न अपनी यात्रा का अनुभव बतलात हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता क चिह्न जा अबतक मिलत हैं पर पूर्णरूप स प्रकाश डाला है। इटली न किसकूट नीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगडा कर अबीसीनिया को हडप लिया आँखो देखा दृश्य इस पुस्तक मे वर्णित है मूल्य केवल ।।)

३ हमारी जापान यात्रा— इसम लखक न अपनी यात्रा के अनुभव क अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप स प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० स पूर्वकी अवनति के गढे म पडा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ है जापान और भारतवर्ष म वतमान समय म क्या अन्तर है? इस पर भी लखक न पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्यक देशभक्त के पढने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढने योग्य है। इसमे १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य कवल १।।)

पुस्तक मिलन का पता —

**बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार बाँदा (यू० पी०) जी० आई० पी० रेलवे।**

प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।

मार्च १९५१
Reg No L 2121

ऋग्वेद · यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक— प्रा० सुधाकर, एम० ए०

स० सम्पादक—श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश ५) एक प्रति का ।-) विदेश से १० शि० वार्षिक

अथर्ववेद · सामवेद

## लेख-सूची


| संख्या | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | वेद की शिक्षाएँ | | १ |
| २ | ईश्वर प्राप्ति | स्व० श्री स्वा० दर्शनानन्दजी महाराज | २ |
| ३ | मन मन्दिर | श्री बा० पूर्णचन्द्रजी ( एडवोकेट ) | १० |
| ४ | गुरुकुल समस्या | आचार्य विश्वश्रवा | १८ |
| ५. | वेदाधिकार | श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्दजी महाराज | १६ |
| ६ | आर्य्य विवाह कानून की विस्तृत व्याख्या | | १६ |
| ७. | सुमन-सञ्चय | रघुनाथ प्रसाद पाठक | २२ |
| ८ | आर्यसमाज की चिनगारिया | श्री स्वा० स्वतन्त्रानन्दजो महाराज | २५ |
| ९ | वेदों में प्रक्षेप | श्री म० नारायणस्वामीजी महाराज | २७ |
| १०. | गढवाल मे डोला पालकी की समस्या का हल अभी भी होना है | | ४२ |
| ११. | असतोमा सद्‌गमय तमसोमा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृत गमय | | ४५ |
| १२ | Grandeur of Sanskrit | Pt. Dhareshver | ५८ |
| १२ | सम्पादकीय | | ६१ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६ | फाल्गुन १९९७ | मार्च १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क १

## * वेद की शिक्षाएँ *

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । ऋग्० ६।६३।५

सारे संसार को आर्य बनाओ ।

Make every human being an Aiya ( Gentleman ).

* * *

मधुमतीं वाचमुदेयम् । अ० १६।२।२

मैं मीठी वाणी बोलूँ ।

May I ever utter sweet words !

# ईश्वर प्राप्ति

( ले०—स्व० श्री स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज )

वेदाहमेतंपुरुषंमहान्तमादित्य वर्णतमसः परस्तात् । तमेवविदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ( यजु० ३ । १८ )

इस वेद मन्त्र मे परमात्मा जीवों को मोक्ष के साधन का उपदेश करते हैं और बतलाते हैं कि ससार मे मोक्ष के बहुत से साधन नहीं, किन्तु जिस प्रकार अन्धकार को दूर करने के लिए प्रकाश के अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं हो सकता। और न सरदी को दूर करने के लिए गरमी के अतिरिक्त और से काम चल सकता है। इसी प्रकार ससार मे मनुष्य के जीवन उद्देश्य अर्थात् दुःखों से छूटने का नाम या आगे को दुःख न उत्पन्न होने का नाम मोक्ष बतलाते हुए उसके एक ही साधन को ( जिसके अतिरिक्त दूसरा हो नहीं सकता ) उपदेश करते हैं कि—तुम सर्वव्यापक परमात्मा को जानो, जो परमात्मा सूर्यवत् प्रकाशमय है, जिसमे किसी प्रकार की अज्ञानता या दोषादि का होना सम्भव नहीं, जो सर्व प्रकार के दूषणों से पृथक् है उसी परमात्मा को जानने से ही अति मृत्यु अर्थात् मोक्ष प्राप्त होता है। मोक्ष के लिए कोई दूसरा मार्ग हो ही नहीं सकता। वेद के इस मन्त्र को सुनते ही प्रश्न उत्पन्न होता है कि—

"लक्षणप्रमाणाभ्या वस्तुसिद्धिर्न तु प्रतिज्ञामात्रेण"

अर्थात् जब तक किसी वस्तु का लक्षण न कहा जावे और उसकी सत्ता के लिये कोई प्रमाण न उपस्थित किया जावे, तब तक उसकी सत्ता प्रतिज्ञा मात्र से नहीं सिद्ध हो सकती। इस कारण जब तक ईश्वर का लक्षण न किया जावे, तब तक "उसके जानने से मुक्ति होती है और परमात्मा के जानने के अतिरिक्त मोक्ष नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा मात्र ही है" इस सिद्धान्त को लेकर महात्मा व्यासजी अपने वेदान्त दर्शन में ईश्वर का लक्षण कहते हैं कि—

"जन्माद्यस्ययतः" । वे० द० १ । १ । २

अर्थ—जिससे इस ससार का जन्म, स्थिति और नाश होता है वह ईश्वर है अर्थात् जो इस सृष्टि का उत्पन्न करने वाला, पालने वाला और नाश करनेवाला है वह ईश्वर है। इस लक्षण को सुनते ही वादी शका करता है कि तुम्हारा जो

ईश्वर का लक्षण ठीक नहीं ; क्योंकि यह संसार अनादि है, जब तक जगत् की उत्पत्ति सिद्ध न की जावे तब तक ईश्वर का यह लक्षण किस प्रकार ठीक हो सकता है—इस कारण से कि वादी की प्रतिज्ञा जगत् को अनादि मानने की है, इस पर यह प्रश्न होता है कि जगत् स्वरूप से अनादि है या प्रवाह से ? यदि यह कहो कि जगत् स्वरूप से अनादि है, तो यह किसी दशा में सत्य हो ही नहीं सकता, इस दशा में जगत् का अविकारी अर्थात् ६ विकारों से पृथक् होना आवश्यक है। वह विकार ये हैं कि—"जायते वर्द्धते संस्थीयते विपरिणमते क्षीयते विनश्यते" जिस वस्तु में इन ६ विकारों में से कोई पाया जावे, वह अनादि नहीं हो सकती, क्योंकि प्रत्यक्ष मे भी इन ६ विकारों का उत्पत्तिमान वस्तु में ही होना पाया जाता है। जैसे एक बालक उत्पन्न होता है, बढ़ता है, युवावस्था पर्य्यन्त बढ़ना बन्द हो जाता है फिर मूँछ दाढ़ी का निकलना, शरीर मे भोजन का आना फिर पक कर निकल जाना आदि विकार होते रहते हैं पश्चात् वृद्ध होना अर्थात् घटना आरम्भ होता है और अन्त को मर जाता है, यही दशा एक वृक्ष की है। वह बीज से छोटा-सा अंकुर बनकर उत्पन्न होता है फिर बढता है, फिर एक अवधि तक बढ़कर बढ़ना बन्द हो जाता है, फिर पतझड़ और बसन्त के कारण कभी हरा-भरा होकर फल लाता है, कभी शुष्क होकर नंगा हो जाता है, अन्त को नाश हो जाता है। यह आवश्यक नहीं कि किसी वस्तु मे छहों विकार एक साथ ही हों; किन्तु अपने अपने समय मे एक या दो ही रहते है, जो उस वस्तु में अपने दूसरे सहचारियों के होने को सिद्ध करते हैं। जब कि हम सम्पूर्ण जगत् को विकार वाला प्रतीत करते हैं, तो उसको किस प्रकार अनादि स्वीकार कर सकते हैं ? अनादि वस्तु के लिये निर्विकार अर्थात् बढ़ने घटने से पृथक् होना आवश्यक है। जब कि यह सृष्टि किसी प्रकार भी विकार रहित सिद्ध नहीं होती, तो किसी प्रकार यह स्वरूप से अनादि नहीं कहला सकती। यदि कहो कि प्रवाह से अनादि है, तो इस प्रवाह के चलने वाले का होना ( अर्थात् जो किसी समय बनावे और किसी समय न बनावे ) उचित है। इस पर वादी यह कहता है कि यद्यपि जगत् में भिन्न-भिन्न वस्तुएँ दशा बदलती हुई दृष्टि पड़ती हैं; तथापि समष्टि सृष्टि दशा नहीं बदलती इस कारण सृष्टि को स्वरूप से अनादि मानना ठीक है। यहां पर हम वादी से पूछते हैं कि वास्तव में सृष्टि इन सब वस्तुओं के समूह का नाम है या कोई दूसरी वस्तु है ? यदि कहो

कि वस्तुओं के समूह का नाम सृष्टि है, तो जिस समूह के अवयव दशा बदलते हैं वह समूह विकार रहित नहीं हो सकता—जैसे एक मनुष्य के हाथ, पांव उदर, शिर आदि सम्पूर्ण अवयव निर्बल हो गए यदि वह कहे कि मेरा शरीर निर्बल नहीं हुआ, तो उसे मूर्ख ही कहना पड़ेगा, क्योंकि अवयवों के समूह के अतिरिक्त शरीर कोई दूसरी वस्तु नहीं है। इस कारण सृष्टि के सम्पूर्ण अवयवों को विकारी मानकर सृष्टि को समष्टि रूप से निर्विकार बतलाना सर्वथा अज्ञानता है। यदि वादी कहे कि इन वस्तुओं के समूह के अतिरिक्त सृष्टि कोई दूसरी वस्तु है, तो उसकी सत्ता का प्रमाण देना चाहिए। वादी कहता है कि यदि सृष्टि के प्रत्येक वस्तु के उत्पत्तिमान होने से और उसका नाश देखने से सृष्टि को उत्पत्तिमान ही स्वीकार किया जावे, तो भी उसका कर्त्ता ईश्वर नहीं हो सकता; क्योंकि सृष्टि स्वभाव से उत्पन्न होती है, स्वभाव के अतिरिक्त सृष्टि का उत्पादयिता कोई नहीं। वादी की इस शंका में भी कि "सृष्टि का उत्पन्न करने वाला स्वभाव है" यह वादी की प्रतिज्ञा है इस कारण इस प्रतिज्ञा की परीक्षा आवश्यक है। इस स्थान पर यह प्रश्न होता है कि स्वभाव द्रव्य है या गुण है? यदि गुण है. तो किस द्रव्य का है? दूसरे गुणों से कोई द्रव्य उत्पन्न नहीं हो सकता। सृष्ट द्रव्य हैं—इस कारण कोई द्रव्य ही हो सकता है। वादी कहता है कि स्वभाव गुण है, जो प्रकृति में रहता है, प्रकृति के विशेष मिलाप से सम्पूर्ण वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं। अब हम वादी से कहते हैं कि अभ्युपगम सिद्धान्तानुसार हम स्वभाव को प्रकृति का गुण मानकर उससे सृष्टि की उत्पत्ति मान लेवें, तो नाश किससे होगा? क्योंकि उत्पन्न होना और नाश होना ये दो विरुद्ध गुण हैं, जो किसी एक वस्तुमें रह ही नहीं सकते। अब वादी इसका उत्तर देता है, कि प्रकृति में संसार के नाश और उत्पन्न करने की शक्ति विद्यमान है उत्पत्ति संयोग या मिलाप से होती है प्रकृति के अन्तर्गत जल है, जिसका गुण संयोग है। और दूसरी वस्तु प्रकृति में अग्नि है जिसका काम विभाग करना है इस कारण जल से मिलाप होकर वस्तुओं की उत्पत्ति और अग्नि से अवयव भिन्न होकर वस्तुओं का नाश हो सकता है। इस कारण अग्नि और जल दो प्रकार की वस्तुयें प्रकृति के अन्तर्गत होने से विरुद्ध गुणों की एकता का दोष इस स्थान पर नहीं घटता; वादी के इस उत्तर को सुनकर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि प्रकृति में उत्पन्न करने और नाश करने की शक्तियें तीन दशाओं में रह सकती हैं या तो उत्पन्न करने की शक्ति अधिक और

नाश करने की शक्ति न्यून हो या नाश करने की शक्ति अधिक और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून हो या दोनों सम हों; परन्तु प्रकृति से जगत् की उत्पत्ति आदि का होना इन तीनों दशाओं में असम्भव है चौथी दशा कोई हो ही नहीं सकती, यदि वादी उत्पन्न करने की शक्ति अर्थात् संयोग को अधिक मानेगा तो प्रत्येक वस्तु बढ़ती ही चली जायेगी कोई वस्तु घटेगी नहीं; क्योंकि जिस क्षण में संयोग की शक्ति की अधिकता से उस वस्तु मे पांच परमाणु मिलेंगे, उस क्षण मे वियोग अर्थात् घटने की शक्ति के कम होने से चार परमाणु पृथक् होंगे अर्थात् प्रतिक्षण एक परमाणु बढ़ता जायगा। घटने का अवसर कभी आवेगा ही नहीं; परन्तु यह प्रतिज्ञा सर्वथा प्रत्यक्ष के विरुद्ध है क्योंकि सृष्टि मे वस्तु घटती बढ़ती दोनों दशाओं मे पाई जाती है, जो ऐसा मानना असम्भव है, इसलिये यह प्रतिज्ञा स्थिर नहीं हो सकती कि प्रकृति में उत्पन्न करने की शक्ति अधिक है। दूसरे यदि नाश करने की शक्ति अधिक मानी जाये और उत्पन्न करने की शक्ति न्यून, तो उस दशा में जिस क्षण में पाच परमाणु पृथक् होंगे और चार मिलेंगे, तो इस दशा में प्रतिक्षण प्रत्येक वस्तु से एक परमाणु घटता ही चला जायगा। कोई वस्तु बढ़ेगी नहीं; परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध प्रतीत होती है; क्योंकि जगत् में बहुत वस्तुएँ बढ़ती हुई दृश्य होती हैं। तीसरी दशा यह है कि दोनों शक्तियां तुल्य स्वीकार की जावें। उस दशा में जिस क्षण में एक वस्तु पांच परमाणु संयुक्त होंगे, उसी क्षण में पांच ही नियुक्त होगे; क्योंकि दोनों शक्तियें अव्याहत और तुल्य काम कर रही हैं। इस दशा में सृष्टि की कोई वस्तु न बढ़ेगी और न घटेगी; किन्तु सर्व सृष्टि एक ही दशा में रहेगी, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होने से स्पष्ट असत्य है; क्योंकि प्रत्येक वस्तु सृष्टि मे एक-सी नहीं दीखती, सब बढ़ती घटती हुई पायी जाती हैं। जैसा दिन कल था, वैसा आज का दिन नहीं है; क्योंकि उससे अनुमान डेढ़ मिनट के अधिक होता है। आज की रात कल की गत रात के बराबर नहीं वरन् वह उससे न्यून होगी। इस प्रकार विचार करने से सम्यकतया बोध होता है कि स्वभाव से उत्पत्ति का होना असम्भव है, दूसरे संयोग और वियोग दोनों गुण कर्म से उत्पन्न होनेवाले है और कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म्म है या नैमित्तिक, यह प्रश्न होता है? यदि यह कर्म प्रकृति में स्वभाविक धर्म मान लिया जावे, तो कोई प्राकृत वस्तु स्थिर नहीं पावेगी क्योंकि स्वभाविक

धर्म किसी वस्तु का रुक नहीं सकता ; परन्तु यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध है ; क्योंकि हम बहुत वस्तुओं को स्थिर देखते हैं।

अब वादी कहता है कि कर्म प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है; परन्तु जिन वस्तुओं को हम स्थिर देखते हैं, उनको पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ने रोका हुआ है, यह प्रतिज्ञा भी प्रत्यक्ष के विरुद्ध होगी, फिर कोई प्राकृत वस्तु चलती हुई नहीं दीखेगी; क्योंकि पृथ्वी की आकर्षण शक्ति उन पर प्रभाव डालती है—जैसे एक गाड़ी चल रही है, दूसरी स्थिर है, जब पृथ्वी की आकर्षण शक्ति दोनों पर तुल्य प्रभाव रखती हैं।

प्रकृति में कर्म को स्वाभाविक धर्म मानने से एक का चलना और दूसरी का न चलना किस प्रकार सम्भव हो सकता है, उक्त दोषों के अतिरिक्त पृथ्वी भी प्रकृति से बनी है, वह भी गतिमान होने से किसी नियम के आधीन नहीं हो सकती। उसका प्रत्येक परमाणु गतिमान है, इस कारण उनका संयोग हो ही नहीं सकता। क्योंकि पृथ्वी के प्रत्येक परमाणु में उनका स्वाभाविक धर्म जो कर्म है, उसे पृथक् करने के लिये उपस्थित है। जिससे पृथ्वी का आकर्षण भी नहीं हो सकता। इस पर वादी कहता है कि प्रकृति का प्रत्येक परिमाणु गतिमान है और पृथ्वी का आकर्षण उनको रोके हुए है, जिसको दूसरी शक्ति अर्थात् अग्नि आदि से सहायता मिलती है, वह पृथ्वी की शक्ति को दबाकर चली जाती है, जिसको सहायता नहीं मिलती वह रुकी रहती है।

अब फिर प्रश्न होता है कि दूसरी शक्ति जिसकी सहायता से एक गाड़ी चलती है और दूसरी उसकी सहायता न होने से रुकी हुई है, यह सहायता देना उस शक्ति का स्वाभाविक धर्म है या नैमित्तिक ? यदि कहो स्वाभाविक धर्म है, तो उसको दोनों गाड़ियों को सहायता देना चाहिए, जिससे दोनों गाड़ियां चलेंगी या स्थिर रहेंगी। एक का चलना एक का न चलना दोनों असम्भव है। इस कारण जगत् को उत्पत्तिमान और ईश्वर को उसका उत्पन्न करने वाला मानने के अति-रिक्त किसी दूसरे प्रकार से व्यवस्था हो ही नहीं सकती। इसी अवसर पर वादी फिर शंका करता है कि यदि यह भी स्वीकार कर लिया जावे कि कोई जगत् का कर्त्ता है, तो उसके होने में प्रमाण क्या है ? क्योंकि यदि उसके होने में कोई प्रमाण हो ; तो उसके जानने से मुक्ति हो सकती है, परन्तु जिसके होने में कोई प्रमाण ही नहीं, तो उसको किस प्रकार जान सकते हैं ? क्यों कि ईश्वर तीन

काल में प्रत्यक्ष तो होता ही नहीं और जिसका प्रत्यक्ष न हो, उसे अनुमान से कैसे जान सकते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष से व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर फिर उसके अनुसार अनुमान होता है और जिसका प्रत्यक्ष और अनुमान दोनों प्रमाणों से ज्ञान न हो, उसके लिये शब्द प्रमाण हो ही नहीं सकता। जब ईश्वर को प्रमाण से जान नहीं सकते, ईश्वर का होना सत्य नहीं और न उसके जानने से मुक्ति ही हो सकती है, परन्तु जब वादी से पूछते हैं कि क्या जिन वस्तुओं को इन्द्रियों से ज्ञान न होवे वह नहीं होती, यदि ऐसा मानों तो जिन इन्द्रियों से न देखने से तुम ईश्वर की सत्ता का निषेध करते हो, उन इन्द्रियों को किस प्रमाण से जानते हो। यदि कहो इन्द्रियों को इन्द्रियों से देखते हैं, तो आत्माश्रय दोष है अर्थात् स्वयं ही दृश्य वस्तु और स्वयं ही देखने का साधन नहीं हो सकता। यदि कहो हम दर्पण में अपनी आंख को देखते हैं इसलिये आंख का होना आंख से ही प्रतीत होता है, परन्तु यह कथन सत्य नहीं क्योंकि दर्पण में आंख नहीं दीखती, किन्तु आंख का आभास उससे अनुमान के द्वारा जानना तो मान सकते है, परन्तु यह कहना कि आंख से आंख को देखते हैं, सत्य नहीं; किन्तु आंख से आंख के आभास को देखकर उससे आंख के होने का अनुमान करते हैं कि यह सत्य होगा अस्तु, आंख का तो अनुमान से ही ज्ञान हो गया; परन्तु रसनेन्द्रिय का किससे ज्ञान होगा ? न तो वह रूप है जो आंख से दीखे और न शब्द है; जिसका कान से ज्ञान हो। प्रयोजन यह है कि रसना इन्द्रिय का ज्ञान किसी इन्द्रिय से नहीं हो सकता, ऐसे ही अन्येन्द्रियों की दशा है। जिन इन्द्रियों से न दीखने के कारण परमात्मा की सत्ता को स्वीकार नहीं करते, वे तुम्हारी इन्द्रियां ही प्रत्यक्ष नहीं, तो तुम्हारा सिद्धान्त स्वयंमेव खण्डित होता है। इसके अतिरिक्त जो पुरुष ऐसा विचार रखते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणों का मूल है और जिस वस्तु का प्रत्यक्ष न हो, उसका अभाव है—वे बहुत ही भ्रांति में पड़े हैं, क्योंकि प्रत्यक्ष से किसी वस्तु का अनुमान के बिना ज्ञान हो ही नहीं सकता। प्रत्येक वस्तु के एक ही भाग का प्रत्यक्ष होता है, शेष का अनुमान से ज्ञान हुआ करता है। जब केवल प्रत्यक्ष को ही प्रमाण माना जावे, तो किसी वस्तु का भी ज्ञान न होगा। दूसरे अनेक ऐसी दशा हैं कि जिनके कारण वस्तुओं के विद्यमान होने पर भी उनका ज्ञान नहीं होता। प्रथम अति समीप होने से—जैसे नेत्र में सुर्मा होता है; परन्तु वह नहीं दीखता, दूसरे बहुत दूर होने से—जैसे लन्दन यहां से नहीं दीखता। तीसरे

अति सूक्ष्म होने से—जैसे परमाणु दृष्टि में नहीं आते। चौथे अति स्थूल होने से जैसे हिमालय पहाड़ सम्पूर्ण नहीं दीखता, पांचवें वस्तु और इंद्रिय के बीच में व्यवधान होने से—जैसे आंख पर हाथ रखने से कोई वस्तु भी नहीं दीखती अथवा भित्ति ( दीवार ) की दूसरी ओर की वस्तुएँ नहीं दीखतीं। छठे इन्द्रियों में दोष हो जाने से—जैसे अन्धे को रूप का ज्ञान नहीं होता और बहरे को शब्द का ज्ञान नहीं होता इत्यादि। सातवें मन के अव्यवस्थित होने से भी नेत्रों के सामने चली आने वाली वस्तुओं का ज्ञान नहीं होता. जब कि इन सात दशाओं में विद्यमान वस्तुओं का भी प्रत्यक्ष नहीं होता, तो प्रत्यक्ष न होने से ईश्वर को सत्ता को स्वीकार न करना सत्य नहीं, किन्तु ईश्वर के होने में अनुमान और शब्द प्रमाण विद्यमान हैं।

वादी शंका करता है कि अनुमान किस प्रकार हो सकता है क्योंकि जब तक व्याप्ति का ज्ञान न हो, तब तक अनुमान नहीं हो सकता और व्याप्ति प्रत्यक्ष से ग्रहण की जाती है। ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ नहीं इसलिये व्याप्ति के न होने से अनुमान नही हो सकता; परन्तु वादी का यह कथन सत्य नहीं, क्योंकि यह बात प्रत्यक्ष सिद्ध है कि प्रकृति में क्रिया नहीं। जब तक चेतन उसको क्रिया देता है, तब तक ही क्रिया होती है। जिसका प्रमाण मृतक और जीवित शरीर को देखने से स्पष्ट प्रतीत होता है अर्थात् जब तक क्रिया देनेवाला चेतन क्रिया दे रहा था, तब तक यह शरीर क्रिया कर रहा था और जब चेतन पृथक् हो गया, तब वह शरीर जो प्रकृति से बना था क्रिया शून्य हो गया। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि प्रकृति वस्तु में क्रिया चेतन के बिना नहीं हो सकती, दूसरे जिस क्रिया में नियम पाया जावे, वह तो किसी प्रकार नियम बनाने वाले के बिना हो ही नहीं सकती।

घड़ी १२ घण्टे के पश्चात् अपने उसी स्थान पर आ जाती है, चाहे वह चौबीस घण्टे में चाबी लेती हो, अथवा एक सप्ताह में। इन उदाहरणों के होने से सम्यक्तया विद्वान घड़ी बनाने वाले का होना प्रतीत होता है। कोई मनुष्य भी जिसको बुद्धि हो, घड़ी को उत्पत्तिवान मानकर किसी अचेतन वस्तु द्वारा बनाई हुई नहीं जानता। यद्यपि घड़ी बनाने वाले को घड़ी बनाते हुए प्रत्यक्ष नहीं देखा; परन्तु अनुमान से घड़ी के कर्त्ता का होना उसे निश्चय हो जाता है, क्योंकि स्वाभाविक क्रिया वाली वस्तु में लौटकर उसी स्थान पर आने का

नियम हो नहीं सकता—जैसे कि आगे चलना। इञ्जन में भाप के होते हुए और किसी कल के बिगड़ जाने से रुक जाना भी सम्भव है; परन्तु अपने स्थान पर लौट आना किसी प्रकार सम्भव नहीं, जब तक कोई चेतन न लौटावे। इसी लिए जिन वस्तुओं की कुछ दिनों के पश्चात् फिर उसी स्थान पर आने की शक्ति है, वह अवश्य ही चेतन के नियम से बँधी हुई हैं। इसलिये सृष्टि के सम्पूर्ण नियम भूगोल में आधीन देखने में आते हैं। चन्द्रमा, सूर्य, पृथ्वी और तारागण सबके बीच में नियत क्रिया के अतिरिक्त और किसी प्रकार का नियम प्रतीत नहीं होता। जिसके नियमों की परीक्षा हम सौ वर्ष पहिले से हीं जान सकते हैं कि अमुक तिथि में इतने बजे सूर्य ग्रहण वा चन्द्र ग्रहण होगा। जिस प्रकार हम घड़ी को देखकर प्रतीत कर सकते हैं कि इतनी देर के पश्चात् घड़ी की सुइयां अमुक स्थान पर मिल जायेंगी, ऐसे ही सूर्य और चन्द्र ग्रहण भी नियम के आधीन होने से हमें पहले से प्रतीत हो सकते हैं। यद्यपि घड़ी को बनाने वाला चेतन मनुष्य हमें सृष्टि मे दीखता है, जिससे व्याप्ति अर्थात् सम्बन्ध को जानकर हम कह सकते हैं कि इस नियम पूर्वक जगत् को बनानेवाला चेतन परमात्मा है।

---

# मन-मन्दिर

( ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, आगरा )

[ गताङ्क से आगे ]

## मन्त्रों का पहला भाग

इन छओं मन्त्रो में जो भाव हैं हम उनको पहले पृथक् पृथक् लिखेंगे और फिर उनके समन्वय को एक चित्र से दर्शाने का उद्योग करेंगे। सबसे पहले मन्त्र मे परमात्मा को पूर्व की दिशा में अग्नि के नाम से सम्बोधन करके अधिपति माना गया है। और पूर्व की दिशा में सब से बड़ी आकर्षक चीज जो है वह सूर्य है। सूर्य की किरणों से परमात्मा हमारी अनेक प्रकार से रक्षा करता है। सूर्य की किरणों से तेज और प्रकाश प्राप्त होता है और यही किरणें अनेक प्रकार के रोगों के निवारण की कारण भी हैं। इन्हीं किरणो से जल की वर्षा मे सहायता मिलती है और इन्ही किरणों की सहायता से अन्नादिक बहुतायत से उत्पन्न होते हैं। सूर्य में भी जो प्रकाश हैं उसका कारण परमात्मा है और संसार की अन्य सब प्रकाश उत्पन्न करने वाली वस्तुयें सूर्य के प्रकाश पर ही आश्रित हैं। इस लिये हम सूर्य को लक्ष में रख कर परमात्मा को स्वतन्त्र संरक्षक और तमाम प्रकाशों का कारण मान सकते हैं। उसको रक्षक और अधिपति मानना हमारे अन्दर आदर के भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक है और हमारे लिए नमस्कार करना एक बार नहीं अनेक बार अनिवार्य है। पूर्व दिशा उन्नति अभ्युदय की भी द्योतक है। हम प्रातः काल उठ कर ही अपने कर्मों का आरम्भ करते हैं। प्रकाश ज्ञान का भी द्योतक है। यदि हमारा ज्ञान केवल ज्ञान न रह कर हमे कर्म के लिए भी प्रोत्साहित करेगा तो हम अवश्य उन्नत दशा को प्राप्त होंगे। कर्म बिना ज्ञान के और ज्ञान बिना कर्म के दोनों अधूरे हैं। हमे रसातल को ले जाने वाले है। हमे अपने जीवन के कर्म ज्ञान के प्रकाश मे जांच कर करने चाहियें। इस प्रकार इस पहले मन्त्र मे हम सूर्य को लक्ष में रख कर परमात्मा की सत्ता को भी सदैव अपने ध्यान में रख सकते हैं और अपने जीवन में लाभ भी उठा सकते हैं। प्रकाश के आधार पर अन्याय की सम्भावना नहीं हो सकती। जो परमात्मा अग्नि स्वरूप सर्व व्यापक और सूर्यों

का सूर्य है वह सर्व ज्ञाता और अन्तर्यामी भी अवश्य मानना पड़ेगा, उसकी दिव्य दृष्टि से हमारे और दूसरों के शुभाशुभ कर्म छुपे नहीं रह सकते और उसकी न्याय व्यवस्था में भी बाल बराबर अन्तर नहीं आ सकता। इस लिये ईश्वर को न्यायकारी होने की भी बात हमारे ध्यान में सदैव बनी रहनी स्वाभाविक है।

दूसरा मन्त्र दक्षिण दिशा को लक्ष में रख कर है इस मन्त्र में परमात्मा को इन्द्र नाम से सम्बोधित किया गया है और जो तिरछी चाल चलने वाले जीव जन्तु हैं उनसे रक्षा की याचना की गई है और रक्षा का साधन पितर अर्थात् ज्ञानी लोग बताए गए हैं। महा शक्तिशाली परमात्मा के दिए हुए ज्ञान के आधार पर बुद्धिमान् लोग अपने ज्ञान से टेढ़े चलने वाले जन्तुओं से और छल कपट करने वाले मनुष्यों से रक्षा अपनी करते हैं और अन्य प्राणियों के लिये रक्षा के साधन उपस्थित करते हैं। बिना ज्ञान के उन भय के साधनों से रक्षा नहीं हो सकती जो अप्रत्यक्ष रहते हैं और जिनका पता हमें बहुधा जब ही लगता है जब हम उनसे हानि पहुंचाए जाने के समीप होते हैं। इस मन्त्र से भी परमात्मा को भी रक्षक मान कर एक बार नहीं अनेक बार नमस्कार की गई है।

तीसरे मन्त्र में अर्थात् पश्चिम दिशा को लक्ष में रखकर परमात्मा को वरुण नाम से संबोधित करते हुए अधिपति माना गया है और रक्षा का साधन अन्न को बताया गया है। वरुण से अभिप्राय सबसे श्रेष्ठ है। जहाँ पूर्व दिशा मे सूर्य को लक्ष में रखकर कर्म की शिक्षा दी गई थी इस मन्त्र मे कर्मों का फल जो भोग के रूप मे हमें प्राप्त होता है उसको लक्ष में रखकर परमात्मा को वरुण नाम से याद किया गया है। दिन भर की महनत का परिणाम शाम को निकलता है और जीवन भर के परिश्रम का फल वृद्धावस्था में आनन्द देता है। मनुष्य अपने परिश्रम से भोग पदार्थ प्राप्त करता है परन्तु ऋषि मुनि आदि विद्वान यह मानते आए है कि रिजक रोजी के देने वाला खुदा (ईश्वर) ही है। यदि परमात्मा की कृपा दृष्टि नहीं तो हम महान परिश्रम करते हुए भी अपनी अभिलाषा की पूर्ति नहीं कर सकते। हमें अपने प्राप्त किए हुए भोग की मात्रा को लक्ष में रखकर अपनी सामर्थ्य पर अभिमान नहीं करना चाहिए। क्योंकि यदि ईश्वर की दया नहीं तो हमे कुछ भी प्राप्त नहीं हो सकता। ईश्वर की दया न केवल प्राप्त करने के लिये आवश्यक है परन्तु प्राप्त की हुई चीजों की रक्षा के लिये भी परमात्मा की दया दृष्टि की आवश्यकता है। खेत में से अनाज काट कर खलवान

में आ जाए तो भी उसके बिगड़ जाने और लुट जाने की सदैव सम्भावना रहती है। कल्याान से घर में भी आ जाए तो भी चोर और डाकुओं से और अन्य अन्यायारियों से सुरक्षित रहे तभी तो हम उसको अपने उपयोग मे ला सकते हैं। यदि ईश्वर अपनी दया दृष्टि न करें तो वही भोग पदार्थ जिनको हम अपनी रक्षा का साधन समझते हैं वही हमारे लिए नाश के कारण और भय के साधन बन जाते हैं। डाकू और चोर सदैव सेठ और साहूकार को ही ताकते हैं किसी गरीब किसान पर उनकी दृष्टि नहीं जाती। जिस राजा के राज्य मे वैभ और उन्नति है और आय के साधन बहुतायत से है उन्ही पर शत्रुओ की दृष्टि रहती है। जहाँ तिरछे चलने वाले जन्तु और छल कपट करने वाले मनुष्य हमें छिपकर और अप्रत्यक्ष रूप में हानि पहुँचाते हैं वहां हमारे धन और दौलत के लूटने वाले भयंकर अजदहों के रूप मे आकर डसने के लिए हम पर आक्रमण करते हैं। ऐसे अत्याचारी अजदहो से भी वह सर्व श्रेष्ठ वरुण परमात्मा ही हमारी रक्षा करता है। हमें उसको बार बार नमस्कार करना चाहिए और हर दशा में उसको न्यायकारी मानकर उसके न्याय को सदैव ध्यान मे रखना चाहिये और स्वप्न में भी किसी से अन्याय की चेष्टा नहीं करनी चाहिये।

चौथे मन्त्र में अपनी बाईं ओर अर्थात् उत्तर दिशा को लक्ष्मे रखकर परमात्मा को सोम के विशेषण से संबोधित करके अधिपति माना गया है। सोम से अभिप्राय शान्ति और परम आनन्द के हैं। परमात्मा महान् आनन्द वाला होकर हमारी विद्युत अर्थात् बिजली द्वारा रक्षा करता है। बिजली से अभिप्राय ज्ञान और प्रकाश के साधनों से है। इससे पूर्व के मन्त्रों में ज्ञानकर्म और भोग को लक्ष्य मे रखकर परमात्मा को रक्षक माना गया है परन्तु हम बड़े ज्ञानी भी हों, बड़े परिश्रमी भी हों और अपने ज्ञान और परिश्रम से सुख की सामग्री भी बहुतायत से उपार्जन करलें परन्तु यदि हमे तृप्ति और शान्ति प्राप्त नही तो हमारा जीवन सुखमय नहीं हो सकता। जिनके अन्दर शान्ति और तृप्ति की भावना नहीं है वह चाहे जितना धनवान और सामर्थ्यवान हो सदैव निर्धन और निर्बल ही रहेंगे। न स्वयं सुख पा सकेंगे और न दूसरे को सुख में रहने देंगे। हमें शान्ति उसी समय प्राप्त हो सकती है जब हम संसार के भोग पदार्थों को विद्युत के समान क्षणिक और आकर्षक मानें और अपने उपयोग में लाने के पश्चात् हम उनको दूसरों के परोपकार में लाने की भावना रखें। सोम रूपी परमात्मा के

ही चरणों में पहुँचकर तृष्णा से रक्षा और तृप्ति प्राप्त हो सकती है। तब ही हम परमात्मा को सच्चा रक्षक मानकर हम बार बार नमस्कार कर सकते हैं और हमको करनी चाहिए।

इन चार मन्त्रों में हमने अपनी चारों ओर परमात्मा की विभूति को भिन्न-भिन्न रूप में देखने की शिक्षा प्राप्त की और अपने जीवन को सफल और धार्मिक बनाने के लिए यह अभ्यास करने की चेष्टा की कि हम कर्म करते समय, ज्ञानोपार्जन करते समय और भोग प्राप्त करते समय परमात्मा की शक्ति को स्मरण रखें और कभी न भूलें। इन दो दिशाओं के अतिरिक्त अभी दो दिशायें और भी हैं। साधारण बोल-चाल और भूगोल में तो उपरोक्त चारों दिशायें ही बताई गई हैं परन्तु ईश्वर की शक्ति को विराट् और समष्टि रूप में समझने के लिए हमें अपने ऊपर और नीचे भी तो देखना होगा। अर्थात् आकाश और पृथ्वी की ओर भी तो दृष्टि डालनी होगी। आकाश एक तरफ और पृथ्वी दूसरी तरफ हमें अपने चमकीले और आकर्षक पदार्थों के आधार पर अपनी ओर खेंचते रहते हैं। अपने नीचे की दिशा को लक्ष्य में रखकर परमात्मा को विष्णु अर्थात् व्यापक नाम से परमात्मा को संबोधित किया गया है और अधिपति माना गया हैं और पृथ्वी में जो अनेक प्रकार की वृक्ष, पुष्प और लतायें हैं उनसे परमात्मा हमारी सब प्रकार से रक्षा करता है सब प्रकार की औषधियां तथा बनस्पतियां उनसे प्राप्त होती हैं न केवल हमारी बल्कि प्राणी मात्र के वंशों की रक्षा इन्ही वृक्षादिकों से होती है। इन सुन्दर फूलों को देखकर हमें इनकी सुन्दरता पर ही ध्यान नहीं देना चाहिए इनमें परमात्मा को व्यापक मानकर परमात्मा को ध्यान में रखना चाहिए और इन सब में इसका ही जलवा देखना चाहिए जिससे हम यह कहने के अधिकारी हों कि "जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।" नीचे के साथ हमें अपने ऊपर भी तो दृष्टि डालनी होगी। ऊपर की दिशा को लक्ष्य में रखकर परमात्मा को बृहस्पति नाम से अधिपति माना गया है ऊपर को दिशा से हमारे लिए जल की वर्षा होती है। यदि जल की वर्षा ठीक समय और ठीक मात्रा मे न हो तो न हमारे प्राणों की रक्षा हो सकती है और न हरी-भरी गर्दन वाले वृक्ष और लतायें उपज सकती हैं और वृद्धि को प्राप्त कर सकती हैं वर्षा परमात्मा की महान् दया की द्योतक है। जिस प्रकार वर्षा से संसार के सब सुख देने वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं और वृद्धि को प्राप्त होते हैं इसी प्रकार परमात्मा अपनी महान् अनुकम्पा से हमारे दुखों का निवारण करते हैं। हमने देखा कि छओं दिशाओं में हमने मानसिक रूप से आसन पर दृढ़ बैठे हुए अपने मन को घुमाया और हर दिशा और दशा में परमात्मा के ही दर्शन किए यह मानसिक अभ्यास जिसे हम प्रातःकाल और सायंकाल दोहराते हैं हमारे क्रियात्मक जीवन को सफल बनाने के लिए अनिवार्य और आवश्यक है।

# "गुरुकुल समस्या"

( ले०—आचार्य विश्वश्रवाः वेदमन्दिर बरेली )

श्री प० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ ने जनवरी १६४१ के सार्वदेशिक में कुछ आवश्यक बातों की ओर ध्यान दिलाया है। उनमें एक गुरुकुल समस्या भी है। शास्त्री जी के ये शब्द आर्य समाज के विधाताओं को बार बार विचारने चाहिए कि—

"सब गुरुकुल सब विषयों को पढ़ाकर सब काम सम्भाल लेंगे, यह बात अनुभव विरुद्ध है।"

जहा तक मेरा अनुभव गुरुकुल सचालन का है यह बात बिलकुल स्पष्ट है कि प्रत्येक गुरुकुल में महाविद्यालय विभाग रखना व्यर्थ आडम्बर है और अनभिज्ञ जनता को धोखा देकर धन का नाश करना है। कोई गुरुकुल अपना आडम्बर नहीं खोना चाहता है और यह रोग बढ़ रहा है। जो गुरुकुल नये खुल रहे हैं उनका मुख भी महाविद्यालय बनाने की ओर है। कुछ नये गुरुकुल अपने यहां महाविद्यालय बना भी चुके हैं।

साधारणतया सब गुरुकुलों में १४ वर्ष का अध्ययन काल रखा जाता है। दस वर्ष विद्यालय विभाग और अन्तिम चार वर्ष महाविद्यालय विभाग कहाते हैं। जिस समय गुरुकुल वृन्दावन का कार्य मेरे हाथ मे आया और विशेष परिवर्तन पाठविधि में हुआ तब हमने दस वर्ष के विद्यालय विभाग का नाम वेदाङ्ग विद्यालय रखा और महाविद्यालय को अनेक प्रकारों में बाटा जो निम्न प्रकार है—

| महाविद्यालय नाम | वैकल्पिक विषय | | | |
|---|---|---|---|---|
| वेद महाविद्यालय | ऋग्वेद | यजुर्वेद | सामवेद | अथर्ववेद |
| उपवेदमहाविद्यालय | आयुर्वेद | अथर्ववेद | गान्धर्ववेद | धनुर्वेद |
| गुरुकुल महाविद्यालय | सिद्धान्त | पाश्चात्यदर्शन | राजनीति इतिहास | वेदाङ्ग आदि विशेष संस्कृत |
| विशेष संस्कृत में भी | दर्शन | साहित्य | व्याकरण | अन्य वेदाङ्ग एक एक |

हमारी स्कीम यह थी कि दश वर्ष का वेदाङ्ग विद्यालय प्रत्येक गुरुकुल अपने यहां रखे। और महाविद्यालय एक एक विषय का पृथक् २ गुरुकुलों में रहे। सब गुरुकुलों के लड़के एक दूसरे गुरुकुल के महाविद्यालय में प्रविष्ट किए जाया करें। उदाहरणार्थ—गुरुकुल वृन्दावन का दश श्रेणी तक का पढ़ा छात्र यदि आयुर्वेद महाविद्यालय में पढ़ना चाहता है तो वह गुरुकुल कांगड़ी के आयुर्वेद महाविद्यालय में चला जावे। गुरुकुल वृन्दावन में पृथक् आयुर्वेद महाविद्यालय की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार कांगड़ी गुरुकुल का दश श्रेणी तक का पढ़ा छात्र यदि दर्शन महाविद्यालय मे अध्ययन करना चाहता है तो वह गुरुकुल वृन्दावन के दर्शन महाविद्यालय में चला आवे। कांगड़ी में पृथक् महाविद्यालय की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार व्याकरण महा विद्यालय ज्वालापुर रहे।

इस रीति से सब गुरुकुलों में महाविद्यालय विभाग रह सकेंगे। प्रत्येक महाविद्यालय की परीक्षा का प्रबन्ध सार्वदेशिक सभा करे। वहीं से प्रमाण पत्र मिले फिर प्रान्तीयता आदि का भी विध्वंस स्नातको के सम्बन्ध में हो जावेगा।

जिन दिनों आवागढ़ नरेश का दौर दौरा गुरुकुल वृन्दावन में था तब राजा साहब ने गुरुकुलों की एकता के लिये सब गुरुकुल संचालकों से मिलकर बात करने के लिए मुझे नियत किया। मैं कुछ गुरुकुलों में गया भी। पर दुःख के साथ यह कहना पड़ता है कि छोटे से छोटे गुरुकुल संचालक अपने २ गुरुकुल को विश्वविद्यालय बनाने की चिन्ता में है; वे एक शृङ्खला मे आना नहीं चाहते। उनको दोषी क्यों कहें पहले तीन बड़े गुरुकुल और सार्वदेशिक मिलकर संगठन बनाले। अन्यों का समाधान स्वयं हो जायगा। यह बात कठिन भी नहीं क्योंकि वे ही आदमी सार्वदेशिक में हैं वे ही अपने अपने प्रान्त में गुरुकुलों के संचालक हैं। केवल ध्यान इधर देने की बात है। आशा है आर्य समाज के धुरीण हम लोगों के इस आवश्यक निवेदन पर ध्यान देंगे जिससे यह समस्या सुधर सके जिसे हम कहते हैं गुरुकुल समस्या।

# वेदाधिकार

[ ले०—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज ]

—:※※:—

वेद पढ़ने का अधिकार ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य तीनों वर्णों को है अथवा शूद्र को भी है। साथ ही यह भी चिंतनीय है क्या वेद पढ़ने का अधिकार मनुष्य मात्र को नहीं है। महर्षि दयानन्द जी मनुष्य मात्र का अधिकार स्वीकार करते हैं परन्तु सनातन धर्मावलम्बी पंडित द्विज को ही मानते हैं और अन्य को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है यह उनका निश्चय है। शारीरिक सूत्र पर भाष्य लिखते समय श्री शंकराचार्य जी शूद्र का निषेध करते हैं। गीता रहस्य में श्री लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक जी अफरीका की एक घटना लिखकर लिखते हैं शूद्र वेद को समझ ही नहीं सकता है इसी कारण शूद्र को निषेध है।

इस समय यदि जन्म से वर्ण व्यवस्था मानने वालों के सिद्धान्त को लें तो अनेक शूद्र ऐसे हैं जो वेद को पढ़ सकते हैं समझ सकते हैं। यदि आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार जन्म से न मानकर गुण कर्म, स्वभाव से वर्ण स्वीकार किया जाय तो वह व्यक्ति शूद्र नहीं हैं वह तो द्विज श्रेणी में आजायेंगे और जो कोई ऐसे व्यक्ति हैं जिनको पढ़ाने से भी कुछ नहीं आता अथवा जिनकी पढ़ने में रुचि ही ही नही है वह शूद्र बन जायँगे। मैं ऐसे व्यक्तियों को जानता हूं मैंने स्वयं भी उनको आर्य भाषा पढ़ाने का यत्न किया परन्तु वह इसमें अर्थात पढ़ने में असफल ही रहे। यदि उनको शूद्र माना जाय तो शूद्र के अधिकार का प्रश्न ही मिट जाता है, जिनको मैंने पढ़ाने का यत्न किया वह जन्म की दृष्टि से ब्राह्मण और क्षत्रिय साधारण काम अच्छा करते हैं परिश्रमी भी हैं आलस्य नाम को नहीं परन्तु पढ़ने से डरते हैं।

महर्षि जी ने जो सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है वह निम्न प्रकार है—

प्रश्न—क्या स्त्री और शूद्र भी वेद पढ़ें ? जो ये पढ़ेंगे तो हम फिर क्या करेंगे ? और इनके पढ़ने में प्रमाण भी नहीं है जैसा यह निषेध है।

**स्त्री शूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः।**

स्त्री और शूद्र न पढ़ें यह श्रुति है।

उत्तर—सब स्त्री और पुरुष अर्थात् मनुष्य मात्र को पढ़ने का अधिकार है। और तुम कथा में पढ़ो और यह श्रुति तुम्हारी कपोल कल्पना से हुई है। किसी प्रामाणिक ग्रन्थ की नहीं। और सब मनुष्यों के वेदादि शास्त्र पढ़ने सुनने के अधिकार का प्रमाण यजुर्वेद के छब्बीसवें अध्याय में दूसरा मंत्र है।

यथेमां वाचं कल्याणी मावदानि जनेभ्यः।

ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ॥यजु० २६।२॥

परमेश्वर कहता है कि ( यथा ) जैसे मैं ( जनेभ्यः सब मनुष्यों के लिये ( इमाम् ) इस ( कल्याणीम् ) कल्याण अर्थात् संसार और मुक्ति के सुख देने हारी ( वाचम् ) ऋग्वेदादि चारों वेदों की वाणी का (आ, वदानि) उपदेश करता हूँ वैसे तुम भी किया करो।

यहां कोई ऐसा प्रश्न करे कि 'जन' शब्द से द्विजों का ग्रहण करना चाहिये क्योंकि स्मृत्यादि ग्रन्थों में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ही को वेदों के पढ़ने का अधिकार लिखा है, स्त्री और शूद्रादि वर्णों का नहीं। ( उत्तर ) ( ब्रह्मराजन्याभ्याम ) इत्यादि देखो परमेश्वर स्वयं कहता है कि हमने ब्राह्मण क्षत्रिय (अर्य्याय) वैश्य ( शूद्राय ) शूद्र और ( स्वाय ) अपने भृत्य व स्त्रियादि ( अरणाय ) और अति शूद्रादि के लिये भी वेदों का प्रकाश किया है अर्थात् सब मनुष्य वेदों को पढ़ पढ़ा और सुन सुनाकर विज्ञान को बढ़ाके अच्छी बातों का ग्रहण और बुरी बातों का त्याग करके दुःखों से छूट कर आनन्द को प्राप्त हों। कहिये अब तुम्हारी बात मानें वा परमेश्वर की ? 'सत्यार्थ प्रकाश समुल्लास तृतीय।'

इस पाठ में ऋषि ने सब मनुष्यों को वेद पढ़ने का अधिकार स्वीकार किया है इससे वर्णाश्रम धर्मियों के अतिरिक्त जो इस समय ईसाई, मुसलमानादि हैं उनका भी वेद पढ़ने में अधिकार है उन्हें कोई रोक नहीं सकता यह भाव साफ है जो मन्त्र सत्यार्थ प्रकाश में है वह यजुर्वेद का है इसमें 'जन' शब्द के आगे जो ब्राह्मणादि नाम है वह सब वर्णाश्रम धर्मियों के पारिभाषिक नाम हैं यदि जन के पश्चात् वह शब्द न होते तो यह संदेह न होता कि यह मंत्र वर्णाश्रम धर्मियों को आज्ञा देता है, ईसाई व मुसलमानों को नहीं। इस संशय की निवृत्ति के लिये मैं एक और मन्त्र लिखता हूं उसके देखने से प्रतीत होता है कि वेद सबको ही अधिकार देता है।

य इमा विश्वा जातान्याश्रावयति श्लोकेन ।

प्र च सुवाति सविता ॥ ऋग्वेद मंडल ५ सूक्त ८२ मंत्र ६ ॥

इस मंत्र का देवता सविता है जिस प्रकार सावित्री का है सविता परमात्मा का भी नाम है जो सब संसार का उत्पादक है इस मंत्र के अर्थ महर्षि जी ने यह किये हैं।

हे मनुष्यो (यः) जो (श्लोकेन) वाणी से (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण प्रज्ञानों और (जातानि) उत्पन्न हुओं को (आश्रावयति) सब प्रकार से सुनाता है वह ( च ) और (सविता) प्रेरणा करने वाला हम लोगों को (प्रसुवाति) प्रेरणा करे।

भावार्थ—हे मनुष्यो जो जगदीश्वर वेद के द्वारा मनुष्यों के लिये सम्पूर्ण विद्याओं का उपदेश करता है वही परम गुरु मानने योग्य है ।

महर्षि जी ने भावार्थ में ईश्वर को परम गुरु मानने का विधान किया है और शब्दों में 'विश्वा जातानि' शब्द हैं विश्वा के अर्थ सर्व प्रज्ञान और जातानि के अर्थ उत्पन्न हुए लिखा है यदि सब उत्पन्न हुए अर्थ किया जाय तब भी भाव में कोई अन्तर नहीं आता तब यह अर्थ होंगे जगदीश्वर ने सबको मन्त्रों द्वारा उपदेश किया है अर्थात् वेद पढ़ने का सबको अधिकार है मनुष्य मात्र वेद पढ़ सकता है जैसा कि यजुर्वेद में जन पद है वैसे ही ऋग्वेद मे विश्वा जातानि है। और सत्यार्थ प्रकाश में जो मनुष्य मात्र को पढ़ने का विधान किया है यह मंत्र भी उसका पोषक है ।

---

# आर्य्य विवाह कानून की विस्तृत व्याख्या

(३)

## इंडियन सक्सेशन ऐक्ट

१९२३ के ऐक्ट के अधीन अन्तर्जातीय विवाह करने वालों के मार्ग में बड़ी कठिनाई धारा सं० २४ के अन्तर्गत है जिस में यह व्यवस्था की गई है कि १९२३ के ऐक्ट के अनुसार विवाह करने वाले व्यक्तियों और उनकी सन्तानों का जायदाद पर उत्तराधिकार इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार नियंत्रित होगा। यह कानून इस देश के युरोपियनों और ईसाईयों के उत्तराधिकार का कानून है। यह प्रश्न किया जा सकता है कि १९२३ के अधीन विवाह करने वालों को इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के प्रचलन पर आपत्ति क्यों होनी चाहिए। क्योंकि कुछ दशाओं में यह ऐक्ट अधिक न्याय युक्त है। यदि कोई व्यक्ति एक पुत्र और २ पुत्रियां छोड़ कर मर जाय तो इंडियन सक्सेशन ऐक्ट के अनुसार लड़के और लड़कियों को जायदाद में से बराबर २ भाग मिलेगा अर्थात् प्रत्येक को अपने पिता की सम्पत्ति का $\frac{1}{3}$ भाग प्राप्त होगा। हिन्दू कानून के अनुसार पुत्र को समस्त जायदाद मिलती है और पुत्रियों को कुछ नहीं मिलता है। जब आर्य विवाह ऐक्ट पर असेम्बली में बहस हो रही थी तो श्रीयुत अणे ने आर्य समाजियों को कहा था कि यदि वे सुधार की विशुद्ध भावना से प्रेरित हुए हुए हैं तो उनके लिए स्वर्ण अवसर प्राप्त है कि वे उत्तराधिकार की उस प्रणाली को स्वीकार करें जिसके दृष्टिकोण को सब लोग हिन्दुओं की उत्तराधिकार की प्रणाली की अपेक्षा स्त्रियों के लिए अधिक न्याय युक्त मानते हैं। सेलेक्ट कमेटी ने आर्य मैरेज ऐक्ट में इंडियन सक्सेशन ऐक्ट की धारा जोड़ी थी और कमेटी ने स्त्रियों के प्रति उदार और न्याय भावना से प्रेरित होकर ही ऐसा किया था। परन्तु आर्य समाजियों का दृष्टिकोण यह था कि वे शास्त्रानुमोदित उत्तराधिकार के कानून को चाहते हैं भले ही वह कानून अच्छा हो या बुरा।

इसमें संदेह नहीं जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध है हिन्दू कानून में कुछ त्रुटियाँ हैं। परन्तु ये त्रुटियाँ धीरे २ दूर की जा रही हैं। आर्य समाजियों की स्थिति यह है कि

समस्त हिन्दू जाति के लिए हिन्दू कानून में जो संशोधन किए जायेंगे वे उन्हें स्वीकार कर लेंगे। वे यह मानते हैं कि उत्तराधिकार और सामाजिक प्रथाओं के सम्बन्ध में उनकी साधारण भावना हिन्दुओं जैसी ही है और अन्य हिंदुओं पर जो कानून लागू होते हैं वही उन पर लागू होने चाहिये। उदाहरणार्थ हम एक सुधार को लेते हैं जिसने स्त्रियों की स्थिति में क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। वह सुधार १९३७ का स्त्रियों का जायदाद सम्बन्धी अधिकार का कानून है। इस कानून से पूर्व सम्मिलित परिवार की हिन्दू विधवा गुजारे और रहने के लिए मकान की हकदार थी और हिन्दुओं की सामाजिक प्रणाली से परिचित कोई भी व्यक्ति इसका मतलब समझ सकता है। सैकड़ों रीतियां और ढङ्ग थे जिनके द्वारा स्त्री तंग की जा सकती थी और कुछ परिस्थितियों में वह इन कथित अधिकारों से वंचित भी की जा सकती थी। यदि हिन्दू विधवा के अपने पुत्र न होते थे और सम्मिलित परिवार में उसके पति के भाई या सौत की सन्तान होती थीं तो तब उसकी स्थिति बड़ी दयनीय होती थीं। परन्तु अपने पुत्रों के परिवार में भी उसकी दुर्दशा संभव थी। परन्तु अब धारा सभा ने हिन्दुओ के उत्तराधिकार प्रणाली के धब्बे को बात की बात में मिटा दिया है और अब हिन्दू विधवा अपने अधिकार के अनुसार उस भाग की अधिकारिणी होती है जिसका अधिकारी उसका पति हो सकता है। इससे बढ़ कर बात यह है, सम्मिलित परिवार के अन्य सदस्यों को उस का हिस्सा तकसीम करने के लिए बाधित करने का उसे कानूनी अधिकार भी प्राप्त है।

यह कानून बड़ा महत्व पूर्ण है और भारत के एक छोर से दूसरे छोर तक हिन्दू समाज पर इस का प्रभाव पड़ता है। स्त्रियों की स्थिति के सुधार के लिये इस प्रकार के कई बिल कानून बनाए जाने के लिए प्रस्तावित हुए हैं और आशा है कि कुछ वर्षों में हिन्दुओं के उत्तराधिकार के कानून में संशोधन हो जायेंगे कि जिससे वह अपनी मौलिक विशेषताओं के साथ २ अन्य किसी भी सभ्य प्रणाली की तुलना में कम न रहेगा। मुसलमानों का उत्तराधिकार का कानून भी स्त्रियों के अधिकारों के अनुकूल है। उदाहरण के लिए यदि कोई पुरुष १ पुत्र और २ पुत्रियाँ छोड़कर मर जावे तो पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति में से ½ भाग मिलेगा और पुत्र को ½ भाग मिलेगा। ईसाइयों की

नाईं पुत्र और पुत्रियों को समान भाग नही मिलता है। परन्तु पुत्रों को पुत्रियों के भाग का दुगुना प्राप्त होता है। हिन्दू कानून के अनुसार पुत्रियों को पिता की सम्पत्ति मे से कुछ नही मिलता हैं। हां यदि कोई पुत्री अविवाहित हो तो परिवार को उसके विवाह के व्यय की व्यवस्था करनी होती है। आर्य समाजियों को यह कहना असंगत होगा कि वे उत्तराधिकार की किसी दूसरी प्रणाली का आश्रय लें क्योंकि वह प्रणाली उनकी प्रणाली की अपेक्षा अधिक उदार है। हो सकता है कि कुछ ब्रह्मसमाजी और उदार कहे जाने वाले हिन्दू इंडियन सक्सेशन ऐक्ट को पसन्द करें। परन्तु आर्य्यों, ब्रह्म समाजियों और अन्य हिन्दुओं का बहुमत हिन्दू प्रणाली के पक्ष मे ही होगा भले ही उसमे त्रुटियां हों। और आर्य समाजियों ने अपनी यही स्थिति रखी है। १९२३ के स्पेशल मैरिज संशोधन कानून की २४ वी धारा के द्वारा जो कठिनाई लगाई गई थी वह आर्य्य समाजियों की दृष्टि में बड़ी आक्षेप योग्य थी और इसी कारण से श्रीयुत घनश्यामसिंह गुप्त और श्री खरे ने आर्य समाजियों को सुविधा दिलाने के लिए यह बिल प्रस्तुत किया था।

---

# सुमन-संचय

## ( १ )

## कर्त्तव्य का सम्मान

प्रातः काल की वेला थी। काठियावाड़ के अधिपति अपने महल की छत पर टहल रहे थे। सहसा ही उनकी दृष्टि एक सुन्दरी पर पड़ी जो अपने मकान की छत पर बैठी नंगी स्नान कर रही थी। महाराज के मन मे उस सुन्दरी को देख कर विकार उत्पन्न हुआ और वह खड़े होकर उस सुन्दरी को देखने लग गए। जब वह स्नान करके चली गई तो महाराज कुर्सी पर बैठ कर कुछ सोचने लगे और कुछ देर के पश्चात् छत पर से उतर आए। प्रात ही उन्हों ने अपने कुल पुरोहित को बुलवाया और उन से कहा 'महाराज! यदि कोई पिता अपनी पुत्री को कुदृष्टि से देखे तो उसको क्या दंड मिलना चाहिए?' कुल पुरोहित ने कहा "महाराज! ऐसे नराधम के लिए शास्त्रों मे मृत्यु दंड का विधान है।" फिर राजा ने पूछा "यदि कोई राजा अपनी प्रजा की किसी कन्या को कुदृष्टि से देखे तो उसे क्या दंड मिलना चाहिए?" पुरोहित जी ने कहा "उसे भी वही दंड मिलेगा क्योकि राजा के लिए प्रजा की कन्याएँ पुत्रियां के समान होती हैं।" यह उत्तर सुन कर महाराज गुलाब सिंह ने प्रातः काल की समस्त घटना कुल पुरोहित को बतला दी। कुल पुरोहित ने कहा "आपको अग्नि मे जलाया जायगा क्योंकि ऐसे पाप के लिए मृत्यु दंड का यही रूप निश्चित किया हुआ है।" महाराज ने यह दंड स्वीकार कर लिया।

दूसरे दिन प्रातः काल अग्नि चिता के सामने महाराज नीचा मुँह किए खड़े थे। नगर और राज-परिवार मे शोक छाया हुआ था। भिन्न २ प्रकार की चेमें गोइयां हो रहीं थी। कोई शास्त्रों को बुरा भला कहता था, तो कोई पुरोहित को डांटता फटकारता था और कोई इस प्रसंग को प्रहसन बतलाता था। जितने मुँह उतनी बातो की कहावत भली भाँति चरितार्थ होती थी।

चिता में अग्नि प्रज्वलित की गई। महाराज उसमें प्रवेश करने के लिए आगे बढ़े। उपस्थित नर नारियों का करुण चीत्कार हुआ। रानियां महाराज

के चरणों में लोट गईं और रो रो कर चिता में प्रवेश करने से रोकने लगी। इतने में ही कुल पुरोहित आगे आए और महाराज को संबोधन करके बोले "महाराज! ठहरो! चिता में प्रवेश न करो।" महाराज ने पूछा 'क्यों ?' कुल पुरोहित ने कहा इस लिए कि तुम्हारे पाप का प्रायश्चित हो गया। चिता में जलाने की आवश्यकता नहीं है" महाराज ने पूछा "कुल पुरोहित! आप की बात मेरी समझ मे नहीं आई " कुल पुरोहित ने कहा "आपका पाप मानसिक था। चूँकि इस पाप को आपने मुझ पर स्पष्ट कर दिया है और इतना ही नहीं समस्त प्रजा को भी मालूम हो गया है अतः इस स्पष्टीकरण से आपके पाप का प्रायश्चित हो गया है।"

इतना सुन कर महाराज पीछे हट गए। उपस्थित नर नारी हर्ष से उन्मत्त हो गए और महाराज की प्रजा वत्सलता की भूरि २ प्रशंसा करते हुए अपने घर को चले गए।

( २ )

## राजमहल सराय है

एक दिन सिकन्दर बादशाह के महल में एक फकीर चुपके से घुस गया। राज परिवार के लोगों और भृत्यों ने उसको वहाँ से निकालने का बहुत यत्न किया परन्तु वह फकीर न हटा। अन्त में निराश होकर सिकन्दर शाह को इस की सूचना दी गई। सिकन्दर बादशाह का क्रोध और आतंक प्रसिद्ध था। उनकी एक रानी भावी अमंगल की कल्पना से भयभीत होकर फकीर के निकट गई और हाथ जोड़ कर वहां से चले जाने की अनुनय विनय की परन्तु फकीर पर उसकी प्रार्थनाओं और अनुनय विनय का कोई प्रभाव न पड़ा। इतने मे ही सिकन्दर शाह अपने दल बल के साथ राज महल में प्रविष्ट हुए। उनकी मुखाकृति से ऐसा प्रतीत होता था मानों क्रोध मूर्तिमान होकर स्वयं उपस्थित हुआ है। उपस्थित नर नारी भय से काँपने लगे। उन्होंने क्रोध केस्वर में फकीर को सम्बोधन करके पूछा "तुम बिना आज्ञा के मेरे राज महल में क्यों दाखिल हुए हो? फकीर पर सिकन्दर के आगमन और प्रश्न का मानो कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने लापरवाही से उत्तर दिया "सिकन्दर शाह! मैं आपके राजमहल में नहीं घुसा हूँ। मै तो सराय में आया हूँ।" इस उत्तर को सुन कर सिकन्दर को बड़ा कौतूहल हुआ उसने कहा "ऐ फकीर! तुम भूलते हो, यह सराय नहीं है। यह तो राज महल है। किसी ने

आपको बहका दिया है।" साधु ने कहा "सिकन्दर। तुम भूलते हो। मैं तुम से पूछता हूँ कि क्या तुम्हारे माता-पिता और बुजुर्ग इस महल मे नही रहे हैं ?" सिकन्दर ने उत्तर दिया मेरे माता-पिता और बुजुर्ग अवश्य इस महल मे रहे हैं ?" फकीर ने फिर पूछा "क्या तुम सदैव इस महल मे रहोगे ?' सिकन्दर ने कहा "नहीं।" इस पर फकीर ने कहा "जब इस महल मे तुम्हारे माता पिता सदैव नही रहे है और तुम भी सदैव नही रहोगे तब तुम्हारा यह महल सराय नहीं तो क्या है ?" फ़कीर का यह उत्तर सुन कर सिकन्दर शाह के ज्ञान चक्षु खुल गए और बिना कुछ कहे फकीर के चरणो मे बैठ गए।

( ३ )

एक बार एक महात्मा एक नदी के तट पर बैठे प्रकृति निरीक्षण कर रहे थे उन्होने नदी के प्रवाह में बहते हुए एक बिच्छू को देखा। उसकी दशा पर उन्हे दया आई और वे उस निकालने के लिए नदी में घुसे। ज्योंही उन्होंने बिच्छू को छुआ त्योंही उसने महात्मा को डंक मार दिया। इस प्रकार ३ ४ बार बिच्छू ने उन्हे काटा परन्तु उन्होंने अपना यत्न न छोडा। महात्मा के निकट एक व्यक्ति खड़ा था। उस ने महात्मा को कहा "महात्मन्! इस दुष्ट को अपनी मौत मरने दो। आप इस पर दया करत हैं और यह आपको बार २ काटता है। ऐसे दुष्ट पर उपकार करने स क्या लाभ ?" महात्मा ने मृदु मुस्कान के साथ कहा "भाई तुम बड़े भोले हो। जब यह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता है तो हम अपनी सज्जनता को क्यो छोड़े।" यह कह कर महात्मा ने साहस करके बिच्छू को जल मे से निकाल करउस की प्राण रक्षा की।

( ४ )

एक बार तैमूरलंग अपनी सेना के साथ एक वन में घूम रहा था। वन में उसे एक अंधी बुढ़िया मिली जो बड़े जोर स रो रही थी। तैमूर उसके पास गया और उससे रोने का कारण पूछा परन्तु बुढ़िया ने कोई कारण न बताया। इस पर तैमूर न बुढ़िया का नाम पूछा। बुढ़िया ने कहा "मेरा नाम दौलत है।" यह नाम सुन कर तैमूर बहुत हंसा और बोला 'बुढ़िया! कही दौलत भी अंधी होती है।" बुढ़िया ने तत्काल उत्तर दिया "यदि दौलत अंधी न होती तो तैमूर लंगड़े के पास क्यों आती" यह उत्तर सुन कर बिना कुछ कहे तैमूर ने अपना रास्ता लिया।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# आर्य्य समाज की चिनगारियाँ

## ऋषि दर्शन

महता अमीचन्द जा आर्य समाज क उत्तम कवि और भजनीक थे। आपका जन्म स्थान हरणपुर ग्राम था जा तहसील पिंड दादुनखा जिला जेहलम मे जहलम (वितस्ता) नदी के किनारे आबाद है आप बाली' ब्राह्मण थे यह माहपाल ब्राह्मणो की उपजाति है।

आपन उर्दू, फारसी पढ़ी क्योंकि उस समय पजाब म प्राय यही पढ़े जाते थे अंग्रेजी का चलन न्यून था। संस्कृत और आर्य भाषा का लोप हो चुका था। पढाई समाप्त करक आपन नौकरी की, नौकरी म आप वासिलवाकीनवीस, चुङ्गी दारागा और कभी कभी नायब तहसीलदार भी रह।

आपन राग विद्या सीखी जिससे अनुमान हाता है कि आपके राग विद्या क पुराने जन्म के संस्कार थ क्योंकि आर्यों म उस समय राग विद्या का सर्वथा ही प्रचार न था। राग विद्या के साथ साथ आप व्यसनी हो गए, क्योंकि राग विद्या का मुख्य स्थान पजाब में मीरासी और वेश्याए ही थीं और माहपाल ब्राह्मणो को मास स भी विशेष घृणा न थी इसलिये आपन वहा गान विद्या म पटुता प्राप्त की। वहाँ व्यसनीराज भी हा गए और वश्याओं के संग स उभय सिद्ध थे अतः उस मार्ग के यात्री हो गए।

कहते हैं मेहता अमीचन्द न जेहलम स चलकर गुजरात में आकर ऋषि के दर्शन किए। उस समय एक डाक्टर आपक साथ थ आपन महर्षि जी क सम्मुख एक भजन गाया। भजन सुनकर महर्षि न कहा 'है ता हीरा परन्तु कीचड़ म पड़ा है' इतने ही म आँख खुल गई और जो व्यसनी अमीचन्द था अब सचमुच अमीचन्द हा गया और ऋषि कृपा स अमीचन्द जी की काया पलट गई और जो अनुराग उसे व्यसनो म था अब वही अनुराग ईश्वर भक्ति मे हो गया।

अब अमीचन्द जी आर्य समाजी थ। आर्य समाज के अधिकारी थे और आर्य समाज के भजनीक थे। उत्सवो पर सत्सगो म आपकी चर्चा

थी। आप गान विद्या के ज्ञाता थे कवि थे, स्वर उत्तम था गला कोकिल सम था अब आप आर्य समाज के भजन बनाते और गाते थे।

जेहलम में आपकी सुसराल थी आपने वहां भूमिक्रय करके गृह बनाया और जेहलम मे ही रहने लगे।

२६ जुलाई १८६३ को आपका शरीरात होगया। सुनते है आपने देहावसान से पूर्व स्वीकार पत्र लिख दिया था कि उनकी सम्पत्ति उनकी धर्मपत्नी के जीवन काल तक उसे और पश्चात् दयानन्द एंगलो वैदिक कालिज कमेटी लाहौर को मिले।

आपके भजनो मे से एक पंजाबी का भजन लिखा जाता है जिसमें स्त्री रूप मे एक यात्री का वर्णन है जिससे पाठक उनके भावों से भी परिचय प्राप्त कर सकें।

वतन दुराडा, साडा देश दुराडा, पंधा मै लम्बड़े राही, साईं सानूं तोड़ पुचाईं।
टुरी हां कुवेल, विच उजड़ वेले, साथ न वेली वाईं साईं साडा साथ निभाईं।
पैर अगेरे मै, डरदी न धरदी, मप्प बूटे-बूटे कांई, साईं कर दूर बलाईं।
मझांविच्च मझियां, मै दम सूलांसलियां होगए पैर अजाईं, साईं किते पैर टिकाईं।

( ता )

थक-थक हारी, सिरते भार है भारी, पै गई अवलड़े राही, साईं सानूं राह बखाईं।
खुभड़ विच खुबियां, चिकड़ विच डुबीयां, फसीयां आण कथाईं, साईं जामां किस थाईं।
रात अन्हेरी, लभदा तुल्हा न बेड़ी, नदीयां बगण असगाहीं, साईं सानूं पार लघाईं।
खाली मेरा पल्ला हथी छाप न छल्ला, मसूल ए मंगदे भलाही, साईं साडा पल्ला छडाईं,
बुरी हाँ जां भली हां,मै दरदते खड़ी हाँ,ढठी हां आन पनाही, साईं नित्त दा पैंडामुकाईं।
तेरे दर मंगदे, अमीर न संगदे, मेरी भी आस पुजाईं, साईं सानूं वतन पुचाईं।

—स्वतन्त्रानन्द

# वेदों में प्रक्षेप

( ले०—श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज )

वैदिक सम्पत्ति के लेखक प० रघुनन्दन शर्मा ने वैदिक सम्पत्ति में वेदों में प्रक्षेप होने का प्रश्न उठाया है और उनमें प्रक्षेप होना बतलाया है। उनकी स्थिति अच्छी तरह से समझ ली जावे इसलिए हम पहले उनका मत कुछ विवरण के साथ दिए देते हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थ के चतुर्थ खण्ड मे वेदों का विवरण दिया है। उन्होंने वहा लिखा है कि —

इन समस्त प्रमाणों से सिद्ध होता है कि अपौरुषेयता और ईश्वर प्रदत्तता ऋग्यजु, साम और अथर्व ही को प्राप्त है अन्य को नहीं (पृष्ठ ५३२)

'यह स्पष्ट हो जाने पर कि ब्राह्मण ग्रन्थों को अपौरुषेयत्व प्राप्त नहीं है वे सहिताओं के व्याख्यान ही हैं और यह भी स्पष्ट हो जाने पर कि अथर्व वेद भी अपौरुषेय है, वेदों की इयत्ता निर्धारित हो जाती है और ज्ञान हो जाता है कि अपौरुषेय वेद चार हैं और उनके नाम ऋग्, यजु, साम और अथर्व हैं।"

(पृष्ठ ५३६)

## वेद की शाखायें

अर्थों के निश्चित करने के लिये मूल सहिता के सिवा मूल सहिता का पद पाठ सहिता का रूप दिया गया ऐतरेय आरण्यक में लिखा है जिसमें सन्धि ज्यों की त्यों बनी रहती है वह निर्भुज सहिता और जिसमे सन्धि के बिना केवल पदों का उच्चारण होता है वह प्रतृण्णा से सहिता कही जाती है*।

वेदों की शाखा का पहला रूप यही था फिर इसी आरण्यक मे लिखा है† कि जब आगे चलकर प्रतृण ( पदपाठ ) सहिता जटा माला आदि × भेदों से विकृत हो जाती है और तब उसे क्रम सहिता कहते हैं। अभिप्राय यह है कि

---

* यद्धि सन्धि विवतयति तन्निर्भुजस्य रूपम् अथ यच्छुद्धे अक्षरे अभिव्याहरति तत् प्रतृण्णस्य ॥ ( ऐतरेय आरण्यक ३ । १३ ) ।

† क्रम उपयो मयमन्तरेणो मय व्याप्त भवति। ( ऐतरेय आरण्यक ३ । १३ )

× जटा माला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथो घन ।
अष्टौ विकृतय प्रोक्ता क्रम पूर्वा मनीषिभि ॥ ( विकृत वल्ली १ । ५ )

मूल मन्त्रों के सिवा जिसमें उनके पद भी अलग अलग हों और इन पदों की विकृति भी हो वह क्रम संहिता कही जाती है।

शाखाओं की समाप्ति यहां पर नहीं हुई। बृहद्देवता के अनुसार देवता, ऋषि, छंद और अर्थ भेद से सूक्तों के अनेक भेद हो गये+ । इस प्रकार सूक्त आदि के भेदों से शाखाओं की संख्या में और वृद्धि हुई। देवता परक सूक्तों को एकत्र करने से दैवत शाखा, ऋषि परक सूक्तों को इकट्ठे करने से आर्ष शाखा कही जाने लगी।

रघुनन्दन शर्मा का कहना है कि "यद्यपि मन्त्रों का इतना अधिक उलट फेर हुआ परन्तु अब तक मन्त्रों में पाठ भेद अथवा न्यूनाधिक्ता नहीं हुई।"

( पृष्ठ ५४२ )

"किन्तु कृष्ण यजुर्वेद के अवतार धारण करते ही वैदिक शाखाओं मे उथल पुथल शुरू हुआ। रावणादि कृत साहित्य के सम्मिश्रण से शाखाओं में गड़बड़ मची और संहिताओं में ब्राह्मण भाग तथा ब्राह्मणोतर भाग भी मिला मिलाकर अथवा मूल मन्त्रों ही को घटा बढ़ाकर और पाठ भेद कर करके अनेक शाखाओं को जन्म दिया गया। ( पृष्ठ ५४३ )

इस कथन के बाद रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रन्थ के उद्देश्य से इन शाखाओं के दो भेद किये है, एक को उन्होंने आर्य और दूसरे को अनार्य शाखा का नाम दिया है।

जिन शाखाओं में मूल मन्त्रों की ज्यों की त्यों रक्षा करते हुए केवल मन्त्रों के उलट फेर से उन्हें बनाया गया वे आर्य शाखा और जिनमें मन्त्रों में पाठ भेद करके आसुरी साहित्य ब्राह्मण भाग और मनः कल्पित वाह्य संस्कृत का मिश्रण करके रचा गया उन्हें अनार्य्य शाखा का नाम दिया है। ( पृष्ठ ५४३ )

## आर्य्य-शाखा

शर्मा जी ने आर्य शाखाओं का उत्तम नमूना ऋग्वेद की ) शाकल और वाष्कल आदि शाखाओं को बतलाया है और अनार्य्य शाखाओं का नमूना तैत्तिरीय और काठक आदि को कहा है।

\+ देवतार्षार्थ छन्दोभ्यो वैविध्यं तस्य जायते ॥ ( बृहद्देवता १ । १४ )

इन दोनों प्रकार की शाखाओं का उदाहरण देते हुए, उन्होंने एक बार फिर कहा है कि आर्य शाखाओं में उलट फेर के अतिरिक्त न्यूनाधिक्य नहीं है पर अनार्य शाखाओं में दोनों बातें विद्यमान हैं। ( देखो पृष्ठ ५४३, ५४४ ) ऋग्वेद की उपर्युक्त आर्य शाखाओं में से उनके एक शाखाकार शाकल ( या शाकल्य ) को ऋग्वेद को मंडल और सूक्तों मे विभाग करने वाला और सबसे पहला शाखाकार माना जाता है। बाष्कल, जो शाकल्य का शिष्य कहा जाता है, और जिसे ऋग्वेद को अष्टकादि विभागों में विभक्त करने वाला बतलाया जाता है, वह शाकल्य के बाद का शाखाकार समझा और माना जाता है तो भी ये दोनों शाखायें अत्यन्त प्राचीन और आदिमकालीन स्वीकार की जाती हैं। शाकल्य के विभाग के सदृश बाष्कल के विभाग के लिये भी, रघुनन्दन शर्मा ने लिखा है कि "इस विभाजन के कारण मन्त्रों के केवल संख्या अंक ही फिरे और किसी प्रकार का फेर फार नहीं हुआ। इसलिये वैदिकों ने दोनों को एक ही मानकर मिला दिया। अब तक दोनों शाखायें एक ही में मिली हुई मिलती हैं और केवल इतिहास स्मरणार्थ दोनों प्रकार के पते ( मण्डल तथा अष्टक ) वर्तमान ऋग्वेद के पृष्ठों में लिखे रहते हैं। यह क्रम आदि काल से ही चला आता है। इस प्रकार से यह आदि प्रवचन कर्ता की स्थिर की हुई ऋग्वेद शाखा प्राप्त है और इसमें अब तक आरम्भिक संहिता के प्रकृत मन्त्र और पदपाठ दोनों एक ही में छपते हैं। × × × इसलिए आदिम अपौरुषेय ऋग्वेद संहिता पूर्ण रूप से प्राप्त है इसमें जरा भी संदेह नहीं।" ( पृष्ठ ५४५ ) ऋग्वेद की तरह यजुर्वेद की शाखाओं पर विचार करते हुए रघुनन्दन शर्मा ने लिखा है—'इसलिये माध्यन्दिनीय शाखा ( वर्तमान यजुर्वेद ) ही आदि मूल और अपौरुषेय है इसमें संदेह नहीं।" ( पृष्ठ ५४८ )

इसी प्रकार सामवेद के सम्बन्ध में लिखा है—'इसलिये उत्तर भारत से सम्बन्ध रखने वाली और गुर्जर ( दक्षिण गुजरात ) तक फैली हुई कौथुमी शाखा ( वर्तमान सामवेद ) ही आर्य शाखा है और आर्य शाखा ही मौलिक है, अतएव कौथुमी शाखा के आदि अर्थात् अपौरुषेय होने में कुछ भी सन्देह नहीं है। ( पृष्ठ ५४६ )

अथर्व वेद की शाखाओं पर विचार करने के बाद निष्कर्ष यह निकाला है— "मूल आर्य और अपौरुषेय संहिता तो शौनक संहिता ( वर्तमान अथर्व वेद ) ही

है। वही ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के साथ सनातन से पठन पाठन में चली आ रही है, उसी पर भाष्यकारों ने भाष्य किये हैं, और उसी मे वेद के सब लक्षण पाये जाते हैं। इसलिये शौनक संहिता ही सनातन ईश्वर प्रदत्त है, इसमें सन्देह नहीं ( देखो पृष्ठ ५५० )।

## प्रक्षेप

इस प्रकार रघुनन्दन शर्मा ने चारों वेदों को न्यूनाधिक्य से रहित और ईश्वर प्रदत्त मानने के बाद उन में प्रक्षेप होने का प्रश्न उठाते हुये लिखा है:— 'जहां तक हमको ज्ञान है अब तक एक भी प्रमाण इस बात का उपस्थित नहीं किया गया कि अमुक स्थल प्रक्षिप्त है और इसको आज तक कोई नहीं जानता था। जिन स्थानों को प्रक्षिप्त बतलाया जाता है वे बहुत दिन ( ब्राह्मण काल ) से सब को ज्ञात हैं। वे प्रक्षिप्त नहीं हैं किन्तु एक प्रकार के परिशिष्ट हैं जो लेखकों और प्रेस वालों की असावधानी से मूल में घुस कर मूल जैसे मालूम होते हैं। बाल खिल्य सूक्त ऋग्वेद में, खिल अर्थात् ब्राह्मण भाग यजुर्वेद में, आरण्यक और महा नाम्नी सूक्त सामवेद में और कुन्ताप सूक्त अथर्व वेद में मिले हुये हैं।

### ऋग्वेद

## इन पर विचार

हम सब से पहले ऋग्वेद के कथित प्रक्षिप्त या परिशिष्ट पर विचार करते हैं। रघुनन्दन शर्मा ने स्वीकार किया है कि शाखाओं का काल ब्राह्मण काल के बहुत पूर्व का है ( देखो पृष्ठ ५४१ ) और यह भी माना है कि शाखा आरम्भ काल के बहुत दिन बाद संहिताओं में खैलिक भाग—प्रक्षिप्त भाग—जोड़े गये हैं और उन खैलिक भागों का वर्णन ब्राह्मणों में है ( देखो पृष्ठ ५४१ ) शर्मा जी ने इस प्रकरण में यह नहीं बतलाया है कि बालखिल्य सूक्त किस ब्राह्मण से लेकर ऋग्वेद में जोड़े गये हैं। उन्होंने बालखिल्य सूक्तों के प्रक्षिप्त होने के दो प्रमाण दिये हैं—

## पहला प्रमाण

ऐतरेय ब्राह्मण का है। ऐतरेय ब्राह्मण के २८। ८ में लिखा है 'वर्जेण बालाखिल्याभि र्वाचः कूटेन'। इस वाक्य के भाष्य में सायणाचार्य ने लिखा है कि बालखिल्य नाम के कोई महर्षि थे। उनसे सम्बन्ध रखने वाले आठ सूक्त हैं।

वे खिल्य नाम के ग्रन्थ में लिखे गये हैं । ❀

इस पर हमारा कहना यह है कि ऐतरेय ब्राह्मण के अन्त के अध्याय प्रक्षिप्त बतलाये जाते हैं । † शर्मा जी का दिया हुआ प्रमाण इसी प्रक्षिप्त भाग के अन्तर्गत है इसलिये कोई अप्रमाणिक लेख किसी दूसरे के अप्रमाणित करने में प्रमाण किस प्रकार माना जा सकता है ? सायणाचार्य का कोई (केचन) शब्द स्वयं बतलाता है कि उसको बालखिल्य किन्ही कथित महर्षि का कुछ ज्ञान नहीं था उससे ऐसा प्रतीत होता है कि बिना किसी प्रमाण के ही बालखिल्य ऋषि और उनके कथित खिल्य ग्रन्थ की कल्पना करली। देशी और विदेशी विद्वानों ने जो संस्कृत साहित्य के इतिहास लिखे हैं उनमें कोई खिल्य नामक ग्रन्थ नहीं देखने में आता।

( २ ) दूसरा प्रमाण शर्मा जी ने किसी अनुवाकानुक्रमणि से दिया है। उसमे लिखा है कि खिल भाग को छोड़कर ऋग्वेद के एक सहस्र सूक्त निश्चित हैं। × परन्तु इसी अनुवाकानुक्रमणि के नाम से पं० भगवतदत्त ने लिखा है कि शाकल शाखा में १११७ सूक्त और वाष्कल शाखा में इससे आठ अधिक सूक्त अर्थात् ११२५ सूक्त हैं।* इससे स्पष्ट हो जाता है कि रघुनन्दन शर्मा का उद्धृत किया हुआ वाक्य ऋग्वेद संहिता से नहीं अपितु किसी शाखा विशेष से सम्बन्धित होगा जिसमें वालखिल्य सूक्तों के सिवा और भी १४ सूक्त वाष्कल शाखा से कम होंगे। शर्मा जी को ऋग्वेद की केवल दो शाखाओं का पता चला था परन्तु उनके पीछे और भी अनेक शाखाओं का ज्ञान विद्वानों को हुआ और उन्होंने उन ( अश्वलायन आदि शाखाओं का उल्लेख अपने ग्रन्थों में किया है। +

---

❀ वालखिल्य नामकाः केचन महर्षय तेषा सम्बन्धीन्यष्टौ सूक्तानि विद्यन्ते तानि बालखिल्य नाम के ग्रंथे समाम्नायन्ते। ( सायनाचार्य )

† देखो Encyclopedia Britanica मे प्राचीन संस्कृत ( Ancient Sanskrit literature ) सम्बन्धी लेख।

× सहस्र मेतत्सूक्ताना निश्चितं खैलिकेर्विना ॥ ( अनुवाकानुक्रमणि )

* एतत् सहस्रं दश सप्त चैवाष्टावतो बाष्कल केऽधिकानि। तान्पारये शाकले शैशिरीये वदन्ति शिष्ट न खिलेषु विप्राः ॥ ३६ ॥

+ देखो पं० भगवतदत्त कृत वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृष्ठ ९८-१०२।

अस्तु बालखिल्य सूक्त जब बाष्कल शाखा में मौजूद हैं और जब शर्मा जी शाकल और बाष्कल शाखा के लिये स्वीकार करते हैं कि 'वैदिकों ने दोनों ( शाकल + बाष्कल ) को एक मानकर एक में लिख दिया और अब तक दोनों शाखायें एक ही में मिली मिलती हैं।" जैसा ऊपर लिखा आ चुका है तो वे किस प्रकार से कह सकते हैं कि बालखिल्य सूक्त परिशिष्ट हैं मूल नहीं।

## स्वामी हरप्रसाद और वेदों का प्रक्षेप विषय

रघुनन्दन शर्मा ने अपने ग्रन्थ में प्रक्षेप और पुनरुक्ति का विषय स्वामी हरप्रसाद के वेद सर्वस्व के आधार से शुरू किया है ( देखो पृष्ट ५५१ ) परन्तु उन्हें समझना चाहिए था कि स्वामी हरप्रसाद तो ऋग्वेद के सिवा अन्य वेदों को अपौरुषेय वेद ही नहींमानते फिर उनका प्रक्षेप का विषय उठाना कैसा ? उन्होंने एक जगह लिखा है—

यजुर्वेद—

यज्ञ कर्म से सम्बन्ध रखने वाले सम्पूर्ण यजु नाम के मन्त्रों को ऋग्वेद संहिता से अलग करके, उनमें कुछ सामयिक भाषा में लिखे हुए ब्राह्मण नाम के गद्य भाग को यथोचित स्थान में सम्मिलित करके यज्ञ पद्धति के रूप में लिख दिया गया इसी का नाम पीछे से यजुर्वेद हो गया।

सामवेद—

इसी प्रकार यज्ञ कर्म में गाये जाने वाले साम नाम के मन्त्रों को ऋग्वेद से अलग करके क्रम विशेष के रूप में लिख दिया गया—उसी का नाम सामवेद हो गया।

अथर्ववेद—

प्राचीन साहित्य के रूप में परम्परा से प्राप्त थोड़े मन्त्रों में बहुत अधिक ऋचा मन्त्रों को मिलाकर और "ऐतश प्रलाप" इत्यादि घृणित तथा व्यर्थ अनेकों ग्रामीण वाक्यों का समिश्रण करके अथर्व वेद संहिता तय्यार की गई।*

जिस व्यक्ति के इस प्रकार के तुच्छ विचार हों उसका वेदों के प्रक्षेप आदि से क्या मतलब ? रघुनन्दनजी को उनके लेख पर ध्यान नहीं देना चाहिए था।

---

* "स्वाध्याय" पुस्तक स्वा० हरप्रसाद रचित पृष्ठ ३ से ५ तक।

## वालखिल्य सूक्त

ये सूक्त उसीं समय से ऋग्वेद संहिता के अन्दर सम्मिलित हैं जब से वह प्रादुर्भूत हुई शाखाओं में से किन्हीं में उन्हें लिखा गया किन्हीं में नहीं। शाखाओं में सूक्त और मन्त्र संख्या भेद उसी समय से चला आता है जब से उनका जन्म हुआ। इसीलिये शाकल्य और वाष्कल प्राचीनतम शाखाओ में भी, जिन्हें रघुनन्दनजी ने आर्य शाखा माना और जिनमे मन्त्र संख्या में न्यूनाधिक्य न होना लिखा है, सूक्त सख्या भेद है। इन शाखाओं से ऋग्वेद संहिता प्रथक थी और उसमें वालखिल्य सूक्त सम्मिलित थे। इसीलिए पं० भगवतदत्त ने लिखा है:—

"यथा शाकलों में कई वालखिल्य सूक्त नहीं हैं परन्तु वाष्कलों में ये मिलते हैं। मूल ऋग्वेद में ये सारे समाविष्ट हैं। *

इनमें आठवें मण्डल के ११ सूक्तों में आये हुए ८० वालखिल्य मन्त्र भी सम्मिलित हैं। ये ऋग्वेद का अंग है। +

इन्हीं वालखिल्य सूक्तों की प्राचीनता के सम्बन्ध में विन्टर निट्ज ने लिखा है:—खिल शब्द के अर्थ परिशिष्ट के हैं और यह नाम स्वयं प्रकट करता है कि यह मूल है और एकत्रित करके संहिता में पीछे से शामिल किए गए। परन्तु यह सम्भावना है कि इन ( खिल मन्त्रों ) में से कुछेक की प्राचीनता ऋग्वेद की अन्य ऋचाओं से कम नहीं। यह बात समझ में नहीं आती कि इन्हें परिशिष्ट क्यों कहा गया?[1] फिर उसने लिखा है कि ये ११ सूक्त वालखिल्य के सभी हस्त लिखित कापियों में पाए जाते हैं।[2]

---

* वैदिक वाङ्मय का इतिहास प्रथम भाग पृष्ठ ७६।

+ ,, ,, पृष्ट १३५।

(1) The word Khila means "supplement" and this name in itself indicates that they are texts which were collected and added to the sanhita only after the latter had already been conducted This does not exclude the possibility that some of these Khilas are of no less antiquity than the hyms of the Regved Sanhita but for some reason unknown to us were not included in the collection.

( A History of Indian Literature by Mr. Winternity P.Hd. p. 59-60)

(2) The eleven Bal Khillya hymns in all manuscripts are found at the end of the book VIII. ( p. 60 )

इन सब बातों पर विचार करने के बाद हमारी सम्मति यह है कि ये बालखिल्य सूक्त न प्रक्षिप्त हैं और न परिशिष्ट किन्तु वेद का अंग है। मालूम यह होता है कि ये सूक्त प्रारम्भ में बहुत प्रचलित थे और यह भी सम्भव है कि कोई बालखिल्य नामक व्यक्ति उनका प्रचारक हो। इसलिये उसी के नाम से इनकी प्रसिद्धि हो गई। और सुगमता से लोगों को मिल जांय इसलिए उनको प्रारम्भ और अन्त में "अथ" और "इति" किसी ने लगा दी। पीछे से यह अथ और इति पुस्तक का अंग बन गई। पं० रघुनन्दन शर्मा का यह अनुमान ठीक नहीं कि लेखकों के प्रमाद से ये सूक्त अंत में रहने की जगह मूल में शामिल हो गये। ये सूक्त आठवें मण्डल के भी अन्त में नहीं किन्तु उसके बीच में हैं। ग्रीफेथ ने यह ईमानदारी का काम नहीं किया कि अपने ऋग्वेद के अनुवाद में इन्हें आठवें मण्डल के बीच में से निकालकर अन्त में रख दिया है। मैक्समूलर ने जो शुद्ध ऋग्वेद का संस्करण यूरोप में छपवाया था उसमें भी ये सूक्त मौजूद हैं।

यजुर्वेद—

रघुनन्दन जी ने यजुर्वेद में प्रक्षिप्त होने के लिये जो प्रमाण दिये हैं उनमें से एक एक को लेकर उन पर विचार किया जावेगा।

## पहला आक्षेप

सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि ऋचा, खिल और शुक्रिय मन्त्रों के सहित माध्यन्दिनीय यजुर्वेद के ऋषि, देवता और छन्दों की अनुक्रमणी बनाता हूं।* इस पर रघुनन्दन जी का कहना यह है कि यहां खिल भाग का प्रत्यक्ष इशारा है।

## हमारा उत्तर

खिल परिशिष्ट ( appendix ) को कहते हैं प्रक्षिप्त को नहीं। किसी ग्रन्थ के परिशिष्ट के लिये यही समझा और माना जाता है कि वह उसी ग्रन्थ कर्ता की रचना है, जिसका वह ग्रन्थ है। फिर उसे बाहर का भाग क्यों समझना चाहिए? यहां एक बात और भी समझ लेनी चाहिए कि हम माध्यन्दिन शाखा का मूल यजुर्वेद नहीं मानते। व्यास का शिष्य वैशम्पायन था जिसने तैत्तिरीय शाखा ( कृष्ण यजुर्वेद ) का प्रचार किया था। उसका शिष्य याज्ञवल्क्य था जो शतपथ

---

* माध्यन्दिनीये वाजसनेयके यजुर्वेदाम्नाये सर्वे सखिले सशुक्रिये।
ऋषि दैवत छन्दांस्यनुक्रमिष्यामः॥ सर्वानुक्रमणि॥

का रचयिता था और जनक आदि से जिसका सम्वाद ब्रहदारण्यकोपनिषद् में अङ्कित है। उसी को वाजस नेय याज्ञवल्क्य भी कहते हैं। उसका वैशम्पायन से बिगाड़ हो गया था इसलिये कि वह ( याज्ञवल्क्य ) तैत्तिरीय शाखा का प्रचार का विरोधी था। याज्ञवल्क्य के १५ शिष्य थे जिनमें से प्रत्येक ने यजुर्वेद की एक एक शाखा का प्रचार किया था। इन्हीं मे से दो शिष्य काण्व और मध्यन्दिन थे, जिन्होंने काण्व और माध्यन्दिन शाखाओं का प्रचार किया था। याज्ञवल्क्य के शिष्य मूलवेद के यथासम्भव साथ साथ चलते थे। कृष्ण यजुर्वेद की तरह ये १६७५ मन्त्रों को बढ़ा कर १८००० कर देने के विरोधी थे। यही कारण वैशम्पायन और याज्ञवल्क्य के बिगाड़ का था। स्पष्ट है कि इन काण्व और माध्यन्दिन शाखाओं का प्रादुर्भाव ५००० वर्ष ( महाभारत काल ) से कुछ इधर ही हुआ है। परन्तु मूल यजुर्वेद इससे बहुत पहले प्रादुर्भूत हो चुका था। किष्किन्धा पर हनुमान की योग्यता के लिए राम ने लक्ष्मण से कहा था कि बिना ऋक्, यजु और साम वेदों के जाने कोई इस प्रकार की बात नहीं कर सकता।†

ब्राह्मण शाखाओं के बनने के बहुत पीछे बने हैं। इसलिए शाखाओं के बनने से पूर्व उपस्थित वेदों मे ब्राह्मण भागांश का मिश्रण स्वीकार नहीं किया जा सकता।

## यजुर्वेद के विषय

यजुर्वेद के विषयों पर विचार करने से पं० रघुनन्दन शर्मा के कहे खिल भाग का स्पष्टीकरण हो जाता है।

| सं० | अध्याय | विषय |
|---|---|---|
| (१) | १, २ | दर्श पौर्णिमा यज्ञ |
| (२) | ३ | दैनिक तथा चातुर्मास यज्ञ |
| (३) | चौथे से आठवें अध्याय तक | सोमयज्ञ |
| (४) | नवां तथा दसवां अध्याय | वाजपेय राजसूय यज्ञाङ्ग मन्त्र समूह |
| (५) | ग्यारहवें से अठारहवें तक | वेदी की तय्यारी आदि |

† नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः।
नासामवेद विदुषः शक्यमेवं प्रभाषितम्॥
( वाल्मीकीय रामायण ४।३।२८ )

| | | |
|---|---|---|
| (६) | १६ से २१ वें अध्याय तक | सौत्रामणि यज्ञ |
| (७) | २२ से २५ तक | अश्वमेध यज्ञ |
| (८) | २६ से २६ वें तक | प्रारम्भिक यज्ञ सम्बन्धी नियम |
| (६) | ३० से ३६ तक | पुरुष मेध, पितृ मेध, सर्व मेध और प्रवर्ग्य के नियम और विधि |
| (१०) | ४० वां अध्याय | ब्रह्मविद्या ( ज्ञानकाण्ड ) |

महीधर और उव्वट ने यजुर्वेद की टीका करते हुए २५ अध्याय तक की, जहां तक किसी न किसी यज्ञ का विधान है, मूल और बाकी अध्याय जिनमें उन यज्ञों से सम्बन्धित अन्य बातें तथा यज्ञेतर शिक्षायें हैं, उन्हे खिल अर्थात् मूल २५ अध्याय का स्पष्टीकरण तथा विस्तार आदि लिखा है। इसका कदापि यह मतलब नहीं हो सकता कि ये अध्याय पीछे के मिलाये हुए हैं।

## दूसरा आक्षेप

सर्वानुक्रमणी में लिखा है कि (१) यजुर्वेद १६।१२ के "देवा यज्ञमतन्वत" मन्त्र से लेकर २० अनुप छन्द ब्राह्मण भाग हैं।

(२) समस्त २४ वां अध्याय और २५ वें अध्याय के आरम्भ के "वादं" से लेकर ६ मन्त्र भी ब्राह्मण हैं।

(३) यजुर्वेद अध्याय ३० के "ब्राह्मणे ब्राह्मणम्" से लेकर सारा अध्याय ब्राह्मण है।

## हमारा उत्तर

पहले आक्षेप के उत्तरांत से प्रकट है कि इस वेद के २५ वें अध्याय तक तो किसी ने उन्हें मूल के सिवा खिल कहने तक का साहस ही नहीं किया फिर सर्वानुक्रमणी कार किस प्रकार उन्हें वेद से बाहर का भाग कह सकता था। सर्वानुक्रमणी कार का भाव समझने में योरुप के विद्वानों को तो भ्रम हुआ ही करता था परन्तु आश्चर्य है कि शर्मा जी भी उसी भ्रम में पड़ गये। पहला उत्तर तो यह है कि यदि उपर्युक्त मन्त्र ब्राह्मण ग्रंथों के वाक्य हैं तो पता देना चाहिए था कि किस ब्राह्मण के ये वाक्य हैं? दूसरी बात यह कि ब्राह्मण ग्रन्थ छन्दों में हैं भी नहीं फिर छन्द उनके अंश किस प्रकार से हो सकते हैं? फिर इन छन्दों के देवता और ऋषि भी प्रजापति और गौतम-आदि ऐसे व्यक्ति हैं जो प्रायः सभी ब्राह्मण कारों से सहस्रों वर्ष पहले हो चुके हैं;

असल बात यह प्रतीत होती है कि ब्राह्मण शब्द ब्राह्मण ग्रंथों की रचना से बहुत पहले से कर्मकाण्ड के लिए प्रयुक्त होने लगा था। इसीलिए कर्म काण्ड के ग्रंथ शतपथ आदि जब रचे गये तब उनके कर्ताओं ने कर्म काण्ड मे रूढ़ि हुए ब्राह्मण शब्द ही को उन ग्रंथों के नाम के लिए उपयोगी समझकर उनका नाम ब्राह्मण रक्खा। इसी प्रथा के अनुकूल सर्वानुक्रमणी कार ने भी ब्राह्मण शब्द कर्मकाण्ड के अर्थों में प्रयुक्त किया है। उनका इसीलिए अभिप्राय यह प्रतीत होता है कि उपर्युक्त मन्त्र कर्मकाण्ड विभाग के हैं। इनमें प्रक्षेप आदि की बात ढूँढना व्यर्थ है।

## तीसरा आक्षेप

रघुनन्दनजी ने बिना पते के एक श्लोक ※ लिखकर प्रकट किया है कि इसके अनुसार यजुर्वेद के मन्त्र १९०० हैं परन्तु वर्तमान यजुर्वेद में १९७५ मन्त्र हैं इसलिए ७५ मन्त्र कहीं बाहर से लाकर जोड़े गये हैं।

## हमारा उत्तर

पं० भगवद्दत्त ने यजुर्वेद के मन्त्रों की संख्या काशी के शिक्षा संग्रह में मुद्रित वासिष्ठी शिक्षा के अनुसार १९७५ ही दी है। * यह संख्या उन्होंने अध्याय वार दी है। इसलिए यजुर्वेद के मंत्र संख्या १९०० कहना भूल है। जो श्लोक शर्मा जी ने दिया है उसमें किसी ने थोड़ी सी चालाकी की है। पं० भगवद्दत्त ने दो श्लोक वायुपुराण अध्याय ६१ के ६७ व ६८ वें श्लोक हैं अपने ग्रन्थ में दिए हैं और वे इस प्रकार हैं।*

द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वाजसनेयके।
ऋग्गणः परि संख्यातो ब्राह्मणंतु चतुर्गुणम ॥
अष्टौ सहस्राणि शतानिचाष्टावशीतिर न्यान्यधिकश्च पादः।
एतत् प्रमाणं यजुषामृचां च स शुक्रियं सखिलं याज्ञवल्क्यम् ॥

ये दोनों श्लोक ब्रह्मांड पुराण पूर्व भाग अध्याय ३५ के भी श्लोक ७६ व ७७ हैं दूसरे श्लोक में याज्ञवल्क्य से सम्बन्धित समस्त शाखाओं के ऋचा और

---

※ द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वाजसनेय के।
इत्युक्त परि संख्यात मेतत्सर्वं सशुक्रियम् ॥

* देखो पं० भगवद्दत्त रचित वैदिक वाङ्मय का इतिहास पृष्ठ १७०-१७२।

* " " पृष्ठ १७४।

यजु मन्त्रों का योग ८८८० और एक पाद दिया है और पहले श्लोक में केवल ऋचा ( पाद व्यवस्था वाले ) मन्त्रों का योग १६०० दिया है जिसका अभिप्राय: यह है कि ( शेषे ) यजु मन्त्र ६६८० और एक पाद हैं । १६०० ऋचाओं के बतलानें के लिये श्लोक मे "ऋग्गण: परिसख्यातो" पाठ आया है। रघुनन्दन शर्मा ने जो श्लोक यजुर्वेद की मंत्र संख्या १६०० बतलाने के लिए दिया है वह इन दो श्लोकों में से पहले का विकृत रूप है। उसमे किसी चालाक ने "ऋग्गण:" की जगह "इत्युक" शब्द कर दिया है। जिससे यजुर्वेद की मंत्र संख्या १६०० समझी जावे एक चरण व्यूह में भी यह श्लोक है वहां इसका पाठ इस प्रकार है:—

द्वे सहस्रे शतेन्यूने मन्त्रे वजमनेयके।

ऋग्गणः परि संख्या ततस्तोऽन्यानि यजूंषि च ॥

इसमें भी वही "ऋग्गण" पाठ है।

अतः स्पष्ट है कि यह आक्षेपभी पं० रघुनन्दन के दिये हुए श्लोक से पुष्ट नहीं होता।

यहां यह बात समझ लेना चाहिए कि वाजसनेयो की १५ शाखाओं में भी मंत्र भेद हैं। उदाहरण के लिए काण्व शाखा को देखें तो उसमें २०८६ मंत्र हैं। वाजसनेयी शाखाओं में माध्यन्दिनीय शाखा क्यों समस्त भारत में प्रचलित हो गई? उसका कारण केवल यह है कि इस शाखा कार माध्यन्दिन ने अपनी शाखा में मूल संहिता की मन्त्र संख्या १६७५ को ज्यों का त्यों बनाये रक्खा उसमें कुछ न्यूनाधिक्य नहीं किया। इसीलिए कई प्रेस अब भी मूल यजुर्वेद को माध्यन्दिनीय शाखा कह कर छापा करते हैं।

## चौथा आक्षेप

यजुर्वेद के प्रसिद्ध मंत्र, "नतस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः" ( देखो यजुर्वेद ३२।३ ) पर है। शर्मा जी का आक्षेप मंत्र के दूसरे चरण पर है। वे कहते हैं कि इस मन्त्र में आधा भाग तो मंत्र का है परन्तु आधा भाग तीन भिन्न भिन्न स्थलों में आये हुए मन्त्रों की प्रतीकों का बतलानेवाला वाक्य (प्रक्षिप्त) वाक्य है।

## हमारा उत्तर

प्रतीक बतलाने वाला वाक्य बाहर का ( प्रक्षिप्त ) वाक्य क्यों कहा जा सकता है? क्या एक ग्रंथकार अपने ग्रंथ के किसी उत्तर भाग मे अपने पूर्व भाग

की प्रतीक नहीं हो सकता ? यदि एक कर्म में किन्हीं ऐसे मंत्रों की आवश्यकता है जो उससे पूर्व उसी ग्रंथमें आचुके हैं तो वहां समस्त मन्त्रोंके दोहराने की जगह उनकी प्रतीक दे देनी काफी समझी जा सकती है और यही बात इस आक्षेपान्तर्गत मन्त्र में की गई है। इस मंत्र में यजुर्वेद में इस २२ वें अध्याय से पूर्व आए हुए एक यजुर्वेद के आठवें दूसरी बारहवें और तीसरी ( हिरण्य गर्भः सम्वर्त्तताग्र ) तेहरवें अध्याय में आए हुए मन्त्रों की प्रतीकें हैं। शर्माजी ने एक हाशियारी की है और वह यह है कि "हिरण्य गर्भः इति" प्रतीक का पता यजुर्वेद १३।४ का न देकर ऋग्वेद ८।७ ६ का दिया हैं जिससे यह मंत्र यजुर्वेद का न समझा जाकर ऋग्वेद का समझा जावे। आश्चय हैं कि ऐसा क्यों किया गया है ? अस्तु। यहां यजुर्वेद के सम्बन्ध में जो परिमित आक्षेप, उसमें मिलावट होने के सम्बन्ध में थे समाप्त हो जाते हैं।

सामवेद—

## पहला आक्षेप

सामवेद की महा नाम्नी ऋचायें और आरण्य भाग परिशिष्ट हैं। महा-नाम्नी ऋचाओं के परिशिष्ट होने के प्रमाण मे शर्मा जी ने एतरेय ब्राह्मण का एक वाक्य उपस्थित किया है जिस का भाव यह है कि इन (महा नाम्नी) ऋचाओं को प्रजापति ने वेद की सीमा से बाहर बनाया है। यहां महानाम्नी ऋचायें, स्पष्ट रीति से ऋग्वेद की सीमा के बाहर बतलाई गई हैं।। इस के सम्बन्ध मे हमारा उत्तर यह है कि एतरेय ब्राह्मण के वाक्य से यह स्पष्ट नहीं होता कि ये ऋचायें परिशिष्ट है। इस वाक्य में इन ऋचाओं को प्रजापति (ईश्वर) की रचना कहा गया है फिर इन के मिलावटी होने का प्रश्न कैसा ? इस वाक्य का अर्थ प० रघुनन्दन ने यह समझा है कि "ये ऋचायें स्पष्ट रीति से ऋग्वेद की सीमा से बाहर बतलाई गई है!" * जब ये ऋचायें सामवेद की हैं तो साफ जाहिर है कि इन्हें ऋग्वेद की सीमा से बाहर तो होना ही चाहिए था वेद सर्वस्व के कर्ता स्वा० हरप्रसाद जिन के लेखों पर ही शर्मा जी के ये सब आक्षेप हैं उन्होंने ७५ मंत्रों का एक सामवेद छापा था जिन में ऋग्वेद के मंत्रों को निकाल कर सामवेद के असली

---

† ताऊर्ध्वा साम्नो ऽस्य सृजत। यदूर्ध्वा सीक्नो ऽस्य सृजत ततसिमा अभवन् तत्सिमाना सिमात्वम्॥ एतरेय ब्राह्मण २२-२

* वैदिक सम्पत्ति पृष्ठ ५५१

मंत्र ७५ उन्होंने छापे थे उन मंत्रों में स्वामी हरप्रसाद ने भी इन ऋचाओं को सामवेद को असली ऋचा कह कर छापा था स्पष्ट है कि इन ऋचाओं के परिशिष्ट होने के सम्बन्ध में शर्मा जी के हेतु अहेतु हैं।

आरण्यक भाग के लिये शर्मा जी ने लिखा है कि यह भी परिशिष्ट है पूर्वार्चिक के छठे में जहा यह आरण्यक खड जुड़ा हुआ है उस में (दो की जगह तीन विभाग छपे हुये हैं। यह तीसरा विभाग ही आरण्यक है। इसे सायणाचार्य्य ने भी परिशिष्ट ही कहा है और उसके देखने मात्र स यह परिशिष्ट मालूम हो जाता है। (पृष्ट स० ५५३)

## हमारा उत्तर

हमने छठे प्रपाठक के तीसरे भाग ( आरण्यक ) को ध्यान पूर्वक देखा। आरण्यक के कुल ५५ पत्र है जिन में ४२ मंत्र ऋग्वेद के हैं और इन में ११ मंत्र ऐसे हैं जो सामवेद ही के ऐन स्थानों उत्तरार्चिक आदि मे आये हैं जिन्हें कोई परिशिष्ट नहीं कहता। ऐसी दशा में इन समस्त आरण्यक मंत्रों को परिशिष्ट कहना वे फायदे धूल उड़ाना है। सामवेद मे ७५ के सिवा सभी ऋग्वेद के मंत्र है उन्हें कौन परिशिष्ट कहने का साहस कर सकता है।

अथर्व वद—

## पहला आक्षेप

अथर्व वेद के कुन्ताप सूत्र भी खिल ही के नाम स प्रसिद्ध हैं। हेतु केवल यह कि इन के प्रारभ और अत में 'अथ' और इति' लिखा है दूसरा हेतु यह है कि स्वामी हरप्रसाद ने वालखिल्य सूक्तों की तरह इन को भी परिशिष्ट माना है।

## हमारा उत्तर

अथर्व वेद के २० वें काण्ड के १२७ से १३६ तक के सूत्र कुन्ताप सूक्त कहे जाते हैं। इन के परिशिष्ट होने के ऊपर जो हेतु दिये गये हैं वेदोनों अहेतु है। उन्हीं हेतुओं से जो हमने ऋग्वेद के वालखिल्य सूक्तों के असली वेद होने के सम्बन्ध में दिये हैं हम इन सूक्तों को भी अथर्व वेद का मूलाश ही मानते हैं। इस सम्बन्ध में अधिक लिखने की जरूरत नहीं है।

## दूसरा आक्षेप

अथर्व वेद के १६ वें कांड के सूक्त २२ और २३ में लिखा है।

> अङ्गिरसानामाद्यैः पञ्चानुवाकैः स्वाहा ।
> आथर्वणानां चतुऋर्चेभ्यः स्वाहा ॥

इस पर शर्मा जी का कहना है कि ये वाक्य कहीं बाहर के हैं ऐसे वाक्य स्वयं प्रक्षिप्त होने की सूचना दे रहे हैं। (देखो पृष्ठ ४५४)

## हमारा उत्तर

यजुर्वेद से सम्बन्धित चौथे आक्षेप के उत्तर में जो हेतु दिये गये हैं उन्हीं हेतुओं से हम इन वाक्यों को परिक्षिप्त नहीं अपितु मूल वेद का अंश ही समझते हैं। वेद में पहले आये हुए मन्त्रों से उसके बाद की किसी विधि में आहुति देने के लिए प्रयुक्त शब्द मिलावटी हैं, ऐसा मानने के लिये कोई नियम नहीं।

## "उपसंहार"

असल में पं० रघुनन्दन शर्मा ने स्वामी हरप्रसाद के लेखों पर इतना विश्वास किया जिसके वे योग्य नहीं थे और उसी का कारण है कि उनके प्रशंसनीय ग्रन्थ ( वैदिक सम्पत्ति ) पर, ये निर्मूल आक्षेप धब्बा लगाने वाले हैं। पाठक गण देखेंगे कि आक्षेप कुछ महत्व पूर्ण नहीं और उनके द्वारा व्यर्थ एक प्रश्न ( वेदों में प्रक्षेप होने का ) उठाया गया जिसके उठाने के लिये प्रबल हेतु नहीं थे। इन आक्षेपों के सम्बन्धमें ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह स्वाध्याय शील विद्वानों के विचारार्थ ही लिखा गया है, आशा है कि वे उस पर विचार करेंगे।

# गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या का हल अभी भी होना है ।

२३।२।४१ को गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या के हल के लिए समस्त दलों की जो तथा कथित कान्फ्रेन्स हुई थी उसकी कार्यवाही की रिपोर्ट समाचार पत्रों में प्रकाशित हो गई है ।

यह कहा गया है कि इस कान्फ्रेन्स ने जो प्रस्ताव पास किया है उसमें डोला-पालकी मे वरवधू को ले जाने के हरिजनों के नागरिक अधिकार को स्वीकार किया गया है और इसलिये यह आशा की जाती है कि डोला पालकी की समस्या से जो वर्तमान झगड़ा उत्पन्न हुआ है वह मिट जायगा और जिले मे अच्छा वातावरण व्याप्त होने में सहायक होगा ।

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा उन सूचनाओं के आधार पर जो उसके कार्यालय में पीड़ित पक्ष से प्राप्त हुई हैं, यह घोषणा करना अपना कर्तव्य समझती है कि लैंसडौन की उपर्युक्त कान्फ्रेंस जल्दबाजी का अपूर्ण यत्न था और इससे न केवल समस्या का हल ही नहीं हो सकता था अपितु इसने समस्या को और भी जटिल बना दिया है ।

वास्तविक स्थिति को समझने के लिए यह स्मरण रखना चाहिये कि आर्य भाई अर्थात् शिल्पकार लोग जो आर्य समाजी बन गये हैं, पीड़ित हैं । कुछ वर्ष हुए उन्होंने साहस करके डोला पालकी के जलूस निकालकर सवर्णों के साथ अपने नागरिक अधिकारों की समानता की रक्षा की थी और इस साहस में सवर्णों के हाथों उन्हें अत्याचार भी सहन करने पड़े थे । स्पष्टतः जब तक उपर्युक्त प्रस्ताव को आर्य लोग स्वीकार नहीं कर लेते हैं तब तक कोई निर्णय सर्व सम्मत नहीं हो सकता ।

म० भगतराम ने जो इस आन्दोलन में आर्यों के सम्मानित नेता हैं लैंसडाउन कान्फ्रेंस में स्पष्ट शब्दों में यह घोषणा की थी कि इस प्रस्ताव से आर्यों को वह चीज नहीं मिलती है जो वे चाहते हैं वरन् उन पर वे पाबन्दियां लगती हैं जिन्हें वे स्वीकार नहीं कर सकते । अपने कथन के समर्थन में उन्होंने निम्न हेतु प्रगट किए:—

१. सरकार ने उनका नाम आर्य स्वीकार कर लिया है और सरकारी कागजों में वे इसी नाम से अंकित किए जाते हैं। हरिजन नाम से नहीं।

२. इलाहाबाद हाईकोर्ट ने अपने १६३६ के प्रसिद्ध फैसले में डोला पालकी निकालने के आर्यों के निर्बाध अधिकार को स्वीकार कर लिया था। परन्तु प्रस्ताव से उन पर यह नई पाबन्दी लगाई जाती है कि वे सवर्ण हिन्दुओं की नाईं मन्दिरों और उपासना गृहों के पास से निकलते हुए डोला पालकी में से उतर जायें। परन्तु चूँकि आर्य भाई मूर्ति पूजा को नहीं मानते हैं अतः उन्होंने इस पाबन्दी को स्वीकार नहीं किया परन्तु धार्मिक कर्तव्य के रूप में नहीं वरन् पारस्परिक सद्भाव को बढ़ाने के लिये बतौर प्रथा के वे इसको स्वीकार करने के लिये उद्यत थे इस शर्त के साथ यदि सवर्ण हिन्दू भी आर्य समाज मन्दिरों के सामने डोला पालकी से उतरना स्वीकार करलें परन्तु दुर्भाग्य से कान्फ्रेंस के संचालकों ने इस निर्दोष प्रथा को स्वीकार करना पसन्द न किया।

३. आर्य यह चाहते हैं कि कान्फ्रेंस धार्मिक, सामाजिक और नागरिक अधिकारों में आर्यों, शिल्पकारों और तथा कथित सवर्णों की समानता के असूल को स्वीकार करके इसकी घोषणा करदें परन्तु बड़े आश्चर्य और दुख की बात थी कि कांफ्रेंस के संचालकों ने सामाजिक न्याय के इस प्रारम्भिक सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया।

४. १ से ३ तक की बातों का सन्तोष जनक हल न होने के कारण आर्य भाई उस कमेटी में अपने प्रतिनिधि भेजने में असमर्थ हैं जो भविष्य में उठने वाली समस्याओं के हल के लिये प्रस्तावित हुई हैं अतः उसके निर्णयों से वे बाध्य न होंगे।

इस वक्तव्य के साथ म० भगतराम जी ने कान्फ्रेंस की कार्यवाही में आर्यों के भाग न लेने की घोषणा की। इसके पश्चात् कान्फ्रेंस की कार्यवाही एक तरफा मामला रह गया था। वर्तमान में डोला पालकी की समस्या वहीं है जहां पहले थी। परन्तु हमें आशा करनी चाहिये कि गढ़वाल के सुधार वादी भाई अपने सत्प्रयत्नों को और भी अधिक वेग और बल से इस दिशा में प्रेरित करेंगे और शीघ्र ही समस्या का हल हो जायगा जो आर्यों के लिये पूर्णतया सन्तोषजनक होगा।

सुधाकर, मन्त्री।
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

# घोषणा

सर्व साधारण की सूचनार्थ घोषित किया जाता है कि हैदराबाद आर्य सत्याग्रह को सफलता पूर्वक चलाने के लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली ने जो अपील प्रकाशित की थी उसके अनुसार देश और विदेश में आर्यों तथा आर्य संस्थाओं के अतिरिक्त बहुत सी अन्य संस्थाओं तथा महानुभावों ने धन एकत्र किया था। यह सारा धन हैदराबाद सत्याग्रह निधि का धन था। सत्याग्रह की समाप्ति पर सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधिसभा ने धन संग्रह करने वाली सभी संस्थाओं तथा महानुभावों से इस निधि के लिए प्राप्त धन का हिसाब तथा शेष धन भेजने के लिए प्रार्थना की। फल स्वरूप बहुत स्थानों से शेष धन प्राप्त हो गया और हिसाब तो लगभग सभी जगहों से प्राप्त हो चुका है। परन्तु खेद के साथ यह सूचित करना पड़ता है कि प्रादेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, सिंध, बिलोचिस्तान, लाहौर ने बार-बार प्रार्थनाएँ करने पर भी न तो हैदराबाद सत्याग्रह निधि का शेष धन ही भेजने की कृपा की है और नाहीं इस निधि का हिसाब भेजा है। यहां तक कि इस सम्बन्ध में सार्वदेशिक सभा के पत्रों का उत्तर तक देने का कष्ट नहीं उठाया।

सत्याग्रह सञ्चालन के दिनों में प्रादेशिक सभा तथा उससे सम्बन्ध रखने वाली समाजों तथा महानुभावों की ओर से केवल १४२२७ रु० १ आना ९ पाई ही सार्वदेशिक सभा को प्राप्त हुए थे। मौखिक वातचीत तथा अन्य प्रकार से जहां तक पता लगा है उससे अनुमान होता है कि उस सभा के पास लगभग २५००० रु० शेष रहे जो सार्वदेशिक सभा की हैदराबाद सत्याग्रह निधि में देने चाहिए थे और जो नहीं दिए हैं।

घनश्यामसिंह गुप्त
प्रधान
सार्वदेशिक सभा,
देहली।

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय
मृत्योर्माऽमृतं गमय ।

From untruth lead me to truth,
From darkness lead me to light,
From death lead me to immortality.

I thank you very much for the signal honour you have done me in choosing me as the president of the First South India Aryan Conference. I am new to these parts and feel naturally diffident. A southerner, well acquainted with all the phases of life here, should have been the fittest person for such a task. I do not mean that you ignored this point. Your original president-elect was Mr. Satyamurti, that leading public man of Madras whose qualifications of head and heart have won him such a popularity among his countrymen and whose many-sided activities are so well-known throughout India. But God willed otherwise. I need not dwell upon the importance of the campaign in which he is engaged at present. These are very critical times not only for India, but for the whole world. Every sane man is feeling that the old order has grown too rotten and there is an urgent need of bringing a better substitute. The question is what that order should be and what ways and means should we adopt. It will be irrelevant to discuss here the points which do not fall within the jurisdiction of your conference and I shall confine myself to the task immediately in hand. I should be brief and to the point.

The Aryasamaj has not so far been able to do any organized work in the Southern India. At the beginning of this century, two Arya Sanyasis of profound learning,

The presidential address of His Holiness Mahatma Narayanswamiji Maharaj read at the first South India Aryan Conference, Madura, on 26th December, 1940.

Swamis Visheshwaranand and Nityanand had visited Mysore and the then ruler of the state was so impressed that he readily embraced the Vedic religion. Unfortunately he died young and the Aryasamaj could not make a headway. In 1918, His Highness the Maharaja of Kolhapur directed his attention to the work of the Aryasamaj and put the Raja Ram College and High School in the charge of the Arya Pratinidhi Sabha U. P. He wanted to chalk out a regular programme of the Aryasamajic activities in the Southern Maharashtra and neighbouring parts. But in this case, too, the sudden and untimely death of the Maharaja hampered the work. The late Principal Balkrishna of the Raja Ram College Kolhapur tried his best to keep the flame burning and organized a separate Arya Pratinidhi Sabha for the Mahartshtra Country; yet the Aryasamaj could not get a strong footing in the south. In the meantime there occurred a very serious thing. I hope the clarion-call of the well-known Aryan Satyagraha of 1939 in the Nizam's dominions is still ringing in your ears. It was the first great non-violent battle in the cause of truth and justice, not only in the life of the Aryasamaj, but in that of the whole of Hindudom. What in the point of discipline and self-sacrifice and what in that of truthfulness and non-violence, the Aryan Satyagráha stands unique in the history of Satyagraha in India. For several centuries, never before had the jarring and warring sections of Hinduism come so close to each other. It not only evoked the sympathies and appreciation of friends and foes alike; it met an unprecedented success in cementing the gulf between the points of view of His Exalted Highness's Government and those of his Arya subjects. The event is too recent to warrant a narration of details,

Our object in assembling here today is to see if it is possible to find out any efficacious prescription in the pharmacopia of old Rishis for the diseases from which mankind is

suffering today. Up till a few years back we boasted of our modern civilization and were never tired of ridiculing the crude thinking and crude living of our ancestors. But all is not gold that glitters. The materialistic tendencies of the modern world have de-humanized man and brought him to the level of intellectual wolves. That knowledge of the laws of God's nature which goes by the name science has been woefully misused. We have learnt how to dive deep in the ocean like whales and fly in high heavens like kites but we have forgotten how to live peacefully on the earth. Science has but quickened our wolvish appetites and sharpened our wolvish teeth. Is it science ? Is it Jnan or Vidya ? Was it for this sort of knowledge that our sages said. ऋते ज्ञानान्नमुक्तिः। "Salvation is not possible without knowledge"? Is it salvation that we are seeking ? Or hellish destruction ? At this very moment, when we are peacefully holding this meeting in this pandal, do you know how many lives are being lost in cold-blood and what scientific means are not being discovered to hasten the destruction of mankind! We read of the old Mahabharat and the destruction it brought to India. But then, there was a silver lining to the blackclouds. Lord Krishna preaching spirituality to Arjuna at the battle-field, is a great thing ; at least the conception is very noble and inspiring. Lord Krishna's Gita has given solace to many and has saved mankind from total petrification or annihilation. And if you trace the stream of Krishna's Teachings to its very fountain-head—the Vedas, you will marvel what a treasure of knowledge exists which we are not utilising on account of our ignorance. Lord Krishna rightly says :—

यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्॥ ( गीता १६-२३ )

'He who forsakes the path of the Vedas and acts through greed gets neither success, nor peace, nor salvation'.

Has not the present world forsaken the path of the

Vedas? And is it not therefore, precipitating towards destruction?

The message that Shri Krishna gave five thousand years ago, not to Arjuna alone, but to mankind in general through Arjuna, that self-same message has now been repeated by Swami-Dayanand, the founder of the Aryasamaj The gist of all his teachings can be put in one word "Back to the Vedas"

"What do the Vedas teach?" You ask "Do they not teach black magic, superstition, nonsensical rituals pernicious caste-system and one thousand and one evils which stand in the way of the progress of the Indians?" Swami Dayanand replies,—"No certainly not The present-day plight of the Hindus is not due to Vedic teachings but to the corruption which has crept into the society on account of anti-vedic propensities"

The present-day Hinduism is not pure gold, it is eighty percent alloy In name the followers of the Vedas the Hindus have gone astray from the straight path of the Rishis Vedic teachings have been distorted or mis-interpreted and in cases where correct notions prevail, there is no correspondence between theory and practice Reality has gone and hollow spiritless rituals have taken its place The object of Swami Dayanand was to trace Hinduism to its pristine purity, i e, Vedism, to purge it of all excrescenses, and the Aryasamaj proposes to fulfil that object We have assembled here to seek your co-operation

You know that the Hindus are a divided house—divided into myriads of sections and sub-sections each trying to press down others, Brahmins and non-Brahmins, Touchables and non-Touchables, Aryans and Dravids, each flying at the throat of the other, having nothing common between them, no common cause, no future programme, and to make the matters worse, outside element constantly fanning the flame

of differences and preventing us from cementing the gulf. Politically, India is divided into Moslems and non-Moslems, giving the Hindus no importance whatsoever. Religiously, Hinduism is a congeries of vague doctrines not able to stand the onslaughts of foreigners. Socially, we are so divided that even Hindus are sick of Hindu society and are ready to join its enemies. Numerically, we are fast declining. Under these circumstances, is it not urgent that we pause and ask "Is there a way out of the difficulty ?" The Aryasamaj offers a solution. Will you consider it ?

First let us start with the question of worship. They say that religion is an opium; it has made man mad. But the experience of a few past centuries teaches us that irreligiosity is a worse opium and all the substitutes for religion which have uptill now been proposed and tried in one form or another, have resulted into chaos and destruction. The Aryasamaj says that we cannot do away with religious sentiments. They are ingrained in the very nature of man. Let us purify them. The Vedas do not teach fetish-worship. They teach the worship of One formless and changeless God, called by different names of Siva or blissful Vishnu or all pervading, Agni or effulgent. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति (Rig. Veda).

"God is one, the wise call Him by many names." It is a mistake to suppose that the Vedas inculcate plurality of gods. It is only plurality of names that has been alluded to. Different forms that we have given to God are the creations of our own brains and are disintegrating the society. The Vaishnavaites and the Shivaites quarrel with each other on forms and forget that Vishnu and Shiva are the names of the same deity. The Aryasamaj says, "Do away with these mythological forms and worship Him who pervades within you invisibly as your Atma."

Then take up the question of society. In these parts of India there is a much wider gulf between several sections

ot the Hindus. It is said that mere sight of the low-born is enough to pollute the high caste people We in the north, look upon such tales as fables. But when we come to the south, we are shocked to find that it is a reality. Is it Hinduism? Is it Vedism? No Swami Dayanand has proved that the classification of man into four Varnas of Brahman, Kshattrya, Vaishya and Sudra is based upon qualifications and not upon birth. Division of labour is necessary for social integrity. The question of hatred, suppression or repression does not come in and should not come in. Every society has magistrates, professors, doctors, lawyers each distinct in profession and yet supplementary. So ought the Brahmans or teaching class, Kshattryas or fighting class, Vaishyas or trading class, Sudras or labour class. Can you do away with your teachers, soldiers, traders or labourers? No. But when you base them not on qualifications or professions, but on birth, these classes do not function properly and create mischief. A doctor's son may be a doctor, but not necessarily so. If whoever is a doctor's son is put in charge of a hospital, you can well realise what the result will be. If the Hindu Society had today true Brahmins trying to teach every individual person, instead of claiming undue superiority for themselves, the Hindues would have been a different nation. The society needs true Brahmins, true Kshattriyas, true Vaishyas and true Sudras. No use denouncing Varna Dharma and Ashram Dharma. What is needed is the change of out-look, the correct interpretation of the Vedic teachings and their faithful following.

The cleavage between Dravidian culture and Aryan culture is another point and has often been unduly emphasized in these parts of the country. Originally it was suggested by the Christians who wanted to reap a cheap harvest by creating a division in our midst. Fanciful ethnological theories were set-up. It was insinuated that the Aryans were

foreign conquerors who subjugated the old Dravidians and crushed their culture. Swami Dayanand says that 'Arya' is not a geographical or territorial term. He has proved from Vedic literature that "Arya" means a rightous man, of whatever country, society or parentage he may be. Originally mankind was one. The difference arose afterwards. There is no such thing as Aryan conqueror and Dravidian conquered. We are all one. The Vedic religion allows no difference between man and man. Teach all, purify all, love all and hate none The Vedas say:—

मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम् ।

Let us look upon all beings with a friend's eye. The Aryasamaj aims at being the society of the righteous,—Brahmins, righteous Kshattriyas. righteous Vaisyas and righteous Sudras, cortributing their best to the harmoneous development of the whole, irrespective of caste, community, parentage or race.

It is a pity that for some centuries past the teaching of the Vedas has been restricted to one community only, It is clearly against the injuctions of the Vedas. The Yajur Veda say:—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः ।
ब्रह्म राजन्याभ्यां शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय ।

[Yajnt Veda XXVI-2.]

" Just as I give this blissful divine knowledge to mankind — to Brahmans, Kshattriyas, Sudras, Vaishyas and lowliest of the low," (similarly you should impart it to all freely and unrestrictedly). The Aryasamaj is against divine Vedas being monopolised by one section or community. The Vedas are meant for all men and women, of whatever race, nation or parentage.

The narrow ideas of modern nationalism and modern patriotism which put one nation above others and which burst out periodically in the form of Hitlerism, Mussolinism or other isms, can never bring peace to mankind. The goal

**of the Aryasamaj is to build hnmanitarianism with the broadest** possible base of love and brother-hood- The great western savants like H G Wells echo the voice of the Aryasamaj when they propose the formation of a World Federation The foundation of the World Federation has already been laid in in the Aryasamaj Will you like to lend it **your support ?**

Religion, for the Aryasamaj, is not a mere set of rituals Rituals there are But they have their limited significance The real religion consists in serving humanity, in helping the sick and needy, in educating the ignorant, in purifying the impure, in guiding the misguided It is not possible here to describe in full detail all the activities that fhe Aryasamaj has been pursuing ever since its very birth. Suffice to say that the Aryasamaj was the Ist indigenous institute to start girls schools, widow-homes, orphanages, schools for untouchable and so on And even now when in these sixty-five years, other societies have come up with a similar programme the Aryasamaj has not ceased to lead It has a net work of Schools, Colleges Gurukulas Pathshalas both for boys and girls, widow-homes and orphanages and a number of schools for depressed classes * In order to save the

* The following is the list of Aryasamajic institutions which shows our capacity fo organize —

| | |
|---|---|
| The number of Aryasamaj centres in India | 2100 |
| Outside India | 500 |
| Sanyasi Preachers | 122 |
| Vanaprasatha Preachers | 26 |
| Salaried Pracharaks | 171 |
| Honorary | Many more |
| Gurukulas and their branches | 53 |
| First Grade Colleges | 3 |
| Second Grade Colleges | 8 |
| High Schools | Over 100 |
| Girls' Colleges | 3 |
| Girls' Schools | 281 |
| Sanskrit and Hindi Pathshalas | 112 |
| Pathshalas of the Depressed Classes | 353 |
| Night Schools | 84 |
| Updeshak Vidyalayas | 3 |
| Orphanages | 31 |
| Widow homes | 47 |
| Printing Presess | 13 |
| Monthly and weakly Journals | 41 |
| Reading-rooms and Libraries | 51 |

Hindu children from falling into alien hands, it has Dayanand Salvation Mission, Shuddhi Sabhas and other similar movements.

Twenty years ago when the Moplahs of Malabar perpetrated indiscribable atrocities on the neighbouring Hindus, it was the Aryasamajists of the north who rushed to the spot and at the risk of their very lives, protected them. It was through the instrumentality of the Aryasamajists that thousands of the Hindus forcibly converted to Islam, could come back to their fold. Our Calicut centre was started in those very days and it has ever since been pursuing the work. Had the Hindus of these parts valued our work and lent ns their unstinted support, much could have been done in these two decades. Still there is time. The question is:— Will you rise to the situation and take up the work ? I admit that superstitions die very hard; it is difficult to make chinks in the solid walls of orthodoxy. But the question of reforms is not an academic question. It is a question of life and death. Now or never. If you do not wake up in time, it will be more difficult to retrieve the lost ground.

I have often been asked a question: "What is your attitude towards Swaraj ?" No doubt, the Aryasamaj is a religious organisation. But religion in Vedic sense covers all the departments of human life including "Swaraj." Let me first give a few extracts from the writings of Swami Dayanand, its revered founder :—

(1)

"Formerly the people of the Arya Varta travelled freely all over the world for trade, government or diversion. The present scruples of touchability &c., or fear to lose one's religion are due to misguidance and ignorance.

[Satyrath Prakash Chapter X.]

(2)

The people of Arya Varta are extenuating their miseries by following into the footsteps of that mischievous,

Gotra-Killing, traitorous and low minded Duryodhana."

[Ibid. Chapter X.]

( 3 )

When the Aryas ruled, the beneficial animals like cow &c. were never slaughtered, Then the people of the Arya Varta and other countries lived happily. .... .... .... Since the time the flesh-eating foreigners came here and cow-killers and wine-drinkers became supreme, the miseries of the Aryas have been gradually multiplying.

[Ibid. Chapter X.]

( 4 )

" This shows that from the begining of the Universe up to the Mahabharat, the Chakravati Government was in the hands of the Aryas. Now the star of their mis-fortune having risen, they are being trampled under the foot of the foreigners."

[Ibid. Chapter XI.]

( 5 )

Now partly owing to ill-luck and partly due to idleness, vanity and civil dissensions of the Aryans, their rule over other hands is out of question. Even in their own home, they are not free, independent and unrestrained masters. Whatever possessions they have, are under foreigners.... .... .... Whatever may be said otherwise, only Swadeshi Rajya is the best form of Government. Foreign rule, even when free from religious interferences, and selfish motives, and embued with paternal kindness and justice is not completely blissful."

[ Ibid. Chaper VIII. ]

( 6 )

"O God, grant us boldness perseverance, statesmanship, discipline, dash, power and other good qualities that we may attain self-government (Chakravarti Rajya). May no foreigners rule over us ! May we never be slaves ! .... .... .... .... O Ocean of Mercy ! May our Swaraj ever increase !"

[ Aryabhivinaya. ]

These are the quotations from the works which Swami Dayanand wrote as early as in 1875. He was the first to use the term "Swaraj." It was full thirty years after, that the great Dadabhai Noroji again used the word in his Presidential address of the Calcutta Session of the Indian National Congress in 1906. Since then the word has found a currency in the language of the Congress.

It has been the policy of the Aryasamaj to keep aloof from current politics But the Samaj gives full liberty to its members to join any school of politics they like.

It should not, however, be understood that if any section of Indians tries to push a measure which may result in the splitting up of India into geographical or cultural divisions, the Aryasamaj will look upon it as a distant passive onlooker. For example, if Mr. Jinnah's chimerical scheme *Pakistan* which even his fellow-religionists regard as hopelessly unfeasible, matures to any extent, the Aryasamajists will stake their all to wreck it. It is the clear policy of the Aryasmaj that communalism should not tarnish the politics of the country. The Government of India should be carried on strict democratic lines. If any agency puts an obstacle in the way, it is the paramount duty of the Aryasamaj to remove it.

As regards Swadeshism, well, the Aryasamaj has supported its cause from the very beginning. The number of Swadeshists is proportionately very large in the Aryasamaj. I began the use of Swadeshi long before the partition of Bengal. It will not be out of blace to quote Swami-Dayanand in this connection:—

"See what great sacrifices the people of the west make for the prosperity of their nation. They leave no stone unturned. They allow the shoes made in their country to come into the offices and courts, and not Swadeshi Shoes. This shows that they care more for the shoes made in their country than for the people of other countries."

[Satyarth Prakasha Chapter XI.]

You may probably ask me, "Tell us what you want us to do. Tell us definitely in a business-like way." Well, the first thing that I wish you to realize is that the Aryan culture is the oldest, the best and the most enduring of all cultures. While other nations have come and gone and their cultures, though dazzling enough, could not stand the cataclysm of time, your Aryan culture has survived all sorts of storms. Your culture is based upon the sound principle "live and let live." If you but appreciate the value of this, this appreciation itself will be a motive force to bring the jarring elements of present Hinduism together and to effect a perfect Sangthan. Remember that mere words cannot unite you. Real unification needs a strong foundation, foundation on points of culture. Secondly, real sangthan should come from within. Coming closer to each other only at the time of external danger is too temporary. It cannot stand. The Aryasamaj proposes that you study your culture and try to propagate it. It is necessary not only for India but for the whole world.

The second point is that you study the evils that have crept into Hinduism and try to eradicate them. Even the most orthodox and nochanger Hindu cannot say that all is well with Hinduism and it has nothing wrong with it. If our body has got a disease, why love it, why conceal it ? It will prove fatal. The best course is to study it and to cure it. It needs boldness, it needs strength ; but if you mean to live, you will have to be bold and strong.

You know the danger that is hovering over you. You are internally divided. People want to divide you externally too. The Pakistan movement is too obvious to need description. The air is surcharged with it. But you cannot blame your enemies. They wish to have political domination over you. They wish to live. It is not their lookout to let you live. They care a fig for you. If you think that life is worth living, you will have to strive for it. A weak constitution is a prey to germs of diseases. Strengthen your constitution, that it might fight the germs out.

One of the problems of India is a common language, its Lingua Franca,—rather, Lingua Indianna. I should call it Rashtra bhasha. Swami Dayanand was a Gujrati by birth. He had his provincial patriotism. But he intuitively felt that if the Hindus are to be united they should have a common language. Hindi being the language of the majority; he declared it as the Arya Bhasha, or the language of Aryas. Wherever Aryasamaj has gone, it has especially preached Hindi, not because it wants to crush other languages—its literature is being published in all languages:— but because it feels that without Hindi, we cannot have a united Rashtra. I am glad that Madras is alive to this need. Hindi is becoming more and more popular. Wherever I have gone, I have found a love for it. It is a healthy sign. I congratulate you on it and request you to strive more.

Our urgent need is that there should be more and more centres of tht Aryasamaj in the South. There should be no village without one. And each Samaj should have humanitarian institutions attached to it. It is possible only when local support is forth-coming. We in the north had to struggle very hard. I have seen the worst days. But patience bore us up. You have to undergo the same ordeals. Madras is famous for intellectual giants. The south has taken a prominent part in advancement of Aryan Culture. Swami Shankaracharya was a South Indian, so was Ramanuja charya, so was Madhavacharya. I wonder what Madras intelligentia is waiting for. I wish to see Madras take up the cause of the Aryasamaj and with it of Vedic Culture.

I shall be neglecting a great duty if I do not thank Madura people for their hospitality. Your Chairman of Reception Committee is a venerable old man. His services in the cause of Aryan Culture are very many. It is a matter of pleasure that his whole family is a lover of the Vedas Then, Madura is a big place, next to Madras in extent and importance. It is the Mathura of Southern India. Bhgwan Krishna started his life in Mathura; so did Bhagwan Dayanand. Let Madura, too, compete with its name-sake and be the centre of Aryasamajic activities. May God help us.

# Grandeur of Sanskrit.

## Wonder-Language of World-Culture.

[ *By*—Pandit G. Dhareshver ]

I

[ Following is the first of a series of articles on Sanskrit language by Pandit Dhareshver, ex-Professor of Sanskrit, Osmania University, in the course of which he explains the richness of the language and the culture that it represents. He also seeks to reveal the influence it can exert to enrich the modern languages of India. It must be of topical interest and use in view of the current researches of the Scientific Terms Committee.]

The word Sanskrit means refined, purified, cultured The Language which is known as Sanskrit in modern times was known to Panini simply as "Bhasha"—the Speech, just as Hindi is known as "Bhasha" at present. Just as now Hindi, is the common speech of Hindustan, so Sanskrit was the language of Aryawarta three thousand years ago when the great grammarian lived. The name Sanskrit meaning "the polished language of culture" seems to have been given to it when gradually the common folk drifted away from its use, as illiteracy spread among them, owing to the natural process of degeneration that overtook the people of this vast continent-country.

The ever-memorable remark at Professor Max Muller "The Veda has a two-fold interest: it belongs to the history of the world and to the history of India" with regard to the Veda, holds with equal truth and force as regards Sanskrit too. In Sanskrit and the Veda the people of India have two God-given gifts, which, added to the third gift—the mother-land, India itself—can if properly utilised, confer countless blessings upon them.

### *MOTHER-CULTURE*

These three, Mother-Land, Mother-Speech and Mother-Culture, were known as ILA, BHARATI

and SARASVATI even in the most ancient times of recorded history. These three: India, Sanskrit and Veda have had the most far-reaching influence upon human culture; and can even now wield wonderfully uplifting unifying and harmonising power over the future fate of man.

These three : Ila, Bharati, Sarasvati, i.e. India, Sanskrit, Veda, have the power to electrify, unify and raise humanity by bringing together and elevating the scattered elemants and warring sects thereof. by doing away with narrow-minded bigotry and vanity, and by broadening their vision.

The most thoughtful persons, all the world over, are agreed about the necessity of evolving order out of chaos, concord out of conflict, unity out of schisms, and willing co-operation out of soul-killing competition. In India's Sanskrit and the Veda they can find the best levers to elevate mankind. India Sanskrit and Veda were and are the Guru and Guide on our path towards Peace, Order, Harmony; they have ever been so.

## VERBAL VARIETY

Here we are cencerned with Sanskrit, as with Veda we have dealt elsewhere. Sanskrit is indeed a wonder-language. Its roots go to the very root of thought, Panini, some three thousand years ago, indicated what Yaska and others had pointed out before him, this wonerful nature of Sanskrit. It is a language of world-connections. In fact Sanskrit has given us the verbal variety that we find around us. English, for instance, the language which we call "foreign" and which has come to us across the "seven seas and seven oceans" is almost wholly Sanskritic, nearer perhaps than some of our Indian tongues. More people speak Sanskritic tongues today in the world than any other, Sanskrit is thus the greatest unifying link that can bring mankind nearer and nearer.

# सम्पादकीय

## गढ़वाल की समस्या

गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या पर पिछले दो अंकों में हम प्रकाश डाल चुके हैं। इसी सम्बन्ध में इस अंक में मन्त्री सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य प्रकाशित हुआ है जिसमें "लैंसडाउन" के २३ फरवरी के 'सर्व्वदल सम्मेलन' में आर्यों के भाग न लेने और उसके कारणों पर विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला गया है। डोला पालकी की समस्या के गढ़वाल के आर्य ही पीड़ित व्यक्ति हैं फिर उस सम्मेलन को जिसमें उन पीड़ितों ने भाग न लिया हो सर्व्वदल सम्मेलन का नाम देना 'सर्व्वदल' शब्द का उपहास करना मात्र है। इस दृष्टि से उस सम्मेलन के आगे 'तथा कथित' शब्द जोड़ना नितान्त उपयुक्त है।

सर्व्वदल सम्मेलन के संयोजकों ने इस समस्या का यह हल प्रस्तुत किया था कि 'हरिजन' भाइयों को सवर्णों की नाईं देव स्थानों के सामने सम्मानार्थ डोला पालकी में से उतर जाना चाहिये। यह हल उन हरिजनों के लिए तो उपयुक्त कहा जा सकता है जो आर्य समाज में दीक्षित न हों परन्तु इस समस्या से तो आर्य समाज मे दीक्षित हुए आर्य भाई ही पीड़ित हैं और उन पर यह शर्त लगाना सरासर अन्याय और उनके धार्मिक-भावों और सिद्धान्तों पर कुठाराघात है। उस प्रथा के लिए जिसमें उनका सिद्धान्तः विश्वास न हो, मानने के के लिए उन्हें विवश करना औचित्य की सीमा से भी परे है और यदि वे इस हल को स्वीकार न करें जैसा कि उन्होंने सम्मेलन में से उठकर चले जाने से अपने ढंग से प्रगट किया है तो इस समस्या के हल के विफल होने की उत्तरदायिता उन पर न होकर सम्मेलन के संयोजकों पर ही होगी।

सरकारी कागजों और हाईकोर्ट तथा अन्य न्यायालयों की फायलों में गढ़वाल के आर्य धर्म में दीक्षित शिल्पकार इत्यादि भाई जिन्हें सवर्ण 'हरिजन'

कहते हैं आर्य शब्द से अंकित हुए हुए हैं और डोला पालकी निकालने के नागरिक अधिकार के उपयोग में सरकार की ओर से उपर्युक्त प्रकार का कोई प्रतिबन्ध नहीं लगाया गया है। यह भी स्मरण रखने योग्य बात है कि 'गढ़वाल के आर्यों ने इस अधिकार की प्राप्ति और रक्षा के लिए बड़े से बड़ा त्याग किया है और बड़े से बड़े कष्ट सहन किए हैं। फिर उन्हें उपर्युक्त प्रकार की शर्त के नीचे झुकने के लिए प्रेरणा करना अथवा उनका इस शर्त को मान लेना जो अर्थ रखता है उस पर प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। इस हल से तो यह प्रति ध्वनित होता है कि सवर्ण भाई दया और उपकार के नाते आर्यों को कोई वस्तु देते हैं जबकि 'आर्य भाई' एक मौलिक अधिकार के रूप में वह वस्तु चाहते हैं। झगड़ा इसी मनोवृत्ति पर है। जब तक सवर्णों की मनोवृत्ति यह रहेगी तब तक उनके हाथों इस समस्या का आर्यों के लिए सन्तोष जनक हल होना कठिन देख पड़ता है। हमारा अभिप्राय सर्व दल सम्मेलन के संयोजकों को उनके प्रयत्नों में निरुत्साहित करने का नहीं है। उन्हें अपने प्रयत्न जारी रखने चाहिएँ। हमारा अभिप्राय आर्यों की स्थिति का सम्यक्तया स्पष्टीकरण करना मात्र है। जिससे उनके प्रयत्न ठीक ठीक फल लाएँ। आशा है वे आर्यों की स्थिति को शान्त हृदय से सोचने और समझने का कष्ट करेंगे।

हमारा तो यह अटल विश्वास है कि सवर्णों के हाथों हरिजनों की समस्याओं के हल के लिए सवर्णों की मनोवृत्ति में आमूल चूल परिवर्तन होना आवश्यक है। ऋषि दयानन्द ही वर्तमान युग में सबसे पहले सुधारक थे जिन्होंने इस समस्या के मूल पर हाथ रक्खा था। उन्होंने उपकार भाव से अन्य सन्तों की नाईं हरिजन हित को नहीं देखा था। उन्होंने तो मनुष्यत्व के हित से उनके हितों को देखा और उन्हें गुण, कर्म के अनुसार आर्यत्व वा मनुष्यत्व का पद देकर 'हरिजन श्रेणी' को मिटाने का प्रयास किया था। अन्य सुधारकों और सन्तों ने उन्हें 'हरिजन' रखकर उपकार और दया भाव से उन्हें उठाने का यत्न किया था। ऋषि दयानन्द ने उन्हें 'हरिजन' न रखकर उठाने की विधि बतलाई है। उनके तथा अन्यों के हरिजनोद्धार में यही मौलिक भेद है। जब तक 'हरिजनोद्धार' कार्य में से यह मौलिक भेद नहीं मिटता है तब तक हमें भय है यह कार्य लाभ के बदले हानि न पहुँचाए। हरिजनोद्धार के पक्ष पातियों को इस बात पर गम्भीरता पूर्वक विचार करना और आर्य समाज की स्थिति को ठीक

ठीक समझना चाहिए और ऊपरी प्रयत्नों से इस समस्या को बिगड़ने न देना चाहिये।

## जन गणना

जन गणना समाप्त हो गई है। आर्य्य समाज का इस दिशा में जो कर्तव्य था अथवा उसका जो कार्य था उसे पूरा करने के लिये उसने जितना सम्भव था यत्न किया है। देखना यह है कि उसका यत्न कहां तक सफल होता है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं इस बार आर्य्यों की संख्या बहुत बढ़ेगी पर देखना यह है कि यह कहाँ तक ठीक २ रूप मे अंकित होती है। हमें प्रसन्नता है कि आशानुरूप आर्यसमाजों, प्रान्तीय सभाओं और आर्य भाइयों ने सार्वदेशिक सभा के आदेश निर्देशों का सम्मान करने में रस दिखलाया है।

## सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का साधारण अधिवेशन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक साधारण अधिवेशन २६ और २७ एप्रिल १९४१ को देहली में करने का सभा की २-३ मार्च की अन्तरंग सभा में निश्चय हुआ है। सम्बन्धित सज्जनों को यह तिथि नोट कर लेनी चाहिए।

## मदुरा में आर्य समाज

आर्य्य जनता को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि दक्षिण की मथुरा 'मदुरा' में गत ऋषि बोधोत्सव के पुनीत अवसर पर आर्य समाज स्थापित हो गया है। हम इस समाज की अभिवृद्धि और विस्तार की कामना करते हुए आर्य तथा हिन्दू जनता से प्रार्थना करते हैं कि वह इस समाज को उन्नत होने में अपना पूरा पूरा योग दें। पौराणिकता के गढ़ 'मदुरा' मे इस समाज का होना और उसका उन्नत होना कितना आवश्यक है इस पर कोई प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है।

## कलकत्ता हाईकोर्ट का महत्व पूर्ण निश्चय

कलकत्ता हाईकोर्ट ने गत ३ जनवरी को एक महत्व पूर्ण निर्णय दिया है जो अपने ढंग का सर्व प्रथम निर्णय बतलाया जाता है। नूरजहा बेगम नाम की एक मुस्लिम महिला ने जो यूगेनटिसको नामक एक रूसी सज्जन को विवाही थी, अपने विवाह विच्छेद की प्रार्थना की थी।

नूरजहां बेगम ने बयान दिया कि उसके माता पिता रूसी थे और २० मई १९३१ को प्रतिवादी के साथ बर्लिन में उसका सिविल विवाह हुआ था और १९४० में वह मुस्लिम धर्म में दीक्षित हुई थी। तब उसने अपने पति को इंगलैंड तार देकर इस्लाम ग्रहण करने की

प्रार्थना की थी परन्तु उसके पति ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया था। अब उसने इस्लामी कानून के अनुसार विवाह विच्छेद तथा अन्य सुविधाओं के लिये प्रार्थना की थी।

नूरजहा बेगम के अभियोग को खारिज करते हुए माननीय न्यायाधीश ने इस पर विचार किया कि क्या भारत का कानून ऐसा है कि इस्लाम धर्म में दीक्षित हुआ व्यक्ति इस्लामी शरीअत के अनुसार विवाह विच्छेद करा सकता है ? और कहा—

"दो मुख्य ग्रन्थ हीदिया और फतवा आलमगीरी जिनसे इस मुकदमें में हमारा सम्बन्ध है उन मुस्लिम राज्यों के प्रयोग के लिए निर्मित हुई थी जिनका राजधर्म इस्लाम था। इन दोनों प्रामाणिक ग्रन्थों की धाराओं की जाच पड़ताल करने पर प्रकट होता है कि मुस्लिम प्रदेशों की हकूमतों की नीति तबलीग ( धर्म परिवर्तन ) को प्रोत्साहित और धर्म से च्युत होने वालों के साथ कठोरता का बर्ताव करने की थी। इस बीसवी शताब्दी में हकूमत की नीति यह नहीं है कि वह बतौर धर्म परिवर्तन की एजेन्सी के कार्य करे और एक धर्म को हानि पहुँचा कर दूसरे धर्म का संरक्षण करे। इस आधार पर मेरी सम्मति यह है कि वादी जिस नियम में विश्वास रखता है वह पुराना और सार्वजनिक रीति नीति के विरुद्ध समझा जाना चाहिए।"

माननीय न्यायाधीश ने फैसला किया कि वादी जिस नियम को लागू कराना चाहता है वह न्याय नहीं है। भारतवर्ष मे विवाह सम्बन्धी विषयों मे जो अंग्रेजी कानून व्यवहृत होता है उसकी मुख्य धाराओं और सिद्धान्तों तथा उपर्युक्त नियम में विभिन्नता है। न किसी स्थिर प्रथा या नियम की धारा से उसका समर्थन ही होता है। वादी रूस के नियमों के अनुसार ही विवाह विच्छेद करा सकती है। मुस्लिम धर्म के जिस कानून पर वादी का विश्वास है वह अप्रचलित, पुराना और सार्वजनिक नीति के विरुद्ध समझा जाना चाहिए।"

## हिन्दू महासभा का सत्याग्रह सन्बन्धी प्रस्ताव

हिन्दू महासभा के मदुरा सेशन के मुख्य प्रस्ताव के द्वारा सरकार से माँग की गई है कि युद्ध की समाप्ति के पश्चात् १ वर्ष के भीतर २ वेस्ट मिनिस्टर के प्रकार का भारतवर्ष को स्वायत्त शासन ( डोमिनियन स्टेट्स ) दिया जाय और स्पष्ट शब्दों मे पाकिस्तान की योजना को रद्द किया जाय। प्रस्ताव में यह भी बतलाया गया है कि ३१ मार्च १९४१ के भीतर २ यदि उपयुक्त २ घोषणाएं न हुईं तो महासभा सत्याग्रह आरम्भ करेगी। सत्याग्रह का रूप क्या होगा यह प्रस्ताव में नहीं बतलाया गया है वरन् अवसर के आने पर वह रूप प्रगट करने की बात कही गई है।

## हिन्दू महासभा का तात्कालिक प्रोग्राम

महसभा के मदुरा सेशन ( अधिवेशन ) में एक प्रस्ताव के द्वारा निम्न प्रोग्राम निर्णीत हुआ है।

सेना, जल सेना और वायु सेना में अधिक से अधिक हिन्दुओं को भरती कराना हिन्दुओं के सैनिक शिक्षण और युद्ध सामग्री के निर्माण के लिए समस्त सुविधाओं से लाभ उठाना, स्कूलों में सैनिक शिक्षण अनिवार्य कराना, बाहरी आक्रमण और आन्तरिक अराजकता से जाति की रक्षा में समर्थ होने के लिए सिविक गार्ड (नागरिक रक्षा मण्डल) और हवाई आक्रमणों से रक्षा की योजनाओं में भाग लेना, इस शर्त के साथ कि सिविक गार्डों का प्रयोग भारत के देश हित सम्बन्धी किसी राजनैतिक आन्दोलन के विरुद्ध न हो और उनकी प्रणालियां हिन्दुओं के वैध हितों के लिए हानिकारक भी न हो। विदेशी माल का बहिष्कार, नए उद्योग धन्धे चलाना, बाजारों पर कब्जा करना, और आनेवाली जन गणना में हिन्दुओं की सही संख्या अंकित कराना।

## अलीगढ़ के विद्यार्थी और मि० जिन्ना

पिछले महीने अलीगढ मुस्लिम विश्व विद्यालय के विद्यार्थियों ने कांग्रेस के अध्यक्ष श्री अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी के अवसर पर एक विरोध सभा की थी। उसमें ५०० से अधिक विद्यार्थी उपस्थित थे। देहली विश्व विद्यालय के भी कई विद्यार्थी उपस्थित थे। सभा में जो प्रस्ताव पास हुए थे उनमें से एक इस प्रकार है:—

"यह सभा कांग्रेस अध्यक्ष मौलाना अबुल कलाम आजाद की गिरफ्तारी पर ऐसे आड़े समय म जबकि ब्रिटेन यूरोप में स्वाधीनता और जनसत्ता के लिए लड़ रहा है और भारतवर्ष को इन दोनों वस्तुओं से वंचित रख रहा है ब्रिटिश सरकार की घोर निन्दा करती है। यह सभा मौलाना आजाद को विश्वास दिलाती है कि अलीगढ के विद्यार्थी पूर्णतया उनके साथ हैं और जब वर्तमान आन्दोलन मे भाग लेने के लिए उन्हें कहा जायगा तब वे एक क्षण के लिए भी पीछे न रहेंगे। यह सभा भारत के मुसलमानों से अपील करती है कि वे अपने छोटे २ राजनैतिक वर्गों के भेद भाव के बिना कांग्रेस के सत्याग्रह आन्दोलन में भाग लें और मुसल्मानों पर मुहम्मद अली जिन्ना ने जो कलंक का टीका लगा रक्खा है उसे मिटा दें।"

## बंगाल और स्त्रियों के प्रति अपराध

बंगाल में स्त्रियों के प्रति अपराधों और अत्याचारों की कहानी बड़ी दुखद है। इन अपराधों को यदि हम बंगाल का कलङ्क कहदें तो अनुचित न होगा। बंगाल भारत का एक सुशिक्षित और उन्नत प्रान्त है। ऐसे प्रान्त में इन अपराधों का होना और द्रुत गति से बढ़ना, बड़ा खेदजनक है। कलंक को धोने के लिए बंगाल की सरकार को शीघ्र से

शीघ्र कठोर कार्यवाही करनी चाहिए। बंगाल की जनता का भी इस सम्बन्ध में बहुत बड़ा कर्त्तव्य है और वह यह है कि वह सरकार को उसके प्रयत्नों में दिल खोलकर सहायता दे।

जहां तक हमने विचार किया है, इन अपराधों के लिए बंगाल की धार्मिक और सामाजिक मामलों में कट्टरता और बाल-विवाह इत्यादि की सामाजिक कुरीतियां भी जिम्मेवार हैं। कारण कोई भी क्यों न हो, इन अपराधों को मिटाने के लिए व्यवस्थित कार्य अवश्य होना चाहिए। बंगाल में जहाँ कहीं गुण्डों के हाथों से नारियों की रक्षा हुई है वहां हमारे आर्य भाई आगे रहे हैं। बंगाल के आर्य भाइयों को यह कार्य अपनी प्रगतियों का विशेष अंग बनाना चाहिए। बाहरी सहायता की यदि उन्हें आवश्यकता हुई हो उन्हें विश्वास रखना चाहिए कि उसकी कमी न रहेगी। हम मानते हैं कि बंगाल में आर्य समाज का बहुत कम विस्तार है परन्तु इतने मात्र से नारी रक्षा जैसे कार्य की हमे उपेक्षा नहीं कर देनी चाहिए। यदि हम इस कार्य को ठीक ठीक रीति से और सफलतापूर्वक करेंगे तो आर्य समाज के विस्तार की कमी हमारे मार्ग मे कदापि बाधक न होगी। इस सिलसिले में आवश्यकतानुसार हमें नारी संरक्षण गृहों अनाथालयों और वनिता आश्रमों की व्यवस्था करके रक्षा कार्य करना चाहिए।

कांग्रेस के सदस्यों का ऐसे मामलों में रवैया बड़ा विचित्र रहता है। वे प्रायः इस प्रकार के अपराधों के प्रति न अपना मुंह खोलते हैं और न अपनी लेखनी उठाते हैं। शायद केवल इसलिए कि ऐसा करना साम्प्रदायिकता होगी। उनके इस रवैए की कौन न्यायप्रिय, सहृदय और देशभक्त व्यक्ति प्रशंसा कर सकता है। यह तो देश की सेवा के बदले असेवा करना और दूरवर्ती दुष्परिणाम उत्पन्न होने देना है। कांग्रेस के सदस्यों को अपने रवैए पर गम्भीरता और शान्ति से विचार करके अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। बंगाल में सुभाषचन्द्र बोस आदि प्रमुख कांग्रेस मैन इसके अपवाद है। उन्होंने खुले तौर पर बंगाल के अपराधों की निन्दा की थी। अभी कुछ दिन हुए श्रीयुक्ता हेमप्रभा मजूमदार एम० एल० ए० ने बंगाल के प्रधान मन्त्री को इस सम्बन्ध में पत्र लिखकर उनके कर्तव्य की ओर ध्यान आकर्षित किया था। पत्र का कुछ भाग इस प्रकार है:—

**एक और समस्या है जिसने गत कुछ वर्षों में गम्भीर रूप धारण कर लिया है और जिसका सङ्केत किए बिना नहीं रह सकती। मेरा अभिप्रायः स्त्रियों के प्रति बढ़ते हुए अपराधों और उनकी भयंकरता की ओर आपका ध्यान आकर्षित करना है। यह समस्या साम्प्रदायिक समस्या नहीं है और केवल हिन्दुओं से इसका सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध समस्त वीरों और वीरांगनाओं और मनुष्य**

समाज के प्रेमियों से है और होना चाहिए भ ते हो उनके धार्मिक विचार भिन्न २ क्यों न हों। इन अपराधों मे से बहुत से अपराध मुस्लिम नारियों के प्रति भी किए जाते हैं। आपकी सरकार ने इस अभिशाप को मिटाने के लिए कुछ नही किया है जो बगाल के श्रेष्ठ नाम पर धब्बा है।

## युद्ध के नियम

मानवी इतिहास के लम्बे प्रवाह म युद्ध हुए हैं। श्री रामचन्द्र ने रावण को युद्ध में परास्त किया था। कौरवों और पाँडवों का भाई भाइयो का अत्यन्त विनाशकारी युद्ध था जिसमें प्राचीन भारत के बहुत से क्षत्रिय परिवारों का अस्तित्व मिट गया था। प्राचीन काल मे यूनानियों का ट्राजन लोगों के साथ भयकर युद्ध हुआ था। ससार के समस्त महाकाव्यों का विषय युद्ध रहा है।

इन महाकाव्यों को हम अपने बच्चों को पढाते हैं। इसमें सन्देह नहीं हम चित्र का उज्ज्वल पक्ष उनके सामने रखते हुए वीरो का गुणगान करत हैं। इस प्रकार हम अपने बच्चो को युद्ध से किस प्रकार उपराम रखने की आशा कर सकते हैं?

जब तक मानवी आत्मा म प्र म, द्वष ईर्ष्या स्पर्धा और महत्वाकाक्षा विद्यमान है तब तक युद्धों का होना बन्द न होगा। परन्तु इस खेल के नियम भी हैं। यदि इन नियमो का कठोरता से पालन हो तो युद्ध का परिणाम विजयी और पराजित दोनों के लिय सम्मान योग्य होगा। सुनिश्चित नियमों के अधीन जो युद्ध होते हैं उनके पीछे कटुता बहुत कम देख पडती है। पराजित की कटुता विजयी क लिय बहुत भयानक होती है जैसा कि आज कल की घटनाओं से सुस्पष्ट है। सचमुच आज के ससार के हम नर नारी बड़े अभागे हैं जो ऐसे विनाशकारी युद्ध को देख रहे हैं जिसकी उपमा मानवी इतिहास म नहीं मिलती। यह भी निश्चित देख पडता है कि भविष्य म बहुत समय तक युद्ध होंगे।

यदि युद्ध अपरिहार्य हो तो मानव जाति को अपने समूल विनाश स बचने के लिये युद्ध के देवताओं को कहना चाहिए कि वे युद्ध के सुनिश्चित नियम बनाए। इस सम्बन्ध म लोकमत जाग्रत होना चाहिए। यदि आज प्राचीन काल के वीर क्षत्री होते तो वे निहत्थे स्त्री पुरुषों बालकों पर अन्धाधुन्ध बम वर्षा और टैंकों के प्रयोग स अपने पौरुष पर कालिमा न लगाते।

## भाग्यनगर (हैदराबाद) सत्याग्रह के हुतात्माओं का पुण्य स्मारक

भाग्यनगर आर्य सत्याग्रह को सफल बनाने में जिन २८ आर्य वीरों ने अपने प्राणों की आहुति दी सारा आर्य जगत् उनका ऋणि है। उनके प्रति

कृतज्ञता प्रगट करना प्रत्येक आर्य का कर्तव्य है । उनकी स्मृति स्थिर की जावे ताकि भविष्य में भी आर्य्य सन्तानों में इनके स्मरण से उत्साह और साहस का सञ्चार हो। इस उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है कि इन वीरों के नामों की एक पीतल की पट्टिका Brass Plate तैयार कराई जाय । जिसे प्रत्येक आर्य समाज, सभा तथा संस्था में लगाने के लिए प्रेरणा की जावे ।

इस निश्चय के अनुसार पीतल की पट्टिका तैयार कराई गई है जिसका परिमाण २४" × १६" है । इस पर २८ आर्य वीरों के नाम, उनके पिताओं के नाम जन्म स्थान, मृत्यु स्थान मृत्यु की तिथि आदि विवरण खुदावे गये हैं। पट्टिका के चारों ओर बेल बनाई गई है। पट्टिका का मूल्य २४) है ।

जो आर्य समाज सभायें, संस्थायें तथा महानुभाव इस पट्टिका को खरीदना चाहें वे २४रु० ( चौबीस रुपये ) तथा अलीगढ़ से अपने यहा तक का रेल पार्सल का किराया रेलवे स्टेशन के उल्लेख सहित अपने आर्डर के साथ सार्वदेशिक सभा में भेज दें ।

प्लेट का भार ३॥। सेर तथा पैकिंग सहित कुल भार ५ सेर होगा ।

## आर्य समाज स्थापना दिवस

आर्यसमाज का स्थापना दिवस आगामी २८ मार्च १६४१ को मनाया जायगा । यह दिवस आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने योग्य है । इसे समारोह और सफलता से मनाने के लिये आर्यसमाज को अभी से प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए । विस्तृत प्रोगाम शीघ्र ही सार्वदेशिक सभा के कार्यालय से जारी होगा ।

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१—ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते है पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक मे सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा मे हुआ था और कंस का वध भी अरब मे ही हुआ क्योकि अरब मे ही कंस का राज था। इस पुस्तक मे ७७२ पृष्ठ है और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशको तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसलमान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल ७।)

२—मेरी अबीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किसप्रकार नीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगड़ा कर अबीसीनिया को हड़प लिया आँखों देखा दृश्य इस पुस्तक मे वर्णित है मूल्य केवल ।।

३—हमारी जापान यात्रा— इसमे लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन १८५० से पहले की अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है. जापान और भारतवर्ष मे वर्तमान समय मे क्या अन्तर है ? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढने योग्य है। इसमे १६६ पृष्ठ और ३७ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १।।)

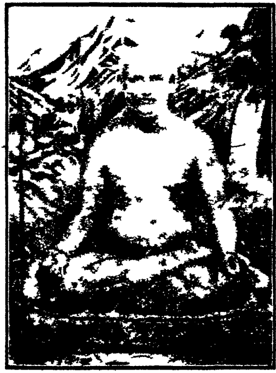
पुस्तक मिलने का पता.—

**बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महाबीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार**
**बाँदा ( यू० पी० ) जी० आई० पी० रेलवे।**

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिन्टिङ्ग प्रैस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।

ऋग्वेद यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक—प्रो० सुधाकर, एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश ५) एक प्रति का ।।-)    विदेश से ६ शि० वार्षिक

# लेख-सूची


| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. वेद की शिक्षाएँ | ... | ६६ |
| २. मन-मन्दिर | श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट | ७० |
| ३. संस्कृति क्या है ? | सर अकबर हैदरी | ७५ |
| ४. सुमन-संचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | ८१ |
| ५. आर्यसमाज की चिनगारियां | श्री स्वामी स्वतंत्रानन्द जी महाराज | ८६ |
| ६. आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या | ... | ६० |
| ७. Grandeur of Sanskrit | (Pandit G. Dhareshver) | ६३ |
| ८. Hindu Philosophy and Modern Sciences | (Rai Bahadur Ram Chandra M. A. P. E. S. Ratired) | ६७ |
| ९. His Majesty's Order Lgnored by Census Authorities | (Babu Kalika Prasad, M.A.B.L. Ranchi) | १०७ |
| १० आर्यकुमार जगत् | | १०६ |
| ११. टोंक में तबलीगी कार्य | | ११० |
| १२. लोहारू कांड | | १११ |
| १३. सम्पादकीय | | ११३ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६ | चैत्र १९९८ | अप्रैल १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क २

## * वेद की शिक्षाएं *

सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः । अथ० १६।२।५

गरुड़ के समान मेरी तीक्ष्ण दृष्टि और आंखों में निरन्तर ज्योति बनी रहे।

Let the vision in thy eyes be strong and sharp let its strength be maintained till thy old age.

* * *

पश्येम शरदः शतम् । यजु० ३६।२४

हम सौ वर्ष तक देखें ।

May we live and exercise our faculty of vision for a hundred years !

# मन-मन्दिर

( ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट, आगरा )

[ गताङ्क से आगे ]

## चित्र द्वारा मन्त्रों का समन्वय

| नाम दिशा | अधिपति | रक्षा के साधन | किससे रक्षा होती है | विशेष |
|---|---|---|---|---|
| प्राची | अग्नि | आदित्य | अन्धकार | कर्म का द्योतक |
| दक्षिणा | इन्द्र | पितर | तिरश्चिराजि | ज्ञान |
| प्रतीची | वरुण | अन्न | पदाकू (अजगर आदि) | भोग |
| उदीची | सोम | विद्युत | अज्ञान | आत्मिक शान्ति |
| ध्रुवा | विष्णु | वृक्षादि | नास्तिकता | ईश्वर का न्याय होना |
| ऊर्ध्वा | बृहस्पति | वर्षा | दुःख | ईश्वर का महत्व दर्शाता है। |

इस चित्र से इन मन्त्रों का समन्वय भली भांति समझ में आ जाता है और इस समन्वय से ईश्वर के ध्यान की विधि अच्छी तरह जानी जा सकती है। इससे यह बात भी सिद्ध होती है कि ईश्वर का ध्यान और चिन्तन करने के लिये सदैव और सबको हिमालय की गुफा में या एकान्त जंगल में जाने की आवश्यकता नहीं। इस दुनिया में चलते फिरते, उठते बैठते, सब कुछ देखते सुनते, अनेक प्रकार के कर्म करते और फल भोगते हुए हमारी आत्मा में ईश्वर का चिन्तन स्थायी रहे और हम ईश्वर को न भूलें यह सबसे अच्छा ध्यान है। सब दुनियाँ को नहीं छोड़ सकते और न दुनियाँ का त्यागना सबके लिए अभीष्ट ही है। दुनिया में रहें, दुनिया वालों से मिलें और फिर ईश्वर को न भूलें, यह सब से उत्तम ध्यान है।

इस स्थल पर हम एक कहानी उद्धृत करना चाहते हैं जो हमने स्वामी रामतीर्थ के ग्रन्थों में बहुत दिन हुए पढ़ी थी। किसी का घोड़ा बहुत प्यासा था। वह उस घोड़े को लेकर पंजाब के किसी ग्राम में एक ऐसे कुएं पर पहुंच गया जहाँ रैंट से पानी निकाला जा रहा था। पानी बड़े जोरों से निकलता था परन्तु उसके साथ ही आवाज भी बड़े जोरों से होती थी। जब

आवाज को सुन कर उसका घोड़ा चौंक जाता था और कुए से पीछे हट जाता था। परिणाम यह हुआ कि बहुत देर बीत जाने पर भी घोड़ा पानी न पी सका और उस आदमी ने उस कुएं वाले से बहुत शिकायत की कि वह उसके घोड़े की प्यास न बुझा सका। उस कुएं पर पानी निकालने वाले आदमी ने जो उत्तर दिया वह विचारणीय है। उसने कहा कि तुमने अपने घोड़े की आदत बिगाड़ रखी है यदि घोड़ा प्यास बुझाना चाहता है तो उसको शोर से चौंकने की आदत छोड़नी होगी। नहीं तो पानी होते हुए भी प्यासा ही रहेगा। इसी प्रकार यदि हम ईश्वर चिन्तन के सांसारिक पदार्थों के मध्य में रह कर अभ्यासी न होंगे तो हमारी तृप्ति कभी न होगी। जो सच्चा कर्मकाण्डी, परोपकारी और लोकसेवा करने वाला है वही ईश्वर भक्त है। ऋषि दयानन्द ने क्रियात्मक भक्ति के आदर्श को हमारे सामने रखा है। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि ईश्वर भक्ति के लिए आंख मीच कर एकान्त में बैठना आवश्यक नहीं बल्कि उन्होंने योग के आनन्द को जनसेवा के लिए और संसार के उत्थान के लिए परित्याग कर दिया। कर्मयोग ही सच्चा भक्तियोग है।

## मन मन्दिर निर्माण

साधारण मन्दिरों में स्थूल पूजा के लिए हमें निम्नलिखित वस्तुएँ दृष्टिगोचर होती हैं —

( १ ) उपासक या पुजारी
( २ ) उपास्यदेव या मूर्ति
( ३ ) पूजा के निम्न लिखित साधन
  ( अ ) आर्ती
  ( ब ) भोग
  ( स ) जल
  ( द ) पुष्पादि
  ( म ) स्तुति

इन साधनों से उपासक या पुजारी देवता या मूर्ति की पूजा करता है, परन्तु यह बात पूजा करने वाले भूल जाते हैं कि निराकार परमात्मा की मूर्ति नहीं हो सकती और इन प्राकृतिक पदार्थों से निराकार परमात्मा की पूजा नहीं होती। बैठते हैं पूजा करने और प्राकृतिक वस्तुओं के झंझट में और अधिक फंस जाते हैं। जब से यह मूर्ति-पूजा प्रचलित हुई है यह देखा जाता है कि जो पुजारी और बड़े मूर्तिपूजक हैं वह बहुत बड़े भोगविलासी हैं

जो कम पूजा करते हैं या नाम-मात्र की पूजा करते हैं वह चौबीस घंटे वाले पुजारियों से बहुत अच्छे हैं।

जीवात्मा को निराकार परमात्मा की पूजा करनी है और इस पूजा के लिये हमारा हृदय मन्दिर सब से अच्छा स्थान है और इस ब्रह्माण्ड के पदार्थ पूजा की सामग्री है—एक छोटे से दीपक के स्थान में आरती के लिये यह विशाल सूर्य है। भोग लगाने के लिये इस संसार के अन्न इत्यादि और भोग पदार्थ हैं। ये मेघ जल सिंचन के लिए और कश्यप श्रीवा वाले वृक्ष पुष्प चढ़ाने के लिए। स्तुति के लिए वेद वाक्य और प्रेम भरी जिह्वा। आत्मा हृदय मन्दिर मे प्रवेश करके एकाग्र चित्त होकर बैठे और परमात्मा की पूजा इन ब्रह्माण्ड के पदार्थों को लक्ष्य में रख कर मानसिक रूप में करे। इससे हमारा मन एक ऐसे विशाल मन्दिर के रूप में हो जावेगा जिसके लिए ईंट और पत्थर की आवश्यकता नहीं और न किसी अन्य जड़ पदार्थों की। जिसे तूफान और भूचाल हानि न पहुंचा सकेंगे और जिसकी सीमा एक छोटा सा स्थान नहीं बल्कि यह सारा ब्रह्माण्ड ही जिसकी सीमा के अन्तर्गत होगा। इस ससार के सब पदार्थ पूजा के लिये होंगे और हम उनके उपयोग मे ऐसे ही सावधान और स्वच्छ हृदय रहेंगे जैसे भावपूजा की सामग्री के लिए हमारे अन्दर होते हैं। हमारी आत्मा सच्चा पुजारी बन कर अपने इष्टदेव परमात्मा की पूजा करेगी और ससार के सब पदार्थों को पूजा की सामग्री के भावों से देखेगी।

इस प्रकार की पूजा की विधि से ध्यान परिपक्व और मर्यादित होता है।

अब तक इस सन्ध्या की विधि म जो अग आये हैं उनका योग के अगों से सम्बन्ध इस प्रकार रहा है कि मनसा परिक्रमा के मन्त्रों के अन्त तक यम, नियम, आसन, प्रतिहार और प्राणायाम धारणा और ध्यान नाम वाले अग पूर्ण हो जाते हैं। ध्यान के अभ्यासी होने के पश्चात् समाधि का नम्बर है और ध्यान के अभ्यासी ही समाधि के आनन्द के भोगने के अधिकारी हैं। समाधि अवस्था मे विशेषता यह है कि जहाँ ध्यान का अभ्यास करने में हमे प्राकृतिक पदार्थों को अपने लक्ष्य में रख कर उनको ईश्वर का महत्व दर्शाने वाला जानने और मानने की आवश्यकता है वहाँ समाधि मे इन पदार्थों को बिल्कुल भूल कर साक्षात् ईश्वर का प्रत्यक्ष दर्शन करने का अभ्यासी बनना होगा।

ये प्राकृतिक पदार्थ प्रकाश के साधन हैं। यदि ईश्वर का बतला इनके द्वारा प्राप्त हो परन्तु यदि हम इनके ही झंझट में फंस जायें तो बजाय प्रकाश के साधन होने के ये अन्धकार के साधन बनेंगे।

## प्रकृति या माया

षट् दर्शनों में प्रकृति को भिन्न भिन्न नामों से दर्शाया है। वेदान्त म इस प्रकृति को माया कहा है। माया से अभिप्राय यह नहा कि यह प्रकृति सत्ता नहीं रखती परन्तु माया से यह अभिप्राय है कि वेद या ज्ञान का अन्त ईश्वर का साक्षात् करता है और जब ईश्वर का साक्षात् हो जावे तो उस समय प्रकृति अनावश्यक भ्रमोत्पादक हो जाती है। इसी प्रकार सन्ध्या की विधि मे मनसा, परिक्रमा के मन्त्रों के पश्चात् उपस्थान मन्त्रों का स्थान आता है।

## उपस्थान मंत्र

उपस्थान मत्र योग के समाधि अग के समान है। उपस्थान से अभिप्राय ईश्वर के समीप बैठना है। यह ऊपर बतलाया जा चुका है कि ईश्वर और जीव म देश और काल की दूरी नहीं केवल ध्यान की ही दूरी है। ध्यान स्थिर होते ही उपासना आरम्भ हो जाती है जो उपासना शब्द के भाव है वही उपस्थान शब्द के भाव है। उपस्थान मत्रा म इस प्रकृति को 'तम' कहा जाता है। उपस्थान मत्रों का पहला मत्र।

> ओ उद्वयन्तम सस्परिष्व' पश्यन्त उत्तरम्।
> देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योति रुत्तमम्।

इसका अभिप्राय यह है कि तम से परे होकर हम उस महान् प्रभु को देखते हैं अर्थात साक्षात करते हैं और परमात्मा को जिस रूप म देखत हैं उसका वर्णन जिन शब्दों में किया गया है वह हमारी आत्मा को उत्थान की ओर ले जाने वाले हैं। परमात्मा को प्रकाशस्वरूप कहा गया है अर्थात् प्रलय के पीछे भी सदा वर्तमान (देव देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात् प्रकाश करने वालों में भी प्रकाश करने वाला (सूर्य) चराचर के आत्मा (ज्योति रुत्तमम्) जो ज्ञान सत्स्वरूप और सब से उत्तम है हम सब आपकी शरण मे आते हैं, हमारी रक्षा करनी आपके हाथ है जब हम परमात्मा को इस रूप में साक्षात् कर सकें तो हम इस बात के अधिकारी होंगे कि परमात्मा का सबन्ध और आत्मा और प्रकृति के सबन्ध समझ सकें। दूसरे मत्र में यह बताया गया है। इस मत्र मे यह दर्शाया गया है कि परमात्मा का वेदरूपी ज्ञान हमारे लिए इस ससार के सब पदार्थों को प्रत्यक्ष कराने वाला है अर्थात् इनके असली स्वरूप को हमारे सामने रखने वाला है जैसे इस ससार के सब पदार्थों को देखने के लिए सूर्य की आवश्यकता है इसी प्रकार इस वेदरूपी ज्ञान के सूर्य की आवश्यकता जीव के लिए परमात्मा प्रकृति और सब जीव को अपने स्वरूप को समझने के लिए आवश्यक है।

आज हर राष्ट और समुदाय अपना अपना झण्डा (केतन) पृथक् पृथक् रखत हैं जिससे उनकी सत्ता पृथक् रूप से प्रकट हो। परमात्मा ने वेदोंका ज्ञान इसीलिए प्रदान किया कि वेद ईश्वर के स्वरूप को चिरस्थायी रूप से प्रकट करने के लिए स्टैंडर्ड का काम देते रहें और ईश्वर के स्वरूप के साथ साथ ससार के अन्य पदार्थों के स्वरूप को भी ठीक २ प्रकट करते रहे। वेद इस विश्व को दर्शाने के लिए सूर्य हैं और परमात्मदेव के लिये केतन है। जहाँ हमने वेद और ईश्वर के सम्बन्ध को समझ लिया फिर हम किसी भ्रम या झंझट में नही फँस सकते। इसी आवश्यकता को अनुभव करने के लिए ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज के १० नियमों में से पहिले तीन नियमों में यह दर्शाने का उद्योग किया है कि सब सत्य विद्या का आदि मूल परमेश्वर है और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उनका भी आदि मूल परमेश्वर है और वेद सत्य विद्याओं का पुस्तक है। जब से यह प्राचीन सचाई हमारे सामने न रही तो बड़े बड़े विद्वान्, ईश्वर भक्त और आस्तिक होने के स्थान में नास्तिक और अभिमानी हो गये। ईश्वर के साक्षात् होने पर सबसे पहिली बात जो हम अपने हृदय में धारण करनी होगी वह ईश्वर के प्रदान किये हुए ज्ञानवेद के सम्बन्ध में है। वेद अर्थात् इस ससार के समस्त ज्ञान के श्रोत ईश्वर को जान कर हमारे आनन्द की सीमा नहीं रहती और इसी ज्ञान से समाधि का आनन्द आरम्भ होता है।

---

# संस्कृति क्या है ?*

## संसार की नवीन व्यवस्था मे भारत का स्थान

### नाजीवाद और पूर्वीय सभ्यता मे विरोध

### श्री अरविन्दघोष के विचार

[ ले०—सर अकबर हैदरी ]

—.⁂.—

आज संसार की आत्मा संकट में पड़ गई है। मानव जाति सांस्कृतिक अथवा आध्यात्मिक दृष्टि से जिन बातों को महत्व देती आई है, उन सबका अस्तित्व आज अधर में लटका हुआ है। प्रश्न यह है कि आज जैसी अराजकता हमारे बीच छाई हुई है, उससे संस्कृति के बचे रहने की क्या कुछ भी आशा है ?

कोई राष्ट्र अपनी जनता में ज्ञान, विज्ञान तथा ललित कलाओं का विकास भले ही कर ले, किन्तु यदि वह अपने साधारण दृष्टिकोण, अपनी विचारधारा और अपने दैनिक जीवन में ज्ञान, सत्य और सौन्दर्य तथा जीवन के उच्च आदर्शों से प्रभावित होने के स्थान पर व्यापारिक, धार्मिक तथा निम्न कोटि के उद्देश्यों से प्रभावित होता है तो साधारणतः उसे सभ्य भले ही कह लिया जाय, किन्तु वास्तविक अर्थ में उसे सुसंस्कृत नहीं कहा जा सकता।

## सुसंस्कृत कौन है ?

श्री अरविन्द घोष ने संस्कृति तथा सुसंस्कृत मानव समाज की व्याख्या बड़े सारगर्भित शब्दों में की है। आप के शब्दों में उस व्यक्ति को संस्कृति के वास्तविक अर्थ में सुसंस्कृत कहा जा सकता है। 'जो मन की इन्द्रियता (अस्थिर अवस्था) से ऊपर उठकर ज्ञान और विवेक को अपनाता है और जिसकी भावना जिज्ञासु के समान सदा ज्ञान की खोज मे रहती है। सुसंस्कृत व्यक्ति के कर्म उसकी परिष्कृत अभिलाषा के परिणाम होते हैं और इन्हीं से चरित्र तथा अन्य नैतिक गुणों का निर्माण होता है। ऐसा व्यक्ति साधारण अथवा निम्नकोटि की मनोवृत्ति के वशीभूत होकर कार्य नहीं करता, बल्कि उसके कार्य सत्य, और सौन्दर्य के अभिज्ञान तथा आत्म संयम के आधार पर किए हुए संकल्प के परिणाम होते हैं।"

---

* भारत सरकार के इनफारमेशन डिपार्टमेन्ट (सूचना विभाग) के सौजन्य से प्राप्त।

इस प्रकार सच्ची संस्कृति सत्यं, शिवं, सुन्दरं की खोज में एकनिष्ठ होकर लगा रहता है। इस कसौटी पर कसने पर हम आधुनिक सभ्यता को यूनान की प्राचीन संस्कृति या आगुस्त काल के इटली अथवा अशोक या विक्रमादित्य कालीन प्राचीन भारत अथवा अकबर और शाहजहां के मध्यकालीन भारत से निरन्तर पाते हैं क्योंकि आज संसार के सभ्य कहाने वाले राष्ट्रों ने अपनी बौद्धिक तथा वैज्ञानिक सफलताओं का अपने व्यापारिक उद्देश्यों, हृदयहीन अधर्मांकिता तथा पशुबल बढ़ाने में उपयोग करने के सिवा और कुछ नहीं किया।

आज यूरोप का अधिकांश मानव समाज अपनी शक्ति बढ़ाना ही जीवन का ध्येय समझता है। आधुनिकता का मतलब विज्ञान से ओतप्रोत, कुत्सित और प्राणहीन जीवन है।

कला के सम्बन्ध में पूर्वीय और पश्चिमीय दृष्टिकोण की विभिन्नता से भी इस विषय पर कम प्रकाश नहीं पड़ता। पूर्वीय कलाकार वस्तु के बाह्य की अपेक्षा उसके अन्तर को सजाने में ही कला की सार्थकता समझता है। उसकी कला का उच्चतम ध्येय आत्मा अर्थात् मनुष्य के अन्तर की दैवी सत्ता का ज्ञान प्राप्त करना अथवा इस दैवी सत्ता और प्रकृति के परस्पर भेदों पर प्रकाश डालना है। पूर्वीय कलाकार आत्मा को इसकी अभिव्यक्ति द्वारा, असीम दैवी सत्ता को इसके सीम प्रतिरूपों तथा सांसारिक उपकरणों द्वारा और ब्रह्म को इसकी अपरिमित तथा अपरिमेय शक्ति द्वारा समझता है।

## भारत की एकता का प्रश्न

अक्सर कहा जाता है कि भारतीयों की आध्यात्मिकता ही उनके सांसारिक जीवन की असफलताओं तथा विदेशियों की अधीनता में पड़ने का कारण है। परन्तु दर्शन और साहित्य में भारत की महत्ता, चित्रकला तथा मूर्ति और गृह निर्माण कलाओं में उसकी सफलता और उसके इतिहास में महान् साम्राज्यों का उत्थान तथा पतन— इन सबसे यही प्रकट होता है कि भारतीय जनता संघर्ष करने तथा भक्ति का प्रदर्शन करने में किसी से पीछे नहीं रही है।

भारत में राजनीतिक एकता न रहने का कारण देश की विशालता तथा यातायात के साधनों की कमी थी। यही कारण था कि विदेशियों ने सदा सदा विजय पायी, यद्यपि विजय होने के पूर्व उन्हें लम्बी और कठिन लड़ाइयां लड़ना पड़ता

था। अब यातायात के आधुनिक साधनों का विकास होने के कारण देश के राजनीतिक जीवन में एकता आने लगी है। यदि राजनीतिक दृष्टि से भारत स्वाधीन हो जाय और अपनी आध्यात्मिक संस्कृति को पुनः प्राप्त कर ले, जैसा कि उसके करने का मुझे पूर्ण विश्वास है, तो वह मानव जाति के उत्थान के लिए एक भारी शक्ति की सृष्टि कर देगा।

## नाजीवाद की छाया

परन्तु एक सुखद स्वप्न के विपरीत हमारे सामने नाजीवाद की छाया फैलने लगी है। यह हमारी आध्यात्मिक सभ्यता और संस्कृति से बिलकुल उलटी दिशा में ले जाने वाली विचार धारा है। मानव जाति की आध्यात्मिक उन्नति को रोकने के लिए जो कुछ भी हो सकता है, नाजीवाद उसी का प्रतिनिधित्व करता है। जीवन के प्रति नाजियों का दृष्टिकोण तथा उससे संस्कृति के लिए जो खतरा हो सकता है उसे समझने के लिए हमें दो मनोवैज्ञानिक सत्यों को ध्यान में रखना होगा।

पहला सत्य है अहंभाव, जिसका मतलब यह है कि हम अपना अस्तित्व दूसरे देशों से भिन्न मानते हैं। यह हमारा वास्तविक स्वरूप नहीं है। अपने वास्तविक स्वरूप में परमात्मा तथा संसार के समस्त प्राणियों से हम अपनी एकता मानने के लिये बाध्य हैं।

दूसरे सत्य के अनुसार हमें हृदयंगम कर लेना चाहिए कि व्यक्ति का अस्तित्व स्वयं अपने तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसका विस्तार अन्य सभी व्यक्तियों तक है। उसकी तथा अन्य व्यक्तियों की सत्ता एक ही है। यदि समाज व्यक्ति के अस्तित्व को मिटाने की चेष्टा करता है तो इसका मतलब है कि वह अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारता है और प्रोत्साहन तथा विकास के एक अमूल्य साधन से वंचित रह जाता है। उसी प्रकार व्यक्ति भी अपनी सत्ता को अलग नहीं रख सकता, क्योंकि उसका उद्‌गम सामूहिकता से हुआ है और उसको दबाने की चेष्टा करना अपनी जीवन शक्ति का लोप होने देना है।

## जीवन के प्रति नाजी दृष्टि कोण

ये दो सत्य केवल व्यक्ति पर ही नहीं, बल्कि राष्ट्र पर भी लागू होते हैं। जीवन के प्रति नाजियों के दृष्टिकोण का सार इस प्रकार है:—

( १ ) समूह का एक अंग मात्र होने के कारण व्यक्ति का जीवन राष्ट्र के उत्तम परिचालन पर निर्भर रहना चाहिए। राज्य की प्रधानता तथा व्यक्तित्व के नाश की इस भावी विचार धारा को एक वर्गवादी सभी लोगों ने अपना लिया है।

( २ ) राज्य तथा समाज की सेवा ही नैतिकता का सर्वोपरि नियम है। अन्य राज्यों के प्रति व्यवहार में सबसे प्रभाव पूर्ण नियम पशुबल का प्रयोग है।

( ३ ) चूंकि सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियों के जीवित रहने में ही मनुष्य जाति का सबसे अधिक कल्याण है और चूंकि सर्व श्रेष्ठ व्यक्तियों के जीवित रहने का एक मात्र उपाय अयोग्य व्यक्तियों का नाश तथा अपेक्षाकृत कम अयोग्य व्यक्तियों का समूह में समा जाना है इसलिये मानव जाति की उन्नति का सबसे सीधा मार्ग संसार की जर्मन संस्कृति द्वारा विजय है।

गत महायुद्ध के समय जर्मन विचारधारा के सम्बन्ध में उपर्युक्त व्याख्या श्री अरविन्द घोष की 'आर्य' पत्रिका मे प्रकाशित हुई थी। हाल की घटनाओं तथा नाजी आन्दोलन की बाइबिल मीनकाम्प से उपर्युक्त व्याख्या की सार्थकता अब भली भांति प्रकट हो गई है इसमें कहा गया है कि कुछ जातियां आर्य हैं और इनमें से भी कुछ नोर्डिक हैं। नोर्डिक शब्द मे भारतीय जातियों के आर्य पूर्व पुरुषों को छोड़ दिया गया है। कहा गया है कि इन आर्य जातियों में जर्मन जाति सबसे प्रधान है और संसार की प्रगति का एक मात्र उपाय यही है कि जर्मन लोग अन्य निम्न कोटि की सभी जातियों पर प्रभुता प्राप्त कर लें और अपनी संख्या का प्रत्येक उपाय से विस्तार करें। हिटलर अपनी पुस्तक में कहता है कि "पूर्व के हॉटेन्टॉटों के लिये मेरी व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। वह यह भी कहता है— "काली जातियों को बौद्धिक पेशों के लिये तैयार करना परम पिता के प्रति सबसे बड़ा पाप है।"

यदि नाजी लोग संसार पर प्रभुता प्राप्त कर लेते हैं तो मानव जाति और मानव सभ्यता का क्या होगा, यह ऊपर जो कुछ मैं कह चुका हूँ उससे स्पष्ट है। यदि अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का मतलब माधुर्य और प्रकाश है तो नाजी शब्द 'कुल्तूर' का मतलब कटुता और अन्धकार है।

## विश्व सङ्घ की स्थापना

बर्बरता के ऐसे आक्रमण से मानव जाति की रक्षा के लिए और संसार में शान्ति और व्यवस्था सुरक्षित रखने के लिए ताकि संस्कृति और आध्यात्मिकता की रक्षा हो सके और मानव जाति, जीवन के आह्लाद और सौंदर्य का अनुभव कर सके एक ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था या विश्व सङ्घ की स्थापना होनी चाहिए, जो संसार में अराजकता और युद्ध को फैलने से रोक सके। यह व्यवस्था या सङ्घ ससांर में शान्ति और व्यवस्था उसी प्रकार कायम रखेगा जिस प्रकार कोई सरकार देश की सीमाओं के भीतर शासन करती है। परन्तु इस कठिन समस्या के ऐसे विवेक पूर्ण निपटारे से हम बहुत दूर हैं। नहीं, सच तो यह है कि मनुष्य जाति के इतिहास के इस काल में हम उससे बिल्कुल विपरीत दिशा की ओर चले जा रहे हैं। आगे बढ़ने के स्थान पर पीछे लौटकर हम अन्तर्राष्ट्रीय अव्यवस्था के गर्त में जा गिरे हैं। हम फिर से जीवन सङ्घर्ष के ऐसे सिद्धांत पर पहुंच गये हैं, जिसमें सबसे शक्तिशाली व्यक्ति के अस्तित्व को अधिक महत्व दिया गया है। जीवन सङ्घर्ष का यह आधार मनुष्य की अपेक्षा पशुओं को ही अधिक शोभा देता है।

राष्ट्रों, जातियों, संस्कृतियों तथा मज़हबों के बीच आज जो विरोध, शत्रुता तथा अविश्वास की भावना दिखाई दे रही है, यह हमारी प्राचीन अहंभावना के कारण है। यह दूसरे पर अपनी इच्छा लादने की हमारी प्रवृत्ति के कारण है। यह दूसरे घर को छीनकर उसे अपना घर बना लेने, उस पर अपनी प्रभुता स्थापित करने तथा एक के द्वारा दूसरे के अस्तित्व को मिटा देने के भय के कारण है।

अब हमें एक ऐसी व्यवस्था स्थापित करने की आवश्यकता है, जिसमें पारस्परिक सहन शीलता ही कानून हो, जिसमें एक साथ विभिन्न जातियां, राष्ट्र, संस्कृतियां और आध्यात्मिकताएँ रहें और फले फूलें। ऐसी व्यवस्था मे ऐसी सामूहिक एकता में ही आज दिखाई देने वाली विरोध, शत्रुता और अविश्वास की भावनाएँ मिट सकती हैं।

मानव जाति की पूर्ण विकसित सभ्यता में हमारी यही स्थिति होगी और इसी को अपनी उन्नति का ध्येय मानकर हमें आगे बढ़ना -[illegible]

की आध्यात्मिक संस्कृति का उद्देश्य मानवता के सर्वोच्च आदर्शों की प्राप्ति करना रहा है। इसीलिए संसार में नयी व्यवस्था होने पर भारत उसमें अपना उचित स्थान ही प्राप्त नहीं करेगा, वरन् मानव जाति के विकास में संसार को मार्ग दिखाने में भी समर्थ हो सकेगा। मनुष्य जाति को आध्यात्मिकता से इसमें ओत प्रोत करने के लिए भारत के पास आदर्शों की महत्ता है और उसकी जनता में उन्हें कार्यान्वित करने की सामर्थ्य है।

---

# सुमन-संचय

## (१)

### महात्मा का प्रभाव

एक समय भगवान् बुद्ध अर्वल वन में यात्रा कर रहे थे। उन्होंने देखा एक गड़रिया बहुत सी भेड़ों को लिए जा रहा है। भेड़ों के उस समूह मे भेड़ का एक छोटा बच्चा खुर में चोट लग जाने और तेज धूप स व्याकुल होकर चलने में अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा था। भगवान् बुद्ध सभी जीवों को एक समान करुणा दृष्टि से देखते थे। उन्होंने स्नेह से उस बच्चे को उठा लिया और भेड़ो के साथ २ चलने लगे। बुद्ध ने उस गड़रिये से कहा भाई तुम इस तेज धूप मे इन भेड़ों को क्यों ले जा रहे हो? यात्रा करने का समय तो वास्तव में संध्या और प्रातःकाल का होता है। गड़रिये ने कहा महाराज! आज संध्या को महाराज (नरेश) को इन पशुओं की बलि देनी है, इसलिए समय पर इनका पहुँचना आवश्यक है।' बुद्ध को यह जान कर अत्यन्त खेद हुआ। इसी बीच मे भगवान् बुद्ध के एक शिष्य ने आकर कहा 'महाराज! सङ्घ में नर-नारियों की अपूर्व भीड़ लगी है और वे आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रहे हैं। कृपा कर शीघ्र पधारिये और उन्हे धर्मोपदेश दीजिए।' महात्मा बुद्ध ने संघ को जाने के लिए निषेध कर दिया और बच्चे को गोद में लेकर गड़रिए के साथ चल दिये।

जब वे राज मंदिर मे पहुँचे तो द्वार रक्षकों न महात्मा के तेज से प्रभावित होकर द्वार खोल दिया। बुद्ध चुपचाप मन्दिर मे प्रविष्ट हुए। राजा उस समय पहले बकरे की बलि देने लगा था। राजा न अपने समीप खड़े हुए वधिक को संकेत किया। एक ने हाथ मे छुरी संभाली और दूसरे ने मन्त्र पढ़ना आरम्भ किया इसी समय बुद्ध ने समीप पहुँच कर बकरे की पीठ पर प्रेम से हाथ फेरा और विनय की कि इस पशु की

हत्या न की जाय और तुरन्त रस्सियों को काट कर पशु को स्वतन्त्र कर दिया। लोग चुपचाप खड़े इस घटना को देखते रहे कुछ कहने का साहस किसी को भी न हुआ।

बुद्ध भगवान् उन सबको स्तब्ध देखकर बोले:—

हिंसा करना घृणित कार्य्य है। पशुओं में भी मनुष्यों के सदृश ही जीव है। उन्हें भी हत्या के समय बहुत क्लेश होता है। आप लोग देवताओं की कृपा प्राप्त करने के लिए इन असहायों पर छुरी चलाते हैं। परन्तु जब आप इन पर स्वयं किसी प्रकार की कृपा नहीं करते तो आप को देवताओं से कृपा की भिक्षा माँगने का क्या अधिकार है। निर्दोष भेड़ें और बकरियाँ अपने दूध और ऊन से हमारी सेवा करती हैं और हम उनकी हत्या करते हैं यह कितना बड़ा अन्याय है? आप समझते हैं कि इन जीवों का रक्त बहाने से आपके पाप धुल जायंगे परन्तु वास्तव में इससे आपके पापों की वृद्धि होती है। यदि हम पापों से मुक्ति चाहते हैं तो हमें इन जीवों से प्रेम करना चाहिए। अपने हृदयों को पवित्र बनाना चाहिए। इस संसार में सुख और शान्ति के प्रचार का एक मात्र साधन यही है।'

भगवान् के इस उपदेश का प्रभाव सब पर गहरा पड़ा और बधिकों ने लज्जा और ग्लानि से अपने रुधिराप्लुत हाथों को वस्त्रों में छिपा लिया। राजा भी उनके प्रवचन से अत्यन्त प्रभावित हुआ और अत्यन्त सम्मान से उन्हें अपने प्रासाद में ले गया। दूसरे दिन ही उसने भगवान की इच्छानुसार अपने राज्य में घोषणा करके पशु बलि बन्द करा दी और आहार के लिए भी पशु-वध का निरोध कर दिया।

( २ )

## स्वार्थ त्याग

एक बार शाहजहाँ बादशाह की एक पुत्री बहुत बीमार हुई। शाह-जहां इस पुत्री को बहुत प्रेम करते थे। अनेकों हकीमों और वैद्यों की चिकित्सा कराई गई परन्तु राजकुमारी को आराम न हुआ। दिन प्रति दिन उसकी दशा खराब होती गई और बचने की भी आशा न रही। बादशाह अपनी पुत्री की जीवन रक्षा के लिए अपना राज्य और सर्वस्व भी अर्पण

करने को ध्यान देखा पड़ने लगे। वे चाहते थे कि किसी प्रकार राजकुमारी के जीवन की रक्षा हो जाय। उन्हीं दिनों उनके दरबार में एक विदेशी राजदूत रहता था। उसने भी राजकुमारी के इलाज की बादशाह से प्रार्थना की। बादशाह ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर इलाज की आज्ञा दे दी। राजदूत ने राजकुमारी के रोग की परीक्षा की और रोग समझ में आ जाने पर चिकित्सा आरम्भ की। ८-१० दिन में ही राजकुमारी को आराम हो गया। बादशाह राजदूत से बड़े प्रसन्न हुए और उसे इनाम देने के लिए सोने जवाहरात के ढेर उसके सामने लगवा दिए। परन्तु राजदूत ने यह संपदा स्वीकार न की। इस बात पर बादशाह को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने राजदूत से पूछा "तुम इन्हें स्वीकार क्यों नही करते यदि कम समझते हो तो और जितने चाहो ले लो।" राजदूत ने कहा—"जहाँ पनाह! यदि आप मुझे इनाम देना चाहते हैं तो मेरी एक प्रार्थना स्वीकार करने की कृपा करें।" बादशाह ने पूछा 'क्या?' राजदूत ने कहा, "शहंशाह! मेरे देश के माल पर जो सरकारी कर लगता है वह माफ कर दिया जाय। इससे अधिक अपने लिए मैं कुछ नहीं चाहता।" बादशाह और उसके मुसाहिबों को इस तुच्छ मांग पर हंसी आई और वह मांग तत्काल स्वीकार करदी गई। यह राजदूत अंग्रेजों का राजदूत था। उसकी चतुराई और निजी स्वार्थ त्याग का फल यह हुआ कि अंग्रेजों का व्यापार भारतवर्ष मे बहुत फला और इसी के फल स्वरूप अंग्रेज जाति इस देश की शासक बन गई।

( ३ )

## सच्ची माता

सम्राट् अकबर ने एक विशाल सेना के साथ चित्तौड़ पर आक्रमण किया। राजपूत जाति का प्रत्येक बच्चा चित्तौड़ की विपत्ति को अपनी विपत्ति मानता था अतः राणा के निमन्त्रण की प्रतीक्षा किए बिना लाखो राजपूत केसरिया बाना पहिने हुए चित्तौड़ में एकत्र हो गये। १६ वर्ष का बच्चा फत्ता चित्तौड़ न गया और घर में ही बैठा रहा। फत्ता की मां अपने पुत्र को इस समय घर मं बैठा देखकर बहुत दुखी हुई।

एक दिन उसने फत्ता से कहा 'तू घर मे निकम्मा बैठा है। क्या तुझे चित्तौड़ की आपत्ति का पता नहीं?' 'माँ, मुझे पता है पर मुझे इससे क्या?

राणा ने प्रत्येक को बुलाया है परन्तु उन्होंने मुझे बुलाना उचित नहीं समझा। मैं उनके लिए क्यों लड़ूँ। यह कहते कहते फत्ता की आँखें डबडबा गईं।

मां ने कहा 'बेटा! यदि राणा ने तुमको नहीं बुलाया तो क्या हुआ? चित्तौड़ केवल राणा का नहीं है, वह तो मेरा, तेरा और हर एक राजपूत का है। यदि चित्तौड़ नष्ट हो गया तो इसकी शर्म से केवल राणा का मस्तक ही न झुकेगा, वरन् मेरे, तेरे और प्रत्येक राजपूत के मुँह पर कालिख पुत जायगी।"

'माँ मैं तो नहीं जाऊँगा पर'......कहते कहते फत्ता की हिचकी बँध गई। कर्मा देवी ताड़ गई कि थोड़ी कसर शेष है। उसने कहा 'याद रखो, युद्ध समाप्त होने पर हमारे चारण गायेंगे "एक बार मेवाड़ पर अकबर ने चढ़ाई की। सच्चे राजपूतों ने मेवाड़ की रक्षा के लिए अपनी जान लड़ादी, खून बहाया और मातृ भूमि के लिए मर मिटे पर फत्ता घर बैठा रहा। वह कायर था, सच्चा राजपूत न था" माता का यह उद्बोधन वीरवर फत्ता के हृदय पर जाकर लगा और वह रण वस्त्रों और अस्त्रों से सुसज्जित होकर युद्ध भूमि को चला गया।

अकबर ने चित्तौड़ को चारो ओर से घेर रखा था। कोई राजपूत न अन्दर जा सकता था और न बाहर निकल सकता था। फत्ता ने अपने कुछ चुने हुए साथियो के साथ मुगल सेना के घेरे को चीर कर किले का रास्ता बनाया और किले मे पहुँच गया। फत्ता की वीरता की धाक सब पर जम गई उसी को सूर्य द्वार की रक्षा का भार सौंपा गया।

फत्ता के सग्राम में चले जाने पर माता कर्मा देवी सोचने लगी कि हमारी मातृ भूमि बड़े सकट में है। मुगल सेना विशाल है, हमारे सैनिक थोड़े हैं। इस समय चित्तौड़ को उसकी प्रत्येक सन्तान की आवश्यकता है।

यह सोचकर कर्मा देवी युद्ध सज्जा से तैयार होने लगी। फत्ता की बहिन कर्णावती और उसकी वीरपत्नी कमला देवी ने कर्मा देवी को युद्ध की पोशाक पहनते देखकर पूछा 'मां! यह युद्ध वेश क्यों बनाया है?' कर्मा देवी ने कहा 'मैं चित्तौड़ जा रही हूँ। घर में पड़े पड़े मेरा मन नहीं लगता। मेरा लड़का मातृ भूमि की रक्षा के लिए लड़ ही रहा है। कदाचित् मैं भी अपनी मातृ भूमि की रक्षा के लिए अपने बच्चे की कुछ सहायता कर सकूँ'।

कर्णावती ने कहा "हम दोनो भाई बहिन बचपन से साथ साथ खेले हैं। माँ! यह अन्तिम खेल भी भाई के साथ खेल लेने दो।"

कमलावती ने कहा "क्या तुम समझती हो कि मैं घर मे बैठी रहूँगी ? नही ! मै अपने और पति की बगल में लड़ते लड़ते मरना चाहती हूँ !"

तीनों वीराङ्गनाएं हथियारो से सुसज्जित होकर घोड़े पर सवार हो चित्तौड़ को चल दीं।

५००० चुनी हुई मुगल सेना के बीच में अकेला फत्ता घिरा हुआ अपने जौहर दिखा रहा था। मुगल सेना की एक और बड़ी टुकड़ी राजपूतों को घेरा ही चाहती थी, इसी समय मुगलो पर सनसनाती गोलियों की बौछार होने लगी। मुगल वीर कट कटकर गिरने लगे। चारो ओर देखा पर कही भी शत्रु दृष्टि न पड़ा मुगल सेना ने कदम उठाया ही था कि फिर गोलियो की वर्षा होने लगी।'

अकबर ने चारो ओर ध्यान से देखा। उस ने जो कुछ देखा उस से वह स्तब्ध रह गया। देखा कि सामने, कुछ ऊंची भूमि पर, वृक्षों के पीछे एक बूढ़ी स्त्री और २ तरुणियां घोड़े पर चढ़ी गोलियों की बौछार कर रही हैं और चुनी हुई ५००० मुगल सेना को रोक रही हैं। अकबर उनके साहस और वीरता को देखकर दंग रह गया। मन ही मन उन्हे प्रणाम करके कहने लगा 'यदि यह जाति मेरी मित्र हो जाय तो सारे संसार को विजय कर सकता हूँ। 'अकबर ने आज्ञा दी कि इन तीनो को जीता पकड़ा जाय। मारा न जाय। पर किसी राजपूत और राजपूत वीराङ्गना को जीता पकड़ने के लिए कहना सरल है पकड़ लेना सरल नही है।

यह विषम युद्ध बहुत देर तक चला और अन्त मे तीनो वीराङ्गनाएं घायल होकर गिर पड़ी। उधर फत्ता वीरता प्रदर्शित करता हुआ उनके निकट पहुँचा। माँ, बहिन और पत्नी को देखकर घोड़े से उतरा। कर्णावती मर चुकी थी। पति को देखकर कमलावती मुसकराई और अन्तिम श्वास छोड़ दिया। फत्ता ने अपनी माँ का सिर गोद मे लिया। कर्मादेवी ने आँख खोली। कहा 'वीर फत्ता ! तुम यहां कहाँ ? जाओ, लड़ो और विजय प्राप्त करो या मर जाओ।' हम तुम्हारी स्वर्ग में प्रतीक्षा करेंगी। कर्मादेवी ने आकाश की ओर देखा मुसकराई और सांस छोड़ दिया।

अन्त में फत्ता भी इस युद्ध में वीरगति को प्राप्त हुआ।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

# आर्य्य समाज की चिनगारियाँ

## आर्य समाज की सेवा

श्री ठाकुरदत्त जी धवन अपने समय मे आर्य समाज के मुख्य कार्य कर्ताओं में से एक थे। आप डेरा इस्माईलखां के निवासी थे और ई. यू. सो पद पर नियुक्त थे। जिला करनाल मे आप वर्षों तक रहे। सरकारी काम के साथ साथ आप आर्य समाज का काम भी किया करते थे। हरयाणा प्रान्त में आर्य समाज का जो प्रचार है उसमें आपका उद्योग भी सम्मिलित है।

जिस समय आप करनाल मे जज थे उस समय लंच के समय मे आप समाज विषयक लेख लिखा करते थे। आपने उर्दू और अंग्रेजी भाषा में आर्य-समाज सम्बन्धी पुस्तकें लिखी थी। उस समय आपकी शिकायत हुई कि राय ठाकुरदत्त जी न्यायालय के समय मे आर्य समाज का काम करते हैं। इस शिकायत पर आपसे उत्तर माँगा गया आपने अपने वक्तव्य मे इस बात को स्वीकार किया कि वह न्यायालय मे बैठकर उस समय आर्य समाज का भी काम करते हैं परन्तु आपने स्वीकार करते हुए अपनी अवस्था इस प्रकार वर्णन की थी। "अन्य आफीसर मध्यान्होत्तर मे लंच खाते हैं जितना समय वे लंच खाने मे लगाते है मै उसी लंच के समय को भोजन मे न लगाकर आर्य समाज की सेवा मे लगाता हूँ। मैं लंच के समय भोजन नही करता हूँ वह न्यायालय के काम का समय नही है अतः मैं उस समय आर्य समाज का काम करके किसी दोष का भागी नही हूँ।"

यह उत्तर सुनकर उच्च अधिकारी चुप हो गये और शिकायत करने वालों को लज्जित होना पड़ा।

जिस समय आपने पेन्शिन ली उस समय डेरा इस्माईलखाँ मे आकर रहने लगे उस समय सिंधु में बाढ़ आगई डेरा इस्माईलखां सिंधु तट पर होने से नगर को बहा ले जाने का भय उपस्थित हो गया। अधिकारियो ने नगर मे बंध बँधवाने की घोषणा करके नगर निवासियो को प्रेरणा की कि सब नगर वासी चलकर सिंधु तट पर बंध बांधे और उस दिन उच्च अधिकारियो को भी निरीक्षण के लिये आना

था। नगर के सामान्य व्यक्ति बंध बाँधने के स्थान पर गए और मिट्टी खोदकर टोकरियों से उठाकर बंध बनाने लगे और प्रतिष्ठित व्यक्ति उच्च कर्मचारियों की प्रतीक्षा में मार्ग पर बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। जिस समय उच्च कर्मचारी आये उस समय उन प्रतिष्ठित नगर निवासियों ने उनका स्वागत किया परन्तु ठाकुरदत्त जी थबन उनमें न थे। पदाधिकारी ने पूछा राय ठाकुरदत्त जी कहां हैं लोगों ने शिकायत की कि वह बड़े अभिमानी हैं नहीं आये हैं। उच्च कर्मचारी ने यह सब कुछ सुना और कुछ न कह कर सबके साथ जहाँ बंध बनाना था और नगर निवासी बना रहे थे वहां पहुँचे। वहा पहुँचने पर राय ठाकुरदत्त जी से भेंट हुई क्योंकि राय ठाकुरदत्त जी वहां लोगो को मिट्टी की भरी टोकरियाँ उठवा रहे थे और लँगोट बांधे उनके साथ काम कर रहे थे।

यह दृश्य देखकर उस उच्च कर्मचारी ने उन प्रतिष्ठित नगर निवासियों को सम्बोधन करके कहा—यदि आप लोग भी राय ठाकुरदत्त जी की भांति यहाँ आकर काम करते तो मार्ग पर बैठकर मेरी प्रतीक्षा करने की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छा होता' यह सुनकर और राय ठाकुरदत्त सिंह जी के कृत्य को देखकर वह सब लज्जित हो गए।

प्रत्येक व्यक्ति को राय ठाकुरदत्त जी की घटनाओं से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

## ऋषि-दर्शन

स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्द जी जब पढ़ते थे उस समय उन्होंने ऋषि के दर्शन किये। आपके पिता लाला नानकचन्द जी बरेली मे कोतवाल थे। आप उनके पास रहते और वहाँ ही पढ़ते थे। उस समय महर्षि जी का बरेली में आगमन हुआ और वैदिक प्रचार आरम्भ हुआ। पौराणिक दल में खलबली मचना स्वाभाविक था, कोई नास्तिक, कोई ईसाई, कोई अमरीका पादरियों का वेतनभोगी कहने लगे। मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी का पहला नाम) को कहा गया कि आप उस साधु के पास न जायें। मुंशीराम जी उस समय स्वयं नास्तिक अर्थात् अनीश्वर-वादी थे। आप एक बार किसी प्रकार दर्शन के लिये गए और ईश्वर विषय पर ही बातचीत की। मुंशीराम जी की युक्तियों का उत्तर दिया गया। जब वह निरुत्तर हो गए तो कहने लगे युक्ति तो और कोई नहीं है परन्तु ईश्वर पर विश्वास अब

भी नहीं हुआ। तब ऋषि ने कहा मेरा काम तो युक्तियों का वा प्रश्नों का उत्तर देना था। विश्वास तो आपको स्वयं ही जब होगा तब होगा।

इसके पश्चात् आप आस्तिक तो बन गए परन्तु अभी आर्य समाजी नहीं बने जिसका मुख्य कारण आपकी अवस्था ही प्रतीत होती है। जो सम्बन्धी ऋषि दर्शन से रोकते थे उनको क्या पता था कि मुंशीराम जी का जीवन कार्य ही ऋषि मंतव्यों का प्रचार करना है।

आप ने जब वकालत पढ़नी लाहौर मे आरम्भ की, उस समय धर्म के अंकुर हृदय में उत्पन्न हुए और धर्म के जिज्ञासु बन गए। उस समय किसी के बतलाने पर सत्यार्थ प्रकाश की आवश्यकता पड़ी और आप आर्य समाज में सत्यार्थ प्रकाश क्रय करने गए। उस समय मन्त्री जी व पुस्तकाध्यक्ष कोई न मिला अन्त में आप ने सत्यार्थ प्रकाश ली और पढ़ने लगे। उस में इतने निमग्न हुए कि उसे समाप्त करके ही विराम किया। उस प्रथम पाठ से ही आपके विचार बदल गए और आप आर्य समाजी हो गए।

आर्य समाजी होने का परिचय सम्बन्धियों को एक घटना से लगा। आप जालंधर आए वहाँ राय साहिब शालिग्राम जी की कन्या से आपका विवाह हुआ था और रायजादा भक्तराम जी बैरिस्टर आपके साले लगते थे। उनके गृह पर आपका भोजन था और उन्होंने पूर्ववत् माँस बनाया। जिस समय ला० मुंशीराम जी भोजन के लिये बैठे तो आपके सामने भी माँस का कटोरा आया। आपने उसे उठाकर सामने की भित्ति से दे मारा। श्री भक्तराम जी ने कहा, आप पहले तो खाते थे, अब यदि न खाना था तो उठा देते। इस प्रकार नष्ट क्यों किया ? आपने उत्तर दिया अब सर्वदा मुझे स्मरण रहेगा कि किसी समय ऐसा किया था और इस से भविष्य में प्रवृत्ति न होगी और आपको पुनः देने का उत्साह भी न होगा। इस लिए इस समय यही करना उचित था।

वकालत पास करके आपने जालंधर में काम आरम्भ किया और लाला मुंशीराम से महात्मा मुंशीराम जी बने। आप प्रतिष्ठित वकील, प्रतिष्ठित व्यक्ति के जामाता थे परन्तु आर्य समाज के कार्य की लगन इतनी थी कि आप प्रातःकाल सूर्योदय से पूर्व हाथ में एकतारा लेकर गलियों मे दोहे गाते फिरा करते थे। पञ्जाब में इन गाने वालों को 'बच्चो वालोवे' के नाम से पुकारा जाता है। दोहे अनेक प्रकार से गाए जाते हैं।

पाथर पूजे हर मिले मैं पूजूं पहाड़ ।
पाथर से चक्की भली जिसका पीसा खाय संसार ।
कौड़ी कौड़ी जोड़ के किया लाख करोड़ ।
आती बारी सुधरया ली तड़ागी तोड़ ।

आप इस प्रकार गीत गाते फिरा करते थे और अनजान स्त्रीयें यह समझ कर कि यह भी मांगने वाला है इनको अन्न व आटा दे देती थीं। आप उसे लाकर आर्य समाज में दे देते थे। आप सुनाया करते थे कि कई बार माताएं अपनी कन्या व पुत्र वधु से कहती थीं बेचारा प्रतिदिन आता है उसे कुछ दो।

आप ने आर्य समाज के जो काम किये हैं वह सब को विदित हैं और उनके लिए पाठकों को उनका जीवन चरित्र पढ़ना चाहिये।

—स्वतन्त्रानन्द

# आर्य्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

## ( ७ )

### हिन्दू विवाह के आवश्यक अंग

हिन्दुओं के विधान के अनुसार 'विवाह' एक पवित्र आत्मिक सम्बन्ध होता है जिससे चारों वर्ण बाध्य होते हैं। यह धार्मिक कर्त्तव्य होता है जिसकी पूर्ति करना प्रत्येक के लिए आवश्यक समझा जाता है। हिन्दू विवाह का आन्तरिक भाव यह होता है कि कन्या का पिता अथवा अन्य सम्बन्धी अग्नि को साक्षी करके कन्या को वर के अर्पण करते हैं। विवाह सूत्र में बँध जाने पर यह सूत्र अटूट हो जाता है और वर वधू के जीवन काल में इसके विच्छेद की हिन्दू कानून मे व्यवस्था नहीं है। हिन्दू विवाह के आवश्यक अंग इस प्रकार हैं:—

( १ ) द्विजों ( ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ) में वर और वधू एक गोत्र के नहीं होने चाहिएँ।

( २ ) वर और वधू का एक दूसरे से ऐसा रिश्ता नहीं होना चाहिये जो विवाह के लिए निषिद्ध हो।

( ३ ) वर और कन्या एक ही वर्ण के होने चाहियें।

( ४ ) विवाह संस्कार पवित्र अग्नि के सम्मुख वैदिक मन्त्रों के उच्चारण सहित होना चाहिए।

( ५ ) सप्तपदी की अनिवार्य क्रिया होनी चाहिए जो अकेली विवाह को पूर्ण और अटूट बनाती है।

### सगोत्र का नियम

जो वर और कन्या एक ही पूर्वज की सन्तान हों, हिन्दू कानून उनके पारस्परिक विवाह के निषेध पर बहुत बल देता है। द्विज लोगों का सम्बन्ध बहुत से गोत्रों से होता है जिसका अभिप्राय यह है कि उनके नाम के साथ जो गोत्र लगा होता है वे उस ऋषि की सन्तान हैं। हिन्दू कानून के सिद्धान्तानुसार कोई भी पुरुष एक ही गोत्र की कन्या से विवाह नहीं कर सकता क्योंकि वे दोनों एक ही दूरवर्ती पूर्वज की सन्तान समझे जाते हैं। पञ्जाब हाई कोर्ट ने अमरसिंह बनाम

जयसिंह के अभियोग में १६१७ में इस दृष्टिकोण को स्वीकार किया था। माननीय न्यायाधीश ने यह लिखा था कि जो नियम एक ही गोत्र के व्यक्तियों के अन्तर्जातीय विवाहों का विधान करता है वह केवल द्विजों पर लागू होता है क्योंकि वे अपनी उच्च स्थिति और शिक्षा के कारण यह जानते हैं कि कौन उनके गोत्र का है और कौन उनके गोत्र का नहीं है। यह नियम ब्राह्मणों पर दृढ़ता से लागू होता है परन्तु प्रीवी कौन्सिल की एक ताजी स्थापना के अनुसार क्षत्रियों और वैश्यों के लिए यह नियम अनिवार्य नहीं है। क्षत्रिय और वैश्य जिनका गोत्र होता है वे आवश्यक रूप से ऋषि की सन्तान नहीं समझे जाते वरन् ऋषियों के शिष्यों की सन्तानों की सन्तान समझे जाते हैं। इस सिद्धान्त के संशोधन के अनुसार क्षत्रियों और वैश्यों में एक गोत्र के होते हुए भी प्रीवी कौन्सिल की स्थापना है कि उनमें रक्त सम्बन्ध नहीं होता अतः उनमें अन्तर्जातीय विवाह हो सकता है। माता और पिता की ओर से कुछ अंशों में सन्तानों पर निषेध लागू होता है अर्थात् उन पर जो एक दूसरे के सपिण्ड होते हैं।

---

पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रचित
अमूल्य पुस्तकें

## योग-रहस्य

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक में योग के अनेक रहस्यों को प्रगट करते हुए उन विधियों को बतलाया गया है जिनसे कोई भी नया आदमी जिसे रुचि हो योग के अभ्यासों को कर सकता है। इसी पुस्तक में 'योग-दर्शन' भाष्य सहित भी है। आत्मोन्नति के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पुस्तक में २८० से अधिक पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटे पेपर पर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल ।~) प्रति।

## मृत्यु-परलोक

सत्तरहवाँ-संस्करण

इस पुस्तक में शरीर, अन्तःकरण तथा जीवन का स्वरूप और भेद और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरक इत्यादि लोकों का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि आदि विषयों पर अति सुन्दर रूप से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली ही है। अतः इसे पढ़े बिना कोई व्यक्ति न रहना चाहिए। पुस्तक में लगभग ३०० पृष्ठ हैं! ऐन्टिक मोटा पेपर तथा मोटे टाइप में अति सुन्दर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल ।-)

## विद्यार्थी जीवन रहस्य

द्वितीय-संस्करण

विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को जीवन निर्माण में सहायता देनेवाली
अमूल्य पुस्तक

इस पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए उनके जीवन के मार्ग का सच्चा पथ प्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश अंकित हैं। अतः प्रत्येक नवयुवक तथा विशेष कर विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तक ऐन्टिक पेपर पर छपी हुई है। पृष्ठ संख्या लगभग १०० हैं। मूल्य केवल प्रचारार्थ ≈) प्रति।

नोट—पुस्तक विक्रेताओं को इन पर उचित कमीशन भी दिया जायगा।

पुस्तक मिलने का पता—

कार्यालय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

बलिदान भवन, देहली।

# GRANDEUR OF SANSKRIT

( *By*—Pandit G Dhareshver )

### 'WONDER LANGUAGE OF WORLD-CULTURE'

A revival of Latin and Greek is said to have lifted Europe from the Dark Ages into the Dawny Twilight of modern Scientific Age And a revival of Sanskrit, is now sorely needed to give the finishing touch by lifting mankind from this Scientific Dawn into the fullness of the Day-Light of Vedic Enlightment and illumination There are three grades of knowledge Ordinary, Scientific and Philosophic These are known in ancient India as Jnana Vi-Jnana, Sam-Jnana or as U1 (Subtle) Uttara (Subtler) and Uttama (Subtles) If the socalled Dark Ages of Europe has Jnana, our modern times have Vi Jnana, but from this we must now try to advance into the full day-light glory of Sam Jnana ( Spiritual Illumination ) and for this a deep study of I a, Bharati, and Sarasvati (India Sanskrit and Veda has become the 'sine qua non we must now lift man from Dawn into Day

### LANGUAGE OF THE GODS

Sanskit is truly the language of science philosophy and culture Even only icots of Sanskrit what to say of the Veda, can teach the man highest lessons he has yet to learn to become a real man in the true sense of the word Sanskrit is known as Devavak (Speech of Gods) and Amaravak (Immortal, Everliving) Those who call it dead are dead to truth It is the speech of immortals , those who study and speak it can become immortal It is the speech of Gods , those who study and speak it can become gods i e sages It is the speech of the ever-living and the never dying, those who study and use it can never die but live for ever Our people fell when they not knowing the beauty and glory and

grandeur of Sanskrit, began to neglect it. Sanskrit can not only unify India, that is torn to-day into thousand shreds, but the whole world, which too is torn to pieces into mutuallly respected freely co-operating and truth-justice-freedom adoring groups of godly men.

Man (Sanskrit, *man* to think, to reason) ought to be a thoughtful, wise, considerate and rational being. In contrast to this, the beast is given the name *pashu*, in Sanskrit, as it can see only what is out-side, and has not the power to see within and reflect, like a real man Thus we see that one who acts thoughtlessly cannot lay claim to the noble title and dignity of Man We can call ourselves men only so long as we act wisely

## KALI-YUGA.

Judged by this standard man today cannot claim to be man in the real sense of the word For, the modern man has systematically unmaned himself and reduced himself to a level lower than the brute. He has abused his reason and perverted his knowledge and learning : he is seen to put the vast resources at his command to evil unworthy ends. The Veda asks man to pray for "blessings put to worthy ends." but man today glories in turning his knowledge and power to unworthy ends. We are living in Kali-Yuga, the age of strife and folly, and not in Satya-Yuga, the age of truth, wisdom, reason and harmony. The reason is that we are not lead by reason but by folly; not by wisdom but by thoughtlessness, greed and lust.

## SIGNIFICANT ROOTS

Why go so far back as the Vedas, even a few tiny Sanskrit root can teach man wonderful lessons to lead him on, from this Kal (dis-harmony) to Satya (Truth, harmony) Yuga the golden age of concord and wisdom.

*Man-nam*—Here is one pair of tiny roots which go to the very root of thought, and reveal a most valuable lesson for

man to learn. This pair gives a reversal of sense with the reversal of letters. *Man*, to think; and *Nam*, to bend, tell us that to think is to bend-not, and to bend is to think-not.

In fact, the truth these two roots set before us is this. Thoughtless beings have to bend before thoughtful men; superior thought triumphs over inferior thought; a lack of thought it is which leads people to be enslaved by evil forces. Free robust original independent thought can raise us; and most of our misery is due to folly. India fell when she ceased to adore wisdom; when she lost the power of original thought, robust manly thought. If, now, India desires to rise and be free, she must cultivate the noblest of all arts, namely, the art of manly thought. Sturdy thought can make her sturdy. Independent thought can make her free, strong and happy. In other words, we must try to be men in the real sense of the word, ever striving to be considerate the thoughtful and wise. This is the first step.

## REVERSAL OF SENSE

ii. *Pat-Tap.*—Next take this pair of tiny roots which also give a reversal of sense with the reversal of letters. *Pat.* means fall and *Tap.* means discipline. From this is revealed the truth that the un-disciplined people do surely fall. If robust thought is the first thing needed for rise the second thing absolutely necessary is discipline. Thus we learn from these two pairs of Sanskrit roots that if mankind want to shake off slavery they must encourage well-disciplined free robust thought among themselves; they must be thoughtful wise and disciplined, Wisdom and discipline are the two factors that make for true rise and advancement. Indeed in the absence of them real progress is unthinkable. Mankind should learn to adore these.

iii. *Ram-Mar.*—Now take this third pair of tiny roots. Here too a reversal of letters gives a reversal of sense.. *Ram* means to rejoice, and *Mar* means to die. We can be said to

live only so long as we rejoice and delight in our environment; for, we die the moment we cease to make the best of our life. People who cannot make the best of their life, races who cannot respond to the true joy of life, nations who are not buoyed up by the real delights of life, do but show the signs of decay and death The bliss of a noble active well-disciplined wise life is indescribable. We must strive for it.

## THE DESTINY OF MAN.

To some extent our destiny is in our own sincere will, desire and determination to make or *mar* our future. Those of us who believe in Punar Janma (Re-birth) say that our destiny is nothing but what we make of it. Others who believe in mere chance say that as chance gave us our life it will too determine our fate. But none can deny that sincere strong will and determination can achieve wonderful transformations in our life. The lives of almost all great sages hold forth one great lesson before mankind that, given strong will and sincerity, man can shape his destiny.

As we have already pointed out India fell when she ceased to prize sturdy thought and the joy of living a well-planned life of order and discipline We must therefore learn to prize the same again. We must cherish and encourage free robust thought and a well ordered noble life of serious endeavour. The three pairs of Sanskrit roots, it will now be seen, go to the very root of our present day problems; they tell us *why* man has fallen and *how* he can rise. They tell us, moreover, that man's destiny rests to a large extent on his own effort and will. Indeed they contain a whole philosophy of life and destiny. They tell you how to achieve freedom for which every soul hungers. Are we sincere and determined to make mankind free? Then we must take these three. Sturdy Thought, Good Discipline, and a Wise Active Joyous Life, and make them the guiding principles of our life.

*Hyderabad Bulletin.*

# Hindu Philosophy and Modern Sciences

[ *By*—Rai Bahadur Ram Chandra M.A.,P.E.S. Retired ]

## CHAPTER I.

## MAN AND NATURE*

इदं सर्वं । कस्य स्विद्धनम् ? "All this: Whose Own Wealth?".
(Ish. Up. 1-1)

**View point 1.** Whose own wealth is this-the whole of Nature? Is Nature its own master? Or is Nature the wealth, the possession, the power of Some One Else? This is the problem to be investigated. There are so many divergent views about the nature of man and the material objects we see around us, that one who begins to think freely is almost lost in a kind of wilderness and he becomes a theoretical agnostic, though not a so called atheist. He becomes, however, at least outwardly, the follower of a certain set of views for all the practical purposes of his daily life and belief. and behaves like a theist in all matters, speaking in general. The best way to understand the view-point or position of another person is to place one-self in the position of that person. This, however, is not a very easy matter. The words person and position, although very common, have a perculiar significance of their own here, and, therefore, they require a little explanation.

**Known To Unknown 2.** One of the best methods of acquiring knowledge is the well known principle of proceeding from the Known to the Unknown. A person is, to us,-an ordinary man or woman in his or her normal senses,

*The object of these contributions will be to consider whether nature, consisting of Conscious and Non-conscious entities of all kinds, is its own controller or has some Intelligent Controller at the helm as its Matser and Governor.
*

a human being, a rational animal, having (i) a living body, (ii) a conscious mind or consciousness, and (iii) possibly what is called a soul in every day language. In other words a person of man in general is a compound entity having several components, constituents, or constituting aspects, each constituent or aspect having a number of attributes. In short a person is, like other entities, a collection of a very large number of attributes, known and unknown. If, however, one of the essential and distinguishing attributes be missing, the resulting entity will not be, in strictly exact language, the ordinary person or man, but something else

**Theory and Practice** 3. We do not know the real nature of man, as a matter of fact some scientists and thinkers hold that with our present senses and other instruments of acquiring knowledge, we do not know and can not know the real nature of any thing in the absolute; but for all practical purposes we know a person as well as anything else, say an animal a tree, or an inanimate object. A person or a man is, therefore known to be essentially a living material body with innumerable attributes some of which we know directly by our senses, some others we infer by reasoning, and possibly many more which are said to be known neither directly by the senses, nor by inference, but by faith intuition, conscience, a higher kind of understanding perception, scriptural authority, call it by any name but the senses, the chief instruments of acquiring knowledge.

**Possessor** 4. A man is thus a conscious, intelligent and complex being (entity), who possesses certain attributes, and possibly a number of various entities, essentially differing in their very nature, i.e., whether the constituting

entities are conscious or non-conscious He is essentiallly a possessor, or owner or master of something in a restricted sense. His possessions which consist of collections of various attributes and of their complicated combinations and permutations, take various names and forms, say personal qualities, up-to-date knowledge, wealth, relations etc. etc All these taken together may constitute not only his possession but may also determine what may be called his position in society or in the world There is, therefore, little difference between position and possession. On this assumption, no two men are or can be exactly alike in all respects in this world so far as our knowledge goes, though they may resemble each other in certain respects only. Hence we find so many varieties of views which are held by different thinkers.

**Resemblance of Views 5.** How can one man, then, place himself into the position of another? One can do so only to a certain extent, and that, too, within numerous limitations, the object being to find out what one would think and do if one had the same amount of knowledge about certain things and almost the same environments as the other. This idea resembles, in a way, the idea contained in a well known proverb, "Do unto others as you would be done by", the implication being that your criticism and appreciation of the views of a person who thinks and acts in a certain manner, should be considerate and sympathetic, i.e., you should consider as to how you yourself would think and act in similar circumstances, in other words if you were placed in his position.

**Investigation of Views 6.** The remarks made in the preceding paragraphs are to be borne in mind when investigating truth in general, and especially when trying to ascertain the views of others on various topics, say 'man', 'life', 'body', 'mind', 'soul', 'matter', 'force', 'power', 'energy',

'world', 'universe', 'Nature', 'God', etc. etc., and their equivalents in other languages.

**Man 7.** Let us first try to find out what we mean by man. As a matter of fact every body knows what a man is for practical purposes or for mutual dealings; but very-few, if any, know the true nature of man. Physical science does not seem to throw much light, so far, on the ultimate, true or real nature of the so called inorganic matter, what to say of man, an extemely complex organic entity, where we have to deal with not only (i) matter, but also with (ii) life and (iii) consciousness in all its various states and stages.

**World and Science 8.** Science has made many discoveries in the phenomenal world, but it is the function of philosophy and metaphysics to deal with the noumena, the real nature of things. There are all sorts of theories and speculations about the origin, the true nature, the essence, the reality, and the ultimate Cause, if any, of the various facts and phenomena that we behold every day in the so called materiel world or inorganic Nature, and in our own transactions or doings, i. e. in organic Nature

**Scientific Theories 9.** As regards scientific theories, a valuable extract from the Hindustan Times, New Delhi of Monday, 12th December, 1938, will go a long way to show what science has to say in this matter This extract forms a valuable contribution by Sir S. M. Suleiman, to the 'Indian World'; and is reproduced below for facility of reference later :—

> (a) "All scientific theories must in their very nature be mere speculations. Man can make only approximate guesses, necessarily wrong at first and certainly incomplete ; and as further experience exposes his mistakes, he must give them up preferring other speculations. Such process

must go on continually, as the reality of Nature would ever elude his grasp When one remembers that the Sun might have existed for eight million million years, the earth for two thousand million years, life on this earth for three hundred million years, and man himself for three hundred thousand years, the short period of a few thousand years during which human knowledge has grown is an infinitesimal fraction of time for knowing anything about the Reality of Nature".

(b) **Limitation of Human vision.** That our scientific theories must of a necessity be uncertain would become patent, when one realises that according to calculation the radius of an electron may be five million millionth part of a centimeter, and the electron may be revolving round its nucleus several thousand million million times per second. If such is the extreme minuteness of its dimensions, it is impossible to be certain of its structure. Human vision is limited within a very narrow range, and there can be no knowing whether there are not even smaller worlds within such microscopic worlds, which may never be discovered by man"

(c) **Universe and Glaxies.** "The Sun is one million and three hundered thousand times the size of the earth, and yet this Sun of ours is but a tiny speck—a mere drop in the fathomless ocean of the universe. There may be some four hundred thousand million stars which are Suns in themselves forming our galactic system bounded by the milky way. The diameter of the milky way is so great that light travelling at the stupendous rate of 1,86,000 miles per second would take 2,22,000 years to travel from one end to the other; and beyond this huge galaxy of ours there are millions and millions of galaxies now revealed by the 100 inch telescope at Mt. Wilson and when the 200 inch telescop is ready, it will admit a million times light as much as an unaided eye. And yet our knowledge of

the Universe must unquestionably remain incomplete and uncertain. Our ideas must ever remain meagre, scanty and inadequate, and our scientific theories mere conjectures and speculations as to the Reality of the Universe. Of course imagination can go farther and farther and conceive larger and larger galaxies, but as our observation can never keep pace with our imagination, the uncertainty must ever remain."

(d) **Einstien's Theory.** Science bristles with uncertainties and unrealities. Einstien's theory conceives of the entire space* as being finite and even within one's mental grasp. He has indeed calculated tbe radius of the entire space. Obviously it would be nothing short of presump tuousness on the part of man to attempt to measure the length and breadth of the Universe. The extreme limit of the Universe is a creation of imagination and can not be real.

Scientific theories can be pushed to any extreme. Eddington has boldly calculated the total number of electrons that exist in the whole Universe; but such a calculation cannot be taken at all seriously, nor can be believed to represent anything real."

(e) **Relativity**:—"In Relativity, space and time are no longer treated as independent variables, but have been welded together so as to form a new kind of Space-Time with four dimensions. But as time is not commensurable with space, it has been given an imaginary and unreal unit, and the two combined to form a new hyper-space. Although denying the existence of any material medium or ether, Relativity attributes definite properties, for example, that of curvature to space, thus making it no longer bare void of old but having properties like a medium. ***This new kind of space is boundless and limited and finite; it bends upon itself and gets ultimately closed up to form a finite domain.*** Straight lines

* The reference is probably to Etherial space only and not to Hyper-space or Bishop Berkeley's' Ambient space.

go no longer straight but get curved and bending upon themselves return to their starting point But this imaginary mathematical structure leaves it uncertain whether the imaginary curvature of space is positive, zero or negetive. Relativists are not yet quite agreed among themselves about it. If it is a finite domain, what is beyond such space ? According to Relativity, space is extending at a terrible rate. Indeed, the universe is in a state of terrible explosion But what is this space expanding into ? If it is expanding into non-space, then that non-space is the space according to classical notions. But the Relativists' reply is that this space-time of four dimensions is expanding into a space of five dimensions. This is nothing but a mathematical artifice, and neither has any physical sense nor can represent reality.

(f) **Practice and Theory**:—"One can not help feeling that these unconvincing conclusions are misinterpretation of Nature and really nothing more than artificial mathematical devices for expressing something very imperfectly understood. As the assumptions are approximately true, they give tolerably good results in practice, but not being rigorous nor exact, the philosophy based on them is irrational."

(g) **Wave mechanics and Electrons**—"There is something still more mysterious in the modern theories about the nature of light. As Eddingtion has conceded, there is something radically wrong with the present fundamental conceptions of physics, and we do not see how to set it right. The modern conception of denying the existence of both matter and medium makes the propagation of waves through space utterly incomprehensible. The wave mechanics certainly gives good results but professedly does not attempt to give any physical idea of the structure of light. It has gone a step further and even annihilated matter. *An electron is supposed to be a train of waves stretching from infinity to infinity being any-*

*where in this long train, its speed being known and position unknown.* But once anyone tries to observe it with light, this infinite train instantaneously contracts to a *zero point*, the position becomes known but the speed becomes indeterminate. It is a wave group. It is a wave group continually moving, changing shape and spreading out, until an attempt is made to observe it when it contracts to a zero point."

(h) **Symbolic Representation of Light and Matter:—** "Such wave of light or of an electron starting from a distant star would have spread out almost to immeasurable dimensions by the time it reaches the earth. So long as it has not hit anything, it has gone on expanding to an immense extent, but as soon as it hits some atom on the earth, this infinite train re-gathers itself and contracts to almost zero point in order to enter the atom. Such ideas appear to laymen grotesque and are nothing but symbolical representation of the behaviour of light and matter."

(i) **Matter**—"Under modern theories matter has disappeared into something unsubstantial, the tangible has changed into the untangible, and the real into the unreal. Matter as now conceived is a group of infinite waves spreading out indefinitely and yet mysteriously gathering itself up and converging to a point when meeting another matter. These waves are not even waves of energy, but have been called mathematical waves of chance or probability, and some have called them even waves of knowledge or of ignorance. The fact is that they are not any real waves at all, but mere imaginary, artificial and fictitious waves, represented only by weird mathematical formulae involving imaginary quantities. It is impossible to picture these waves in one's mind, and being unreal, they cannot be located in space and time. Such in a nutshell is the hopeless state of modern science. One does not feel inclined to believe that such a false picture of Nature is in accord with

reality. and finds it disfficult to concede that everything in the world is a mere solution of some mathematical equation and the observed natural phenomena nothing more than a mere mental concept of the mathematician. Modern sciences treat the phenomena in the Universe as mere expressions of mathematical formulae without any reference to physical characteristics, making not only their visual perception. but even the mental-picture of them, utterly impossible. We can not but regard them as mere mathematical devices which work temporarily as symbolical representations of known facts, but which can by no mean be a true interpreter of reality. *Indian World*

**Beginning and Ending of Universe 10.** Modern Science now seems to assume that the Universe has a beginning as well as an ending. Eddington has written and spoken on this subject very distinctly. Some of his views may be reproduced below for facility of reference from his book the "Universe Around Us":—

(a) **Creation of Matter.**—"All this makes it clear that the present matter of the Universe cannot have existed for ever; indeed we can probably assign an upper limit to its age of, say, some such round number as two hundred millien million years And, whereever we fix it, our next step in time leads us to contemplate a definite event, or series of events or continuous processes of creation of matter at some time infinitely remote. In some way matter, which had not previously existed, came, or was brought, into existence."

"If we want a concrete picture of such a creation, we may think of the finger of God agitating the ether".*

"We may think of space, time and matter being treated together and inseparably as a single system. Such a view is consonant not only

* See Chapter XI Voluntary activity or effect of volition on cosmic existence.

with ancient metaphysical theories, but also with the modern theory of Relativity".

"The Universe now becomes a finite picture whose dimensions are a certain amount of space, and a certain amount of time; the protons and electrons are streaks of paint which define the picture against its space-time background".

(b) **End of Universe.** "Energy cannot run downhill for ever; and, like the clock weight, it must touch the bottom at last. And so the universe cannot go on for ever; a time must come when its last erg of energy has reached the lowest rung on the ladder of descending availability. And at this moment the active life of the Universe must cease. This energy is still there, but it has lost all capacity for change. We are left with a dead, although possibly a warm Universe—a heat death. Such is the teaching of modern thermodynamics. There is no reason for challenging or doubting it; and indeed, it is so fully confirmed by the whole of our terrestrial experience that it is difficult to see at what point it could be open to attack. It disposes at once of any possibility of a cyclic Universe in which the events, we see, are the pouring of river water into the sea; while events, we do not see, restore this water to the river. The water of the river can go round and round this way, just because it is not the whole of the Universe: something extraneous to the river cycle keeps it continually in motion—namely the heart of the Sun. But the Universe as a whole cannot so go round and round. Short of postulating action from outside the universe, the energy of the Universe, whatever this may mean, must continually lose availability; a Universe in which the energy has no further availability to lose would be dead already. Change can occur only in one direction which leads to the heat—death".

(c) **Radiation.** A prism separates white sun-light into its constituent coloured lights. An alter-

native instrument. the diffraction grating, analyses light into its constituent wave-lengths, and these are found to correspond to the colours of the rainbow. The wave length in a system of ripples is the distance from the crest of one ripple to that of the next, and the term may be applied to all phenomena of an undulatory nature."

**Man and Universe 11.** We have thus got some idea of what we understand, only to a certain extent, by man and the Universe, the former being the owner or master of a living body ( conscious ) and a large number of other things, both intelligent and non-intelligent, and the latter being the sum total of an infinite number of galactical Universes including an infinite number of all sorts of things, both conscious ( intelligent ) and not-conscious ( non-intelligent ).

Now the question is whether the so-called master or owner in the case of man is identical with the living body in all its aspects—physical, vital, psychical etc., or some entity distinct from and external or additional to the living body. This question closely resembles a similar query about the master or owner in the case of the Universe, *viz.* whether the master is identical with the galactical Universes, taken as a whole as one, called Nature, or some entity distinct from and external or additional to the Universe.

Before starting with a consideration of this difficult problem, a reference may be made to a well-known Skt. Proverb, *vis.*, " यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे " as in the body, so in the Universe, the implication being that if the body has an owner, the Universe too, has one. This brings us to the quotation heading this Chapter, "Whose own wealth is all this, the whole of the Universe ?"

The solution of this problem depends on the production of wealth or the question of causes and effects, which will form the topic of the next Chapter.

# His Majesty's Order Ignored by Census Authorities.

**Great Injustice Done to Hindus.**

**Number of Hindus Greatly Reduced.**

( *By*—Babu Kalika Prasad, M.A.B.L., Ranchi. )

After the Round Table Conference, His Majesty in Council framed the Government of India Scheduled Castes ( Order in 1936 ) according to the provisions of the Government of India Act 1935 at the court of Buckingham Palace on the 30th of April 1936. This Order contains lists of the Scheduled castes of the different Provinces of India.

According to this order of His Majesty, the Bhuiyas of the District of Palamou, and Purnea, Gaya, ( Patna Dn. ) etc. in Bihar were included in the list of the Scheduled castes, but curiously enough this order was not heeded by the Census Authorities and in their Instruction Book issued for Hazaribagh, Palamou, Gaya, Sadar Sub Division of Purnea District, and the Native States of Surguja, Chungbhakar, Korea and Udaipur the Bhuiyas were included as Aboriginies The Government of Bihar also by their Notification published in the BiharGazettee Part II dated 12th October 1938 have shown the Bhuiyas in the list of the Scheduled castes for the entire Chotanagpur Division and have in the same Gazette given a separate list of the Aboriginies in which 33 different castes are included.

It is a matter of great regret that inspite of the Order in Council of His Majesty as well as inspite of the lists issued by the Bihar Provincial Government, the Provincial Census Authorities arbitrarily have included the Bhuiyas among the Aboriginies in their Instruction Book issued by them for the Districts of Hazaribagh, Palamou, Gaya etc.

The whole facts are now placed before the Public and the attention of the Government is also drawn to this glaring injustice done to the Hindus as by such action of the Census Authorities the number of the Hindus have been greatly reduced. So the Census figure in the matter of the recording of the Hindus can never be regarded as correct and unimpeachable but is ever liable to be challenged by the Hindus as incorrect. It is therefore expected that the authorities concerned should give a statement on the point raised for the satisfaction of the public.




## आवश्यक सूचना

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की सिद्धान्तशास्त्री आदि धार्मिक परीक्षाओं में सम्मिलित हुए परीक्षार्थियों का परीक्षाफल अप्रैल के द्वितीय सप्ताह तक घोषित कर दिया जावेगा, परीक्षाओं में उत्तीर्ण परीक्षार्थियों की सूची प्रत्येक केन्द्र के केन्द्राध्यक्ष के पास भेज दी जावेगी। परीक्षार्थियों को अपना २ परीक्षाफल अपने अपने केन्द्राध्यक्ष से मालूम कर लेना चाहिए।

## भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्

आपको यह जान कर हर्ष होगा कि भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से प्रतिवर्ष कुछ धार्मिक परीक्षायें ली जाती हैं, जिनमें छोटे बच्चों से लेकर प्रौढ़ आयु वाले स्त्री पुरुषों तक सभी सम्मिलित हो सकते हैं। ये परीक्षायें दिन प्रति दिन अब इतनी लोकप्रिय हो रही हैं कि देश के प्राय: सभी प्रान्तों से अब इन परीक्षाओं मे प्रतिवर्ष हजारों आर्य कुमार व कुमारियां सम्मिलित होती हैं।

इन परीक्षाओं की पाठविधि आपने देखी ही होगी, आगामी वर्ष से विचार है कि इन परीक्षाओं को अत्याधिक उपयोगी, शिक्षाप्रद और आचार निर्माण करने वाली बनाने के लिये, इनमें कुछ आवश्यक परिवर्तन किये जावें, जिससे ये परीक्षायें आर्य समाज के प्रचार के दृष्टिकोण से अधिक लाभदायक सिद्ध हो सकें।

मैं आर्य विद्वानों और आर्य पुरुषों से प्रार्थना करता हूँ कि कृपा करके कुछेक परिवर्तन सुझाने का कष्ट कर कृतार्थ करें। आपके इस कष्ट के लिये मैं आपका कृतज्ञ हूँगा। परिवर्तन सम्बन्धी सब विचार इस मास मे होने वाली परीक्षा समिति की बैठक में रखे जावेंगे। मैं आशा करता हूं कि आप उससे पूर्व अपनी अमूल्य सम्मति भेज कर कृतार्थ करेंगे।

—देवव्रत धर्मेन्दु

# टोंक में तबलीगी कार्य

हमारे पास टोंक स्टेट से सूचना प्राप्त हुई है कि स्टेट की ओर से एक 'शरह शरीफ' नामक महकमा बना हुआ है जिसके द्वारा वहां हिन्दुओं को उचित व अनुचित रीति से मुसलमान बनाने का कार्य किया जाता है।

वैसे हर एक धर्म वालों को अधिकार है कि अपने धर्म का प्रचार करें और लोगों को अपने धर्म के सिद्धान्तों की विशेषता बताकर अपने धर्म में लाने का यत्न करें। परन्तु यही कार्य जब किसी स्टेट की ओर से किया जाता है तो वह एक प्रकार का अत्याचार और अन्याय है।

टोंक स्टेट राजपूताना में है और इसकी जन-संख्या में हिन्दू प्रजा की ही संख्या अधिक है। स्टेट के कोष में जो धन आता है उसका अधिकांश भाग हिंदुओं द्वारा ही आता है। ऐसी दशा में उस धन को मुसलमानों की संख्या वृद्धि में व्यय करना कहां तक उचित है यह स्पष्ट है।

हमारे पास जो सूचना आई है उससे तो यह ज्ञात होता है कि यह भी नहीं कि धर्मोपदेशकों द्वारा प्रचार कराया जाता हो, बल्कि भूले भटके स्त्रियों और बच्चों को फँसा कर प्रलोभन देकर और अनुचित दबाव डालकर स्टेट के अधिकारी वर्ग उन्हें मुसलमान बनाने का कार्य करते हैं।

हम टोंक के नवाब साहब की सेवा में अत्यन्त नम्र परन्तु जोरदार शब्दों में निवेदन करते हैं कि कृपाकर इस ओर ध्यान दिया जाय और इस प्रकार होने वाले अन्याय को रोका जाय, अन्यथा प्रजा में वह असन्तोष उत्पन्न होगा कि जिसका सम्हालना कठिन हो जायगा।

किसी भी सरकार को उचित नहीं कि वह धर्म प्रचार का कार्य करे। आस पास राजपूताने में ही अनेकों हिन्दू रियासतें है, सौभाग्य से उनकी प्रजा भी अधिकांश हिन्दू ही है तथापि किसी भी हिन्दू रियासत में ऐसा कोई महकमा नहीं है जहां मुसलमानों या ईसाइयों को हिन्दू बनाने का कार्य किया जाता हो। राजपूताना भर की तमाम हिन्दू रियासतों की यही नीति है कि वे धार्मिक मामले में कोई हस्तक्षेप नहीं करते। एक केवल टोंक स्टेट ही ऐसी है जिसके शासक मुसलमान इस्लाम धर्मानुयायी हैं और 'शरह शरीफ' का महकमा बनाकर हिन्दू प्रजा द्वारा कर रूप में प्राप्त धन से उसी के विरुद्ध मुसलमानी धर्म का प्रचार कराती है।

इस अनुचित कार्यवाही का स्थान २ से तीव्र विरोध होना चाहिये और भारत सरकार का ध्यान भी इस ओर आकर्षित कराना चाहिये जिससे कि यह अन्याय पूर्ण कार्य रुके।

भगवान स्वरूप 'न्याय भूषण' मंत्री
आर्य प्रतिनिधि सभा, राजस्थान व मालवा अजमेर।

# लोहारू कांड

## प्रत्यक्ष दर्शी का बयान

पं० धर्मवीर जी वेदालङ्कार मन्त्री श्रद्धानन्द मेमोरियल ट्रस्ट और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के उपदेशक श्री पं० समरसिंह जी वेदालङ्कार ने लुहारू से वापिस आने पर प्रेस को निम्न वक्तव्य दिया:—

"हम लोहारू आर्य्य समाज के उत्सव में आमंत्रित किए गए थे। सार्व-देशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा देहली (इन्टर नेशनल लीग) के कार्य्य कर्ता प्रधान श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज इस उत्सव का नेतृत्व करने के लिये बुलाए गए थे। स्थानीय कार्य कर्ताओं ने पहले नगर कीर्तन और उनका जलूस निकालना स्थगित कर दिया था क्योंकि रियासत की पुलिस ने उसकी रक्षा की जिम्मेवारी नहीं ली थी। बाद में रियासत के अधिकारियों ने जलूस और नगर कीर्तन को निकालने की प्रेरणा की और पुलिस ने एक खास सड़क पर जलूस के निकाले जाने की शर्त पर उसकी रक्षा की गारण्टी दी।

६ बजे सायं लगभग रेल द्वारा स्वामी जी के आते ही पुलिस के पहरे में जलूस प्रारम्भ हुआ। जलूस थोड़ी ही दूर गया था कि मुस्लिम गुण्डे सामने आ गए और जलूस को घेर कर अकारण ही जलूस वालों पर लाठियों से अन्धाधुन्ध वर्षा करने लग गए लोहारू शहर के लोगों से मालूम हुआ कि इस आक्रमण में बिना वर्दी पहने पुलिस और फ़ौज के आदमी भी शामिल थे और इनके अति-रिक्त पटवारी, लम्बरदार आदि भी भाग ले रहे थे। स्थानीय आर्य समाज के अग्रणी और अतिथि ही विशेष रूप से आक्रमण का लक्ष्य बनाए गए। श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, भक्त फूलसिंह जी, पं० जयप्रकाश जी, चौ० नौनन्दसिंह जी स्वामी केवलानन्द जी तथा १० और व्यक्तियों के सख्त चोटें आई। लगभग ३० आदमियों के साधारण चोट आई है जिनमें हम दोनों महाशय बद्रीप्रसाद जी और पं० वीरेन्द्र जी (आर्य समाज दीवान हाल) आदि हैं। स्वामी जी, पं० जयप्रकाश जी तथा श्री हरिगोविन्द भार्गव जी को देहली ले आये हैं और वे इर्विन हस्पताल में दाखिल कर दिये गये हैं।

७ जख्मी व्यक्ति रिवाड़ी के सिविल हस्पताल में प्रविष्ट कराए गए हैं। भक्त

फूलसिंह जी, चौ० नौनंदसिंह जी और कुछ अन्य व्यक्ति लापता हैं और अभी तक पता नहीं वे कहां हैं। रियासत के हिन्दू भयभीत हैं और आर्य समाज का उत्सव बन्द कर दिया गया है।

## सार्वदेशिक सभा का वक्तव्य

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के सहायक मंत्री श्री प० ज्ञानचन्द जी सूबेदार टेकचन्द के साथ १ एप्रिल को लोहारू गए और ३ एप्रिल के प्रातः भक्त फूलसिंह जी, ठा० नौनंदसिंह जी और गोहारसिंह को लेकर देहली लौट आए। इन तीनों सज्जनों को राज्य की पुलिस २६ मार्च के आक्रमण के बाद राज्य के हस्पताल में ले गई थी।

लोहारू में पंडित जी ने दीवान साहब से भेंट की और लगभग दो घंटे तक बातचीत होती रही। दीवान साहब पंजाब के रिटायर्ड पी. सी. एस. हैं और उन्हें आर्य समाज का अच्छा परिचय है। उन्होंने ध्यान और सहानुभूति के साथ पंडित जी की बातें सुनी। पंडित जी ने इस कांड पर भारत के आर्यसमाजियों और हिन्दुओं की भावनाओं से दीवान साहब को अवगत किया। दीवान साहब ने पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रकट करके घटना का सरकारी पक्ष पंडित जी को दिया। बाद में पंडित जी घटना स्थल पर गए और स्थानीय व्यक्तियों से मिलकर बातचीत की। भक्त फूलसिंह और गोहारसिंह इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट कर दिये गए हैं।

# सम्पादकीय

## लोहारु काण्ड

लोहारु के दुखद कांड से आर्य जगत मे दुख और रोष का व्याप्त हो जाना स्वाभाविक था क्योंकि वहाँ आर्य समाज के शान्त और धार्मिक जलूस पर मुस्लिम गुण्डों ने अकारण ही अमानुषिकता पूर्ण आक्रमण किया जिसके फल स्वरूप ४० आर्य भाइयों के चोटें लगी हैं जिनमें से १४ सख्त घायल हुए हैं। इन घायलो मे सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के कार्य-कर्त्ता प्रधान श्री पूज्य स्वामी स्वतन्त्रा नन्द जी तथा भक्त फूलसिंह जी जैसी ऊँची स्थिति के आर्य सज्जन हैं। इस समय तक आर्य जगत् से जो समाचार हमे प्राप्त हुए हैं अथवा हमने समाचार पत्रो मे पढ़े है उनसे विदित होता है कि इस काण्ड से आर्य जगत् की आत्मा कांप गई है।

लोहारु पँजाब के हिसार जिले की एक छोटी सी रियासत है। इसके शासक मुसलमान हैं, इसकी कुल जन संख्या २३३८३ तथा वार्षिक आय एक लाख २६ हजार के लगभग है। यहा की आबादी मे ८५ प्रतिशत हिन्दू हैं। इतनी छोटी रियासत होते हुए भी यह अपनी बद इन्तजामी के लिये पर्याप्त बदनाम है। सन् १९३६ की दुर्घटना अभी तक भूली नही गई थी जिसमे निहत्थी हिन्दू प्रजा पर राज्य के कारिन्दों द्वारा अमानुषिक अत्याचार हुए थे और राज्य के कर्मचारियों की गोलियो का निशाना बनकर कई व्यक्ति मर गए थे। अब २९ मार्च को लोहारु मे एक दूसरी उपर्युक्त दुर्घटना हो गई है। इससे भी राज्य की बद इन्तजामी और भी अधिक स्पष्ट हो गई है।

लोहारु राज्य में हिन्दुओं की संख्या जितनी अधिक है उतनी ही कम उन्हें धार्मिक स्वतंत्रता प्राप्त है। यहाँ कुछ दिन पूर्व तक हिन्दू विधवाओ तक पर राज कर लगा हुआ था। कहा जाता है एक बार एक स्कूल टीचर ने एक सनातनी पण्डित को बुलवा कर मन्दिर में उपदेश कराया। इससे राज कर्मचारियों में खलबली मच गई। उस बेचारे स्कूल टीचर को इस अपराध में नौकरी से हाथ धोना पड़ा। ऐसी स्थिति में आर्य समाज के प्रति रियासत का रवैया कैसा हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। आर्य समाज के कार्य में समय समय पर रुकावटों द्वारा राज का यह रवैया स्पष्ट होता रहा है। हैदराबाद सत्याग्रह

काल मे स्टेशनो पर सत्याग्रहियों का स्वागत करने वाले आर्य भाइयों पर अत्याचार किए जा चुके हैं।

२६ और ३० मार्च आर्य समाज के प्रथम वार्षिकोत्सव के लिए नियत की गई। यहां सन् १६४० से आर्य समाज स्थापित है।

समाज के कार्य को निरुत्साहित करने के लिए राज्य की ओर से छिपे छिपे वा प्रकट रूप से अनेक यत्न किये गये। समाज के कार्य कर्त्ताओ को समाज के कार्य के लिए अपनी राज की नौकरियो से भी हाथ धोना पडा। परन्तु येन केन प्रकारेण समाज का कार्य होता ही रहा। इस उत्सव पर आर्य समाज मन्दिर की आधार शिला रखने का भी निश्चय किया गया। आर्य समाज के निमंत्रण पर श्री स्वामी स्वतन्त्रानंद जी भक्त फूलसिंह जी, श्रद्धानन्द ट्रस्ट के मंत्री पण्डित धर्मवीर वेदालङ्कार, पण्डित समरसिंह वेदालङ्कार पंडित नौनद सिंह जी, म० जय प्रकाश धनुर्धर, पुरोहित व भजनोपदेशक आर्य समाज दीवान हाल, म० बद्री प्रसाद जी इत्यादि सज्जन देहली हरियाना प्रान्त आदि से २८ ता० को लोहारु पहुचे। आर्य समाज के कार्य कर्त्ताओ ने नगर कीर्तन की आज्ञा मांगी जो राज्य ने दे दी परन्तु बाद मे इस बहाने से कि लोहारु की जनता ने इस आज्ञा के विरुद्ध शिकायत की है, राज्य ने इस आज्ञा मे परिवर्तन कर दिया। नगर कीर्त्तन व जलूस के लिए जो रास्ता दिया गया उसका नगर से कोई सम्बन्ध न था अत: आर्य समाज के प्रबन्धको ने समझा कि ऐसे नगर कीर्त्तन की आज्ञा लेना न लेना बराबर है जबकि शहर मे प्रचारार्थ प्रविष्ट होने की मनाई है। इस पर समाज के जिम्मेवार कार्य कर्त्ताओ का एक डेपुटेशन २६ ता० को राज्य के दीवान से नगर कीर्त्तन की आज्ञा के लिए मिला। इस डेपुटेशन ने दीवान साहब से राज्य के आर्य समाज के प्रति रवैए की भी शिकायत की और उनको कहा कि राज्य ने जनता को उत्सव मे भाग न लेने की जो प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से मनाही की है वह उठाली जाय और उत्सव मे भाग लेने की जनता को स्वतन्त्रता दी जाय क्योंकि उत्सव मे बाहर का तो क्या शहर के भी व्यक्ति भय के कारण सम्मिलित नहीं हुए थे। परन्तु डेपुटेशन को दीवान साहब की ओर से जो उत्तर मिला वह सन्तोष जनक न था फलत: कार्य कर्त्ताओ ने उत्सव की कार्यवाही श्री स्वामी स्वतत्रानंद जी के आने तक स्थगित रखने की घोषणा कर दी।

[illegible] घंटे [illegible] कार्यवाही स्थगित रहने के बाद और श्री स्वामी जी के आगमन से पूर्व लोहारु राज्य के दीवान साहब की ओर से तहसीलदार और पुलिस इन्सपेक्टर साहब लगभग २५ पुलिस के सिपाहियों के साथ स्टेशन पर आए और उन्होने समाज के जिम्मेवार प्रबन्धकों से आग्रह पूर्वक कहा कि दीवान साहब ने अब हुक्म दिया है कि आप नगर कीर्तन व जलूस शहर मे से निकाल सकते हैं। पुलिस का प्रबन्ध जलूस की रक्षा के लिए रहेगा। इत्यादि। प्रबन्धको

को नगर कीर्तन व जलूस निकालने के लिए पुलिस इन्सपेक्टर ने प्रबल प्रेरणा की यद्यपि व अपना विचार छोड़ चुके थे। उनकी प्रबल प्रेरणा के परिणाम स्वरूप आर्यसमाज के जिम्मेवार कार्यकर्ताओं ने नगरकीर्तन का आयोजन किया। इतने में २९ की शाम को ६ बजे श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज ट्रेन से आगए। आर्यसमाज का जलूस उनके स्वागत के लिए स्टेशन पर मौजूद था। अधिकारियों की आज्ञा पर नगरकीर्तन निकाला गया। पुलिस का इन्सपेक्टर तथा पुलिसमैन साथ थे। शहर में प्रविष्ट होने से पहले एक बार जलूस को रोका गया। दूसरी बार थाने के सामने दोबारा रोका गया। वहां लाठियों कुल्हाड़ियों और फरसियों से सुसज्जित ४००,५०० के लगभग मुसलमान खड़े थे। पुलिस इन्सपेक्टर ने उन्हें कहा कि नगरकीर्तन का रास्ता दे दो। उन्होंने उत्तर में आवाज बुलन्द की और कहा हम रास्ता नहीं देंगे। इस पर पुलिस इन्सपेक्टर ने कहा आप इस रास्ते को छोड़कर दूसरी गली में जलूस ले जायं। जब जलूस गली में मुड़ा तो उस मुस्लिम भीड़ ने पीछे से हमला कर दिया। सामने से भी कुछ मुसलमानों ने आक्रमण किया और मकानों पर से ईंट पत्थर फेंके गये। आक्रमण का अधिक जोर स्वामी जी पर था। वे पहले तो अपनी लाठी से वार रोकते रहे परन्तु जब लाठी टूट गई और उनके सिर और हाथ में चोट आई तो वे गिर पड़े। परन्तु तत्काल ही संभल गये। उनके साथ भक्त फूलसिंह जी भी थे। उनके भी सख्त चोट आई। भजनीकों के भी सख्त चोट आई। कुल ४० व्यक्ति जख्मी हुए बताये जाते हैं। यहाँ नगर कीर्तन बन्द कर दिया गया और सब के सब रेलवे स्टेशन पर आ गए। भक्त फूलसिंह नौनन्दसिंह और रघुसिंह बेहोश होकर गिर पड़े। उन्हें पुलिस उठा कर लोहारु के अस्पताल में ले गई। स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी जयप्रकाश जी तथा अन्य व्यक्ति देहली पहुँचे जहां उन्हें इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट किया गया है। लगभग ७ व्यक्ति रिवाड़ी के हस्पताल में प्रविष्ट किए गये थे। अब सब ज़ख्मियों की हालत सन्तोष जनक रीति से सुधर रही है। श्री भक्त फूलसिंह जी तथा नौनन्दसिंह जी भी इर्विन हस्पताल में प्रविष्ट कर दिए गए हैं।

यह तो स्पष्ट ही है कि आर्यसमाज का नगरकीर्तन न केवल पुलिस की सहमति से वरन् उनकी स्पष्ट प्रेरणा पर उनके पहरे में निकला था। यह आक्रमण पुलिस स्टेशन के पास हुआ। यह भी कहा जाता है कि बिना वर्दी में पुलिस और मिलिटरी के लोग भी आक्रमण में सम्मिलित थे। पुलिस ने न केवल आर्य भाइयों की रक्षा ही नहीं की वरन् सुनते हैं कि वे इस आक्रमण पर हँसते भी रहे। मुस्लिम बलवाइयों को थाने के निकट क्यों एकत्र होने दिया गया अथवा उन्हें काबू में क्यों नहीं रखा गया जबकि राज कर्मचारियों को पहले से ज्ञान था कि शहर में उत्तेजना फैली हुई है। आक्रमण से जलूस की रक्षा क्यों नहीं की गई? ये प्रश्न हैं जिनसे इस दुर्घटना में पुलिस का हाथ होने का सन्देह होता है। लोहारु में आर्यों की दूकानों से

बूंद तक प्राप्त न हो सका पानी के लिए ।) तक में घड़ा मुयस्सर न हो सका। इन घटनाओं और व्यवहारों से भी प्रतीत होता है कि राज्य की ओर से उत्सव के विरुद्ध अन्दर २ आन्दोलन हुआ था।

सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री श्री पं० ज्ञानचन्द्रजी लोहारु गए थे और वहां दीवान साहब से मिले थे। राज्य का इस घटना पर जो पक्ष है वह श्री पं० जी को दिया गया और उन्होंने आर्यसमाज की जो भावना इस कांड के सम्बन्ध मे है उससे दीवान साहब को परिचित कराया।

यह बड़े आश्चर्य की बात है कि इस घटना को हुए आज इन पंक्तियों को लिखते समय तक लगभग १ सप्ताह होता है परन्तु लोहारु राज्य की ओर से न तो इस घटना पर कोई वक्तव्य प्रकाशित हुआ है और न पीड़ितों के प्रति सहानुभूति प्रगट की गई है।

आर्यसमाज की अब दो मांगे हैं। एक तो यह कि इस काण्ड की निष्पक्ष रीति से जाँच की जाय और अपराधियों को समुचित दण्ड दिया जाय और दूसरी यह है कि लोहारु मे आर्यसमाज का उत्सव पूरी शान से किया जाय। लोहारु आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के कार्य क्षेत्र के अन्तर्गत है। उसने यह मामला अपने हाथ मे ले लिया है और कार्य द्रुतगति से प्रारंभ हो गया है। यदि आर्यसमाज की ये माँगें स्वीकृत नहीं होती है तो इसका परिणाम यह होगा कि स्वयं लोहारु का राज्य एक विषम स्थिति उत्पन्न करने के लिए जिम्मेवार होगा। आर्यसमाज न्याय चाहता है। वह उसे मिलना चाहिये और इससे कम पर वह सन्तुष्ट नहीं हो सकता।

जब हम पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा अन्य आर्य भाइयों को ईंटों, पत्थरों लाठियों और कुल्हाड़ों के प्रहारों के मध्य पूर्ण अहिंसा व्रत पर दृढ़ खड़े रहने के अप्रत्यक्ष दृश्य की कल्पना करते है तो सचमुच हमारा मस्तक श्रद्धा से उनके चरणों मे झुक जाता है, और हम सोचने लग जाते है कि आर्य-समाज का मार्ग बड़ा दुरूह है और इस सभ्यता और प्रकाश के काल में धार्मिक स्वतन्त्रता पर कुठाराघात क्यो किया जाता है। परन्तु दूसरे ही क्षण हमे इस विश्वास से सांत्वना मिल जाती है कि सत्य का मार्ग वास्तव में कठिन ही है और इसको प्रशस्त बनाने के लिये कौनसा त्याग और बलिदान है जो उसके उपासकों को नहीं करना पड़ता। समय आता है जब अत्याचार न्याय मे, कठोरता प्रेम मे और सन्देह विश्वास में परिणित हो जाता है।

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

१—ईराक की यात्रा— लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों, उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसलमान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजारें बनाईं इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २)

२—मेरी अबीसीनिया यात्रा— लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किस कूटनीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगड़ा कर अबीसीनिया को हड़प लिया आंख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है मूल्य केवल ॥)

३—हमारी जापान यात्रा— इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० में पूरा की अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है ? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३२ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १॥)

पुस्तक मिलने का पताः—

**बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाज़ार**

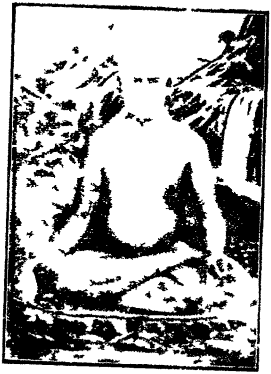
**बाँदा ( यु० पी० ) जी० आई० पी० रेलवे।**

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला मेवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली में मुद्रित।

ओ३म्

ऋग्वेद यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक—प्रो० सुधाकर एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश २) एक प्रति का ≤)    विदेश से ५ शि० वार्षिक

अथर्ववेद सामवेद

# लेख-सूची


| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. वेद की शिक्षाएँ | | ११७ |
| २. मन-मन्दिर | श्री बाबू पूर्णचन्द जी एडवोकेट | ११८ |
| ३. मांसाहार के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन | श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. प्रयाग | १२४ |
| ४. सुमन-संचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | १२६ |
| ५. आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या | | १३१ |
| ६. महिला-जगत् | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | १३३ |
| ७. मानव-प्रेम और ज्ञान की क्षुधा | | १३७ |
| ८. अध्यात्म-धारा | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | १४० |
| ९. India and the World Crisis | By—Sia S. Radhakrishnan | १४३ |
| १०. सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक निर्वाचन | श्री सुधाकर एम० ए० मन्त्री | १५२ |
| ११. सम्पादकीय | | १५५ |


---

न। [redacted]नन्द जी महाराज मृत्यु शय्या पर

( ग्वालियर )



ला० गूजरमल जी जौहरी लशकर (ग्वालियर)   ला० महन्तरामजी आर्य   प० धुरेन्द्रजी शास्त्री

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


* सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुखपत्र *

वर्ष १६ | वैशाख १९९८ | मई १९४१ ई० ] | [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क ३


## * वेद की शिक्षाएँ *

अदीनाः स्याम शरदः शतम् । यजु० ३६।२४

सौ वर्षों तक दीनता से रहित होकर जीवें ।

May we live erect and remain free for a hundred years.

* *

वयं स्याम पतयो रयीणाम् । ऋग० १०।१२१।१०

हम धनों के मालिक हों ।

May we enjoy worldly Purity !

# मन-मन्दिर

( ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट आगरा )

[ गताक से आगे ]

हमारा मन्त्र जिसका भावार्थ ऊपर दर्शाया गया है यह है—

उदुत्यं जात वेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥

यजु० अ० ३३। मं० ३१ ॥

जब हमने वेद और ईश्वर के सम्बन्ध को समझ लिया और ईश्वर के स्वरूप को तो हम इस अवस्था में हो जाते हैं कि यह कहने के अधिकारी हों कि परमात्मा वास्तविक में विचित्र है और ( उद्गात ) हमारे हृदयों में वह यथावत प्रकाशित हो रहा है। और जब हृदयों में ईश्वर का स्वरूप प्रकाशित होता है तो परमात्मा के निम्न-लिखित विशेष गुण हमें साक्षात होते हैं।

देवा अर्थात् दिव्य गुण युक्त और तेजस्वरूप अनिकम् अर्थात् सकल मनुष्यों के सब दुख नाश करने के लिये उत्तम बल, चक्षु मित्रम्य अर्थात् जो मित्र अर्थात् राग द्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्य लोक और प्राण का चक्षु यानी प्रकाश करने वाला है। सक्षेप में इस उपस्थान के तीसरे मन्त्र का जिसे हम नीचे उद्धृत करते हैं सार यह है कि जब आत्मा और परमात्मा का साक्षात् हो जाता है तो आत्मा ईश्वर की छटा को सारे विश्व में और स्वयं अपने अन्दर देखने लगता है और कहता है 'जिधर देखता हू उधर तू ही तू है'

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।

आप्राद्यावा पृथवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ ३ ॥

य० अ० ७। मं० ४८ ॥

इस मन्त्र का भावार्थ ऊपर दे चुके हैं।

समाधि में अथवा उपस्थान या उपासना की दशा में प्रश्न यह होता है कि हम अर्थात् आत्मा ईश्वर से क्या माँगे। वैसे तो ईश्वर के दर्शन हो जाने पर सब आवश्यकतायें पूरी हो जाती हैं और कोई कमी नहीं रहती। ईश्वर भक्त के लिये संसार में कोई प्रलोभन नहीं रहता और न शका, न कोई भय। फिर भी इस अभिप्राय से कि वह सामयिक आनन्द सदैव उपलब्ध और स्थायी रहे, तीन चीजों की आवश्यकता है—

( १ ) दीर्घ-आयु
( २ ) शुद्ध बुद्धि
( ३ ) नम्रता

दीर्घ आयु के बिना जीवन का उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। मोक्ष प्राप्ति के लिये जिन बातों की आवश्यकता है यदि उनकी प्राप्ति में कमी रह जायगी तो फिर दूसरा जन्म उस कमी को पूरा करने के लिये धारण करना पड़ेगा। इसलिये ईश्वर से सबसे पहली प्रार्थना जो हमको करनी है वह यह कि हम सौ वर्ष तक जीवित रहें और न केवल सौ वर्ष तक बल्कि सौ से भी अधिक वर्ष तक जीवित रहें और न केवल जीवित रहें बल्कि जीवन पर्यन्त हमारा ज्ञान और कर्म इन्द्रिया बराबर स्वस्थ रहें और काम देती रहें। यदि हम जिन्दा रहें लेकिन अन्धे हो गये और बहिरे हो गये तो ऐसी जिन्दगी से कोई लाभ नहीं। इसलिये सौ वर्ष तक सुनते और देखते रहने की प्रार्थना और यह भी प्रार्थना है कि हम जब तक जीयें हम किसी के सामने दीन न हों, किसी के आश्रित न हों स्वतन्त्र और स्वावलम्बी बने रहें और न केवल हमारे अन्दर स्वयं ज्ञान प्राप्त करने की शक्ति रहे परन्तु हमें उपकार भाव से सौ वर्ष तक उसी ब्रह्म के उपदेश को करते रहें, जिससे हमारे ऊपर स्वार्थी होने का लांछन न लगे। देखने और सुनने का अभिप्राय यह भी है कि हम उस परमात्मा की छटा को देखते रहें और उसके महत्व को श्रवण करते रहें। और इस समस्त अपनी जीवन-यात्रा में हमारे अन्दर यह धारणा रहे कि परमात्मा सबका द्रष्टा है और धार्मिक विद्वानों का परम हितकारक और सृष्टि के पूर्व पश्चात और मध्य से सत्य स्वरूप से सदैव वर्तमान रहता है और सब जगत् का रचने वाला और हित करने वाला है। उपस्थान के इस चौथे मन्त्र में जो प्रार्थना है वह महान् शिक्षा-प्रद है उस मन्त्र को हम नीचे उद्धृत करते हैं:—

**तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंꣳशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ॥ ४ ॥** य० अ० ३६। मं० २४॥

## एक विशेष निवेदन

इस स्थल पर हम एक विशेष निवेदन करना चाहते हैं हमने सन्ध्या के आरम्भ में इन्द्रिय स्पर्श और मार्जन क्रिया के समय यह प्रतिज्ञा और प्रार्थना की थी कि हमारी इन्द्रियां और मस्तिष्क स्वस्थ और पवित्र रहें और बराबर हमारे लिए उपयोगी बनी रहें उपस्थान के इस अन्तिम मन्त्र में भी इसी प्रतिज्ञा को पूरा होने की याचना है हमारे जीवन को सफल बनाने के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

( १ ) हमारे पास पर्याप्त भोग सामग्री हो।

( २ ) हमारे अन्दर उस सामग्री को उपयोग म लाने की शक्ति व सामर्थ हो।

( ३ ) आवश्यकता पूरी हो जाने पर हम तृप्ति प्राप्त करने का अभ्यास हो।

यदि सामग्री न हुई तो उपयोग किसका करे ? यदि सामग्री हुई और बीमारी इत्यादि के कारण काम म न ला सके तो भी हमारी दशा शोचनीय रहेगी । यदि सामग्री भी हुई और हम निरोग भी रहे परन्तु हमारी तृष्णा पूरी न हुई तो भी क्लेश उत्पन्न ही होता रहेगा। गरीबी, बीमारी और लालच यही तीन क्लेश के कारण है। आचमन से लेकर उपस्थान तक के अन्तिम मन्त्र तक इनसे ही बचे रहन के शिक्षा और उपाय बताये गये हैं।

## गायत्री मंत्र

इस मन मन्दिर विवेचना के एक बडे आवश्यक अग पर हम पदार्पण करते हैं इस शरीर रूपी नौका का केवट केवल हमारा शिर और मस्तिष्क है पशुओं से विशेषता और विभिन्नता प्राप्त कराने के लिए मनुष्य की बुद्धि ही मुख्य साधन है। यदि बुद्धि भ्रष्ट हुई तो हमारी सारी शक्तियाँ हमारे ही लिये घातक और हमारी सत्ता दूसरो के लिये महान् हानिकारक है यदि आगरे के पागलखाने मे किसी ने स्वस्थ, हृष्ट कष्ट, बल युक्त मनुष्य रूप पशु को पागल होने की दशा म देखा है वह इस मत्र की महिमा समझ सकता है। पागल खाने के इंचार्ज डाक्टर ने मुझसे एक बार कहा कि जितने पागल पागलखाने म बन्द हैं उनसे सौगुना अधिक बाहर घूम रहे हैं जिनम से बहुत से तो ज्ञान की दृष्टि से पागल हैं कोई कर्म की दृष्टि से, और कोई भोग की दृष्टि से। जिनका ज्ञान, कर्म और भोग समन्व्य को प्राप्त किये हुए हो ऐसे महान् पुरुष तो कहीं २ और कभी २ दृष्टिगोचर होते हैं। बुद्धि की महिमा अधिक दर्शाने की आवश्यकता नहीं। केवल सकेत मात्र हम पदार्थ विज्ञान के जगत की ओर पाठकों को ले जाना चाहते हैं। पदार्थ विज्ञान ने अनेक विज्ञान वालों को ईश्वर भक्त और जन-सेवक बनाने के स्थान मे नास्तिक और जगत को हानि पहुँचाने वाला बना दिया है, एक बुद्धि के बिगड़ जाने से सारे ज्ञान और कर्म की क्रिया गुरु मत्र गायत्री मत्र को इसीलिये कहते हैं और इसीलिये इस मन्त्र को सबसे अधिक महिमा है यह सब मत्रों का शिरोमणि है क्योंकि इसमे सबसे उत्तम शिक्षा है। यह मत्र इस प्रकार है—

**ओ३म्। यजु० अ० ४०। म० १७। भूर्भुव स्व । तत्सवितुर्व्वरेण्यम्भर्गो देवस्य धीमहि॥ धियो यो न प्रचोदयात्॥ य० अ० ३६। म ३॥ ऋ० मण्ड० ३। सू० ६२। म० १०। एव चतुर्षु वेदेषु समाचो-मत्र.॥ १॥**

भूर्भुवः स्वः से वही अभिप्राय है जो सच्चिदानन्द शब्द से है परमात्मा के तीन विशेष गुण हैं अर्थात् परमात्मा सदैव एक समान रहता है वह अनादि है, वह चैतन्य है और परम आनन्द वाला है। इसी प्रकार भू शब्द सत्ता का द्योतक है, भुवः चैतन्यता का और स्वः सुख और आनन्द का द्योतक है। हमारी जीवात्मा के लिए भी इन्ही तीन गुणो की विशेष आवश्यकता है, दीर्घ आयु, अमर-पद व मोक्ष-प्राप्ति और आनन्द। जब जीव परमात्मा के विशेष गुणों का चिन्तन करेगा तो जीव मे भी वैसे ही गुण प्राप्त होंगे। इन तीनों व्याहृतियों से पूर्व ओ३म् शब्द है उसके सम्बन्ध मे केवल इतना ही लिखना पर्याप्त है कि यह परमात्मा का ही मुख्य नाम है और इस नाम के अन्दर परमात्मा के सब मुख्य नाम आ जाते हैं। इनके पश्चात् जो विशेषण परमात्मा के इस गुरु मन्त्र म दिये गये हैं वह भी महान् शिक्षाप्रद हैं।

सवितु से अभिप्राय यह ईश्वर जो सब जगत् का उत्पन्न करने हारा और ऐश्वर्य का देने वाला है।

देवस्य का अर्थ है जो सबके आत्माओं का प्रकाश करने वाला और सब सुखो का दाता है।

वरेण्यम से अभिप्राय यह है जो अत्यन्त ग्रहण करने के योग्य है।

भार्गोव का अर्थ शुद्ध विज्ञान स्वरूप है इन विशेषणों को समझ लेने से सारा ब्रह्माण्ड परमात्मा से आच्छादित और प्रभावित दृष्टिगोचर होगा। जितनी ससार मे वस्तुएँ हैं और जिन्होंने अनेक बार अनेक प्रकार का रूप धारण किया है उन सबका रचयिता परमात्मा है। ज्ञान का आदि स्रोत भी परमात्मा ही है। यदि कही प्रश्न हो कि हम किसके आगे अपने मस्तिष्क को झुकाये वहाँ बुद्धि से विचार करने से हर एक आत्मा मे यही ध्वनि उठेगी कि पारब्रह्म परमात्मा ही पसन्द करने अथवा धारण करने योग्य है। उस एक के साधने से ही हमारे सब कार्य सिद्ध हो जावेंगे। जब से आर्य-जाति ने परमात्मा का सहारा छोड़कर कही जड़ मूर्तियां और कही मनुष्य-देह-धारी गुरु, गोसाई और महन्तो का सहारा लिया है तब से इस आर्य जाति के पतन की कोई सीमा नही है। ऐसे महान् गुणधारी परमात्मा से हम यही याचना कर सकते हैं कि वह हमे मेधावी बुद्धि प्रदान करे जिससे हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय करके अपने आत्मा मे धारण करें और धारण करने का प्रयोजन यह हो कि परमपिता परमात्मा हमारी बुद्धियों को कृपा करके सब बुरे कामों से अलग करके सदा उत्तम कामों मे प्रवृत्त करे।

यह कितनी सुन्दर प्रार्थना है इसमे ज्ञान और कर्म का सुन्दर समावेश और समन्वय है। बुद्धि की पवित्रता उसी समय लाभदायक है जब बुद्धि पुरुषार्थ के लिए प्रेरणा करने वाली

हो। बुद्धि का उपयोग उसी समय है जब बुद्धि रखने वाला मनुष्य उसके प्रकाश से अपने विचार आचार व्यव्यवहार को ठीक रक्खे और उसको दूसरों के उपयोग में लावे। आज संसार के अनेक देशों में ऐसे तीव्र बुद्धि वाले विद्वान् उपस्थित हैं जिनकी बुद्धि की दूर २ तक फैली हुई है परन्तु उनमें से बहुत से ऐसे हैं जिन्होंने अपनी बुद्धि से सारे संसार को महान् संकट में डाल दिया है जिनके आचरण इतने भ्रष्ट हैं कि जो जनता को विवश करते हैं कि जनता उनको Intellectual Devil अर्थात् दिमागी शैतानों के नाम से पुकारे, बहुत से बुद्धिमान ऐसे हैं कि जिनका प्रकाश अथवा ज्ञान उस दिन में जलने वाले दीपक के समान है जिसका प्रकाश तेल और बत्ती को तो खाता है और अन्त में न स्वयं उनके लिये लाभदायक है न किसी और के लिये। बुद्धि तो उनकी ही सफल है जो उदय होते हुए सूर्य के समान अपने ज्ञान या प्रकाश को नित्य प्रति बढ़ाते रहे और अपने आचरणों को ठीक रक्खे और दूसरों के अज्ञान और अन्धकार को अपने उदय से दूर करते रहें। जब तक भारतवर्ष में बुद्धि का इस प्रकार उदय विस्तार और उपयोग रहा भारत सारे संसार में शिरोमणि था और दूर २ से जिज्ञासु इसके शरण में आकर अपनी आत्माओं को पवित्र करना अपना अहोभाग्य समझते थे। जबसे वेदों का स्वाध्याय कम हुआ नामधारी ब्राह्मणों ने केवल मन्त्र उच्चारण को वेद समझा। चार वेदो के स्थान में अनेक आधुनिक पुस्तकें पुराण का विशेषण देकर माननीय समझी जाने लगी और एक ईश्वर की मानसिक पूजा के स्थान में स्थूल व जड़ पदार्थों की पूजा प्रचलित हो गई तो इस भारतवर्ष का नाश हो गया।

इस अन्धकार और रूढ़ीवाद के समय में इस गुरु मन्त्र की महिमा तो रही परन्तु अन्ध श्रद्धा और अन्ध विश्वास के साथ जिस गुरु मन्त्र का उपदेश खुल्लमखुल्ला सबके लाभार्थ होना चाहिए था वह कान में फू फू के रूप में दिया जाने लगा, जिसको न देने वाला समझे न लेने वाला और उसपर यह और आपत्ति कि शिष्य से यह कहना कि गुरु-मन्त्र को किसी से मत कहना। इस एक पवित्र वैदिक गुरु-मन्त्र के स्थान में अनेक मन्त्र कंठियां और तिलक-छाप चल पड़े। और इन गुरुओं के गुरुडम अथवा सम्प्रदायवाद ने आर्य जाति में महान् फूट डाल दी और भारतवर्ष की ईंट से ईंट बजा दी। इसी कारण से महर्षि दयानन्द को नाम धारी गुरुओं का और उसके प्रचलित गुरुडम का प्रबल खण्डन करना पड़ा और इस प्राचीन गुरु मन्त्र की ओर सारे संसार का ध्यान आकर्षित करना पड़ा। इस मन्त्र में विशेषता यह है कि इस मन्त्र में केवल पारब्रह्म परमात्मा को ही गुरु माना गया है और मनुष्यों की आत्मा ऐसे ही गुरु के मन्त्र से दीक्षित होने की शिक्षा है।

## जन्त्र और मन्त्र

आज जिसे देखो जन्त्र और मन्त्र की खोज में घूमता है और जादू और टोने की धुन है। यह जन्त्र और मन्त्र और कुछ नहीं है यह यन्त्र और मन्त्र हैं। वेदो को पवित्र शिक्षा मन्त्र हैं जिनमें गुरु मन्त्र शिरोमणि है और इन मन्त्रों के प्रकाश में जो क्रियात्मिक सुख के लिए उपाय किये जावे वह यन्त्र है। गण्डे और तावीज यन्त्र नहीं यह तो भ्रम है। यह किसी आने वाली आपत्ति का मुकाबला तो क्या करेंगे हमें बैठे बिठाये भयभीत और डरपोक बना देते हैं।

इस एक गायत्री मन्त्र के ठीक ठीक प्रचार न रहने से अनेक मत और सम्प्रदाय संसार में प्रचलित हो गए हैं। उन सबको अर्थात् संसार के सब मनुष्यो को एक सूत्र में बाधने के लिए यही मन्त्र सबसे उत्तम है। यह ऐसी Creed है जिसके अन्तर्गत Divine worship, Pure wisdom, Good character अर्थात् ईश्वर पूजा, शुद्ध बुद्धि, और पवित्र आचरण सब आ जाते हैं और इसमें जो भाव है उसका खण्डन या विरोध कोई भी संसार में नहीं कर सकता। संसार के सब Creeds अर्थात् विश्वासो का समावेश इसमें हो जाता है। पवित्र मन-मन्दिर में इसी मन्त्र की ध्वनि उठती रहनी चाहिये। और यही जीवन निर्वाह का Chief Motto या उपदेश होना चाहिए। हमने ऊपर दीर्घ आयु और शुद्ध बुद्धि का सम्बन्ध दिखला दिया है, अधिक आयु होने पर यदि बुद्धि ठीक न रहे तो कहते हैं कि बुड्ढे की अकल ठीक नहीं रही है यह सठिया गया है अब हम कुछ शब्द बुद्धि और नम्रता के सम्बन्ध में लिखना चाहते हैं।

क्रमशः

---

# मांसाहार के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. यस. सी. प्रयाग )

मांसाहारी दो प्रकार के व्यक्ति हैं। एक प्रकार के तो वे मांसाहारी हैं जिन्होंने भोजन के प्रश्न पर कभी गभीरता पूर्वक विचार नहीं किया है। वे मांसाहारी इसलिए हैं कि उनका जन्म परम्परा से मास खाने वाले परिवारो में हुआ है। दूसरे प्रकार के वे व्यक्ति हैं जो बतौर फैशन अथवा प्रथा के मास खाने लगते है और मांसाहार के समर्थन मे समय २ पर तर्क वितर्क किया करते हैं। उनकी कुछ युक्तिया तो नितान्त निस्सार होती है परन्तु कुछ ऐसी भी होती हैं जिन पर विचार किया जाना आवश्यक है।

## युक्ति संख्या १

**संसार की आबादी का बड़ा भा। मासाहारी है तब आप शाकाहार का पक्ष क्यों लेते हैं ?**

बहु सख्या का नियम सदैव माननीय नहीं होता। वह तो तब ही माननीय होता है जब यह युक्ति युक्त और बुद्धि संगत हो। इसके अतिरिक्त यह तर्क कि संसार के लोगों का अधिकाश भाग मासाहारी है अशुद्ध है। ससार के सबसे बड़े देश, चीन, भारतवर्ष, रूस और अमेरिका के सयुक्त राज्य हैं। इनकी जन सख्या क्रमशः ४ अरब ३० करोड़ ३५ लाख १६ सौ पचास और १२ करोड़ २० लाख है। चीन, भारतवर्ष और रूस मे प्रतिदिन १० प्रतिशत से अधिक आमिष भोजन प्राप्त नहीं होता। और आमिष पदार्थ भी समस्त भोजन सामग्री का थोड़ा सा अंश होता है। डेयरी के पदार्थों को भी हम निरामिष 'भोजन सामग्री म सम्मिलित करते हैं क्योकि वह सामग्री भी लोकोपकारी है - इस प्रकार यदि सख्या के आधार पर प्रश्न का निर्णय करना अभीष्ट हो तो सख्या की तालिकाओं को अधिक वैज्ञानिक आधार पर लेना चाहिए। यह ध्रुव सत्य है और इसका खडन नहीं हो सकता कि मानव-जाति का पालन शाकाहार पर ही होता है। कुदरत ने मनुष्य को शाकाहारी बनाया है। यदि वह मांसाहारी बनता है तो वह भी एक सीमा तक ही बन सकता है।

## युक्ति संख्या २

**उन स्थानों में जहां कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती मनुष्य क्या करे और मांसाहार का आश्रय लिए बिना किस प्रकार जीवन रक्षा करे ?**

उत्तर बिल्कुल स्पष्ट है। आदमियों को उन स्थानों में रहने के लिए क्यों जाना चाहिए जहां वनस्पति की उत्पत्ति न होती हो या जहा मनुष्य अपनी आजीविका का उपार्जन न कर सकता हो। मनुष्य शीतोष्ण जलवायु मे रहने योग्य जीव है और कृषि और व्यवसाय के लिए सबसे अधिक उपयुक्त प्राणी है। मानव-समाज का विकाश खेतों के इर्द गिर्द होता है। मनुष्य को जो त्वचा (खाल) मिली है वह और उसकी समस्त आदतें स्पष्टतया यह दर्शाती हैं कि वह शीतोष्ण और उष्ण देशों मे रहने योग्य प्राणी है। ग्रीन लैंड और टन्ड्रा उसके स्वाभाविक वास स्थल नही हैं। और यदि उनमे रहने का वह साहस करता है तो उसे खाद्य सामग्री के नियम से मिलते रहने की व्यवस्था करनी चाहिए। अकेला भोजन ही जीवन की आवश्यकता नही है और यदि वह पार्श्ववर्त्ती देशों की उत्पत्ति से अपनी अन्य आवश्यकताए पूरी कर सकता है तो उसे भोजन की भी व्यवस्था करनी चाहिए।

ग्रीनलैंड और टन्ड्रा की समस्या मानव जाति की समस्या नहीं है। यह तो मुट्ठी भर लोगों की समस्या है जो मानव सभ्यता म कोई योग नहीं देते और जिनका जीवन पशु जैसा होता है। उनके जीवन का व्यवहार मानव जाति क लिए आदर्श स्वरूप नही होता। यदि इस पर वे अपनी कठिनाईयों को अनुभव करते हो तो उन्हें नीचे आकर अच्छे स्थाना मे बस जाना चाहिए। खेतिहर देशों म उनके रहने के लिए पर्य्याप्त स्थान है और वहा वे मनुष्योचित सम्मान पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं।

इस पर भी यदि कोई मनुष्य उन स्थानो म रहने का आग्रह करे जो उसके रहने योग्य नही है तो वह उन स्थाना के निवास के परिणामो क लिये जिम्मेवार है। साहसिक कार्य्य करने वाले व्यक्तियों के लिए जीवन का कोई व्यवहार नियत नही किया जा सकता। कोई एवरेस्ट क उच्च शिखर पर चढने का साहस करता है तो दूसरा सागर की तली मे रहने का साहस करता है। कोई आकाश म उड़ने और आकाशीय जीवो पर जीवन निर्वाह करने का यत्न करता है। उनकी तो नई २ कल्पनाए होंगी जिनका पूरा करना सरल न होगा। नैतिक शिक्षा शास्त्री का काय उनके लिए नियम निर्धारित करना नहीं है।

# सुमन-संचय

## (१)

### सच्चे आभूषण

स्वर्गीय ईश्वरचन्द्र की माता बड़ी दयावती थीं। जब भाग्य उनके विपरीत था और वे निर्धनता मे अपने दिन व्यतीत करती थी तब भी कोई भिखारी या अतिथि उनके द्वार से निराश न लौटता था। जब अच्छे दिन फिरे और उनका पुत्र ५००) मासिक कमाने लगा तब एक दिन साधारण वस्त्र और हाथो में चाँदी के कड़े पहने हुए देख कर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के एक मित्र ने कहा 'मा, विद्यासागर की मा के हाथो मे चाँदी के कड़े शोभा नही देते।' मां ने मुस्करा कर कहा 'विद्यासागर की मां के हाथो की शोभा सोने चाँदी के कड़ो में नही है वरन् इनकी शोभा तो दीन-दुखियों की सेवा करने मे है। तुम्हे पता नही है अकाल के दिनो मे यही हाथ नित्य प्रति हजारो भूखो को खाना बना कर खिलाया करते थे।'

### दयावती द्रौपदी

महाभारत समाप्त हो चुका था। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा का हृदय प्रतिशोध की अग्नि मे जल रहा था। एक दिन रात्रि के समय चोर की नाईं पाण्डवो के शिविर में जाकर उसने द्रौपदी के पाँचो निर्दोष बच्चो को मार कर अपनी प्रतिशोध की ज्वाला को शान्त किया। पुत्रो के वध से द्रौपदी शोक से बेचैन हो गई और अपनी दु:ख कथा अर्जुन को जाकर सुनाई। उन्होने द्रौपदी से प्रतिज्ञा की कि वे शीघ्र ही अश्वत्थामा का सिर काट कर उसके पाप का दण्ड देंगे और उसके सिर के रक्त से द्रौपदी को स्नान करा कर उसको शान्त करेंगे। यह प्रतिज्ञा कराके द्रौपदी अपने शिविर को चली गई।

अर्जुन ने अश्वत्थामा का पीछा किया। उसने अपनी रक्षा का भरसक यत्न किया परन्तु अन्त में अर्जुन ने उसे पकड़ लिया। पकड़ कर उसे अर्जुन अपनी सेना मे ले गए और द्रौपदी के पैरो पर जाकर डाल दिया।

अश्वत्थामा को इस दीन दशा में देख कर भीमसेन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने सलाह दी कि इस पापी का सिर धड़ से अलग कर दिया जाय किन्तु द्रौपदी ने कहा 'यह कैसा ही नीच क्यों न हो किन्तु आपका गुरुभाई है इसका बध करना उचित नहीं। यह अपने किए का फल आप ही भोगेगा।'

द्रौपदी के दया भरे शब्द सुन कर सब धन्य धन्य कहने लगे, किन्तु भीमसेन को यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने कहा 'देवि ! यह तो महा पापी है। इसने तुम्हारे निरपराध ५ पुत्रों का खून किया है। फिर भी तुम्हारे हृदय में इसके लिए दया है। क्या सोच रहे हो अर्जुन, तुमने तो इसके खून से द्रौपदी को स्नान कराने की प्रतिज्ञा की है। चुप क्यों हो ? अपनी प्रतिज्ञा पूरी करो। पापी को मारने में कुछ पाप नहीं लगता।'

अर्जुन तो चुप रहे किन्तु द्रौपदी बीच में ही बोल उठी "नहीं ! इसका बध करने से हमें क्या मिलेगा। मेरे ५ पुत्रों का खून हुआ है इसलिए मैं जानती हूँ कि माँ को अपने पुत्रों की मृत्यु का कितना शोक होता है। मैं नहीं चाहती कि इसकी माँ को भी ऐसा ही दारुण दुःख पहुँचाऊं। इसे छोड़ दो।"

दयावती द्रौपदी के यह वचन सुन कर उपस्थित नर-नारी स्तम्भित रह गए और उसकी दयालुता की भूरि २ प्रशंसा करने लग गए। अर्जुन ने अश्वत्थामा का बध नहीं किया और उसे छोड़ दिया।

## राजा

पंजाब में घोर दुष्काल पड़ा था। एक घर में दो पुत्र और एक वृद्ध पिता भूखे चारपाई पर पड़े थे। भूखों को राज-भंडार से मुफ्त अन्न बांटा जाता था। यह बात उन तीनों को भी ज्ञात हुई परन्तु दुर्बलता के कारण किसी का साहस राज-भंडार तक जाने का न हुआ। अन्त में बूढ़ा पिता अपने पुत्रों की दुर्दशा से व्याकुल होकर चारपाई से उठा और ज्यों त्यों करके राज-भंडार पहुँचा। अन्न की एक बहुत बड़ी पोटली सर पर रख कर घर जाने का प्रयास करने लगा। गठरी भारी थी और उसके उठाये न उठती थी। अन्त में निराश होकर भूमि पर बैठ गया। इसके पास एक सरदार खड़ा यह दृश्य देख रहा था। बूढ़े ने सरदार को अपने पास बुला कर सिर पर पोटली रखने की प्रार्थना की। सरदार ने पोटली उठा कर बूढ़े के सिर पर रख दी। मगर बूढ़ा पोटली के भार को सहन न कर सका और लड़खड़ा कर

गिर पड़ा। सरदार की आँखों में आँसू आ गये। उसने अपने सिर पर पोटली रखी और कहा 'चलो ! मैं पहुँचा आऊं।' बूढ़ा सरदार के साथ घर पहुँचा। अब सरदार उस से विदा होकर उसके घर से निकला तो पास पड़ौस और मुहल्ले वालों को आश्चर्य हुआ कि पंजाब केसरी रणजीतसिंह बूढ़े के घर क्यों आए। वे दौड़ कर उसके पास गए और पूछा 'आज महाराज तुम्हारे घर क्यों पधारे थे।' बूढ़ा यह बात सुन कर अवाक रह गया। उसने कहा 'मैं नहीं जानता था कि मेरी पोटली सिर पर लाने वाले महाराज रणजीतसिंह हैं। उसने शुरू से अन्त तक सब घटना सुनाई।' बूढ़ा तत्काल लाठी के सहारे राज दरबार में पहुँचा। महाराज रणजीतसिंह उसे देख कर कुर्सी से उठे और पूछा 'क्यो ! क्या बात है ?' बूढ़े ने चरण छूकर कहा 'महाराज मुझे क्षमा करें। मुझ से बड़ा अपराध हुआ कि आपके सिर पर पोटली ले गया।' महाराज रणजीतसिंह ने कहा 'बूढ़े ! तुम मेरे अपराधी नहीं हो। मैं ही तुम्हारा अपराधी हूं। मुझे दुःख है कि मेरे राज्य में प्रजा पर यह संकट आया है। आप लोग मुझे आशीर्वाद दें कि मेरे राज्य से यह संकट शीघ्र टल जाय।' यह सुन कर बूढ़ा चुप हो गया और मन ही मन रणजीतसिंह की प्रजा वत्सलता की प्रशंसा करता हुआ अपने घर आया।

## भ्रातृ-प्रेम

सन् १५८५ ई० की बात है। एक समय पुर्तगाल देश के लिस्बन नगर से कई जहाज गोआ को आ रहे थे। उनमें से एक जहाज दुर्भाग्य से चट्टान से टकरा गया। उसकी तली में एक बड़ा भारी छेद हो गया और पानी से भरने लगा। जहाज के बचने की कोई आशा न देख कर कप्तान ने एक डोंगी डाली और थोड़ा सा भोजन लेकर उन्नीस मनुष्यों के साथ उस पर सवार हो गया। जिन लोगों ने प्राण रक्षा के भय से उस डोंगी पर चढ़ने की चेष्टा की उन्हें उन २० मनुष्यों ने तलवारों के बल पैर न रखने दिया क्योंकि अधिक भारी हो जाने से डोंगी के डूबने का भय था। कप्तान और उसके साथी डोंगी को लेकर चल दिए और शेष सब के सब जहाज के साथ समुद्र में डूब गए। जहाज से उतरते समय कप्तान कम्पास लेना भूल गया था इसलिए उसे दिशा का ज्ञान न हो सका। यही नहीं वह जल्दी में मीठा जल भी लेना भूल गया जिससे प्यास से सब लोग तड़पने लगे। तो भी वे खेते ही चले गए। इसी बीच में कप्तान की मृत्यु हो गई, और कप्तान बनने

की उन २० मनुष्यो में आपाधापी मच गई। अन्त में उन्हों ने अपना एक मुखिया नियत कर लिया। कुछ दिन व्यतीत होने पर कप्तान ने देखा कि अब खाने का सामान केवल ३ दिन के लिए बचा है और इतने थोड़े सामान से हम सब का अधिक दिन तक निर्वाह नहीं हो सकता। तब यह निश्चय हुआ कि सब के नाम चिट्ठियाँ डाली जायं और प्रत्येक चौथी चिट्ठी मे जिसका नाम निकले वह समुद्र मे फेंक दिया जाय। यह निश्चय सब ने स्वीकार कर लिया। १ कप्तान, १ पादरी और १ बढ़ई को आवश्यकतानुसार छोड़ कर शेष १६ के नाम की चिट्ठियाँ डाली गईं।

जिन ४ मनुष्यो के नाम चिट्ठियां निकली उनमे से तीन तो प्राणों की ममता छोड़कर समुद्र मे कूद पड़े और मर गए परन्तु जब चौथे मनुष्य को समुद्र मे डालने की बारी आई तब उसका छ टा भाई जो उसी डोंगी मे था व्यथित होकर भाई के गले से लिपट गया और आंखो से अश्रु धारा बहाते हुए बोला 'मै अपने जीते जी आपको किसी प्रकार न मरने दूंगा। आपके पीछे आपकी स्त्री बच्चे हैं और आपके आश्रय मे ३ विधवा बहनो का पालन-पोषण होता है, आपके प्राण त्याग से उनकी जो हानि होगी उसकी अपेक्षा मेरे मरने से बहुत कम होगी क्योंकि मैं अभी अविवाहित हूँ। मेरे लिए मरना-जीना समान है। और आपकी रक्षार्थ मरना बड़ा उच है।"

अपने छोटे भाई के स्नेह को देखकर बड़े भाई का हृदय पिघल गया। उसके नेत्रो से भी आसुओं की धारा बहने लगी। अपने जी को कड़ा करके उसने कहा 'तुम कुछ भी कहो, मै तुम्हारा कहना नही मान सकता। मेरे मरने मे दैवेच्छा है। अपने प्राणों की रक्षा के लिए दूसरे के प्राण लेना महा पाप है। फिर तुम तो मेरे सगे भाई हो। और फिर भातृ स्नेह से व्याकुल होकर अपने प्राणो के साथ खिलवाड़ करना चाहते हो। मै अपने प्राणों की रक्षा के लिए तुम्हें मृत्यु की भट्टी में झोंककर एक और महान् पाप अपने ऊपर नहीं ले सकता। यदि मै ऐसा करता हूँ तो मेरा हृदय अधिक दुखी रहेगा। इसलिये तुम चिन्ता मत करो और मुझे प्राण त्यागने दो।

छोटे भाई ने अपना हठ न छोड़ा। निदान बड़े भाई को उसका हठ मानना पड़ गया। बड़े भाई के बदले उसका छोटा भाई समुद्र मे फेंक दिया गया। वह तैरना भले प्रकार जानता था। इस कारण गिरते ही तुरन्त न डूब सका। कुछ

काल तक वह तैरता रहा। पीछे मृत्यु के भय से वह नाव के पास आकर बहने हाथ से पतवार पकड़ कर तैरने लगा। यह देख एक मल्लाह ने तलवार से उसका हाथ काट डाला। तब वह फिर समुद्र मे बहकर तैरने लगा। कुछ देर बाद आकर उसने बाएँ हाथ से नाव का पतवार पकड़ लिया तो मल्लाहों ने उसका दूसरा हाथ काट डाला। इस पर भी वह अपनी दोनो भुजाओं को ऊपर उठाए केवल पैरों के बल नाव के पास तैरता-तैरता चला।

उसकी यह दशा देखकर सबका जी भर आया और रोने लग गए। ऐसे भ्रातृ स्नेही भाई के प्राणों की रक्षा न करना महान् पाप समझकर सब ने उसे नाव-पर चढ़ा लेने का फैसला किया और उसे नाव पर चढ़ा लिया। दूसरे दिन प्रातः-काल भूमि दिखाई दी इसी के पास पुर्तगाल की नई बस्ती थी। उसे देखकर सबके जी में जी आया। वहां वे शीघ्र ही पहुँच गए। इस आकस्मिक रक्षा का कारण कोई ईश्वर की कृपा बतलाने लगा, कोई अपना सौभाग्य बतलाने लगा। डोंगी के एक बूढ़े व्यक्ति ने कहा 'इस रक्षा का कारण हमारा सुकृत्य है जो एक आदर्श भ्रातृ स्नेही भाई के प्राणों की रक्षा करके आज हम लोगों ने किया है।' सब ने गर्दन हिलाकर इसका समर्थन किया

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# आर्य्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

( गताक से आगे )

### अनुलोम और प्रतिलोम विवाह

दूसरा नियम जो बहुत दिनों से विवाद का विषय रहा है यह है कि वर वधू की प्रारम्भिक जाति एक ही होनी चाहिए अन्यथा विवाह अवैध होगा और उनकी सन्तान नाजायज होंगी। भिन्न २ हाईकोर्टों द्वारा इस नियम की भिन्न २ रीति से व्याख्या हुई है और इसके सम्बन्ध में बड़ा मतभेद रहा है। उच्च वर्ण के लड़के का निम्न वर्ण की लड़की के साथ विवाह हो सकता है। यह अनुलोम विवाह कहलाता है और शास्त्रीय आधार पर आश्रित हाईकोर्टों की कतिपय व्यवस्थाओं के अनुसार इस प्रकार के विवाह वैध माने गये हैं और उनकी सन्तान जायज करार दी गई हैं। यह संदिग्ध है कि सन्तान का वर्ण माता पिता में से किसका होना चाहिए परन्तु हाई कोर्टों की प्रवृत्ति प्रथा के आधार पर ऐसे विवाहों को कानून सम्मत मानने की रही है। निम्न वर्ण के लड़के का उच्च वर्ण की कन्या के साथ हुआ विवाह प्रतिलोम विवाह कहलाता है, और इस प्रकार के विवाह को अवैध उद्घोषित करने में प्रायः सब ही हाईकोर्टों का एक मत है। स्मृतियों ने इस प्रकार के विवाहों का निषेध किया है और उनमें से कुछ ने इस नियम के भंग के लिए कठोर दण्ड का विधान भी किया है।

हिन्दू कानून का एक यह मुख्य सिद्धान्त है कि प्रथा के स्पष्ट प्रमाण से लिखित कानून रद्द हो जाता है। इसका अभिप्राय यह है कि किसी जाति में कोई प्रथा प्रचलित हो अर्थात् किसी जाति की धार्मिक वा सामाजिक भावना ने किसी प्रथा विशेष को वैध स्वीकार कर लिया हो, भले ही वह कानून के लेख के विरुद्ध हो, तो वह वैध और बाध्य मानली जाती है।

यदि यह भी मान लिया जाय कि इस विषय पर विविध शास्त्रों में मतभेद है और हिन्दू कानून अन्तर्जातीय विवाहों के विरुद्ध है, तब भी हिन्दू जाति उदार विचारों से प्रभावित होकर इस प्रथा को वांछनीय और ठीक मानने लग गई है। इसका फल यह हुआ है कि रिवाज के अनुसार अन्तर्जातीय विवाह वैध

स्वीकार कर लिये गये हैं। हिन्दू कानून स्वीकार करता है कि प्रथा के अनुसार इसके नियमों में परिवर्तन हो सकता है और इसी आधार पर बम्बई प्रान्त में अनुलोम विवाह और पंजाब में इसी प्रकार के अन्तर्जातीय विवाह प्रथानुसार वैध करार दिए गए हैं। विविध हाई कोर्टों की सवर्ण विवाहों के सम्बन्ध में नियम को ढीला करने और रिवाज के अनुसार हुए अन्तर्जातीय विवाहों को वैध मानने की प्रवृत्ति रही है। पंजाब में १६०६ के 'आनन्द विवाह ऐक्ट' के पास होने से पूर्व भी सिक्खों के अन्तर्जातीय विवाह वैध माने जाते थे और पंजाब के अन्य हिन्दुओं के अन्तर्जातीय विवाह भी जाइज स्वीकृत हुए थे।

---

# महिला-जगत्

( नवम्बर के अङ्क से आगे )

## *मातृत्व की ओर*

### माता की पदवी प्राप्त करने वाली कन्याओं के जानने योग्य बातें

### शुद्ध नामावली

( ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक )

पाठ ६

सुशीला और दमयन्ती एकान्त में बैठी हुई कुछ लिख रही थी। कमला को उनसे सिलाई का कोई कार्य कराना था अतः कपड़ा लिए हुए वह दोनों को इधर-उधर देखने लगी। दोनों को एकान्त कमरे में बैठे और लिखने में व्यस्त देखकर कमला को बड़ा कौतूहल हुआ। चुपके से उनके कमरे के पास जाकर झाकने लगी। उनके आस-पास कई कापिया रखी हुई था। यह देखकर कमला को और भी अधिक कौतूहल हुआ और वह उनके कमरे में चली गई। सुशीला और दमयन्ती अपने कार्य्य मे इतनी अधिक व्यस्त थीं कि उन्हें कमला के आने तक की खबर न हुई। जब दमयन्ती ने अपना सिर उठाया और कमला को देखा तो वह एकदम खड़ी हो गई।

कमला ने दोनों बहनो को सम्बोधन करके कहा 'आज इतने दिनो के पश्चात् स्कूल के काम की याद आई मालूम होती है। कहो तो तुम्हारी मदद करूँ ?'

दमयन्ती ने कहा 'बहिन आप अच्छी आईं। इस समय तक जितने पाठ आपने मातृत्व पर दिए हैं उनको हम अपने नोटों के आधार पर लिखने का यत्न कर रही हैं। आप कृपा करके उनको देख लीजिए।"

सुशीला ने दमयन्ती को रोकते हुए कहा 'अभी बहिन जी को दिखाने की आवश्यकता नहीं है। पूरा करके दिखायंगे। 'कस्मो' और बच्चों के शुद्ध नामों पर जीजी ने कुछ कहने के लिए कहा था। आओ उन्हें पूरा करलें।'

दमयन्ती ने प्रसन्न होकर कहा 'शीला तुमने अच्छी याद दिलाई। इन दोनों के अलावा 'गृहस्थ के सौन्दर्य्य' पर भी जीजी से पाठ लेना शेष है। यह देखो मेरी नोटबुक में अंकित है।"

कमला को दोनो के इस यत्न पर बड़ी खुशी हुई। उसने कहा 'मुझे तुम दोनो से सिलाई मे सहायता लेनी थी, यह कार्य्यबाद को कर लेंगे।

'बच्चो के शुद्ध और सार्थक नामो की आवश्यकता पर हम पिछले पाठ मे पर्य्याप्त चर्चा कर चुके हैं अब उस आवश्यकता पर विशेष चर्चा करने की आवश्यकता नहीं है। तुम जानती हो कि बच्चो के नाम ऐसे रखे जाने चाहिए जिनके कारण बड़े होने पर उन्हें अपने नामो को चरितार्थ करने की प्रेरणा मिले और उनके कारण उन्हे लज्जित न होना पडे। जब मै प्राचीनकाल के बच्चो और बच्चियों के नामों से इस समय के नामो के साथ तुलना करने लग जाती हू तो सच जानो मेरे मन मे बड़ा दुख और ग्लानि होती है। मै सोचती हूँ वह युग कितना अच्छा था। हमारी संस्कृति कितनी पवित्र थी। हमारे व बच्चे कितने सौभाग्यशाली थे जिन्हे उस पवित्र वातावरण मे उत्पन्न और पालित पोषित होने का सुअवसर प्राप्त हुआ था। उनके पवित्र नामो को पढ़ और सुनकर हृदय उल्लास से भर जाता है और कानो मे मधुरता भर जाती है। अब मै कुछ शुद्ध नामो को लिखाती हू। उन्हे तुम लिख डालोः—"

यह सुनकर दोनो बहिन लिखने बैठ गई। "कमला ने कहा पहिले लड़को के नाम लिखाती हूँ। लिखोः—

## लड़कों के नाम

अग्नि मित्र, अनिरुद्ध, अभिमन्यु, अर्जुन, अजातशत्रु, अनिल, अरविन्द, अज, अजित, अजय, अरुण, अशोक, अश्विनी कुमार, आनन्द, आर्य मित्र, आशुतोष, इन्द्र, इन्द्रमणि, उदयन, ऋतु पर्ण, कपिल, कलानिधि, कर्ण, कणाद, कुमुद, काश्यप, केशव, कुश, कृष्ण, गुरुदत्त, गोतम, चन्द्रापीड़, चन्द्रमौलि, चन्द्रमणि, जमदग्नि, जयन्त, जय घोष, जय देव, जयनाथ, जैमिनी, ज्ञानचन्द्र, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानेन्द्र, दत्तात्रेय, दयानन्द, दिवाकर, दिनेश, देवदत्त, देवप्रिय, देवव्रत, द्रोण, धन्वन्तरि, धर्मदत्त, धर्मप्रकाश, धर्मदेव, धर्मवीर ध्रुव, धृतिमान, नचिकेता, नरेन्द्र, नित्यानंद, नलिन, पतञ्जलि, पद्मनाथ, पराशर, पाणिनि, पुलस्त्य, प्रभाकर, प्रताप, प्रकाश, प्रबोध, प्रद्युम्न, प्रियरत्न, प्रियदर्शी, बलभद्र, बुद्धदेव, बृहस्पति, ब्रह्मदत्त, ब्रह्मबन्धु, ब्रह्मानद, भद्रदत्त, भद्रसेन,, भद्राजित, भवभूति, भानु, भारतेन्दु,

भास्कर, भूदेव, मजुघोष, महानन्द, महाव्रत, महेन्द्र, मेधातिथि, मेधाव्रत, यज्ञदत्त, यतीन्द्र, योगेन्द्र, योगेश्वर, युधिष्ठिर, रत्नाकर, रमेश, रजनीश, रणवीर, रवि, रवीन्द्र, रविकान्त, राजेन्द्र रोहिताश्व, रुद्रदेव, लोकेन्द्र, लोमहर्षण, वसुदेव, वागीश, वाचस्पति, वात्स्यायन, वामदेव, विनय, विपिन, विजय, विनोद, विद्याधर, विश्वेश्वर, विद्यानिधि, विद्यापति, विवेक, विष्णुशर्मा, विद्याव्रत, विद्यासागर, विद्याभूषण, विनायक, विरजानद, विश्वदेव, विश्वश्रवा, विश्वामित्र, वैशम्पायन, वीरभद्र, शकर, शशिभूषण, शशिकात, शुद्धबोध, श्रुतबन्धु, श्वेतकेतु, सत्यकाम सत्यवान् , सत्यव्रत, सुधन्वा, सुरेन्द्र, सुरेश सनत्कुमार, सुनीतिकुमार, सुदामा, सिद्धेश्वर, सुधाकर, सुबन्धु, सुमति, सोम, हर्षदेव, हरिश्चन्द्र, हिमाशु ।

## लड़कियों के नाम

अञ्जना, अनसूया, अमृतकला, अमृतलता अम्बालिका, अम्बा, अरुणा, अरुन्धती, अहिल्या, इन्दिरा, इन्दुमती, उमा, ऊषा, उत्तरा, उर्मिला कमला काननबाला, कुन्ती, कुसुम, कुमुदनी, कृष्णा, कौमुदी, कौशल्या, गायत्री, गार्गी, गुणवती, गोतमी, चन्द्रकला, चन्द्रकान्ता, चन्द्रप्रभा, चन्द्रावली चित्रलेखा, जानकी, ज्योत्स्ना, ज्योतिर्मयी, ज्ञानवती, तिलोत्तमा दमयती दीप्ति, देवयानी, देविका, देवसुन्दरी, देवहूति, द्रौपदी, नन्दिनी, निरुपमा, नीलिमा, पद्मा, प्रकाशवती, प्रतिभा, प्रमिला, प्रियवदा, भारती, मजुबाला, मदालसा, मनोरमा, महादेवी, माधुरी, मालती, यशोदा, यशवन्ती, रमा, रत्नप्रभा, रेणुका, ललितकुमारी, लीलावती, लोपामुद्रा वीणा, विद्या, विद्यावती, विद्याधरी, विमला, वेदवती, शकुन्तला, शकरी, शची, शर्मिष्ठा, शशि-प्रभा, शक्ति, शान्ता, शारदा, शोभना, शैव्या, श्यामा, श्री, सती, स्नेह प्रभा, सत्यबाला, सत्यभामा, सत्यवती, सरोजनी, सावित्री, साधना, सीता, सुकेशी, सुषमा, सुधा, सुखदा, सुभद्रा, सुनीति, सुमति, सुमित्रा, सुलोचना सुशीला, सौदामिनी, हेमलता ।

यह नाम लिखाकर कमला ने कहा, इस समय मुझे इतने ही नाम याद पड़ते हैं। मै शुद्ध नामों की एक विस्तृत सूची बनाने का विचार कर रही हूँ। जब मेरा यह विचार कार्य मे परिणत हो जायगा तब तुम्हें उससे पर्याप्त सहायता मिलेगी।

सुशीला ने कहा 'जीजी !! इस सूची मे मेरा, आपका, दमयन्ती और केशव चारों का नाम आ गया है। अम्मा का नाम नहीं आया है।' यह कहकर सुशीला दौड़कर अपनी माता के पास गई और कहा "जीजी ने आज हमें कुछ नाम लिखाये हैं, पर अम्मा तुम्हारा नाम उसमें नहीं आया है। कहो तो उनमे लिखा दूँ।" सुशीला की माता ने कहा 'चल हट, हँसी करती है। मेरा नाम लिखाने की जरूरत नहीं।" इतने मे ही दमयन्ती उनके पास पहुँच गई। उसने सुशीला से पूछा अम्मा। क्यों नाराज हो रही हैं। अम्मा हमें

अपना नाम बतादो, हम अपनी सूची में लिखेंगी।" यह सुनकर अम्मा और भी अधिक नाराज़ हुईं। दमयन्ती की समझ में माता के नाराज होने का कारण न आया। उसने चुपके से कारण मालूम किया। सुशीला ने अम्मा की ओर देखकर हँसते हुए कहा 'अम्मा का नाम जिविली है इसलिये वे अपना नाम नहीं लिखाती।' यह सुनकर दमयन्ती खिल खिलाकर हंस पड़ी और कमला के होठों पर भी हँसी आ गई।"

दमयन्ती ने कहा 'अम्मा! नाराज न हो। हम तुम्हारा नाम अपनी सूची में नहीं लिखेंगी।' यह कह कर दोनों बहिने कमला बहिन के पास चली गईं।'

कमला ने कहा कस्मो के सम्बन्ध में फिर कभी चर्चा करूँगी। इस समय इतना ही पाठ पर्याप्त है। अब तुम मुझे कोई ऐसी कहानी सुनाओ जिसमें किसी व्यक्ति ने अपने नाम को सार्थक किया हो।"

यह सुनकर दोनों बहनें चुप हो गई और बोलीं 'जीजी!! हमें ऐसी कोई कहानी याद नहीं है। आप ही सुनाएँ।"

कमला ने कहा 'अच्छी तरह स्मरण करो। जल्दी की आवश्यकता नहीं है।" जब मेरी बारी आयेगी मैं सुना दूँगी। पहले तुम यत्न करो 'यह कह कर कमला अम्मा के पास चली गई। अम्मा के पास से शीघ्र लौटकर कमला ने दोनो बहनो से फिर वही प्रश्न किया? परन्तु दोनों ने पुनः अपनी असमर्थता प्रकट की। तब कमला ने कहा 'प्राचीन काल में चित्रलेखा नाम की एक प्रसिद्ध देवी थी। यथा नाम तथा गुण के अनुसार वह चित्र विद्या में बड़ी प्रवीण थी। उषा नाम की एक राजकन्या उसकी सखी थी। एक दिन उसने स्वप्न में एक राजकुमार को अपना पति चुना। परन्तु उसने राजकुमार को जाग्रत अवस्था में देखा न था इसलिए अपनी सखी चित्रलेखा के पूछने पर वह उस राजकुमार का नाम न बतला सकी और बेचैन रहने लगी। दिन पर दिन उसकी अवस्था खराब होने लग गई। इस पर चित्रलेखा को बड़ी चिन्ता हुई। उसने उस समय के राजकुमारों के जिन्हें उसने देखा था और नहीं भी देखा था चित्र खींचने और अपनी सखी उषा को दिखाने आरम्भ किए। अन्त में उसने श्री कृष्ण महाराज के पौत्र अनिरुद्ध का चित्र खींचकर उषा को दिखाया उस चित्र को देखते ही उषा ने स्वप्न में देखे अज्ञात राजकुमार को पहचान लिया और बाद में इसी राजकुमार से उषा का विवाह हुआ।"

यह कहानी सुनाकर कमला ने दोनों बहनों से पूछा 'क्या चित्र लेखा में जैसा उसका नाम था वैसे ही गुण न थे? क्या उसने अपने नाम को सार्थक नहीं किया हुआ था?"

दोनों बहनों ने आनन्द में विभोर होकर कहा 'बहिन! आप ठीक कहती हैं! हम दोनों बहिने सुशीला और दमयन्ती नामों को सार्थक करने का यत्न करेंगी? यह कहते २ दोनों बहनें चुप हो गई और उठकर चली गई।

# मानवप्रेम और ज्ञान की क्षुधा

## कवीन्द्र रवीन्द्र का गुरुकुल कांगड़ी में दीक्षान्त अभिभाषण

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के वार्षिकोत्सव में नए स्नातकों के सम्मुख विश्वकवि डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर का निम्न दीक्षान्त भाषण श्री क्षितिजमोहन सेन ने पढ़ा:—

मुझे दुःख है कि मेरा दुर्बल देह तथा दुःखद व्याधि मुझे इस महान् उत्सव में उपस्थित होने के आनन्द से वंचित कर रही हैं। आज इस गुरुकुल विश्वविद्यालय के तरुण स्वागताध्यक्ष अपने गुरुओं के चरणों में बैठकर प्राप्त किए ज्ञान से जीवनशक्ति लाभ करके और सब प्रकार से सुरक्षित होकर, कुलमाता को अन्तिम नमस्कार कर, विस्तृत संसार में निर्भीक भाव से प्रवेश करने के लिए उद्यत हैं। मैं इन तरुण स्नातकों के भावी प्रयत्नों में पूर्ण सफलता चाहता हूँ तथा उनको अपने हृदय के अन्तस्तल से आशीर्वाद देता हूँ।

### शिक्षण का विशेष रूप

जब से मैंने शिक्षक बनने का दुसाध्य व्रत ग्रहण किया है, तभी से शिक्षण कार्य के एक विशेष रूप ने मेरा ध्यान आकृष्ट किया है। आज मैं एक बार फिर उस विशेष रूप पर जोर देना चाहता हूँ। मैं जानता हूँ कि मैं अपने पुराने विचारों का पिष्टपेषण कर रहा होऊँगा; किन्तु यह मेरी अवस्था के व्यक्ति के लिए अनिवार्य है।

एक जाति के रूप में, हमें यह उपलब्धि पूर्णतया हो जानी चाहिए कि हम हैं क्या? यह उक्ति एक स्वतः सिद्ध सत्य है कि किसी जाति की एकता की उपलब्धि से उस जाति के व्यष्टि तथा समष्टि दोनों रूपों का पूर्ण ज्ञान अभिप्रेत होता है। परन्तु हममें से अधिकांश व्यक्ति भारतवर्ष के सम्बन्ध में इन दोनों दृष्टिकोणों से सर्वथा अपरिचित हैं। इतना ही नहीं, किन्तु हम में इस ज्ञान को विकसित करने की तीव्र आकांक्षा भी नहीं है।

राजनैतिक प्रचार में उग्रता के साथ अपनी राष्ट्रीय एकता की उद्घोषित करके, हम अपने को यह विश्वास दिला देते हैं कि हम में वह उपलब्धि विद्यमान है और इस प्रकार राजनैतिक दिवास्वप्नों के कल्पना लोक में रहा करते हैं।

सत्य तो यह है कि हमें अपने देश के विषय में ऐसी रुचि बहुत कम है जो मनुष्य के प्रति सहानुभूति के रूप में प्रकाशित होती है ! हम राजनीति और अर्थशास्त्र की चर्चा करना पसन्द करते है, शास्त्रीय गूढताओं के सूक्ष्म वायुमंडल में ऊँची उड़ान लेने को उद्यत हैं, निरर्थक प्रज्ञावाद के आरण्यों के छायालोक मे भटकते है; परन्तु संकीर्ण सामाजिक सीमाओं को अतिक्रमण कर अपने प्रतिदेशी जन समुदाय के द्वार तक आने की परवाह कभी नही करते कि हमारे पास पड़ोस के ये सब लोग क्या सोचते हैं क्या अनुभव करते हैं; कैसे अपने आपको अभिव्यक्त करते हैं और किस प्रकार अपने जीवन को ढाल रहे हैं।

## मानव-प्रेम

मनुष्य के मानव-प्रेम में स्वभावतः ही ज्ञान की क्षुधा रहती है। यदि हममे राजनैतिक वादप्रतिवादों के अतिरिक्त इस क्षुधा का सर्वथा अभाव हो तो भी कम से कम निष्काम ज्ञान पिपासा ही हमे एक दूसरे के निकट ला सकती थी। परन्तु, इसमे भी हम असफल हो रहे और हमे हानि उठानी पड़ी, क्योंकि ज्ञान की दुर्बलता शक्ति की दुर्बलता की भित्ति है। जब तक हमारे मन मे भारतवर्ष का पूर्णरूप से स्पष्ट बोध नहीं हो जाता तब तक हम भारतवर्ष को उसके सत्य स्वरूप मे नही प्राप्त कर सकते। और, जहा सत्य ही अपूर्ण है, वहाँ प्रेम का पूर्ण राज्य हो नहीं सकता। हमारे शिक्षण केन्द्रों का वरिष्ट कार्य हमे आत्मनुशीलन मे सहायता देना है और तभी इसके साथ ही साथ, आत्म निवेदन के लिए प्रेरणा उत्पन्न करने का दूसरा उद्देश्य ही पूर्ण हो जायगा।

## मानसिक शक्तियों का सहयोग

यूरोप की इतनी विशाल बौद्धिक शक्ति का कारण उसकी मानसिक शक्तियों का सहयोग है। योरोप ने एक ऐसे साधन का विकास कर लिया है जिसकी सहायता से उस महाद्वीप के सब राष्ट्र एक साथ मिल कर सोच सकते हैं। विचारों की इतनी बड़ी संघटना अपनी गति के प्रचण्ड प्रवाह से स्वभावतः योरोप के विचारों के सब वैयक्तिक विकारों तथा अलौकिकता के आतिशय्य को मिटा देती है। यह योरोप की कल्पना की उड़ानों को उद्दाम नहीं होने देती और उसे उपयुक्त सीमा में रख कर शान्त किये रहती है। योरोप की विभिन्न विचार किरण एक सामान्य संस्कृति में केन्द्रित हो गई हैं और वह संस्कृति योरोप के सभी विश्वविद्यालयों में पूर्णरूप से अभिव्यक्त होती है।

## व्यक्तित्व की उपलब्धि

दूसरी ओर भारत का चित्र विभक्त और विकीर्ण है। यहाँ कोई सामान्य मार्ग नहीं, जिस पर चल कर हम इस तक पहुँच सकें। हमें बड़े दु:ख से देखना पड़ता है कि हमारी मानसिक शक्तियों का निर्माण करने वाली शास्त्रीय शिक्षा मे संजीवनी-शक्ति की न्यूनता है। ज्ञान और सहानुभूति के सहयोग से देश के वृहत्तर धन का समुपलब्ध किया जा सकता है। हमारी शिक्षण संस्थाओ का सब से महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रत्येक विद्यार्थी को उसके व्यक्तित्व की उपलब्धि करने मे सहायता देना है। यह उपलब्धि ऐसी होनी चाहिए कि प्रत्येक विद्यार्थी यह उदारता पूर्वक अनुभव कर सके कि वह व्यक्ति रूप मे समूची जाति का प्रतिनिधित्व कर रहा है और यह जानने मे भी समर्थ हो सके कि इस विशाल मानव-जगत् मे उत्पन्न होना उसके जीवन का महत्तम तथ्य है।

## हमारा दुर्भाग्य !!

भारत मे हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे भीतर जो कुछ श्रेष्ठ है, उसकी अभि-व्यक्ति का वह अवसर हमें नही मिलता जिससे संसार में शक्तिशाली राष्ट्रो के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित किया जा सके। आजकल राष्ट्रो की सम्बन्ध श्रृङ्खला पारस्परिक आशंकाओ की कड़ियो से बनी होती है। इस श्रृङ्खला की दृढ़ता घातक पर आश्रित है। परिणामत. भ्रुकुटिवितान, भर्त्सना तथा भयप्रदर्शन को प्रतिस्पर्धा मे साधनो का असाधारण अपव्यय हो रहा है। राजनीति के दु:स्वप्न मे तमसावृत्त प्रदेश में सत्य पवित्र प्रकाश को प्रविष्ट कराने वाली कोई महती वाणी श्रुतिगोचर होने की प्रतीक्षा कर रही है। परन्तु भारत मे हमे अभी अवसर प्राप्त नहीं हुआ है; तथापि हमारी अपनी मानवीय वाणी है जिसको सत्य की आकांक्षा है। उस क्षेत्र मे भी जहाँ हम कार्य करने के लिये आमन्त्रित नहीं हैं, हमारा यह अधिकार है कि हम निर्णय करे और मानवमन का उचित दृष्टिबिन्दु की ओर पथप्रदर्शन करें तथा उसे यथार्थ के हृदय में विद्यमान आदर्शवाद की झाँकी दिलायें।

# अध्यात्म-धारा

## ( १ )

## मानव-प्रेम

सिकन्दर शाह भारत-दिग्विजय के लिए आया हुआ था। एक दिन सायंकाल को वह अपने सैनिक अफसरों के साथ सैर को निकला। एक भारतीय सज्जन उनके मार्ग-दर्शक थे। सैर करते २ सिकन्दर ने भारतीय सज्जन से कहा—'भारत में ग्राम और झोंपड़े अधिक हैं। शहर कम हैं। आकर्षण की वस्तुएं यहां बहुत कम हैं। यह तो गवारों और देहातियों का देश प्रतीत होता है।'

भारतीय सज्जन ने कहा—'सिकन्दरशाह! आपको पता नहीं कि बड़े शहर वे होते हैं जिनमें उच्च व्यक्तियां निवास करतीं हैं। केवल ईंटों और पत्थरों की बड़ी २ इमारतों से कोई जगह बड़ी नहीं कही जा सकती।' भारतीय सज्जन के इस उत्तर को सुन कर सिकन्दर मौन हो गया।

अंग्रेजी के प्रसिद्ध लेखक वाल्ट व्हाइट मैन ने भी अपनी रचनाओं में इस भाव को इस प्रकार दर्शाया है:—

"यदि टूटे फूटे झौंपड़ों में महान् व्यक्तियां निवास करती हों तो वे झोंपड़े संसार के सब से बड़े नगर हैं।"

आर्य संस्कृति का विकास इन्हीं झोंपड़ों और बन प्रदेशों में हुआ था। यहीं पर समस्त संसार के कल्याण की योजनाएं बनती थीं, यहीं जीवन में जो कुछ सत्य और सुन्दर है, वह मूर्तिमान देख पड़ता था। यहीं से मानव-प्रेम की विशुद्ध धारा प्रवाहित होती थी।

आर्य संस्कृति की सब से बड़ी देन यह है कि यह मनुष्य को प्राणी मात्र से निःस्वार्थ और स्वाभाविक प्रेम करना सिखाती है। यह बतलाती है कि अपनी आत्मा के अनुभव के अनुसार दूसरों से व्यवहार करो। जिन कष्टों और यातनाओं से तुम स्वयं स्वभावतः बचना चाहते हो उन कष्टों और यातनाओं से दूसरों को पीड़ित मत करो। इस उदात्त भावना ने संसार में सुख और सौन्दर्य के पलड़े को भारी रखा है। मनुष्य-मात्र में यह भाव स्वभावतः पाया जाता है परन्तु संस्कार और संगति दोष से अन्य उच्च भावों के समान अब दब सा गया है। यूरोप में इस समय जो आग लगी है, अब से ५,००० वर्ष पूर्व भारत में जो आग लगी थी, वह इसी उच्च भाव के नीचे दब जाने के कारण लगी थी।

यह भाव मनुष्य में कैसे उत्पन्न होता है? यह भाव मनुष्य मे तब ही उत्पन्न होता है जब वह आस्तिक भाव वाला बन जाया करता है। जब वह प्राणी मात्र मे परमात्मा के और परमात्मा म प्राणी मात्र के दर्शन करने लग जाया करता है। जब वह हृदयगम कर लेता है कि प्रत्येक प्राणी का हृदय परमात्मा क निवास का स्थान है और वह एक पवित्र मन्दिर है। उस समय परमात्मा के इस मन्दिर को नष्ट करने या उसे विकृत बनाने का दुष्कृत्य उससे नही हो पाता।

यह भाव हमे यह भी सिखाता है कि दीन दुखियों, छोटे और बडे म हम दिव्यता के दशन करने का अभ्यासी बनना चाहिए। हम उस महान् व्यक्ति का आदर्श सामने रखना चाहिए जो यह कहता है कि मै अहनिश प्राणियो की अच्छाई पर दृष्टि रखता हूँ। मै ससार के नर नारियो मे दिव्यता के दर्शन करता हूँ। इस सुनहरी शिक्षा की अवहेलना से ही अपने दुष्परिणामो के साथ रग विद्वेष, जात विद्वेष और विभिन्न प्रकार की त्रुटियां ससार म शासन कर रही है। इसी क कारण ससार अशान्त और कान्तिहीन हो रहा है।

मानव प्रेम की भावना के चरितार्थ होने के मार्ग मे सब से बडा और प्रभावशाली रोडा यह बन रहा है कि मनुष्य ने अपनी दृष्टि शरीर तक ही सीमित रखी हुई है।

शरीर से ऊपर कोइ उच्च हस्ती है जिस पर दृष्टि रखने से मनुष्य-समाज सुखी बन सकता है। वह हस्ती मनुष्य की आत्मा है। आज की चमकीली नागरिक सभ्यता ने इस सत्य को छुपा दिया है। पशुओ की नाई केवल अपने शरीर पर ही दृष्टि रखना, इस सभ्यता ने सिखाया है। आत्मा का सौन्दर्य धर्म को चरितार्थ करने से प्राप्त होता है। आत्मा को सद्गुणों मे विभूषित न करने और धर्म को धत्ता बता देने से ही पश्चिम अशान्ति की आग म जल रहा है और करोडो और लाखो निरपराध प्राणियो क बध से अपना दामन कलुषित करके पाप का भागी बन रहा है।

हमारे सामने दो चित्र है। एक पश्चिम का और दूसरा पूर्व का। पश्चिम क दृश्य मे हम जो टीप टाप, चहल पहल और कृत्रिम भावभगी देखते हैं वह हम पूर्व के चित्र म नहीं देख पडती। पूर्व क चित्र म हम सादगी और गम्भीरता देख पडती है।

वह चित्र मानो हमारी आंखों से नहीं वरन् आत्मा से बात करता देख पडता है। यहा ही पश्चिम और पूर्व की सस्कृतियों का भेद स्पष्ट हो जाता है। पहिले मे सौन्दर्य प्रधान है और दूसरे मे भाव प्रधान है। पहिले का दृष्टिकोण शारीरिक और दूसरे का आत्मिक है। जब तक मनुष्य शरीर से ऊपर उठ कर आत्मा पर दृष्टि नही डालता तब तक उसका विकास

एकांकी होता है और यही एकांकी विकास दुःख का कारण होता है। पश्चिम के इस एकांकी विकास ने ही आज मनुष्य समाज को दुःखी बना रखा है।

अत: अपने और अपने साथ मानव समाज के कल्याण के लिए मनुष्य और प्राणी मात्र से प्रेम करना सीखो और इस प्रेम के विकास और वृद्धि के उपायों का आश्रय लो। इसी में विश्व का भला है और अपना भी भला है।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

---

# INDIA AND THE WORLD CRISIS.

( *By*—Sir S. Radhakrishnan )

AT a time when the world is overrun by mad despots, when the natural aggressiveness of man, instead of receiving check, is finding increased scope, it is good to be reminded of the ideals of the Buddha-Maitri and Karuna: love and mercy. The sages of the Upanishads, Buddha, Confucius, Socrates, Jesus and Mohammad, though they belonged to different races and climates, did not speak in diverse tongues. They were agreed that what is most desirable for man is not "the riches of Crœsus, or the honours of Cæsar, or the power of Nero." A civilized life is not to be equated with physical strength or material prosperity, political power or commercial success. The easy and pleasant life made possible by science is not the essence of civilization. We may enjoy all the benefits of science, material wealth and comforts, our trains may start punctually, and we may be barbarous. Civilization is a living spirit and not a mechanical apparatus. Centuries before the Christian Era, in this very country of ours dwelt people who lived chiefly on nuts and vegetables, whose clothes were plain and simple, whose amusements few and inexpensive and whose methods of transport slow and rudimentary; and yet we cannot deny to them the quality of civilization for their inner life was highly developed. Among them were saints whose names we still honour, poets whose work we still cherish, philosophers whose thoughts we still study, men who have raised us to a moral eminence and who are now part of that immortal heritage which knows not age or weariness or defeat. Civilization consists in the exercise of all those powers and faculties which are over and above our mere existence as animal beings. It is the enjoyment of the rarest of man's gift, the disinterested life, the life of the spirit.

It is not possible for us to cultivate the inner life unless we are raised above physical wants. The importance of this basic principle is understood by those who are working for the better distribution of wealth, and the increasing socialization of the State. The new economic policies and political arrangements attempt to remove the hindrances to good life but cannot by themselves make it prevail. It is in educational institutions that the youth of a country must be trained to the appreciation of the good life, with its fine and delicate perceptions and desire for the things of the spirit.

But if the world has fallen into wildness, if young men, made for joy and happiness, shaped for love, mercy and kindness are raining hell from the sky on non-combatant populations, innocent women and sleeping children, if they are maiming, mangling, drowning and burning their fellow creatures who happen to be their enemies, the outrages on youth perpetrated in the name of education are largely responsible for this condition. There are many who assume that the child's mind is like wax on which we could stamp any pattern of our advising. Even Plato bases his theory of education on this assumption and requires us to soak the young mind with sights and sounds which may sink into the sub-soil of its mental life and there remain fixed for ever. He wants young children to look on at a battle so that they might get used to warfare. War was the national industry of Sparta, and so its educationists demanded the utter subordination of the individual to the State in the interests of military efficiency. The Christian Churches also trained the youth under their control by giving them their own ideas of duty and patriotism, and often they succeeded in throwing a cloak of religion on the passions and prejudices of men. Many of the educational systems of the European Continent are fixing the youth in attitude of hatred violence, blood-lust, and uncharitableness to all who are not of their race or political creed. Instead of preserving human

nature from vice and error, instead of teaching the youth the mutual dependence of mankind and the need for love and compassion, we spoil human nature and seduce it from its natural love for humanity and virtue. The youths of the world are thus deprived of the heritage of decent living and simple happiness. They do not get a chance to think their own thoughts or have their own dreams.

There is something to be said for the ancient Indian Ideal of Education which subordinates commercial and military values to human ones. Its aim is Brahmacharya, initiation into a disciplined life of spirit, the development of the chastity of mind and body. In every individual there is a spark of sacred fire, a spark which the passions may defile but cannot put out. It inclines us to the love of the highest virtue. The purpose of education is to help the free growth of the soul. When the young mind is brought into contact with the noblest classics of Art and Literature, it absorbs their mellow lights, their sacred enthusiasm, their austere patterns. Buddha's ripeness of spirit, Sankara's magnificence of mind are a corrective to our youthful immodesty. They reveal to us not only the littleness and transcience of things but the exalted dignity of human nature when seen in the perspective of the eternal. The world is a living, breathing one. Time bears the image of eternity and all mankind is hewn from the same rock.

This spiritual humanism is what we most need today. Great changes in manners and modes of thought have occurred. Science and machinery have wrested from Nature a full provision for human life, and with proper organization there would no longer be any need for long hours of hard toil or bitter struggle for bread, yet with all there is much fear for the future. It seems too tragic that in a world which is there for us to enjoy, and which might be made full of happiness for everyone, we treat, human life with contempt, and

squander it as recklessly as we throw away material treasure. We have all the power of creation, all the capacity for happiness, all the will for service, natural, intellectual and ethical riches in abundance at our disposal and of this noble inheritance we have made fearful thing.

What is the root cause of it all ? Why are wars recurrent in human history ? Why do we have the present holocaust of youth, which threatens to engulf the whole world ? Why is it that after centuries of enlightenment we are unable to settle our quarrels in a peaceful manner ? Why are we fighting ? When we try to analyse the causes of the war, we may limit our attention to the immediate causes, or the remote causes or the deeper ones. If we say that Hitler's unprovoked attack on Poland is the cause of the war, we will not be quite accurate. Even as late as 1931 the Government of Britain declined to support the protest of the Gavernment of the United States against Japan's wanton invasion of China. Since then we have had unprovoked attacks on Ethiopia, Austria, Spain and Czechoslovakia, Lithuania and Albania. If we go back a little, and look for the causes in the Versailles Treaty, the failure of the League of Nations, and the Disarmament Conference, we do not get to the bottom of it all. If the Versailles Treaty was unjust, it was a Treaty imposed by the vitcors on the vanquished. If the League and the Disarmament Conference failed, it is because the spirit necessary for their success was lacking. The root causes of the war lie in the undemocratic structure of our society, in a kind of tribal patriotism and a passion for power by which all nations are possessed. Pericles in his funeral oration makes out that Athens is the school of Hellas and called upon the brave Athenians to die for winning the leadership of Hellas which he refused to share with Sparta. "We have compelled," he says, every sea and every land to admit our prowess, and every where we have planted

memorials of harm to our ememies, of good to our friends. For such a city these men have nobly fought and they have given their lives to prove their faith in the inviolableness of their city, let everyone of you left alive be willing to suffer as much for Athens." He goes on : "These men held the chastisement of the enemy more dear, and preferred the glorious risk of avenging themselves upon him. And when the hour of battle was at hand, thinking it a finer thing to defend themselves and die than to yield and live they fled from the word 'dishonour'but held fast to the noble deed. These men behaved as befits the city. You will be wiser to contemplate day by day the might of your city and become her passionate lovers letting her grandeur and her glory inspire you to reflect that it was all gained by brave men who knew their beauty,by men who, when they failed in any enterprise, did not bereave the city of their virtue but gave freely the fairest offering within their means, aye, their very bodies to the common weal and thus won for themselves unfading praise, a most famous tomb—not that in which lie their bones, but that in which their glory lives in eternal remembrance to be celebrated by every opportunity of word or deed. Of famous men the whole world is a tomb. Do you now emulate these men and counting happiness as liberty, liberty as courage do not worry yourselves about the danger of war."

The finest anti-Nazi material is in India, and it is nothing short of a tragedy that she is still mainly unreconciled. If freedom of all people is the aim of this war, as it should be, then those who were conquered in the past must be set free. To win the war will not mean much if it does not remove the great wrongs of the present world. We must demonstrate even to enemy that we reverence the ideals of justice and freedom which we condemn him for rejecting. British statesmen do not seem to realize sufficiently what new forces are at work which require a new outlook and interpretation. We

need not doubt that the present Government contains as high an average of ability as was ever found in a British Cabinet. Its members, however, are fitted more to carry on traditional administration than appreciate new factors or initiate new policies. The Prime Minister, who is bending all his indisputable genius and prodigious energies to the supreme task of winning this war, has, in spite of his boldness and vision, become a specialist and is studiously reticent on the Indian question. The other members belong to an era that has passed. The position of Britain in the world has radically changed and the old policy of slow compromise and fine adjustment is out of date. New, strange, inconsequent forces are at work upsetting the old calculations. Statesmen cost in the old form with their servility to established institutions are not adequate to the new conditions. Those who are in charge of India have the traditional virtues of dignity, honour, efficiency and even selfishness. They are most competent members of traditional governments, but are too firmly set in the old ways to be useful in the new world. They are immensely intelligent but highly insensitive. Otherwise it is impossible to understand a policy which does not countenance the establishment of a popular government, which does not trust the leaders of the people with the task of building up the neglected defences of India, and organizing aircraft and ship-building industries in the country. The sands are now running out. Will British statesmen take courage and give content to the noble phrases they utter, and weld together, in a great democratic federation, India and Britain for mutual service and the service of the world.

If the new spirit has not captured the imagination of the British people, if they persist in their old policies, this war will be a sheer disaster to mankind. History reveals to us how wars cannot be avoided so long as justice is not practised by man to man, by State to State, unless we accept the principle that the weak have rights against the strong.

Unfortunately, however. from early times the powerful exacted what they could and the weak granted what they must. Thucydides reports that when the people of Melos appealed to the Athenians who had them at their mercy, to spare them, the Athenians would only say, "Of our gods we believe—and of men we know that by a law of their nature wherever they can rule they will. This law was not made by us, and we are not the first who have acted upon it, we did but inherit it, and we shall bequeath it to all time, and we know that you and all mankind—if you were as strong as we are—would do as we do." If that is human nature, if success and failure are the sole measures of right and wrong then every excess of fraud, force and ruthlessness and cruetly is justified, and we cannot complain if nations play the international game by the rules of power politics. Unless we defeat this mentality we might win the war, but we would lose the cause. In a great book—The *City of God*—St. Augustine asks: "Take away justice, and what are the kingdoms of the earth but great bands of robbers ?"

Of this war the end will be the beginning. If we are not to drift into another disastrous display of brute force, moral principles must inspire the peace-makers. It will not be easy; for as Senor de Madariago said: "A democracy that goes to war, if beaten, loses its liberty at the hands of its adversary; if victorious, it loses its liberty at its own hands." A democracy cannot wage war and remain a democracy. It may be said that it gives up its principle only for the duration of the war, and returns to it when the victory is won. It is not quite so simple. It would be to take an external and superficial view of democracy, which is a way of life and not a mere political arrangement. We cannot organize for war and yet give full liberty of speech and expression. Herd emotions of fear and anger are bound to be produced, and all the powerful agencies of the Press, the radio and mass

demagogy will be utilized for the ostensible purpose of strengthening the will to victory, and these emotions, sedulously cultivated during the war, are likely to endure after it, and increase the difficulties of peace. It requires a supreme effort of reason and imagination to produce the psychological conditions for a just and enduring peace. If the war is to be won on battlefields the peace must be defended in universities and seats of learning, by priests, prophets and philosophers; we must train men's minds for a new world where the doctrine of non-violence is not the impracticable dream that it is now supposed to be.

In the last war, a university professor of Great Britain, when asked what he was doing when the fight for civilization was on, replied: "I am the civilization you are fighting for." Art and Literature, science and scholarship, and other creative products of the mind are the tests of civilization. Those who share the heritage built up by centuries of industry, of art, of generous emotion, a heritage which knows no frontiers, possess the civilized mentality. Civilization is larger than patriotism. It is humanism. In these days of growing physical danger, it is the function of the Universities to keep the soul alive. While our governments, Central and Provincial, are naturally absorbed in the immediate and obvious problems created by the war, and are seemingly indifferent to the less insistent but no less important matters, I hope they will realize that it is in the centres of thought and learning that the great ideas which move humanity spring forth and acquire hands and feet. Our Universities must be the Indian Nation thinking aloud. Unfortunately most of our teachers are only purveyors of information initiating large numbers into new habits of thinking and feeling by a kind of social drill. To redeem the Universities from the charge of commonplaceness we require among their leaders a few creative personalities, a few priests

of learning and prophets of spirit And then, it is through the Universities that we can maintain and develop community of thought, feeling and practice.

Today, the world is in danger and human life is at stake but if we have profited by our training, we will find opportunities of service and happiness. May I conclude with a stanza of Asolando, which was published on the day of Browning's death, for it sets forth the ideal suited to these times.

One never turned his back but marched breast forward.
Never doubted clouds would break.
Never dreamed, though right were worsted, wrong would triumph.
Held we fall to rise, are baffled to fight better.
Sleep to wake.

*Art and Culture.*

---

# सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का वार्षिक निर्वाचन

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की अन्तरंग, वार्षिक साधारण सभा और धर्मार्थ सभा के अधिवेशन २६ और २७ अप्रैल को बलिदान भवन देहली में हुये जिनमें संयुक्तप्रान्त, पंजाब, राजस्थान, बिहार और सिंध इत्यादि के लगभग ३० प्रतिनिधियों और विद्वानों ने भाग लिया।

सभा के साधारण अधिवेशन में अगले वर्ष के लिये पदाधिकारियों और अन्तरंग सदस्यों के निर्वाचन तथा बजट की स्वीकृति के अतिरिक्त लोहारू की दुर्घटना, ढाका के दंगे और मद्रास में मुस्लिम लीग के अधिवेशन पर आर्यों और हिन्दुओं की सभाओं व जलूसों पर लगाई गई १४४ धारा के विरोध में प्रस्ताव भी पास हुवे। अगले वर्ष का कार्य क्रम भी निर्धारित किया गया। अगले वर्ष का सभा का १४६५६५ का बजट है जिसमें हैदराबाद में रचनात्मक कार्य और दक्षिण भारत में प्रचार के लिये १२०००० रखा गया है।

## पदाधिकारी

| | |
|---|---|
| १. प्रधान | श्री महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज |
| २. उपप्रधान | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी, सीनियर तथा कार्यकर्ता प्रधान |
| ३. ,, | श्री रायबहादुर पं० गंगाप्रसाद जी रिटायर्ड चीफ जज |
| ४. मंत्री | श्री प्रो० सुधाकर जी एम० ए० |
| ५. कोषाध्यक्ष | श्री ला० नारायण दत्त जी |
| ६. पुस्तकाध्यक्ष | श्री ला० ज्ञानचन्द जी |

## अन्तरंग सदस्य

| | |
|---|---|
| (१) श्री माननीय घनश्यामसिंह जी | मध्य प्रान्त |
| (२) श्री ला० देशबन्धु जी | समाजों से |
| (३) श्री पं० विनायकराव जी | निजाम राज्य |
| (४) ... ... | |

(५) श्री पं० वासुदेव जी — बिहार
(६) श्री प्रो० ताराचन्द जी गाजरा — सिन्ध
(७) श्री कुंवर चाँदकरण जी शारदा — राजस्थान
(८) श्री पं० मिहिरचन्द जी धीमान — बंगाल
(९) श्री बाबू ज्योतिस्वरूप जी — दानी
(१०) श्री पं० भीमसेन विद्यालंकार जी — पंजाब
(११) श्री म० कृष्ण जी बी० ए० — पंजाब
(१२) श्री प्रो० शिवदयालु जी एम० ए० — पंजाब
(१३) श्री राजगुरु पं० धुरेन्द्र जी शास्त्री — संयुक्तप्रान्त
(१४) श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय — ,,
(१५) श्री बा० पूर्णचन्द जी — प्रवासियों के प्रतिनिधि।

नोटः—सं० ४ बम्बई प्रान्त वालों के लिये सुरक्षित है जिसकी पूर्ति श्री प्रधान जी करेंगे।

## ढाका का दङ्गा

ढाका नगर और जिले के अन्य स्थानों पर विशेषतः नारायण गंज में हुये लम्बे और भयंकर दंगों को यह सभा बड़े भय की दृष्टि से देखती है जिसके परिणाम स्वरूप अग्निदाह, वध और लूट के बड़े भयंकर कांड हुए है और जिसके कारण ब्रिटिश भारत में रक्षा की आशा छोड़कर हजारों निस्सहाय हिन्दू पीड़ितों को निकटवर्ती रियासतों मे भागना पड़ा है। ऐसा प्रतीत होता था कि उन स्थानों पर कानून और व्यवस्था के शासन का स्थान गुण्डाशाही ने ले लिया है।

इस अवसर पर प्रान्त की सरकार हिन्दुओं की जान और माल की रक्षा करने में बिल्कुल पीछे रही है और बंगाल के हिन्दुओं का उस पर से विश्वास उठ गया है। यह सभा बंगाल के गवर्नर महोदय से अनुरोध और प्रार्थना करती है कि वे तत्काल ऐसे उपाय करें जिससे ये दुर्घटनाएँ दुहराई न जावें और हिन्दुओं में सुरक्षा की भावना पुनः उत्पन्न हो जाय।

इन दंगों में पीड़ित हिन्दुओं के प्रति यह सभा अपनी हार्दिक सहानुभूति प्रगट करती है और उनकी ओर से श्री डा० श्यामाप्रसाद मुकुर्जी ने सहायता की जो अपील निकाली है उसका समर्थन करती है और विशेषतः आर्यों और

साधारणतः हिन्दुओं से अनुरोध करती है कि वे इस अपील का उत्साह वर्धक उत्तर दें।

## मद्रास में आर्यों और हिन्दुओं के जलूस आदि पर १४४ धारा

मुस्लिम लीग का जो अधिवेशन अभी कुछ दिन हुए मद्रास में हुआ था उसके सिलसिले में सरकार ने जो सावधानता सूचक कार्यवाही की थी उसमें आर्य समाज और हिन्दुओं की सभाओं और जलूसों पर प्रतिबन्ध लगा दिये थे। सभा इस कार्यवाही की घोर निन्दा करती है और उसे आर्य समाजियों और हिन्दुओं के धार्मिक अधिकारों मे अनुचित हस्तक्षेप समझती है।

## लोहारू कांड

इस सभा के कार्यकर्त्ता प्रधान पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा गुरुकुल भैंसवाल के मुख्याधिष्ठाता माननीय श्री भक्त फूलसिंह जी पर तथा अन्यान्य आर्यबन्धुओं पर जो घोर आक्रमण लोहारू राज्य की राजधानी लोहारू नगर में उस राज्य के अत्याचारी मुस्लिम गुण्डों के द्वारा किया गया था उसे यह सभा घोर घृणा की दृष्टि से देखती है। लोहारू की पुलिस ने अहिंसाव्रतधारी निरपराध और निःशस्त्र आर्यों को पिटते हुये देखकर भी उसकी रक्षा का उद्योग जो न किया वह सिद्ध करता है कि आक्रमण कारियों के अत्याचार के साथ पुलिस सहमत थी अतः उक्त पुलिस की कार्यवाही को भी यह सभा घृणित समझती है। कठिन घायल पूज्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज तथा अतिपीड़ित माननीय भक्त श्री फूलसिंह जी तथा अन्यान्य घायल आर्यों की जिन्होंने आर्य धर्म की रक्षा के लिए इतने दुस्सह कष्ट उठाये हैं उसके लिये यह सभा उन्हें अनेकानेक धन्यवाद देती है।

सुधाकर एम० ए०
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।

# सम्पादकीय

## यूरोप को वर्तमान आग

युरोप मे इस समय जो आग लगी है और जिसके कारण संस्कृति की सुन्दर कृतियाँ नष्ट हो रही है और प्रतिदिन लाखो निरपराध व्यक्तियो का निर्दयता पूर्वक संहार हो रहा है, उसके कई कारण बतलाए जाते है। हिटलर का कहना है कि १६१८ के महासमर के पश्चात् विजित देशो ने जर्मन जाति पर वर्सिलीज की जो अन्यायपूर्ण सन्धि बलात् लादी गई थी उसके निराकरण के फल स्वरूप यह युद्ध छिड़ा है। मित्र राष्ट्रो का कहना यह है कि नाजीवाद संसार के लिए खतरा है उसका अन्त और प्रजातन्त्र की रक्षा के लिए उन्हे रक्षणात्मक युद्ध मे प्रवृत्त होना पड़ा है।

वर्तमान महायुद्ध के ये प्रत्यक्ष कारण देखे और बतलाए जाते हैं। परन्तु वास्तविक कारण कुछ और ही है और उसको ज्ञात करने के लिए हमें संसार की वर्तमान आर्थिक नीति की जाँच करनी चाहिए।

इस समय की समाज की व्यवस्था प्रतियोगिता के आधार पर आश्रित है और उस पर धन का प्रभुत्व है। मुट्ठी भर धन लोलुप व्यक्तियों के हाथ मे संसार का भाग्य सूत्र है जो स्वय तो काम नही करते परन्तु लाखो और करोड़ो व्यक्तियो से काम लेते हैं। दुर्भाग्य से इन लोगो के हाथो म राज सत्ता के चले जाने से मामला और भी खराब हो गया है। ये लोग अपने धन की वृद्धि के लिए कामुकता और विलासिता बढ़ाने वाले पदार्थो की सृष्टि करके लोगो को अधिकाधिक कामुक और विलासी बनाने का कारण बन रहे है और अपनी इन वस्तुओं की खपत के लिए बाजारो की प्राप्ति और रक्षा के लिए मर रहे हैं। इन बाजारो की रक्षा और प्राप्ति ही युद्ध का मुख्य कारण है।

कोई व्यक्ति आचार और विचार मे कितना ही महान् क्यों न हो परन्तु यदि वह निर्धन है और समाज ने सभ्यता का जो कृत्रिम और व्ययसाध्य पैमाना नियत कर दिया है उससे नीचे पर है तो वह मान और प्रतिष्ठा नही पाता जिसका वह अधिकारी है।

विपरीत इसके आचार और विचार मे गिरा हुआ धनवान् व्यक्ति मान और प्रतिष्ठा का पात्र समझा जाता है मानो धन ने धर्म और उसकी विशेषताओं को दबा दिया है।

एक ओर तो लाखो और करोड़ो मन अन्न इसलिए जलाया जाता है कि वह उपभोग से फालतू वस्तु है और दूसरी ओर लोग एक २ दाने के लिए तरसते हैं और उन्हे भर पेट खाने को भोजन और अपनी लज्जा ढकने के लिए वस्त्र मुअस्सर नही होता। हम उन्हे यह कहकर संतोष दिलाते हैं कि प्रारब्ध मे जो लिखा है वही भोगना पड़ता है। परन्तु हमारी यह सान्त्वना कोई प्रभाव नही रखती और वह भूख की ज्वाला से व्याकुल होकर बाध्य जघन्य से जघन्य कार्य करने को उद्यत हो जाता है।

किसी व्यक्ति के पास पहनने के लिए ५-६ जोड़े वस्त्र हैं और खाने के लिए पर्याप्त सामग्री भी है फिर भी वह अपनी दशा से असन्तुष्ट देख पड़ता है। वह चाहता है कि १५-२० जोड़े उसके बक्स मे सुरक्षित रहने चाहिएँ और उसके जीवन का स्टैंडर्ड ऊँचा होना चाहिए।

हमारा मनोरंजन सात्विक होना चाहिए परन्तु आर्थिक अव्यवस्था ने उसे महान् दूषित और खर्चीला बना दिया है। हमारे मनोरंजन पर भी व्यापारिकता और कुत्सित विलासता की पुट लगा हुआ है। वर्तमान सिनेमाओ, थियेटरो और नृत्य शालाओ के मन और मस्तिष्क को कुठित करने वाले वातावरण मे क्या हमे आर्थिक अव्यवस्था नहीं देख पड़ती ?

प्रतिदिन के जीवन निर्वाह की वस्तुओं की ओर दृष्टि डालिए। आज खाने पीने को शुद्ध वस्तु मिलनी कठिन हो गई है। सौभाग्य और परिश्रम से शुद्ध वस्तु किसी को भले ही मिल जाय परन्तु साधारणतया अलभ्य बनादी गई है।

इसमे सन्देह नही आज बहुत से धर्म्म मन्दिर, मठ और अन्य धार्मिक संघ और संस्थाएँ हैं जो धनपतियो के धन से संचालित होते हैं परन्तु उनमें भी प्रायः धनपतियों की इच्छा शासन करती है।

उन संस्थाओं से सम्बन्धित बड़े २ विद्वानों और तत्व वेत्ताओं को जिनके पीछे पालन पोषण के लिए गृहस्थ होते हैं, उन धनपतियों की इच्छाओं और मिजाजों की ओर ध्यान देने के लिए बाधित होना पड़ता है। आज के विद्वानो और मण्डितो को प्राचीन काल के ऋषियो और जिज्ञासुओ की नाईं नगरों के कोलाहल से दूर वन प्रदेशो और गिरि कन्दराओ में केवल ज्ञानोपार्जन के लिए बैठना कठिन हो गया है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवेचन से स्पष्ट ही है कि हमारी आर्थिक व्यवस्था महान् दूषित है। अर्थ व्यवस्था के दूषित होने से 'काम' का दूषित होना स्वाभाविक ही है। आज जैसी विलासिता और कामुकता की चर्चा करना एक दुखद प्रसग को पाठको के सम्मुख रखना है। एक शब्द में हम संयम और नैतिकता के ऊँचे स्थान से गिरकर बहुत नीचे पर आ गए हैं।

अर्थ और काम की नीतियो के दूषित होने के कारण पर जब हम विचार करने लगते हैं तो सहसा ही धार्मिक स्थिति हमारे सामने आ जाती है। मनुष्य म चाहे वह पृथ्वी के किसी भाग मे क्यो न रहता हो, किसी भी वातावरण मे क्यों न पला हो, उसमे धार्मिकता के अकुर स्वभावतः पाए जाते हैं। सत्य और न्याय के प्रति प्रेम, सहानुभूति, पारस्परिक, सौहार्द आदि धार्मिक चिन्ह होते है। ये प्रायः मब ही मनुष्यो मे स्वभावतः होते हैं। परन्तु वे दुर्बल संस्कारो के प्रभाव और कुसगति से दब से गये है। हम न्याय और सत्य की महिमा जानते और समझते हुए भी और उनके आचरण की इच्छा रखते हुए भी पथ-भ्रष्ट देखे जाते है। बहुत से अज्ञानवश पथ भ्रष्ट होते है। उनकी हमे शिकायत नही है। शिकायत तो समझदार और पढ़े लिखे लोगो के आचरण पर है। इसका मुख्य कारण संस्कारों का दौर्बल्य ही है। धन लोलुपों और कामुक व्यक्तियो के लिये जो समझदार समझे जाते हैं धर्म और उसकी विशेषताओ के लिये कोई मान नहीं है। वे तो धर्म का बिल्कुल बहिष्कार करने पर उद्यत देख पड़ते हैं; क्योकि यह उनके आमोद प्रमोदों, शोषण और दोहन के कुत्सित व्यापार मे बाधक समझा जाता है। वे ईश्वर की सत्ता से इन्कार करते हैं, धर्म को ढकोसला कहते हैं, मानवता और मानव प्रेम उनको कोई अपील नहीं करता। निरोह और निरपराध बच्चो, स्त्रियों पुरुषों रोगियों और आहतों पर अत्याचार और बम वर्षा करने में उनको दुख नहीं होता। बात यह है अर्थ और काम के धर्म विहीन उपभोग ने उनके हृदय की

कोमल भावनाओं को सुखा दिया है और उसे मानवता से वंचित कर दिया है। लोगों की अधार्मिकता ही अर्थ और काम सम्बन्धी दुर्व्यवस्थाओं के लिए जिम्मेवार है। अतः सिद्ध है धर्म्म विहीन अर्थ और काम विनाशकारी होते हैं। इसलिए हमारे यहां पहला पद धर्म को दिया गया है उसके बाद दूसरा पद अर्थ को, तीसरा काम को, और चौथा मोक्ष को दिया गया है। जिसका अभिप्राय यह है कि धर्म पूर्वक अर्थ का उपार्जन और उपयोग करो। धर्म पूर्वक उपार्जित और मर्य्यादित अर्थ से काम का उपभोग करो। मर्यादित अर्थ और काम से मोक्ष की सिद्धि करो। इस वैज्ञानिक क्रम से स्पष्ट है कि अर्थ और काम के धर्म्म द्वारा मर्य्यादित हो जाने पर उनमे आसक्ति उत्पन्न नहीं होती और मोक्ष का मार्ग सुलभ हो जाता है। यह आसक्ति ही वर्तमान आर्थिक अव्यवस्था और अशान्ति का कारण है। इस आसक्ति ने अमर्य्यादित आकार धारण किया हुआ है और यही वर्तमान युद्ध का आन्तरिक कारण है और यही ५००० वर्ष पूर्व के महासमर का मूल कारण था।

## श्री स्वामी सर्वदानन्द जी

पूज्यपाद स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज अब इस संसार में नहीं हैं। स्वामी जी महाराज की मृत्यु से आर्य जगत् में जो स्थान रिक्त हुआ है उसकी पूर्ति होनी असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

स्वामी जी आर्य समाज के प्रौढ़ वक्ता थे। उनके भाषण बड़े सारगर्भित और सरल हुआ करते थे और जनता बड़े चाव से उन्हें श्रवण करती थी। वे कभी २ अपने व्याख्यानों में आर्य समाज की आलोचना भी कर देते थे और वह आलोचना सीमा का अतिक्रमण भी कर जाया करती थी परन्तु चूँकि वे आर्य समाज के विशुद्ध हित की भावना से होती थीं और स्वामी जी महाराज अनुभवी कार्य कर्ता और पूज्य थे, अतः आर्य नरनारी उससे बुरा न मानते थे। भारतवर्ष का शायद ही कोई प्रान्त वा नगर हो जहां स्वामी जी महाराज न गए हों। उन्हें आर्य समाज के प्रचार की अजीब धुन थी। इस धुन के मार्ग में शारीरिक कष्ट वा थकावट कदाचित ही बाधक हुई हो। स्वामी जी स्वभाव के बड़े सरल थे। अतः यात्रा के कष्टों की बहुत कम पर्वा करते थे और छोटे से छोटे ग्रामों वा कस्बों में भी जहाँ व्याख्यानों में उपस्थिति बहुत कम होती थी, वे अपने व्याख्यान दिया करते थे। आर्य समाज में इस कोटि के उच्च प्रचारक बहुत कम हैं। स्वामी जी के निधन से यह बड़ी हानि हुई है।

स्वामी जी आर्य समाज के उन इने गिने संन्यासियों और कार्य कर्ताओं में थे जिनमें

त्याग और तप उसी मात्रा में पाया जाता है जिसकी जनसाधारण आर्य समाज के कार्य कर्त्ताओं से आशा करता है। एक बार स्वामी जी महाराज को एक समाज के उत्सव पर जाना था। दैवयोग से ट्रेन छूट गई। वह स्थान रेल्वे स्टेशन से ३० मील की दूरी पर था। दूसरी ट्रेन कई घण्टे के पश्चात् जाती थी। स्वामी जी प्रतीक्षा किए बिना पैदल चल दिए और समाज के उत्सव पर जा पहुँचे। लोगों को स्वामी जी की पैदल यात्रा पर बड़ा आश्चर्य हुआ। खाने को जैसा सादा और सात्विक भोजन मिल गया उसी पर सन्तुष्ट रहते थे। आडम्बर और प्रदर्शन से उन्हें बड़ी घृणा थी। अपना फोटो तक खिचवाने को राजी न होते थे। उनके जो एक दो फोटो प्राप्तव्य हैं वे भी उनके शिष्यों ने चुपके २ उनके ज्ञान के बिना खिंचवा लिए हैं। सचमुच वे शब्द के ठीक २ अर्थ में वीतराग थे।

स्वामी जी महाराज की साहित्यिक सेवा उनके मौखिक प्रचार की अपेक्षा यद्यपि कम है तथापि उनके व्याख्यानों के कई संग्रह उपलब्ध हैं और उनसे आर्य समाज का साहित्य अलंकृत है। 'सन्मार्ग दर्शन' तो उनका बहुमूल्य ग्रन्थ है और आर्य समाज के साहित्य की सदैव शोभा बढ़ायगा।

स्वामी जी का कार्य्यक्षेत्र यद्यपि समस्त भारत था तो भी युक्त प्रान्त पर उनका बहुत अधिक ऋण है। संयुक्त प्रात के आर्य्यजनों का परम कर्त्तव्य है कि वे स्वामी जी का कोई उपयुक्त स्मारक स्थिर करें। स्वामी जी की प्रबल इच्छा थी कि काशी में आर्य समाज का एक अच्छा वेदविद्या का केन्द्र हो। संयुक्त प्रान्त को स्वामी जी की इस इच्छा की पूर्ति का यत्न करना चाहिए। भारत के अन्य प्रान्त उसको सहायता देने में पीछे न रहेंगे, ऐसा पूर्ण विश्वास है। स्वामी जी के शिष्यों और भक्तों को भी पूरा २ यत्न करना होगा।

इन शब्दों के साथ अपने परम पूज्य संन्यासी के प्रति श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए हम परमपिता से प्रार्थना करते हैं कि वे दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

पूज्यपाद श्री १०८ महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज रचित

अमूल्य पुस्तकें

## योग-रहस्य

तृतीय संस्करण

इस पुस्तक में योग के अनेक रहस्यों को प्रगट करते हुए उन विधियों को बतलाया गया है जिनसे कोई भी नया आदमी जिसे रुचि हो योग के अभ्यासों को कर सकता है। इसी पुस्तक में 'योग-दर्शन' भाष्य सहित भी है। आत्मोन्नति के जिज्ञासुओं को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पुस्तक मे २०० से अधिक पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटे पेपर पर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल ।–) प्रति।

## मृत्यु-परलोक

सत्तरहवाँ-संस्करण

इस पुस्तक मे शरीर, अन्तःकरण तथा जीवन का स्वरूप और भेद और सृष्टि की उत्पत्ति का प्रकार मृत्यु का स्वरूप तथा बाद की गति, मुक्ति और स्वर्ग, नरक इत्यादि लोकों का स्वरूप, मुक्ति के साधन आदि आदि विषयों पर अति सुन्दर रूप से प्रकाश डाला गया है। यह पुस्तक अपने ढङ्ग की निराली ही है। अतः इसे पढ़े बिना कोई व्यक्ति न रहना चाहिए। पुस्तक में लगभग ३०० पृष्ठ हैं। ऐन्टिक मोटा पेपर तथा मोटे टाइप में अति सुन्दर छपी हुई है। प्रचारार्थ मूल्य केवल ।–)

## विद्यार्थी जीवन रहस्य

द्वितीय-संस्करण

विद्यार्थियों तथा नवयुवकों को जीवन निर्माण मे सहायता देनेवाली अमूल्य पुस्तक

इस पुस्तक में विद्यार्थियों के लिए उनके जीवन के मार्ग का सच्चा पथ प्रदर्शक उनके जीवन के प्रत्येक पहलू पर शृङ्खलाबद्ध प्रकाश डालने वाले उपदेश अंकित हैं। अतः प्रत्येक नवयुवक तथा विशेष कर विद्यार्थियों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तक ऐन्टिक पेपर पर छपी हुई है। पृष्ठ संख्या लगभग १०० हैं। मूल्य केवल प्रचारार्थ ≡) प्रति।

नोट—पुस्तक विक्रेताओं को इन पर उचित कमीशन भी दिया जायगा।

पुस्तक मिलने का पता—

कार्यालय, सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा,

बलिदान भवन, देहली।

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तकें

**१—ईराक की यात्रा—** लेखक ने ईराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और ईराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७८ पृष्ठ हैं और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। ईराक के मुसलमान बादशाह ने मस्जिद और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाज़ारें बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल २)

**२—मेरी अबीसीनिया यात्रा—** लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किस कूटनीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगड़ा कर अबीसीनिया को ह[illegible]लिया आँखों देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

**३—हमारी जापान यात्रा—** इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान, जावा, सुमात्रा, बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन १८५० में पूर्णतः अवनति के गढ़े में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है, जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६६ पृष्ठ और ३७ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १॥)

पुस्तक मिलने का पताः—

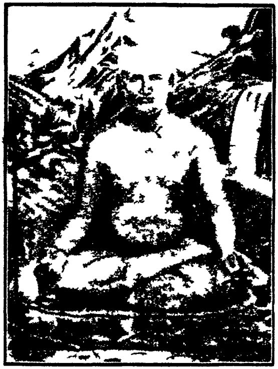
**बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाज़ार**
**बांदा ( यू० पी० ) जी० आई० पी० रेलवे।**

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली में मुद्रित।

जून १९४१ Reg No L 2121

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक— प्रो सुधाकर एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मू० स्वदेश २) एक प्रति का ) विदेश से ४ शि० वार्षिक

अथर्ववेद सामवेद

# लेख-सूची


| सं० | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | वेद की शिक्षायें | | १६१ |
| २. | मास भक्षण और खण्डन | श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. प्रयाग | १६२ |
| ३. | आर्य विवाह ऐक्ट व्याख्या | गताक से आगे | १६४ |
| ४. | अंग्रेजी मे आर्य वैदिक साहित्य | श्री प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति | १६६ |
| ५. | आर्य समाज की चिनगारियाँ | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज | १७१ |
| ६. | सुमन सचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | १७७ |
| ७. | सन्थाली पालापर्व या चक्रपूजा | श्री स्व० शिवानन्द जी तीर्थ मुङ्गेर | १८२ |
| ८. | विवेक और वैराग्य | स्व० श्री स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज | १८४ |
| ९. | वनस्पति घी से हानि | श्री जयगोपाल जी गोयन्दका | १८७ |
| १०. | A Tribute to the Arya Samaj | Sir C. P. Ramaswami Aiyer | १९० |
| ११. | आन्ध्रदेश मे कार्य | | १९४ |
| १२. | आर्य कुमार जगत् | देवव्रत धर्मेन्दु | १९६ |
| १३. | हा अमर शहीद वीर व्यङ्कटराव | सम्पादक | २०४ |
| १४. | साहित्य-समालोचना | | २०५ |
| १५. | सम्पादकीय | | २०६ |


---

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


* सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६ | ज्येष्ठ १९९८ | जून १९४१ ई० | [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क ४


## * वेद की शिक्षाएँ *

नाभिरहं रयीणाम् । अथ० १६।४।१

मैं धनों का केन्द्र बनूँ ।

Let me become the repository of riches.

* * *

मूर्धा सामानानां भूयासम् । अथ० १६।३।१

मैं लोगों में शिरोमणि बन जाऊँ ।

Let me occupy the first and foremost place amongst people.

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खण्डन

( २ )

( लेखक—श्री० डा० सत्यप्रकाशजी डी० एस० सी० प्रयाग )

वनस्पति की अपेक्षा पशु का मॉस जल्द पच जाता है।

यह गलत है। हम पहले कह चुके हैं कि मांस से तीक्ष्णता उत्पन्न होती है और इससे मनुष्य की पाचन शक्ति विकृत होती है। निम्न तालिका से स्पष्ट है कि मांस के पचने में वनस्पति की अपेक्षा दुगुना समय लगता है।

| भोजन | कैसे पकता है | पाचन का समय |
|---|---|---|
| चावल | उबाला जाता है | १ घण्टा |
| सेब | कच्चा | १॥ „ |
| जौ | उबाला जाता है | २ „ |
| आलू | भूना „ „ | २॥ „ |
| रोटी | सेकी जाती „ | ३। „ |
| दूध | उबाला जाता है | २ „ |
| पक्षियों के बच्चे | तले जाते हैं | २॥। „ |
| गो मांस की छड़ें | भूनी जाती हैं | ३ „ |
| भेड़ बकरी का मांस | उबाला जाता है | ३॥ „ |
| मुर्गी „ „ | „ „ „ | ४ „ |
| बछड़े „ „ | तला जाता है | ४ „ |
| सूअर का „ | भूना „ „ | ५। „ |
| गोमांस | उबाला जाता है | ५॥ „ |

मॉस मे प्रोटीन बहुत होता है और कृषि के पदार्थों में बहुत कम होता है। जीवन रक्षा के लिए प्रोटीन अत्यन्त आवश्यक पदार्थ होता है अतः मॉस का आश्रय क्यों न लिया जाय?

मांस की प्रोटीन से पेशाब सम्बन्धी उष्णता और अन्य बाधाएँ उत्पन्न होती हैं जिनसे गठिया, हिस्टीरिया और सिर पीड़ा आदि बहुत से रोग उत्पन्न होते हैं।

मानवी प्रयोग के लिए जो मांस उपयुक्त समझा जाता है उसका अधिकांश भाग बकरी, भेड़, गऊ, घोड़ा और ऊँट जैसे वनस्पति खाने वाले पशुओं से प्राप्त किया जाता है। इससे स्पष्ट है कि मांस की प्रोटीन की अपेक्षा वनस्पति की प्रोटीन बढ़िया है। यदि इन पशुओं को वनस्पति के भोजन से सर्वश्रेष्ठ प्रोटीन प्राप्त हो सकती है तो कोई कारण नहीं कि वनस्पति के भोजन से मनुष्य अपनी शक्ति न बढ़ाए। मनुष्य को जो मैशीन कुदरत की ओर से प्राप्त है उसका अभिप्राय यही है कि वनस्पति जगत से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करे।

---

# आर्य्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

( गतांक से आगे )

## आर्य्य विवाह ऐक्ट किस पर लगता है

जैसाकि ऐक्ट के नाम से बोध होता है, यह ऐक्ट आर्य्य समाजियों के लिए पास हुआ था। ऐक्ट की धारा सं० २ में यह व्यवस्था की गई है कि विवाह के समय वर और वधू आर्य समाजी होने चाहिएँ। वर वधू का विवाह से पूर्व धर्म क्या था यह गौण प्रश्न है, परन्तु यदि वे विवाह के समय आर्य समाज के सिद्धांतों में अपना विश्वास स्वीकार करें तो वे ऐक्ट के आधीन विवाह करने में सर्वथा योग्य समझे जाते हैं। मुसलमानों और ईसाइयों के आर्य समाज में प्रवेश के लिए एक नियमित प्रवेश पद्धति है जो हवन के साथ सम्पन्न होती है परन्तु हिन्दुओं के प्रवेश के लिए इस प्रकार की कोई पद्धति नहीं है।

आर्य समाज के नियमों और सिद्धांतों में अपने विश्वास की घोषणा करने अथवा आर्य समाज का नियमित सदस्य बन जाने से कोई भी हिन्दू नियम पूर्वक आर्य समाजी बन जाता है। आर्य समाजी शब्द की परिभाषा के सम्बन्ध में धारा सभा में पर्याप्त विवाद हुआ था। इस बिल के प्रारंभिक प्रस्तोता श्रीयुत चौ० मुख्तारसिंह जी ने १६३१ में आर्य समाजी की परिभाषा निम्न प्रकार प्रस्तुत की थीः—

(अ) जो आर्य समाज का सदस्य हो।

(ब) जो एक लेख पत्र लिखे जिसमें अपने विवाह के १ वर्ष वा इस ऐक्ट के पास होने के ५ वर्ष के भीतर भीतर आर्य समाजी होने की घोषणा करे।

(स) धारा (अ) और (ब) में उल्लिखित व्यक्ति के परिवार का सदस्य हो वा उसका आश्रित हो।

धारा (ब) उन व्यक्तियों की सुविधा के लिये रक्खी गई थी जिन्होंने इस क़ानून के पास होने से पूर्व अन्तर्जातीय विवाह किए थे। यह व्यवस्था प्रस्तुत की गई थी कि वे व्यक्ति नियमित और लिखित घोषणा द्वारा यह उद्घोषित करें

कि विवाह के समय वे आर्य समाजी थे। यह घोषणा उनके विवाहों को वैध बनाने के लिए पर्याप्त समझी गई थी। इस कानून के पास होने के पश्चात् उन्हें ५ वर्ष का समय दिया गया था जिसके भीतर भीतर उन्हें अपेक्षित घोषणा करना आवश्यक था। इस (ब) धारा में यह भी रक्खा गया था कि कानून के पास होने के बाद यदि कोई विवाह एक वर्ष के पश्चात् हो तो वर और वधू विवाह की तिथि के १ वर्ष के भीतर २ अपने को आर्य्य समाजी उद्घोषित कर दें।

सेलेक्ट कमेटी की सम्मति यह थी कि विवाह के समय वर और वधू की स्थिति क्या थी, इस प्रश्न के निर्णय को बाद की किसी घोषणा पर छोड़ देने से भयावह परिणामों की आशंका हो सकती थी अतः उन्होंने प्रस्ताव किया कि विवाह के समय वर और वधू की स्थिति के प्रश्न का निर्णय अदालत पर छोड़ दिया जाय और अदालतें प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के प्रकाश में निर्णय करें, और आर्य समाजी की परिभाषा बिल्कुल निकाल दी जाय।

वर और वधू विवाह के समय आर्य समाजी थे इस बात को सिद्ध करने के लिए प्रमाण प्रस्तुत किए जा सकते हैं, और अदालत अपने सन्तोष के लिए विविध परस्थितियों पर विचार कर सकती है। क्या विवाह के पूर्व वर और वधू का आर्य समाज में प्रवेश संस्कार हुआ था जैसा ईसाई और मुसल्मानों का होता है। क्या वर और वधू वा उनके माता पिता आर्य समाज के नियमित सदस्य थे ? क्या उन्होंने आर्य समाज के सिद्धान्तों में अपने विश्वास की नियमित घोषणा की थी ? क्या उनके परिवारों में वैदिक संस्कार होते हैं वा उनका विवाह वैदिक रीति से हुआ था ? ये कुछ प्रश्न हैं जो अदालत अपने सामने रख सकती है।

मारवाड़ी जाति के प्रतिनिधि और धारा सभा में सनातनियों के मुख्य वक्ता श्रीयुत बजोरिया एम० एल० ए० ने संशोधन प्रस्तुत किया था कि इस कानून की धाराओं से लाभ उठाने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्तियों का नाम आर्य्य समाज के रजिस्टर में कम से कम १ वर्ष से लिखा हुआ हो। भाई परमानन्द जी एम० एल० ए० ने कहा कि ऐसे बहुत से व्यक्ति हैं जो आर्य समाजी तो हैं परन्तु आर्य समाज के रजिस्टर्ड सदस्य नहीं हैं अथवा आर्य समाज के नियमित चन्दा देने वाले सदस्य नहीं रहे हैं। अन्त में लम्बी बहस के पश्चात् जिसमें

आ० मेम्बर श्रीयुत नृपेन्द्र सरकार ने मुख्य भाग लिया था, सेलेक्ट कमेटी का दृष्टिकोण विजयी रहा। यदि मुसल्मान वा ईसाई धर्म में दीक्षित होने वाले व्यक्ति केवल यह कहकर कि वे ईसाई और मुसल्मान धर्म को अंगीकार करते हैं जब मुसल्मान और ईसाई स्वीकार कर लिए जाते हैं तब आर्य समाजियों के लिए समय की अवधि नियत किए जाने की कोई आवश्यकता न थी। 'आर्य समाजी' की परिभाषा किए जाने का प्रारंभिक यत्न कई दृष्टियों से असन्तोष प्रद था और इस प्रश्न का निर्णय परिस्थितियों इत्यादि को सम्मुख रखकर किए जाने के निश्चय से परिभाषा में निश्चय ही अच्छा सुधार हो गया है।

---

# अंग्रेज़ी में आर्य वैदिक साहित्य

[ ले०—प्र० स्ना० धर्मदेव सिद्धातालङ्कार विद्यावाचस्पति
वैदिक धर्म प्रचारक सार्वदेशिक आ० प्र० सभा देहली]

अभी कुछ दिन हुए मुझे श्रीयुत रामचन्द्र राव B. A. B. T. नामक एक बंगलौर के सुशिक्षित सज्जन का निम्न लिखित पत्र ज्वालापुर में प्राप्त हुआ:—

Dear Pandit ji,

I would like to know whether there are English translations of Vedas and if there are, the place where they are found. I am very eager to read them. I know it is unfortunate to read them in English. As I do not know Sanskrit, I must make the best use of the bad bargain. I am anxious to become a member of your Arya Samaj and render my bit of humble service to it."

जिसका अर्थ यह है कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या वेदों के अंग्रेजी में अनुवाद हैं यदि हां, तो वे कहां मिल सकते हैं। मैं उन्हें पढ़ने के लिये अत्यन्त उत्सुक हूँ। मैं जानता हूँ कि यह दुर्भाग्य की बात है कि मैं उन्हें (वेदों को) अंग्रेजी अनुवाद द्वारा पढ़ूँ किन्तु क्योंकि मैं संस्कृत नहीं जानता इसलिए मुझे इस बुरे व्यापार वा दुर्भाग्य का अच्छे से अच्छा लाभ उठाना चाहिए। मैं आर्य समाज का सदस्य बनने और उसके प्रति अपनी तुच्छ सेवा करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हूँ।

इस पत्र को पढ़कर जहां मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि सुशिक्षित जनता में अब वेदों के पढ़ने की उत्सुकता उत्पन्न हो रही है और आर्य समाज के प्रति उनका प्रेम बढ़ रहा है वहां उनको यह सूचित करते हुए कि अभी तक दुर्भाग्य वश चारों वेदों क्या, एक वेद का भी अँग्रेजी में यथार्थ अनुवाद विद्यमान नहीं है मैंने अपने अन्दर जिस लज्जा का अनुभव किया उसे मैं ही जानता हूँ।

कुछ वर्ष पूर्व की बात है कि ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के एक प्रमुख सदस्य जो मजदूर दल के थे बैंगलौर पधारे थे। मैं उन्हें वैदिक धर्म और आर्य समाज का

परिचय देने के लिए गया। आर्य समाज का मुख्य उद्देश्य वेदों का देशादेशान्तर में प्रचार करके उसके द्वारा संसार का उपकार करना है इत्यादि बातें जब मैंने उन्हें बतलाईं तो वे वेदों के विषय में जानने को अत्यन्त उत्सुक हुए और उन्होंने मुझे वेदों के अँग्रेजी अनुवाद देने या उनके मिलने का पता बताने के लिये कहा। मैंने जब उन्हें सत्यार्थ प्रकाश का डा० चिरञ्जीव भारद्वाज कृत अँग्रेजी अनुवाद भेंट करने के अतिरिक्त स्व० पं० घासीराम जी कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका के अँग्रेजी अनुवाद तथा दो चार अन्य छोटी २ पुस्तकों का जिसमें कुछ वेद मन्त्रों का अनुवाद विद्यमान है पता दिया तो वे कहने लगे रुपये की पर्वाह नहीं मैं इसके लिये कुछ भी खर्च करने को तय्यार हूँ। आप मुझे चारों वेदों के प्रामाणिक अँग्रेजी अनुवाद मिलने का पता बतलाइये जिससे मैं उन्हें खरीद लूँ और उनसे लाभ उठाऊँ। क्या आपके पास केवल इतना ही वैदिक साहित्य अंग्रेजी में विद्यमान है ?

उनकी इस बात को सुनकर मैं अत्यन्त लज्जित हुआ क्योंकि मुझे यह बताना पड़ा कि अभी तक किसी भी वेद का प्रामाणिक अँग्रेजी अनुवाद विद्यमान नहीं है। हां, आशा है कुछ वर्षों के अन्दर यह तय्यार हो जायगा। तब तक आप इन्हीं पुस्तकों को पढ़ लें जिनसे वैदिक शिक्षाओं की महत्ता आप को ज्ञात हो जायगी।

इस तरह के पत्र अँग्रेजी में वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक बार आते रहते हैं और जब कभी सुप्रसिद्ध ईसाई वा मुसलमान प्रचारकों के वेदों के प्रो० मैक्समूलर, ग्रिफ़िथ आदि यूरोपियन विद्वानों वा श्री सायणाचार्य उव्वट महीधरादि पौराणिक कालीन भारतीय विद्वानों द्वारा किये भाष्यों के आधार पर किये गये आक्षेपों का उत्तर देते हुए हम लोग उनकी अप्रमाणिकता सिद्ध करते हैं तो वे हमसे वेदों के अँग्रेजी में यथार्थ प्रामाणिक अनुवाद मांगते हैं और तब हम लोगों को लज्जा के साथ कहना पड़ता है कि ऐसा प्रामाणिक अँग्रेजी अनुवाद अभी तक किसी वेद का भी विद्यमान नहीं है।

यह अवस्था वस्तुतः कितनी शोचनीय है कि जो वेद हमारे धर्म की आधार शिला हैं, जिन्हें ईश्वरीय पवित्र ज्ञान मानते हुए देशादेशान्तर और द्वीपद्वीपान्तरों में उनके प्रचारार्थ प्रयत्न करना आर्यसमाज अपना कर्तव्य समझता है उन वेदों का कोई अनुवाद अंग्रेजी या अन्य विदेशीय भाषा में विद्यमान नहीं है जिसे

हिन्दी और संस्कृत आदि से अनभिज्ञ भारतीय या विदेशी विद्वानों को दिया जा सके। प्रो० मैक्समूलर आदि के अनुवाद कई स्थानों पर अत्यन्त अस्पष्ट, अश्लील और उपहासजनक हैं इस बात को तो अब यूरप अमेरिका के बड़े २ विद्वान् भी स्वीकार करने लगे हैं। उदाहरणार्थ Sacred Books of the East Series के रशियन संस्करण के सम्पादक मि० बौलंगर (Boulanger) ने प्रो० मैक्समूलर के वेदों के अनुवाद से असन्तोष प्रकट करते हुए कुछ वर्ष पूर्व लिखा था।

"I find unfortunately that if the Russian public is to make its acquaintance with the Vedas through Maxmullor's translation, the interest of the public will not be aroused in the Vedas What struck me in Maxmullar's translation was a lot of absurdities, obscene passages and a lot of what is not lucid .. .. .. As for as I can grasp the teaching of the Vedas, it is so sublime that I would look upon it as a crime on my part if the Russian public become acquainted with it through the medium of a confused and distorted translation, thus not deriving for its soul that benefit which this teaching should give to the public."

*Torch Bearer P. 14.*

इसका सारांश यह है कि दुर्भाग्यवश मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि रशियन जनता को वेदों का परिचय प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद द्वारा कराया जाय तो जनता की रुचि उनके अध्ययन में कभी उत्पन्न न हो सकेगी। मुझे प्रो० मैक्समूलर के अनुवाद में जो बात बड़ी विचित्र लगी वह यह कि उसमें वाहियात अश्लील और अस्पष्ट वाक्यों की भरमार है। जहां तक मैं वेदों की शिक्षा को समझ सका हूं, वह इतनी उत्कृष्ट है कि प्रो० मैक्समूलर जैसे भ्रमोत्पादक अशुद्ध अनुवाद द्वारा रशियन जनता को परिचित कराना और इस प्रकार उन्हें उस आध्यात्मिक लाभ से वञ्चित रखना जो यह वैदिक शिक्षा लोगों को देती है, मैं बड़ा अपराध वा पाप मानता हूं। इत्यादि।

किन्तु प्रश्न तो यह है कि हम केवल प्रो० मैक्समूलर वा सायणादि के भाष्यों की समालोचना करके ही कब तक सन्तोष करते रहेंगे? क्या श्रीमती

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा में जिसका एक मुख्य उद्देश्य 'आर्यावर्त तथा अन्य देश देशान्तरों में वैदिक धर्म के प्रचार का प्रबन्ध करना है तथा वैदिक धर्म की उन्नति तथा वृद्धि और रक्षा के उपायों को प्रयोग में लाना है।' ऐसा एक विभाग होना उचित और आवश्यक नहीं जिसके द्वारा वैदिक साहित्य का प्रामाणिक अंग्रेजी अनुवाद सुयोग्य विद्वानों द्वारा करवाया जावे। श्रीमती सार्वदेशिक सभा समय समय पर योग्य प्रचारकों को विदेशों मे वैदिक धर्म प्रचारार्थ भेजती रही है। यह बड़ी प्रसन्नता की बात है। किन्तु ऐसे प्रामाणिक अनुवाद तथा वैदिक धर्म सम्बन्धी अन्य उत्तम साहित्य के बिना उसमें विशेष सफलता मिलनी ( विशेषतः वहां की सुशिक्षित जनता में ) मेरे विचार में सर्वथा असम्भव है। अतः मेरा दृढ़ विचार है कि यदि अभी तक प्रतिष्ठित सभा का ऐसा कोई विभाग नहीं है तो उसे अवश्य ही अतिशीघ्र इस विभाग की स्थापना करनी चाहिये तथा अंग्रेजी में एक उच्च कोटि का मासिक पत्र भी अवश्य निकालना चाहिये जिस में वेदों का प्रामाणिक अनुवाद और वैदिक धर्म के तत्त्व विषयक उत्तम लेख प्रकाशित होते रहें। स्वर्गीय आचार्य रामदेव जी श्रीमती सार्वदेशिक सभा के अनेक वर्षों तक उपप्रधान रहे थे। उनका सब्चा स्मारक जो प्रतिष्ठित सभा स्थापित कर सकती है वह मेरी तुच्छ सम्मति में यही हो सकता है कि उन द्वारा सम्पादित 'Vedic Magazine' ( वैदिक मैगज़ीन ) को फिर से जारी किया जावे और ऐसा प्रबन्ध किया जाए कि वह पूर्व की उच्च स्थिति को फिर से प्राप्त करके वैदिक धर्म के प्रचार का उत्तम साधन बन सके। यदि प्रतिष्ठित सभा इस अत्यावश्यक कार्य को हाथ में ले तो मेरा विश्वास है कि कई योग्य सज्जन इस कार्यार्थ उसे मिल सकेंगे जो ऐसे पवित्र कार्य में सहयोग देना अपना कर्त्तव्य समझेंगे। आशा है मेरे इस नम्र निवेदन पर प्रतिष्ठित सभा उचित ध्यान देगी और शीघ्र ही इस लेख में प्रस्तुत विभाग की व्यवस्था करेगी।

---

# आर्य्य समाज की चिनगारियाँ

## मूक प्रचारक

( १ )

स्वर्गीय स्वामी निजात्मानन्दजी जिनका देहान्त २६-३-४१ को देहली में हो गया, आर्यसमाज के मूक कार्यकर्ता थे। आपका जन्मजिला गुजरांवाला के ग्राम में हुआ था, आपने उसी जिले में उर्दू मिडल तक पढ़ाई की। पश्चात् पटवारी-कानूनगो, मुन्सरम के पद पर अंग्रेजी इलाका भावलपुर, जम्मू, पटियाला, अलवर, भरतपुर तथा जोधपुर में रहे। आप आर्यसमाजी जोधपुर में हुए। आपका प्रथम नाम परशुराम जी था। आपने कभी व्याख्यान नहीं दिया परन्तु आर्यसमाज का काम किया। आर्यसमाज सरगोधा का मन्दिर बनाने वाले आप हैं—आर्यसमाज गंगा नगर का मन्दिर आपने बनवाया। आर्यसमाज कालेकी में काम किया।

जम्मू राज्य में आपने पाठशाला खोलकर कुछ साल चलाई। आप वैद्य भी थे, विशेष रोगों की आपको विशेष औषधि मालूम थी। आप जहां रहते थे औषधि का काम करते थे। छीना गुरदासपुर में जो आर्य प्रतिनिधि सभा की जायदाद है उसका आपने अपने समय में उत्तम प्रबन्ध किया था।

आपकी आयु ८१ वर्ष की थी जब कि नई देहली में भौतिक शरीर को छोड़ा। इस प्रकार आप मूक प्रचारक थे। प्रचार की इच्छावालों को इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

( २ )

स्वर्गीय स्वामी अनुभूतानन्दजी का देहावसान ८-४-४१ को ५० वर्ष की आयु में आदमपुर द्वाबा में हो गया, आपकी संक्षिप्त जीवनी इस प्रकार है।

आपका जन्म मानसा राज्य पटियाला में हुआ। आपके पिता का पिता का नाम ठाकुरसिंह था। आपका जन्म चूहड़ा जाति में जो अछूत मानी थी, हुआ। आपके

चचा अलाल भाणा जिला हिसार तहसील सिरसा में रहते थे यह उनके पास भी आया करते थे वहां मुन्शी कालेखां (वर्तमान मुन्शी कृष्णचन्दजी) जो उसी ग्राम के निवासी थे, जी से भेंट हो गई और उसके सत्संग से आप आर्यसमाज की ओर झुके और संस्कृत पढ़नी आरम्भ की।

जगराऊ जिला लुधियाना, फगवाड़ा राज्य कपूरथला, दयानन्द उपदेशक विद्यालय लाहौर और तातारपुर जिला होशियारपुर में आप पढ़ते रहे। जब तातारपुर पढ़ते थे तब एक दिन एक पण्डित ने आर्यसमाजियों के यत्न करने पर भी यहां आर्यसमाज न बना, ऐसा कहा। आपने कहा यत्न ही न किया होगा। पण्डित जी ने कहा आप कर लें। आपने कहा, अच्छा! आपका नाम उस समय ब्रह्मचारी परशुराम जी था। आपने पढ़ाई छोड़ दी और एक खड्ड के किनारे पत्थरों पर बैठ गए भिक्षा लाकर उदरपूर्ति की और आसन वहां जमाया। शीत, आतप, वर्षा सब वहां बैठकर सहन की। इसी तपस्या से प्रभावित होकर एक राजपूत ने आपको भूमि दी और उन्होंने भिक्षा से धन संग्रह करके आर्य मन्दिर और कूप लगवाया और आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के नाम रजिस्टर्ड करवाया।

उसके पश्चात् इसी प्रकार की घटना गढ़दीवाला में हो गई। एक ब्राह्मण से इन्होंने पूछा यहां आर्यसमाज है उसने इनको और आर्यसमाज को अपशब्द कहे, आप उस समय तो चले गए। पुनः आकर बैठ गए और गीता आने वालों को सुनाने लगे। अन्त में वहां भी मन्दिर भूमि लेकर बनवाया जो प्रादेशिक सभा के नाम है।

अनंतर आदमपुर द्वाबा में मन्दिर बनवाया, उसकी भूमि पहले क्रय हो चुकी थी।

आपने अछूतों के अनेक लड़कों को बी० ए०, एफ० ए० और मैट्रिक पास करवाया और कई लड़कों को संस्कृत पढ़ाई, वैद्यक की शिक्षा दिलाई, उनको योग्य बनाकर काम पर लगवाया।

इतना काम किया परन्तु भाषण कभी नहीं दिया, कथा कभी नहीं की, साधारण बातचीत किया करते थे अनेक स्त्री पुरुषों को आर्य बनाया।

इससे उन व्यक्तियों को शिक्षा लेनी चाहिए जो प्रचार करना चाहते हैं।

## देवनागरी आर्य भाषा

### भगत रेमलदास जी

भगत रेमलदास जी मुल्तान निवासी थे और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुख्य कार्यकर्ताओं में एक थे। आपने आर्य समाज में आर्य भाषा देवनागरी लिपि का प्रचार बलपूर्वक किया। लेखक ने उनके दर्शन कई आर्य समाजों के उत्सवों पर किये। एक प्रसिद्ध आर्य समाज के उत्सव पर वह पधारे और बिना व्याख्यान दिये लौट गए। अधिकारियों, आर्य समाजियों ने बहुतेरा बल लगाया परन्तु आपने व्याख्यान न दिया। उनका नियम था कि निज पत्र व्यवहार आर्य भाषा देवनागरी लिपि में करते थे, आर्यसमाजी भी इस बात से परिचित थे इसलिये उनके साथ पत्र व्यवहार देवनागरी लिपि में किया गया। उन्होंने उत्सव में सम्मिलित होना स्वीकार कर लिया और उत्सव पर आए, आने पर पता लगा कि उत्सव के विज्ञापन देवनागरी में न छाप कर उर्दू लिपि में छापे हैं इससे उनको बड़ा कष्ट हुआ और उन्होंने कहा मैं आपके यहां व्याख्यान न दूंगा और न दिया।

मैंने उनसे पूछा आप देवनागरी लिपि के विषय में क्या चाहते हैं ? उन्होंने बताया आर्य समाज को अपना व्यवहार देवनागरी लिपि में करना चाहिये यदि अन्य लिपि का आश्रय लेना ही हो तो प्रथम देवनागरी लिपि लिखकर पश्चात् अन्य लिपि का प्रयोग करें जैसे इन ही विज्ञापनों में यदि यह देवनागरी लिपि के साथ उर्दू छापते तो मुझे कोई आपत्ति न होती परन्तु इन्होंने देवनागरी को स्थान ही नहीं दिया है। दुकानों के बोर्डों के विषय में उनका विचार था कि बोर्ड में सब के ऊपर देवनागरी लिपि होनी चाहिये और अंग्रेजी व उर्दू नीचे हों।

यदि आर्य समाजी उनका अनुकरण करते तो अब तक देवनागरी लिपि का प्रचार अब से कहीं अधिक होता अब भी यदि उनका कहना मानकर निज व्यवहार देवनागरी लिपि में करने लग जायं तो परिणाम उत्तम निकल सकता है।

### डा० चिरंजीव भारद्वाज जी

श्री डाक्टर जी वंश की दृष्टि से श्याम चौरासी के रहने वाले थे परन्तु आपके पूज्य पिता श्री गोबिन्दपुर में काम करते थे अतः आपका बाल्यकाल वहां व्यतीत हुआ और आपने प्रथम शिक्षा भी वहां ही प्राप्त की। जब आप लाहौर आए तो आर्यभाषा और देवनागरी से अनभिज्ञ थे लाहौर आकर ही आपने पढ़ी। अब

आप आर्य प्रतिनिधि सभा के मन्त्री बने तब सब कार्य उर्दू लिपि में होता था। आपने कहा जब उपनियमों में महर्षि ने प्रत्येक आर्य को आर्य भाषा वा संस्कृत सीखने का आदेश दिया है तब सभा में उर्दू लिपि क्यों ? उन्होंने सभा में सब कार्य देवनागरी लिपि में होने का विधान करवाया। उस समय से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में सब कार्य देवनागरी लिपि में होता है। अब भी कोई कोई आर्य समाज अपना काम उर्दू लिपि में करते हैं उनको स्वर्गीय आत्मा चिरंजीव जी और आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का अनुकरण करके अपना काम देवनागरी लिपि में करना चाहिये।

## महात्मा मुन्शीराम जी ( स्वामी श्रद्धानन्द जी )

महात्मा जी 'सद्धर्म्म प्रचारक' साप्ताहिक पत्र निकालते थे। यह पत्र प्रथम उर्दू लिपि में था। एक समय महात्मा जी ने विचार किया कि आर्य समाज का पत्र देवनागरी लिपि में होना चाहिये तब सद्धर्म प्रचारक देवनागरी में कर दिया गया। उस समय आर्य समाज में देवनागरी लिपि का इतना प्रचार न था जितना अब है इसलिये महात्मा जी को हानि भी उठानी पड़ी और सद्धर्म्म प्रचारक का जो बल पूर्व था उसमें भी न्यूनता आगई परन्तु महात्मा जी अपनी धुन के पक्के और आर्य समाज के उपनियमों आदि के अत्यन्त प्रेमी थे अतः उन्होंने अपना पत्र देवनागरी लिपि में ही रक्खा।

अन्य समय में आपने देहली से २ पत्र निकाले तेज ( उर्दू लिपि में ) जिसके संचालक श्री देशबन्धु जी हैं, अर्जुन (देवनागरी में) जिसके संचालक पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति हैं। आपने हिन्दी साहित्य सम्मेलन का प्रधान पद भी सुशोभित किया था।

पंजाब में जो पत्र आर्य जाति के सज्जनों के हाथ में है उनको महात्मा जी का अनुकरण करना चाहिये। वह अपने पत्र देवनागरी लिपि में निकालें। यदि ऐसा न कर सकें तो साप्ताहिक मासिक कुछ न कुछ तो देवनागरी में निकाला करें ताकि इस लिपि का प्रसार अधिक से अधिक हो।

उपरि लिखित तीनों सज्जन आर्य समाज के प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं और इनका अनुकरण करने से आर्य जाति का लाभ है। अतः पाठक वृन्द विशेषकर पंजाब और पश्चिमी संयुक्तप्रान्त को इनका अनुकरण अवश्य करना चाहिये।

## सात्विक दान वीर

आर्य समाज का काम आरम्भ से ही दान पर चला है। इसका प्रत्येक कार्य अनेक व्यक्तियों के दान से पूरा होता है इसलिये एक व्यक्ति का दान आर्य समाज में विशेष दान है उनमें से कुछ का वर्णन करता हूँ।

स्वर्गीय कृपाराम जी साहनी भेरा जिला शाहपुर के निवासी थे। आपने अपने लघु भ्राता सहित व्यापार का काम आरम्भ किया। प्रथम आप भ्रमण करके कार्य करते थे आपकी बुद्धिमत्ता, आपके उद्यम और धर्म प्रेम ने आपकी सहायता की, ईश्वर कृपा से आप सफल व्यौपारी हुए, तब आपने दुकान बनाई जिसका नाम कृपाराम ब्रदर्स है।

इस समय कोहमरी, रावलपिण्डी, पिशावर सदर, लाहौर में दुकानें हैं और उत्तमता से कार्य होता है। जब आप रावलपिण्डी में थे उस समय पंजाब के आर्य समाज में फूट का फल लग चुका था और थोड़े समय में ही पक्का तय्यार हो गया था। उसके परिणाम में प्रत्येक नगर में कुछ न कुछ भेद पड़ा। कहीं अधिक कहीं न्यून, जहां २ आर्य मन्दिर थे उन पर अधिकार की चेष्टा हुई जहां सम्पत्ति थी उसे हस्तगत करने के यत्न हुए, लाहौर में सभा तथा कालिज की सम्पत्ति कालिज विभाग में गई। उस समय रावलपिण्डी में भी झगड़ा हुआ। आर्य समाज मन्दिर में साप्ताहिक सत्सङ्ग हो रहा है। एक आर्य प्रार्थना करवा रहे हैं (जहां तक सुना है उनका नाम लाला काशीराम जी चोपड़ा था) उस समय उन पर आगे से आक्रमण किया गया और सत्सङ्ग युद्ध में परिवर्तित हो गया।

उस समय भगत कृपाराम जी के मन में नई भावना उत्पन्न हुई। वह उस दृश्य से दुःखी हुए और अपने मन में संकल्प किया कि मन्दिर के लिए झगड़ना अनुचित है।

उन्होंने भूमि क्रय की। उसपर भवन निर्माण किया। लोग समझते थे लाला जी अपना मकान बनवा रहे हैं। आप ने हाल, गैलरी के साथ कमरे बनवाकर दरी, बाजा, तबलादि आर्य समाज के मन्दिर का सब सामान ठीक करके उसका प्रवेश संस्कार किया और उसी समय आर्य समाज को सौंप दिया।

रावलपिण्डी में आर्यसमाज का पहला मन्दिर था जो एक ही व्यक्ति ने बनवाया था। उसके बनवाने वाले थे लाला कृपाराम जी।

× × ×

दूसरा मन्दिर देहली में स्वर्गीय लाला दीवानचन्द जी का दीवान हाल है।

लाला दीवानचन्द जी सैदपुर जिला जेहलम के निवासी थे। आप प्रथम १२) मासिक वेतन पर नौकर होकर मराला हैड पर काम करते थे। एक बार

लाहौर में शाह आलमी दरवाजे के पास लाला जी मुझे मिले । वहां खड़े बातें कर रहे थे जबकि एक सज्जन आए। नमस्ते के पश्चात् लाला दीवानचन्द जी ने मुझे सम्बोधन करके कहा स्वामी जी मैं इनके पास १२) पर नौकर हुआ था आप उनसे पूछ लें मैंने ईमानदारी से काम किया था वा नहीं ?

मराला में ही आपने नौकरी छोड़ कर ठेका का काम आरम्भ किया था उसके पश्चात् आप देहली में आकर कोयले का काम करते रहे, तदनन्तर आपने अनेक कामों के ठेके लिये और ईश्वर ने आपको सफलता दी।

देहली में जिस समय आप काजीहौज के पास किराए के मकान में रहते थे उस समय लेखक का परिचय हुआ। आपने फिर जामा मसजिद के पीछे मकान बनवाया और पश्चात् नई देहली मे भवन निर्माण किया।

अन्त में लेखक को लाला जी लाहौर कांग्रेस पर मिले अनेक बातें होती रहीं। क्या पता था कि यह अन्तिम दर्शन हैं ?

आप लाहौर से चलते समय अपनी वसीयत लिख आये थे, जिसमें आर्य समाज बनाने का भी उल्लेख था, आपके लेखानुसार मन्दिर चांदनी चौक में डेढ़ लाख व्यय से बनवाना था, पचास सहस्र की भूमि और एक लाख का मकान। ट्रस्टीयों ने जब आर्य समाज का मन्दिर पूरा किया तो उसमें २ लाख व्यय होगया।

आर्य जगत् में इतना बड़ा मन्दिर कोई नहीं है। वह सबसे बड़ा मन्दिर है। इसका भवन दर्शनीय है। हाल, धर्मशाला, निवास गृह, जल प्रबन्ध सब ही उत्तम हैं।

× × ×

तीसरा मन्दिर न्यू देहली में हनुमान रोड का है। यह मन्दिर दानवीर स्वर्गीय लाला दीवानचन्द जी की धमपत्नी श्रीमती सत्यभामा ने बनवाया है। जहां देहली में दीवान हाल है वहां नई देहली में अपने पति का अनुकरण करके इस देवी ने यह मन्दिर बनवाया है। इस पर पचपन सहस्र रुपया व्यय हुआ है।

आर्य समाज के नगरों के मन्दिरों में जिनको मैं जानता हूँ यह तीन मन्दिर ही हैं जो एक २ व्यक्ति ने अपने पास से बनवाए हैं। अन्य मन्दिर मिश्रित दान से निर्मित हुए।

जिस प्रकार सनातन धर्मियों में, मुसलमानों में मन्दिर बनवाने में पुण्य भावना है आर्य समाज में उनके समान नहीं है तो भी आर्य समाज में मंदिर बनते हैं जहाँ मन्दिर न हों वहां मन्दिर अवश्य बनवाने चाहिए ताकि जनता को सत्संग का लाभ मिल सके।

-स्वतंत्रानन्द

# सुमन-संचय

## ( १ )

### कर्त्तव्य-भावना

१९१६ ईस्वी की बात है जब युरोपीय महासमर अपने पूर्ण यौवन में था। जर्मनी का फ्रांस के साथ तुमुल युद्ध हो रहा था। जर्मन सेना फ्रांस सेना द्वारा बुरी तरह से घिरी हुई थी। शिविर से बाहर जाना आग के साथ खेलना था। जर्मन फौज के अफसर को दूसरे अफसर के पास एक आवश्यक समाचार भेजना था। उसे चिन्ता थी कि यह समाचार किसके द्वारा भेजा जाय। अनेक व्यक्तियों ने सन्देश ले जाने के लिए अपने नाम प्रस्तुत किए परन्तु उसे भय था कि यदि सन्देश ले जाने वाला शत्रुओं द्वारा पकड़ा गया और वह सन्देश उन पर प्रगट हो गया तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। वह चाहता था कि सन्देश ऐसे व्यक्ति द्वारा भेजना चाहिए जो जीवन संकट में पड़ने पर भी किसी पर रहस्य प्रगट न होने दे। बहुत सोचने पर उसे एक विश्वास पात्र बालचर का स्मरण आया। उसका ध्यान आते ही अफसर प्रसन्नता से उछल पड़ा और उसने उसी समय उस वीर बालक को बुलवाया।

अफसर की आज्ञानुसार १४ वर्ष का बालक उसके सामने उपस्थित हुआ और नियमानुसार फौजी सलाम करके खड़ा हो गया। सेना नायक ने बालक के सिर पर स्नेह पूर्ण हाथ फेरते हुए कहा 'होनहार बच्चे, आज तुम्हें अत्यन्त आवश्यक और गुप्त समाचार अपने दूसरे अफसर के पास पहुँचाना है। क्या मैं आशा करूँ कि तुम प्राण देकर भी इस समाचार को शत्रुओं पर प्रगट न होने दोगे" सेनापति की बात सुन, वीर बालचर का मुख कमल खिल उठा। वह उत्साह पूर्ण स्वर से बोला. 'श्रीमन्! मेरे इन तुच्छ प्राणों द्वारा कुछ देश-सेवा हो सके तो इससे अधिक सौभाग्य की बात मेरे लिए क्या होगी। यदि मेरा यह शरीर जन्म भूमि के काम आ जाय तो मैं अपने को धन्य समझूँगा। आप मुझ पर विश्वास कीजिए।"

इसके अनन्तर सेनापति ने बालक को एक पत्र दिया जिसे उसने जूते के अन्दर बनी हुई गुप्त थैली में रख लिया और वह अपनी साइकिल पर सवार होकर निश्चित स्थान के लिए चल दिया। थोड़ी दूर जाने पर उसने देखा कि भयंकर युद्ध हो रहा है और तोपों से आग बरस रही है। वह एक खाई में छिप कर युद्ध की समाप्ति की प्रतीक्षा करने लगा। युद्ध समाप्त होने पर वह आगे बढ़ा, सहसा ही उसे वायुयान की भनभनाहट सुनाई पड़ी। बालचर ने ऊपर दृष्टि डाली तो देखा कि एक फ्रांसीसी वायुयान आकाश में चक्कर लगा रहा है। बालक तुरन्त ताड़ गया कि शत्रुओं ने मुझे देख लिया है। फिर क्या था उसने साइकिल एक खाई में पटकी और स्वयं एक घने वृक्ष पर चढ़ गया। उसने छिपने की भरसक चेष्टा की पर शत्रुओं की तीक्ष्ण दृष्टि से न बच सका। हवाई जहाज नीचे उतरा और फ्रांसीसियों ने वृक्ष पर बैठे वीर बालक को पकड़ लिया।

शत्रुओं के हाथ पड़कर भी वीर बालक ने हिम्मत न हारी। उन्होंने उससे बहुतेरा पूछा परन्तु उसने उन्हें अपना भेद न बताया। सिपाहियों ने उसे डराया धमकाया भी पर यह बार बार यही कहता रहा कि मेरे पास एक पत्र है परन्तु मैं उसे आप लोगों को नहीं दे सकता। शत्रुओं ने तलाशी ली परन्तु उन्हें कोई पत्र न मिला।

अन्त में फ्रांसीसी सिपाहियों ने उसे वायुयान में बिठा लिया और अपने अफसर के पास ले चले।

तेजी से उड़ता हुआ जहाज समुद्र के किनारे पहुँचा और समुद्र पर उड़ने लगा। सागर को देखते ही वीर बालक का हृदय प्रफुल्लित हो उठा और अपना कर्त्तव्य निश्चित करके दूसरे ही क्षण उसने जहाज में से छलांग मारी और सबके देखते २ वह अगाध सागर मे विलीन हो गया। फ्रांसीसी सिपाहियों ने पनडुब्बी द्वारा बालक की बहुत खोज की परन्तु उसका कहीं पता न लगा। फ्रांसीसी लोग अपने अधिकार में आए हुए शत्रु को इस प्रकार निकल जाते देख हाथ मलते ही रह गए।

## ( २ )

## शिशु वात्सल्य

अब्राहम लिंकन बालकों को बहुत प्यार किया करता था। कोई भी बालक उसके सामने आ जाता तो उसके हृदय में प्रेम का समुद्र उमड़ आता था।

किसी स्त्री के पति को मृत्यु दण्ड दिया जाने वाला था। अपने पति की रक्षा के लिए किए गए उस स्त्री के सब कानूनी उपाय निष्फल हो चुके थे। अन्त में अपने छोटे बच्चे को लेकर वह लिंकन के पास गई। कुछ समय तक तो राज-महल में उसका प्रवेश भी न हो सका। पर ज्योंही अब्राहम लिंकन अपने कमरे से बाहर निकला त्योंही वह आगे बढ़ी और उसने अब्राहम को अपना सारा हाल कह सुनाया और क्षमा की याचना की। सब हाल सुन कर अध्यक्ष लिंकन ने उसके पति को क्षमा कर दिया। जब उस स्त्री ने यह सुना कि उसके पति का दण्ड क्षमा कर दिया गया है, तब तो उसके आनन्द का पारावार न रहा और उसने ऊपर को देख कर परमात्मा से प्रार्थना की। पास ही लिंकन का एक नौकर खड़ा था। वह उस स्त्री से बोला, "बहिन! आज तुम्हारा काम इस बच्चे ने कराया है। पेशेवर वकील जो काम न कर सके वह इस छोटे से वकील ने कर दिखाया। तुम्हें पता नहीं है, इस छोटे बच्चे को देखकर राष्ट्रपति की आंखों से आंसू आगये थे। इसीलिए उसने तुम्हारे पति का दण्ड क्षमा कर दिया है।"

( ३ )

## वीर-पुत्री

अलाउद्दीन के सेनापति मलिक काफूर ने एक बड़ी और प्रबल सेना के साथ जैसलमेर के दुर्ग पर घेरा डाला हुआ था। जैसलमेर के राजा रत्नसिंह प्राणों पर खेलने वाले वीर राजपूतों की सेना लेकर शत्रु की फौज की एक दूसरी टुकड़ी से लोहा लेने में लगे थे। दुर्ग की रक्षा का भार उनकी वीर पुत्री ने अपने ऊपर लिया हुआ था।

यवन दल प्रतिदिन गोली और तीरों की वर्षा करता था पर जैसलमेर का अजेय दुर्ग गर्व से मस्तक उठाए खड़ा था। यवन समझ गए थे कि दुर्ग विजय करना हँसी ठट्टा नहीं है। दुर्ग रक्षिणी राजनन्दिनी रत्नवती निर्भय अपने दुर्ग में सुरक्षित बैठी शत्रुओं के दांत खट्टे कर रही थी। उसकी अधीनता में पुराने विश्वस्त राजपूत वीर थे जो मृत्यु और जीवन को खेल समझते थे। वह अपनी सखियों समेत दुर्ग के किसी बुर्ज पर चढ़ जाती और यवन सेना का ठट्ठा उड़ाती हुई वहां से सनसनाते तीरों की वर्षा करती। वह कहती 'मैं स्त्री हूँ, पर अबला नहीं।' उसकी बातें सुन कर सहेलियां ठठाकर हँस देती थीं। प्रबल यवन दल द्वारा आक्रान्त दुर्ग में बैठना राजकुमारी के लिये एक विनोद था।

मलिक काफूर बड़ी दृढ़ता और शान्ति से राजकुमारी की चोटें सह रहा था। उसने सोचा था कि जब किले में खाद्य पदार्थ कम हो जाएँगे, दुर्ग वश में आ जायेगा। फिर भी वह समय समय पर दुर्ग पर आक्रमण कर देता था। परन्तु दुर्ग की चट्टानों और भारी दीवारों को कोई क्षति नहीं पहुंचती थीं। राजकुमारी बहुधा बुर्ज पर से कहती—"ये धूर्त गर्द उड़ाकर और गोली बर्षाकर मेरे किले को गन्दा कर रहे हैं। इससे क्या लाभ होगा।"

यवन दल ने एक बार दुर्ग पर प्रबल आक्रमण किया। राजकुमारी चुपचाप बैठी रही। जब शत्रु आधी दूर तक दीवारों पर चढ़ आए तब भारी भारी पत्थरों के ढोंकें और गरम तेल की वह मार पड़ी कि शत्रु-सेना छिन्न-भिन्न हो गई। लोगों के मुँह झुलस गए। कितनों की चटनी बन गई। हजारों यवन 'तोबा, तोबा' करके प्राण लेकर भागे। जो प्राचीर तक पहुँचे उन्हें तलवार के घाट उतार दिया गया।

× × ×

राजकुमारी किले की प्रत्येक बुर्ज पर घूम-घूमकर प्रबन्ध और पहरे का निरीक्षण कर रही थी। पश्चिमी फाटक पर जाकर उसने देखा द्वार रक्षक द्वार पर न था। कुमारी ने पुकार कर कहा 'यहाँ पहरेदार कौन है ?"

एक वृद्ध योद्धा ने आगे बढ़कर कुमारी को अभिवादन किया। उसने धीरे धीरे कुमारी के कान में कुछ और भी कहा। वह हँसकर बोली 'ऐसा ! अच्छा वे तुम्हें घूंस देंगे, बाबा।

'हां बेटी' बूढ़ा योद्धा तनिक हँस दिया। उसने गांठ से सोने की पोटली निकालकर कहा 'यह देखो इतना सोना है।"

१२ बज गए थे। चन्द्रमा की चांदनी छिटक रही थी। कुछ आदमी दुर्ग की ओर छिपे-छिपे आ रहे थे। उनका सरदार काफूर था। उसके पीछे सौ चुने हुए योद्धा थे। संकेत पाते ही द्वारपाल ने प्रतिज्ञा पूरी की। विशाल महरावदार फाटक खुल गया। १०० व्यक्ति चुपचाप दुर्ग में घुस गए। काफूर ने मन्द स्वर में कहा—'यहां तक तो ठीक हुआ। अब हमें उस गुप्त मार्ग से दुर्ग के भीतर महलों में पहुँचादो जिसका तुमने वायदा किया है।"

राजपूत ने कहा 'मैं वायदे का पक्का हूं बाकी सोना तो दो।'

'यह लो।'

यवन—सेनापति ने मुहरों की थैली हाथ में धर दी। राजपूत फाटक में

ताला बन्दकर चुपचाप प्राचीर की छाया में चला और लोमड़ी की भांति चक्कर खाकर कहीं ग़ायब हो गया।

यवन सैनिक चक्र व्यूह में फँस गए! न पीछे का रास्ता मिलता था और न आगे का। वे वास्तव में क़ैद हो गए थे और अपनी मूर्खता पर पछता रहे थे। मलिक काफ़ूर दांत पीस रहा था।

× × ×

राजपूतों के क़िले की खाद्य सामग्री धीरे धीरे कम हो रही थी। घेरे के बीच मे से किसी का आना अशक्य था। राजपूत भूखों मर रहे थे। राजकुमारी का शरीर पीला हो गया था। उसके अंग शिथिल हो गये थे, पर नेत्रों का तेज वैसा ही था। उसे क़ैदियों के भोजन की बड़ी चिन्ता थी। उसने मलिक काफ़ूर के पास जाकर कहा—'यवन सेनापति, मुझे आपसे कुछ परामर्श करना है, मैं विवश हो गई हूं। दुर्ग में खाद्य सामग्री प्रायः समाप्त हो गई है और मुझे यह संकोच हो रहा है कि आपकी कैसे अतिथि सेवा की जाय। अब कल से हम लोग एक मुट्ठी अन्न लेंगे और आप लोगों को दो मुट्ठी उस समय तक मिलेगा जब तक कि दुर्ग में अन्न रहेगा। आगे ईश्वर मालिक है।'

मलिक काफ़ूर की आंखों में आंसू आ गए। उसने कहा—'राजकुमारी, मुझे यकीन है आप २० किलों की हिफ़ाजत कर सकती हैं।"

'राजकुमारी बोली 'यदि मेरे पास हों तो' यह कहकर वह चली गई।

अलाउद्दीन ने विवश होकर रत्नसिंह से सन्धि कर ली।

सुन्दर प्रभात था। मगल-कलश सजे थे। बाजे बज रहे थे। मलिक काफ़ूर महाराज की बगल में बैठे थे। महाराज ने कहा, 'खां साहब, किले मे मेरी ग़ैर हाज़िरी में आपको तकलीफ़ और असुविधाएँ हुई होंगी, इसके लिए क्षमा करें। युद्ध के नियम कड़े होते हैं। फिर किले पर भारी मुसीबत आई थी। लड़की अकेली थी। जो बन सका किया।"

काफ़ूर ने कहा 'महाराज ! राजकुमारी तो पूजने लायक है। ये इन्सान नहीं फ़रिश्ता है। मैं ताज़िन्दगी इनकी मेहरबानी नहीं भूल सकता।'

महाराज ने एक बहुमूल्य सरपेंच मलिक काफ़ूर को दिया और बड़े आदर सत्कार से उन्हें विदा किया।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

# सन्थाली पालापर्व या चक्र पूजा

( ले०—स्वा० शिवानन्द तीर्थ उपप्रधान, आर्य उपप्रतिनिधि सभा,
भागलपुर कमिश्नरी, आर्य भवन मुङ्गेर। )

सन्थालों में एक पालापर्व होता है, जिसको पाला पूजा तथा चक्र पूजा भी कहते हैं। यह विष्णुपर्व (विसुआ) के अवसर पर वैसाख मास मे मनाया जाता है। विसुआ बिहार प्रान्त का एक प्रसिद्ध पर्व है। सूर्य मास का प्रथम दिन अर्थात् मेष संक्रान्ति के उपलक्ष मे इस पर्व का महोत्सव होता है। इस पर्व मे लोग सत्तु गुड़, आम आदि खाते है। सन्थाल लोग भी सूर्य मास के प्रथम दिन से लेकर सारा महीना तक कई गांव के लोग मिलकर भिन्न भिन्न स्थानों मे मनाते हैं।

पाला शब्द संस्कृत पार्थिव शब्द का अपभ्रंश है, क्योंकि इस पूजा में सन्थाल लोग (पार्थिव)। मिट्टी का अर्घा बनाकर शिव पार्वती नाम के दो पाषाण खण्ड मण्डप में विधिवत् स्थापित कर होम फूल अक्षतादि से पूजते हैं, इसीसे पार्थिव का बिगड़ कर इसका नाम पाला पड़गया है। चक्र पूजा पड़ने का कारण यह है कि सूर्य मास का जो बारह राशिचक्र है इसको बोध कराने के लिये एक स्थूणा गाड़कर उसके शिर पर चक्र जोड़ते हैं। जिसम घुमाने वाला चक्र दण्ड लगा रहता है। उसमे एक पुरुष को बान्ध कर उत्तरायण और दक्षिणायण के उपलक्ष में छः २ बार चक्र दण्ड को उत्तर और दक्षिण की ओर घुमाते हैं इस तरह इस पर्व का दूसरा नाम चक्र वा चड़क पूजा भी पड़ गया है। कहीं २ सन्थाल लोग इस पर्व को भोक्ता भी कहते हैं जो शिव पार्वती की भक्ति के कारण पड़ा है।

जिस दिन जहाँ पर इस पर्व को मनाना होता है, वहां पर उन गांवों के सन्थाल पुरुष स्त्रियें इकट्ठी होती हैं। वहां पर पहले ही से मण्डप आदि बनाकर उसको पुष्प फलादि से सजाकर मण्डप के मध्य मे अर्घा बना कर उसमें शिव पार्वती नाम के दो पत्थर स्थापित कर उन २ गांवों के व्रती लोग स्नानादि से पवित्र होकर चन्दन लगा, पुष्पमाला और जनेऊ पहनकर उस अर्घा स्थित शिवपार्वती को होम दुग्ध चन्दन धूप, फल फूलादि से पूजते हैं पश्चात् वह पुरुष जहाँ पर चर्खी गड़ी होती है

वहाँ पर भी डाली में फूल फलादि लेकर चर्खी के थूमे को भी युक्त पुष्पादि से पूजता है। वहां ही पर चर्खी के सम ऊँचाई का एक मचान होता है उस पर सीढ़ी के सहारे चढ़ जाता है, कई पुरुष जो इसके प्रबन्धक होते हैं, उसको चर्खी के लम्बदण्ड में कमर को बांध देते हैं और क्रमशः दोनों ओर घुमाते हैं। वह व्यक्ति एक हाथ में फल फूल की डाली लिये होता है और दूसरे दाहिने हाथ में बेंत की छड़ी। चक्र घुमाते ही के साथ "जय पार्वती महादेव" का नारा लगता है और डाली में रखे फलों को खाना तथा बचे हुए फलों और फूलों को वहाँ पर उपस्थित जनता पर बर्षाता है। बारह बार घुमाकर उसको खोल देते हैं, वह सीढ़ी के सहारे नीचे चला आता है वहाँ, पर उसकी माता या बहिन या अन्य वृद्धा स्त्री उसको जल से मुख पांव आदि धोकर पान खिला देती है और वह चक्र थूने के पास आकर पहने जनेउ को उतार कर उसी थूने में लपेट देता है जो कालान्तर मे जनेऊ था इस बात को प्रमाणित करता है। इसी प्रकार सभी गाँव के व्रती लोग करते हैं। वहाँ पर उन सब गांवों के तथा अन्य गावों के सन्थाल पुरुष स्त्रियां ढोल, मन्दरा, बांसुरी आदि बाजों के साथ नाचती और गाती हैं। इस मेले में हिन्दू ( गैर सन्थाल हिन्दू ) होड़ ( सन्थाल हिन्दू ) सभी सम्मिलित होते हैं। बिहार प्रान्त में सन्थालों के अतिरिक्त अन्य स्थानों के हिन्दू लोग जहाँ मन्दिर होता है, स्नानादि कर शिव की पूजा करते हैं और सत्तू, गुड़, आम खाकर मेले मे जो चर्खी लगी रहती है उसमें पैसा देकर घुमाते हैं उसमें भी बारह दण्ड मेष (भेड़) आदि से युक्त लटके रहते हैं। इस तरह हिन्दू होड़ दोनों का एक ही पर्व है।

यह पर्व भी विशेषकर चक्र मे घूमते हुए "जय पार्वती महादेव" का जयघोष सन्थाल लोगों को कट्टर हिन्दू सिद्ध करता है, फिर भी गवर्नमेंट इनको अहिन्दू ही समझती है और हिन्दुओं से अलग करने में हो सतत चेष्टावान रही है और रहती है। इस जनगणना मे इस बात को एक दम स्पष्ट कर दिया।

इस पर्व को मुझे सन्थाल परगना के भ्रमण में इसी वर्ष देखने का अवसर मिला, उसी के आधार पर अन्य आर्य हिन्दुओं को जानकारी के लिये लिखा है जिससे लोग इनके हिन्दूपने के सम्बन्ध मे अपने मिथ्याभ्रम को दूर कर लेंगे।

# विवेक और वैराग्य

[ ले०—स्व० स्वामी सर्वदानन्द जी महाराज का एक प्रवचन ]

—*०*—

संसार की अवस्था देखने मे कुछ और है परन्तु उसका वास्तविक स्वरूप कुछ और ही है। वैयायिकों का सिद्धान्त है कि संसार एक चक्र की तरह घूमता है। जिस प्रकार चक्र के सिरे का कुछ पता नही लगता, दो मिन्ट मे जो सिरा ऊपर होता है वह नीचे हो जाता है इसी बात को फारसी मे "हर कमाले राज-वाले" कहा गया है। परन्तु साधारण लोग इसको नहीं समझते। कभी भारत का बहुत उदय था, जिसका उदय हुआ उसका अस्त होता है। अब कोइ पूछे कि अस्त क्यों हुआ तो इसका उत्तर क्या दिया जा सकता है। किसी का पिता मर गया था, लोग शोक प्रगट करने आये और कारण पूछने लगे कि क्यो मरा, कैसे मरा। पुरुष विचारशील था, ऊत्तर दिया, जो उत्पन्न हुआ उसने एक दिन मरना था, सो मर गया, लोग अप्रसन्न हो जाते हैं। यदि वहीं कह दें कि दो दिन ज्वर आया था मर गया, तो उनको संतोष आजाता है और फिर आगे प्रश्न नहीं होता। संसार तो कारण पूछता है। इसो बात को महात्मा भर्तृहरि जी कहते हैं कि जिनका विवेक भ्रष्ट हो जाता है वे स्वयं भ्रष्ट हो जाते हैं। जो मनुष्य व जाति विवेकयुक्त होती है वह ससार के सुखों से लेकर परमेश्वर तक को प्राप्त करेगी, परन्तु जिसका विवेक भ्रष्ट हो जायगा उसको परमात्मा की प्राप्ति तो क्या संसार के सुख भी नहीं मिलते।

## विवेक क्या है ?

आप पूछेंगे विवेक क्या है ? आपने सिपाहियों को चांदमारी करते कई बार देखा होगा। चांदमारी में कई सिपाही निशाने लगाने के लिये लक्ष्य बांधते हैं, परन्तु निशाना उसी का लगता है जिसका लक्ष्य ठीक नेत्रों के सामने हो, परन्तु जिसका लक्ष्य भ्रष्ट हो जाय वह चाहे कितना हो यत्न क्यों न करे उसका निशाना नहीं लगता। लक्ष्य का भ्रष्ट होना व न होना परिणाम से जान पड़ता है, इसी का नाम विवेक है। एक कवि ने विवेक का यह लक्षण किया है कि धर्म, अर्थ, काम,

मोक्ष यह चार पदार्थ जिसके ह्रदय में रहते हैं वह विवेकी पुरुष है। परन्तु जिस पुरुष के जीवन में न धर्म्म हो, न अर्थ न काम और न मोक्ष की भावना है, उस पुरुष का जीवन उस बकरी (अजा) की नाईं है जिसके गले में दो स्तन हैं परन्तु दूध नहीं। ऐसे पुरुष विवेक भ्रष्ट होते हैं।

## विवेक का महत्व

"अथातो ब्रह्मजिज्ञासा" यह वेदान्त का एक सूत्र है अर्थात् इसके अनन्तर ब्रह्म के जानने की इच्छा करनी चाहिये। किसके अनन्तर इन चार सिद्धांतों के अनन्तर जिनका मैंने पहले वर्णन किया है। इन चार सिद्धांतों में पहला साधन विवेक है, अपने हित और अहित का विचार ही विवेक है।

अब मैं आप से पूछता हूँ कि हममें विवेक कहां है? विवेक के पश्चात् वैराग्य होता है। जिसमें विवेक नहीं उसमें वैराग्य भी नहीं हो सकता। अंग्रेजी लिखे पढ़ों में विवेक तो थोड़ा बहुत पाया जाता है परन्तु वैराग्य उनमें नाम मात्र को भी नहीं। वे कहते हैं कि वैराग्य ने देश का सत्यानाश कर दिया है, यह बात किसी अंश में तो ठीक है, परन्तु सर्व अंशों में सत्य नहीं। आप लोग जिन साधुओं को वैरागी समझ रहे हैं, वे वैरागी नहीं हैं, वे मूढ़ तो देश के लिये भार हैं।

## वैराग्य क्या है?

एक विद्यार्थी जब विद्या समाप्त कर लेता है तब उसको विवेक होता है, और शास्त्रों में लिखा भी है कि ब्रह्मचर्य के अनन्तर गृहस्थ फिर वानप्रस्थ और तत्पश्चात् संन्यास है, यह एक लाइन है। परन्तु दूसरी लाइन हमारे शास्त्रों ने यह बतलाई है कि जिस समय वैराग्य हो उसी समय संन्यास ले लेना चाहिये, परन्तु यह भी ब्रह्मचर्य और विद्या समाप्ति के बाद, क्योंकि विद्या समाप्ति के पश्चात् मनुष्य को विवेक हो जाता है और वह अपने शुभाशुभ को जानने लगता है। विवेक के पश्चात् यदि अपना हित गृहस्थ में समझे गृहस्थी बन जाय, और वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो संन्यास धारण करले जैसे स्वामी शङ्कराचार्य ने किया। वैराग्य व सन्यास ब्रह्मचर्य के पश्चात् और वानप्रस्थ दोनों अवस्थाओं में हो सकता है। यदि ब्रह्मचारी समझे कि मैं अपनी इन्द्रियों पर विजय नहीं पा सकता तो उसका उपाय गृहस्थ है, और यदि वह सम्पूर्ण सांसारिक कामनाओं को मार कर संसार का उपकार कर सकता है तो सन्यास ले लेवे।

## वैराग्य ने सत्यानाश नहीं किया

अब मैं यह बतलाना चाहता हूँ कि क्या सचमुच वैराग्य नाश करने वाली वस्तु है। गृहस्थ में प्रवेश करके मनुष्य के लिये उपदेश है कि वह अपनी पत्नी से तो राग करे परन्तु शेष सब स्त्रियों को माता और भगिनी जान कर उनसे वैराग्य करे। दुःख तो यह है कि जहां हम अपनी स्त्री से राग करते हैं वहां हम दूसरी स्त्रियों से भी राग करने लग जाते हैं। वैराग्य संसार की व्यवस्था को ठीक रखने का साधन है जैसा कि ऋषि दयानन्द ने वैराग्यवान होकर किया। परन्तु हम आप प्रति दिन उपदेश सुनते है, कुछ फल नहीं होता, क्योंकि हममें न विवेक है न वैराग्य। महाराज भर्तृहरि जी एक प्रश्न करते हैं और आप ही उसका उत्तर देते हैं कि क्या कारण है कि एक मनुष्य उपदेश सुनकर सुधर जाता है और दूसरा बिगड़ जाता है। वे बतलाते हैं कि जिसके अन्तःकरण में सतोगुण की वृत्ति है उसके ज्ञान का एक बिन्दु तार देता है और जिसके अन्तःकरण मे तमोगुण का राज्य है उस पर उपदेश का एक बिन्दु उसके अन्धकार को बढ़ा देता है। आरफ़ और ईश्वर भजन के प्यारे एकान्त को बहुत पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार भी प्रत्येक समय में एकान्त की खोज में रहते हैं और आरफ़ अर्थात् भक्त तो ईश्वर भक्ति के लिये एकान्त पसन्द करते हैं परन्तु चोर और यार चोरी और यारी के लिये। अब इसमें एकान्त का क्या दोष? इसीलिये कहा है कि पहले अन्तःकरण को शुद्ध करो फिर प्रत्येक वस्तु अपनी वास्तविक अवस्था में दिखलाई देगी। सन्ध्या, स्वाध्याय, सतसङ्ग सब काम विवेक के हैं। महात्मा बुद्ध, शंकर स्वामी, दयानन्द जितने भी महा पुरुष हुए हैं, ये सब विवेकी थे। जितना २ किसी में अधिक विवेक होगा उतना २ ही वह अधिक महान होगा।

## बुद्ध के जीवन की एक घटना

महात्मा बुद्ध जब घर से निकलने वाले थे तो उनके पिता ने समझाया, कि पुत्र! मैं वृद्ध हो गया हूँ, मेरी सेवा करना तेरा धर्म है। बुद्ध ने उत्तर दिया मैं केवल एक वृद्ध की सेवा नहीं चाहता, परंतु संसार भर के बूढ़ों की सेवा का व्रत धारण करना चाहता हूँ। फिर इन्हें कहा गया कि घर पुत्र उत्पन्न हुआ है इसलिये अब घर छोड़ना उचित नहीं। उत्तर दिया इस बालक ने मुझे उपदेश दिया है, कि घर से शीघ्र निकल जाओ क्योंकि यह कन्या और पुत्र बन्धन की कड़ियां हैं, जितनी अधिक होंगी उतना ही कस कर जकड़ लेंगी। मैंने आपको बतलाया कि अन्तः करण की निर्बलता से जीवात्मा निर्बल हो जाता है, और मलीनता से मलीन होजाता है। काम क्रोध लोभ मोह अहंकार आत्मा को मलीन करने वाली वृत्तियां हैं। इनके दमन में ही सुख और शान्ति है।

# वनस्पति घी से हानि

( लेखक—श्री जयगोपालजी गोयन्दका )

आजकल जो वेजिटेबल (वनस्पति) घी का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ रहा है, वह हमारे देश के लिए बड़ा ही घातक है। इससे स्वास्थ्य और धन की बड़ी हानि हो रही है। असल में यह घी है ही नहीं। यह तो जमाया हुआ तेल है। यह मूँगफली, नारियल तथा बिनौले आदि के तेलों से एवं मछली के तेल से तैयार होता है। इसके बनाने में निकल धातु तथा हाइड्रोजन गैस काम में लिया जाता है। यह चीजें अपवित्र तो हैं ही, स्वास्थ्य के लिए भी महान हानिकर हैं। निकल में एक प्रकार का विष होता है। इससे तेल जम जाता है। उसकी गन्ध नष्ट हो जाती है और सफेद रंग बन जाता है।

इस विषय में बंगाल के प्रसिद्ध रासायनिक तथा 'खादी-प्रतिष्ठान के सञ्चालक सोदपुर निवासी श्री सतीशबाबू से गीता प्रेस के मन्त्री श्री घनश्यामदास जालान तथा मैनेजर श्री बजरङ्गलाल चांदगोठिया मिले थे। उन्होंने यही कहा कि यह वेजिटेबिल घी सभी प्रकार के तेल या चर्बी आदि से बन सकता है और निकल डाल देने के कारण इसके बनने पर इसकी परीक्षा करने के लिए कोई ऐसा यन्त्र नहीं है जिससे यह पता चल सके कि यह मूँगफली के तेल से बनाया गया है या मछली के तेल से। जिस समय जो तेल सस्ता होता है उसी से यह बनाया जा सकता है। इस समय बङ्गाल आदि में मूँगफली तथा मछली का तेल अन्य सब तेलों से सस्ते हैं, इसलिए इस समय यह मूँगफली तथा मछली के तेल से बनाया जाता है।

वेजिटेबल घी बनानेवाले कई भाई गारण्टी भी देते हैं कि मूँगफली के तेल से बना है किन्तु उस गारण्टी का कोई मूल्य नहीं; क्योंकि इस घी के बनने पर इसकी कोई परीक्षा नहीं कर सकता कि यह किससे बना है। रही विश्वास की बात, सो विश्वास इसलिए नहीं किया जा सकता कि जिस समय मूँगफली के तेल की अपेक्षा मछली का तेल सस्ता मिलता होगा उस समय वे मूँगफली के तेल से

ही वह चीज बनायें यह बात समझ में नहीं आती। क्योंकि मनुष्य लोभ के वश में होकर कौन-सा पाप नहीं कर सकता ?

मछली का तेल महान् अपवित्र तो है ही, इसके अलावा, इसमें निरपराध मछलियों की हिंसा भी होती है। और फिर इसे बनाने के लिए इसमें जो निकल धातु का प्रयोग किया जाता है, उससे धर्म की हानि के साथ-साथ स्वास्थ्य की हानि भी होती है क्योंकि इसके सामने गाय भैंस का घी मूल्य में नहीं टिक सकता। असली घी की बिक्री हुए बिना किसान लोग गाय भैंस नहीं पाल सकेंगे। गायों के बिना बैल नहीं मिलेंगे, बैलों के बिना खेती नहीं हो सकेगी और खेती के बिना प्रजा का जीवन बहुत ही कष्टमय और निराशापूर्ण हो जायगा। यह बात बहुत लोग अनुभव कर चुके हैं कि वेजिटेबिल घी के खाने से अनेकों बीमारियां होकर मनुष्य की आयु का ह्रास होता है। अतः यह वस्तु देश, धर्म, खेती, पशु और स्वास्थ्य के लिए महान् ही हानिकारक है।

बाजार में असली घी के नाम से जो घी बिकता है, उस घी में भी लोग सस्ता होने के कारण लोभवश इसका मिश्रण कर देते हैं। घी में इसका मिश्रण कर देने पर इसका पता लगाना बहुत मुश्किल है। असल-नकल की जांच के लिए मशीनें भी आयीं किंतु उनसे भी इसका पूरा निर्णय न हो सका। नारियल और मूँगफली दोनों के तेलों को मिलाकर अथवा मछली का तेल तथा मूँगफली या नारियल का तेल मिलाकर वेजिटेबल घी बनाया जाय और वह असली घी में मिला दिया जाय तो इन मशीनों से कुछ भी पता नहीं लगाया जा सकता।

इस वेजिटेबल घी के इतने अधिक चल पड़ने के कारण देश, धर्म और स्वास्थ्य की रक्षा चाहने वाले भाइयों को आजकल पवित्र घी मिलना बहुत ही कठिन हो गया है। मेरी तो यह राय है कि देश, धर्म और स्वास्थ्य की रक्षा के लिये, मिले तो शुद्ध घी खाना चाहिए, नहीं तो मूँगफली का तेल खाना चाहिये। वेजिटेबल घी करीब २०) रु० मन मिलता है और मूँगफली का तेल करीब १०) मन। वेजिटेबिल घी खाने से व्यर्थ ही अधिक खर्च लगता है और धर्म तथा स्वास्थ्य की हानि होती है, शुद्ध मूँगफली का तेल खाने से पैसों की बचत होती है तथा धर्म तथा स्वास्थ्य की भी हानि नहीं होती। अतः वेजिटेबल की अपेक्षा तो शुद्ध मूँगफली का तेल ही खाना अच्छा है। हो सके तो दूध खरीद कर उसमें से मक्खन, और या घी निकालकर उसे खाना चाहिये। इससे पशु, खेती, देश, धर्म

और स्वास्थ्य इन सब की रक्षा हो सकती है। इस वेजिटेबल घी को तो किसी तरह से भी नहीं खाना चाहिये, चाहे वह केवल वेजिटेबल हो अथवा असली घी में मिला हुआ। न इस घी का लोभवश व्यापार ही करना चाहिए। बल्कि देश, धर्म, पशु, कृषि और स्वास्थ्य की रक्षा चाहनेवाले देशसेवक तथा धर्मप्रेमी भाइयों को तो इस घी का प्रचार रोकने के लिये कानून की रक्षा करते हुए यथाशक्ति घोर विरोध करना चाहिये। खेद की बात है कि लोभ के कारण हमारे व्यवसायी सज्जन इसके व्यापार में अधिक अग्रसर हैं। उनसे मेरी खास तौर से प्रार्थना है कि वे इसे देश और धर्म के लिये महान हानिकर समझकर इसको सर्वथा त्याग देने की कृपा करें।

---

# A TRIBUTE TO THE ARYA SAMAJ

*By*

( Sir C. P. Ramaswami Aiyer. )

[ We reprint some relevant extracts from the speech of Sir C. P. Ramaswami Aiyer, Dewan of Travancore, which he made on the occasion of the opening of the new premises of the Arya Samaj in Madras. Though we may differ from the learned speaker on certain points, yet the speech as a whole is worth reading. ]

The ideals for which the Arya Samaj separately stood, its faith, its preachings and teachings were as old as hills. Its main tenet was to endeavour to go back to the sources, the foundation of the Hindu faith, which the Arya Samaj held to be the Vedas and Upanishads. It spoke and asserted monotheism and deprecated caste. Summarised and analysed, the progress of Hindu faith had been a progress from simplicity to complexity and back again from complexity to simplicity. Starting with the age-long and age-less Vedas, the Upnishads were a reaction and rebellion to correct a certain excrescences and get rid of certain ideas which had out-grown their usefulness. Those who had studied the Brihadaranyaka and Taitreya Upnishads would know that there was a kind of feeling that the complete possession of thought and practice of doctrines and rituals were not concentrated in any single community. Then came Buddhism and Jainism which were revolters. But one thing could be said of Hinduism itself, that it did not quell-revolt by force nor subjugate it by violence, but imperceptibly. casually, steadily and surely absorbed and assimilated all forms.

## SURVIVAL OF HINDUISM.

"I am an incurable optimist. I am not afraid of the future of Hinduism, of Hindu culture and Hindu faith. I

am not afraid of those who are nervous of themselves. If after 5,000 or 6,000 years, when faiths not less noble in outlook and not less exalted in idealism failed to survive, if for instance a great faith like Pharaohism which was monotheism in essence had failed, if the Syrian and Babylonian civilisations were no more and if the Cretan civilisation was merely a name and if Hinduism survived, it was because of its inward strength, its inward vigour, thought and emotion.

## CONVERSIONS

Proceeding, the Dewan said the latest number of conversions in Travancore was 32,000 and they had been spontaneous and one of the results of the Temple Entry Proclamation. (Applause). Any person had a right to convert his neighbour to his faith. But he, the speaker, would strongly deprecate any attempt at what might be called mass conversions for statistical or other purposes. (Hear, hear). He also strongly deprecated the conversion of those who had not been taught what they were converted from and what they were converted to. So long as these principles were maintained it did not matter if the utmost possible efforts were made to convert or to reconvert. He asked Hindus to note that while the professors of other faiths had put energy, organisation and funds and a thorough sense of business aptitude in their work of conversions or reconversions, they, the Hindus, had been hesitant, weak, divided and defenceless and absolutely at the mercy of others. If they, the Hindus, wanted a leper clinic they would not move even a little finger. They must go to a Christian missionary and request him for running a leper asylum. If a criminal tribe had to be brought to proper environment, the Government and the individuals trusted to the Christian missionaries. There had been many men of Christian faith who had deliberately gone into leper asylums worked there, caught the contagion and died amidst the lepers. What examples had the Hindus for

such a work ? Unless and until they were all ministers and had an organisation like the Arya Samaj unless they were tolerant and catholic they could not achieve their purpose In addition to faith which could move mountains they should have business aptitude and definite lines of progress Nothing should be done in frenzy or enthusiasm Day after day night after night and hour after hour the endeavour should be made

Hinduism was specially indebted to an organisation like the Arya Samaj which had brought into actual operation these ideas which in the world of today had to be pursued to ensure success

The Hindus were endowed by the Merciful Providence with brains They were apt to quarrel to controvert and enter into arguments with their neighbours They never allowed their neighbours to be superior and by the time they had decided their quarrels they had not the time available as other people had to secure triumphs for themselves The function of an organisation like the Arya Samaj should be to bring into existence loyal obedience and discipline to work together The Hindu faith was an individual faith In this age of competition in this age of armaments they should remake their society make it more congregational and more a mass movement They should make their music mass music and their religion a mass religion If that was done they would march forward not as isolated individuals each soldier being a captain into himself but as a regiment Then they would be irresistible Today that required many restraints, many drawings back and many inhibitions

Sir C P Ramaswami Aiyer congratulated the Arya Samaj on its bright record of unselfish heroic work amidst difficulties obstacles and handicaps which only those who knew its inner history could understand He also congratu-

lated the Arya Samaj for having kept touch with the classes, unlike many other sections of the Hindus who had isolated themselves and gone away from the world. It was remarkable that the Arya Samaj had not lost faith in itself. It was trying to infuse faith in others. If they were true to their traditions of catholicism and tolerance and if they were true to their traditions of nation-fitness, of active and dynamic character and if they did not allow that to be trampled upon by agencies however powerfully organised, he had no fears for the future.

---

# मार्च-अप्रैल १९४१ का आन्ध्रदेश में कार्य

## श्राद्ध विषयक कार्य

इन दो मासों में "मृतक श्राद्ध" का प्रतिरोध कई स्थानों पर टूटा। जम्पनी, मूलपूरु, कूचिपूडि, वाडेपल्लू आदि ग्रामों में सबने हवन करके 'अन्त्येष्टि संस्कार' तथा श्राद्ध क्या है? इस विषय में उपदेश दिया गया।

## विवाह विषयक कार्य

इन दो मासों में तीन विधवा विवाह हुए। कई अन्य विवाह वैदिक पद्धति से कराये गये।

## शुद्धि कार्य

एक मैट्रिक्यूलेशन पास की शुद्धि तनाली मे तथा २ की शुद्धि तेल्लूर में की गई, जिनमें से एक क्रिश्चियन प्रचारक था। अब हम इस कार्य को जोर शोर से अपने हाथ में लेना चाहते हैं।

## आर्य समाज स्थापना

इस समय में चार नई समाजों का संगठन किया गया। नेल्लूर में मार्च मास में एक अच्छी समाज की स्थापना की गई है।

अप्रैल में कड़पा, चेल्लूरु तथा मुण्डलपल्ली, नामक तीन नए स्थानों पर समाजें खोली गई हैं।

श्री ब्रह्मानन्द रेडी जी एक क्रिश्चियन सज्जन हैं, अब तक शुद्ध नहीं हुए। तो भी उन्होंने ३० नये सभासद् सतनपल्ली ताल्लुक से बनाये हैं। शीघ्र ही इनकी शुद्धि होने वाली है।

## तेनाली में प्रचार

श्री रामनवमी के दिनों में दो सभायें की गईं। राम क्या देव है? तथा "क्या अवतारवाद हो भी सकता है?" इन दो विषयों पर बड़े जोरदार व्याख्यान हुए। इनका जनता पर विशेष प्रभाव पड़ा। तनाली में एक विधवा विवाह 'तेलगा जाति' में किया गया। यह पहला विवाह था। इसके कारण बड़ी गड़बड़ हुई। परन्तु उस संघ में सुधार का मार्ग खुल गया है और बड़ा लाभ हुआ।

प्रचार कार्य में निम्न भाइयों ने विशेष मदद की। श्री रामकृष्णैय्या जी मन्त्री आ० स० तेनाली, श्री वीरय्या, श्री राजगोपालम्, श्री रमणैय्या जी, श्री सुब्बाराव जी मन्त्री आ० स० पैय्यस। श्री सी० लक्ष्मण गुप्ता, श्री प्रकाशराव, श्री चलपतिराव, श्री अन्नदाता आदि नारायण जी एडवोकेट ने नेल्लूर समाज की स्थापना में बड़ी सहायता दी। कड़यां में श्री राघवेन्द्र जी, श्री ईश्वर रेड्डी जी, श्री तुम्मरेड्डी जी, श्री स्वामी योगानन्द जी ने कड़यां समाज की स्थापना में बड़ी मदद की।

श्री पं० गोपदेव जी आजकल घूम घूम कर प्रचार कार्य में लगे हुए हैं। आसपास के मरतूर, कूचिपूडि, नटयालम, नरकोण्डयालम् में प्रचार को उत्तेजना तथा स्थिरता उन्हीं के कारण मिली हुई है। नेल्लूर समाज के संगठन में उनका बड़ा भारी हाथ है। ऐसे निःस्वार्थ त्यागी पुरुष का सहयोग पुण्यों का फल है।

---




श्रीमान् जी नमस्ते,

आपकी सेवा में परिषद् की परीक्षाओं की पाठविधि भेजी जा रही है जिसमें यह पढ़कर आपको प्रसन्नता होगी कि पुस्तकों के प्राप्य स्थानों में आपकी फर्म का नाम भी छपा है। प्रार्थना है कि परीक्षाओं को अपनी फर्म के प्रचार कार्य में उपयुक्त स्थान देकर आप भी इस धार्मिक यज्ञ में अपना अधिकाधिक सहयोग देने की कृपा करें तथा परीक्षार्थियों के सुभीते के लिए समस्त ही पाठ्य पुस्तकें अपने यहां पर्याप्त संख्या में रखें। योग्य सेवा लिखते रहें।

भवदीय—
देव व्रतः धर्मेन्दु
मन्त्री

# भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की परीक्षाओं की पाठ-विधि

( सं० १९९८ वि० से पुनः परिवर्तन तक )

## सिद्धान्त रत्न परीक्षा

### धर्म

| प्रथम प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) पंच महायज्ञविधि, | ऋषि दयानन्द कृत | (अङ्क २०) |
| (२) आर्योद्देश्य रत्नमाला, | ” ” ” | ( ” २०) |

| | | |
|---|---|---|
| (३) व्यवहार भानु, | ,, ,, ,, | ( ,, ४०) |
| (४) बाल सत्यार्थप्रकाश, | पं० विश्वनाथ कृत | ( ,, २०) |

### सिद्धान्त

| द्वितीय प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) कर्तव्य दर्पण, | म० नारायण स्वामी कृत | (अङ्क २०) |
| (२) उपदेशामृत भाग १ से ४, | प्रो० सुधाकर जी M. A. कृत | (अङ्क ४०) |
| (३) गोकरुणानिधि, ऋषि दयानन्द कृत | | (अङ्क २०) |
| (४) बाल वेदामृत, प्रो० किशोरीलाल M. A. कृत | | (अङ्क १०) |

### साधारण ज्ञान

| तृतीय प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) वैदिक धर्म प्रश्नोत्तरी, शारदा मंदिर द्वारा प्रकाशित | | (अङ्क ३०) |
| (२) उन्नति की ओर, आ० कु० परि० द्वारा प्रकाशित | | (अङ्क ३०) |
| (३) आर्यसमाज के उज्ज्वल रत्न, आर्य साहित्य मंडल द्वारा प्रकाशित | | (अङ्क २०) |
| (४) विद्यार्थी जीवन रहस्य, म० नारायण स्वामी कृत | | (अङ्क २०) |

## सिद्धान्त भास्कर परीक्षा

### धर्म

| प्रथम प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) सत्यार्थ प्रकाश, पूर्वार्ध ऋषि दयानन्द कृत | | (अङ्क ७०) |
| (२) वेद सन्देश, शारदा मन्दिर द्वारा प्रकाशित | | (अङ्क ३०) |

### सिद्धान्त

| द्वितीय प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) दयानन्द सिद्धान्तभास्कर, सार्वदेशिक सभा द्वारा प्रकाशित | | (अङ्क ४०) |
| (२) जीवन ज्योति, प्रिन्सीपल दीवान चन्द M. A. कृत | | (अङ्क २०) |
| (३) पंच महायज्ञ प्रकाश, पं० बुद्धदेव विद्यालङ्कार कृत | | (अङ्क ४०) |

### साधारण ज्ञान

| तृतीय प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) वैदिक सिद्धान्त, स्वर्गीय ला० रामप्रसाद जी B. A. कृत | | (अङ्क ४०) |
| (२) अमर जीवन, ,, डा० केशव देव शास्त्री कृत | | (अङ्क ४०) |

## आवेदन पत्र

( ८ ) परीक्षाओं के आवेदन पत्र कार्यालय से बिना मूल्य मिल सकते हैं।

( ९ ) आवेदन पत्र पहली अगस्त से १५ सितम्बर तक कार्यालयसे मगाये जा सकते हैं।

( १० ) परीक्षा में वही परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकेंगे जिनके आवेदन पत्र परीक्षा शुल्क सहित व्यवस्थापक के हस्ताक्षर होकर १५ अक्तूबर तक परीक्षा मन्त्रीके पास आजायेंगे।

( ११ ) आवेदन पत्र नियमानुसार न भरे होने पर स्वीकार न किये जावेंगे।

( १२ ) आवेदन पत्र तथा परीक्षा शुल्क सम्पूर्ण परीक्षार्थियों का एक केन्द्र से एक ही बार आना चाहिए। पुन २ आने से स्वीकृत न होगा।

( १३ ) आवेदन पत्र हस्ताक्षर करने से पहले केन्द्र व्यवस्थापक को यह देख लेना चाहिए कि परीक्षार्थी ने आवदन पत्र की खाना पूरी नियमानुसार पूरी २ कर दी है।

## अतिरिक्त शुल्क

( १४ ) परीक्षा शुल्क व आवेदन पत्र निश्चित तिथि व्यतीत हो जाने के पश्चात् केवल पन्द्रह दिन तक अर्थात् १५ अक्तूबर से ३० अक्तूबर तक।) अतिरिक्त शुल्क के साथ स्वीकार किये जा सकेंगे। यह शुल्क परीक्षा शुल्क के साथ ही परीक्षार्थियों को देना होगा।

( १५ ) ३० अक्तूबर के व्यतीत हो जाने के पश्चात् किसी भी दशा मे आवेदन पत्र स्वीकार न होंगे।

## केन्द्र

( १६ ) परीक्षा केन्द्र किसी ऐसे स्थानपर जहाँ न्यूनसे न्यून १० परीक्षार्थी हों बनाया जा सकता है जबकि स्थानीय आर्य समाज के प्रधान व मन्त्री व कोई अन्य प्रतिष्ठित सज्जन केन्द्र व्यवस्थापक बनना स्वीकार करलें।

( १७ ) प्रत्येक नगर मे परीक्षाओ का एक ही केन्द्र होगा केवल स्त्रियों के लिए यदि वे चाहें तो पृथक् केन्द्र बनाया जा सकता है।

( १८ ) परीक्षा केन्द्र स्थापित करने के लिये केन्द्र स्थापना फार्म जो कि छपा हुआ कार्यालय से बिना मूल्य मिल सकता है, भरकर कार्यालयों मे भेजना आवश्यक है। आवेदन पत्र आने पर ही केन्द्र स्थापित किया जावेगा।

( १९ ) परीक्षा केन्द्र उन्हीं स्थानों में हो सकेंगे जहा डाकघर हों और जो स्थान रेलवे स्टेशन से बहुत दूर न हों।

( २० ) केन्द्र में परीक्षा प्रबन्ध व सचालन का पूरा पूरा उत्तरदायित्व केन्द्र व्यवस्थापक महोदय पर ही होगा उनके पास सब सूचनाएँ समय समय पर कार्यालय से पहुँचती रहेंगी।

( २१ ) परीक्षार्थियों को परीक्षा सम्बन्धी सब सूचनायें आदि केन्द्र व्यवस्थापक महोदय से ही मिल सकेंगी।

( २२ ) केन्द्र व्यवस्थापक महोदय को अपना पूरा पूरा पता, डाकघर, पास का रेलवे स्टेशन व प्रान्त आदि सब स्पष्ट स्पष्ट लिखकर पहले ही कार्यालय मे भेज देना चाहिए।

( २३ ) परीक्षार्थी को उसी केन्द्र से परीक्षा देनी होगी जिसके व्यवस्थापक द्वारा उसका आवेदन पत्र कार्यालय मे प्राप्त होगा।

( २४ ) यदि किसी कारणवश परीक्षार्थी परीक्षा केन्द्र बदलना चाहे तो उसे कारण सहित अपना प्रार्थना पत्र परीक्षाओं से १ मास पूर्व परीक्षा मन्त्री के पास भेज देना चाहिए।

## परीक्षाओं का निरीक्षण

( २५ ) परीक्षा मन्त्री को अधिकार होगा कि वे परीक्षा के दिनों मे केन्द्रों का निरीक्षण स्वयं या किसी अन्य व्यक्ति के द्वारा गुप्त अथवा प्रकट रूप से करेंगे।

( २६ ) किसी परीक्षार्थी को जो किसी कारण से किसी परीक्षा से निकाल दिया गया हो अगली परीक्षा में बैठने का अधिकार विना परीक्षा मन्त्री की स्वीकृति के न होगा।

## प्रश्नपत्र

( २७ ) प्रश्न पत्र हिन्दी भाषा मे होंगे।

( २८ ) प्रत्येक प्रश्न पत्र ३ घन्टे का होगा।

( २९ ) उत्तर पुस्तकें परीक्षार्थियो को देवनागरी अक्षरों मे ही लिखनी होंगी।

## अङ्क

( ३० ) प्रत्येक परीक्षा का प्रश्न पत्र १०० नम्बर का होगा। उसमे उत्तीर्णता प्राप्त करने के लिए ३३ प्रतिशत नम्बरों का प्राप्त करना आवश्यक है।

## श्रेणी

( ३१ ) श्रेणी क्रम इस प्रकार होगा—

(क) ६० व अधिक प्रतिशत पाने वाले प्रथम श्रेणी मे।

(ख) ४५ व अधिक प्रतिशत पाने वाले द्वितीय श्रेणी मे।

(ग) ३३ व अधिक प्रतिशत पाने वाले तृतीय श्रेणी मे।

## परीक्षा फल

( ३२ ) उत्तीर्ण छात्रो का परीक्षाफल अप्रैल मास में घोषित कर दिया जावेगा। प्रत्येक केन्द्र के केन्द्र व्यवस्थापक महोदय को भी उनके केन्द्र के उत्तीर्ण छात्रो का परीक्षा-फल भेज दिया जावेगा।

( ३३ ) प्राप्ताङ्क जानने के लिये परीक्षाफल घोषित होने के ६ मास के भीतर ।।) आना तत्पश्चात् १) रु० एक वर्ष तक शुल्क देना होगा।

## उत्तर पत्रों का निरीक्षण

( ३४ ) अनुत्तीर्ण परीक्षार्थी यदि अपनी उत्तर पुस्तको का पुनः निरीक्षण कराना चाहें तो परीक्षा-फल घोषित होने के १ मास के भीतर भीतर १) रुपया शुल्क परीक्षा मंत्री को भेजकर जँचवा सकते हैं।

( ३५ ) यदि कोई परीक्षार्थी बीमारी या अन्य किसी कारण से परीक्षा में न बैठ सके तो उसका परीक्षा शुल्क वापिस न किया जावेगा।

( ३६ ) विशेष परिस्थिति में डाक्टरी प्रमाणपत्र तथा केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा प्रमाणित प्रार्थना पत्र आने पर परीक्षार्थी का परीक्षा शुल्क आगामी वर्ष के लिए सुरक्षित किया जा सकता है।

( ३७ ) यदि कोई परीक्षार्थी परीक्षा में कुछ परचो से उपस्थित रहकर किन्हीं भी कारणों से पूरी परीक्षा में न बैठ सके, तो उसे बिना पूरा शुल्क दिए आगामी परीक्षा में बैठने की आज्ञा न दी जावेगी।

## प्रवेश पत्र

( ३८ ) इस बात का पूर्ण रूप से सन्तोष कर लेने पर कि परीक्षार्थी ने परीक्षा प्रवेश सम्बन्धी प्रत्येक नियम का यथोचित पालन किया है। परीक्षा मन्त्री प्रत्येक ऐसे परीक्षार्थी का प्रवेश पत्र उसके निश्चय किये हुए केन्द्र के व्यवस्थापक के पास भेज देवेंगे ये प्रवेश पत्र परीक्षा आरम्भ की तिथि से १ सप्ताह पूर्व परीक्षार्थियों को केन्द्र व्यवस्थापक से ले लेने चाहिए। बिना प्रवेश पत्र प्राप्त किये कोई भी परीक्षार्थी परीक्षा में प्रविष्ट न हो सकेगा।

## प्रमाण पत्र व पारितोषिक

( ३९ ) प्रत्येक उत्तीर्ण छात्र को सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्त भास्कर, सिद्धान्त शास्त्री की उपाधि प्रदान की जावेगी।

( ४० ) प्रत्येक परीक्षा मे सर्व प्रथम, द्वितीय तथा ,तृतीय आने वाले परीक्षार्थियो को परिषद की ओर से पुरस्कार दिये जावेंगे।

( ४१ ) प्रमाण पत्र व पारितोषिक केन्द्र व्यवस्थापक द्वारा भेजे जावेंगे।

( ४२ ) उपाधि पत्र खो जाने व नष्ट हो जाने पर ।।) शुल्क भेजने पर कार्यालय से पुन उसका प्रतिलिपि प्राप्त हो सकेगी।

( ४३ ) प्रार्थना पत्र म परीक्षा केन्द्र, ईसवी सन् तथा रोल सख्या आदि का उल्लेख करना आवश्यक होगा।

## पुस्तकें मिलने के पते

( ४४ ) पाठविधि की समस्त पुस्तके निम्नलिखित स्थानों से मिल सकेंगी—

( १ ) शारदा मन्दिर बुक डिपो, नई सडक देहली।

( २ ) आर्य साहित्य मडल, लि० अजमर।

( ३ ) प० वजीरचन्द्र अध्यक्ष वैदिक पुस्तकालय लाहौर।

( ४ ) गोविन्द ब्रादर्स अलीगढ।

( ४५ ) परीक्षा सम्बन्धी किसी प्रकार की जानकारी के लिए पत्र लिखने से पूर्व नियमावली भली प्रकार पढ लेवे।

( ४६ ) नियमावली म वर्णित किसी भा बात का उत्तर पत्र द्वारा नही दिया जावगा।

( ४७ ) परीक्षा सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पते पर करें।

**देवव्रत धर्मेन्दु**
परीक्षा मन्त्री
**भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्**
दीवान हाल, देहली।

# हा अमरशहीद वीर व्यंकटराव !

वैंकटराव गुलबर्गा का बड़ा ही निर्भीक और वीर १२ वर्ष का बालक था, आर्य-जगत् भली प्रकार इस बालक से परिचित है। निजाम हैदराबाद में जिस समय महात्मा नारायण स्वामी जी ने सत्याग्रह किया था उस समय इस वीर बालक ने पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी को कोर्ट में पानी पिलाया था। तथा उन्हीं के साथ सत्याग्रह किया था। फिर छोड़ दिया गया तो दूसरे डिक्टेटर देश-भक्त कुँवर चांदकरण जी शारदा के साथ व्यङ्कटराव ने सत्याग्रह किया, जब तक विजय नहीं हुई तब तक बराबर वह वीर बालक जेल के सींकचों में ही रहा। सत्याग्रह संग्राम समाप्त होने के बाद विद्याध्ययन करने के विचार से व्यङ्कटराव अजमेर आये, यहां से श्री भारत केसरी कुँवर चांदकरण जी शारदा ने आर्य प्रतिनिधि सभा अजमेर की ओर से इनको पढ़ने के लिये गुरुकुल चित्तौड़गढ़ भेज दिया था। जब से वे गुरुकुल मे ही शिक्षा पा रहे थे। अब थोड़े दिन से गुरुकुल में वे बीमार हो गये थे। श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज उनको अजमेर अस्पताल में दाखिल कराने के लिये ता० ६ मई को चित्तौड़ से अजमेर ला रहे थे कि अचानक रास्ते में ही रेल मे उस वीर बालक का देहान्त हो गया उस वीर का दाहसंस्कार ता० ७ मई को अजमेर में विधिवत् निम्न महापुरुषों ने कराया—श्री पूज्य स्वामी व्रतानन्द जी महाराज, श्री स्वामी केवलानन्द जी महाराज, श्री पूज्य कुँवर चांदकरणजी शारदा श्री प्रोफेसर घीसूलालजी एडवोकेट, श्री पूज्य महात्मा कन्हैयालाल जी तथा अन्य अनेकों आर्य पुरुष इस वीर की अन्त्येष्टि संस्कार मे थे। हम परमपिता परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वह वीर व्यङ्कटराव की आत्मा को सद्गति तथा उनके परिवार को धैर्य प्रदान करे।

हमने मृतात्मा के पिता के नाम तथा आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम हैदराबाद के नाम तार द्वारा सूचनायें भेज दी हैं।

—सम्पादक

# साहित्य समालोचना

## विश्ववाणी

वार्षिक मूल्य ६)

हिन्दी की इस मासिक पत्रिका का प्रकाशन 'भारत में अंग्रेजी राज्य' के यशस्वी लेखक श्रीयुत पं० सुन्दरलाल जी के संरक्षण में गत जनवरी मास से प्रयाग से प्रारम्भ हुआ है। देश और विदेश की विविध प्रगतियों पर पठनीय सामग्री के अतिरिक्त प्रसिद्ध २ लेखकों द्वारा राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक इत्यादि विषयों पर लिखे हुए मनन योग्य लेख, कवितायें और कहानियां पढ़ने को मिलती हैं। इसका सम्पादन भी बड़ी योग्यतापूर्वक हो रहा है। विज्ञापनों के सम्बन्ध में पत्रिका की नीति बड़ी उन्नत और विशुद्ध देख पड़ती है। हमारे वर्तमान अधिकांश पत्रों और पत्रिकाओं ने अपने लेखों और विज्ञापनों के द्वारा हमारे साहित्य को अश्लील और कुरुचि पूर्ण बनाने में खेदजनक योग दिया है। हमें आशा है 'विश्व वाणी' अपने को इस साहित्यिक असेवा से पृथक् रक्खेगी।

श्री सुन्दरलाल जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के अनन्य पक्षपाती हैं और विश्व-वाणी में और उसकी भाषा में पग पग पर उनकी यह भावना प्रतिबिम्बित होती है। हम हृदय से इस भावना का स्वागत करते हुए एक विशेष बात की ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं। विश्ववाणी की भाषा हिन्दी और उर्दू का सम्मिश्रण है। हमें यह समिश्रण बहुत खटकता है। पत्र की भाषा एक ही होनी चाहिए चाहे वह विशुद्ध हिन्दी हो या उर्दू। जान बूझकर खिचड़ी भाषा के लिखे जाने से तो पत्रिका का भाषा-सौष्ठव नष्ट ही होता है।

---

# सम्पादकीय

## गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या

"हरिजन सेवक संघ" के माननीय अधिकारी श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और ठक्कर बापा के सत्प्रयत्न तथा आर्य बन्धुओं और बिटों के सहयोग से गढ़वाल की डोला पालकी की समस्या का गत १४ मई को सन्तोषजनक हल हो गया है। इस समाचार से निश्चय ही देश भक्त स्त्री पुरुषों और हिन्दू समाज के हितैषियों को प्रसन्नता होगी। हिन्दुओं और आर्यों का ऐसा संघर्ष जैसा दुर्भाग्य से गढ़वाल प्रान्त में विकसित हुआ है अवाञ्छनीय है तथा संसार और देश की वर्तमान विषम परिस्थिति में तो एक क्षण के लिये भी वाञ्छनीय नहीं है। यह बहुत अच्छा हुआ कि इस समस्या का हल हो गया।

२३ फरवरी १९४१ को इस समस्या के हल के लिये सर्वदल सम्मेलन नाम की लैंसडौन में एक कान्फ्रेंस हुई थी। इस सम्मेलन की आयोजना के पीछे एक संक्षिप्त इतिहास है और वह यह है कि कुछ ज्ञात और अज्ञात शक्तियों की प्रेरणा के फलस्वरूप आर्यों के प्रति बिटों के अत्याचार इस वर्ष बहुत बढ़ गये थे और ऐसा लगता था मानों बिट भाइयों ने डोला पालकी सहित आर्यों की बारातों के विरुद्ध जिहाद बोल दिया है। इन अत्याचारों की गूँज गढ़वाल की सीमाओं तक सीमित न रह सकी वरन् देश भर में व्याप्त हो गई। महात्मा गांधी भी जिनका ध्यान राजनैतिक सत्याग्रह में केन्द्रित था इस गूँज से विचलित हुए बिना न रह सके। उन्हें गढ़वाल के कांग्रेस जनों को आदेश देने के लिए बाधित होना पड़ा कि जब तक गढ़वाल की यह समस्या हल

नहीं हो जाती है तब तक वे उन्हें सत्याग्रह में भाग लेने के लिये आज्ञा न देंगे। इसी आदेश के फलस्वरूप गढ़वाल के कॉंग्रेसी जनों के प्रयत्न से उपर्युक्त कांफ्रेंस हुई थी। कांग्रेस के सचालकों की पोजीशन यह थी कि वे आर्यों के डोला-पालकी के अधिकार को तो स्वीकार करते थे परन्तु उनकी मांग यह थी कि जिस प्रकार बिट लोग देव मन्दिरों और निवास गृहों के सामने डोला पालकी से उतर जाते हैं उसी प्रकार आर्य लोग भी उतर जाया करें। आर्य भाइयों का कहना था कि राजमार्गों के नागरिक अधिकार के उपभोग की उनको स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध क्यों लगाया जाता है जबकि उन्होंने अनेकानेक कष्टों का सामना करके वर्षों के अथक परिश्रम और प्रयत्न के पश्चात् सरकार से यह स्वतन्त्रता उपलब्ध की थी। इसके अतिरिक्त सिद्धांत की दृष्टि से भी यह मांग आर्यों के प्रतिकूल थी। इसी मत भेद के कारण आर्य भाइयों ने इस कान्फ्रेंस में भाग नहीं लिया था। इस कान्फ्रेंस ने उपर्युक्त आशय का एक प्रस्ताव पास करके प्रचारित भी कर दिया था। इस कांफ्रेंस की कार्यवाही पर विचार करते हुए हमने इन स्तम्भों में आशा प्रगट की थी कि कान्फ्रेंस के संचालक अपने प्रयत्न जारी रखेंगे। श्रीमती रामेश्वरी नेहरू और श्री ठक्कर बापा पिछले दिनों इस समस्या के हल के लिए गढ़वाल गये थे और उन्होंने १०–११ दिन तक उस प्रान्त में भ्रमण किया था। सार्वदेशिक सभा के उपमन्त्री श्री पं० ज्ञानचन्द जी बी० ए० आर्य सेवक को उन्होंने तार द्वारा लैंसडौन बुलाया और प्रेरणा की कि वे पधार कर इस समस्या के हल करने मे आर्य समाज की ओर से उन्हें योग दान दें, क्योंकि सार्वदेशिक सभा की ओर से वे ही मनोयोग पूर्वक इस समस्या के हल के लिये यत्न कर रहे थे। पं० ज्ञानचन्द जी लैंसडौन गये। सभा की एक मात्र इच्छा थी और है कि इस समस्या के हल के लिए जहाँ तक संभव और उचित हो पूरा पूरा मार्ग दिया दिया जाना चाहिये। इस इच्छा को दृष्टि में रखते हुए गढ़वाल के आर्य भाइयों ने पण्डित जी के नेतृत्व मे समझौते में भाग लिया और भाई चारे के रूप में देव मन्दिरों के सामने डोला पालकी में से उतरने की बात स्वीकार कर ली। आर्य समाज जहां तक जा सकता था वह इस समस्या के हल में आगे गया है। अब देखना यह है कि बिट भाई कहां तक इस समझौते का पालन करते हैं। हमारी अपनी सम्मति यह है कि यह देखने के लिये कि समझौते के मार्ग में बाधायें न पड़ें और यह भले प्रकार क्रिया में

परिप्लुत होता रहे, दोनों पक्षों के जिम्मेवार सज्जन कुछ समय पर्यन्त गढ़वाल में रहें और देश के प्रमुख प्रमुख सज्जन समय समय पर गढ़वाल प्रान्त का दौरा करते रहें।

जन्म से कोई छोटा बड़ा नहीं होता वरन् कर्म से ही छोटा बड़ा होता है। जन्म के आधार पर किसी को छोटा मान लेना और उस पर और उसकी सन्तान पर अत्याचार करना घोर पाप है। इस और इसी प्रकार के अनेकानेक अत्याचारों के मिटाने के लिए भी आर्य समाज का जन्म हुआ है। गढ़वाल के बिट भाइयों को आर्य समाज को ठीक २ रीति से समझने का यत्न करना चाहिए और स्वार्थियों के भुलावे में नहीं आना चाहिए। आर्य समाज तो सबकी भलाई चाहने वाला समाज है और हिन्दुओं का रक्षक है। आर्य समाज की शिक्षाओं और बातों को ध्यान पूर्वक सुनने पर उन्हें पता लग जायगा कि वास्तविक धर्म यह नहीं है कि जन्मगत बड़प्पन के अभिमान में ६, ६, सात, सात महीने तक बारातों को रोक कर लोगों को पीड़ित किया जाय और उन्हें मारा पीटा जाय। परमात्मा करे बिट भाई अपनी भूल को शीघ्र अनुभव करने लग जायें और भूलों के कारण आर्यों पर जो अत्याचार उनके द्वारा होते हैं वे शीघ्र निःशेष हो जायें।

## आर्य्य समाज के उपनियमों में संशोधन

क्या किसी आर्य समाज को आर्य समाज के उपनियमों में परिवर्तन करने का अधिकार है, इस दिनों आर्य जगत में यह चर्चा जोरों से चल रही है। इस सम्बन्ध में आर्य समाज के कई महारथियों की सम्मति भी हमने पढ़ी है। वे सब इस सम्बन्ध में एक मत हैं कि यह अधिकार किसी भी आर्य समाज को प्राप्त नहीं है। यदि प्रत्येक समाज अपनी मर्जी से इनमें संशोधन करने लग जाय तो संगठन छिन्न-भिन्न हो जायगा और आर्य समाज की संगठन की शक्ति जिस पर आर्यों को अभिमान है, नष्ट हो जायगी। साधारण आर्यों की भी इससे भिन्न सम्मति नहीं हो सकती।

अभी कल 'आर्य गज़ट' में हमने इस सम्बन्ध में एक सम्पादकीय टिप्पणी पढ़ी है। उसकी भी यही सम्मति है कि उपनियमों में परिवर्तन करने का किसी समाज को अधिकार नहीं है। वरन् उसकी सम्मति में यह अधिकार प्रतिनिधि सभाओं का है। हम इस सम्मति का आदर करते हुए भी, यह अवश्य कहेंगे कि इसमें भी कुछ त्रुटि है। यदि प्रतिनिधि

सभाएँ अपने ढग से परिवर्तन करेंगी तो आर्य्य जगत् में एक जैसा सगठन न बन पायगा जो सभी को अभीष्ट है। आर्य जगत् में इस समय लगभग १८ प्रतिनिधि सभाएँ हैं। प्रतिनिधि सभाओं के हाथ मे उपनियमों के सशोधन का अधिकार जाने का अभिप्राय यह होगा कि १८ प्रकार के उपनियम होंगे। यह स्थिति भी सगठन के लिये लाभप्रद न होगी। यह अधिकार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा का ही है जिसमे १-२ प्रतिनिधि सभाओं के अतिरिक्त समस्त प्रतिनिधि सभाएँ सम्मिलित हैं।

अब प्रश्न यह है कि जो समाजे सगठन की अवहेलना करके अपनी इच्छा से मनमाने ढग पर उपनियमों म परिवर्तन करती हैं उनके विरुद्ध क्या कार्यवाही होनी चाहिए? हमारी सम्मति मे तो उनको सगठन के समस्त लाभों से वचित कर दिया जाना चाहिए।

इसमे सन्देह नही कि प्रत्येक समाज को सशोधन का सुझाव प्रस्तुत करने का हर समय अधिकार है। समाजें अपनी प्रतिनिधि सभाओं के द्वारा और जो प्रतिनिधि सभाओं से सम्बन्धित नहीं हैं सीधे सार्वदेशिक सभा मे अपने सुझाव प्रस्तुत कर सकती हैं परन्तु अपने ढग से उनमे परिवर्तन कर देना तो सगठन के विरुद्ध बगावत है जिसका कड़ा नोटिस लिया जाना चाहिए।

## श्री सर सी० पी० रामास्वामी और आर्यसमाज

मद्रास में आर्य्यसमाज के नये भवन के उद्घाटन के समय ट्रावनकोर राज्य के दीवान सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर ने एक बहुत प्रभावशाली भाषण दिया था।

आपने भाषण में उन्होंने बतलाया कि मन्दिर प्रवेश सम्बन्धी सरकारी घोषणा के फलस्वरूप इस समय तक ३२००० ईसाइयों की शुद्धि हो चुकी है और यह शुद्धियां स्वेच्छा-पूर्वक हुई हैं।

शुद्धि के सम्बन्ध मे उन्होंने कई विचारणीय बातें कहीं हैं। उन्होंने कहा, कोई भी व्यक्ति अपने पड़ौसी को अपने धर्म मे दीक्षित कर सकता है, परन्तु सख्यावृद्धि अथवा अन्य उद्देश्यों क लिये भेड़े मूँडने का यत्न करना बड़ा निन्दनीय है। जो व्यक्ति शुद्धि का अभिप्राय न जानकर शुद्ध होता है अथवा करता है उसकी भी उन्होने घोर निन्दा की। उन्होंने बतलाया कि हिन्दू लोग दुर्बल हैं, उनमें आपस मे फूट है और अन्य जातियाँ शुद्धि का कार्य उत्साह और संगठित रूप में कर रही हैं। हिन्दू लोग निराश्रित हैं और रक्षा के लिए दूसरों पर निर्भर करते हैं। यदि हिन्दुओं को कुष्ठियों की रक्षा और चिकित्सा के लिये किसी सस्था निर्माण की आवश्यकता हो तो सब चुप हो जायेंगे। हिन्दुओं को ईसाई मिश्नरी के पास जाना चाहिए और सस्था के सञ्चालन की प्रार्थना करनी चाहिये। जरायम पेशा लोगों में सुधार करना

होता है तो सरकार और जनता ईसाइयों पर विश्वास करती है। ऐसे बहुत से ईसाई हैं जो जानबूझ कर कुष्ठालयों में गए हैं, उन्हें बीमारी लगी है और वहीं मर गए हैं। हिन्दुओं में ऐसे उदाहरण कहाँ हैं।

जब तक हिन्दुओं का बच्चा बच्चा प्रचारक न बनेगा और आर्यसमाज जैसा उनका संगठन न होगा, जब तक वे सहिष्णु और उदार न होंगे तब तक उद्देश्य की सिद्धि न होगी। हिन्दुओं में अदम्य साहस होना चाहिए, इसके अतिरिक्त उनमे व्यवहार कुशलता भी होनी चाहिए और उनके कार्य का ढङ्ग सुनिश्चित होना चाहिए। जोश में बेहोश होकर कुछ नहीं करना चाहिए। यत्न तो प्रतिक्षण ही होना चाहिये।

आर्यसमाज की प्रशंसा करते हुए उन्होंने कहा—

"हिन्दू धर्म आर्यसमाज जैसे संगठन का ऋणी है, जो उन विचारों को व्यवहार मे लाया है जिनका क्रिया मे लाया जाना आज के संसार मे सफलता के लिये आवश्यक है।"

## महात्मा जी और साम्प्रदायिक दंगे

बम्बई और अन्य नगरों में जो साम्प्रदायिक उत्पात हुए हैं उनसे प्रभावित होकर श्री महात्मा गान्धी जी की ओर से एक वक्तव्य प्रकाशित हुआ है जिसमे लिखा है :—

'यदि कोई व्यक्ति गुंडों के भय से वा इस विचार से कि उसका जीवन संकट में है किसी जगह से भागता है तो यह उसकी कायरता है। प्रत्येक व्यक्ति को चाहिए कि वह गुन्डाशाही का सामना करे अहिंसा से वा हिंसा से, मगर मुकाबला करे जरूर। जिस जगह वह है वहां हो डटा रहे, वहां से भागे नहीं। परन्तु ऐसी अवस्था में कांग्रेस और कांग्रेसियों को केवल अहिंसा से ही काम लेना चाहिए। अहिंसा का मार्ग अच्छा है। आपको देखना चाहिए कि कांग्रेस में कौन २ लोग ऐसी दशा मे हिंसा का उत्तर हिंसा से देने के पक्षपाती हैं। यदि कांग्रेस में कोई ऐसा व्यक्ति हो तो उसे कांग्रेस से बाहर निकल जाना चाहिए। अपनी रक्षा के लिए भी अहिंसा के स्थान पर किसी अन्य उपाय में विश्वास रखने वालों को कांग्रेस का सदस्य नहीं रहना चाहिए। कांग्रेस के सदस्यों को उन अखाड़ों व शारीरिक व्यायाम के उन केन्द्रों में नहीं जाना चाहिए जहां हिंसा का मुकाबला हिंसा से करना सिखाया जाता है। कांग्रेस वालों को यह भी चाहिए कि वे पुलिस व फौज की मांग न करे। वह न कहें कि फौज और पुलिस दंगों में उनकी रक्षा करे। उन्हें यह भी नहीं चाहिए कि हानि होने की दशा में किसी प्रकार की क्षति पूर्ति की मांग करे।

महात्मा जी के अहिंसा सिद्धान्त पर हम एक से अधिक बार अपने विचार प्रगट कर चुके हैं। हमे प्रसन्नता है कि महात्मा जी ने अब लम्बे अनुभव के आधार पर इस सिद्धान्त को स्वीकार किया है कि आततायियों से हिंसा और अहिंसा दोनों मे से किसी के आश्रय पूर्वक अपनी रक्षा करनी चाहिए, इससे पूर्व उन के विचार इतने अस्पष्ट थे कि सर्व साधारण को उनके आन्तरिक भाव समझना कठिन हो जाता था।

कॉग्रेस जनों को उन्होने जो आदेश दिए हैं वे कहाँ तक व्यवहार योग्य हैं यह देखने की वस्तु है। हमे तो ये आदेश, यद्यपि बहुत उच्च हैं, व्यावहारिक नही देख पड़त।

## आर्य डाइरेक्टरी

आर्य डाइरेक्टरी का प्रकाशन प्रारम्भ हो गया है। जिन सस्थाओं ने अभी तक अपने विवरण नहीं भेजे हैं वे शीघ्र अपने विवरण सार्वदेशिक सभा के कार्यालय म भेज देवें। जो समाजें, सस्थाएं और सज्जन डाइरेक्टरी मगाना चाहें वे अभी से अपने आर्डर अङ्कित करा देने की कृपा करें। मूल्य १।) रक्खा गया है।

## आर्य युवक सभा काशी

आर्य युवक सभा काशी का वार्षिकोत्सव २७, २८, २६ मई को होने वाला था और २७ को नगरकीर्तन का प्रोग्राम था परन्तु जिला मजिस्ट्रेट ने शान्ति भग की आशका प्रगट करके और नगरकीर्तन को अप्रचलित बताकर १४४ धारा के आधीन उसे रोक दिया है। इस आज्ञा के प्रतिवाद स्वरूप उस सभा ने अपना उत्सव स्थगित कर दिया है।

सयुक्त प्रान्त की सभा को इस विषय की ओर विशेष ध्यान देकर उत्सव के होने तथा नगरकीर्तन के निकाले जाने की व्यवस्था करनी चाहिये। आर्यसमाज के जलूसों का इस प्रकार से रोका जाना प्रचार के मार्ग मे बड़ी बाधा है। इस सम्बन्ध मे हम सम्प्रति अधिक न लिखकर जिला मैजिस्ट्रेट के आर्डर और उसपर सहयोगी 'आज' की टिप्पणि उद्धृत करते हैं—

"मुझे पता चला है कि आर्ययुवक सघ एक जलूस निकालनेवाला है। यह जलूस पहले कभी नहीं निकलता था और उसके विषय मे आपत्ति की गयी है। चूँकि इस जलूस स शान्तिभंग होने का डर है इसलिए मैंने जाब्ता फौजदारी की दफा १४४ के अनुसार जलूस निकालने वालों को हुक्म दे दिया है कि वे २७ से ३० मई सन् १९४१ के बीच जलूस नहीं निकाल सकते। मै समझता हूँ कि इस आज्ञा से जनता की शान्तिभंग होने की आशका नहीं रह जायगी यह हुक्म २७ मई की ६ बजे सबेरे से ३० मई की आधी रात तक लागू रहेगा।

—जिला मैजिस्ट्रेट काशी

हमें मालूम हुआ है कि गत सोमवार को दफा १४४ के अनुसार आज्ञा देकर स्थानीय जिला मजिस्ट्रेट ने आर्ययुवक सभा को अपना वार्षिक धार्मिक जलूस निकालने से मना कर दिया है। मनाही का कारण यह बताया गया है कि जलूस प्रचलित (कष्टमरी) नहीं है और इससे शान्तिभंग होने की आशंका है। यह आज्ञा २७ मई के सवेरे ६ बजे से ३० मई की आधी रात तक जारी रहेगी। शान्तिभंग न होने देने के लिए सब प्रकार का प्रबन्ध करना जिला मजिस्ट्रेट का कर्तव्य है, इसमें सन्देह नहीं। पर इस आज्ञा का जो कारण बताया गया है वह हमें साधारण नहीं मालूम होता। 'कष्टमरी' या प्रचलित शब्द का अर्थ यदि 'अज्ञात समय से प्रचलित' हो तो नयी धार्मिक संस्थाओं की स्थापना असम्भव हो जायगी। उस दशा में धर्म सम्बन्धी स्वतन्त्रता का कुछ अर्थ ही न रह जायगा। हां, इसमें इस बात का विचार अवश्य होना चाहिए कि इसमें अन्य धर्म वालों को आपत्ति है या नहीं, और यदि है तो उचि । है वा नहीं। केवल 'कष्टमरी' न होना ही जलूस रोकने का अच्छा कारण नहीं हो सकता। नागरिक स्वतन्त्रता का भी विचार होना चाहिए। साथ ही इस बात का प्रमाण यथेष्ठ मिल सकता है कि आर्य नवयुवक सभा का यह जलूस काशी में इसके पहले एकाधिक बार निकल चुका है। हमें आशा है कि यहाँ के निष्पक्ष मजिस्ट्रेट श्री फिनले, यदि सम्भव हो तो इस बात पर पुनर्विचार करेंगे। आर्यकुमार सभा को भी स्मरण रखना चाहिये कि समय विकट है। स्थान-स्थान में रक्तपात हो रहे हैं। अतः उन्हें मजिस्ट्रेट की आज्ञा के विरुद्ध कोई कार्य न करना चाहिये। वैधरीति से प्रतिवाद करना ही इस अवसर पर अलम् होगा।

—'आज'

## हिन्दू महासभा का अधिवेशन

अखिल भारतीय महासभा का आगामी अधिवेशन बड़े दिन की छुट्टियों में भागलपुर (बिहार) में होना है। स्वागत समिति का निर्माण होगया है, और प्रारंभिक कार्य शुरू कर दिया गया है। स्वागत समिति की सदस्यता का शुल्क १५) है बिहार प्रान्त निवासी कोई भी हिन्दू चाहे वह बिहार में हो वा बिहार से बाहर सदस्य बन सकता है।

## गृह-विहीन जातीय सम्मेलन मैनपुरी

गृह-विहीन जातीय रक्षा मण्डल के आयोजनानुसार ता० २१-२२ जून को एक विराट् सम्मेलन करने का आयोजन किया गया है जिसमें एटा मैनपुरी फर्रुखाबाद तथा इटावा आदि जिलों के गृह विहीन जातियों के लोग पधारेंगे। इसी अवसर पर आर्य कुमार सम्मेलन भी होगा।

# हिन्दुत्वदीपक श्री पं० कन्हैयालाल जी मिश्र आर्योपदेशक काशी कृत पुस्तके

१—ईराक की यात्रा— लेखक ने इराक और अरब के अनुभव बतलाते हुए अरब और इराक का प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। लेखक ने इस पुस्तक में सप्रमाण सिद्ध किया है कि योगीराज कृष्ण का जन्म अरब की मथुरा में हुआ था और कंस का वध भी अरब में ही हुआ क्योंकि अरब में ही कंस का राज था। इस पुस्तक में २७३ पृष्ठ है और ३१ भिन्न भिन्न चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। विद्यार्थियों उपदेशकों तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य पुस्तक है। इराक के मुसल्मान बादशाह ने मारजन्ट और कब्रें तोड़कर किस प्रकार मार्ग बनाये और बाजार बनाई इसका भी पूर्ण वर्णन है। मूल्य केवल १)

२ मेरी अबीसीनिया यात्रा — लेखक ने अपनी यात्रा का अनुभव बतलाते हुए प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास और आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अबतक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। इटली ने किस कूट नीति से अबीसीनिया की सीमा पर झगड़ा कर अबीसीनिया को हड़प लिया आंख देखा दृश्य इस पुस्तक में वर्णित है। मूल्य केवल ॥)

३ हमारी जापान यात्रा— इसमें लेखक ने अपनी यात्रा के अनुभव के अतिरिक्त जापान जावा सुमात्रा बाली आदि कई टापुओं के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास तथा आर्य (हिन्दू) सभ्यता के चिह्न जो अब तक मिलते हैं पर पूर्णरूप से प्रकाश डाला है। जापान सन् १८५० से पूर्व की अवनति के गढ़ में पड़ा था और अब किस प्रकार उन्नतिशाली बना। जापान का सङ्गठन कैसा दृढ़ है जापान और भारतवर्ष में वर्तमान समय में क्या अन्तर है? इस पर भी लेखक ने पूर्ण प्रकाश डाला है। यह पुस्तक प्रत्येक देशभक्त के पढ़ने योग्य तथा हिन्दू मात्र के पढ़ने योग्य है। इसमें १६० पृष्ठ और ३९ चित्र सुन्दर तथा मनमोहक हैं। मूल्य केवल १॥)

पुस्तक मिलने का पता —

बाबूलाल आर्य मार्फत श्री महावीरप्रसाद ठेकेदार अर्दली बाजार बाँदा ( यू० पी० ) जी० आई० पी० रेलवे।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सवाराम चावला द्वारा 'चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार देहली में मुद्रित।

जुलाई १९४१ Reg No L 2121

ऋग्वेद ओ३म् यजुर्वे

# सार्वदेशिक



सम्पादक— प्रो० सुधाकर एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मूल्य स्वदेश ३) एक प्रति का ≈) विदेश से ५ शि० वार्षिक

अथर्ववेद सामवे

# लेख-सूची


| सं० | विषय | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १. | वेद की शिक्षायें | ... | २१३ |
| २. | जीवन का सच्चा सुख | श्री महादेवप्रसादजी बिड़ला | २१४ |
| ३. | मनु और मछली की कथाकी व्यापकता | श्री नारायण स्वामीजी महाराज | २२० |
| ४. | स्वाधीनता का उपासक परीक्षा मे | श्री चमनलाल जर्नलिस्ट | २२२ |
| ५. | आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या | (गतांक से आगे) | २२४ |
| ६. | आर्य समाज की चिनगारियाँ | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी महाराज | २२६ |
| ७. | सुमन संचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | २३० |
| ८. | ब्रिटिश लोग चुप क्यो नही रहते ? | डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर | २३३ |
| ९ | माँस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियाँ और उनका खंडन | श्री डा० सत्यप्रकाश डी० एस० सी० | २३७ |
| १०. | हैदराबाद मे धर्म प्रचार | श्री पं० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री | २३९ |
| ११. | नकली घी से नुकसान | श्री सतीषचन्द्र दास गुप्त | २४१ |
| १२. | Hindu Philosophy and Modern Sciences | | २४५ |
| १३. | सहायता कार्य | श्री रामजितमिश्र म० आ०स० बम्बई | २४८ |
| १४. | वैदिक साहित्य के प्रचार का अपूर्व आयोजन | श्री देवव्रत धर्मेन्दु | २४९ |
| १५. | अछूतपन का कलंक दूर करने का प्रयत्न | श्री कर्मचन्द प्रधान मन्त्री | २५२ |
| १६. | सम्पादकीय | | २५४ |


---

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६ | आषाढ़ १९९८ | जुलाई १९४१ ई० | दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क ५

## * वेद की शिक्षाएं *

**असंतापं मे हृदयम् ।** अथ० १९।३।६

मेरा हृदय संताप रहित है ।

May my heart be free from jealousy, grief and sorrow !

* * *

**बहु बाह्वो र्बलम् ।** अथ० १९।६०।१

मेरी दोनों बाहुओं में बहुत बल हो ।

May my arms be strong enough to protect myself and shelter others !

# जीवन का सच्चा सुख

[ लेखक—श्रीमहादेवप्रसादजी बिड़ला ]

जीवका अनादिकाल से यही ध्येय रहा है कि उसे अधिक से अधिक सुख प्राप्त हो। इसी उद्देश्य से वह धन, विद्या और तरह तरह की भोग सामग्रियों का संग्रह करता है। आज हम लोग जो ये बड़े बड़े महल, कल कारखाने, मिल, व्यापारिक चेम्बरे, विश्वविद्यालय, कालेज न्यायालय, कलाभवन और सिनेमाहाल आदि देख रहे हैं इन सबका उद्देश्य भी यही है कि मनुष्य को अधिक से अधिक सुख मिले। मनुष्य ने जो तरह तरह के धनोपार्जन और मनोरंजन के साधनो का आविष्कार किया है उन सबका लक्ष्य उसकी सुखेच्छा की पूर्ति करना ही है। अतः 'सच्चा सुख क्या है ?' यह जान लेना प्रत्येक मनुष्य का प्रधान कर्त्तव्य है।

यदि हम थोड़ी भी विचार-दृष्टि से देखें तो मालूम होगा कि विषय-सुख की दृष्टि से मनुष्य और पशु मे कुछ भी अन्तर नहीं है। खान पीने और विषय-सेवन करने मे तो सभी प्राणी समान है और सभी को अपने अनिष्ट की आशङ्का भी लगी रहती है। मनुष्य मे अन्य जीवो की अपेक्षा केवल एक-ही विशेषता है वह है 'धर्म।' इसे हिताहित-विवेक या ज्ञान कुछ भी कह सकते हैं। जिसमें धर्म नहीं है वह मनुष्य तो केवल नाम का ही मनुष्य है उसे तो पशु ही समझना चाहिये।

आहारनिद्राभयमैथुनं च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् ।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिः समाना ॥

इस प्रकार विचार करने पर यद्यपि एक विषयी मनुष्य और पशु मे कुछ भी अन्तर नहीं है और यही बात शास्त्र भी कहता है, तो भी एक मोटी से मोटी बुद्धिवाला मनुष्य भी पशु होना पसन्द नहीं करेगा। यह बात सुप्रसिद्ध आधिभौतिक-वादी दार्शनिक मिल (John Stuart Mill) ने भी स्वीकार की है। वह लिखते है—

It is better to be a human being dis-satisfied than a pig satisfied, better to be Socrates dis-satisfied than a fool

satisfied. And if the fool or the pig is of a different opinion, it is because they know only their own side of the question.'

तात्पर्य यह है कि अपने जीवन से सन्तुष्ट एक सुअर होने की अपेक्षा भी असन्तुष्ट मनुष्य होना अच्छा है और सन्तुष्ट मूर्ख होने की अपेक्षा भी असन्तुष्ट सुकरात होना अच्छा है। यदि कहो कि यह बात उस सन्तुष्ट सूअर या मूर्ख से पूछी जाय तो उनकी सम्मति तो इससे विपरीत ही होगी, तो इसका कारण यह है कि वे केवल एक ही पक्ष अर्थात् अपनी ही स्थिति की बात जानते हैं, उन्हें दूसरे पक्ष की विशेषताओं का कुछ भी पता नहीं है।

इससे पता चलता है कि केवल विषयसुख से ही मनुष्य जीवन की सार्थकता नहीं हो सकती। यदि ऐसा होता तो भोगसामग्रियों की सुविधा कर दिए जाने पर कोई भी मनुष्य पशु होना स्वीकार कर लेता। अतः जिस हिताहितविवेक या धर्म-बुद्धि को मनुष्य असन्तुष्ट और असुखी रहकर भी छोड़ना नहीं चाहता वही उसकी प्रधान विशेषता है और उसी के कारण वह पशुओं से श्रेष्ठ माना गया है। इस अमूल्य रत्न को पाकर जो धर्म-संग्रह नहीं करता और विषय-भोगों में ही अपना जीवन गंवा देता है उससे बढ़कर मन्दभाग्य और कौन होगा? जो लोग सत्संग और विद्यारूपी जलसे इस विवेक-बुद्धिरूप वृक्ष को सींचते हैं उन्हें ही इसके फलरूप जीवन का सच्चा सुख मिल सकता है, वे ही उस अमरफल को पाकर कृतार्थ हो सकते हैं। भौतिक सुखों के लिए लालायित होना तो व्यर्थ ही है। ये सुख-दुःख तो प्राणिमात्र को स्वभाव से ही उनके प्रारब्धानुसार मिलते रहते हैं।

आजकल लोगों की बुद्धि बहिर्मुख हो रही है। वे बढ़िया पोशाक, स्वादिष्ट, भोजन, गाने बजाने और नाटक सिनेमा आदि में ही सुख समझ रहे हैं। इसी से वे तरह तरह की आमोद-प्रमोद की सामग्रियों का सग्रह करने में व्यस्त हैं। किन्तु इस से सुख की अपेक्षा उनके दुःख की ही वृद्धि हो रही है। जिस प्रकार रोगी अपनी रुचि का दास होकर संयम छोड़ दे और कुपथ्य करने लगे तो इससे रोग बढ़ जाने के कारण उसका दुःख ही बढ़ता है, उसी प्रकार अपनी भोग-लालसा की तृप्ति करने की धुन में हम ने कई प्रकार के रोग ही बढ़ा लिए हैं इसी की बदौलत आज समाज में फिजूलखर्ची, बेकारी और तरह तरह की बीमारियों की वृद्धि होरही है। इन से बचने के लिए हम दम्भ, पाखण्ड, कलह और मिथ्याचार आदि विपरीत साधनों की शरण लेते हैं। उनके कारण हमारा यह रोग और भी असाध्य होता जा रहा

है। इस प्रकार इस भोग-तृष्णा तृप्ति के भ्रम में पड़कर हम दिनोंदिन अपनी अशांति ही बढ़ा रहे हैं।

शास्त्र तो संयम को ही सुख का साधन बताता है। वह सयम मन, वाणी शरीर और इन्द्रिय सभी का होना चाहिये। हमारे ऋषि-मुनि सयम या तप से ही अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—चारो पुरुषार्थों की सिद्धि कर लेते थे। यदि थोड़ा-सा विचार करें तो स्पष्ट जान पड़ेगा कि आज भी बिना सयम या दुःख सहे कोई भी वस्तु हाथ नही लगती। जो विद्यार्थी अध्ययन मे परिश्रम नही करता वह कब विद्वान् हो सकता है? जो व्यापारी अध्यवसायी नही होता उसपर लक्ष्मीदेवी की कृपा कहाँ होती है? जो योद्धा अपने शरीर पर शस्त्रो का आघात सहन नही करना चाहता उसे कब विजय मिल सकती है? इसी प्रकार जो पुरुष सयम के द्वारा अपनी उच्छृङ्खल प्रवृत्तियो को नहीं रोकता उसे कभी सच्चा सुख नहीं मिल सकता। सत्यभामा ने जब द्रौपदी से सुख का साधन पूछा तो उसने यही कहा कि—

सुख सुखेनेह न चातुलभ्य दु खेन साध्वी लभते सुखानि।

अर्थात् सुख के द्वारा सुख कभी नहीं मिल सकता, जो साध्वी स्त्री दुःख सहती है—तपस्या करती है उसे ही सुख मिलता है। अतः सच्चा सुख पाने के लिए हमें भी दुःख को अपनाना होगा, संयम का आश्रय लेना होगा, तपस्या करनी होगी।

जो लोग भोगों में सुख ढूंढते हैं उन्हे अच्छी तरह समझ लेना चाहिये कि वह वस्तुतः वहाँ है नहीं। सुख-दुःख तो मन के धर्म है और वही उनकी स्थिति भी है। बाह्य विषयों में भटकने से तो मन की अशान्ति ही बढ़ती है। यदि हम उसकी लालसा की तृप्ति करते रहेंगे तो वह और भी बढती जायगी। अतः हमें यदि स्थायी सुख पाना है तो चित्त की भोगतृष्णा का नियन्त्रण करना चाहिये। यदि हम उसे यहाँ तक नियन्त्रित कर सकें कि वह कभी किसी विषय के लिये लालायित ही न होतो हमें स्थिर सुख या शान्ति की प्राप्ति हो सकती है। जर्मन दार्शनिक शोपेनहर का भी कथन है कि 'हमारी सारी सुखेच्छाओं मे से जितनी पूर्ण हो जाती हैं उतनी ही मात्रा मे हम अपने को सुखी समझते हैं और जब सुखेच्छाओं की अपेक्षा किसी का सुखोपभोग कम होता है तो उतने ही परिणाम में उस मनुष्य को दुखी कहा जाता है।' इस न्याय से भी सुखेच्छाओं

को घटाने में ही सुख है। उनकी तृप्ति करने से तो वे बढ़ेंगी ही। इस विषय में अनेकों दृष्टान्त दिये जा सकते हैं।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

'भोगों की कामना भोगने से कभी शान्त नहीं हो सकती, बल्कि घी की आहुति से अग्नि के समान वह और भी बढ़ जाती है।' इसी प्रकार रोम का एक बादशाह था। वह रसनेन्द्रिय का इतना दास था कि दिन मे कई बार तरह-तरह के व्यञ्जनों का स्वाद लेने की वासना से भोजन करने के बाद ओषधि लेकर वमन कर देता था और उसके बाद दूसरे प्रकार का भोजन खाता था। उसका सारा जीवन इसी दुर्दशा में बीता और अन्त में पश्चात्ताप ही उसके हाथ लगा। योरोप के स्पेन देश मे किसी समय मुसलमानों का राज्य था। वहाँ के बादशाह अब्दुर्रहमान तृतीय ने अपने जीवन की एक डायरी बनाई थी। वह बड़ा न्यायनिष्ठ और पराक्रमी बादशाह था। किन्तु उसके भी पचास साल के शासनकाल में केवल चौदह दिन ही ऐसे थे जो सुख पूर्वक बीते थे। इन दृष्टान्तों से यही निश्चय होता है कि भोग सामग्रियों की बहुलता से किसी को भी सुख नहीं मिल सकता। सुख तो मन का धर्म है; अतः धनी हो या निर्धन, जिसका चित्त शांत है, निर्वासनिक है, वही सुखी है। इसी से राजर्षि भर्तृहरि ने कहा है:—

मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान् को दरिद्रः।

अब प्रश्न यह होता है कि सुख है क्या वस्तु। शास्त्रकारों ने सुख और दुःख की व्याख्या कई प्रकार से की है। नैयायिक कहते हैं—'अनुकूलवेदनीयं सुखम्' 'प्रतिकूलवेदनीयं दुःखम्'। अर्थात् अनुकूल अनुभूति का नाम सुख है और प्रतिकूल अनुभूति का दुःख। एक दूसरी जगह कहा है—'यदिष्टं तत्सुखं प्राहुः द्वेष्यं दुःख महेष्यते' अर्थात् जो अपने को अभीष्ट हो उसे सुख कहते हैं और जो बुरा लगे वह दुःख माना जाता है। वेदान्त ग्रन्थों में आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक भेद से सुख-दुःख के तीन प्रकार बताये हैं। पृथ्वी-जल आदि भौतिक पदार्थों से जो सुख या दुःख मिलते हैं उन्हें आधिभौतिक कहते हैं। अकस्मात् दैवेच्छा से प्राप्त होने वाले सुख-दुःख आधिदैविक कहलाते हैं और बाह्य संयोग के बिना शरीर या मन के स्वास्थ्य अथवा अस्वास्थ्य के

कारण होने वाले सुख दुःख आध्यात्मिक माने गये हैं। भगवान कृष्ण ने गीता में सात्त्विकादि भेद से तीन प्रकार के सुख-दुःख का वर्णन किया है, यथा—

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ॥
विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम् ।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम् ॥
यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १८ । ३७—३९ ॥

अर्थात् तपस्या या संयम के द्वारा जब बुद्धि शुद्ध हो जाती है तब उससे जो सुख होता है वह सात्त्विक है। वह आरम्भ मे तो कष्ट साध्य होने के कारण विष के समान जान पड़ता है किन्तु परिणाम में अमृत के समान होता है। विषय और इन्द्रियों के संयोग से होने वाला सुख राजस है। यह आरम्भ मे तो अमृत के समान जान पड़ता है, किन्तु परिणाम मे विष के समान होता है। इसी प्रकार निद्रा, आलस्य और प्रमाद के कारण जो आराम सा जान पड़ता है वह तामस सुख है। वह आरम्भ और अन्त दोनों ही समय चित्त को मोह या अज्ञान में डालने वाला होता है।

इस भगवद्वाक्य पर विचार करने से जान पड़ता है कि आजकल हम लोग राजस या तामस सुख के चकमक में ही फंसे हुए हैं। परन्तु याद रहे ये विषय भोग तो एक दिन नष्ट होने वाले ही हैं और अन्त में हमे भी मृत्यु के मुख में ही डालेंगे। विद्वच्चक्रचूडामणि महाराज भोज कहते हैं—

गर्जन्ति दन्ति निवहास्तरलास्तुरङ्गाः,
सद्बान्धवाः प्रणयनम्रगिरश्च भृत्याः ।
चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः,
सम्मीलने नयनयोर्न हि किञ्चिदस्ति ॥

हाथियों के झुण्ड हमारे द्वार पर चिंघाड़ रहे हों, चञ्चल घोड़े उछल कूद कर रहे हों, सगे सम्बन्धी सदाचारी हों, सेवक श्रद्धालु और विनयपूर्वक बोलने वाले हों, प्रणयिनी कामनियाँ नवयुवती और चित्त को चुराने वाली हों तथा सुहृद्गण अनुकूल हों। किन्तु आँख मुँदने पर इनमें से कुछ भी नहीं रहता। बस, जब तक तन में प्राण हैं—सो भी केवल जाग्रत और स्वप्नावस्था में ही—

इन भोगों का कुछ उपयोग है। परन्तु न तो हम ही सदा रहेंगे और न वे ही। इसका भी पता नहीं कि पहले किसका अन्त होगा। किन्तु किसी का भी हो, यदि हमारी इनमें आसक्ति रहेगी तो आजीवन भोगते रहने पर भी अन्त में तो इन्हें छोड़ना दुःखदायी ही होगा। इसलिए अभी से सावधान होकर इनकी आसक्ति से मुक्त क्यों न हो जायें ? यदि हम इन बाह्य विषयों की आसक्ति को छोड़कर अपने चित्त को काबू में कर सकेंगे, उसे अपने में ही स्थिर कर देंगे तो उसे आत्मानन्द की अनुभूति हो सकेगी और उसके सारे दोष—सारी अशान्ति का अन्त हो जायगा इस प्रकार चित्त के शान्त और निरुद्ध हो जाने पर जब उसमें किसी प्रकार का संकल्प-विकल्प नहीं होगा तभी उसे परमानन्द की प्राप्ति होगी। उसी को भगवान् ने सबसे बड़ा सुख कहा है। यह केवल विशुद्ध बुद्धि से ही अनुभव मे आता है, इन्द्रियों को उस तक पहुँच नहीं है। जिस समय योगी की इस परमतत्त्व में स्थिति हो जाती है तब वह इस स्थिति से फिर कभी च्युत नहीं होता। यही मानव जीवन का सर्वोत्तम ध्येय है और यही अविनाशी परमपद है, जिसके लिये सम्पूर्ण साधनों की सृष्टि हुई है। जिसने इस प्रकार अपने चित्त पर विजय प्राप्त करके इस दुर्लभ पद को प्राप्त कर लिया है वही अपना सच्चा हितैषी है, उसी का जीवन सफल है, और जो इससे विमुख रहकर बाह्य अनात्मविषयों में भटक रहा है वह तो अपना शत्रु है। शास्त्र उसे 'आत्मघाती' कहता है।

# मनु और मछली की कथा की व्यापकता

[ लेखक—श्री पूज्य नारायणस्वामी जी महाराज ]

यह कथा शत पथ ब्राह्मण १ । ८ । १ तथा महाभारत वन पर्व अध्याय १८७ मे आई है। महाभारत मे कथा का रूप इस प्रकार है—एक समय वैवस्वत मनु बद्रिकाश्रम मे तपस्या कर रहे थे। उस समय चीरिणी नदी की एक मछली ने उनके पास आकर उनसे आश्रय मांगा। आश्रय मिलते ही मछली का आकार बहुत बढ़ गया तब मनु ने उस मछली को समुद्र मे छोड़ दिया। उस कृतज्ञ मछली ने मनु से कहा कि थोड़े ही दिनो मे यह सारा स्थल पानी मे डूब जायगा उस समय मछली ने कहा कि आप एक नावपर सवार होकर मेरी प्रतीक्षा करना। निर्दिष्ट समय पर हिमालय के आसपास की समस्त भूमि जल मे डूब गई। मछली के कथनानुसार मनु ने सप्तर्षि मण्डल को अपने साथ लेकर सृष्टि की रक्षा के लिये सब प्रकार के बीज इकट्ठे कर लिये और एक नाव मे सवार हो गये। उस मछली की सींग से नाव बांध दी वह नाव हिमालय की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँच गई।

## (२) मिश्र में इस कथा का रूप

जब ईश्वर पुत्र रा (Ra) बूढ़ा हो गया तब लोग उसके विरुद्ध कानाफूसी करने लगे, इससे अप्रसन्न होकर रा ने उन्हे मार डालना चाहा। उसके पिता नू (Nu) ने जो जल का राजा था, जल के तूफान से मनुष्य मात्र के नष्ट करने की सलाह दी।

## (३) वैबिलोनियाँ

इया ने तब कहा कि ओ बेत की झोपड़ा मे रहने वालो, ओ हम्ब तरु के पुत्रो! अपने घरो को नष्ट कर डालो और एक जहाज बनाकर अपनी जान बचाने के लिये उस पर सवार हो जाओ और प्रत्येक प्रकार के बीज अपने साथ रखलो।

## (४) यूनान

जियस देवता ने बूढ़े ड्य़ूकिलियन और उसकी स्त्री पाईराह को कहा कि तुम सब भोजन सामिग्री लेकर एक नाव मे सवार हो जाओ। सवार होने पर जियस ने स्रोत खोल दिये और सब जगह पानी ही पानी हो गया वह नाव परमासस पर्वत पर आकर ठहरी।

## (५) ईरान

जिन्द् के अनुसार अहुरमज्दा ने देवताओ से कहा कि बर्फ पिघलने से एक भारी जल प्रलय होगी जिसके बाद भयंकर शीत होगा। इसलिये तुम एक बड़ा चतुष्कौन दुर्ग बनाओ और उस दुर्ग मे मनुष्य और प्रत्येक प्रकार के पशु और बीज रक्खो।

बाइबिल की तौरेत पुस्तक पर्वई मे आईनूर के तूफान की कथा प्रसिद्ध ही है।

## (७) पुराण और जल प्रलय

जाइस बाल के कथनानुसार पुराणों का इतिहास जल प्रलय बल्कि उसके बाद तक जाता है। डाक्टर ऊली (wooli) की खुदाई से जल प्रलय की सत्यता सिद्ध हो चुकी है। यह प्रलय, जाइसबाल के अनुसार मसोपोटामियाँ से राजपूताने तक आया था और इस सीमा क दोनो प्रान्तो मे तूफान के चिन्ह मिलते हैं। पुराणो के राजवश प्रायः जल प्रलय स शुरू होते है। और महेजोदरो की सभ्यता इस प्रलय के पीछे की है।

## (८) अथर्व वेद और जल प्रलय

अथर्व वेद के १६ वी काण्ड मे एक मंत्र इस प्रकार से है—

> यत्र ना प्रभंशनं यत्र हिमवतः शिरः।
> तत्र अतस्य चक्षणं ततः कुष्ठो अजायतः॥
> (१६।३६।८)

स्वर और पद पाठ के रू से मंत्र के अर्थ हैं।

जहाँ नाश नही जहाँ हिमवान का शिर है वहां अमृत का दर्शन है और वही कुष्ट औषधि उत्पन्न होती ह। परन्तु मेकडालनन नूह के तूफान के निकालने की धुन में 'न+अप प्रभं शनं के' 'अव' उपसर्ग को प्रभ शवं से प्रथक् करके उससे 'न' अव्यय को मिलाकर नावा प्रभ शन' घड़कर नाव टूटन के अर्थ कर लिये हैं। उसे यह भी ध्यान नहीं हुआ कि सब जगह ता नाव बनान की बात है यहा नाव के टूटन से कैसे काम चलेगा। स्पष्ट है कि मत्र स जल प्रलय का कोई सम्बन्ध नही है।

(९) कई विद्वाना का विचार है कि 'मनु' से 'म' दूर करके शेष 'नू' से नूह बना लिया गया है।

# स्वाधीनता का उपासक परीक्षा में

( ले०—हिन्दू अमेरिका के लेखक श्रीयुत चमनलाल ( जर्नलिस्ट )

स्वतन्त्रता और स्वाधीनता के उपासक अमेरिका की परीक्षा हो रही है। मेरे एक नव युवक पजाबी मित्र डा० समराज ने जो कैलेफोर्नियाँ के बर्कले विश्व-विद्यालय के पो० एच० डी० हैं माँग की है कि उन्हे अमेरिका की नागरिकता का अधिकार प्रदान किया जाय। उस संयुक्तराज्य अमेरिका मे हमारे देशवासियों का इन अधिकारों से वंचित रखा जाना आश्चर्य जनक देख पड़ता है जो अपने द्वार मार्ग ( न्यूयार्क बन्दरगाह ) पर स्थापित स्वतंत्रता की विशाल और सुन्दरतम प्रतिमा का नित्यं प्रति अर्चन करता है। फिलिडेल्फिया मे मैने स्वय बहुत सी प्रतिमाओं के मन्दिर देखे है। इस पर भी अमेरिका की सरकार न हमे संयुक्तराज्य का नागरिक बनने का अधिकार प्रदान नही किया है।

जब मै तीसरी बार अमेरिका गया था तब एक दिन वाशिंगटन के एक प्रसिद्ध पत्रकार से मैने इस विषय पर बातचीत की थी। उन्होने बड़े तपाक से कहा—

"जब कनाडा, आस्ट्रेलिया और दूसरे राज्यों मे आपके साथ गुलामों जैसा व्यवहार होता है और स्वय लन्दन के बहुत से होटलों और क्लबो मे आपका प्रवेश निषिद्ध है तब अमेरिका की शिकायत क्यों करते हो?"

यदि मेरी स्मृति ठीक काम करती है तो ये महाशय 'वाशिंगटन पोस्ट' नामक दैनिक के संपादक थे जिसका दृष्टिकोण उदार कहा जाता था। मैंने उन्हें उत्तर दिया कि ब्रिटेन हमारे साथ जाति बहिष्कृतो के सदृश व्यवहार करता है यह बात सत्य है परन्तु ब्रिटेन का यह विश्वास कभी नही रहा है कि अंग्रेजो और भारतीयो मे जन्म गत समानता है। विपरीत इसके अमेरिका की स्वतंत्रता की ऐतिहासिक घोषणा यह बतलाती है कि 'समस्त मनुष्य समान है'।

मैंने सपादक महोदय को बतलाया कि भारतीयो को नागरिकता का अधिकार न देकर अमेरिका की सरकार ने उस घोषणा के साथ खिलवाड़ की है और वह भी सुप्रीम कोर्ट जज की इस हास्यास्पद व्यवस्था के आधार पर कि भारतवासी आर्य नहीं है। उसने उत्तर दिया कि यह जज भी ब्रिटिश नस्ल के हैं अतः ब्रिटेन वालों ने ही आपको समानता के अधिकार से वंचित किया है।"

मैंने उत्तर दिया ब्रिटेन वाले तो अमेरिका पर शासन नहीं करते हैं। बहुत देर तक बहस होती रही अंत में सम्पादक महोदय ने कहा 'ब्रिटिश दासता के कलंक से मुक्त हो जाओ और अमेरिका आपका समानता के आधार पर स्वागत करेगा।'

निस्सन्देह यही उस संघर्ष का मूल कारण है जिसे अमेरिका के हमारे वीर देश प्रेमी २० वीं शताब्दी के प्रारम्भ से चला रहे हैं। गत महासमर के दिनों में अपने वीरोचित त्याग और बलिदान के बल पर उन्होंने नागरिकता का अधिकार प्राप्त कर लिया था परन्तु ब्रिटिश नस्ल के एक जज ने स्थापना की कि भारतीय (जिनका अपना देश आर्यावर्त, अर्थात् आर्यों की भूमि कहलाता है) आर्य्य नहीं हैं और इसीलिए स्वतंत्रता और स्वाधीनता की तथा कथित भूमि में वे नागरिकता के अधिकारी नहीं हैं। इस संघर्ष का विवरण बड़ा मनोरंजक है।

स्वर्गीय पं० रामचन्द्र शर्मा ने (यह सज्जन पेशावर निवासी थे और अमेरिका में नागरिकता के अधिकार प्राप्ति के आन्दोलन में गोली का निशाना बनाए गए थे) १४ सितम्बर १६१६ के 'न्यूयार्क टाइम्स' में योग्यता पूर्वक सिद्ध किया था कि ब्रिटिश सरकार की साम्राज्यवादिनी नीति यह है कि हिन्दुओं को अमेरिका से बाहर रखा जाय। उन्होंने लिखा था—

हिन्दुओं का विश्वास है कि संयुक्त राज्य अमेरिका और ब्रिटिश उपनिवेशों से हिन्दुओं के बहिष्करण में बहुत अंशों तक इंगलैंड की साम्राज्य सरकार का प्रभाव काम करता है। हिन्दुओं को घर पर ( भारत में ) रखना इम्पीरियल पालिसी ( राजकीय नीति ) है जिससे वे राजनैतिक स्वतंत्रता की भावनाओं को ग्रहण न कर सकें। कनाडा में कुछ प्रतिबन्धों के अधीन चीनी और जापानी मज़दूरों का प्रवेश विहित है। हिन्दुओं के सम्बन्ध में वहाँ का कानून बड़ा विचित्र है। वहाँ उनका तभी प्रवेश हो सकता है जब वे सीधे भारत से आएँ। भारत से जहाजों की सीधी कोई लाइन नहीं है। अतः कानून का अर्थ पूर्ण बहिष्करण ही है।

सरदार गुरुदत्तसिंह ने कानून के परीक्षण के लिये एक स्टीमर को तैयार किया और लगभग ३५० हिन्दुओं को सीधे कनाडा ले गए परन्तु उन्हें उतरने की आज्ञा न दी गई और वे मजबूरन वापस लौट आए। इससे कानून का अभिप्राय बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है। जब चीनियों और जापानियों को नहीं रोका जाता है तब हिन्दुओं के रोकने में कोई सामाजिक या

# आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

(गताङ्क से आगे)

१६३७ के कानून के पास होने से पूर्व यदि कोई आर्य समाजी अन्तर्जातीय विवाह करना चाहता था तो उसके लिए विवाह का एक मात्र रूप यह खुला था कि वह १६२३ के स्पेशल विवाह सशोधक ऐक्ट के अधीन अपने विवाह की रजिस्ट्री कराले। इस कानून के अधीन विवाह का मुख्य अंग एक घोषणा है जो वर और वधू को रजिस्ट्रार और ३ गवाहो के सामने निम्न शब्दो मे करनी होती है:—

वर द्वारा 'मैं तुम्हें अपनी नियमित भार्या स्वीकार करता हूँ'

वधू द्वारा 'मै तुम्हे अपना नियमित पति स्वीकार करती हूँ'।

विवाह का सौदे का यह स्वरूप आर्य समाजियो की भावनाओं के नितान्त प्रतिकूल था। सिविल विवाहो के स्थान म वे वैदिक विवाहो को ही पसन्द करते थे यद्यपि १६२३ के कानून की धारा १६ के अनुसार वर और वधू विवाह संस्कार

---

आर्थिक कारण नहीं हो सकता अतः हम इस परिणाम पर पहुचते हैं कि राजनैतिक कारणों पर आश्रित साम्राज्यवादिनी नीति काम करती है।'

अब सूदरलैंड साहब को अज्ञानता के खडन के लिए जिन्होंने भारतीयो को अनार्य बताया है निम्न २ पमाण ( गोरी जातियो के ) पर्याप्त होंगे—

( १ ) डा० डबल्यू० जैड० रिप्ली जो अमेरिका मे प्राणी शास्त्र विषयक प्रश्नों के सबसे बड़े विशेषज्ञ समझे जाते हैं अपनी 'यूरोप की जातिया' नामक पुस्तक मे कहते हैं कि इसमें जरा भी सन्देह नही है कि यूनानी स्पैनिश ( स्पेन निवासी ) इत्यादि युरोपियन जातिया और हिन्दू एक ही वंशजों की सन्तान हैं।

( २ ) कोई समय था जब भारतीयों ( हिन्दुओं ) ईरानियों, यूनानियों, रोम वासियों और जर्मन वालों के पूर्व पुरुषा एक ही स्थान मे और इतना ही नहीं एक ही घर में रहा करते थे।

मैक्समूलर के 'साईसआव दी लैंगुएज पर व्याख्यान पहली माला पृष्ठ २११-१२

कराने के पश्चात् अपने विवाह को कानून सम्मत बनाने के लिए विवाह की रजिस्ट्री करा सकते हैं तथापि इस कार्यवाही का आश्रय लेना बहुत कम व्यक्ति पसन्द करते हैं। आर्य समाजियों की स्थिति यह थी कि वैदिक संस्कारों की पवित्रता के सम्बन्ध में वे उतने ही दृढ़ हैं जितने सनातनी भाई हैं, और वे उस विषय पर अपने विचारों में किसी प्रकार का समझौता करने को तैयार न थे। हिन्दुओं और आर्य समाजियों के विवाह का मूल आधार एक ही है और वह यह है कि अग्नि को साक्षी करके धार्मिक कर्त्तव्यों के अनुष्ठान के लिए यह पवित्र सम्बन्ध स्थापित होता है। जिस प्रकार हिन्दुओं के विवाह के लिए 'हवन और सप्तपदी' अनिवार्य है उसी प्रकार आर्यों के विवाह के लिए भी ये दोनों अनिवार्य हैं। हिन्दु और आर्य विवाह मे केवल इतना मुख्य अन्तर है कि आर्य लोग विवाह में मूर्ति पूजा का बिल्कुल बहिष्कार करते है और वे जन्म गत जाति के स्थान में कर्म गत वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। उनकी ( आर्यों ) माँग थी कि शास्त्रानुमोदित अनुष्ठानों के अनुसार वे अन्तर्जातीय विवाहो के करने के अधिकारी हैं और १६२३ के स्पेशल विवाह ऐक्ट की धाराओं की शर्तों की पूर्ति के लिए जिसमें रजिस्ट्रार के सामने नियमित घोषणा करनी पड़ती थी उन्हें बाध्य करना उनके प्रति अन्याय करना था। आर्य समाजियों की इन भावनाओं के आदर स्वरूप आर्य विवाह ऐक्ट पास हुआ था जिससे आर्य समाजियों के विवाहों को वही कानूनी स्थिति प्राप्त हो जाती है जो हिन्दू विवाह को प्राप्त है। इस विवाह में वर वधू की जन्म की जाति मे भले ही भेद क्यों न हो १६२३ के स्पेशल विवाह संशोधक ऐक्ट के अनुसार आर्य समाजियों को अपने अन्तर्जातीय विवाहों की रजिस्ट्री कराने की आवश्यकता नहीं रही है।

# आर्य्य समाज की चिनगारियाँ

## लाला गौरी शंकरजी

लालाजी दीनानगर जिला गुरुदासपुर निवासी थे। आपने बाल काल दीनानगर में ही बिताया। मिडिल पास करके आप गुरुदासपुर स्कूल में प्रविष्ट हुए। दसवीं श्रेणी उत्तीर्ण होकर नौकरी में लग गए। आप एकाऊँटैंट थे। प्रथम आप शिमला में थे वहाँ से अनेको स्थानों में तबादला हुआ। आपने प्रत्येक स्थान में आर्य-समाज का काम किया। लायलपुर, फ़ीरोजपुर, दीनानगर में आप आर्य समाज के प्रधान पद पर भी सुशोभित रहे।

आपका विभाग ऐसा था जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को घूस का अवसर मिलता है परन्तु आपने इस विभाग में काम करते समय कभी घूस न लिया। इससे जहाँ इनका जीवन बना वहाँ आर्यसमाज के काम को भी सहायता मिली।

आप गत महायुद्ध के समय लंडीकोतल में नियत थे। एक बिल जो नीचे से स्वीकृत हो चुका था जब आपके पास आया तो रुक गया। कुछ समय प्रतीक्षा करके बिलवाले सज्जन ने किसीको भेजा ताकि पता ले बिल का क्या बना। पता लेकर वह इनके पास आया। आपने पूछने पर कहा आपका बिल आया है परन्तु पास होना कठिन है। उसने कई प्रकार से कहा परन्तु कोई भेद न पड़ा। वह चले गए तब एस० डी० ओ० आए उन्होंने अन्य बातों के साथ २ यह भी कहा यदि युद्ध के समय भी धन न कमाया जाय तो किस समय कमाया जाय। आपने कहा आप कमालें परन्तु यह बिल पास होना कठिन है। यह सज्जन मुसलमान थे इन्होंने इनके अंग्रेज आफीसर से यही बात कही उन्होंने लाला जी को बुलाकर कहा आप बिल पास कर दें।

लालाजी ने कहा आपकी आज्ञा से कर देता हूँ तब बिल पास होगया। धन प्राप्त होने पर एस० डी० ओ० इनके पास आया और १४००) के नोट देने लगा। आपने कहा मैं नहीं लेता। उसने कहा लाला जी मैं अपनी इच्छा से देता हूँ आप लेते क्यों नहीं हैं। आपने कहा मेरा अधिकार नहीं है। उसने

कहा जब मैं स्वयं देता हूँ तो आपका हक पैदा हो गया। आपने कहा मेरा विश्वास है यदि मैं लूँगा तो मुझे हानि होगी अतः आप इसे ले जाइये मुझे ऐसे पाप कर्म से दूर ही रहने दीजिये। वह बड़ा हैरान हुआ और धन ले गया।

इसके पश्चात् बातचीत में इष्ट मित्रों में सर्वदा लाला गौरीशंकर जी की और आर्यसमाज की प्रशंसा रही।

## आज्ञाराम जी

पुरानी बात है। एक सज्जन तहसीलदार थे। वह घूस न लेने की ख्याति प्राप्त थे। मैंने उनसे घूस न लेने का कारण पूछा। उन्होंने कहा यदि आप वचन दें कि मेरा नाम न लेंगे और न लिखेंगे तब कारण बता दूँगा अन्यथा नहीं बताऊँगा। मैं कारण जानने का इच्छुक था। अतः मैंने वचन दे दिया। इसलिये उनका नाम पता न लिखकर मैंने आज्ञाराम उनका काल्पनिक नाम लिखा है। उन्होंने मिडल परीक्षा पास करके पटवार गिरी की परीक्षा दी और उसमे उत्तीर्ण होकर पटवारी बन गए। तीसरे महीने उन्होंने ४०) घूस में प्राप्त करके अपनी पूज्य माता जी को भेज दिये। उनके पिता जीवित न थे दूसरा कोई भ्राता भी न था। वह अकेले थे। जिस समय माता को ४०) मिले उन्हें लेकर अपने पुत्र को लिखा आपका वेतन थोड़ा सा है उसमें से आप खाते, पीते वस्त्र भी पहनते हैं तब ४०) आपने कैसे भेज दिए। उन्होंने उत्तर दिया माता जी आपको इससे क्या मेरे पास रुपये थे मैंने भेज दिये आप व्यय कर लें।

यह पत्र आते ही माता जी ने मनीआर्डर फीस अपने पास से लगाकर ४०) अपने पुत्र को लौटा दिये और लिख भेजा मुझे इस प्रकार के धन की आवश्यकता नहीं। मैंने तुम्हारे पिता के स्वर्गवास पर परिश्रम करके अपना निर्वाह किया और तुमको पाला तथा पढ़ाया है। यदि मुझे यह पता होता कि मेरा पुत्र पढ़ कर बेईमान हो जायगा तो मैं कभी न पढ़ाती। अच्छा परमेश्वर की ऐसी ही इच्छा थी। अब मुझे कभी कुछ न भेजना। मैंने जिस भाँति अब तक निर्वाह किया है अब भी कर लूँगी। प्रतीत होता है मेरे भाग्य में किसी का सुख नहीं लिखा है। तुम आनन्द मे रहो परन्तु मेरे सामने कभी न आना। जहां मैंने पति के स्वर्ग सिधारने पर सबर किया है वहाँ तुमको भी पति के पास गया समझ कर संतोष से दिन व्यतीत करूंगी।

वह पत्र मिलने पर आज्ञाराम जी को बड़ा कष्ट हुआ और मनीआर्डर प्राप्त करके उस व्यक्ति को जिससे घूस लिया था बुलाकर वह ४०) दे दिये और उससे क्षमा माँगी। वह भी हैरान था कि पटवारी जी क्या कर रहे हैं ? तब उन्होंने अपनी माता का पत्र सुनाया और उसे जाने की आज्ञा दी। उसी समय माता जी को पत्र लिखा और ४०) लौटा देने की बात लिखकर आगे को कभी भी घूस न लेने का प्रण करके माता से क्षमा चाही। माता उस पत्र को पाकर प्रसन्न हुई और अपने पुत्र को आशीर्वाद दिया।

आज्ञाराम जी कहा करते थे मेरा गुरु मेरी पूज्या माता है जो कुछ वह कहे मुझे शिरोधार्य है मेरे जीवन की पथ प्रदर्शक माता है।

धन्य हैं ऐसी माताएँ और ऐसे आज्ञाकारी पुत्र।

—स्वतन्त्रानन्द

## 'रेमल घटी'

श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज का मनोहर लेख श्रो 'रेमल जी की पवित्र स्मृति में पढ़कर मेरे मन में उत्साह हुआ है कि भगत जी के कार्य क्षेत्र से आर्य्य जनता को सूचित किया जावे।

भगत जी आर्य समाज के एक सच्चे सेवक थे, और उनके गुण कई प्रकार के प्रसिद्ध थे।

वह उच्च कोटि के प्रबन्ध कर्ता थे। उनका जीवन सरल परन्तु दृढ़ शासन को कायम करने वाला था। लेखक ने उनके साथ दो तीन साल मिलकर कार्य किया और उससे मेरे हृदय में उनके लिये अगाध श्रद्धा थी। वह डी० ए० वी० मिडल स्कूल के बोर्डिंग हाऊस के सुपरिन्टेन्डेन्ट रहे और उनके समय में विद्यार्थियों को संध्या आदि का बहुत अभ्यास रहा।

डी० ए० वी० मिडल स्कूल में बड़े उत्साह और सफलता के साथ पढ़ाया करते थे। अजमेर यन्त्रालय में जब गड़बड़ हो गई और यन्त्रालय का प्रबन्ध समाज के हाथ से निकलने लगा तो पंजाब के समस्त भाइयों ने भगत रेमलजी से प्रार्थना की, कि वह इस उलझन को सुलझाने के लिए अजमेर पधारें। चुनाँचे वहाँ जाकर उनके सुप्रबन्ध से सब झगड़े दूर हो गए और यन्त्रालय में जो गड़बड़ थी उसका पूर्णतया प्रबन्ध किया गया। यह सेवा भगतजी की सर्वदा स्मरण रहेगी।

जब कन्या महाविद्यालय जालन्धर को एक विद्वान् पण्डित वा प्रबन्ध में कार्य करने की आवश्यकता हुई तो भगत रेमल जी ही उनको इस कार्य के करने मे अच्छे जॅचे। वहाँ जाकर महाविद्यालय को हर प्रकार से उन्नत करने का यत्न किया और वहां सख्त कार्य के करने के कारण उनका स्वास्थ्य भी शिथिल होगया और वही उनका देहान्त हुआ। भगतजी चुपचाप कार्य करने वालो मे से थे। किन्तु पठन पाठन से उनको बहुत प्रेम था। स्वामी जी के सब ग्रन्थो को बड़े ध्यान से पढ़ा करते थे और आवश्यकतानुसार प्रत्येक पर नोट लिखते रहते थे। उनके अपने निज के पुस्तकालय मे कई सन्दूक भरे हुए थे।

परिवार मे और अपने इष्ट मित्रो में उनका प्रभाव बहुत अच्छा था। उनके सुपुत्र ला० रामचन्द्र जी बी० ए० आर्य समाज के एक सच्चे सेवक थे। शोक है कि छोटी आयु मे ही उनका देहान्त हो गया।

भगत जी आर्य समाज एक के अनमोल व्यक्ति थे और आयु भर समाज की सच्चे दिल और लगन से सेवा करते रहे।

—शिव दयालु एम० ए० प्रधान
आर्य समाज माडल टाउन लाहौर

---

# सुमन-संचय

## ( १ )
## न्याय प्रियता

यद्यपि अब्राहम लिंकन बड़ा दयालु था तथापि वह बड़ा न्यायी था। एक समय की बात है कि एक मनुष्य दासों के व्यापार में बहुत प्रसिद्ध हो गया था। इस अपराध के लिए उसे जेल की सजा हुई और १००० डालर का जुर्माना भी हुआ। जब उसके कारावास की अवधि समाप्त हो चुकी तब उसने अब्राहम लिंकन को अपना अपराध स्वीकार कर और अपनी दीनता का वर्णन करके जुर्माने के बदले की सजा माफ कर देने के लिए प्रार्थना-पत्र लिख भेजा। परन्तु इससे लिंकन के हृदय में दया का सचार न हुआ। उसने कहा "मेरी वृत्ति में एक बड़ा भारी दोष यह है कि दया की याचना करते ही मुझे मनुष्य मात्र पर दया करने की प्रवृत्ति हो जाया करती है और इसी लिए मैं अनेक खूनी मनुष्यों के अपराध क्षमा कर देता हूँ। परन्तु अनेकों कठिनाइयों को झेलकर जो मनुष्य अफ्रीका के निवासियों को जबर्दस्ती पकड़कर यहां लाकर दास बनाकर बेचता है, उस मनुष्य को मैं खूनी मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक अपराधी समझता हूं और मैं उसे कदापि क्षमा न करूंगा, ऐसे मनुष्यों का तो जेल मे मर जाना ही ठीक है।"

## ( २ )
## विजेता का चारु आदर्श

महाराज शिवा जी ने शत्रु के एक किले पर अधिकार किया था। उन दिनों युद्ध की प्रथानुसार विजित किलों की स्त्रियों पर विजेता का अधिकार हो जाया करता था, और वे सब दासियाँ बना ली जाया करती थीं। इस किले के अधिपति की एक परम सुन्दरी पुत्री शिवा जी के सैनिकों के हाथ लगी और वे उसे शिवा जी के दरबार मे ले गए। उसे देखते ही शिवा जी अवाक् रह गए और बोले "अहा! कैसी सुन्दरी यह बालिका है। यदि मेरी माता भी इतनी सुन्दरी होती तो मैं इस तरह का कुरूप न होता।"

शिवा जी के मुँह से ये शब्द निकलते ही दरबार में सन्नाटा छा गया। सभी दरबारियों और सैनिकों ने आँखें नीची करलीं और पृथ्वी की ओर देखने लगे।

शिवाजी ने अपने दरबारियों को सम्बोधन करके कहा ' जो व्यक्ति संसार में यश प्राप्त करना चाहता हो उसका कर्त्तव्य है कि वह संसार की सब स्त्रियों को माता समझे। राजा के लिए प्रजा सन्तान के समान है। उसे प्रजा के साथ अपने पुत्रों और पुत्रियों जैसा व्यवहार करना चाहिए।'

जो राजकुमारी अपनी भावी दुर्दशा की आशंका से खड़ी काँप रही थी, वह शिवाजी के व्यवहार को देखकर दंग रह गई। उसका मुर्झाया हुआ मुख कमल एकदम खिल गया। भावावेश में वह अपने को न संभाल सकी और हाथ जोड़कर महाराज शिवाजी के चरणों में बैठ गई। शिवाजी ने उसके सिरपर हाथ फेरा और अच्छे २ वस्त्र और आभूषण मंगवाकर कहा 'पुत्री, लो, यह तुम्हारे विवाह का दहेज है। इसे लेकर तुम अपने पिता के पास जाओ' वे किसी योग्य वर से तुम्हारा विवाह कर देंगे।"

राजकुमारी मन ही मन शिवा जी की प्रशंसा करती हुई अपने पिता के पास चली गई।

( ३ )

## राजमुहर का आदर

महाराज अशोक के एक पुत्र का नाम कुणाल था। अशोक अपने इस पुत्र को बड़ा प्रेम करते थे। तिष्यरक्षिता नाम की कुणाल की एक सौतेली मा थी जिसका महाराज अशोक पर पूर्ण आधिपत्य था। एक बार कुणाल पर अकारण क्रोध करने के कारण इस देवी को महाराज के हाथों अपमानित होना पड़ा। अपने अपमान का बदला लेने के लिए इस देवी ने कुणाल की आँखें निकलवा कर देश निकाला दिलाने का निश्चय किया।

दैवयोग से उन्हीं दिनो तक्षशिला पर म्लेच्छ जातियों का प्रबल आक्रमण हुआ। महाराज ने उन्हें पराजित करने के लिए कुणाल को तक्षशिला भेजा। कुणाल बड़ा वीर और साहसी था। शत्रुओं को पराजित करने में उसे देर न हुई और वह शान्ति और व्यवस्था करने के लिए वहीं ठहर गया।

इसी बीच मे महाराज अशोक बहुत बीमार हुए। उनके पेट में निरन्तर पीड़ा रहने लगी। पेट से कीड़े गिरने लगे। शिर पीड़ा ने उन्हें बेचैन कर दिया। योग्य से योग्य वैद्य भी उनको व्याधि मुक्त न कर सके। महाराज जीवन से निराश हो गए।

तिष्यरक्षिता ने महाराज की बड़ी सेवा की पर किसी तरह महाराज को लाभ न हुआ। उसने राजकर्मचारियों को आज्ञा दी कि हमारे राज्य में यदि किसी को ऐसा रोग हो तो उसे

शीघ्र लाकर उपस्थित करो । बहुत खोज करने पर एक कुम्हार मिला। उसे वही रोग था जो महाराज को था। तिष्यरक्षिता ने उस कुम्हार का पेट चीर डाला। उसकी अन्तड़ियों में से बहुत कीड़े निकले। तिष्यरक्षिता ने उन कीड़ों को भिन्न भिन्न औषधियों में डाला पर वे न मरे परन्तु लहसुन के अर्क में डालते ही वे सब मर गए। इस औषधि के आविष्कार से रानी के आनन्द का ठिकाना न रहा। हर्ष से विह्वल होकर वह महाराज के पास पहुँची और कहने लगी "महाराज मैं आपको नीरोग कर दूँ तो आप मुझे क्या पुरस्कार देंगे।" महाराज ने कहा "मैं तुम्हारे वश में हूँ, सारा साम्राज्य तुम्हारा है फिर तुम्हें किस पुरस्कार की आवश्यकता है।"

तिष्यरक्षिता ने कहा "बस और कुछ नहीं एक दिन राज शासन करना चाहती हूँ। एक दिन के लिए राज मुहर मुझे दीजिए।"

महाराज ने हँसकर कहा "जिस दिन तुम्हारी इच्छा हो राजमुहर ले सकती हो।"

तिष्यरक्षिता की औषधि से महाराज अशोक स्वस्थ होने लगे।

इसी अवसर पर तिष्यरक्षिता ने महाराज की ओर से तक्ष शिला के शासक को एक पत्र लिखा और महाराज से लेकर उस पर राजमुहर लगा दी। पत्र में आज्ञा थी कि पत्र देखते ही कुणाल को अन्धा करके राज्य से निकाल दो।

जब पटना से महाराज का हुक्म तक्षशिला पहुंचा उस समय कुणाल शिकार खेलने गए थे।

आज्ञा-पत्र पढ़कर शासक पर मानो तुषारपात हो गया। उसका सिर चकराने लगा। उसे आज्ञा पत्र पर विश्वास न हुआ। उसने सोचा यह जाली पत्र है। महाराज अपने पुत्र के लिए ऐसी आज्ञा कभी नहीं भेज सकते। फिर कुणाल पर तो उनका असीम स्नेह है। वह उनके हृदय का खिलौना है। सन्देह निवारण के लिए उसने महाराज को एक पत्र लिखा। पत्र लिख चुकने पर उसने सोचा एक बार कुणाल से भी इसकी चर्चा कर लेनी चाहिए।

शिकार से लौटने पर शासक ने कुणाल को महाराज का आज्ञा पत्र दिखलाया और उस पर अपनी कार्य्यवाही का भी जिक्र किया। कुणाल ने पत्र को ध्यान से पढ़ा और राजमुहर को पहचाना। उसने बड़ी निर्भयता से कहा 'तुमको राजाज्ञा का पालन करना चाहिए।'

शासक ने कहा—'मैं इस आज्ञा के पालन में सर्वथा असमर्थ हूँ।'

# ब्रिटिश लोग चुप क्यों नहीं रहते ?

## वे हमारे जले पर नमक क्यों छिड़कते हैं ?

( ले०—डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुर )

"भारतीयो के नाम मिस राथबोन ( ब्रिटिश कामन सभा मे वहां की यूनिवर्सिटियों की प्रतिनिधि ) के पत्र से मै अत्यन्त दु:खी हुआ हूँ। मै नहीं जानता कि यह मिस राथबोन कौन हैं, परन्तु मै यह मान लेता हूँ कि वह औसत 'नेकनियत' अंग्रेज की मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं।

"इन्होंने अपना पत्र मुख्यतया पं० जवाहरलाल नेहरू को लिखा है, और मुझे निश्चय है कि यदि स्वातन्त्र्य-युद्ध के उस वीर योद्धा को मिस राथबोन के देशवासियों ने जेल के सीखचों में बन्द न कर दिया होता, तो वह इस मुफ्त के उपदेश का उचित उत्तर दे देते। उनकी जबान जबरदस्ती से बन्द रहने के कारण मुझे बिस्तर पर बीमार पड़ा होता हुए भी, यह प्रतिवाद की आवाज उठानी पड़ रही है।"

"इस स्त्री ने हमारी विवेक बुद्धि को अविवेक तथा उच्छृङ्खलतापूर्ण चुनौती देकर अपने देश वासियो की भी दु:सेवा ही की है। यह स्त्री हमारी

---

कुणाल ने कहा—'मै तुमको पदच्युत करूँगा। क्योंकि राजा की आज्ञा टल नहीं सकती। मैं राजमुहर का अपमान नही सह सकता। मैं, अपने पिता और राजा की आज्ञा के सामने सिर झुकाता हूँ। तुम अपने महाराज की आज्ञा का पालन करो और राजमुहर के आगे सिर झुकाओ।'

शासक किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर कुणाल की ओर देखने लग गया। उसे ऐसा लगा मानों वह दिव्य लोक मे विचरण कर रहा है। कुणाल की साधुता और उच्चता ने उसके हृदय को द्रवीभूत कर दिया। उसके नेत्रो मे आंसू आ गए। बड़े सकोच से और हृदय पर पत्थर रखकर उसने राजा की आज्ञा का पालन किया और कुणाल अन्धे बनाए जाकर देश से निर्वासित कर दिए गए।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

कृतघ्नता पर क्षुब्ध है कि "अंग्रेजी विचार धारा द्वारा अपनी प्यास भरपूर बुझा लेने" के पश्चात् भी हमारे हृदय में अपने गरीब देशवासियों के लिये कुछ ख्याल बाकी बच गया है।

"निःसन्देह जहाँ तक अंग्रेजी विचार धारा पाश्चात्य विज्ञान की उत्तम परम्पराओं का प्रतिनिधित्व करती है, वहां तक हमने उससे बहुत कुछ सीखा है, परन्तु मैं यहां पर यह भी कह दूँ कि हमारे जिन देशवासियों ने उससे लाभ उठाया है, उन्होंने ब्रिटिश अधिकारियों की हमको कुशिक्षित बनाने की कोशिशों के बावजूद वैसा किया है। पाश्चात्य विज्ञान तो हम अन्य किसी यूरोपियन भाषा द्वारा भी सीख सकते थे।"

"क्या संसार की अन्य जातियों को भी विज्ञान की शिक्षा ब्रिटेन ने ही दी है? हमारे तथाकथित ब्रिटिश मित्रों की यह निरी ढिठाई है जो वे यह समझते हैं कि यदि वे हमको न 'सिखाते' तो हम अब तक अन्धेरे में ही भटकते फिरते। भारतीय स्कूलों में ब्रिटिश अधिकारियों द्वारा बहाए गए शिक्षा-प्रवाहों से, हमारे बालकों ने उत्तम अंग्रेजी विचारों को नहीं, अपितु उनकी फोक को ही ग्रहण किया है, और उसके कारण वे अपनी संस्कृति के स्वास्थ्य प्रद भोजन का स्वाद तक लेने से वंचित रह गये।

"यदि यह भी मान लिया जाय कि हमारे लिये विज्ञान की प्राप्ति का साधन अंग्रेजी भाषा के सिवा अन्य कोई है ही नहीं, तो भी इसकी 'धारा से भरपूर प्यास बुझाने' का परिणाम यह हुआ है कि दो शताब्दियों तक निरंतर ब्रिटिश शासन रहने के पश्चात् भी सन् १९३१ में हमारे केवल १ प्रतिशत देशवासियों को अंग्रेजी का अक्षर-ज्ञान था; — जब कि रूस में सन १९३२ में, केवल १३ वर्ष के सोवियट शासन के पश्चात्, अठानवे प्रतिशत बालक शिक्षित हो गये थे। ( यह संख्यायें अंग्रेजी पुस्तक "स्टेट्समैन ईयरबुक" से ली गयी हैं, अतः इनमें रूस का पक्षपात होने की सम्भावना नहीं है।)

"परन्तु तथा कथित संस्कृति से भी अधिक आवश्यक तो निरे जीवन धारण करने के साधन हैं, जिनके बिना विज्ञान और संस्कृति का महल भी खड़ा नहीं हो सकता। और दो शताब्दियों से अधिक काल तक हमारे देश की थैली की रस्सियां मजबूती से अपनी मुट्ठी में रखने तथा इसके प्राकृतिक धन का दोहन करने के बाद, ब्रिटिशों ने हमारे गरीब देशवासियों के लिये क्या किया है? मैं

देखता हूँ कि जगह जगह सुखा शरीर लिये लोग रोटी रोटी की पुकार मचाते फिर रहे हैं। मैंने ग्रामों में स्त्रियों को दो घूंट पानी के लिये मिट्टी खोदते देखा है — क्योंकि भारतीय ग्रामों में कुंए स्कूलों की अपेक्षा भी दुर्लभ हैं।

"मैं जानता हूँ कि आज इंगलैंड की जनता को भूखा मरने का डर लग रहा है और मेरी उससे सहानुभूति है, परन्तु जब मैं देखता हूँ कि ब्रिटिश जल-सेना की समस्त शक्ति भोजन के जहाज भर भर कर अंग्रेजी किनारों तक पहुँचने में लगी हुई है, और जब मैं यह याद करता हूँ कि मैंने अपने देशवासियों को भूख से तड़प तड़प कर मरते देखा है, परन्तु उनके दरवाजे किसी ने चावल की एक टोकरी भी नहीं पहुँचायी, तब मैं इंगलैंड के ब्रिटिशों को भारत के ब्रिटिशों से तुलना किये बिना नहीं रह सकता।

"तो क्या हमें ब्रिटिशों का कृतज्ञ नहीं होना चाहिये ? हमारी भूख मिटाने के लिये नहीं तो कम-से-कम अमन और कानून की रक्षा करने के लिये ही सही ? मैं आँख उठाता हूँ और देश में सर्वत्र दंगे होते देखता हूँ।

जब बीसियों भारतीय अपनी जान से हाथ धो रहे हैं, हमारे घर बार लुट रहे हैं और हमारी बहू बेटियाँ अपमानित हो रही हैं, तब शक्तिशाली ब्रिटिश शस्त्र रक्षा के लिये नहीं उठता,—हां समुद्र पार से ब्रिटिश आवाज हमको डांटने फटकारने के लिये अवश्य उठती है। कि हम अपना घर सम्भाल कर क्यों नहीं रखते।

इतिहास में ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं है जब कि शस्त्रास्त्र से सुसज्जित वीरों को अधिक बलवान् शत्रु के सामने पीछे हट जाना पड़ा, वर्तमान युद्ध में भी ऐसी परिस्थितियाँ आन पड़ी हैं जबकि वीरतम ब्रिटिश फ्रेंच तथा ग्रीक सिपाहियों को यूरोप की रणभूमि खाली कर देनी पड़ी क्योंकि उनका सामना अधिक बलवान् सेना से हो गया था परन्तु जब हमारे गरीब निःशस्त्र असहाय किसान, रोते बालकों का बोझ उठाये, सशस्त्र गुण्डों से अपनी रक्षा करने में असमर्थ होकर, अपने घर छोड़ कर भागते हैं, तब शायद ब्रिटिश अधिकारी उनकी कायरता पर घृणापूर्वक हँसते हैं।

"आज इंगलैंड का प्रत्येक नागरिक अपने घर-बार की शत्रु से रक्षा करने के लिये शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है, परन्तु भारत में लाठी का अभ्यास भी हुक्म

निकाल कर निषिद्ध ठहरा दिया गया है। हमको जान बूझ कर निःशस्त्र और निर्बल कर दिया गया है ताकि हमें हमारे सशस्त्र स्वामी निरन्तर दबा कर रख सकें।

"ब्रिटिश लोग नाजियों से नफरत करते और उनके संसार-स्वामित्व का विरोध करते हैं और मिस राथबोन हमसे आशा रखती हैं कि हम उसके देश-वासियों का हाथ चूम लें, क्योंकि उन्होंने हमारे हाथों को बांध दिया है। परन्तु किसी भी सरकार की भलाई-बुराई का फैसला उसके प्रवक्ताओं की बहाने बाजियों से नहीं होता, अपितु अपनी प्रजा के लाभ के किये हुए उसके वास्तविक प्रयत्नों से होता है। ब्रिटिशों को हम नापसन्द करते हैं या वे हमारे हृदयों में स्थान नहीं पा सके, इसका यह कारण नहीं कि वे विदेशी हैं, अपितु इस कारण कि वे बहाना तो हमारे लाभ का 'ट्रस्टी' होने का करते हैं, परन्तु वस्तुतः उन्होंने इस महान् 'ट्रस्ट' से धोखा किया है और ब्रिटेन के कुछेक पूँजीपतियों की जेबें भरने के लिए करोड़ों भारतीयों की सुख समृद्धि को धूल में मिला डाला है।

"मैं सोचता था कि भले ब्रिटिश लोग कम से कम चुप रहेंगे, इन अन्यायों की चर्चा नहीं छेड़ेंगे और हमारी निष्कर्मण्यता के लिए हमारे प्रति कृतज्ञ होंगे, परन्तु उनका मार कर भी अपमानित करना और जले पर नमक छिड़कना भल-मनसाहत की सब सीमाओं का उल्लंघन कर गया है।

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

[ ले० श्री डा० सत्यप्रकाश डी. एस सी ]

३

मास भोजन बनस्पति भोजन की अपेक्षा शरीर को अधिक विकसित और पुष्ट करता है।

यह मन्तव्य अत्यन्त भ्रमात्मक है। डा० चिटेण्डन के परीक्षणों ने वैज्ञानिक ढग पर शरीर के विकास का अध्ययन कर अत्यन्त सूक्ष्मता और शुद्धता से परीक्षण कर यह बतलाया है कि प्रोटीन की कम मात्रा वाले भोजनों से भी शरीर की शक्ति भली भाँति स्थिर रहती है। यही नही, मास और तत्सदृश भोजनो से परहेज रखने वाले व्यक्तियों में सहन शक्ति बढ जाती है। मेरी एस. ब्राउन के निम्न उद्धरण से हमारे पक्ष की पुष्टि होती है :—

'रसल ने सब जातियों के भोजन की व्यवस्थाओं का नकशा तैयार कर बताया है कि शाकभोजी, मिश्रित भोजियों की अपेक्षा अधिक बलवान् और अधिक स्वस्थ रहते हैं। येल मे प्रोफेसर इरविंग फिशर ने जो परीक्षण किये थे उनका परिणाम यह निकला कि शाकाहारियों की अपेक्षा मासाहारी कम सहिष्णु होते हैं। ब्रसल्स मे भी ऐसे ही परीक्षण किये गये उनसे सिद्ध होता है कि शाकाहारी अपेक्षतया देरतक मेहनत कर सकते हैं और उनकी थकावट भी शीघ्रतर दूर हो जाती है। केलिफोर्निया के शाकाहारियों के वर्षों का अनुभव बताता है कि मास न खाने से शक्ति और स्वास्थ्य की कोई भी हानि नहीं होती।

'प्राचीन समय मे मिस्रो लोग बैल आदि पशु पालते थे, पर मास नहीं खाते थे। ग्रीक और रोमन पहलवान मासाहारी नहीं थे, सीजर की सेनाओं ने अनाज और तेल खाकर ही बडी बडी लडाइया लडी था ईरान को वैभव सम्पन्न बनाने वाला शक्तिशाली साइरस बचपन मे बनस्पति शुद्ध जल और रोटी खाता था। १५ वर्ष की आयु म उसके भोजन मे शहद और बढ गया। वनस्पतियों से स्वास्थ्य सुधारने की डानियल की कथा तो प्रसिद्ध ही है।

"आज के कठोर परिश्रमी मजदूरों को मांस नहीं मिलता या बहुत कम मिलता है उत्तर भारत के पहाड़ी शाकाहारी उत्तम पहलवान होते हैं और उधर के चावल खानेवाले प्रायः भारी बोझ उठाकर दिन में कई-कई मील दौड़ते चले जाते हैं; इसमें उनका मुकाबला कोई नहीं कर सकता। उत्तर अफ्रीका के अरब लोग, जिनका मुख्य भोजन दूध और खजूर है, अत्यन्त सहिष्णु और फुर्तीले होते हैं, सहारा रेगिस्तान के कुछ भागों में तो ये लोग अपने ढोरों को भी खजूर ही खिलाते हैं। रोटी, खजूर और अंजीर खाकर रहने वाले अरब सैनिकों की आश्चर्यजनक सहिष्णुता और शक्ति का विवरण सुनकर रिचर्ड हार्डिंग डेविस को महान् अचम्भा हुआ था। शारीरिक दृष्टिसे ये लोग सर्वोत्तम सैनिक थे। अंजीर, रोटी, मटर पर जीवन निर्वाह करनेवाले, चिली (दक्षिण अमरीका) के खनिक लोग प्रतिदिन बारह बार २०० पौंड वजन लेकर सीधी चढ़ाई चढ़ते हैं। रूसी मजदूर गोभी और बाजरे की रोटी खाकर प्रायः १६ घंटे प्रतिदिन खेतों में काम करते हैं। पोलैंड आयरलेंड का भी यही हाल है।

"भारतवर्ष का आज का सर्वाधिक शक्तिशाली मनुष्य राममूर्ति नायडू विशुद्ध शाकाहारी है। भारतीयों और अंग्रेजों के सम्मुख अपने बल के भारी कर्तब दिखाकर आज वह राष्ट्रीय वीर पुरुष प्रसिद्ध हो रहा है। भारी लोहे की जंजीर को अपने कंधों से गुजारकर वह इसे एक बड़े खम्भ से बांध देता है और धीरे-धीरे कन्धों को उठाकर इसे तोड़ देता है। नायडू केवल अपने बल के सहारे १२ सिलंडर की मोटर को रोक लेता है। वह अपनी छाती और पेट पर चार टन के हाथी को थाम लेता है और फिर ऐसे खड़ा हो जाता है कि मानो कोई तिनका ही उठा रहा था।"

लेखक ने स्वयं नायडू के कर्तव्य देखे हैं, मेरी एस. ब्राउन ही बिलकुल ठीक लिखा है। इसके कई शिष्यो ने भी सहिष्णुता और बल के ये परीक्षण कर दिखाये हैं। कुमारी ताराबाई ने जो विशुद्ध शाकाहारी महिला हैं, अपने शारीरिक खेलोंसे दर्शकों को अचम्भे में डाला है। भारतवर्ष मे तो प्रायः यह एक प्रसिद्ध विश्वास है कि शारीरिक शक्ति के विकास के लिये यह आवश्यक है कि मांस से सर्वथा बचा जाय।

मांस से वस्तुतः बल प्राप्त नहीं होता। लोग बर्बरता और क्रोध को बल

# हैदराबाद में धर्म प्रचार

( ले०—श्री पं० सूर्यदेव शर्मा सिद्धान्त शास्त्री एम. ए. एल. टी. अजमेर )

सत्याग्रह के बाद हैदराबाद राज्य मे मेरे जाने का यह पहला ही अवसर था, इसलिए मेरी बड़ी अभिलाषा थी कि वहाँ जाकर में स्वयं अपनी आँखों से देख सकूँ कि अब वहा वैदिक धर्म प्रचार और आर्य समाज के काम के लिये कितना क्षेत्र तैयार हुआ है तथा गत सत्याग्रह में जो आर्य समाज का लाखों रुपया व्यय हुआ सहस्रों आर्यवीर जेलों में गए और अनेक बलिदान हुए उनका क्या परिणाम निकला। वहा के निवासियों मे और विशेषकर हिन्दुओं मे अब आर्य समाज के लिए कितना प्रेम और कितनी अभिरुचि है। इन सारे प्रश्नों का उत्तर पाने की उत्सुकता को हृदय ने धारण किए हुए मैंने ता० २३ मई को आर्य समाज सुल्तान बाजार हैदराबाद के उत्साही मन्त्री श्री० पं० नरेन्द्र जो का तार मिलने पर तुरन्त वहा के लिए प्रस्थान कर दिया। यद्यपि यात्रा में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लेकिन जब ता० २५ के प्रातः हैदराबाद स्टेशन पर स्वागतार्थ आए हुए आर्य प्रतिनिधि सभा निजाम राज्य के प्रधान पं० विनायक राव जी विद्यालंकार बैरिस्टर और पं० वंशीलाल जी वकील मन्त्री आर्य्य प्रतिनिधि सभा, पं० वीरभद्रजी तथा वैद्यराज जी आदि सज्जनों की उत्साह और प्रेम की जाज्वल्यमान मूर्तियों को देखा तो यात्रा की सारी थकावट काफ़ूर हो गई।

ता० २५ से ही आर्य समाज सुल्तान बाजार का उत्सव का प्रारम्भ था। जब शाम के ६ बजे मैं पंडाल में पहुँचा तो यह देखकर मेरे आश्चर्य का ठिकाना नही रहा कि उस समय तक लगभग सारा पंडाल खचाखच भरा हुआ था। हमारे उत्तरी भारत के उत्सवोंपर तो आजकल गर्मी के दिनों मे ६ बजे तक केवल २-४ मूर्तिया ही पंडाल में दृष्टिगोचर होती हैं

---

और पराक्रम समझ लेने की भूल कर बैठते हैं! मांसाहारी जल्दी मर जाता है! माँस भक्षण का प्रभाव ठीक ऐसा ही है जैसा कि घोड़े को चाबुक से पीटने का। चाबुक कुछ देर के लिये घोड़े को वेगवान कर देता है परन्तु इससे उसकी औसत शक्ति घटती ही है।

लेकिन हैदराबाद में इस समय तक लगभग २५ सहस्र जनता एकत्रित हो चुकी थी और कुछ समय बाद उसकी संख्या ३० सहस्र के लगभग पहुँच गई। स्मरण रखना चाहिए कि यह तो उत्सव का प्रथम दिवस ही था अगले दिनों में तो श्रोतृ वृन्द की सख्या ४० सहस्र तक पहुँच गई थी और फिर तारीफ की बात तो यह कि इतने विशाल जन समुदाय के होते हुए भी कहीं किसी प्रकार का शोर गुल नही बातचीत नहीं।

सर्वत्र शान्ति विराज रही थी। मैंने उत्तरी भारत के समस्त बड़े २ समाजों के उत्सव देखे हैं—कलकत्ता, पटना, प्रयाग, लखनऊ, देहली, लाहौर, करांची, बम्बई, अजमेर आदि के वार्षिकोत्सवों पर सब जगह मेरे व्याख्यान भी हो चुके हैं लेकिन जितनी जन सख्या तथा शान्त वातावरण मैंने हैदराबाद मे देखा, उतना अन्यत्र कही भी देखने को उपलब्ध नही हुआ। इस बात को मैंने वहा अपने अन्तिम व्याख्यान में कह भी दिया था। श्रोताओं की श्रद्धा का तो यह हाल था कि व्याख्यानादि समाप्त हो जाने पर भी सहस्रो की संख्या में जनता व्याख्यान मंच के चारों ओर चुपचाप खड़ी रहती थी मानो वह कुछ और सुनने की इच्छुक थी। इतनी अपार भीड़ के होते हुए भी उत्सव के संचालकों का प्रबन्ध इतना उत्तम था कि सब कार्य यथा नियम ठीक समय पर होता जा रहा था। मार्ग मे तथा पंडाल के बाहर निजाम सरकार की पुलिस का प्रबन्ध भी सराहनीय था।

पंडाल इतना विशाल बनाया गया था कि जिसमें ४० सहस्र मनुष्य सुगमता से बैठ सकते थे। १०-२० लाउड स्पीकर लगाए गए थे। प्रातःकाल के उपदेशके लिए पंडाल दूसरा था। पास ही 'श्यामलाल बाजार' सजाया गया था जिसमे हैदराबाद स्वदेशी वस्त्र फैक्टरी, खद्दर पुस्तकों आदि की दुकानों की व्यवस्था थी। बाजार के बीच में 'शहीदी स्तम्भ' था जिस पर बलिदान की ज्वाला में हुत हुए उन २५ आर्यवीरों के नाम अकित थे जिन्होंने गत आर्य सत्याग्रह में अपने प्राणों की आहुति दी थी। इस प्रकार यह उत्सव क्या था एक आर्य मेला सा प्रतीत होता था। जिसकी सफलता का श्रेय समाज के प्रधान पं० विनायकराव वैरिस्टर मन्त्री पं० नरेन्द्रजी उपदेशक जो उत्साह की साक्षात् मूर्ति हैं तथा पं० दत्तात्रय प्रसाद वकील उपप्रधान आदि सज्जनों को है। यह सुल्तान बाजार का उत्सव ४ दिन तक रहा जिसमें श्री पं० बुद्धदेवजी विद्यालंकार, पं० बिहारीलाल शास्त्री, स्वामी रामेश्वरानन्दजी मेरे तथा अन्य सज्जनों के भाषण हुए। उत्सव में भजनों की मात्रा बहुत कम रखी जाती थी।

आर्य समाज सुल्तान बाजार के उत्सव के पश्चात् ता० २६ मई को गुरुकुल अनन्तगिरि का उत्सव था जो हैदराबाद से लगभग ५ मील की दूरी पर स्थित है। गुरुकुल

का स्थान रमणीक है और उसमें इस समय ४४ ब्रह्मचारी शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इसको स्थापित हुए ३ साल ही हुए हैं। फिर भी श्री वंशीलाल जी वानप्रस्थी ( जिन्होंने अभी हाल ही में वानप्रस्थ लिया है ) की अध्यक्षता में बड़े सुचारु रूपेण चल रहा है।

ता० ३० मई से आर्यसमाज शालीवण्डा का उत्सव था। सुल्तान बाजार के बाद यही आर्यसमाज हैदराबाद नगर में सब से बड़ा है। वैसे तो नगर में २०-२२ आर्य समाज हैं। इस समाज के लोगों में भी मैंने अपार उत्साह का अवलोकन किया। यहाँ मेरे दो व्याख्यान हुए। उपस्थिति यहाँ भी १०-१२ सहस्र से अधिक ही होती थी।

इन दिनो मे मुझे श्री विनायकराव जी बैरिस्टर ने नगर के विभिन्न दर्शनीय ऐतिहासिक स्थान, गोलकुण्डा का किला, उस्मा सागर, हिमायत सागर आदि दिखलाए, साथ ही आर्य सार्वदेशिक सभा की ओर से जो केशव मैमोरियल हाईस्कूल की लगभग १।। लाख रुपए की लागत से नई इमारत बनाई जा रही है उसको भी देखा, उसको देखकर तथा सार्वदेशिक सभा की ओर से जो लगभग ३०-३५ उपदेशक समस्त निजाम राज्य में धर्म प्रचार कर रहे हैं उनका कार्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई और मालूम हुआ कि सभा अपने कार्य में बड़ी जागरुकतासे तत्पर है।

क्योंकि मुझे डी० ए० वी० औद्योगिक तथा कृषि कालेज के कार्य से शीघ्र ही अजमेर लौटना पड़ा, इसलिए मैं इच्छा रहते हुए भी हैदराबाद राज्य के अन्य उत्सवों पर न जा सका फिर भी लौटते हुए मार्ग में निजामाबाद और औरंगाबाद में उतर कर दो व्याख्यान देने ही पड़े। औरंगाबाद में तो नवीन समाज स्थापित हुआ है जिसका सारा श्रेय वहाँ के सार्वजनिक जीवन के प्राण डा० संग्रामसिंह जी चौहान तथा श्री गोरे जी को है। निजामाबाद के आर्य भाई बड़े ही उत्साही हैं। यहीं श्री राधाकृष्णजी का धर्म पर बलिदान हुआ था। मार्ग में मैंने औरंगजेब की कब्र, दौलताबाद का किला और एलोरा की आश्चर्यमयी गुफायें देखीं जिनका वर्णन आगे के लेखों में किया जायगा।

# नकली घी से नुकसान

( ले० श्री सतीषचन्द्र दास गुप्त )

पंजाब से एक मित्र लिखते हैं—

हमारा प्रान्त दूध और दूध से बने हुए पदार्थ मक्खन, घी इत्यादि के लिये सारे भारतवर्ष में प्रसिद्ध है। पंजाब की भैंसें उच्च कोटि की होती हैं, उनकी नस्ल ( जाति ) विख्यात है और वे दूध भी पर्याप्त देती हैं। इस प्रान्त से अन्य प्रान्तों को घी बड़ी मात्रा में जाता है। किन्तु बड़े खेद की बात है कि अन्य स्थानों की भांति यहाँ पर भी वनस्पति का ( नकली घी का ) प्रचार दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। नकली घी को या तो असली घी में हो मिलाया जाता है या दूध में मिलाकर उससे मिलावटी घी तैयार किया जाता है। पंचायतों के द्वारा इस बुराई के रोकने का प्रयत्न किया गया, किन्तु इसमें पूरी सफलता नहीं मिली।

हम लोग घी की शुद्धि जांचने की प्रणाली को अच्छी तरह जानना चाहते हैं, जिसमें घी की मिलावट पकड़ी जा सके। यदि यह बुराई न रोकी गई तो इस प्रान्त का सबसे बड़ा व्यवसाय नष्ट हो जायगा, और एक बार नष्ट होने के बाद उसे पुनर्जीवित करना तो दु:साध्य ही है। यह बहुत आवश्यक है कि घी में मिलावट रोकने के उपाय काम में लाये जावें।

गावों में रहने वाले भाइयों का प्रत्येक हितचिन्तक उपर्युक्त पत्र प्रेरक महोदय की भांति यही सोचेगा कि किन उपायोंसे असली घी में नकली घी की मिलावट रोकी जाय। मिलावट की तो कोई सीमा नहीं है, इससे अन्त में उन ग्रामीण लोगों की ही बड़ी हानि होगी, जो इस समय लोभवश नकली घी मिलाकर उससे लाभ उठा रहे हैं। साथ ही घी का व्यवसाय नष्ट हो जाने से दूसरे लोग भी नुकसान उठावेंगे। यदि मिलावट का कार्य इस समय क्रमश: जिस तेजी से बढ़ता जा रहा है वैसे ही बिना किसी रोक टोक के बढ़ता गया तो निश्चय ही घी का इतना बड़ा व्यवसाय बे मौत मर जायगा। बंगाल में घानी से निकलने वाले तेल के व्यवसाइयों की यही दशा हुई। घानी वाले लोग लोभ वश घानी के तेल में मिल का तेल मिलाकर उस मिलावटी तेल को असली घानी का तेल कहकर बेचने लगे। परिणाम यह हुआ कि घानी के तेल की शुद्धता के सम्बन्ध में जनता का विश्वास उठ गया और इससे

वह व्यवसाय ही मटियामेट हो गया। अब केवल मिल के तेल की ही खपत है।

जब घी की मिलावट के सम्बन्ध में जनता को सच्ची बात का पता लग जायगा तो जनता पचास-साठ रुपये मन का मिलावटी घी खरीदने की अपेक्षा सत्रह रुपये मन का नकली खरीदना अच्छा समझेगी। अब प्रश्न यह है कि घी में इसकी मिलावट कैसे रोकी जाय।

घी का विश्लेषण ( Analysis ) एक जटिल वैज्ञानिक प्रक्रिया है, यह कोई सीधी-सादी बात नहीं है इसके द्वारा घी के रिफ्रैक्टिव इंडेक्स Refractive index (वक्रणांक) और इसमें कुछ रासायनिक वस्तुओं की मात्रा जानने का प्रयत्न किया जाता है। रिफ्रैक्टिव इंडेक्स का निर्णय करना तो सरल है। किन्तु एक तो रिफ्रेक्टोमीटर ( रिफ्रैक्टिव इंडेक्स जानने की मशीन ) की कीमत चार सौ रुपये के लगभग होती है जिसे सर्वसाधारण खरीद नहीं सकते और दूसरे वह बहुत ही नाजुक होती है। विशेष रूप से दक्ष पुरुष ही उसका उपयोग कर सकते हैं। फिर रिफ्रैक्टिव इंडेक्स से ही घी की शुद्धता का ठीक पता भी नहीं चल सकता। यह तो घी की परीक्षा का एक अंश मात्र है। मिलावटी घी का इंडेक्स भी शुद्ध घी के इंडेक्स के समान ही हो सकता है। रिफ्रैक्टिव इंडेक्स के साथ-साथ रासायनिक विश्लेषण से भी जब कोई घी ठीक प्रमाणित हो तोहम कह सकते हैं कि वह घी प्रायः शुद्ध है।किन्तु इन दोनों जाँचों के बाद भी हम यह तो कह ही नहीं सकते कि वह सर्वथा शुद्ध ही है। जिस घी में १० प्रति सैकड़े मिलावट होती है वह घी तो सरकार द्वारा नियत किये हुए उस जांच में पास किया जाता है जो जांच गाय और भैंस के मिले हुए घी के लिये निश्चित की गई है। यह जांच भी विभिन्न प्रान्तों, पशुओं की विभिन्न नस्लों तथा विभिन्न ऋतुओं में एक सी नहीं होती। घी की विश्लेषण प्रणाली में अभी बहुत कुछ गवेषणा की आवश्यकता है।

घी के विश्लेषण की कोई भी ऐसी प्रणाली नहीं है जो सरल और सस्ती हो और जो आसानी से ठीक ठीक बता दे कि अमुक घी शुद्ध है और अमुक मिलावटी जो लोग असली घी में नकली मिलाकर बेचने का व्यवसाय करते हैं उनको नकली घी बनाने वाली कंपनियों से इस प्रकार की बहुत सी वैज्ञानिक सहायता दी जाती है जिसमें कि रासायनिक जांच से भी वह मिलावटी घी पकड़ा नहीं जा सके।

असली घी में वनस्पति ( नकली घी ) के मिलावट की जांच का केवल एक ही उपाय है। नकली घी असल में जमाया हुआ ( Hydrogenated ) तेल है,

अतः यदि इसमें तिल का तेल मिला रहे तो वह सहज ही पहचान में आ सकता है क्योंकि नाइट्रिक एसिड ( शोरे के तेजाब ) से तिल के तेल का तुरन्त पता लग जाता है। हालैंड की सरकार ने वहां के मक्खन के व्यवसाय की रक्षा के उद्देश्य से यह कानून बनाया था कि वनस्पति में तिल के तेल की कुछ मात्रा अवश्य रहनी चाहिये। इसलिये वहाँ जब वनस्पति को घी या मक्खन के साथ मिलाया जाता है तो उसमें तिल का तेल अवश्य रहता है। यदि विश्लेषण से यह मालूम हो जाय कि अमुक घी में तिल का तेल है तो इससे यह प्रमाणित हो जाता है कि इसमें मिलावट है।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये कानून की आवश्यकता है। प्रत्येक वनस्पति ( नकली घी ) बनाने वाले, चालान करने वाले या व्यवसायी के लिये कानून से यह आवश्यक हो जाना चाहिए कि उसके वनस्पति मे कानून मे बतलाई हुई मात्रा में जमा हुआ ( Hydrogenated ) तिल का तेल है। हालैंड ने जैसा कानून बनाया है भारत सरकार को भी वैसा ही कानून बनाना चाहिये। किन्तु मालूम होता है कि नकली घी बनाने वालों पर भारत सरकार की कृपा दृष्टि है और वह इस मिलावट को रोकना नहीं चाहती।

भारत सरकार ने डाक्टर नार्मन सी० राइट (Norman C, Wright) एम. ए., डी. एस. सी., पी. एच. डी. को मवेशी तथा दूध इत्यादि के सम्बन्ध मे जाँच करके रिपोर्ट करने के लिये नियुक्त किया था उन्होंने अपनी Report on the development of the cattle and Dairy Iadustry of India ( भारत की मवेशी तथा दूध घी व्यवसाय सम्बन्धी रिपोर्ट ) नाम की पुस्तक मे लिखा है— 'वनस्पति ( नकली घी ) का ६० प्रति सैकड़ा भाग घी मे मिलावट के काम मे आता है।' उपर्युक्त रिपोर्ट से स्पष्ट है कि गवर्नमेंट को इस बात से पूरी जानकारी है। केन्द्रीय सरकार को उचित है कि घी व्यवसाय की रक्षा के लिये आवश्यक कानून बनावे, नहीं तो नकली घी बनाने वाले बड़े बड़े पूंजीपति तो फूले फलेंगे और गरीबों का घी का व्यवसाय सर्वथा मटियामेट हो जायगा। कोई भी सरकार भविष्य की इस भयानक स्थिति पर विचार करके निश्चेष्ट रह सकती है? घी के व्यवसाय में भारत के सम्पूर्ण आयात या निर्यात व्यवसाय के बराबर पूंजी लगी हुई है। किन्तु भारत सरकार इस बुराई को हाथ पर हाथ रक्खे देख रही है और नकली घी तैयार करने के कारखाने तेजी से बढ़ रहे हैं। इस प्रश्न में जिन लोगो को रुचि हो उन्हें चाहिये कि वे आवश्यक कानून बनाये जाने के लिये भरपूर प्रयत्न करें।

# Hindu Philosophy and Modern Sciences.

(*By*:—Raibahadur Ramchandra M. A. P. E, S. Retired).

## CHAPTER II

## CAUSES AND EFFECTS.

"ओं पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥"

God! Full (is) That, full (is) this; from the Full, the full is drawn; from the Full, the full being drawn, the Full is left." *Br. Up. V. 1.*

1. **Basis of Causation.** These lines are found in some of the Upnishads, the so-called mystic books of Hindu philosophy. The word 'full' is used here to denote the infinite, both absolutely and relatively, the Absolute and the Relative, the Everlasting and the Temporary, the Not-changing and the Changing, the Real and the so-called not-real, the Unknown and the known, the Cause and the Effect.

2. **Theory of Causation.** In these lines, we have, in a way, the theory of causation, very succinctly put down, though in mysterious words. "How?" One would naturally enquire. The following explanation may satisfy this curiosity to a certain extent.

3. **Infinite.** The word full has the same sense as infinite and perfect. It may be noted here that this word 'full' occurs in the two lines seven times. The first 'full' means the Absolute, the Perfect, the Unknown and the Unknowable (by the senses), the Infinite in every sense and in every respect, having neither a beginning nor an ending, in brief inconceivable by the mind and indescribable by speech. Such a 'Full' is designated here by the word "That." The second 'full' also means infinite, not the absolute but the relative. This looks rather strange! Can there be two or more infinities? 'Yes, Certainly, any number' says the mathematician. To give a very simple illustration, take $1 + \frac{1}{2} + \frac{1}{4} + \ldots$ upto infinity is equal to 4. Again the line A——— -B, 6 inches in length when

produced to infinity, is infinite in length, and the line C———D, 10 inches in length, produced to infinity, is also infinite in length. This does not mean that two equals four, or five inches cover the same ground as ten inches; but it simply signifies that we can conceive of not only innumerable infinities of the same kind but also of various kinds. It is not necessary to mention other instances for our purposes. *'That' thus refers to the Absolutely Infinite, and 'This,' is the Relatively infinite. It may further be noted that the 1st, 3rd, 5th & 7th 'Full' refers to 'That,' while the 2nd, 4th, and 6th 'full' refers to 'this.'*

4. **Infinite, Absolute and Relative** 'That' may here be taken as denoting the cause and 'this' as denoting the effect. Both 'That' and 'this' have been described above as being infinite. The word infinite is used in two senses (a) the Absolute and (b) the relative. An attempt has been made in the preceding paragraph to show that the first kind of infinity is inconceivable and indescribable, while the second kind is not only conceivable and indescribable, but it is also based on the mathematical conceptions of our daily life. It may be noted here that mathematics is, admittedly, an exact science. Mathematical conceptions have greatly assisted other sciences, e.g. Physics, Chemistry, Astronomy, Geology etc. in the investigation of truth,, and in the great effort to find out the real, and true nature of the phenomenal world and of whatsoever we come across in the Universe around us. The theory of Relativity, too, seems to support this interpretion of infinity. *Anything unbounded or unlimited in extent or otherwise even from one point of view, may be regarded as infinite.*

5. **Significance of That and This.** We have so far considered the meaning of Infinite. Let us now try to find out the significance of the words 'That' and 'This', as they occur in the original quotation, *the cause and the Effect.* Does the word Cause also have two senses like the word infinite? Can

it be used in (a) an absolute sense, as well as (b) in a relative sense? What do we find in Nature or the Universe around us? We observe invariably that a certain number of causes produce a certain effect in the form of an event, a phenomenon or an entity. As a rule we find both in Nature and in the case of artificial objects that two or more causes are required to produce an effect or any kind of activity. We also notice that these causes themselves are the effects of some other causes, and those some others, the effects of certain other causes, and so on and so forth ad infinitum?

**6. Elimination of Causes.** There seems to be a general tendency in scientific investigations that the number of primary elements, or factors or causes, is being gradually reduced; in other words the number of entities which are regarded as causes, is being gradually eliminated. In the Physical World the formation and manifestation of the various entities could be traced to two entities, matter and force or energy. Now even these two entities are regarded as interchangeable, their unit being the perplexing electron with its nucleus Nay, more, this electron, too, is considered to be capable of further vivisection. In short all the objects that we find in Nature, the whole Universe consisting of innumerable galactic universes, may be said to be composed of electrons and protons or of some other units which are not capable of further division, possibly unsubstantial wave-lengths of unknown or infinite dimensions but having no known or fixed position as referred to in Chapter I. Well, whatever the name given to that *One Source of the Universe* may be, this much appears to be almost certain, if not quite obvious, that a stage must come when and where there can be no further tracing, and that Source whatever the inherent, real or true nature of that Source may be, must be regarded, as it were, the Sole Cause of the Universe——— *a cause which is not the effect of another cause or causes.* This may be designated as the Ultimate cause, unknown at present to man, and possibly unknowable—— —directly like the consiousness of his own existence———with the faculties with which a man is endowed at present."—(*To be Continued.*)

# सहायता कार्य

निज़ाम रियासत के अन्तर्गत तांदुर नामक स्थान है वहां से ६ मील दूर कोठलापुर नाम का गांव है जिसकी आबादी ४०० सौ के लगभग है। प्रतिवर्ष वहां मेला होता है। वह पांच शुक्रवार चलता है। मेला देवी के मन्दिर के निकट होता है जहां एक बावड़ी है।

निकटवर्ती ग्रामों के सहस्रों की संख्या में जन एकत्रित होते हैं। इस वर्ष दो शुक्रवार बीतने के अनन्तर तीसरे शुक्रवार ३० मई को बावड़ी का पानी पीकर सहस्रों की संख्या में शनि रवि को लोग हैजा के शिकार हुए थे जिनमे तीन हजार मरे थे और कई गृह बाल विहीन हो गए हैं और सैकड़ों बच्चे बिना माता पिता के तथा सैकड़ों पति विहीन बिधवा स्त्रियां बिलख रही हैं। यह घटना बम्बई के वर्त्तमान पत्रों में पढ़के आर्यसमाज ने १३ जून को समाज के कार्यकर्ता पं० कान्तीलाल शर्मा की अध्यक्षता में डाक्टर कम्पाउंडर और स्वयंसेवक भेजे हैं वहां उन्होंने सहायता का कार्य प्रारम्भ किया हुआ है जिसमें वहां के राज कर्मचारी तथा आर्य सदस्य सहयोग दे रहे हैं। हजारों इंजक्शन वहां लगाये हैं और हजारों को औषधि दी है और काम चालू है। तांदुर में मुख्य केन्द्र खोल आर्यसमाज बम्बई सेवा समिति का बोर्ड लगाया तथा ओम् का झण्डा फहराया तो वहां की पुलिस ने हस्तक्षेप किया। सेवा कार्य में विघ्न न पड़े इसलिये उनकी बात मान कर सेवा कार्य हो रहा है। सेवा की ही प्रधान आवश्यकता थी।

इस कार्य के लिये अन्न, धन, वस्त्र आदि की आवश्यकता है जिसमें बम्बई की जनता सहयोग दे रही है। बाहर के आर्य भाई यदि सहायता भेजना चाहें तो मंत्री आर्यसमाज बम्बई काकड़ वाड़ी गिरगांव बैक रोड के पते से भेजें।

भवदीय—

रामजित मिश्र, मंत्री आ० समाज, बम्बई

---

## श्री गुलराज गोपाल गुप्त

इस अङ्क के छपते-छपते हमें इस सभा के आजीवन सदस्य और आर्यसमाज के पुराने सेवक श्रीयुत गुलराज गोपाल जी गुप्त रिटायर्ड इन्जीनियर बी० बी० ऐण्ड सी० आई० रेलवे की दुखद मृत्यु का समाचार मिला है। हम इस दुःख में उनके सुयोग्य पुत्र श्री० ला० हंसराज जी तथा परिवार के अन्य सदस्यों के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करते हैं। परमात्मा करे इस आर्य आत्मा को शान्ति प्राप्त हो।




## समस्त आर्य्य जनता ध्यान दे

### वैदिक साहित्य के प्रचार का

# अपूर्व आयोजन

आजकल भारत के विश्वविद्यालयों में प्रचलित शिक्षा प्रणाली के विषय में तो यह आम शिकायत और अनुभव है ही कि उसमें धर्म और सदाचार को कोई स्थान नहीं दिया जाता, पर उसी के साथ २ जब हम यह देखते हैं कि आर्य और हिन्दू शिक्षण संस्थाओं में से पढ़कर निकले हुए छात्र भी अपने भारतीय साहित्य और धार्मिक ग्रन्थों के विषय में बिल्कुल नाम मात्र का ही ज्ञान रखते हैं और पूर्णतया पश्चिमी रंग में रंगे हैं, तो किसी भी जाति-प्रेमी के हृदयको गहरा दुःख होता है। इस त्रुटि का अनुभव प्रायः सभी हिन्दू नेताओं और शिक्षा शास्त्रियों ने किया पर खेद है कि अभी तक वे इस दिशा में कोई कार्यात्मक और अभीष्ट प्रयत्न नहीं कर सके। भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् ने इस ओर एक बहुत ही प्रशंसनीय कदम उठाया है जिसका परिचय हम नीचे देते हैं और जिसकी सफलता के लिए प्रत्येक आर्यजन का कर्तव्य है कि वह अपना पूरा २ सहयोग दे।

भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की ओर से प्रति वर्ष देशके अनेक केन्द्रों में धार्मिक परीक्षाओं का संगठन किया जाता है जिनका एक मात्र उद्देश्य विशेषतः आर्य कुमार व कुमारियों को अपना २ साधारण शिक्षण प्राप्त करते हुए वैदिक साहित्य व आर्य ग्रन्थों से परिचय तथा ज्ञान कराना और साधारणतया

सभी परीक्षा देने वाले आबाल वृद्ध स्त्री पुरुषों को स्वाध्याय के मङ्गल पथ का पथिक बनाना और उन्हें आर्य्य समाज की ओर आकर्षित करना है।

ये परीक्षाएँ लगभग २६ वर्षों से प्रचलित हैं और इनसे सहस्रों आर्यजनों ने लाभ उठाया है। इनके केन्द्र देश के प्रायः सभी प्रमुख स्थानों में स्थापित हो चुके हैं और प्रतिदिन इनकी संख्यावृद्धि हो रही है। पर तोभी हमें खेद है कि अभी तक भी हमारी आर्य शिक्षण संस्थाओं ने इनकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया है जितने की उनसे आशा की जाती है। यदि शिक्षण संस्थाओं के संचालक, आर्य्यसमाजें, कुमार सभाएँ और अन्य हिन्दू संस्थाएँ इधर ध्यान दें और इन परीक्षाओं को लोकप्रिय बनाने की कृपा करें तो वे बिना किसी स्वतन्त्र प्रबन्ध और अतिरिक्त व्यय के अपने बालकों को वैदिक संस्कृति और साहित्य का परिचय कराने के उद्देश्य को पूरा कर सकते हैं।

अब तक (१९९७ वि. तक) परिषद् की ओर से वैदिक धर्म विशारद और सिद्धान्त शास्त्री नाम की दो परीक्षाएँ ली जाती थीं जिनका आरंभ सन् १९१५ में किया गया था और अबतक आर्य जनता इन्हें कितना अपना चुकी है यह इसी से प्रकट है कि गत वर्ष ( १९९६ वि. में ) जहां केन्द्र संख्या ६७ और परीक्षार्थी संख्या १५०० थी अब वह बढ़कर क्रमशः १२५ और ३००० तक पहुंच गई है।

गत वर्ष इन परीक्षाओं में कई एक अड़चनों का अनुभव किया गया। उनमें से एक यह थी कि बहुधा परीक्षार्थी, वैदिक धर्म विशारद परीक्षा के प्रथम द्वितीय खंडों को न देकर सीधे तृतीय खंड में बैठने के इच्छुक रहते थे और उनमें से बहुत इसके योग्य भी होते थे पर वह बैठ नहीं सकते थे। उनके लिए प्रथम, द्वितीय खंड पास करने आवश्यक थे। दूसरी अड़चन यह थी कि परीक्षा-पाठ्य क्रम में कुछ पुस्तकें ऐसी रखी हुई थीं कि जिनमें कुछ तो अप्राप्य थीं और कुछ असामयिक। इन्हीं अड़चनों को दूर करने के लिए परिषद् ने विभिन्न विद्वानों और शिक्षा- विशेषज्ञों की सम्मतियां मंगवाईं जिनके आने पर परीक्षा समिति ने अपनी बैठक में सर्व सम्मति से निश्चय करके इनमें खण्डों की व्यवस्था उठादी है और इनके नाम बदल कर तीन परीक्षाएँ करदी हैं। अब उनके नाम सिद्धान्त-रत्न, सिद्धान्त-भास्कर और सिद्धान्त-शास्त्री हैं। इनमें पहिली परीक्षा विशेषतया छोटे बालक बालिकाओं के लिए है जिसको उत्तीर्ण करने के बाद वे अपने वैदिक साहित्य के पठन पाठन में रुचि लेने लगते हैं और बाकी दोनों बड़ों के लिए। सिद्धान्त

रत्न परीक्षा में आर्योद्देश्य रत्नमाला, व्यवहार भानु, बाल सत्यार्थप्रकाश और साधारण ज्ञान की पुस्तकें है जिनकी परीक्षा ली जाती है।

सिद्धान्त-भास्कर व सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा में सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, आर्य्यसमाज का इतिहास, आर्य्य पर्व पद्धति, उपनिषदें, दर्शन और कुछ धर्म सम्बन्धी अन्य उच्च ग्रन्थों का अध्ययन कराकर उनकी परीक्षा ली जाती है।

इन परीक्षाओं को उत्तीर्ण करने वाले व्यक्तियों को वैदिक साहित्य की इतनी योग्यता अवश्य हो जाती है कि वे अपना जीवन धार्मिक व्यतीत करने के साथ २ धर्मोपदेशक का कार्य भी सुगमता से कर सकते हैं। परीक्षोत्तीर्ण व्यक्तियों को परिषद् की ओर से प्रमाण पत्र ( उपाधि पत्र ) और प्रथम, द्वितीय और तृतीय आने वाले छात्रों को पुरस्कार आदि दिये जाते हैं।

कुछ आर्य कन्या पाठशालाएँ और विद्यालय इन परीक्षाओं को अपनी पाठ-विधि का आवश्यक अङ्ग बना चुके हैं। मध्य प्रान्तीय आर्य-प्रतिनिधि सभा ने हमारी इन परीक्षाओं को अपने सारे प्रान्त के लिए स्वीकार कर लिया है। सार्व-देशिक आर्य्य प्रतिनिधि सभा ने भी इनको स्वीकृत और प्रचलित करने का आश्वासन दिया है इन्हीं की तरह यदि अन्य सभाएँ, समाजें तथा कुमार सभाएँ और शिक्षण-संस्थाएँ भी अपने यहां इन परीक्षाओं की ओर आर्य बाल-बालिकाओं को उत्साहित करें, तो निश्चय ही वैदिक साहित्य के प्रचार में एक विशेष दान देंगे। उसका सबसे सरल उपाय यह है कि वे अपने २ केन्द्रों के छात्रों के लिए उपयुक्त पारितोषिक और पुरस्कार का प्रबन्ध करें जिससे इनकी ओर छात्रों का आकर्षण बढ़े। आशा है कि उपर्युक्त संस्थाएँ और सभाएँ हमारे इस निवेदन पर ध्यान देंगी।

निवेदकः—
देवव्रत धर्मेन्दु, परीक्षा मन्त्री,
भारतवर्षीय आर्य्य कुमार परिषद्,
दीवान हाल, देहली।

# अछूतपन का कलंक दूर करने का प्रयत्न

सारे देश में कितनी ही संस्थाएँ और सुधारक हरिजन उद्धार के लिये बड़ी लगन से काम कर रही हैं फिर भी अछूतपन का कलंक पाया जाता है और हम अब भी उस दिन की ओर आशा लगाये बैठे हैं जब हिन्दू जाति के माथे से यह कलंक सर्वथा उठ जायगा। दानवीर सेठ जुगलकिशोर बिरला जी की उदार सहायता से हमारी सभा हरिजन भाइयों में सुधार सम्बन्धी कार्य करती रही सेठ जी से सभा को वस्तुन एक हजार रुपया वार्षिक की सहायता मिलती है। बहुत सी संस्थायें हरिजन उद्धार का कार्य करती हैं परन्तु श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा का इनमें खास स्थान है। यह सभा हरिजन भाइयों की धार्मिक तथा आर्थिक उन्नति के लिए भी काम करती है और आजकल दलबन्दी से अलग रहते हुए हरिजनों में राष्ट्रीय भाव पैदा करने का भी यत्न करती है। जिसके बिना आज ठीक ढग पर कोई उन्नति नहीं होती। सभा के साधन थोड़े हैं इसलिए उसके कार्य का क्षेत्र भी अधिकतर देहली, यू० पी० और पंजाब तीन प्रान्तों में है। इन प्रान्तों के नगरों और ग्रामों में सभा ने कितनी ही कान्फ्रेंसें और पंचायतें कीं जिनमें हरिजनों की भलाई के लिए प्रस्ताव पास किये गये। सभा हरिजनों में बराबर प्रचार करती रहती है। उन्हें नशेबाजी बाल विवाह बेतालीमी फिजूलखर्ची और दूसरी बुरी आदतें और रसमें त्यागनी चाहिए। हरिजन भाइयों को ग्रामों में जमीदारों से शहरों में म्यूनिसिपल अधिकारियों से बहुत सी शिकायतें रहती हैं सभा इन शिकायतों को दूर करने का बराबर प्रयत्न करती है। देहली में हरिजन बस्ती पहाड़ी धीरज से उठाए जाने मेहतरानियों के नाजाइज चालान हो जाया करते थे। देवनगर की बस्ती मे पानी की कमी थी। देहाती इलाके में डिस्ट्रिक्ट बोर्ड ने पेशा टैक्स लगा दिया था सभा को उपर्युक्त शिकायतों को दूर कराने में सफलता प्राप्त हुई। गत मनुष्य गणना में सभा ने हरिजनों की ठीक-ठीक संख्या लिखाने के लिए कार्य किया। पचास हरिजन भाई जो ईसाई हो गए थे सभा के प्रचार के कारण पुनः हिन्दू धर्म में वापस आ गए। कुछ हरिजन नवयुवकों

को शिक्षा मे और कुछ को काम दिलाने मे सभा ने सहायता दी । दस हरिजन स्त्रियों को विधर्मियों के यहां से निकालकर उनके घर पहुचाया गया ।

हम श्री सेठ जुगल किशोर बिरला, श्री महादेव देसाई, सर सी० पी० रामा स्वामी, श्री घनश्यामसिंह जी गुप्ता, लाला नारायणदत्त जी, डा० सुखदेव जी, बाबू गनपतराय जी एडवोकेट, बाबू रामलालजी वर्मा, ला० हँसराजजी गुप्ता और ला० घासीराम जी लोहिए के विशेष कृतज्ञ हैं, जिन्होंने हमे समय २ पर आवश्यक सहयोग दिया है ।

| आमदनी | खर्च | बाकी |
|---|---|---|
| १४२०॥।) | ८६१।−) | ५२८।≡) |

भवदीय—

**कर्मचन्द प्रधानमन्त्री**

श्रद्धानन्द दलितोद्धार सभा, देहली ।

---

# सम्पादकीय

## आत्म रक्षा और अहिंसा

कांग्रेस मन्त्रि-मण्डल के बम्बई प्रान्त के भूतपूर्व गृह सचिव श्री कन्हैयालाल माणिकलाल ( के० एम० मुन्शी ) का कांग्रेस से पृथक् होना कांग्रेस इतिहास की अत्यन्त महत्वपूर्ण घटना है। श्रीयुत मुन्शी महात्मा जी के अनन्य भक्त और कांग्रेस के प्रमुख कार्यकर्ताओं में से थे अतः उनका कांग्रेस से पृथक हो जाना मामूली बात नहीं है। महात्मा गांधी ने पिछले दिनों कांग्रेस जनों को आदेश दिया था कि साम्प्रदायिक दङ्गों में आत्मरक्षा के लिये भी कांग्रेस जन हिंसा या बल प्रयोग का आश्रय न लें और बल प्रयोग के द्वारा मुकाबला करने के लिये व्यायामशालाओं इत्यादि मे शारीरिक शिक्षण प्राप्त न करें। उन्होंने कांग्रेस जनों को यह भी आदेश दिया था कि जो कांग्रेस जन इन आदेशों पर चलने मे असमर्थ हों वे कांग्रेस से पृथक् हो जायें। श्रीयुत के. एम. मुन्शी का कांग्रेस से पृथक् होने का कारण यही है कि उन्होंने अहिंसा के इस उच्च सिद्धान्त के पालन में अपने आपको असमर्थ अनुभव किया।

उन्होंने अनुभव किया कि साम्प्रदायिक दंगों में आत्मरक्षण के कार्यों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये हैं ईमानदारी से उनका पालन शक्य नहीं है। उन्होंने अपने विचारों को दबाये हुए कांग्रेस में रहने की अपेक्षा उससे पृथक् रहना अधिक श्रेयस्कर समझा। सार्वजनिक कार्यों में इस ईमानदारी का बड़ा मूल्य है अतः उनकी यह ईमानदारी अत्यन्त शिक्षाप्रद है।

कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति और उसके साधन समस्त उचित और शान्त उपाय निर्धारित है। जहां तक हम समझते हैं कांग्रेस ने देश की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध संघर्ष में अहिंसा को

शस्त्र के रूप में अंगीकार किया हुआ है। परन्तु महात्मा जी की यह भावना देख पड़ती है कि कांग्रेस जन समस्त मामलों में और प्रत्येक समय अहिंसा के सिद्धान्त से बद्ध हैं और उनका चरम लक्ष्य स्वराज्य प्राप्ति नहीं वरन अहिंसा के सिद्धान्त को चरितार्थ करना है। यदि महात्मा जी ठीक हैं तो पूर्ण स्वराज्य के संघर्ष के दिनों में ही नहीं, वरन् पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति के पश्चात् भी समाज की वर्तमान अवस्था में बल प्रयोग कितना ही उचित और आवश्यक क्यों न हो कांग्रेस उन मामलों में भी बल प्रयोग नहीं कर सकती जिनका सरकार के साथ संघर्ष से किसी प्रकार भी सम्बन्ध नहीं है। दूसरे शब्दों में कांग्रेस के अहिंसा सिद्धान्त की स्वीकृति का अर्थ केवल यही नहीं है कि प्रत्येक कांग्रेसी को ईसा बुद्ध और गांधी बनाया जाय वरन उसका यह दृढ़ निश्चय होना चाहिये कि वह पूर्ण अहिंसात्मक ढग पर भारत में भावी राज्य का निर्माण करने में योग दे अर्थात् उस राज्य का जिसमें सेना, पुलिस जेल और दंड विधान को कोई स्थान न होगा। हम जानना चाहते हैं कि महात्मा जी को छोड़ कर कौन कांग्रेस जन है जो कांग्रेस के अहिंसा के सिद्धान्त को इस युग में इस रूप में लेता है जिसमें महात्मा जी लेते हैं। कहा जाता है संसार में केवल एक ही ईसाई था जिसकी क्रास पर मृत्यु हुई थी। इसी भांति गांधी जी की अहिंसा में विश्वास रखनेवाला अथवा वर्तमान में उस पर चलने वाला एक ही व्यक्ति है और वह स्वयं महात्मा जी ही हैं। गत वर्ष जब यह विवाद छिड़ा था तब श्रीयुत राजा जी, सरदार पटेल, मौलाना आज़ाद और पं० जवाहरलाल नेहरू प्रभृति कांग्रेस के अग्रणियों ने महात्माजी की अहिंसा पर चलने में असमर्थता प्रगट की थी और यहां तक कि महात्माजी ने कांग्रेस की सेवाओं से विश्राम ग्रहण कर लिया था।

महात्मा जी का कथन है कि कांग्रेस और कांग्रेसजन अहिंसात्मक रूप से सामना कर सकते हैं और निश्चय ही वे सफल होंगे। उन्होंने यह भी कहा है कि कांग्रेस जन प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से अखाड़ों से सम्बन्ध नहीं रख सकता जहां बल प्रयोग से सामना करने का शिक्षण दिया जाता हो। परन्तु यह स्पष्ट है कि समस्त अवस्थाओं में शारीरिक शक्ति वा बल प्रयोग से पृथक् रहना नैतिक और धार्मिक दृष्टि से आवश्यक नहीं है। विपरीत इसके कुछ अवस्थाओं में बल प्रयोग को हम अनिवार्य कर्त्तव्य मानते हैं। अहिंसा बड़ी सुन्दर वस्तु है। परन्तु इसकी भी सीमा है। सीमा से बाहर अहिंसा असफल और कई अवस्थाओं में

कायरता हो जाती है। आत्म रक्षा का अहिंसात्मक उपाय हमें तो अक्रियात्मक दीख पड़ता है। यदि महात्मा जी कोई क्रियात्मक उपाय बतावें तो निस्सन्देह वह एक अनुकरणीय मार्ग होगा।

आत्म रक्षा के लिये पूर्ण अहिंसात्मक रहने का महात्मा जी का आदेश कांग्रेस के पुरुष सदस्यों के लिये ही अभिप्रेत प्रतीत होता है। नहीं तो आततायी या सतीत्व नष्ट करने के लिये उद्यत दुष्ट के पंजे में फंसी हुई नारी किस प्रकार अहिंसात्मक रहने के लिये राजी हो सकती है।

महात्मा जी की अहिंसा की भावना सचमुच एक पहेली है। किसी को पीड़ित न करने की भावना से आत्म रक्षण करना पाप नहीं, पुण्य है। निर्दोष को सताना हिंसा और आततायियों और दुष्टों के दमन के लिये हिंसा का आश्रय लेना धर्म है। साधारण अवस्था में अहिंसा से काम लेकर मनुष्य के सुधार की बात सोची जा सकती है परन्तु जब मनुष्य भयंकर पशु बन रहा हो उस समय तो उसके लिये हिंसा या अहिंसा में तमीज करने की बात सोची ही नहीं जा सकती। अस्तु

देखना यह है कि क्या श्री मुंशी या पं० इन्द्रविद्यावाचस्पति दो एक ही ऐसे कांग्रेसी हैं जिन्हें महात्मा जी के इस सिद्धान्त पर विश्वास नहीं है? हम तो समझते हैं कि कांग्रेस में ऐसे व्यक्तियों की बहुसंख्या होगी जो आत्म रक्षा के लिये महात्मा जी के समान अहिंसात्मक रहने में विश्वास नहीं रखते होंगे। ऐसे व्यक्तियों के लिये ईमानदारी का मार्ग यह है कि वे कांग्रेस से पृथक् हो जायें। अपनी आत्मा की आवाज को दबा कर केवल दिखावे के लिये या किसी और उद्देश्य से कांग्रेस से चिपके रहना अपने नेता को अंधेरे में रखना है। परिणाम के लिये नेता स्वयं उत्तरदायी है।

---

## श्रीयुत चिन्तामणि

लीडर के प्रधान सम्पादक श्रीयुत सी० वाई ( चेरुवरम यज्ञेश्वरम् ) चिन्तामणि का हृदय की गति बन्द हो जाने से ३० जून को प्रयाग में देहान्त हो गया है। समस्त देश में यह समाचार बड़े दुःख के साथ सुना जायगा।

श्रीयुत चिन्तामणि उच्च कोटि के सफल भारतीय पत्रकार थे और पत्रकारों के उस नक्षत्र मंडल के जाज्वल्यमान सितारे थे जिसे आलोकित करने का सौभाग्य श्रीयुत मोतीलाल

घोष, श्रीयुत सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्रीयुत के० नटरंजन, श्रीयुत कालीनाथ राय और श्रीयुत रामानन्द चटर्जी सरीखे पत्रकारो को प्राप्त हुआ है। सौभाग्य से अन्तिम तीन अभी तक हमारे साथ हैं। संयुक्त प्रान्त मे लीडर को जो उच्च स्थान प्राप्त रहा है उसका मुख्य कारण चिन्तामणि जी द्वारा उसका सफल संपादन था। लीडर का राजनैतिक दृष्टिकोण भले ही कुछ क्यों न रहा हो और कुछ समय से सर्व साधारण जनता की रुचि के समतल से नीचे ही रहा हो, परन्तु उसके सम्पादकीय लेखो को जनता बड़े चाव से पढ़ती और उनमे उसे पठनीय सामग्री प्राप्त होती रही है। धार्मिक और सॉस्कृतिक महत्व की सामग्री भी उनमे प्रचुर मात्रा में मिलती रही है।

चिन्तामणि जी को जहा लेखनी का प्रसाद प्राप्त था वहाँ बोलने की अद्‌भुत शक्ति भी प्राप्त थी। संयुक्त प्रान्त की धारा सभा मे वर्षों तक वे सरकार के विरोधी दल के अग्रणी रहे थे और वहा सब पर उनकी वक्तृता की धाक जमी हुई थी। धारा सभा मे ऐसे भी अवसर आए जब चिन्तामणि जी की अनुपस्थिति मित्रों और विरोधियो को समान रूप से खली और धारा सभा की बैठके सूनी रहीं। वे न असंयत लेखक थे और न व्याख्याता। अंकों और तथ्यो से अपने लेख और भाषण को प्रमाणित करके रखना यह उन्हीं का काम था। उनके लेखो और भाषणो मे जो सजीवता और स्वतन्त्रता पाई जाती है उसके मूल में उनके दृढ़ आचार से उत्पन्न हुई निर्भीकता रही है।

उनकी प्रवृत्ति धार्मिक और दयामयी थी, स्वाभाविक सरलता तो उनके जीवन की एक बहुत बड़ी विशेषता समझी जाती थी। संयुक्त प्रान्त मे तो वे एक संस्था समझे जाते थे जिस से अनेक व्यक्ति प्रकाश ग्रहण करते थे। नवयुवको को उन से बहुत मार्ग प्रदर्शन मिलता था। उन्होने चुपके २ कितने ही नवयुवकों को अपने व्यय पर पढ़ाया, कितनो को काम दिलाकर बर्बाद होने से बचाया और कितनो को ही पथ-भ्रष्ट होने से बचाया। उन्होंने यह सब फल की कामना के बिना ही किया और न कहीं अखबारों मे इस कार्य का ढोल पीटा गया।

जन्मत: श्रीयुत चिन्तामणिजी मद्रास के तेलगु ब्राह्मण थे और मामूली पदसे ऊंचे उठे थे। आर्य्य समाज से उन्हें स्नेह था और आर्य्य समाज के हित के लिए वे स्वयं सदैव अपने पत्र के साथ उद्यत रहते थे। आर्य समाज नि:स्वार्थ सेवाओं के लिए उन्हे स्मरण रखेगा।

स्व. चिन्तामणि जैसी हस्तियाँ किसी भी देश और समाज के लिए गौरव की वस्तु हैं उनके निधन से सचमुच संयुक्त प्रान्त और देश को बड़ी क्षति पहुँची है। परमात्मा करे देश को ऐसी व्यक्तियाँ प्रचुर मात्रा में प्राप्त हों। हम इस दुख में आर्य जगत् की ओर से उनके

परिवार के प्रति हार्दिक समवेदना प्रगट करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि इस दुःख को सहन करने में उन्हें समर्थ बनाए और इस उच्च आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

## अछूतोद्धार प्रचारक श्रेणी

संयुक्त प्रान्त में अछूतोद्धार कार्य को विशेष प्रगति देने के लिए इस वर्ष गुरुकुल विश्व विद्यालय वृन्दावन में एक अछूत प्रचारक श्रेणी खोलने का निश्चय किया गया है। इसमें सम्प्रति १ वर्ष के शिक्षण की योजना की गई है और इस वर्ष २० हरिजन विद्यार्थी भरती किए जायेंगे जो हिन्दी मिडिल पास हों अथवा पढ़ने लिखने की हिन्दी मिडिल तक की जिनकी शिक्षा सम्बन्धी योग्यता हो। पढ़ाई १ अगस्त से आरम्भ होगी और प्रार्थना-पत्र १५ जौलाई सन् ४१ तक श्री कर्णसिंह जी थापर मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल वृन्दावन (मथुरा) की सेवा में पहुँच जाने चाहिएं। प्रत्येक विद्यार्थी को भोजनादि के व्ययार्थ १०) मासिक की छात्रवृत्ति दी जायगी। पुस्तकें तथा शिक्षा मुफ्त मिलेगी। शिक्षा पूर्ण होने पर विद्यार्थियों को काम भी दिलाने की व्यवस्था की जायगी।

अनुभव ने यह बतलाया है कि हरिजनों में हरिजन प्रचारक अपने प्रचार में अन्य उपदेशकों की अपेक्षा अधिक सफल रहते हैं। इस अनुभव से लाभ उठाने के उद्देश्य से ही संयुक्त प्रान्त की आर्य प्रतिनिधि सभा ने मिलकर उपर्युक्त निश्चय किया है।

यद्यपि यह कार्य व्यय साध्य है तथापि है बड़ा अच्छा। इसकी सफलता के हम इच्छुक हैं और चाहते हैं कि आर्य जनता इस कार्य में गुरुकुल के सञ्चालकों को सहायता देकर उनके उत्साह को बढ़ाएँ। एक वर्ष का लगभग ३०००) व्यय होगा। कोई भी धनी और धर्म प्रेमी सज्जन अकेले ही कुल व्यय भार उठाकर इस कार्य की सफलता का श्रेय ले सकते है। जिन जिलो में ऐसे प्रचारको की आवश्यकता हो उनकी समाजे भी मिलकर संचालकों को व्यय की चिन्ता से मुक्त करके अपना कर्तव्य पालन कर सकती हैं। व्यय की व्यवस्था कहीं से और किसी प्रकार से क्यों न हो, व्यय के अभाव के कारण यह योजना असफल नहीं रहनी चाहिए।

## आर्य समाजों में पत्रिकायें

श्रीयुत पं० महेश प्रसादजी आलिम फाजिल प्रोफेसर हिन्दू विश्व विद्यालय बनारस के प्रस्ताव पर सार्वदेशिक सभा ने निश्चय किया है कि जिन आर्य समाजों में महर्षि स्वामी

दयानन्द सरस्वती पधारे थे और प्रचार कार्य किया था उनमे उनके पधारने और प्रचार की तिथियो का उल्लेख करके पत्थर की पट्टिकाएँ लगाई जॉय और इस प्रकार यादगार स्थिर की जाय। आर्य समाजो को इस ओर विशेष ध्यान देकर इस निश्चय को शीघ्र से शीघ्र क्रियान्वित करना चाहिए और ऐसे समाजो की सूची समाचार पत्रों मे प्रकाशित होनी चाहिए।

## परिषद् की परीक्षाएँ

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की वैदिक धर्म परीक्षाओ के समर्थन में हम पिछले किसी अंक मे विस्तार पूर्वक अपने विचार प्रस्तुत कर चुके हैं अब परीक्षा मन्त्रीजी की भेजी हुई एक ताजा विज्ञप्ति हमारे सामने है जो इस अंक मे अन्यत्र प्रकाशित की गई है। इसको पढने से स्पष्ट है कि परीक्षाओं के सञ्चालक परीक्षाओ को लोकप्रिय बनाने के लिए जहाँ तक पाठ्यक्रम इत्यादि का सम्बन्ध है बड़े चिन्तित और यत्नवान् हैं। यह बड़े हर्ष का विषय है कि गत दो वर्ष से परिषद् की परीक्षाओं का विभाग श्री पं० देवव्रतजी धर्मेन्दु जैसे उत्साही सज्जन के सुपुर्द है जो सर्वात्मना अपने दायित्व की पूर्ति में सलग्न है। इस वर्ष परीक्षा केन्द्रों की संख्या ६७ से बढ़कर १२५ और परीक्षार्थियों की संख्या १५०० से बढ़कर ३००० पहूंच गई है। इससे स्पष्ट है कि परीक्षा विभाग के अधिकारी कितना अधिक परिश्रम कर रहे हैं और आर्य जगत् उनके परिश्रम का समुचित आदर करने लग गया है। इसके लिए दोनों ही बधाई के पात्र हैं। यदि उन्नति की यही रफ्तार जारी रही और जो हमे विश्वास है जारी रहेगी, तो वह समय दूर नहीं जब आर्य जगत् का बच्चा २ सिद्धान्त शास्त्री, सिद्धान्तरत्न अथवा सिद्धान्त भास्कर की पदवी से अलंकृत देख पड़ेगा। आर्य संस्थाएं इन परीक्षाओ को जिस गति मे अपना रही है वह सन्तोष जनक है।

हमने सञ्चालको को निवेदन किया था कि वे पाठ्य पुस्तको मे और अपनी योजना मे अभीष्ट परिवर्तन कर दें जिससे परीक्षाओ में आकर्षण बढ़े। हमें प्रसन्नता है कि परीक्षा के सञ्चालकों ने इस ओर यथेष्ट ध्यान दिया है साथ ही आर्यजगत् पर हमारी इस अपील का प्रभाव पड़ा है कि वे इस परीक्षाओं को हर प्रकार से प्रोत्साहित करें।

# सत्यार्थ प्रकाश का उपयोगी संस्करण

सब आर्य विद्वान् एवं पत्रों ने हमारे यहा के प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश को अच्छा और उपयोगी बताया है। क्योंकि इसमे महर्षि दयानन्द की संक्षिप्त जीवनी, पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर विषय शीर्षक, सत्यार्थ प्रकाश मे आये प्रमाण, श्लोक तथा मंत्रो की अकारादिक्रम से सूची तथा विषय शब्दानुक्रमणिका जिनसे हर एक विषय एवं प्रमाण शीघ्र निकाल सकते हैं तथा अन्त में एक परिशिष्ट भाग जोड़ा गया है जिसमे सत्यार्थप्रकाश पर होने वाली शकाओ का भी सप्रमाण समाधान किया गया है। पुस्तक की पृष्ठ सख्या बढ़कर ८८० हो गई है मूल्य लागत मात्र १) सादी जिल्द १=) कपड़े की जिल्द १।) रक्खी गई है। १० प्रतियों से अधिक एक साथ लेने पर =) प्रति पुस्तक कमीशन मिलेगा।

**वेद तत्व प्रकाश**—अर्थात् महर्षि दयानन्द कृत ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका का सरल भाषा भाष्य और टीका टिप्पणियो सहित विस्तृत संस्करण। आर्य जगत् के सब विद्वान् जानते हैं कि ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका मे संस्कृत लेख तो महर्षि का अपना है और हिन्दी अनुवाद उन पण्डितो का है जो पौराणिक शिक्षा एवं संस्कार वाले थे उन पंडितो ने कई जगह पर इस अनुवाद मे महर्षि के लेखों के विरुद्ध सैद्धान्तिक त्रुटियाँ कर दी हैं। हर्ष का विषय है कि हमने महर्षि के उक्त ग्रन्थ को गुरुकुल कागड़ी के विद्वान् स्नातक श्री पं० सुखदेव जी वेदालंकार से फिर से सम्पादन कराकर महर्षि के सस्कृत लेख एवं भावों के अनुकूल सस्कृत एवं अनुवाद सहित प्रकाशित किया है। अब इसके पाठ से वैदिक सिद्धान्त एवं ऋषि के मन्तव्यों को ठीक २ जानने में बड़ी सुगमता होगी। अनेक प्रमुख समाजो मे वेद तत्व प्रकाश द्वारा कथाये होती हैं, लगभग ६५० पृष्ठो की सजिल्द पुस्तक का मूल्य २॥) मात्र है। बहुत थोड़ी प्रतियें शेष रही हैं कम से कम समाजो को तो अवश्य ही इसे मँगाकर रखनी चाहियें। बिक जाने पर दूसरी आवृति शीघ्र न छप सकेगी।

**दयानन्द प्रकाश**—श्री स्वामी सत्यानन्द जी कृत ऋषि दयानन्द का सरस, सरल और भक्ति भाव युक्त बड़ी साइज व बड़े अक्षरो का जीवन चरित्र मूल्य २॥)

**दयानन्द चरित्र**—श्री देवेन्द्रनाथ मुकर्जी कृत बँगला जीवन चरित्र मूल्य १।) इसी का हिन्दी अनुवाद श्री पं० घासीराम वकील मेरठ कृत मू० १॥)

**ऋषि दयानन्द का बड़ा जीवन चरित्र**—सम्पादक श्री पं० घासीरामजी दो भागो मे ६)

**वीर सन्यासी श्रद्धानन्द**—ले० पं०रामगोपाल विद्यालंकार (सम्पादक वीर अर्जुन) मूल्य१=)

**आर्य चरित माला**—की आठ जीवनिया गुरु विरजानन्द।), ऋषि दयानन्द।) पं० लेखराम।), पं० गुरुदत्त।), स्वामी श्रद्धानन्द।), महात्मा हंसराज।), आचार्य रामदेव।), नारायण स्वामी।) आठो एक साथ १॥) में।

**संध्या विनय**—लेखक श्री पं० नित्यानन्द जी वेदालंकार बी. ए. (आनर्स) भूतपूर्व पुरोहित शिमला आर्य समाज। सध्या के प्रत्येक मंत्र पर हृदयग्राही भावयुक्त विनय लिखी है प्रत्येक सध्या प्रेमी के लाभ की पुस्तक है। सजिल्द।=)

**विश्व विज्ञान और परमात्म बोध**—लेखक पं० प्रियरत्न आर्ष (नई पुस्तक) ॥=)

आर्य कुमार परिषद् की परीक्षाओ के सूची पत्र एवं पुस्तकें हमसे मँगावे।

**गोविन्दराम, हासानन्द, आर्य साहित्य भवन, नई सड़क देहली।**

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा
"चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाज़ार, देहली में मुद्रित।

अगस्त १९४१ Reg No L 2121

ओ३म्

ऋग्वेद यजुर्वेद

# सार्वदेशिक



सम्पादक— प्रा० सुधाकर एम० ए०

स० सम्पादक— श्री रघुनाथप्रसाद पाठक

वार्षिक मूल्य स्वदेश २) एक प्रति का ≈) विदेश से ५ शि० वार्षिक

अथर्ववेद सामवेद

# लेख-सूची


| सं० | विषय | नाम | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | वद का शिक्षा | | २६१ |
| २ | मन मा दर | त्र प्रान रज ८७वाले आगरा | २६२ |
| ३ | नरेश यात्रा | श्र . गा प्रसाद जी उपा याय | २६४ |
| ४ | कर भला होगा भला या इ ि ह स की स चाइया | श्री प० ग्र ।ाम्हार लाल जी एम ए | २६६ |
| ५ | मास भक्षण क पक्ष म कुछ युक्तिया और उनका खडन | श्री ना० म यप्रकाश बा डा एस सी | २७१ |
| ६ | कथित वनास्पत घी | अ ।आमी ।।न्दार द जी सरस्वती | २७३ |
| ७ | आर्यसमाज की चिनगारिया | श्री स्वामी ६व आन द जा | २७४ |
| ८ | आर्य विवाह एक्ट की वि नत यारण | (ग क स आगे) | २८१ |
| ९ | बारीक अक्षर पढनम नेत्र स्वस्थ रहते हैं | अ न ० आर एस अग्रवाल नेत्र वशेषज्ञ दरियागज देहली | २८४ |
| १० | समन सचय | श्री दुनाथप्रसाद पा क | २८७ |
| ११ | Hm l ı l h l ı h ı l Modern Science | l y R l l I u ı tirc l | २९१ |
| १२ | Apprehension of Collars of European Civili ti n | I l Nanl Chatterjee | २९३ |
| १३ | का कुमार जगत् | | २९६ |
| १४ | दक्षिण कन्नड जिले म आयसमाज का प्रचार | श्री क र नरा न | ३०० |
| १५ | प० मदनमोहन विद्याधर का तन मास म आ प्रगेग क ण | | ३०१ |
| १६ | शुभदान | | ३०२ |
| १७ | आय प्रात० सभा पजाब क प्रधान रा ज दीवान बद्रीदास एडवाकेट का लोहारुकाड पर वक्त य | | ३०३ |
| १८ | सम्पादकीय | | ३०६ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

| वर्ष १६ | श्रावण १९९८<br>अगस्त १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क ६ |
|---|---|---|


## * वेद की शिक्षाएँ *

प्रियं मा कृणु देवेषु । अथ० १९ । ६२ । १

मुझे विद्वानों का प्यारा बनाओ ।

May I become the favourite of the wise and the learned !

* * *

प्रियं राजसु मा कृणु । अथ० १९ । ६२ । १

मुझे क्षत्रिय समुदाय में प्रियता प्राप्त कराओ ।

May I become popular in the Assembly of Kshatriyas or Administrators !

# मन-मन्दिर

( ले०—श्री बाबू पूर्णचन्द्र जी एडवोकेट आगरा )

[ अप्रैल के अङ्क से आगे ]

---

## बुद्धि और नम्रता

जिसको अपनी बुद्धि पर अभिमान है वह संसार में सब से बड़ा मूर्ख, जो सब कुछ जानता हुआ भी यह धारणा रखता है कि उसने अभी कुछ नहीं जाना वह संसार में सब से बड़ा विद्वान् है। बुद्धि और अभिमान का महान् विरोध है। अभिमान के आते ही बुद्धि नष्ट होती है। मनुष्य सब से अधिक अपने को बुद्धिमान समझ कर आगे बढ़ने की चेष्टा नहीं करता और अकारण दूसरों से ईर्ष्या और द्वेष करने लगता है। हम जो कुछ भी जानते या जान सकते हैं वह प्राचीन सत्य है, वह सदैव उसी रूप में उपस्थित था जैसे अब हमने उसको समझा। यदि न्यूटन से पहिले पश्चिम में किसी ने आकर्षण शक्ति को न समझा तो क्या Law of Gravitation पहिले से उपस्थित न था। सेब तो हमेशा ही ऊपर से नीचे गिरते रहे हैं। जल गर्म होने से वाष्प हमेशा बनता रहा है और गति उत्पन्न करने योग्य हो जाता है, चाहे सब से पहिले इस साधारण सचाई को Stevenson ने समझा। किसी पश्चिमी विद्वान ने ठीक कहा है, 'We cannot create beauty, truth and goodness, we can only appreciate them'. अर्थात् हम संसार में सुन्दरता, सत्य और नेकी को उत्पन्न नहीं कर सकते केवल उनके प्रचलितरूप को समझ सकते हैं। यदि हमने कोई ऐसी चीज समझ ली जो अब तक हमने या किसी दूसरे ने नहीं समझी थी तो इस पर अभिमान काहे का, यह तो उस समय तक की मूर्खता का स्वीकार करना है। प्राचीन भारत के इतिहास में एक रावण ऐसा पुरुष हुआ है जिसके सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि जिसको अपनी विद्वत्ता और कला-कौशल पर अभिमान था और जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि सारा भारतवर्ष कष्ट में रहा और स्वयं उसकी लंका जल गई। राक्षस शब्द बड़ा भयंकर है, परन्तु वह केवल स अक्षर का उलटा है।

स अक्षर—राक्षस

जो साक्षर होकर अभिमान करता है और आचरण भ्रष्ट रहता है वह ही राक्षस कहलाने योग्य है।

इस अभिप्राय से कि ज्ञान-वृद्धि से नास्तिकता उत्पन्न न हो और आचरण ठीक रहें इस मन-मन्दिर की सुन्दर पूजा की विधि का अन्त नमस्कार से किया गया है जिससे नम्रता के भाव उपासक के हृदय में सदैव बने रहें। यह नमस्कार मन्त्र इस प्रकार है:—

नमः शम्भवाय च मयोभवाय च नमः शङ्कराय च मयः शङ्कराय च।
नमः शिवाय च शिवतराय च ॥१॥ य० अ० १६। मं० ४१ ॥

इस मन्त्र को समर्पण भी कहते हैं। हम इसके भाव को ऋषि दयानन्द के शब्दों में आपके सामने रखना चाहते हैं जो इस प्रकार है:—

'इस प्रकार के सब मन्त्रो के अर्थों से परमेश्वर की सम्यक उपासना करके आगे समर्पण करे कि हे ईश्वर दयानिधे! आपकी कृपा से जो २ उत्तम काम हम लोग करते हैं वह सब आपके अर्पण हैं जिससे हम लोग आपको प्राप्त होके धर्म जो सत्य न्याय का आचरण करना है, अर्थ जो धर्म के पदार्थों को प्राप्त करना है, काम जो धर्म और अर्थ से इष्ट भोगों का सेवन करना है और मोक्ष जो सब दुःखों से छूट कर सदा आनन्द में रहना है इन चार पदार्थों की सिद्धि हमको शीघ्र प्राप्त हो। इति समर्प्पणम् ॥ इसके पीछे ईश्वर को नमस्कार करे (नमःशम्भवाय च) जो सुख स्वरूप, (मयोभवाय च) संसार के उत्तम सुखों को देने वाला, (नमः शङ्कराय च) कल्याण का कर्ता, मोक्ष-स्वरूप, धर्मयुक्त कामों को ही करने वाला (मयस्कराय च) अपने भक्तों को सुख का देने वाला और धर्म कामों में युक्त करने वाला, (नमः शिवाय च शिवतराय च) अत्यन्त मंगलस्वरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष सुख देने हारा है उसको हमारा वारम्बार नमस्कार हो।

इस मन्त्र के कितने सुन्दर भाव हैं। हमारा तन, हमारा मन और हमारा धन, हमारी बुद्धि, हमारी सब सामर्थ्य, हमारा राज और पाठ सब ईश्वर के अर्पण होना चाहिये अर्थात् हम उस सब को परमात्मा का दिया हुआ समझें और न केवल अपने लिये बल्कि सब के उपकार में उसको उपयोग में लावें।

ऐसी नम्रता से हमारे विचार शुद्ध और पवित्र होंगे, आचार धार्मिक होगा

# विदेश यात्रा

( लेखक—श्री प० गंगाप्रसादजी उपाध्याय )

वेद में विदेश यात्रा के लिये एक मंत्र आता है—

अस्मे वीरो मरुतः शुष्मयस्तु जनानां यो असुरो विधर्ता, अपा येन सुशितये तरेमाध स्वमो को अभिभवः स्याम ॥

( ऋग्वेद मंडल ७, सूक्त ५६, मंत्र २४ )

पूर्व इसके कि हम इस मंत्र का भावार्थ लिखें। दो शब्दों का स्पष्टीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। पहला शब्द 'मरुत्' है। 'मरुत्' का पर्याय ब्राह्मणों मे तथा अन्यत्र भी 'विट्' या 'विशः' ( बहु वचन ) आया है 'मरुत्' वही शब्द है जिसको अंगरेजी में पीपुल ( people ) कहते हैं अर्थात् 'जनता'। ब्राह्मण और क्षत्रियों को छोड़कर जो कि विशेषज्ञ कहलाते हैं अन्य सबको मरुत् या विट् कहा है वह व्यापार करते, देश देशान्तरों से सामाजिक सम्बन्ध करते तथा जाति एवं देश की आर्थिक अवस्था को उन्नत करते हैं। दूसरा शब्द है 'असुर'। साधारणतया 'असुर' शब्द को दो प्रकार से बताते हैं, एक तो 'सुर' का उलटा 'असुर' है। ( न: सुरः नास्ति स असुरः ) जो सुर नहीं है वह असुर अर्थात् राक्षस है, वेद में 'सुर' शब्द नहीं आया और न सुर के उलटे अर्थ में असुर आया है वेद में असुर शब्द अनेक स्थानों पर आया है। परन्तु वहाँ वह अनिष्ट या बुरे अर्थ में प्रयुक्त

---

और व्यवहार धर्म-युक्त होगा। और हमारे लिये धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सब की सिद्धि प्राप्त होगी।

इस मन-मन्दिर की विधि की विवेचना को हम समाप्त करते हैं और आशा करते हैं कि जो जड़ पदार्थ और स्थूल पदार्थों की पूजा इस सूक्ष्म मानसिक विधि के स्थान में प्रचलित हो गई है, उसका अन्त होगा और वैदिक विधि का विस्तार या प्रचार होगा। (समाप्त)

नहीं हुआ। वेद के असुर शब्द को 'असुः' प्राण से बनाते हैं। असुर वह है जिसका प्राण बलवान है। इस मन्त्र में भी 'असुर' शब्द इसी अर्थ में आया है। अब ऊपर दिये हुए वेद मन्त्र के भावार्थ पर विचार कीजियेः—

"हे सार्वजनिक लोगो ! हमारे में एक ऐसा वीर उत्पन्न हो जो बलवान तथा मनुष्यों का पालक पोषक ( विधर्ता ) हो सके। जिसकी सहायता से ( अपः तरेम ) हम समुद्र को पार कर सकें। किस लिये ? ( सुक्षितये ) नई नई भूमि ढूँढने के लिये जो हमारी खेती बारी, व्यापार तथा धनोत्पत्ति का साधन बन सके। इससे क्या होगा ? ( स्वमोकेः स्याम ) हम अपने घर वाले हो जायेंगे।" प्रत्येक मनुष्य के लिये एक घर होना चाहिये जहां वह स्वतन्त्रता से अपने जीवन का विकास कर सके। जिसका घर नहीं उसका संसार में कुछ नहीं। अंगरेज आदि यूरोप की जातियाँ जब यूरोप में अपने रहने की सुविधा न पा सकीं तो देश देशान्तर में गईं। वहाँ नये नये टापू खोजे, घर बनाये और व्यापार के नये मार्गों की खोज की। प्राचीन आर्यों के लिए यह बात नई नहीं थी। अन्वेषण करने से पता चलता है कि बहुत से टापुओं को भारतीय आर्यों ने ही बसाया था। इसकी प्रेरणा उनको वेदों से ही मिली होगी। आज कल भारत से बाहर आर्य संस्कृति के ह्रास का मूल कारण यह है कि हम वेदों की विदेश-यात्रा सम्बन्धी शिक्षा को भूल गये हैं, कितना प्यारा वाक्य है 'अपः तरेम', स्वमोकः स्याम"। प्रत्येक आर्यको यह शब्द याद कर लेने चाहियें। रोटी का प्रश्न भी इसी से हल होगा और संस्कृति का प्रश्न भी।

---

# कर भला होगा भला

या

## इतिहास की सच्चाइयाँ

( ले०—श्री पण्डित अवध विहारीलाल जी एम. ए. )

---

एक महात्मा का कहना है:—

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोइ तू फूल।
तोको फूल के फूल हैं, वाको हैं तिरसूल॥

अर्थात् जो तेरी बुराई करे उसके प्रति तू भलाई कर। तुझे भलाई के बदले भलाई मिलेगी बुरे को बुराई ही मिलेगी। इस तरह की भावना अपने देश में इतनी व्यापक है कि अनपढ़ गँवार सब इसकी सत्यता के विश्वासी हैं। दूसरों के लिए कुआँ बनाने वाले खुद उसी कुएँ में गिरते हैं यह प्रत्येक व्यक्ति के मुंह पर है। इसी सम्बन्ध में इतिहास की कुछ घटनाएँ पाठकों की दिलचस्पी के लिये यहाँ उद्धृत की जाती हैं। ये उदाहरण पाश्चात्य इतिहास के हैं और यह दिखलाते हैं कि औरों को दण्ड दिलाने के लिए घातक यन्त्रों के आविष्कार करने वाले बहुत से लोग अपने आविष्कृत यन्त्र द्वारा स्वयं ही दण्डित हुए और मृत्यु के मुख में विलीन हो गए।

( १ ) पहली घटना यूनान के इतिहास की है। कहते हैं कि प्राचीन काल में सिसली में अग्रिगेन्टम नामक प्रसिद्ध नगर एक समृद्धिशाली प्रजातन्त्र राज्य की राजधानी था। फलारिस (Phalaris) नामक एक अत्याचारी राजा ने उस राज्य की स्वतन्त्रता को अपहरण कर लिया। और वहाँ स्वेच्छाचारी शासन आरम्भ कर दिया। वहां की स्वातन्त्र्याभिमानी प्रजा ने जब सिर उठाया, स्वेच्छाचारिता का विरोध करना चाहा तो फलारिस ने उन्हे बुरे प्रकार कुचलने का संकल्प कर लिया। विरोधी प्रजा को बड़े कठोर दण्ड दिये जाने लगे। अपराधियों को जीवित जलाकर प्राण-दण्ड देने के लिए उस अत्याचारी राजा को एक ऐसे यन्त्र की आवश्यकता थी। एथेन्स नगर में एक बड़ा चतुर शिल्पी रहता था। उसका नाम था पेरिलस। उसने अग्रिगेन्टम के उस अन्यायी राजा फलारिस के लिये एक ऐसा घातक यन्त्र बनाया। उस यन्त्र की शकल साँड की शकल जैसी थी। वह पीतल की बनाई गई

थी इस सांड के पेट के नीचे धीमी आग जलायी जाती थी। अपराधी को सांड के पेट में बन्द कर दिया जाता था। धीमी आंच में वह सिंकता था और इस प्रकार लगातार कुछ समय की असह्य यन्त्रणा के बाद साँड के पेट में बन्द अभागा व्यक्ति अपने प्राण छोड़ता था। यन्त्रणा से पीड़ित मनुष्य के चीखने चिल्लाने की आवाज जो सांड के अन्दर से निकलती थी साँड की आवाज जैसी ही मालूम होती थी। पेरिलस ने जब इस यन्त्र का उपहार फलारिस को समर्पित किया तो उस निर्दय राजा ने उस यन्त्र का परीक्षण उसके निर्माणकर्ता को ही उसमें डालकर और आग लगा कर उसे जलाकर किया।

( २ ) दूसरी घटना इंगलैंड के इतिहास की है। सोलहवी शताब्दी में इंगलैंड मे महारानी एलिजबेथ का शासन था। उस समय स्काटलैंड का एक जमीदार बागी हो गया था। उसको प्राण दण्ड देने के लिये स्काटलैंड के रिजेन्ट मोर्टन ने एक घातक यन्त्र का आविष्कार किया। इस यन्त्र को युवती (Maiden) कहा जाता था। वह युवती की आकृति का था। इसमे पैने छुरे लगे होते थे। अपराधी को उस यन्त्र 'युवती' के अंक में डाल दिया जाता था। 'युवती' उस पुरुष का गाढ़ आलिंगन करती थी। और उसमें लगे तीक्ष्ण शस्त्रों से उस अभागे मनुष्य का शिरच्छेदन हो जाता था। विधाता की विचित्र नियति। उस युवती यन्त्र के आविकर्ता रिजेन्ट मोर्टन महोदय स्वयं अपनी युवती के अंक में पड़कर अनन्त शय्या शायी हुए। महारानी एलिजबेथ की आज्ञा से सर्व प्रथम वे ही दण्डित होकर इस यन्त्र के शिकार हुए।

(३) 'युवती' यन्त्र (Maiden) जिसके अनुकरण मे बनाया गया था उस यंत्र का नाम गिलोटिन था। गिलोटिन फ्रांस देश मे आविष्कृत हुआ था। फ्रौंस को १७८६ ई० के महान् विप्लव के बाद जब वहाँ की प्रजा ने वहाँ के राजा लुइ सोलहवे को रानी सहित कैद कर लिया था और शासन की बागडोर प्रजा के हाथों में चली गयी थी तो वहां फ्रेञ्च राष्ट्रीय परिषद् नाम की एक शासन कर्त्री सभा सगठित की गई। राजा का रानी का और देश के बड़े उमरा का जिनके अत्याचारो से प्रजा बहुत ऊब चुकी थी किस प्रकार अन्त किया जाय यह प्रश्न प्रजा की राष्ट्रीय परिषद् के समक्ष उपस्थित था। जोसेफ इगनेश गिलोटिन ( Goseph Ignace Guillotine ) नामक एक फ्रौंसीसी डाक्टर ने राष्ट्रीय परिषद् के सामने यह

सुझाव रखा कि राजा और राज-पक्षवालों का अन्त एक यन्त्र के द्वारा शिरच्छेदन करके कर डाला जाय। उस घातक यन्त्र का नाम उसी डाक्टर गिलोटिन के नाम पर गिलोटिन रखा गया। इसमें तेज धार का एक बड़ा भारी छुरा होता था जो दोनों ओर खड़े दो स्तम्भों से लगा होता था। अपराधी को उसके नीचे खड़ा किया जाता था और वह विशाल छुरा बड़े वेग से उसके ऊपर गिरकर उसका प्राण-हरण कर लेता था। जनश्रुति बड़ी प्रबल है। डाक्टर गिलोटिन महोदय स्वयं ही सर्व प्रथम अपने आविष्कृत गिलोटिन यन्त्र के भेंट चढ़ाये गये थे।

(४) फ्रॉंस की राजधानी पैरिस के मेयर ह्यूगे औब्रिओ ने फ्रॉंस का प्रसिद्ध किला बेस्टाइल ( Bastille ) बनवाया था। फ्रॉंस के बादशाह लुइ ग्यारहवें से लेकर लुइ सोलहवें के शासनकाल तक यह किला फ्रांस का प्रसिद्ध बन्दी गृह ( जेलखाना ) रहा। इसमें फ्रांस के कितने नौनिहाल सड़कर मरे होंगे कौन कह सकता है? परन्तु इतिहास बतलाता है सब से पहले इस कारागृह को सुशोभित करने वाले इसके निर्माणकर्ता पैरिस के मेयर ह्यूगे आब्रियो महोदय ही थे। धर्म द्रोह के अभियोग में मेयर महोदय राजाज्ञा से दण्डित होकर अपने ही किले में कैदी की हैसियत से रखे गये थे।

(५) फ्रांस के इतिहास की एक और घटना है। मध्ययुग में युरोप अपनी बर्बरता के लिए प्रसिद्ध था। शासकवर्ग और उनके पिछलग्गू इस खोज में अहर्निश लगे रहते थे कि किस प्रकार अपराधियों को अधिक से अधिक कठोरता के साथ दण्ड दिया जाय। एक न एक साधन ऐसा ढूँढ ही निकाला जाता था। कहते हैं कि फ्रांस देश के वरदूँ नामक स्थान के एक बिशप ( बड़े पादरी ) ने लोहे के ऐसे पिंजरों का आविष्कार किया जिनमें अपराधियों को कैद की सजा दी जाती थी ये पिंजरे इतने तंग होते थे कि इनमें न तो सीधे खड़े हो सकने की जगह होती थी और न पांव फैला कर लेट सकने की ही। कैदी इन पिंजरों में बड़ी अवधि के लिए कोई कोई जीवन भर के लिए भी बन्द कर दिये जाते थे। न तो लेटने की जगह और न खड़े होने की ही। कैसा नारकीय जीवन इन जेलों में रहनेवालों का बीतता होगा पाठक सहज ही में कल्पना कर सकते हैं। ऐसे एक पिंजरे में सबसे पहले इसके आविष्कारक बिशप महोदय ही डाले गये थे।

फ्रांस के राजा लुइ ११वें से इन पिजरों की बर्तने की सिफारिश एक पादरी कार्डिनल ला बालू ने की थी। इतिहास कहता है कि ला बालू महोदय स्वयं ही एक ऐसे पिजरे के मेहमान बने थे और निरन्तर १० वष तक उसमे घुले थे।

(६) मध्य युग के युरोपिय इतिहास मे दण्ड देने के एक और साधन लोहे की चादरो का भी उल्लेख पाया जाता है। लोहे की चादरों को तप्त करके उनमें कैदियो को लपेट कर जला मारते थे, ऐसी प्रथा थी। इन बध की चादरो के आविष्कर्ता का नाम बतलाया जाता है लुडोविको स्फौर्जा। वे लुडोविको स्फौर्जा महोदय सर्व प्रथम अपने आविष्कार से स्वय ही लाभान्वित किये गये। राज दण्ड से दण्डित होकर अपनी इस तप्त लोह की चादर मे डाले जाकर मार डाले गये। दूसरों को इन चादरो मे डाल कर मारने का दण्ड तो बाद को मिला।

(७) ईसाइयो का जू लोगो के प्रति द्वेषभाव जब पराकाष्ठा को पहुँच गया था और एक एक यहूदी को ढूंढ ढूढ़ कर दूध की मक्खी की तरह निकाल फेकने या नष्ट करने की सोची जा रही थी। मध्य युगीय युरोप के ईसाई बादशाह अहासुएरस (Ahasuerus) ने भी अपने राज्य से यहूदियों का खात्मा कर देने का कार्यक्रम स्थिर किया। निर्धारित किया गया कि यहूदियो को एक एक करके फासी दे दी जायगी। मोरडिकाइ नाम के यहूदी से यह प्रोग्राम आरम्भ होनेवाला था। अगाग जाति के हामेडाथा का पुत्र हमान बादशाह का बड़ा प्रीतिभाजन था। मोरडिकाइ को फासी देने के लिए और बाद मे और यहूदियो को भी—हमान ने एक फांसी का यन्त्र बनाया। यह यन्त्र ऐसा था कि इसमे फासी का फन्दा पचास हाथ की ऊचाई पर से लटकता था। परन्तु भाग्य के अनिवचनीय विधान से बादशाह का प्रेमपात्र हमान स्वय ही अपने लगाये हुए फासी के विशाल फदे से लटकाया गया।

इसी घटना का प्रतिबिम्ब इस युरोप के नवयुग के इतिहास मे भी देखते हैं। बादशाह फिलिप दि फेयर ( Phillip the Fair ) के अर्थ मन्त्री युगेरा (Euguerrand) ने जो अपने मालिक का बड़ा प्रिय पात्र था कुछ बदमाशों को दण्ड देने के लिए एक फासी का कटघरा तैयार करवाया था। राजा के चित्त की अव्यवस्था से अर्थ मत्री युगेरा ही पहिला व्यक्ति था जो उसी फासी के तख्ते पर लटकाया गया जिसे उसने स्वयं दूसरो को प्राणदण्ड दिलाने के लिए बनवाया था।

न केवल युगेरा स्वयं बल्कि उसके चार उत्तराधिकारी जो उसके बाद राज्य अर्थ मन्त्री हुए उसी फाँसी के तख्ते पर लटकाये गये।

ऐसे ही अवसरों को लक्ष्य करके किसी कवि ने कहा होगा—

राज सेवा मनुष्याणां मसिधारावलेहनम्।

अर्थात् राज सेवा मनुष्यों के लिए वैसी ही है जैसा कि तलवार की धार को चाटना। राजा या अन्य सत्ताधारी की कृपा के पात्र बन कर दिन को रात और रात को दिन बताने वाले कितने व्यक्ति कुत्ते की मौत मरे हैं इसके उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। खैर, वह तो दूसरे लेख का विषय होगा।

(८) प्रस्तुत लेख को एक और उदाहरण के साथ समाप्त किया जाता है। कैपटेन कौपर कोल्स नामक एक व्यक्ति ने दण्ड के एक साधन का आविष्कार किया था। वह साधन था यह कि लोहे की नौका बनाई जाती थी। उस पर डाँड, पाल इत्यादि कुछ भी नहीं होते थे। खाने पीने का सामान भी नहीं रखा जाता था। कैदी को उसी नौका पर रखकर नाव को बिल्कुल साधन विहीन असहाय अवस्था में समुद्र में छोड़ दिया जाता था। कैदी उसी नौका के ऊपर भूखा प्यासा रहकर यों ही मर जाता था। कैपटेन कौपर कोल्स स्वयं अपनी आविष्कृत नौका पर छोड़ा जाकर ७ सितम्बर १८७० ई० को फिनिस्टर अन्तरीप से कुछ दूरी पर नष्ट हो गया।

इतिहासकी पुनरावृत्ति हुआ करती है यह एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है। इतिहास ऐसा दर्शन शास्त्र है जो अनुभव द्वारा सत्य की शिक्षा देता है यह भी बड़े विद्वानों का कथन अक्षरशः सिद्ध है। दूसरों के लिए कूएँ खोदे खनने वाले महानुभाव यह न समझें कि दूसरे ही गिरेंगे। कौन कह सकता है कि उस गढ़े में वे स्वयं नहीं गिरेंगे जबकि जैसा ऊपर दिखलाया गया, प्राचीन से लेकर आधुनिक काल तक के इतिहास ऐसे उदाहरणों से परिपूर्ण हैं?

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. )

[ गतांक से आगे ]

मांसाहारियों का शाकाहारियों पर सदैव प्रभुत्व और शासन रहा है ? क्या आपने भारतीय इतिहास में नहीं पढ़ा है कि मांसाहारियों ने शाकाहारी भारतीयों को सदैव पराजित करके उन पर शासन किया है ?

'इस प्रकार की युक्ति ऐतिहासिक तथ्य से नितान्त शून्य है। उचित आहार से बल वीर्य और स्वास्थ्य प्राप्त हो सकता है, परन्तु इससे युद्ध कौशल प्राप्त नहीं हो सकता। उचित आहार से आन्तरिक उपद्रवों से रक्षा नहीं हो सकती, न यह अन्ध विश्वास से हमारी रक्षा कर सकता और न युद्ध कला सिखला सकता है। पराजय और प्रभुत्व केवल मात्र बल और शक्ति पर नहीं वरन् अन्य कई आवश्यक बातों पर निर्भर करते हैं। मांसाहारी देशों पर भी दूसरों का वैसा ही आधिपत्य रहा है जैसा शाकाहारियों पर और शाकाहारियों ने भी उतने ही देशों पर विजय प्राप्त की है जितनों पर मांसाहारियों ने। भारतवर्ष के पतन का आधुनिक इतिहास दो सहस्र वर्षों से अधिक का नहीं है। परन्तु उससे पूर्व सहस्रों वर्ष पर्यन्त उसने उपनिवेशों के साथ सभ्य संसार पर शासन किया है और अपने दुर्दिन में भी, उसने वीरता और वैभव के चमत्कारिक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। चन्द्रगुप्त की सिल्यूकस पर विजय। यशोधर्मन और बालादित्य का हूणों को पराजित करना राजपूतों की वीरता, जिसने अफगानों का राज्य नष्ट कर दिया था। और जाटों तथा मरहठों का उत्कर्ष जिसके कारण महान् मुगल साम्राज्य का क्षय हुआ इतिहास की अनुपम घटनाएँ हैं।

रक्षणात्मक युद्ध में प्रवृत्त हुआ देश समय समय पर निश्चय ही पराजित होगा, कभी-कभी उन पराजयों के घातक परिणाम भी होंगे विशेषतः आन्तरिक कलह और निर्बल शासन के कारण परन्तु प्रत्येक पराजय के समय उसके कारण

सहज ही आने आ सकते हैं और भारतीयों की पराजयों का कारण शक्ति, ओज और साहस का अभाव कभी नहीं रहा है। इतिहास जानता है कि महमूद गजनी, गोरी, बाबर और हुमायूँ ने किस रीति से देश मे प्रवेश किया और किस चालाकी और कौशल से भारत की आन्तरिक कलह से लाभ उठाया था। इतिहास यह भी जानता है कि अँग्रेजो ने देश पर किस प्रकार अधिकार जमाया है।

आज के युद्ध प्राचीन काल के युद्धों से सर्वथा भिन्न हैं। यदि जर्मनी पोलैंड अथवा फ्रांस को जीतता है, यदि इटली अबीसीनिया पर विजय पाता है अथवा जापान पूर्व के कुछ देशो में हाहाकार मचाता है, तो इस सब का कारण कुछ और ही है, वीरता का अभाव कारण नहीं है। ऐतिहासिक सच्चाइयों को उनके वास्तविक स्वरूप में लेना चाहिये। परमात्मा को धन्यवाद है कि अपनी निर्बलताओं और विवशताओं के साथ भी भारतवर्ष आज जीवित है। मध्य एशिया के तातार और मंगोल आज कहाँ है ? उन्होंने अपने देश में कौन से इतिहास का निर्माण किया ? मिश्र और असीरिया वाले कहां हैं ? उनकी अतुलित शक्ति और ऊँची कही जाने वाली संस्कृति कहाँ है ? स्पेन के मूर यूनान और रोम के विशाल साम्राज्य के निर्माता कहाँ हैं जिन्होंने किसी समय अफ्रीका और युरोप पर शासन किया था। पुरानी व्यवस्था बदल गई है परन्तु सौभाग्य से हमारा देश अपनी प्राचीन मर्यादाओं की रक्षा कर रहा है और यहीं पर हम अपनी संस्कृति और सभ्यता की कड़ी को लगभग समूची पीढ़ी-दर-पीढ़ी आती हुई देखते हैं।

---

# कथित वनास्पति घी

[ ले०—श्री स्वामी चिदानन्द जी सरस्वती ]

कई समाचार-पत्रों ने कथित वनास्पति घी की बड़ी बड़ी तारीफ की है। एक दो पत्रों ने तो इसको जीवन-दात्र शक्तियों में से एक खास शक्ति कह कर इसका प्रचार व समर्थन किया है। इसी प्रकार एक दो भले आदमियों ने भी इसकी भूरि भूरि प्रशंसा की है।

क्योंकि समाचार-पत्र इसकी तारीफ करते हैं और एक दो सज्जनों ने भी हमसे इसके गुण वर्णन किए—इसलिये स्वयं मैंने भी अपने पाचक से कह कर "डी वन" ( यह भी 'राम ब्रांड' 'गोविन्द ब्रांड' आदि की तरह कथित वनास्पति घी का ही नाम है ) मँगाया और उसका सेवन किया। यह रंग सुगन्ध और स्वाद में असली गौ के घी की तरह विशुद्ध प्रतीत हुआ। मैंने ही नहीं; अपितु मेरे पास आगत सैकड़ों अतिथियों ने भी इसे खाया। एक मास तक सेवन करने से इसका कोई विशेष बुरा प्रभाव स्वास्थ्य पर पड़े ऐसा प्रतीत नहीं हुआ। किन्तु दूसरे मास में गला, आंख और पाचन शक्ति पर कुप्रभाव पड़ना आरम्भ हुआ। यहां तक हुआ कि सर मानो चक्कर खा रहा है, ऐसी अवस्था उत्पन्न हो गई।

अन्त में इसको खेरबाद कहना पड़ा और अपने अनुभव से इस नतीजे पर पहुँचा कि यह किसी प्रकार भी मनुष्य के लिए खाद्य वस्तु नहीं, और इसके सेवन से घर बैठे बैठाये पैसा खर्च करके रोगों को मोल लेना है।

कथित वनास्पति घी का स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ने का क्या कारण है? जब इसकी तहकीकात करनी शुरू की तो इसके विशेषज्ञों से मालूम हुआ कि यह चीज मिट्टी के तेल, मछली के तेल, नारियल के तेल, तोड़िये के तेल, मूंगफली के तेल, बिनौले, तथान्यान्य घटिया चीजों मे सोडा कास्टिक, निकल धातु, और हाईड्रोजन गैसें ( इन सभी में स्वास्थ्य घातक विष है ऐसा डाक्टर कहते हैं ) डालकर उन तेलों की गन्ध तथा रंग को दूर करके शुद्ध घी जैसा रंग तथा गन्ध वाली चीज बना दी जाती है। मछली आदि तेलों को घी का रूप और गन्ध देने से उसमे शुद्ध गो घृत के गुण उत्पन्न नहीं होते, अपितु सोडा कास्टिक आदि के स्वास्थ्य घातक

गुण उस तेल में आ जाने के कारण स्वास्थ्य के लिए अति हानिकारक बन जाता है।

कथित वनास्पति घी के सेवन करने वालों ने जो हानियां हमें बताई हैं, उनमें से कुछ इस प्रकार हैं—

कथित वनास्पति घी—

१. बच्चों की बढ़ती को रोकता है।

२. बच्चों में सूखा रोग पैदा करता है।

३. पाचन शक्ति को मन्द करता है।

४. कण्ठ को खराब करता है।

५. आंख व दान्तों को खराब करता है।

६. सिर में चक्कर पैदा करता है।

७. शरीर के जीवन तत्वों का नाश करता है।

८. दूध पिलाने वाली माताओं के स्तनों का दूध सूख जाता है।

९. प्रमेह व प्रदर को पैदा करता है।

१०. उसके सेवन से शरीर में सुस्ती और काहली बनी रहती है।

डा० कर्नल F. P. मैकी, इण्डियन मेडिकल सर्विस, डायरेक्टर महकमा विटेरियालोजिकल बम्बई की वनास्पति घी के सम्बन्ध मे सम्मति है, कि—

(१) वनास्पती घी में प्राण पोषक पदार्थ पवित्र घी की भांति नहीं होते कई प्रकार के तेल जिनसे वनास्पति घी बनता है, ऐसे हैं कि उनमें नाम मात्र भी प्राण पोषक पदार्थ नहीं हैं। यह घी तो किंचित मात्र भी बाजार मे नहीं बिकना चाहिये। नगर के म्यूनीसिपल बोर्डों को इसकी बिक्री बिलकुल बन्द कर देनी चाहिये नहीं तो इसका फल यह होगा कि बालक और वृद्ध इन तेलों को खाकर अपने स्वास्थ्य को बरबाद कर लेंगे। यह मैं कदापि सम्मति नहीं दूंगा कि वह घी काम में लाया जावे। इसी प्रकार,

(२) वनास्पती घी की जांच की गई उसमें वह गुण नहीं है जो घी में शक्ति बढ़ाने के सम्बन्ध में पाया जाता है। यह अत्यन्त आवश्यक है कि नन्हें बच्चों को उनकी माताओं को जो बच्चों को दूध पिलाती हों यह वनास्पती घी न दिया जाव।

—रसायनिक विभाग पंजाब सरकार

(३) बनास्पती घी जिन जिन चीजों और विधियों से तैयार किया जाता है उन सब की वैज्ञानिक तहकीकात की गई, उससे पूर्णत: सिद्ध हो गया कि न यह प्राकृतिक मानवी भोजन है और न ही मनुष्य के स्वास्थ्य के लिए किसी रूप में लाभदायक है।

बनास्पती तेल या घी बेचने वालों ने अनेक प्रकार से जनता को धोखा देने का प्रयत्न किया है और तरह तरह की गलतियों मे डाला है। उदाहरणत यह बात जनता के मस्तिष्क में जमा दी गई है, कि विशुद्ध घी कहीं और किसी प्रकार भी प्राप्त नहीं हो सकता। यदि हालत यही है तो मै आपसे पूछता हूँ कि क्या इस देश से सब पशु विदा हो गये। अन्त में मै भारतीय जनता से अपील करता हूँ कि वह अपने लाभ या हानि की बात को स्वयं समझने का यत्न करें। यदि उसे अपने स्वास्थ्य का ध्यान है तो भोजन के विषय में पूरी छान बीन से काम लें। और बनास्पती घी का प्रयोग कतई न करें। —हकीम अमीलखा

( हकीम अजमलखाँ साहब के सुपुत्र )

मन्त्री, तिब्बिया कालेज, देहली।

(४) यह घी देखने में तो शुद्ध और निर्मल प्रतीत होता है। परन्तु इसमें मनुष्य के शरीर की चर्बी को घोलने वाला पदार्थ नहीं है। इस घी के खाने से लाभ के स्थान में हानि होती है।

—डा० कैप्टिन डी. आर. थामस I. M S. पंजाब

(५) 'बनास्पती घी जो बनाने वालो की होशियारी से आजकल बहुत प्रचलित हो रहा है मनुष्य मात्र के लिये हानिकारक है परन्तु बालकों के लिये विशेष हानिकारक है। निर्धन लोग जो शुद्ध घी नहीं ले सकते बनास्पती घी को खाते हैं इससे इनको नाना प्रकार की बीमारियां लग जाती हैं। दांत खराब हो जाते हैं। शरीर की गठन और बढ़ने में अन्तर पड़ जाता है। और शारीरिक शक्ति भी कम हो जाती है।' —डाक्टर फिलमर

(६) बनास्पती घी के बनाने वालों मे से कुछ की सम्मति है कि बनास्पति घी का ६० प्रतिशत शुद्ध घी की मिलावट के काम में आता है इस मिलावट का अन्दाजा तीन करोड़ रुपये सालाना है। यदि मिलावट बन्द हो जाय तो वार्षिक तीन करोड़ का लाभ गाँव वालों को पहुँचेगा।

—डाक्टर एन. सी. राईट विशेषज्ञ भारत सरकार

खरखोदा आर्यसमाज का जब नगर कीर्तन बन्द हुआ तो थानेदार खरखोदा आया और पंचायत बुलाई ताकि निर्णय किया जाय। थानेदार कहता था कीर्तन न निकालकर उत्सव कर लिया जाय, चौधरी पीरुसिंहजी कहते थे उत्सव नगरकीर्तन सहित ही होना चाहिये तब थानेदार ने कहा आप यहाँ मुलतान बनाना चाहते हैं ( कुछ समय पूर्व मुलतान मे दंगा हो गया था जिसमे अनेक दुकाने लूटी गई थीं ) चौधरी पीरुसिंहजी ने झट उत्तर दिया "थानेदारजी यह स्मरण रहे यदि यहाँ झगड़ा हुआ तो उलटी मुलतान बनेगी।" इस पर थानेदार बिगड़ गए और कहने लगे आप कौन है ? उत्तर दिया "मै आर्यसमाजी हूँ" फिर पूछा, "आप नम्बरदार हैं, जेलदार है, क्या हैं ?" उत्तर दिया, "मैं कह चुका हूँ कि मै आर्यसमाजी हूँ।" थानेदार ने कहा आप चले जाये, आप अपना दण्ड सभालकर चल दिये साथ ही चौधरी जुगलाल आदि चल पड़े थानेदार जी ने कहा जेलदारजी आप बैठे, जुगलालजी ने कहा, "मै तो लोगों का जैलदार हूँ और चौधरी पीरुसिंह मेरा भी जैलदार है जो यह कहेगा वही होगा जब यह नही तो मै भी नही।"

## निर्भय वीर चौधरी जुगलालजी फरमाणीया

चौधरी जुगलाल जी ग्राम फरमाणा जिला रोहतक के निवासी थे। चौधरी छोटूराम जी वजीर पंजाब और चौधरी लालचन्दजी जो इस समय हरयाणा प्रान्त के नेता हैं वह इनके भी पथप्रदर्शक थे। चौधरी जी आर्यसमाज के मुख्य कार्य कर्ताओं में से एक थे जिन्होने जिला रोहतक मे आर्य समाज का काम किया है। जिस समय पं० श्रद्धानन्द जी ( वर्तमान स्वामी श्रद्धानन्द जी ) वहां प्रचार कार्य करते थे चौधरी जी उनके सहायक थे। चौधरी पीरुसिंह जी, चौधरी जुगलाल जी, चौधरी अमरसिंह जी आदि दहिया दल के कार्य कर्ताओ मे से थे।

चौधरी जुगलाल जी जैलदार थे। एक समय डिप्टीकमिश्नर ने बुलाकर कहा, "चौधरी जी, आप जैलदार तब ही रह सकते हैं यदि जनेऊ उतार दें।" ध्यान रहे उस समय जाटों ने नए २ यज्ञोपवीत पहने थे। चौधरी जी ने कहा यह जनेऊ उतारने का शब्द एक बार तो कह दिया यदि दूसरी बार कहा तो कुछ और हो जायगा अब सोच कर कहना। साहिब बहादुर चुप होगये और चौधरी जी जैलदार भी रहे।

आप प्रायः अफसरों से मिलने कम जाते थे या नही जाते थे। एक नया डिप्टीकमिश्नर आया। वह मिलने नहीं गये। एक बार भेंट होने पर साहिब ने कहा

जैलदार साहिब आप पहले नहीं मिले, उत्तर दिया मेरे पास आपके चपरासियों को देने के लिए धन नहीं है। साहिब ने पूछा उनको क्यों देता है उत्तर दिया ताकि वह आपको आकर कहें कि चौधरी जुगलाल आपसे मिलने आए हैं साहिब ने कहा आप जब आया करें सीधा मेरे पास आ जाया करें आपको रुकावट न होगी।

एक बार पञ्जाब के गवर्नर ओडायर साहिब रोहतक गए। जिले के प्रतिष्ठित व्यक्तियों से जो भेंट हुई उनमें आप भी एक थे। दैवयोग से आपसे लाट साहिब ने प्रश्न किया आपके जिले में खून क्यो अधिक होते हैं। आपने उत्तर दिया— सरकार की दया से खून होते हैं। लाट साहिब ने कहा यह कैसे ? उत्तर दिया किसी विवाद में हम न्यायालय की शरण लेते हैं तो हमे वहां से संतोष नहीं होता तब बदला लेने की भावना उत्पन्न हो जाती है।

आर्यसमाज खरखोदा का नगरकीर्तन बन्द कर दिया गया। आप पंचायत में सम्मिलित होकर दीवान टेकचन्दजी के पास गए। (दीवान टेकचन्दजी कमिश्नर थे) आपने सबको अर्थात् आर्य और मुसलमानों को सोनीपत बुलाया जब दोनों दल मिले तो दीवानजी ने कहा चौधरीजी आप मिलकर निर्णय कर लें झगड़े में लाभ न होगा चौधरी जी ने उत्तर दिया इनका हमारा तो विवाद ही नहीं है। रोहतक जिला में जो डिप्टीकमिश्नर, पुलिस अफसर थानेदार मुसलमान हैं वह इनको उत्साहित करते हैं तब यह ना कहते हैं अन्यथा हमारा नगरकीर्तन रोकने वाला कौन है हमारा अधिकार है हम निकालेंगे। तब दीवानजी ने मुसलमानों से कहा आपस में मिल जाना अच्छा है जब वह अपने महल्लों से नगरकीर्तन निकालते है तो आपको क्या आपत्ति है मुसलमान नेता ने उत्तर दिया साहिब बहादुर आज तो नगरकीर्तन का झगड़ा हैं असली बात तो यह है हम गोभक्षक हैं और इनका वह खुदा (पूज्या) है यह शब्द सुनते ही चौधरी जुगलाल खड़े हो गए और कहा एक बार यही शब्द फिर बोले तो तेरे मुँह में न दूं तो मुझे आर्य न कहना। सभा में सन्नाटा था और दीवान जी ने बड़ी कठिनाई से शान्त किया और नगरकीर्तन की आज्ञा दे दी।

इसी प्रकार चौधरीजी की निर्भीकता की अनेक कहानियां प्रचलित हैं। आप अपने जीवन में जिला रोहतक के किंगमेकर थे। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड में, कौंसिल में जिसे चाहा उसे भेजा। जिस समय चौधरी लालचन्दजी के विरुद्ध यह निर्णय हुआ कि आपका निर्वाचन नियमानुकूल नहीं है और आपको ६ साल तक पुनः कौन्सिल में

आने का अधिकार नहीं है तब लेखक ने उनसे पूछा था अब कौन आवेगा आपने उत्तर दिया हमने पहले योग्य व्यक्ति भेजा था यदि सरकार ने उसका निर्वाचन नियमानुकूल नहीं माना तो अब इनके सर्वथा विपरीत भेजेंगे जो अधिक पढ़ा-लिखा भी न होगा तब वहां से चौधरी टेकरामजी निर्वाचित हुए जो चौधरी लालचन्दजी की योग्यता में लिखने-पढ़ने मे किसी प्रकार भी समान न थे।

—स्वतन्त्रानन्द

---

# आर्य विवाह एक्ट की विस्तृत व्याख्या

( १२ )

श्रीयुत चौधरी मुख्तारसिंह और घनश्यामसिंह जी द्वारा १६३१ और १६३५ मे 'आर्य विवाह बिल' के प्रस्तुत किए जाने का एक मुख्य कारण यह था कि १६२३ के स्पेशल विवाह संशोधक ऐक्ट के द्वारा जो असुविधा लगाई गई थी। उसके दुष्प्रभाव का निराकरण किया जाय। आर्यसमाज की ओर से श्रीयुत घनश्यामसिंह जी ने कहा था कि उत्तराधिकार के विषय मे 'इण्डियन सक्सशन एक्ट' स्वीकृत नहीं है। जब बिल सिलेक्ट कमेटी मे गया तो सिलेक्ट कमेटी ने ५ विरुद्ध ४ के बहुमत से जिनमे दो सरकारी सदस्य भी सम्मिलित थे, निश्चय किया था कि उत्तराधिकार का निर्णय १६३५ के 'इण्डियन सक्सेशन एक्ट के अनुसार होना चाहिये और इस निश्चय को दृष्टि मे रखकर उन्होने बिल मे एक धारा के बढ़ाए जाने का प्रस्ताव भी किया था। यह भय था कि १६३७ के एक्ट मे भी कही वह आपत्तिजनक धारा न रख दी जाय परन्तु सिलेक्ट कमेटी के अल्पमत अर्थात् श्री घनश्याम सिंह जी गुप्त, श्री बा० भगवानदास जी, श्री एन० बी० खरे, और श्री एम० सी० राजा ने अपने विरोध सूचक नोट में यह स्पष्ट कर दिया था कि उत्तराधिकार के विषय में संरक्षण के बिना इस बिल का पास करना व्यर्थ है। उस नोट के निम्न अंश से विरोधी सदस्यों का दृष्टि कोण भली प्रकार स्पष्ट होता है।

बिल का उद्देश्य आर्य समाजियो की आवश्यकताओं को पूरी करना है अत: उत्तराधिकार सम्बन्धी धारा की इस रीति से रचना होनी चाहिए जिससे आर्यसमाज की भावनाओं का आदर हो। यह एक सुप्रसिद्ध बात है कि समस्त आर्य जगत इस बात का विरोधी है कि उन पर पवित्र शास्त्रो के स्थान पर इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट लागू किया जाय।

उन लोगो की सम्पत्ति पर जिनके लाभ के लिए यह बिल प्रस्तुत किया गया है, इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट के लागू होने से आर्यसमाज की सामूहिक माँग ठुकराई जाती है। यदि उनपर इण्डियन सक्सेशन एक्ट ही लागू होना हो तो फिर यह बिल नितान्त अनावश्यक है। क्योकि इस बात को छोडकर स्पेशल मैरेज एक्ट से बिल की अन्य सब बाते पूरी हो जाती है।

"यह नहीं भुलाया जाना चाहिए कि आर्यसमाज की पवित्र वेदो और शास्त्रो मे आस्था है और वह वर्णाश्रम धर्म का मानने वाला है। पौराणिको से उनका मतभेद इसी पर है कि

वे जन्म गत जात पॉत को नही मानते हैं वरन् कर्म गत वर्ण व्यवस्था को मानते हैं। जिन मामला मे शास्त्रो की आज्ञा शिरोधार्य होनी चाहिए उनमें इण्डियन सक्सेशन ऐक्ट को स्वीकार करने की प्रेरणा करना उन्हें धर्म परित्याग की प्रेरणा करने के सदृश है।"

२२ सितम्बर १९३६ को जब यह बिल सिलेक्ट कमेटी की रिपोर्ट के साथ असेम्बली मे विचारार्थ प्रस्तुत हुआ तो श्रीयुत बापू जी अणे के द्वारा बिल को समाप्त किए जाने का यत्न हुआ। उन्होने प्रस्ताव किया कि यह बिल सम्मति के लिये प्रचारित किया जाब क्योकि यह विषय हिन्दू जाति के लिये बडे महत्व का है और हिन्दुओ ने मुख्यत. दाये भाग की दृष्टि से बिल की जाँच पड़ताल नहीं की है। इस पर आर्यसमाज के प्रवक्ता श्रीयुत घनश्यामसिह जी न बिल को पुन प्रचारित करने के विरुद्ध एक बड़ी प्रभावशाली वक्तृता दी। उन्होन कहा कि इस बिल का मुख्य प्रभाव आर्य समाजियों पर पड़ता है और वे सब इस बिल के पास होने के परम इच्छुक है साथ ही सिलेक्ट कमेटी द्वारा प्रस्तावित उत्तराधिकार की धारा स० ३ के विरुद्ध हैं।

२२ सितम्बर १९३६ के श्रीगुप्तजी के भाषण के मुख्य अश इस प्रकार है —

'आर्यसमाज का प्रत्येक सदस्य इस बिल का समर्थक है और धारा सभा के एक भी सदस्य ने यह नहीं बतलाया है कि कोई आर्यसमाजी इस बिल का विरोधी है।'

'मैं बलपूर्वक कहना हूँ कि कोई भी आर्यसमाजी इण्डियन सक्सेशन एक्ट को स्वीकार नहीं करेगा। ३०० से अधिक प्रस्तावा म जो इस विषय पर पास हुए हैं यह बात स्पष्ट कर दी गई है।

'हम आर्यसमाजी हिन्दू रहना चाहते हैं और उन हिन्दुओ से भी बढ-चढकर रहना चाहते हैं जो हमे हिन्दू समाज के क्षेत्र से बाहर निकाल देना चाहते हैं। यदि वे हमारी मनो भावना को समझते हों, यदि वे हमारे भावों को जानते हो तो वे देखेगे कि हम न तो सक्से शन एक्ट चाहते हैं और न स्पेशल विवाह ऐक्ट चाहते हैं। विवाह को जितना पौराणिक पवित्र मानते हैं उतना ही आर्यसमाजी मानते हैं। स्पेशल विवाह एक्ट से तो विवाह एक सौदा बन जाता है और यह हमें अपने शास्त्रो से विमुख बनाता है। आर्य विवाह बिल का उद्देश्य इस त्रुटि का सुधार करना है। हमारा सुनिश्चित मत है कि जब तक उत्तराधिकार का कानून समस्त हिन्दू जाति के लिए परिवर्तित और सशोधित नही होता है तब तक हम आर्यसमाजी हिन्दू शास्त्रों द्वारा शासित होना चाहेंगे।'

इन युक्तियों का प्रभाव अपरिहार्य था और इसका फल यह हुआ कि बिल को सम्मति के लिए प्रचारित करने का प्रस्ताव ६६ विरुद्ध १७ के बहुमत से गिर गया।

१६३६ की सितम्बर और अक्टूबर की बाद की बैठकों में बहस का मुख्य विषय आर्यसमाजी शब्द की परिभाषा रहा था। जब यह बिल १६३७ के मार्च मास में बजट सेशन में बहस के लिए प्रस्तुत हुआ तो ऐसा प्रतीत होता है कि ला मेम्बर श्रीयुत नृपेन्द्रनाथ सरकार और अन्य सरकारी सदस्यों को सक्सेशन सम्बन्धी नई धारा के विरुद्ध आर्य जगत के भावों और सम्मति का भली भाँति अनुभव हो गया था इसीलिए उन्होंने उस धारा के जोड़े जाने का आग्रह नहीं किया था। धारा सभा के रुढ़िवादी सदस्यों ने भी अपना विरोध वापस ले लिया था और धारा सं० ३ को रद्द करने का प्रस्ताव बिना किसी विवाद के सर्व सम्मति से पास हो गया था। अतः १६३७ के इस कानून का प्रभाव यह है कि इस समय आर्यसमाजियों पर दायभाग का जो कानून लगता है उसमें किसी प्रकार का परिवर्तन किए बिना उनके अन्तर्जातीय विवाह जायज हो जाते है।

(अपूर्ण)

# बारीक अक्षर पढने से नेत्र स्वस्थ रहते हैं

[ लेखक—डा. आर. एस. अग्रवाल, नेत्र विशेषज्ञ दरियागज देहली ]

अक्सर लोग पढ़ने में नत्रो मे पानी आना, खुजली, जलन होना, नेत्रो और सर में पीड़ा होना इत्यादि बातो की शिकायत किया करते है बुढ़ापे में बारीक अक्षर पढ़ने और किताब नजदीक देखना असम्भव हो जाता है। पढ़ने मे किसी प्रकार की दिक्कत या तकलीफ हो डाक्टर लोग ऐनक तजवीज कर देते है, ऐनक लगाने से अनेको की दृष्टि कमजोर ही होती जाती है जिसकी वजह से बार बार ऐनक बदलनी पड़ जाती है बहुत से रोगियो की तकलीफ ऐनक से भी नही जाती वह बार बार अनेक डाक्टरो के पास भटका करते हैं और उनके पास एक दुकान सी ऐनको की हो जाती है।

यदि आप पढ़ने के कुछ उसूल समझ ले और उनको प्रयोग में लावे तो लिखने पढने की हर तरह की दिक्कत जाती रहेगी ऐनक की जरूरत नही रहेगी, जिन्दगी भर नेत्र स्वस्थ बने रहेंगे मोतिया बिन्द की बीमारी नही सतावेगी।

**१. किताब की पोजीशन**—किताब नेत्रो से नीचाई पर रहे नेत्रो के बिलकुल सामने नही।

**२. आपकी पोजीशन**—कुरसी या जमीन पर आराम से बैठो अपने हाथ से सर या ठोढ़ी को मत टेको। सर को आजाद रक्खो और पढ़ते समय सर को जरा जरा हिलाते रहो। लेटकर पढने मे सर जरा ऊँचा रक्खो। करवट से न पढ़ो।

**३. नेत्रों की पोजीशन**—पढ़ते समय ऊपर के पलक नेत्रो पर पड़े रहने चाहिये। आंखे ज्यादा खोलकर न पढ़ो। पढ़ते समय हलके हलके पलक झपकने चाहिये।

**४. धूप में पढ़ना**—जाड़े की ऋतु मे अकसर धूप में बैठकर पढ़ा करते है किताब इस प्रकार रक्खो कि धूप किताब पर न पड़े चाहे चेहरे पर पड़ती रहे। यदि किताब पर धूप पड़ेगी तो Reflection से आँखों पर STrain पड़ेगा। यह तो हर एक ने अनुभव किया होगा।

५. कैसी रोशनी में पढ़ना चाहिये—रोशनी इस प्रकारकी हो कि उसका Reflection न हो बिजली की तेज रोशनी जो सीधी किताब पर पड़ती है हानि पहुँचाती है। चिराग, मोमबत्ती, टेबिल लैम्प मिट्टी के तेल का; बिजली का Milky-bull पढ़ने को ठीक रहते है। अगर मामूली बल्ब से ही पढना हो तो रोशनी इस तरह Arrange करो कि उसकी सीधी ओर तेज किरने कागज पर न पडे।

६. पलक झपकना आवश्यक है—हलके हलके पलक झपकने से नत्रो को आराम मिलता रहता है हर एक लाइन को पढने मे एक दो बार पलक झपक लेना चाहिए परन्तु ठीक पलक झपक कर पढ़ना। ठीक पलक झपकने म ऊपर का पलक जरा जरा चलता रहता है नीचे के पलक को नही छूना है। बहुत प्रकार की नेत्र पीडा सिर्फ ठीक पलक झपकने से ही जाती रहती है।

७. सूर्य चक्षु व्यायाम—रोज सुबह को १० मिनट सूर्य की ओर नेत्र बन्द करके बैठो और अपना बदन हलके हलके साँप के फन की तरह हिलाते रहो फिर साये मे आकर ठण्डे पानी से आँखे धोना चाहिये। रोज सूर्य व्यायाम करन से नेत्र स्वस्थ बने रहते है। दृष्टि तेज होने लगती है।

८. बारीक अक्षर पढना—आम तौर स ख्याल किया जाता है कि बारीक अक्षर पढ़ने से नेत्र कमजोर हो जाते है, यह बात गलत बतलाई गई है। यदि कोई रोज बारीक अक्षर आखो के नजदीक नित पढ़ा करे तो दृष्टि ठीक बनी रहेगी। बुढ़ापे मे भी ऐनक की जरूरत न पड़ेगी। बारीक अक्षर पढ़ते रहन से नेत्र पीड़ा जाती रहती है।

९. त्राटक क्रिया—अच्छी आँखो मे यह खूबी होती है कि किताब के जिस अक्षर या शब्द को देखता है वही ज्यादा काला औरो के बनिसबत होता है, इसके मानी यह है कि उनकी आखो मे त्राटक का तेज मौजूद है। जिन लोगो को यह बात प्रतीत नही होती और अक्षर या शब्द को देखते हैं वह कम काला या और अक्षरो के बराबर काला मालूम होता है इसके मानी ये है कि त्राटक तेज की कमी है। इस तेज की कमी से नेत्र पढ़ने मे जल्दी थक जाते है दृष्टि बराबर कम होती जाया करती है इस तेज को बढ़ाना चाहिये।

तरकीब—सूर्य व्यायाम के बाद आँखो पर हाथ ढको आँखें अन्दर बन्द रहें और हाथ इस प्रकार ढको कि उनका दबाव आँखों पर न पडे । पाँच मिनट तक हाथ ढको और किसी काली या सफेद वस्तु का ध्यान करो, इसको पामिङ्ग Palming कहते हैं फिर हाथ हटाकर हलके से आँख खोलो पलक झपको, सर को दायें बायें हलके हलके हिलाओ दृष्टि सफेद लाइनो पर घुमाओ। सफेद लाइन उसको कहते हैं कि जो दो लिखी हुई लाइनो के बीच मे होती है। इस तरह बिला पढने की कोशिश किये ८, १० सफे खतम करो किताब को उलटी रखने में प्रेकटिस करना अच्छा होता है क्योंकि पढ़ने की कोशिश कम हो जाती है। २, ३ दिन में यह महसूस करो कि सफेद लाइनो पर दृष्टि घुमते समय ऊपर के अक्षर और शब्द ज्यादा काले मालूम होते हैं। त्राटक तेज की बढाने की अनेक क्रिया 'त्राटक' नाम की पुस्तक १) अम्रेजी म से सीखी जा सकती है।

१०. रोज का अभ्यास—सूर्य व्यायाम लेकर पामिग करके पलक झपक झपक कर, सर को जरा हिलाकर पढने का दृष्टि पट (Reading test type) पढा करो। दृष्टि पट उस फासले पर रक्खो जहाँ से खूब साफ दीखता है फिर फासला जरा जरा कम करते जाओ।

यह ध्यान रक्खो कि यदि प्रेकटिस करन से आँखो मे या सर मे पीडा होती है तो इसके मानी यह हैं कि कुछ गलती कर गये ऐसी हालत मे आप मुझसे पत्र व्यवहार कर सकते हैं या Mind and vision नाम की पुस्तक से विशेष ज्ञान मिल सकता है।

इन अभ्यासों से अनेक रोगियों की दृष्टि पढने में तेज हो गई है ऐनक बिलकुल अलग हो गई है। एक ६० साल के बुड्ढे मनुष्य की दृष्टि ३ दिन में बारीक से बारीक अक्षर पढ़ने योग्य हो गई। अनेक ऐसे रोगी जिनको ऐनक भी मदद नहीं करती, अपनी दृष्टि बढ़ाने में सफल हो गये हैं।

# सुमन-संचय

## ( १ )

## कर्त्तव्य पालन

राजपूताने के इतिहास में देश प्रेम और स्वामी भक्ति की अनुपम मिसालें मिलती हैं। पन्ना धाय ने जैसा त्याग किया था वैसा कदाचित् ही कहीं अन्यत्र देख पडे। मारवाड़ के अपने अधिपति श्रीयुत यशवन्तसिंह के पुत्र अजीतसिंह को मुगल सम्राट् के चंगुल से जीवित बचा लाने और उसकी रक्षा शिक्षा के लिए कोई यत्न उठा न रखने में दुर्गादास की स्वामी भक्ति इतिहास की अनूठी वस्तु बनी हुई है। अजीतसिंह को सन्मार्ग पर लगाए रखने के लिए उन्हें जब तब उसकी भर्त्सना करनी पड़ती थी और वे ऐसा करने में ज़रा भी न हिचकिचाते थे।

समय आने पर अजीतसिंह गद्दी पर बैठा और उसने बड़े न्याय और कौशल से राज-कार्य किया। एक दिन उसने दुर्गादास को अपने पास बुलाया और कहा।

"आप प्रायः मुझ पर बड़ी सख्ती करते और मुझे मारते पीटते थे। आप मुझे राजकुमार समझते ही न थे। अब मैं आपके दुष्कृत्यों का दण्ड दूँगा। मैं आपकी समस्त सम्पत्ति जब्त करने की आज्ञा देता हूँ और यह भी आज्ञा देता हूँ कि आप हाथ में भिक्षा पात्र लेकर इधर-उधर भीख मांगा करें।"

दुर्गादास ने कुछ न कहा केवल ठण्डी श्वास ली और सिर झुका कर इस आज्ञा को शिरोधार्य किया। प्रजा को राजा के इस कृत्य पर बड़ा सन्ताप हुआ।

एक दिन राजा अपने सहचरो के साथ कही से राजमहल को लौट रहा था। मार्ग में उसने भिक्षा-पात्र लिए दुर्गादास को एक संभ्रान्त गृहस्थ के द्वार पर खड़ा देखा। राजा दुर्गा-दास के निकट गया और पूछा "कहो' इस भिक्षा-पात्र को हाथ मे लिए क्या सोचते हो।"

दुर्गादास ने उत्तर दिया "राजन्! मुझे प्रसन्नता है कि तेरी इस बड़ी नगरी में मैं ही अकेला गृह विहीन भिक्षुक हूँ जो हाथ में भिक्षा पात्र लिए भीख मांगता फिरता है जबकि तेरी अन्य प्रजा इन भव्य भवनों में निवास करती है। मुझे छोड़

कर सब के पास ही सिर ढकने के लिए छते हैं और वे सोने चांदी के बर्तनों में भोजन करते हैं। यदि मैंने तुझे अन्य प्रकार से शिक्षित किया होता और तेरी प्रवृत्तियों को सयत न किया होता तो कदाचित् मैं इन भव्य भवनों मे निवास और सोने चादी के पात्रों में भोजन करता परन्तु ये सब लोग अन्यायी राजा के अधीन इस समय तक भिखारी बन गए होते और इनके हाथों मे आज भिक्षा-पात्र होते। मेरे प्रिय शिष्य। क्या मैं इस पर प्रसन्न न होऊँ ?"

यह सुनते ही राजा घोडे पर से उतरा और दुर्गादास की छाती से चिपट कर बच्चो की नाई रोने लगा। दुर्गादास ने उसे चुमकार शान्त किया। शान्त होकर राजा ने घोषणा की।

'यद्यपि मेरे शिक्षक का उपदेश मेरे लिए ही है परन्तु इस घटना के आधार पर उसका सार मैं समस्त प्रजा के लिए प्रचारित करता हू और वह यह है कि हममे से प्रत्येक को निर्भयता पूर्वक अपने कर्त्तव्य का पालन करना चाहिए और अपने हित की अपेक्षा अन्यो का हित मुख्य समझना चाहिए। मैं अपने गुरु को पहले से अधिक सम्पत्ति और सम्मान मे सम्मानित करता हू।"

## ( २ )

## खुदा के बन्दों को मत सताओ

सर सैयद अहमद खा उन महा पुरुषो मे से थे जिनके महान् बनने का श्रेय उनकी माताओं को प्राप्त है। सर सय्यद की माता अपने पुत्र के आचार विचार और व्यवहार की छोटी से छोटी बात पर भी बडा ध्यान रखती थी जिनकी साधारण माताए पर्वा नही करती।

एक दिन सर सय्यद ने जब वे १२ वर्ष के थे किसी बात पर अप्रसन्न होकर अपने एक बूढे नौकर के थप्पड मार दिया। जब माता को इसका पता लगा तो उन्हें बड़ा क्रोध आया और उन्होने बालक सय्यद को नौकर से क्षमा मागने के लिए कहा। बालक सय्यद के ऐसा करने से इन्कार कर देने पर माता ने उसे घर से बाहर निकाल दिया और कहा 'तुम मेरे पुत्र कहलाए जाने योग्य नही हो।' पास पडौस के स्त्री पुरुषो ने माता को पुत्र का अपराध क्षमा कर देने के लिए बहुत कहा सुना पर वे राजी न हुई। निदान सर सय्यद की मौसी उसे अपने घर ले गई। १ सप्ताह मौसी के घर रहने के पश्चात् बालक सय्यद को अपनी भूल अनुभव हुई। वे अपने घर गए और चुपचाप माता के सम्मुख खडे हो गए। माता न बोलीं। बालक सय्यद ने माता के चरण छुए और रोकर कहा 'अम्मा! मेरी भूल को माफ करें। आगे ऐसी भूल न होगी।'

माता ने कहा 'जाओ बूढे नौकर से मुआफी मागो।' सय्यद अहमद नौकर के पास गए। नौकर ने उन्हे अपराधी की नाई अपने सामने खड़ा देखकर कहा 'मेरे मालिक! बैठ जाओ। अम्मा ने तुम्हे बड़ी सख्त सजा दी। तुम्हारे बिना घर काटने को दौड़ता था।' नौकर के इस व्यवहार को देख कर सय्यद अहमद की आखों मे आसू आ गए और फूट-फूट कर रोने लगे। माता ने पुत्र को छाती से लगाकर प्यार किया और कहा 'जाओ! आयन्दा ऐसी गलती मत करना। ये नौकर भी खुदा के बन्दे हैं। खुदा के वन्दो को सताना खुदा का सबसे बड़ा क़सूर करना है जिसकी सख्त से सख्त सज़ा मिलती है।'

## ( ३ )

## संन्यासी

कोशल देश मे वेहलिंग नामक एक क़स्बा था। उसमे घटिकार नाम का एक कुम्हार रहता था। उसके माता पिता अधे थे। वह रात दिन अपने माता पिता की सेवा मे लगा रहता था। त्यागी इतना था कि दीन दुखियों को अपना सब कुछ अर्पण कर देने में उसे तनिक भी झिझक न होती थी। किसी को कष्ट देना वह जानता ही न था।

घटिकार का एक मित्र था। उसका नाम था जोतिपाल। दोनों मे बड़ी मैत्री थी। एक दिन घटिकार के कानों में आवाज़ पड़ी श्रमणकश्यप वेहलिंग के समीप ही एक वाटिका में निवास कर रहे हैं। कश्यप का नाम सुनते ही घटिकार के हृदय की श्रद्धा उबल पड़ी। उसने जोतिपाल से कहा 'योगी कश्यप पास ही की वाटिका में निवास कर रहे हैं। चलो उनका दर्शन कर आये।

'जाने भी दो घटिकार।' जोतिपाल ने उत्तर दिया। मुण्डक सन्यासी के दर्शन करने से होता है क्या?

मगर घटिकार कब मानने लगा। वह स्नान करने के बहाने जोतिपाल को योगी कश्यप के पास ले गया। दोनों कश्यप को आदर सहित प्रणाम करके बैठ गए। कश्यप ने दोनों की ओर दृष्टिपात करके कहा 'क्या है भाई, कहाँ चले।'

'महाराज'—जोतिपाल ने उत्तर दिया। मेरा मित्र घटिकार आपका उपदेश सुनना चाहता है।

कश्यप ने घटिकार की ओर आख उठाई। उन्होंने दोनों को उपदेश दिया। जोतिपाल कश्यप के उपदेश से ऐसा प्रभावित हुआ कि उसने संन्यास ग्रहण कर लिया।

जोतिपाल ने कश्यप के पास से लौटकर मार्ग में कहा 'घटिकार! आश्चर्य है। योगी के उपदेशों को सुनकर भी आप अब तक संन्यासी न हुए। क्या तुम्हारे हृदय पर उनके उपदेशों का कुछ भी प्रभाव न पड़ा।

घटिकार ने उत्तर दिया 'ऐसी बात नहीं है।' कश्यप की अमृत वाणी ने मेरे हृदय पर काफी प्रभाव डाला है परन्तु मेरे लिए तो अन्धे माता पिता की सेवा ही सन्यास है। मैं अपनी उसी सन्यास वृत्ति में प्रसन्न रहता हू।''

जोतिपाल चुप हो गया और कश्यप के साथ बनारस चला गया। वहा योगी कश्यप का प्रिय शिष्य राजा किकि था। उसने योगी की बडे प्रेम और श्रद्धा से सेवा की और एक वर्ष तक बनारस में रहने की प्रार्थना की। परन्तु योगी राजी न हुए। उसकी अनुनय विनय और आग्रह सब व्यर्थ गए। इससे राजा को दुख हुआ? उसने दुखी, उदासीन और कुछ चचल होकर कहा —

'भगवन्! क्या मुझसे भी बढकर ससार में आपका कोई सेवक है?'

कश्यप ने उत्तर दिया 'हा राजन्! आपसे भी बढकर मेरा एक प्रिय सेवक है। वह वेहलिंग गाव का रहने वाला है। उसका नाम घटिकार है। जाति का कुम्हार और मुझसे बढकर हो। किकि के मन म एक ईर्ष्या सी जाग्रत हो उठी। कश्यप ने उनके मन का भाव ताड कर कहा 'राजन्! आश्चर्य करने की बात नहीं। घटिकार सचमुच एक असाधारण पुरुष है।

कुछ दिन हुए मैं उस समय वेहलिंग गाव के समीप एक उपवन में रहता था। बरसात का समय था। भीषण वर्षा के प्रकोप से मेरी गध कुटी चूने लगी। मैंने भिक्षुओ को आदेश दिया जाओ घटिकार की झोंपडी उखाड लाओ। उस समय घटिकार ने अपनी झोंपडी बिल्कुल नई तैयार की थी।

घटिकार अपनी झोपडी से कही बाहर गया हुआ था। उसके अन्धे माता पिता झोपडी में सुख से सोए थे। भिक्षुओं ने पहुच कर उसकी घास फूस की झोपडी उजाडनी शुरू की। अन्धों ने आवाज लगाई 'कौन' भिक्षुओं ने उत्तर दिया कश्यप की गध कुटी चू रही है।'

अन्धों ने प्रसन्नता से ललक कर कहा 'ले जाओ भाई, ले जाओ। गध कुटी के चूने से योगिराज को कष्ट होता होगा।

घटिकार जब घर लौटा तब उसे यह हाल मालूम हुआ। वह सुनकर बडा प्रसन्न हुआ। घटिकार का यह त्याग क्या बडा नहीं है राजन्!

किकि ने उत्तर दिया 'सचमुच भगवन्! घटिकार बहुत बडा पुरुष है।'

राजा ने प्रसन्न होकर घटिकार के पास गाडियों पर लदवाकर अतुल सम्पति भेजी और उससे यह सप्रेम निवेदन किया कि तुम मेरे इस उपहार को खुशी से स्वीकार करो। घटिकार ने वह सम्पत्ति स्वीकार न की और कहला भेजा 'राजन्! मुझे यह न चाहिए। इसकी शोभा तो राज कोष में ही होगी।'

घटिकार के इस त्याग को देखकर राजा आश्चर्य चकित रह गया।

# Hindu Philosophy and Modern Sciences

[ *By*—Rai Bahadur Ram Chandra MAPES Retired ]

( *Continued from page 247* )

**7. That and This, Chain of Causes and Effects.** This Ultimate cause is designated as 'That in the lines heading this Chapter, while the whole Universe consisting of innumerable galaxies, known and unknown, past, present and future, as "This . Both That and This are infinite, the former, viz, 'That , the Ultimate Cause in the absolute sense of the term, viz, having no beginning or ending or any fixed position, and the latter, viz, 'This , the effect, in a relative sense only This, 'Effect', in its turn, is the cause of innumerable effects, and the latter of thousands of others, and so on adinfinitum In short "That" is the Ultimate cause, unknown and unknowable, while This is both cause and effect, viz, both causes and effects of all kinds, an infinitely long chain of causes and effects, each link or species of the chain being regarded as the effect of the preceding link, the aggregate being the galactic universes past, present, and future, but taken as a whole as One, 'This', the effect of 'That' In other words, the word 'This' covers here all the objects, including all kinds of events, phenomena and entities, that we find in Nature and all that may ever come under our observation and experience, and further, that these events, phenomena and entities are not only effects of certain causes, but causes also, in their turn, of certain other effects.

**8. Ultimate Cause** The investigation of truth and knowledge generally begins with the assumption of a few self evident truths or facts called axioms, postulates etc., and these latter are based on certain theories which try to explain, in the empirical stage, the existence of events, phenomena

and entities of all kinds which we observe and experience in our daily life *Existing*, being or existence as opposed to void is the first thing admitted by all We all know, the world exists, all the objects in the world exist, we ourselves exist There may be all kinds of theories about the existence of other objects, but no body, when in his normal senses, denies his own existence *He is quite sure of his own existence chiefly because he himself is ' directly or rather subjectively conscious of the fact ' irrespective of other people's corroboration or denial of that existence of his The conception of existence must precede belief in any object*

9 **Consciousness** As regards other objects, some of them are conscious of their individual existence while others are evidently not, at least from our point of view, as based on the evidence of the senses So all the objects that we find in the Universe fall under two catagories, viz, conscious beings and non-concious beings ( entities, existences ) For the sake of facility of constant reference in popular language, the words conscious and consciousness may be regarded as interchangeable with the terms intelligent and intelligence, although the latter are mere states or conditions of the former *Thus to start with a working hypothesis we can trace all the objects of the Universe to two ultimate causes viz non intelligent existence and intelligent existence* Since non-intelligent is not a positive attribute, it can be omitted, leaving only two ultimate Principles, viz, (a) 'Existence' and (b) 'Intelligent or rather Conscious Existence', existence being common to both (a) and (b).

( *To be Continued* )

# Apprehension of Collapse of European Civilization.

[ By—Rama Nand Chatterjee ]

We wish with all our heart that Britain would remain a free nation at the end of the war, as she is at present, though we do not in the least desire that India should remain one of her dependencies now or at the end of the war Irrespective of Britain s past and present dealings with India, we wish the British people continuous enjoyment of freedom and prosperity We have no feeling of revenge such as would lead one to wish that she should taste the bitter cup of misery and humiliation resulting from subjection to some foreign power.

It is not only the British people to whom we wish well Our hope and wish is that all the peoples of Europe who are now under the heels of the Nazis would regain their freedom We desire that even Germany and Italy would remain free nations, but without the desire and the power to enslave, exploit and tyrannize over other peoples

But what the future has in store for Europe nobody knows. Our wishes count for nothing It may be that the mutually destructive war efforts of the belligerent parties would involve them in one common ruin, and that would spell the collapse of what is called "European civilization' But would that be an *irretrievable disaster* ? Let us look at the matter from the non-Europeans' point of view

*European "Civilization" and America Asia and Africa*

In the days of the Buddha, of the Rishis of the Upanishads, of Confucius and Lao-tze and of Jesus, neither they nor their disciples and other countrymen of theirs had any of the modern paraphernalia of civilization. Not to speak of

the luxuries and comforts of the modern man, they did not possess even many of the things which we consider necessaries. Were these Great Ones then uncivilized ? No thinking man can say they were savages or barbarians No, they were highly civilized Why ? Because they taught and had supreme regard for the ideals of truth, justice, right and humanity.

Non-Europeans would judge European nations and their "civilization" not by their dress and the paraphernalia of modern existence but by what regard they had for the ideals of truth, justice, right and humanity.

The European peoples who conquered the original inhabitants of America settled in different parts of that continent by almost exterminating those luckless tribes by methods and means which, to say the least, would bear no examination.

Similar is the record of European "civilization" in Australasia Almost all aboriginal tribes have there disappeared from the face of the earth except the Maoris, whose number, however, was greatly reduced

Though the black man has not been totally or almost entirely exterminated in Africa, the number of the Negroes has been very greatly reduced, they have been dispossessed of their land, and, except in the small republic of Liberia, nowhere are the Negroes possessed of the same rights as the white settler. The most abominable and agelong crimel of which the exponents of European civilization have been guilty in Africa is that Negro men, women and children were forcibly taken away from their homes, packed like sardines in ships, taken to America, sold into slavery there, and treated worse than cattle. It took America a terrible civil war to abolish slavery

In Asia the various European nations who have territorial possessions here, have not been able to make any attempt to exterminate the people of any country or part thereof But the policies of the ruling European peoples in the different countries which they have kept under subjection have not been characterized by regard for justice and humanity.

We do not mean to say or to suggest that in no country in America, Australasia, Africa and Asia has any individual European shown in his attitude towards the natives of the country and his dealings with them that he is civilized at heart and pays heed to the dictates of truth, justice, right and humanity. No, in all these continents there have been individuals of European extraction who have acted and behaved as a truly civilized human being ought to.

Nor do we mean to say or suggest that in no non-European country, under the rule of some European country or other, has the foreign European government passed any law or adopted any measure such as one would expect of a truly civilized government. No there have been many such laws and measures. They reduced the irksomeness and oppressiveness of the yoke of the stranger and were calculated to perpetuate or at least prolong these foreign rules. But the fundamental policy of the European governments in non-European countries acquired by violating the teachings of the Sermon on the Mount, has been opposed to any truly civilized ideal and has been characterized by greed and predatoriness.

In all these European-ruled non-European countries the people have become emasculated owing to the military policy of their foreign governments, and, as Rabindranath Tagore says in *Crisis in Civilization* that mastery over the machine by which these European imperialists have consolidated their sovereignty over their non-European subjects, has been practically kept a sealed book to them. And they have been kept largely illiterate too.

For these reasons, possibility of the ruin of the European "civilization" of which we non-Europeans have tasted the fruit, does not stagger us. Should it be totally wrecked, a real civilization such as the Buddha, the Upanishadic Rishis, Confucius and Jesus would have approved of would rise from its ashes. Human nature is greater than "civilized" European nature. The collapse of European "civilization" would not make human nature bankrupt.




## दहेज निषेध दिवस—

कार्य कारिणी सभा ने निश्चय किया है कि रविवार ३१ अगस्त को भारत भर की समस्त आर्यकुमार सभाएँ अपने अपने स्थानों पर दहेज दिवस मनावें। इस दिन वे एक जलूस निकालें तथा जलसे करें जिसमें परिषद् द्वारा स्वीकृत प्रस्ताव पास करे और दहेज प्रथा के विरुद्ध जोरदार भाषण करावें।

गत आन्दोलनों की भांति इस बार भी परिषद् ने एक ट्रैक्ट तथा कारटून तैयार किये हैं। ट्रैक्ट भारत के प्रख्यात पं० नारायणप्रसाद जी बेताब ने इस अवसर के लिये विशेष रूप से लिखा है। इसमें दहेज प्रथा को जोरदार युक्तियों से काटा गया है। ट्रैक्ट को एक बार पढ़ लेने पर ही दहेज लेने वालों को दहेज से ऐसी घृणा उत्पन्न होगी कि वे उसे लेने का दुस्साहस न करेंगे।

> **भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् की परीक्षाएँ**
>
> यह परीक्षाएँ कई वर्ष से सफलता के साथ चल रही हैं। जब से इस कार्य को श्री प० देवव्रतजी धर्मेन्दु ने अपने हाथ म लिया है, तब से इन परीक्षाओं का स्वरूप और भी उन्नत हो गया है। पाठ विधि नई सिरे से बनाई गई है। उसम उपयोगी ग्रन्थों के समावेश से इनकी उपयोगिता और भी बढ गई है। उनके नाम भी अच्छे रख दिये गये हैं। आशा है कि इन से लोग अधिक से अधिक लाभ उठावेंगे।
>
> ३—७—४१ —नारायणस्वामी

ट्रैक्ट, कारटून, मोटो तथा हैवड-बिल शीघ्र ही छपकर तैय्यार हो जावेंगे। आप लौटती डाक से लिखें कि आपको कितनी संख्या में भेजे जावें। ट्रैक्ट तथा कारटून लागत मूल्य पर मिलेंगे जो अनुमान से दो पैसा प्रति ट्रैक्ट तथा कारटून होगी। मोटो तथा हैण्ड बिलों का कुछ देना न होगा। इसलिए आप आर्डर के साथ ट्रैक्ट व कारटून का मूल्य भी भेजने की कृपा करें।

**उन्नति की ओर—**

आर्यकुमारों तथा आर्य-पुरुषों ने "उन्नति की ओर" पुस्तक को बहुत ही पसन्द किया। इसकी कुछ ही प्रतियाँ शेष बची हैं, इसलिए इसके द्वितीय संस्करण का संपादन आरम्भ हो गया है और पुस्तक संशोधित रूप से शीघ्र ही छपकर तैय्यार हो जावेगी। जो आर्यकुमार सभाएं परिषद् मे नई सम्मिलित हुई हैं तथा अन्य कुमारसभाएँ भी अपने संक्षिप्त विवरण हमें शीघ्र भेजद् ताकि वे पुस्तक मे छापे जा सके।

**व्यायाम के लिए लाभकारी पुस्तक—**

परिषद् ने पण्डित देशबन्धु जी विद्यालंकार से ऐसी पुस्तक लिखने की प्रार्थना की थी जो युवकों को व्यायाम करने में पथ-प्रदर्शक हो। पं० जी की यह पुस्तक परिषद् की कार्य-कारिणी ने प्रकाशित करने का निश्चय किया है।

**साक्षरता प्रचार—**

यह सम्मेलन आर्यकुमार सभाओं से अपील करता है कि देश में साक्षरता फैलाने के लिए वर्ष मे दो सप्ताह के लिये अपने अपने स्थानों पर आन्दोलन करें। और उन दो सप्ताहों में अनपढ़ व्यक्तियों को अधिक से अधिक आर्य-भाषा का ज्ञान करावें।

उपरोक्त प्रस्ताव भारतवर्षीय आर्यकुमार सम्मेलन इन्दौर के अवसर पर पास हुआ था। देहली व पंजाब के कुमारों व कुमारसभाओं को इसको कार्यरूप में परिणत करने का यह अच्छा अवसर है, क्योंकि यहां के स्कूल व कालिजों मे गर्मियों की छुट्टियाँ आरम्भ हो रही हैं। पजाब की सभाओ व युवकों से अनुरोध है कि प्रोग्राम बनाकर इन छुट्टियों में कम से कम दो सप्ताह गावों में जाकर अथवा शहरों में ही अपने गरीब व अनपढ़ भाइयों को साधारण हिन्दी का ज्ञान कराने में लग जावें, इस गरीब अनपढ देश में लिखना व पढ़ना जानने की कितनी आवश्यकता है, यह बताने की जरूरत नहीं है।

अपने काम की रिपोर्ट प्रान्तिक परिषद् व भारतवर्षीय परिषद् के दफ्तर मे जरूर भेजें।

—o—

## आर्य कुमार सभा, चित्तौड़ गढ़

इस सभा की स्थापना १२ जून १६४१ को पूज्य श्री स्वामी व्रतानन्द जी महाराज आचार्य गुरुकुल चित्तौड़ गढ़ ने की। इस सभा के २० सदस्य हैं, इस सभा के सदस्य गुरुकुल के विद्यार्थी हो हैं। ब्र० सत्यवीर जी प्रधान और इन्द्रदेव जी मन्त्री हैं।

## आर्य युवक सभा, काशी

इस वर्ष जिला मजिस्ट्रेट ने इस सभा का जलूस बन्द कर दिया है। इसका कारण जिला मजिस्ट्रेट ने यह बतलाया है कि इससे शान्ति भग का अंदेशा है और अप्रचलित है यह जलूस प्रतिवर्ष निकलता रहा है इस का रिकार्ड भी दिखलाया गया। लेकिन कोई सुनवाई नही हुई, और दूसरे शान्ति भग इस के लिये जिला मजिस्ट्रेट को प्रबन्ध करना चाहिये था, यह जिला मजिस्ट्रेट का धार्मिक मामलो में अनुचित हस्तक्षेप है।

## आर्य कुमार सभा देवास, सीनियर

इस सभा का परिषद् कार्य नियमानुसार चल रहा है, इस के १६ सदस्य हैं। मन्त्री श्री शंकरलाल जी अच्छा कार्य कर रहे हैं।

## आर्य कुमार सभा, निलंगा

यह सभा अभी स्थापित हुई है, और परिषद् के नियमानुसार कार्य करने में यत्नशील है।

## आर्य कुमार सभा, खुसरुपुर

यह कुमार सभा अच्छी आर्य कुमार सभाओं मे है, इस सभा का कार्य परिषद् के नियमानुसार चलता है, इस वर्ष का निर्वाचन इस प्रकार है।

प्रधान जगदीशप्रसाद जी, उप प्रधान रामनारायण लाल जी, मन्त्री देवप्रसाद विद्यार्थी, उपमन्त्री वीरेन्द्र कुमार जी, कोषाध्यक्ष द्वारिकाप्रसाद जी, पुस्तकाध्यक्ष रामेश्वर प्रसाद जी हैं।

## आर्य कुमार सभा, खंडवा

यह सभा नियमपूर्वक चल रही है, इसका अपना पुस्तकालय भी है, ग्रामों में वैदिक धर्म का प्रचार करते हैं, साक्षरता प्रचार मे खूब दिलचस्पी से कुमार भाग ले रहे हैं, धार्मिक परीक्षाओं मे कुमारों ने विशेष रूप से भाग लिया है।

## आगामी आर्य कुमार सम्मेलन

आगामी भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन कानपुर में सम्भवतः दशहरा या दिवाली की छुट्टियों में होगा।

## बिहार प्रान्तीय आर्य कुमार सम्मेलन

प्रान्तीय आर्य कुमार परिषद् के आदेशानुसार तथा वर्षा ऋतु के कारण तथा अन्य ज़िला के पथ रने वाले सज्जनो की कठिनाइयो को ध्यान में रखते हुवे सम्मेलन, १२, १३, १४ जुलाई को जैसा पहिले घोषित किया गया था न होकर सितम्बर मास के अन्तिम सप्ताह में होगा।

—o—

## पाठविधि में आवश्यक संशोधन

भारतवर्षीय आर्य्यकुमार परिषद् की परीक्षा समिति ने अपने ४ जुलाई १६४१ के अधिवेशन मे परीक्षाओ को पाठविधि में कुछ आवश्यक संशोधन किये हैं जो निम्न रूप से हैं:—

१—सिद्धान्त रत्न परीक्षा से पूर्व "सिद्धान्त सरोज" नाम की एक नई परीक्षा नियत की गई है जिसका शुल्क ॥। आने होगा। इस परीक्षा मे निम्न प्रकार से दो प्रश्न पत्र होंगे:—

### धर्म

| प्रथम प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) धार्मिक शिक्षा भाग १, २, | आर्य्य साहित्य मण्डल अजमेर | ( अङ्क ५० ) |
| (२) धार्मिक शिक्षा भाग ३, | आर्य्य साहित्य मण्डल अजमेर | ( ,, ५० ) |

### साधारण ज्ञान

| द्वितीय प्रश्न पत्र | पूर्णाङ्क १०० | समय ३ घण्टे |
|---|---|---|
| (१) आर्य्यसमाज के उज्ज्वल रत्न, | आर्य्य साहित्य मण्डल अजमेर | ( अङ्क ३० ) |
| (२) हमारे स्वामी | स्वर्गीय पं० चमूपति जी M. A. कृत | ( ,, ३० ) |
| (३) हिन्दुस्तानी शिष्टाचार, | इण्डियन प्रेस इलाहाबाद | ( ,, २० ) |
| (४) साधारण ज्ञान का निबन्ध | | ( ,, २० ) |

२—सिद्धान्त रत्न परीक्षा का तीसरा प्रश्न पत्र निकाल दिया गया है। वह परीक्षा अब केवल धर्म और सिद्धान्त इन दो प्रश्न पत्रों में ही होगी।

३—सिद्धान्त शास्त्री परीक्षा के तीसरे प्रश्न पत्र में श्री महात्मा नारायण स्वामी जी कृत भाष्य ८ उपनिषदें ही होंगी। नवीं व दसवीं उपनिषद् का अनुवाद न होने के कारण उन्हे इस परीक्षा से हटा दिया गया है।

—— ——

# दक्षिण कन्नड जिले में आर्य समाज का प्रचार

अप्रैल, मई, जून इन तीन महीनो में मंगलोर, उडुपी, कार्कला, पुत्तूर, कासरगोड, हिरियडक, कुम्बला, मंजेश्वर, शिवमोगा, तीर्थहल्ली, भद्रवती, इत्यादि शहरों और गाँवों में श्री पं० मंजुनाथ जी उपदेशक ने भ्रमण करके भाषणों, सिद्धांत की पुस्तकों का प्रचार, वाद विवाद, शंका समाधान आदि द्वारा समाज का प्रचार किया। जनता में आर्य समाज तथा वैदिक धर्म के प्रति प्रेम और जागृति काफी हो रही है।

## शुद्धि समाचार

ता० १० जून १९४१ ई० मंगलोर आर्य समाज मन्दिर मे एक उत्साही प्रोटे-स्टांट ईसाई युवक का सत्कार हुआ। वे उत्तर कन्नड के श्री बजमोन पाटील के पुत्र थे, और उनका नाम अलेक्जांडर था। अब श्री धर्मवीर रखा गया है। शुद्धि के बारे मे जन जागृति धीरे २ बढ़ रही है।

## दक्षिण कन्नड जिले में वर्षा की बाढ से सैकड़ों किसानों की दुर्दशा

१० जून १९४१ की रात को कार्कला तालुक के बेलूर गांव की नदी में बाढ आने से नदी के किनारे के सब व्यापारियों के और किसानों के घर बार आदि का बहुत नुकसान हुआ है। कार्कला, मंगलौर, कासरगोड, इन तीन तालुको मे उसी नदी के किनारे के सब गावों मे हानि पहुँची है। कांग्रेस कमेटी, सरकार तथा अन्य सब सज्जन मिलकर रिलीफ कमेटी के द्वारा चावल कपड़े आदि बांट रहे हैं। प्रायः नदी के किनारे की सारी खेती रेती के नचे दब गया है। कई आदमी और जानवर भी मर गये हैं। इसलिये कमेटी ने तय किया है कि बाढ़ से पीड़ित लोगों को तीन महीने तक सहायता पहुँचानी चाहिये। उपर्युक्त दशा में हमारे दक्षिण कन्नड के उपदेशक श्री पं० मंजुनाथ जी ने भी रिलीफ कमेटी के स्वय सेवकों को अपना हार्दिक सहयोग देकर कई गाँव में जाकर दुःखित लोगों को सांत्वना देकर, जनगणना की एक सूची तैयार कर कमेटी को सुपुर्द किया। इस सम्बन्ध मे ईसाई पादरीयों के फदे में पड़ने वाले भोले भाले लोगो को बचाने के लिये भी उन्होंने प्रयत्न किया।

केशवरामचन्द्र
मन्त्री, आर्य समाज कार्कला, दक्षिण कन्नड।

# पं० मदनमोहन विद्याधर का जून मास में *आन्ध्र देश का कार्य*

**नेल्लूर—** कुछ मास पूर्व नेल्लूर में आर्य समाज की स्थापना की गई थी। उस समाज के उत्साही कार्यकर्ता श्री अन्नदाता आदि नारायण प्लीडर, मन्त्री श्री प्रकाशराव, प्रधान श्री चलपतिराव जी तथा अन्य मित्रों के उत्साह से २८ मई को नेल्लूर में एक आर्य महासभा का आयोजन किया गया, जिसका उद्देश्य नेल्लूर मे आर्यसमाज के संगठन को दृढ़ बनाना था। उसके सभापति श्री पं० शिवचन्द्र जी आर्य-प्रचारक मदुरा थे। २८ की प्रातः एक बृहत् जलूस निकला, जिसमे १० सहस्र नर-नारियों ने भाग लिया। फिर टाउनहाल मे एक वृहत सभा हुई। जिसमे कई महानुभावो ने भाग लिया।

**गुडूर—** यहां का कार्य समाप्त करके श्री पं० म० मो० वि० गुडूर चले गये वहाँपर श्री साम्बशिवराव जी की सहायता से एक नई समाज की स्थापना की गई।

**कूचिपूडि—** ३ तथा ४ जून को आर्य समाज कूचिपूडि समाज का उत्सव था। उसमें श्री पं० गगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पं० धमदेव जी विद्यावाचस्पति, श्री पं० म० मो० वि०, श्री पं० केशवार्य, श्री पं० रुद्रदेव जी, श्री सुवाराव्जी, श्री पं० लक्ष्मी नारायण जी आदि महानुभावों ने भाग लिया। चारो तरफ के ग्रामों से सहस्रो नर-नारियो ने इस मे भाग लिया। जनता पर इसका बहुत ही अच्छा प्रभाव पड़ा। ईश्वर-पूजा कैसे करें? वैदिक धर्म क्या है? आर्यसमाज की क्या आवश्यकता है? जन्मगत वर्ण-व्यवस्था की हानिया आदि विषयों पर प्रकाश डाला गया। साथ ही श्री राजाराव जी ने जोकि गुरुकुल गोरखपुर मे कार्य कर चुके हैं धनुषवाण के खेलों का प्रदर्शन भी किया।

स्थानीय समाज के प्रत्येक सदस्य ने इस में उत्साह पूर्वक भाग लिया। बाहर से आने जाने वालों के भोजन का प्रबन्ध ग्राम वासियों ने किया था। इसका सारा श्रेय पं० गो० वे० जी को है जो आजकल अपना सारा समय समाज की सेवा मे निष्काम भाव से दे रहे हैं।

पुनः ६, १० जून को कूचिपूडि मे श्री गोपराजू रामचन्द्र राव एम० ए० से श्री पं० म. मो. वि जी ने शास्त्रार्थ किया। उपरोक्त महानुभाव ईश्वर मे विश्वास नहीं रखते। ईश्वर की सत्ता के विषयमे ५ घण्टे तक शास्त्रार्थ हुआ। शास्त्रार्थ रात्रि के दो बजे तक चलता रहा। इसका भी जनतापर बहुत अधिक अच्छा असर पड़ा।

**तेनाली—** ५—६ को आ० स० तेनाली का प्रथम वार्षिकोत्सव किया गया, जिसमें श्री पं० गो० वे० जी, श्री पं० गंगाप्रसाद जी उपाध्याय, श्री पं० धर्मदेव जी तथा श्री पं० रुद्रदेव जी, श्री पं० केशवार्य जी, श्री शंकरराव जी आदि २ महानुभावों ने भाग लिया।

चिराला—२२ से २५ जून तक श्री पं० म० मो० वि० ने यहां पर आर्य-समाज के प्रचार का कार्य किया। इसमें श्री कर्मवीर रामेश्वर राव तथा श्री प्रधान जी पंचायती बार्ड चिराला ने विशेष सहायता की। यहां पर यदि पुनः प्रचार किया जावे तो आसानी से समाज खुल सकती है।

विवाह— इस मास में १० विवाह वैदिक पद्धति से कराये गये। जिन में से विशाखपट्टनम् में किया गया विवाह विशेष स्थान रखता है। इस विवाह में बहुत बड़े २ महानुभाव पधारे थे। सभी ने विवाह पद्धति को अत्युत्तम स्वीकार किया। पोनो कल्लू, पैमार्स, कूचिपडि, रेपल्ले, पालपर्स आदि स्थानों पर विवाह कराये गये। श्री प० गो० दे० जो, श्री प० लक्ष्मीनारायण जी, श्री पं० रामकृष्णैय्या जी, श्री राजाराव जी, श्रो सोमसुन्दरम जी आदि ने इनके करवाने में विशेष सहायता दी। इस पद्धति का प्रचार करने के लिये कईयों को शिक्षित किया जा रहा है। यदि कोई महानुभाव कुछ द्रव्य दे तो संस्कार विधि को तेलगू में प्रकाशित करके इस कार्य को अधिक व्यापक बनाया जासकता है।

# शुभ-दान

श्री राय बहादुर गगा प्रसाद जी के सुपुत्र डा० प्रकाश स्वरूप M. B. B. S. का विवाह श्री डा० निहालकरण सेठी D.S C. प्रोफेसर आगरा कालिज की सुपुत्री श्री सुभद्रा सेठो M. B. B. S. के साथ ३ जुलाई १९४१ को आगरे मे वैदिक रीति से हुआ। उस अवसर पर राय ब० गगा प्रसाद जी ने जो दान दिया उसकी सूची इस प्रकार है:—

| | |
|---|---|
| सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को | १००) |
| आर्य प्रतिनिधि सभा युक्त प्रान्त को ( हरिजन प्रचारक शिक्षण पाठशाला के लिये ) | १००) |
| दयानन्द अनाथालय आगरा | ५०) |
| आर्यकन्या पाठशाला आगरा | ५०) |
| आर्यकन्या पाठशाला मेरठ | २०) |
| महिला दस्तकारी स्कूल मेरठ | २५) |
| गुरुकुल डौरली ( मेरठ ) | १५) |
| हरिजन कुमार आश्रम | १५) |
| वैश्य अनाथालय | १५) |
| रस्तोगी पाठशाला | ५) |
| रस्तोगी धर्मशाला | ५) |
| दीन छात्र सहाय सभा टिहरी | २०) |
| पार्वती आर्य कन्या पाठशाला बदायू | २०) |
| विरक्त आर्य आश्रम ज्वालापुर को (भोज तथा औषधालय के लिये) | ४०) |
| फुटकर दान | २०) |
| योग | ५००) |

## आर्य प्रति० सभा पंजाब के प्रधान रा० ब० दीवान बद्रीदास ऐडवोकेट का

# लोहारू कांड पर वक्तव्य

"आज मुझे फिर लोहारू कांड पर एक वक्तव्य प्रकाशित करने की आवश्यकता मह सूस हो रही है। आर्य प्रतिनिधि सभा को पता चला है कि लोहारू के अधिकारियों ने निर्दोष आर्य समाजियों पर हमला करने वालों को पकड़ने के बजाय वहाँ क आर्य समाजियों पर ही फौजदारी का दावा दायर कर दिया है। लाहौर में प्रतिनिधियों की एक खास बैठक बुलाई गयी और उसमें निम्न प्रस्ताव पास किया गया —

लोहारू में आर्य समाजियों के शान्त और पुलिस की निगरानी मे निकल रहे जलूस पर थाने के पास मुसलमानों ने जो हमला किया, उसकी आर्य समाजियों की यह सभा निन्दा करती है। जलूस निकालने की आज्ञा भी ले ली जा चुकी थी। इस पर हमला करने से आर्य सार्वदेशिक सभा दिल्ली के प्रधान स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी महाराज आदि ४० से भी ज्यादा आर्यसमाजी जख्मी हो गये। स्थानीय आर्यों के साथ भी कठोर व्यवहार किया गया बताते हैं।"

लोहारू के जिन लोगों पर अभियोग चलाया गया, उनकी सफाई का प्रबन्ध सभा ने किया। वायसराय के एजेण्ट को भी एक पत्र लिखा गया। हिसार के कौंसिल से लो हारू म अभियुक्तों की ओर से सफाई देने की प्रार्थना की गई। दिल्ली म भी एक कमेटी बनाई गई, जिसका काम मामले के बारे म तहकीकात करना था।

२६ अप्रैल १६४१ को बख्शी रामकृष्ण एडवोकेट, लाला सुखदेव वकील हिसार और लाला सत्यभूषण वकील डेरागाजी खा लोहारू गये। व अभियुक्तो और दीवान साहब से मिले वे हस्पताल म घायल आर्य समाजियो से भी मिले। ला० सत्यभूषण ने सभा को इत्तिला दी कि दीवान साहब अभियुक्तों पर से मुकदमा उठाने को तैयार हैं, उन्होंने निम्न शर्तें मान ली हैं —

(१) ला० नाथूराम और ठाकुर रतनसिंह को फौरन ही जमानत पर रिहा कर दिया जायगा।

२) ला० नाथूराम व ठाकुर रतनसिंह जो इस समय बतौर विचाराधीन बन्दी के लोहारू जेल म बन्द हैं, उनक खिलाफ, तथा भागे हुए अभियुक्त ठा० भक्तसिंह, ठाकुर चानूसिंह, ठाकुर रिसालसिंह, चौधरी हुक्मीराम चौधरी गोपाल और चौधरी गङ्गासहाय पर से मुकदमे उठा लिये जायँगे।

ताजीरात हिन्द की दफा ३२३, १४७ व ४५३ १४७ के मातहत तहसीलदार लोहारू

की कचहरी में और दफा ८७-८८ के मातहत मजिस्ट्रेट दर्जा अव्वल की अदालत मे जो दो मुकदम चल रहे हैं वे मन्सूख कर दिए जायँगे। बख्शी रामकृष्ण अथवा युद्ध समिति का कोई भी सदस्य ११ मई १९४१को अदालत म हाजिर होगा और उसके सामने मुकदमे उठा लिये जायगे और सब तरहकी कार्यवाही बन्द कर दी जायगी।

(३) आर्य समाजको लोहारू मे धर्म प्रचार करने की पूरी आजादी होगी। वह आर्यसमाज मदिर तैयार कर सकगा, सालाना जल्सा कर सकेगा, नगर कीर्तन के जलूस निकाल सकगा और तमाम न्यायोचित साधनों से अपनी धार्मिक शिक्षाओं का प्रचार कर सकेगा। दरबार इस सम्बन्ध मे यथा सम्भव शीघ्र ही घोषणा करेगा।

(४) रियासत के कर्मचारी आर्यसमाज के काम मे प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में किसी किस्म की बाधा उपस्थित न करेंगे।

(५) २९ मार्च १९४१ की घटना को लेकर आर्यसमाजी अखबारों म जो आन्दोलन किया जा रहा है, उसे आर्य समाज बन्द कर देगा।

(६) जबानी तौरसे यह भी फैसला हुआ कि युद्ध समिति के प्रधान व मन्त्री यदि चाहेंगे तो रियासत क उन कर्मचारियों के खिलाफ उचित कार्यवाही की जायगी, जिन्होंने हमले के समय अपने कर्तव्यका पालन नहीं किया था।

सभा से यह पूछा गया कि क्या वह इन शर्तों को मजूर करनेके लिये तैयार है? सभा ने अपनी स्वीकृति बख्शी रामकृष्ण के पास भेज दी। मुकदमा उठ जाने के बाद अभियुक्तों को जमानत पर हवालात से मुक्त कर

---

**German Lady converted to Hinduism**

Today in the Arya Samaj ( Central ) Madras Miss Anna Niessl of Vienna Austria aged 28 years belonging to Roman Catholic faith was converted to Hinduism by Shuddi ceremony under the Arya Samaj rites After conversion her name was changed into Maya Devi She was dressed in saree after the Parsee fashion

Later she was married to Dr K P Mukerji Principal A H College Bogra Bengal according to Arya Marriage Rites Sjt Kiran Sinha of the local Vidyodaya Girls School acted as the best man Pandit K Jnani after officiating both the ceremonies advised the newly married couple to understand the implications of Arya marriage and live up to the high ideals of Aryan Dharma and Aryan culture Pandit K Jnani also emphasised that the Arya Samaj aimed at preaching Hindu philosophy to all the people of the world and the Arya Samaj was trying its level best to break all barriers of caste creed colour and country He further hoped that the socalled new world order would imply no prejudices based on accidental birth or geographical nationality With songs the function came to a close

Madras, 29 6 41

**M Krishna Rao**
*Hoy Secy Arya Samaj*

---

दिया गया। इस पर मुकदमों के डर से लोग रियासत से भाग गये थे, वे भी लोहारू वापस पहुंच गये। उन सब को आशा थी कि वे सब जमानत पर रिहा कर दिये जायेंगे।

इसके बाद से यद्यपि दीवान ने मुझे यह आश्वासन तो दिया कि रियासत समझौते के अनुसार कार्य करेगी, लेकिन वह समझौते के प्रतिकूल जाने लगी। सबसे पहले तो समझौते की शर्तोंमे सशोधन हुआ। सभा ने इन शर्तों को इस शर्त पर स्वीकृत कर लिया कि इससे असली शर्तों मे फर्क न आने पावे। दीवान साहब का दूसरा पत्र आया। उस में एक कदम और बढ़ाया गया। एक तरफ यह परिवर्तन था और दूसरी तरफ यह खबर आने लगी कि अभियुक्तों के साथ बहुत बुरा सलूक किया जा रहा है। सभा के दिल मे शक पैदा हुआ। जिन अभियुक्तो ने अपने आपको रिया-त के हवाले किया था, उन्हें हवालात मे बन्दकर दिया गया। वे लोग विचाराधीन बन्दी थे, फिर भी उनसे मशक्कत कराने की रिपोर्ट सभा को मिली।

इस पर दीवान को एक पत्र लिख कर उनसे पूछा गया कि रियासत क्या चाहती है? बड़ी मुश्किल से इन अभियुक्तों को जमानत पर रिहा कराया गया, लेकिन एक कौंसिल द्वारा उनकी ओर से सफाई कराने की आज्ञा नहीं मिली। दीवान ने अभी तक उक्त पत्र का जवाब नहीं दिया।

सभा ने मान लिया था कि जब तक समझौते की चर्चा चल रही है, तब तक अखबारों मे या दूसरी जगह सब तरह का प्रचार बन्द कर दिया जाय।

अब सभा यह महसूस करती है कि रियासत के अधिकारी अपने दिये आश्वासन के अनुसार काम करने को तैयार नहीं हैं। सभा के मत्री ने पोलिटीकल एजेएट की सेवा में सारा मामला फिर भेजा और उनसे प्रार्थना की कि सरकार को इस मामले में हस्तक्षेप करना चाहिए, ताकि अभियुक्तों पर निष्पक्ष अभियोग चल सके। सभा अब भी अपने कानूनी सलाहकारों को अभियुक्तों की देख रेख के लिए लोहारू भेजती रहती है। अभियुक्तों के परिवारों की आर्थिक सहायता भी की जा रही है।

जिन आर्य समाजियों के पास रोजी का कोई जरिया नहीं रहा या जिनकी जायदादें जब्त करली गई हैं उन सबकी सहायता करने का निश्चय कर लिया गया है। सभा की राय मे जो व्यक्ति निर्दोष हैं उनकी सहायता अवश्य की जायगी। सभा रियासत मे धर्म प्रचार की आजादी चाहती है और चाहती है कि इस आजादी को हासिल करने के लिए सब न्यायोचित साधन इस्तेमाल किये जायें। जनता को चाहिए कि वह सभा की आर्थिक सहायता करे। सभा की आज्ञानुसार २७ जुलाई को लोहारु के निकटवर्ती स्थानों व प्रान्तों मे लोहारु दिवस मनाया गया।

---




## संसार की नई व्यवस्था

## ( THE NEW WORLD ORDER )

युरोपीय महायुद्ध की प्रगति के साथ साथ इस विषय पर भी विचार प्रारम्भ हो गया है कि युद्ध के पश्चात् समाज की क्या नई व्यवस्था हो जिससे संसार में सुख और सुरक्षा स्थापित हो।

### भौगोलिक व्यवस्था

इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न विचार, नई नई कल्पनायें और भविष्य वाणियाँ सुन पड़ती हैं। कुछ सज्जनों का मत है कि युद्ध के पश्चात् वर्तमान दृश्यमान संसार ४ सङ्घों में विभक्त होगा। एक सङ्घ "ऐंग्लो सेक्सन अमेरिकन सङ्घ" कहलावेगा। इसका नेतृत्व ब्रिटेन और अमेरिका संयुक्त रूप से करेंगे। दूसरे सङ्घ का नाम युरोप का संयुक्त राष्ट्र होगा। इसका नेतृत्व बहुत सम्भवतः पराजित जर्मनी द्वारा होगा। तीसरा सङ्घ रूस के आधीन होगा। जिसमे एशिया के कुछ प्रदेश सम्मिलित होंगे और चौथा सङ्घ एशिया के संयुक्त राज्य होगे जिस पर जापान का प्रभुत्व होगा। उनका यह भी मत है कि खंड राज्यों का अन्त हो जायगा क्योंकि इन राज्यों से संसार की शान्ति सदैव खतरे मे पड़ी रहती है। जो प्रदेश इन सङ्घों की सीमा से बाहर रह जायेंगे वे अपनी सुरक्षा के लिये उपर्युक्त चारों सङ्घों में से किसी के साथ मिल जायेंगे।

### आर्थिक व्यवस्था

यह तो रहा भौगोलिक विभाजन। युद्ध के बाद आर्थिक व्यवस्था में भी आमूल परिवर्तन पर बल दिया जा रहा है और यह परिवर्तन हो भी जावेगा। ऐसी प्रबल आशा प्रगट की जा रही है जिन लोगों ने इस विषय का सम्यक् अध्ययन किया है उनकी धारणा है कि युद्ध के पश्चात् पुंजीवाद का सर्वथा अन्त

हो जावेगा। इस धारणा में सत्य का कुछ अंश देख पड़ता है, क्योंकि युद्ध के पूर्व भी इसमें अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी। इसकी मनोवृत्ति मे परिवर्तन हो रहा है और इसके सङ्गठन में क्रान्ति उत्पन्न हो रही है। पूंजीवाद की मनोभावना मूलतः विभिन्न और परस्पर विरोधी सिद्धान्तो पर आश्रित थी और बुद्धि सङ्गत तथा बुद्धि असङ्गत रीतियो हत्यारों, चोरों, लुटेरो, छलियो और आततायियो की मनोवृत्तियों का समिश्रण थी। बाद में इस मनोवृत्ति में बौद्धिक तत्व ने कुछ अच्छा परिवर्तन किया परन्तु मुनाफे की भावना बनी ही रही और हानि के सहन करने का साहस जाता रहा। पूंजीवाद का यह सगठन व्यक्ति गत था परन्तु पिछले १० वर्षों में इस पर कुछ पाबन्दियाँ लगाई गई थी जो धीरे धीरे स्वीकृत हो रही थी। परन्तु ये पाबन्दिया न तो सुनिश्चित थी और न भली भाँति विचार के पश्चात् लगाइ गई थी। इसी कारण इनसे गड़बड़ उत्पन्न होती थी। युद्ध के पश्चात् कुछ व्यक्ति इस अव्यवस्थित और बुरी आर्थिक व्यवस्था से चिपटा रहने का प्रयत्न करेंगे और कुछ अमर्यादित व्यक्तिगत पूंजीवाद की विनाशक प्रणाली को बनाये रखने का प्रयत्न और प्रचार करेंगे। परन्तु ये दोनों बातें सम्भव न होंगीं। वर्तमान लक्षणो से स्पष्ट हो रहा है कि भावी आर्थिक नीति कुछ निश्चित उद्देश्यो और तरीको से नियन्त्रित होगी। उपर्युक्त चारो सङ्घो मे आर्थिक नीति और प्रगति की सुव्यवस्था और नियन्त्रण किया जायेगा और यह व्यवस्था ही वास्तविक अन्तर्राष्ट्रीय एकता का मूल आधार होगी।

आर्थिक दृष्टि से ये चारो सङ्घ अपने पैरों पर खड़े होगे और बाहरी लूट खसोट की नौबत न आयेगी। पूंजीवाद के अन्त को दूसरे शब्दों मे इस प्रकार रख सकते हैं कि ससार के आर्थिक जीवन पर युरोप का जो शासन है वह नष्ट हो जायगा। युरोप के बाहर ससार का आर्थिक जीवन पर युरोप की पूंजी पर आश्रित था। पश्चिम के देश समस्त देश से कच्चा माल लेकर उसके बदले मे उस माल से तैयार हुई चीजें अथवा धन देते थे। युरोप एक बड़े नगर के सदृश था और शेष जगत देहाती क्षेत्र थे। ये तीनों बातें धीरे धीरे लुप्त हो रही हैं और यदि कहीं अभी तक जीवित हैं तो शीघ्र ही लुप्त हो जायेंगी।

कुछ सज्जनों को यह धारणा है कि गोरी जातियो की पारस्परिक व्यापारिक और आर्थिक प्रतियोगिता का अन्त होगा और एशिया तथा अफ्रीका की उपज का बुद्धि और न्याय सङ्गत रीति से विभाजन किया जायेगा। विभाजन की यह

अव्यवस्था और आपाधापी ही अन्तराष्ट्रीय वैमनस्य, कटुता और युद्धों के लिये उत्तर दायी है।

वास्तविक व्यवस्था

सारॉश यह है कि विभिन्न मत और कल्पनाये प्रकाश मे आ रही हैं परन्तु प्रश्न यह है कि क्या इस प्रकार के परिवर्तनों से ससार में एक ऐसे नये स्वर्ग की सृष्टि हो सकती है जहाँ ससार के सब व्यक्ति भाई भाई की तरह प्रेम पूर्वक रहें और ससार को सुखधाम बनावे। और क्या इसे हम नई व्यवस्था कह सकते है। केवल भौगोलिक सीमाओ के परिवर्तनों से राजनैतिक पुनर्निर्माण से वा आर्थिक व्यवस्था से नई व्यवस्था का स्थापित होना सम्भव नहीं है।

इस सबका वास्तविक अर्थ सस्थाओ और रूढियों का परिवर्तन तो हो सकता है। सँस्थाये जीवन को नही बदला करती। ये परिवर्तन तो दीवार पर रग करने के सदृश हैं।

हमारे समाज का वांछित निर्माण तो तब होगा जब हमारे विचारो और विश्वासों में क्रान्ति उत्पन्न हो जायेगी। जब हम में धार्मिक जागृति उत्पन्न होकर जीवन की नई भावना घर कर जायेगी। जब हम इच्छाओं और भौतिक पदार्थों की दासता से जिन से हम बुरी तरह आबद्ध हैं मुक्त हो जायेगे। शरीर के साथ साथ आत्मा पर भी ध्यान रखेगे और हमारी वृत्ति अन्तरमुखी हो जायगी। उस समय संसार का नेतृत्व सीधे सादे निर्लेप और दयालु व्यक्तियो के हाथ में होगा, जो विश्व भावना से ओत प्रोत होगे। वे सच्चे हृदय से बोलेंगे और उनके शब्द दूसरे व्यक्तियों के हृदयो में प्रतिध्वनित होगे। उनका मामूली शब्द संसार के बिखरे हुए शीराजे को शाश्वत सचाइयो के साथ जोड़ने का काम देगा। वे व्यक्ति और समाज सम्बन्धों में उचित सामंजस्य करके संतुलन रखेंगे। वे सदाचार की भित्ति पर व्यक्तिगत और सामाजिक सम्बन्धो को व्यवस्थित करगे। लोगों को अपनी आजीविका को शुद्ध और पवित्र बनाना सिखायेंगे। बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा के उपाय और व्यवस्था करेंगे। इस रीति से उत्पन्न व्यवस्था हमारी परिभाषा में नई व्यवस्था समझी जायेगी और यह वास्तविक व्यवस्था होगी।

उपर्युक्त परिवर्तनों से शान्ति हो जायेगी या युद्ध बन्द हो जायेंगे यह नहीं

कहा जा सकता। हो सकता है कि थोड़े बहुत सुधार हो जायें। वास्तविक सुधार तो इस व्यवस्था से ही सम्भव है जिसका हमने ऊपर उल्लेख किया है।

---

## संयुक्त प्रान्त के प्रकाशन

संयुक्त प्रान्त के गत वर्ष के प्रकाशनों की जो तालिका शिमला से प्रकाशित हुई है, उसके अनुसार सन् १६३६ में २७४२ पुस्तकें और पत्रिकायें प्रकाशित हुई हैं जिनमें १०६४ पुस्तकें कविता पर और ८८ राजनीति पर लिखी हुई हैं। साहित्य पर ३०६ पुस्तकें छपी हैं। अन्य विषयों के प्रकाशन इस प्रकार है—

| | | | |
|---|---|---|---|
| धर्म | १६१ | गल्प | १६२ |
| विज्ञान | १५६ | इतिहास और भूगोल | ११६ |
| जीवन | ७५ | नाटक | ५४ |
| कानून | ५४ | वैद्यक | ५१ |
| दर्शन | ४४ | ललित कला | १६ |
| यात्रा | ८ | विविध | १८१ |

हिन्दी में प्रकाशित होने वाले पुस्तकों और मासिक पत्रों की संख्या सबसे ज्यादा है। १७७३ पुस्तकें और १६ मासिक पत्र प्रकाशित हुए। इसके बाद अंग्रेजी प्रकाशनों का नम्बर है। २४१ पुस्तकें और ११ मासिक पत्र अंग्रेजी में प्रकाशित हुए। उर्दू में १८४, संस्कृत में ११४, नैपाली में २४, बंगाली में ६, गढ़वाली और फारसी प्रत्येक में ६, गुजराती में ५ और गुरुमुखी में ३ प्रकाशन हुए।

हिन्दू लोग जिन क्षेत्रों को हिन्दी भाषा भाषी मानते हैं, मुसल्मान लोग उन्हें ही उर्दू भाषा भाषी क्षेत्र होने का दावा करते हैं। इन्हीं क्षेत्रों में संयुक्त प्रान्त की सबसे बड़ी आबादी पाई जाती है। इसी हिंन्दी या उर्दू भाषा भाषी घनी आबादी के प्रान्त में हिन्दी के प्रकाशनों की संख्या १७६२ और उर्दू प्रकाशनों की संख्या केवल १८४ है। इन प्रकाशनों से स्पष्ट है कि संयुक्त प्रान्त में हिन्दी भाषा भाषियों की संख्या उर्दू बोलने वालों की संख्या कहीं अधिक है। यह तो स्पष्ट ही है कि उर्दू उन्नतिशील नहीं देख पड़ती है। दुःख यह है कि आर्य्यावर्त्त कहे जाने वाले क्षेत्र में संस्कृत प्रकाशनों की संख्या केवल ११४ है।

## हिटलर की परमात्मा से प्रार्थना

रुटर ने यह समाचार प्रकाशित किया है कि रूस के विरुद्ध युद्ध मे सफलता प्राप्ति के

लिए हिटलर ने परमात्मा से प्रार्थना की है। यदि उसने अन्य देशों के विरुद्ध किए हुए युद्धों में इसी प्रकार की प्रार्थनाएँ नहीं की थीं तो इसका कारण कदाचित यह था कि वह परमात्मा को परेशानी में डालने से बचाना चाहता था क्योंकि वे सब देश परमात्मा को मानने वाले थे। परन्तु रूस वाले अनीश्वर वादी हैं इसीलिए हिटलर ने शायद यह सोचा हो कि इन अनीश्वरवादियों के विरुद्ध युद्ध करने में परमात्मा को कुछ भी दुःख अनुभव न होगा।

## आर्य्य युवक सभा काशी

गत मई मास में काशी के जिला मजिस्ट्रेट महोदय ने आर्य नवयुवक सभा लक्खापुरा काशी के नगर कीर्तन पर १४४ दफा द्वारा यह कह कर पाबन्दी लगादी थी कि यह जलूस नया है और इससे शान्ति भंग होने की सम्भावना है। आर्य नवयुवक सभा ने उस समय उस आज्ञा को मानकर जलूस का निकलना बन्द कर दिये और फिर वैध तरीके से यह साबित कर दिया कि यह जलूस पहले भी निकल चुके हैं और इससे शान्ति भंग की भी सम्भावना नहीं है। अव्वल तो जलूस का पहले न निकलना कोई कारण किसी जलूस को बन्द करने का नहीं होना चाहिये फिर इस दशा में तो जलूस पहले भी निकलता रहा है और शान्ति भंग का तो नगर कीर्तन से कोई सवाल ही नहीं आता। ऐसी दशा में हम समझते हैं जिला मजिस्ट्रेट महोदय की आज्ञा सर्वथा अनुचित रही है। सभा ने अब फिर आज्ञा मांगी है, आशा है अब बुद्धिमत्ता से काम लिया जायगा और आवश्यक आज्ञा देकर सभा को और उनको शरण लेने से बचा लिया जायगा तथा आजकल जब काफी संघर्ष चल रहा है जिला मजिस्ट्रेट यहां व्यर्थ संघर्ष न पैदा करेंगे।

## श्रद्धाञ्जलि

७–८–४१ को श्रावणी पर्व के पुण्य अवसर पर हैदराबाद सत्याग्रह के हुतात्माओं की पुण्य स्मृति में सार्वदेशिक सभा द्वारा नियत और प्रमाणित प्रोग्राम के अनुसार समस्त आर्य्य जगत में 'सत्याग्रह बलिदान स्मारक दिवस' मनाया जायगा। आर्य्य मात्र को यह पर्व्व पूरी गम्भीरता और पवित्रता के साथ मनाना चाहिये।

इस अवसर पर हम उन ज्ञात और अज्ञात हुतात्माओं की पुण्य स्मृति में विनीत श्रद्धाञ्जलि प्रस्तुत करते हुए परमात्मा से प्रार्थना करते हैं कि वे हमें उन पवित्र बलिदानों के रहस्य को समझने में समर्थ बनाएँ और धर्म्म के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी के भाव जाग्रत करें।

## धर्म युद्ध के हुतात्माओं के प्रति श्रद्धाञ्जलि

पुण्य स्मृति के धर्म वीरो। आप लोगों का जितना सम्मान और गुणगान किया जाय उतना ही कम है। आप लोगों ने धर्म की पवित्र वेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग किया है। हैदराबाद मे आपकी धार्मिक स्वतन्त्रता का निर्दयता पूर्वक अपहरण किया जा रहा था। आप धर्म युद्ध के सैनिक बनकर उस स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिये गये थे। सत्य और अहिंसा आपका अस्त्र था। आप पर घोर अमानुषिक अत्याचार हुए इसलिए कि आप अपने व्रत से च्युत हो जाय। आपने अपने व्रत तथा सत्य और अहिंसा की रक्षा के लिए उन अत्याचारों को धैर्य पूर्वक सहन करके हँसते हँसते मृत्यु का आलिङ्गन किया। आप उन पुण्यात्मा वीरों के मार्ग के पथिक हुए हैं जो ऊँचे उद्देश्यों के लिए अपने प्राणों की बलि देते हैं। आपने अपने उत्सर्ग से आर्य जाति और धर्म युद्ध को अमित गौरव प्रदान किया और इतिहास में अपना नाम अमर किया है। आने वाली सन्तान जब इस धर्म युद्ध के इतिहास को पढ़ेगी तो निश्चय ही आपके त्याग और बलिदान पर जो आपने इस युद्ध में दर्शाया है आनन्द विभोर होगी और गद्गद् हृदय से आप लोगों के चरणों में श्रद्धा और प्रेम से उसका मस्तक नत हो जायगा।

सांसारिक दुर्बल आत्माओं ने आपके बलिदान पर दुःख अनुभव किया परन्तु दिव्यात्माओं ने उन पर हर्ष प्रगट किया। हम आपको मरा हुआ समझते हैं परन्तु वे आपको मरा हुआ नहीं वरन् जीवित समझते हैं। वस्तुतः यह बात ठीक है। आप अपना नाम अमर और दूसरों के लिए उत्तम उदाहरण प्रस्तुत कर गये हैं।

वे माता-पिता धन्य हैं जिन्हें आप जैसी सन्तानों का माता-पिता बनने का सौभाग्य मिला है। वह देश और समाज धन्य है जिसमें आप जैसे वीर जन्म लेते हैं।

आप अन्धे जोश मे शहीद नहीं हुए हैं वरन् सत्य और न्याय के लिये शहीद हुए हैं। यही आपके बलिदान का गौरव है।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

# "आर्य डाइरेक्टरी"

अथात्

## आर्य जगत् का विस्तृत विवरण

इसमे परिचय

(१) गत ६६ वर्षों म आर्य समाज ने जो उन्नति की है उसका ऐतिहासिक सिंहावलोकन।

(२) विस्तृत कार्य क्षेत्र और इसमे कार्य करने वाली नाना संस्थाओं का संक्षिप्त इतिहास और वर्तमान विवरण।

(३) गुरुकुलों स्कूलों कालेजों आर्य कुमार सभाओं कन्यागुरुकुलों कन्यापाठशालाओं अनाथालयों पुस्तकालयों समाचारपत्रों साहित्यिक व अन्य संस्थाओं की सूची और विवरण

(४) देश विदेश में स्थापित आर्य समाजों के स्थान स्थापना अधिकारी, सम्बद्ध संस्थाओं और विविध कार्य के समग्र उल्लेख

(५) आर्य जगत् की वर्तमान समस्याओं और नाना हलचलों का वर्णन।

अथात् आर्य जगत् के सम्बन्ध म पूरी जानकारी आपको इस आर्य डाइरेक्टरी मे मिलेगी। यह सब सामग्री प्रामाणिक साधनों से एकत्र की गई है। संग्रह और चाहे जब देख लेने के लिए अपूर्व पुस्तक है

मूल्य केवल १।

इतनी उपयोगी २०×२६ के ८ वें आकार के ३०० से अधिक पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल १।) है। डाक व्यय पृथक।

प्रत्येक कार्यकर्ता व्याख्याता के पास और पुस्तकालय और आर्य समाज मन्दिर मे इस पुस्तक का होना आवश्यक है। धनी मानी सज्जन सैकड़ों की संख्या मे खरीद कर ऐसी बहुमूल्य पुस्तक को पुस्तकालयों और प्रचारकों आदि को भेंट कर सकते हैं।

अपना अमूल्य आर्डर शीघ्र ही भेजिये। विलम्ब करने से नये संस्करण की प्रतीक्षा करनी पडेगी।

मिलने का पता—

कार्यालय सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा बलिदान भवन देहली।

पं० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सेवाराम चावला द्वारा
'चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस', श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।




वार्षिक मू य

४। ई० | सम्पादक—प्रो० सुधाकर एम० ए०

| —श्री रघुनाथप्रसादजी पाठक

विदेश ५ श०

१९८ ई०

# विषय-सूची


| सख्या | लेख | लेखक | पृ |
|---|---|---|---|
| १ | वे॰ की शलाए |  | ..११ |
|  | अ य म मुरा |  | २१ |
| ३ | अ कृ ण क जीवन म शन्ता | म० नारायण स्वाम जी म ा ाज | ३१७ |
| ४ | भगवान स | विराज | १८ |
| ५ | आर्य विचा॰ पक की व तत गाथा |  | ८ |
| ६ | विश्व क व का भगवान | श्री प इ द्र न्द्रवाचस्पति | ३० |
| ७ | म न्ला जगत | श्री रघुना थ प्रसाद प ठक | २ |
| ८ | आय समाज का ा ागा या | श्री ल भराम न यक आर श्री राग रत्त राव ज जी भराराज |  |
| ६ | समन मचर | श्री रघुना थ प्रसाद पाठक |  |
| १ | मास भक्षण क पक्ष म कुछ युक्तिय और उनका ख॰न | श्री डा० स यप्रकाश जी व एम सी | १ |
| ११ | आ३म् स न्मा | श्री मा राम भल्ला आर भा एम आ रमा ला | ३४४ |
| १० | आर कुमार जगत | म त्री आय कुमार प र द |  |
|  | महाप स्वामी दयान न सरस्वती क काशी म शुभागमन का ति ास | श्री महेशप्रसाद | ४३ |
| १४ | सा य समाक्षा |  | ३४८ |
| १५ | Th Am f I l t i |  | ३५० |
| १६ | सम्पादकीय |  | ५१ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


✻ सार्वदेशिक-आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र ✻

वर्ष १६ | भाद्रपद १९९८<br>सितम्बर १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७ | अङ्क


## ✻ वेद की शिक्षाएँ ✻

प्रियं सर्वस्य पश्यत उत शूद्र उतार्ये । अथ० १९ । ६२ । १

सबका कल्याण सोचो चाहे शूद्र हो चाहे आर्य ।

Think well of every body whether Shudra or Arya

✻ ✻ ✻

सासहाम पृतन्यतः । ऋ० १ । ८ । ४

हमला करने वाले शत्रु को हम पीछे हटा देवे ।

May we hurl back our enemies who attack us !

# अध्यात्म-सुधा

( १ )

## आत्म दमन

हमारे प्राचीन ऋषियों और मुनियों ने जिन्होंने चरित्र निर्माण की ललित कला का उच्चतम विकास किया था आत्म दमन की विद्या का सम्यक् अध्ययन किया था। उन्होंने बतलाया कि शरीर और मन का तीन प्रकार का और वाणी का चार प्रकार का संयम होता है।

कामुकता, हिंसा और ईर्ष्या बुद्धि ये तीन शरीर को विकृत करते है।

लोभ, क्रोध और मोह मन को बिगाडते है। असत्य भाषण, निन्दा, कटु शब्द और गप्प मारना ये वाणी मे विकार उत्पन्न करते है।

आत्म विजय करने वाले जिज्ञासु का इन सब बुराइयों का नाश करना चाहिए। इन सब मामलों की औषधि यह है कि इन बुराइयों के विरुद्ध गुणों का ध्यान पूर्वक विकास करना चाहिए। मनुष्य को सावधानता पूर्वक अपने का दुष्प्रवृत्तियों से मुक्त करके उपर्युक्त १० सयमों का अभ्यासी बनना चाहिए। मनुष्य को अपने दैनिक जीवन मे यह करना ही चाहिए।

जो व्यक्ति शरीर के असयम पर विजय पाने का इच्छुक हो उसे खाने पीने मे सयम करना चाहिए। बाहिरी और भीतरी दोनों स्वच्छताओं को विकसित करना चाहिए। सद् व्यवहार सीखना चाहिए।

शिष्ट भाषण, सभ्य व्यवहार, सच्ची नम्रता, न्याय और सत्य के प्रति प्रेम, सत्य भाषण, ईर्ष्या का त्याग, और स्वाध्याय ये सब वाणी के विकारों को दूर कर सकते है।

सरलता, सहिष्णुता, सहानुभूति, विश्व प्रेम, सन्तोष, सत्य ज्ञान की प्राप्ति का यत्न मन की त्रुटियों को दूर कर सकते है।

( २ )

## धर्म और समाज सेवा

आर्यों के जीवन का आधार भूत पैमाना धार्मिक विशेषताएँ रही हैं न कि

आर्थिक विशेषताएँ। जीवन मे अर्थ का भी मूल्य है परन्तु मनुष्य को धर्म पूर्वक अपने जीवन की आवश्यकताओं को पूरा करने की चेतावनी दी गई है। अत जीवन मे धर्म का स्थान सर्वोपरि है। धर्म उस कानून वा नियमों को कहते हैं जो समस्त विश्व और उसके प्राणियों को ऊँचा उठाता है। महाभारत मे कहा है— 'धर्म से ही प्रजा की रक्षा होती है'। जो मनुष्यों को ऊँचा उठाये वही धर्म है। जो सब जीवों का मित्र और जो मन वचन और कर्म से दूसरों की भलाई मे लगा होता है वही धर्म को जानता है (शान्ति पर्व मोक्ष प्र० ८८)

गृहस्थ धर्म दो प्रकार का होता है। इष्ट और आपूर्त। इष्ट का अभिप्राय ५ दैनिक यज्ञ है। आपूर्त का अर्थ लोकोपकारक कार्य है जैसे कुएँ बनवाना, तडाग खुदवाना इत्यादि २। दान शालाएँ खुलवाना, धर्म शालाएँ बनवाना। परन्तु ये कर्म तभी फलदायक होते है जब उनमे सचाई से कमाया हुआ अर्थ व्यय हो।

आर्यों के जीवन मे समाज सेवा भी एक विशिष्ट स्थान रखती है। परन्तु यह अन्तिम नहीं है। केवल मात्र सामाजिक कार्य जीवन की समस्या को हल नही करता। मनुष्य की आत्मा मे ऊँचे दर्जे की जागृति उत्पन्न होनी चाहिए और उसे देवत्व के द्वारा पशुत्व को जीतना चाहिए। इन्द्रियों से मन को स्वतन्त्र करना और शरीर सेआत्मा को पृथक् रखना सीखना चाहिए। अन्यथा आप चिकित्सालय खोल कर भी बीमारी की समस्या का हल नही कर सकते मेशीनों का आविष्कार करके भी माँग की पूर्ति नही कर सकते। कानून बनाकर भी अपराधों को कम नही कर सकते। सन्धि पत्र लिखकर भी युद्ध का रोक नहीं सकते। मनुष्य को अपनी आध्यात्मिक सत्ता का ज्ञान होना चाहिए। जब तक मन पर इन्द्रियो का प्रभुत्व रहेगा तब तक जीवन का दृष्टिकोण ऐन्द्रिक के सिवा कुछ नहीं हो सकता। जब मनुष्य मे आध्यात्मिकता प्रबल हो जाती है तब स्वत ही उसके विचार और कर्म पवित्र हो जाते है। आभ्यन्तरिक प्रेरणा पर ही वह पवित्र हो जाता है। नैतिक आचरण आभ्यान्तरिक जागृति का प्रतीक होता है।

## ( ३ )
## हम अधर्माचरण क्यों करते हैं ?

सुकरात और प्लेटो के काल से पश्चिम के बुद्धिवादियों ने ज्ञान पर बल दिया है और इसी को वे मनुष्य का एक मात्र पथ प्रदर्शक मानते रहे हैं। उन्होंने बतलाया कि यदि मनुष्य बुद्धिमान है तो और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं

रह जाती। ज्ञान और तर्क मनुष्य को पूर्ण बनाते हैं। अत वह तर्क को सर्व शक्ति मान मानकर मनुष्य का प्रभु मानते रहे हैं। वे कहते हैं ज्ञान ही गुण है। अव गुण व भूल मानते और यह समझते हैं कि मनुष्य समाज के समस्त पापों का मूल हृदय की दुष्टता नहीं वरन् दिमाग की कमजोरी है। परन्तु मनुष्य जीवन और अनुभव यह बतलाते है कि केवल ज्ञान मे हमे धर्मात्मा बनाने की क्षमता नहीं है। हम में ज्ञान का अभाव नहीं है। भलाई को जानना और बुराई का आचरण करना आज के ससार का एक प्रकार का रवैया बना हुआ है। हमे जानने की इतनी आवश्यकता नहीं है जितनी ज्ञान को क्रिया मे लाने की भावना को विकसित करने की है। सस्कृत क एक कवि ने कहा था 'मै धर्म को जानता हू परन्तु मैं उसके मार्ग पर चलने मे असमर्थ हू। मैं यह भी जानता हूँ कि क्या धर्म नहीं है परन्तु फिर भी मै उस पर विजय नहीं पाता।' इसीलिए इच्छा शक्ति को दृढ और प्रबल बनाने और ज्ञान को क्रिया मे लाने के लिए हमे परमात्मा की उपासना की आवश्यकता है। इस प्रकार की इच्छा तभी सन्तुष्ट हो सकती है।

आज लोग अपने राज्यों को उपास्य देव बनाने के लिए पागल हो रहे हैं और इस झूठी आशा मे कि वे उसे प्रसन्न करेंगे परमात्मा की नाईं उसे पूज रहे है।

तर्क का भी महत्व है परन्तु तर्क से ऊपर एक वस्तु है और वह अन्त दृष्टि है। इस तक तर्क की पहुँच नहीं है। इसका महत्व तर्क से नहीं जाना जाता वरन अनुभव से जाना जाता है और इसकी रीति यह है कि मनुष्य धर्म के तत्वों का दृढता से आचरण कर। अपने शरीर, मन और आत्मा को निरन्तर पवित्र बनाए। सबसे आवश्यक कर्तव्य इन्द्रियों का सयम है। जिसको इसमे कामयाबी मिल गई उसे धार्मिक जीवन के मार्ग पर पढने की कुजी प्राप्त हो गई। सत्धर्म का स्वरूप और महत्व यह है कि दिमाग को बुद्धि सङ्गत ज्ञान से परिमार्जित और हृदय को मानवी गुणों से अलकृत करो। एकागी विकाश ही हमे धर्म पथ से विमुख करता है।

(४)

## मन पर विजय प्राप्त करो!

नवयुवक, वृद्ध, बालक, माता और पिता सब ही जानते हैं जि अमुक काम बुरे हैं परन्तु फिर भी इनमे क्यों प्रवृत्त होते हैं?

एक वेद मन्त्र में बतलाया है कि ईश्वर। मेरा मन शुभ सकल्पवाला हो। अशुभ वासनाओं से दूर रहे। इससे प्रकट हुआ कि यह मन द्वार का दीपक है जिससे बाहर और भीतर प्रकाश होता है। इसी प्रकार जीव और प्रकृति के बीच मे यह मन-रूपी दीपक प्रकाशित है। जो योगी और महात्मा होते हैं वे इसी मन की पवित्रता से होते हैं। मन ४ प्रकार का है।

एक 'मन' से सकल्प-विकल्प होता है। दूसरा 'बुद्धि' जिससे मनुष्य विचार करता है। तीसरे 'अहकार' जिससे अभिमान होता है। चौथा 'चित्त' जिससे पूर्व का चिन्तन होता है।

मन से ही मनुष्य मोक्ष पद को प्राप्त होता है। कहावत है यदि तुम एक मन को वश मे करलो तो हजार कावे से बढ़कर है। जिसके वश मे मन है वह विषयी, लोभी और मोही नहीं। कारण यह कि मन की अनुपस्थिति मे इन्द्रिया अपना कार्य नहीं कर सकतीं।

मन सतोगुण, रजोगुण और तमोगुण के चक्रों मे पड़ा हुआ है। इसको उन चक्रों से पृथक् करो।

जिस समय यह विचार उत्पन्न हो कि ४) अमुक धर्म्म के काम मे देने हैं और दूसरा काम रोककर दे दिये तो उस समय समझो सतोगुण का प्रभाव है।

जब यह विचार हो कि चलो किसी का धन हर लाएँ और सुख से खायँ तब समझो मन पर तमोगुण का प्रभाव है।

जब ऐश्वर्य की चिन्ता हो समझो रजोगुण का राज्य है।

सात्विकी मन और बुद्धि वाले तो यह चाहते है कि मेरा सुख इसी मे है जिससे दूसरों को सुख मिले।

रजोगुणी कहते हैं कि हम आनन्द मे रहे, दूसरों को न हमसे दुख हो और न सुख।

तमोगुणी कहते हैं कि मुझको सुख हो चाहे दूसरों को दुख ही क्यों न हो।

एक पुरुष और हैं वह दूसरों को दुख देने और बिगाड़ने के लिये अपना कार्य भी बिगाड़ देता है।

जब तक सतवृत्ति नहीं बढ़ती तब तक उन्नति नहीं हो सकती।

जब हम अपने कार्यों अथवा व्यवहारों का लेखा करते हैं, अपने उच्च 'अफसर से भय करते हैं, बालक को लाड़ प्यार करते हैं। अपने शरीर के बनाव शृङ्गार

मे समय देते, कोट आदि पहनने मे घटा लगाते है तो क्या अपने मन को पवित्र बनाने मे थोड़ा-सा समय देकर भी प्रयत्न नही कर सकते ?

जितने समय में शरीर का श्रृङ्गार करते हैं उसके आधे समय मे मन शुद्ध बनाया जा सकता है। जितने सत्कार्य्य है उनका कारण मन है। यदि आप मन से दुष्ट भाव और विरोध का काम लेंगे तो दुख इस प्रकार आपके पीछे चलेगा जैसे चक्र बैल के पीछे।

जब आप जानते हैं कि मनुष्य मननशील है तो फिर धिक्कार है कि अपना मन शुद्ध नही करते। कोई किसी का शत्रु नही मन ही शत्रु बनाता है।

जब किसी धर्म्म कार्य्य मे धन देने का सकल्प हुआ और यह विचारा कि इसका सोडा वाटर क्यों न पीलें व्यथ क्यों दें, तब ही शुभ सकल्प दब गया। पुन खयाल उठा कि भूखे को भोजन क्यों न दें। ज्योंही यह भाव क्रिया मे आया तभी मन पर एक बड़ी विजय हुई।

पर स्त्री का दशन करके मन मलीन हुआ। आपने सोचा यह बुरा है और तत्काल क्रिया मे लाकर मन दूसरी ओर लगा दिया।

इसी प्रकार के अभ्यास से मन आपके अधीन हो जायगा।

समस्त शक्तिया आत्मा की है और मन से उनका प्रादुर्भाव होता है। इन्द्रिया मन से सम्बन्ध रखती है। जब मन इन्द्रियों पर हावी होता है तब सारे कार्य्य होते है जब मन इन्द्रियों के अधीन हुआ तो मानो रईस, सईस और सईस; रईस बन गया।

———

# श्री कृष्ण के जीवन से शिक्षा

[ लेखक—महात्मा नारायण स्वामी जी महाराज ]

पाच हजार वर्ष हुए जब भारत का नेतृत्व कृष्ण जी के हाथ मे था। उन्होंने देश का नेता होते हुये देश वासियों की सभी क्लासों के साथ वह व्यवहार किया जो आज कल के ससार के लिये अनुकरणीय है। उनके क्रियात्मिक जीवन पर हम तीन तरह से दृष्टिपात कर सकते है—(१) शारीरिक तौर पर वह इतने शक्तिशाली थे कि उनकी शक्ति का लोहा भीष्म पितामह जैसे ब्रह्मचारी भी मानते थे।। शिशुपाल ने जब पाण्डवों की सभा मे उनका अपमान करना चाहा और इसी उद्देश्य से मुकाबिले के लिये ललकारा तो उन्होंने बिना कोई अगर मगर किये शिशुपाल का प्राणान्त कर दिया। २) अध्यात्मिक तौर पर वह इतना ऊचा स्थान रखते थे कि आज भी दुनिया की तमाम सभ्य जातिया गीता में दी हुई शिक्षा के सम्मुख नत मस्तक हैं। नैपोलियन व नैलसन बनने की इच्छा कहीं नहीं देखी जाती परन्तु कृष्ण बनने की इच्छा प्राय सभी मनुष्यों मे पाई जाती है। (३) सामाजिक उन्नति का तो उन्होंने इतना उत्तम उपदेश दिया है कि यदि हम उसे अपनाले तो हमारा भविष्य उज्ज्वल हो सकता है। हम उनके जीवन के सम्बन्ध मे कुछ बाते यहा देते हैं (क) उनके विचार मे सामाजिक उन्नति के लिये हर एक व्यक्ति के लिये अच्छा होना आवश्यक था इसी लिये उनका विश्वास था कि माता पिता का कर्तव्य है कि तैय्यारी करके सन्तान पैदा करें। उन्होंने इसकी क्रियात्मिक शिक्षा दी और वह यह थी कि रुक्मिणी से विवाह करने के अनन्तर जब दोनों में सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो कृष्ण और रुक्मिणी दोनों ने सन्तान पैदा करने की तैय्यारी की और वह तैय्यारी यह थी कि दोनों ने १२ १२ वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन किया और तब एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वह पुत्र प्रद्युम्न ऐसा पेदा किया कि माता पिता दोनों को उस पर गर्व था। (ख) जाति मे जो निर्धन व्यक्ति हों उनसे कैसा व्यवहार करना चाहिये। उनकी वह शिक्षा उनका वह अमल था जो उन्होंने सुदामा जैसे निर्धन के साथ किया। यदि आज दुनिया के धनवान अपना वैसा व्यवहार बनाले तो Labour and Capital का झगड़ा

समाप्त हो सकता है। (ग) सामाजिक उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य समाज ( Society ) के स्वार्थ के सामने अपने स्वार्थ को हेच समझे। कृष्ण ने जब तय कर लिया कि उन्हे इस देश का चक्रवर्ती राज्य स्थापित करना चाहिये, तो उन्होंने इसके लिये विचार भी नहीं किया कि राज्य का राजा मुझे बनना चाहिए। यदि वह ऐसा करते तो वह इसके लिए उपयुक्त ही थे। परन्तु इससे जो मिसाल वह स्थापित करना चाहते थे नहीं बन सकती थी इसलिए उन्होंने जो किया उसका उदाहरण इतिहास मे नहीं मिलता। (घ) गृह-कलह से देश की शक्ति नाश नहीं करनी चाहिए इसके लिए भी उनका जीवन शिक्षा प्रद है। उन्होंने जरासन्ध से युद्ध नहीं किया। उन्हे मथुरा छोड़कर द्वारिका जाना पड़ा इसे उन्होंने स्वीकार कर लिया लेकिन गृह-कलह मे नहीं उलझे। जरासन्ध के राज्य को देश के चक्रवर्ती राज्य के आधीन होना चाहिये इसके लिए उन्होंने इतनी बुद्धिमता से काम लिया कि सिवाय जरासन्ध के एक आदमी की भी जान की हानि नहीं हुई और उस का राज्य आधीनता मे आ गया। (ङ) अत्याचार और धींगा-धागी सहना पाप है। कृष्ण के जीवन का यह चित्र था। उन्होंने कंस का वध इसी पाप से बचने के लिए किया। संक्षेप मे यह कि जीवन को किसी भी दृष्टि से देखे तो वह आज भी अच्छी से अच्छी और ऊँची से ऊँची शिक्षा हमको दे सकता है। आशा है कि श्री कृष्ण के जन्म दिवस को मनाते हुए उनके जीवन से कोई न कोई शिक्षा लेने का हम यत्न करेंगे।

## भगवान् से—

किन बातों का माँगू प्रतिफल ?
जब उन्नति के पथ पर सत्वर,
तुम बढ़ते मुझ पर हो निर्भर,
तब मै तो बन कर महा तिमिर—
छा गया तुम्हारे ही पथ पर।
कर देने को तुमको निश्चल।
मैने कुछ रक्खी नही कसर,
बहकाने को ही जीवन भर,
कस रखता था हर समय कमर,
यह बात दूसरी जो तिल भर—
भी इसमे हो पाया न सफल।
मेरे तो संचित पाप देव,
औ थोड़े से अनुताप देव,
जिनसे वरदान नहीं मिलते—
जिनसे मिलते अभिशाप देव।
काँटों से कब मिलता परिमल ?

"विराज"

# आर्य्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

## सम्मिलित परिवार की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं

१९२३ के स्पेशल विवाह सशोधक कानून के द्वारा हिन्दुओं के पारस्परिक अन्तर्जातीय विवाहों पर जो प्रतिबन्ध लगाये गये थे वे प्रतिशोध की भावना से लगाये गये थे। कानून की २२वीं धारा मे एक प्रतिबध यह था कि यदि सम्मिलित परिवार का कोई हिन्दू स्पेशल विवाह कानून के अधीन अन्तर्जातीय विवाह करेगा तो इस विवाह के कारण सम्मिलित परिवार से उसका सम्बन्ध विच्छेद हो जायगा। अब प्रश्न यह आता है कि क्या १९३७ के आर्य विवाह ऐक्ट के अधीन सम्मिलित परिवार के आर्य्यसमाजी भाई का अन्तर्जातीय विवाह होने पर सम्मिलित परिवार से सम्बन्ध टूट जाता है। इस बात को प्राय सभी जानते हैं कि सम्मिलित परिवार मे कभी २ पिता पुराने विचार का होता है तो पुत्र आर्य्य विचार का होता है। इसमे अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि आर्य्यसमाज की सदस्यता सम्मिलित परिवार को छिन्न भिन्न नहीं करती, जैसी कि मुसल्मान और ईसाई धर्म्म मे दीक्षित हो जाने पर हो जाती है। यदि कोई हिन्दू खान-पान और सस्कारों के विषय मे पुरानी शैली को स्वीकार नहीं करता तो वह सम्मिलित परिवार से पृथक् नहीं हो जाता। प्रश्न यह है कि क्या अन्तर्जातीय विवाह का सम्मिलित परिवार से पृथक कर देने का प्रभाव हो सकता है? ला मेम्बर (कानून-सचिव) सर नृपेन्द्र नाथ सरकार ने २२-९-३६ को निम्न प्रकार अपना मत प्रकट किया था—

> जब कोई हिन्दू आर्य्यसमाज म दीक्षित होता है तो सम्मिलित परिवार से उसका सम्बन्ध विच्छेद होता भी है और नहो भी होता परन्तु दीक्षा का जो कुछ भी प्रभाव होता है वह दीक्षा के समय ही होता है। विवाह हो अथवा न हो, विवाह के कारण ही सम्मिलित परिवार से विच्छेद नहीं होता है।"

इससे यह स्पष्ट है कि सम्मिलित हिन्दू परिवार के सदस्य का आर्य्यसमाज का सदस्य बन जाने पर, परिवार से सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता और यदि बाद मे वह आर्य्य विवाह ऐक्ट के अनुसार विवाह करता है तो १९२३ के कानून की २२ वीं धारा की तरह उसका सम्मिलित परिवार से सम्बन्ध नहीं टूटता।

# विश्वकवि का स्वर्गवास

( लेखक—श्री प० इन्द्र विद्यावाचस्पति )

विश्व कवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर के स्वर्गवास पर देश भर मे जो दु ख की लहर फैल गई है, उसका क्या कारण है ?

साधारण दशा मे अस्सी साल के बुजुर्ग की मृत्यु को कोई दु खजनक घटना नहीं समझा जाता। माना जाता है कि इतनी आयु मे मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है। उसे जीवन मे जो कुछ करना है, कर चुकता है और इस शरीर को छोडने में न उसे कोई दु ख होना चाहिए और न उसके बन्धुओं को।

इस साधारण सिद्धात के अनुसार विश्वकवि का स्वर्गवास कोई दु खजनक घटना नहीं होनी चाहिए। एक साहित्यिक यश और गौरव की जिस चरम सीमा तक पहुँच सकता है, विश्वकवि वहाँ तक पहुँच चुके थे। देश और विदेश मे उनकी कही हुई एक एक पक्ति बडी श्रद्धा और आदर से सुनी जाती थी। ससार के शिक्षित लोगों मे उनका स्वर्गीय सगीत, जिस प्रेम से सुना जाता था, वर्तमान युग में उसकी उपमा मिलनी कठिन है।

स्मृतिकार के इस वाक्य को विश्वकवि ने सार्थक कर दिया था—

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशा दग्र जन्मनः।
स्वंस्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

इस देश के विद्वानों के उपदेशों और चरित्रों से पृथ्वी के समस्त मनुष्य अपने लिये शिक्षा ग्रहण करें, विश्वकवि ने अपने जीवन मे इस प्राचीन विद्वानोंके आदर्श को स्थापित कर दिया था। देश और विदेश मे उनकी कविता की माँग थी।

इतना ही नहीं, अपने आदर्शों को पूर्ति के लिए उन्होंने शान्तिनिकेतन मे जिस विद्यामन्दिर की स्थापना की थी, वह भी एक प्रकार से पूर्णता को प्राप्त हो चुका है। विश्वकवि ने अपनी सारी सम्पत्ति शान्तिनिकेतन की पूर्ति मे लगा दी है। इस प्रकार इनका जीवन हर तरह पूर्ण सफलता प्राप्त कर चुका था। निश्चय है कि अन्तिम साँस लेते समय विश्वकवि के हृदय में अपने जीवन से पूर्ण सन्तोष होगा।

परन्तु क्या भारतवासी भी उनके स्वर्गवास की घटना को उसी सन्तोष से स्मरण कर सकते है। मैने कहा कि आमतौर पर अस्सी वर्ष के बुजुर्ग की मृत्यु से परिवार मे दुःख नहीं मनाया जाता, पर अस्सीवर्ष की आयु मे विश्वकवि की मृत्यु पर सारा देश एक अभाव और पीडा को अनुभव कर रहा है, उसका क्या कारण है ?

उसका कारण यह है कि जहाँ साधारण मनुष्यों की उपयोगिता आयु के बढ़ने के साथ घटती जाती है, वहाँ विश्वकवि की उपयोगिता समय के साथ देशवासियों के लिए निरन्तर बढती जा रही थी। यह ठीक है कि वह हर रोज की प्रचलित राजनीति मे भाग नहीं लेते थे, परन्तु यदि हम यह कहें कि वह देश की किस्मत के रातदिन जगाने वाले पहरेदार थे, तो अनुचित नहीं होगा। प्रचलित राजनीति मे कोई विशेष हिस्सा न लेते हुए भी उनके कान न केवल अपने देश प्रत्युत सारे ससार के शब्द को निरन्तर सुनते रहते थे और हर ऐसे अवसर पर जब अपने देश अथवा मनुष्य जाति को किसी चेतावनी की जरूरत होती थी, तब शाति निकेतन से विश्वकवि का ओजस्वी सगीत आकाशभर मे गूज जाता था। प्राचीन ग्रन्थों मे आकाशवाणी की चर्चा आती है, भले पुरुषों को प्रोत्साहित करना और दुष्टों को सावधान करना आकाशवाणी का काम था। विश्वकवि डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर को हम वर्तमान समय की आकाशवाणी कह सकते हैं। वह हर आवश्यक समय पर आकाश मे गूज जाती थी और यह उस आकाशवाणी के सत्य होने का प्रमाण था कि सब जगह वह आदर और श्रद्धा से सुनी जाती थी। विशेष रूप से भारतवासी तो उस आकाशवाणी को अपने राष्ट्रीय जीवन का एक आवश्यक अग मानने लगे थे।

विश्वकवि की मृत्यु पर भारतवासियों को जो इतना गहरा दुःख हो रहा है, उसका यही कारण है। वे अनुभव कर रहे हैं कि उनको प्रोत्साहित और सावधान करने वाली आकाशवाणी सदा के लिये अन्तर्ध्यान हो गई। विश्वकवि के सगीत सदा जीवित रहेंगे, परन्तु वह गम्भीर नाद जो अधेरे मे ठोकर से बचा दिया करता था और राष्ट्र की आपत्ति के समय राष्ट्र के सेवकों को प्रोत्साहित कर दिया करता था, वह शान्त हो गया, इस क्षति को भारतवासी सदा अनुभव करते रहेंगे।

---

# महिला-जगत्

( मई क अङ्क से आगे )

## मातृत्व की ओर

माता की पदवी प्राप्त करने वाली कन्याओ के जानने योग्य बातें

### आदर्श गृहस्थ कैसे बनता है ?

ले०—श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक )

घर को झाड बुहारकर और घर की वस्तुओं को यथा स्थान रखकर सुशीला स्नान करने बैठी थी कि इतने मे ही दमयन्ती उसके घर पहुँची। उसने अपनी नोटबुक देखकर कहा, "शील। जल्दी करो, आज बहिन जी से आदर्श ग्रहस्थ के सम्बन्ध मे बातचीत करेंगे। आज मुझे भी घर पर काम है, जल्द ही वापस जाऊँगी।" सुशीला ने कहा "लो मै अभी स्नान किये लेती हूँ, तुम जाकर जीजी को तय्यार करो।" यह सुनकर दमयन्ती कमला बहन के कमरे मे गई। कमला बहिन को फूलों की माला बनाते हुये देखकर उसे बडा आश्चर्य हुआ। वह पिछले पैर लौटकर सुशीला के पास गई। उसने कहा "शील। कमला बहिन तो बडे ध्यान से फूलों की माला गूँथ रही है। मालूम पडता है किसी का विवाह है। क्या तुम्हें मालूम है किसका विवाह है ?" सुशीला ने आश्चर्यचकित होकर उत्तर दिया "नहीं, मुझे मालूम नहीं है। लो मैं स्नान कर चुकी। चलो, जीजी से मालूम करें।"

सुशीला और दमयन्ती कमला के पास गईं। दोनों ने दूर से कमरे में झाक कर देखा। कमला ने उन्हें देखकर कहा, आओ। आज मैं सुशीला को घर के काम में मदद नहीं दे सकी। शील। तुम नाराज तो नहीं हो। सुशीला और दमयन्ती ने कहा 'जीजी ! आज किसी का विवाह मालूम होता है। पर आप है बडी कोई। हम से जिक्र तक न किया। लाओ हम आपकी मदद करें। क्या हमे सत्कार में नहीं ले जाओगी ?" कमला ने कहा 'मैं यह माला एक देवी के शव पर डालने के लिये तय्यार कर रही हूँ।"

दमयन्ती ने डर कर कहा 'अरे। यह तो बडा अशुभ समाचार है। जीजी॥ वे देवी कौन हैं। उनकी मृत्यु की खबर तो अखबार मे नहीं छपी। फिर आप माला क्यों बना रही है।"

कमला ने मन्द मुस्कान के साथ कहा "वह देवी अरुणप्रभा देवी हैं। क्या जिनकी मृत्यु की खबरें अखबारों मे छपी होती हैं वे ही बडे व्यक्ति होते है?" बात यह नहीं है, यह देवी उस फूल के सदृश थीं जो उपवन के एक कोने मे पडा हुआ अपनी मधुर सुगन्धि से उपवन को सुवासित करता रहता है।"

दमयन्ती ने कहा 'जी जी॥ आज हमे आदर्श गृहस्थ पर कुछ बातें बताओ। मेरी नोटबुक मे यह विषय लिखा हुआ है। आपने इस विषय पर चर्चा करने का उस दिन वायदा भी किया था।"

सुशीला ने दमयन्ती को रोक कर कहा "दमयन्ती। आज जीजी उदास हैं फिर हमे पाठ किस प्रकार दे सकती है। तुम मौका नहीं देखती हो।" जीजी॥ आप हमे इस देवी के सम्बन्ध मे कुछ सुनाओ।"

कमला न कहा 'शीला तुमने ठीक बात उठाई परन्तु मै दमयन्ती को नाराज नहीं करूगी पहले इस देवी की चर्चा करूँगी और फिर उन स्त्रियो के चरित्र वर्णन करूगी जो आदर्शघर बना सकती है।"

दमयन्ती ने प्रसन्न होकर कहा "जीजी॥ यह ढग अच्छा रहेगा। आप इस देवी का चरित्र सुनाए। आपके सामने मेरा क्रोध न मालूम कहाँ चला जाता है।"

कमला ने कहा "यह देवी जापान देश की रहने वाली थीं। १० साल हुए जब वह इस शहर मे आई थीं। वे बडी पढी लिखी और धनी परिवार की पुत्री थीं। दुर्भाग्य से इनके पति को कुष्ट रोग हो गया। लोगों के विरोध खडा कर देने पर इन लोगों को उस नगर को छोडना पडा जहाँ ये लोग निवास करते थे। यह देवी अपने पति को अपने मयके ले गई। उनको आशा थी कि पिता के आश्रय में रह कर उनको कोई कष्ट न होगा। परन्तु इनके पिता इन लोगों को आश्रय देने के के लिए राजी न हुए। सुतरॉ विवश होकर उसे अपने पिता का घर भी छोडना पडा। अपनी पुत्री को कुष्टी पति के साथ जाता देख कर पिता ने कहा "बेटी। तुम यहाँ ही रहो। तुम इस कोढी के साथ कहाँ मारी २ फिरोगी? इसका अपने भाग्य पर छोड दो।" पिता की यह बात सुन कर पुत्री रोने लगी और कहा "पिता जी। यह न होगा। आपका घर है, हमे आश्रय न दें परन्तु मै इन्हे क्योंकर इस अवस्था

मे छोड़ सकती हूँ।" यह उत्तर सुनकर पिता चुप हो गया। यह देवी ८ १० वर्ष तक एक गाडी मे बिठाए हुए अपने पति को लिए फिरती रही और अन्त मे अपनी सेवा और परिचर्या से उन्हे स्वस्थ कर लिया। तुमने डाक्टर उत्तमा का नाम सुना होगा। वे इन्हीं देवी के पति थे।"

दमयन्ती ने प्रसन्न होकर कहा 'बहिन यह देवी सचमुच पूजा के योग्य थीं। डाक्टर साहब तो बडे देवता पुरुष थे, इनके शव के साथ हम भी चलेंगी। क्या हमे ले जाओगी ?"

कमला ने कहा "तुम भी अपनी २ माला तय्यार करलो। आओ यहीं बैठें। मैं उन स्त्रियों के चरित्र सुनाती जाऊगी जो आदर्श घर बना सकती है। इस प्रकार दोनों काम हो जायगे। कहो यह ढग अच्छा रहेगा न ?"

सुशीला ने कहा "हाँ, यह बहुत अच्छा ढग रहेगा ?"

कमला ने कहा "घर को बनाने के लिए स्त्री का पतिव्रता होना सब से आव श्यक है। तुमने सीता, सावित्री, पद्मिनी, जस्मा इत्यादि अनेक पतिव्रताओं क चरित्र सुने होंगे। उनके दुहराने की आवश्यकता नहीं है। पतिव्रता का हृदय पति निष्ठा से बडा निर्मल हो जाता है। यह बात स्पष्ट करने के लिए मै तुम्हें एक कहानी सुनाती हूँ —

"एक बार एक तपस्वी साधु भिक्षा माँगता हुआ एक गृहस्थ के द्वार पर गया। वह बडा क्रोधी था। एक समय अपने क्रोध से उसने दो कौवों को भस्म कर दिया था। जब उसने उस गृहस्थ के द्वार पर भिक्षा की रट लगाई उस समय उस घर की देवी अपने पति की सेवा मे लगी थी। भिक्षा मिलने मे विलम्ब हो जाने से साधु आगबबूला हो गया और बकझक करने लग गया। देवी को उस का क्रोध सहन न हुआ और घर के भीतर से कहा "साधु ! यहाँ कौवे नहीं बसते हैं जो तुम्हारे क्रोध से भस्म हो जायँ।" यह उत्तर सुन कर साधु चकित हो गया। शान्त होकर देवी को पुकार कर कहा "माता ! यह बता उन कौवों के भस्म हो जाने की बात तुम्हें कैसे मालूमहुई।" देवी ने कहा "अपने पति की सेवा करने से।" साधु ने देवी को मन ही मन प्रणाम करके अपना रास्ता लिया।

दमयन्ती ने कहा "बहिन क्या यह कहानी सच्ची है। मुझे तो इस पर विश्वास नहीं होता।

कमला ने उत्तर दिया "यह कहानी सच्ची है मैं यह नहीं कहती परन्तु इससे शिक्षा बडी उत्तम मिलती है।"

सुशीला ने कहा "यह तो स्त्री को पुरुष की दासी बनाने जैसी बात है। स्त्री और पुरुष मे समानता का दर्जा होना चाहिए। मैने कई अखबारों मे ऐसा ही पढा है।"

'कमला चुप हो गई। कुछ देर ठहर कहा—

"शील तुम्हारी बात सही है। स्त्री और पुरुष मे समानता का ही दर्जा होना चाहिए परन्तु पति और पत्नी को स्त्री और पुरुष के दर्जे मे रखना ठीक नहीं है। यह हमारी पतिव्रता माताओं और बहिनों का पुण्यप्रताप है कि भारतवर्ष मे इस अवस्था मे भी नारीत्व का गौरव बचा हुआ है। एक बार ऋषि दयानन्द ने हमारे राजाओं के दुराचरण को देख कर कहा था कि उन राजाओं की रक्षा उनकी रानियों के पतिव्रत धर्म से हो हाती है अन्यथा ये कभी के नष्ट हो गए होते। हम स्त्रियों के के लिए क्या यह कम गौरव की बात है।"

कमला ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा "स्त्री को अपने परिवार के बडे लोगों के साथ प्रेम और आदर का व्यवहार करना चाहिए।

दमयन्ती ने कहा "बहिन। इस सम्बन्ध मे मुझे एक बडी अच्छी कहानी याद है।"

कमला न कहा "सुनाओ।"

दमयन्ती ने कहा "एक बूढे व्यक्ति थे। बुढापे के कारण वह ठीक ठीक रीति से खा पी नहीं सकते थे। खाने की मेज पर बैठते तो बच्चों की तरह उसे खराब कर देते। एक दिन कॉच की प्याली हाथ मे लिए खाना खा रहे थे। उसी मेज पर उनका पुत्र और पुत्र-वधू भी खाना खा रहे थे। हाथ हिल जाने से कॉच की प्याली उनके हाथ से गिर कर टूट गई। उनकी पुत्र वधू ने क्रोध में आकर कहा 'इस बूढे के लिए लकडी की तश्तरी बनवाओ। यह रोज कॉच की प्यालियॉ तोड देता है।" उस बूढे ने गहरी सॉस ली और कुछ न कहा। दूसरे दिन बूढे को लकडी की तश्तरी में खाना दिया गया। बूढा इस अपमान को सहन न कर सका और खाना छोड कर अपनी चारपाई पर जा लेटा। उसी समय उस स्त्री का एक छोटा लडका जमीन पर बैठा लकडी से खेल रहा था। मॉ ने पुकार कर पूछा "बेटा क्या कर

रहे हो ?" लडके ने कहा "अम्मा ! लकडी से तश्तरी बना रहा हूँ। जब तुम बूढे हो जाओगी तो बाबा की तरह उसी मे खाना दिया करूँगा।"

अपने पुत्र के उत्तर को सुन कर पति और पत्नी दोनों अवाक् रह गए। उन्होंने अपनी भूल अनुभव की और उस दिन से वह अपने पिता की बडी सेवा करने लगे।

इस कहानी को सुनकर कमला बडी खुश हुई उसने कहा 'इस बात को तुम लोग बहुत अच्छी तरह समझ गई हो। अब मुझे कुछ कहने की जरूरत नहीं।"

घर के अन्य लोगों के साथ भी स्त्री को दया और प्रेम का व्यवहार रखना चाहिए। तुमने रामायण पढी होगी। महारानी सीता का लक्ष्मण आदि के साथ कैसा उत्तम व्यवहार था यह तुम जानती ही हो। इस सम्बन्ध मे कौशल्या और सुमित्रा के व्यवहार की एक कथा स्मरण कर मेरी आखों मे आसू आ जाते है।

सुशीला ने कहा 'जीजी ! हमे अवश्य सुनाएँ।

कमला ने कहा 'राम रावण युद्ध मे लक्ष्मण घायल हो गए थे। हनुमान उनके लिए औषधि ले जा रहे थे। मार्ग मे अयोध्या मे भरत से उनकी भेंट हुई। हनुमान से यह ज्ञात होने पर कि वे राम के प्रिय अनुचर है और लक्ष्मण के लिए औषधि ले जा रहे है ? भरत बडे प्रसन्न हुए और उन्हे माताओं के निकट ले गए। माताओं ने हनुमान से राम लक्ष्मण और सीता का हाल पूछा। जब कुछ देर ठहरने के उपरान्त माताओं से आज्ञा माँगकर हनुमान विदा होने लगे तब सुमित्रा और कौशल्या ने राम के लिए सन्देश दिए।

सुमित्रा ने राम को सन्देश दिया "प्रिय राम ! लक्ष्मण को माता पिता ने बन जाने की आज्ञा नहीं दी थी। वह तुम्हारी सेवा के लिए ही तुम्हारे साथ बन को गया था। मैंने उसे कहा था कि तुम राम को दशरथ और सीता को मेरे स्थान पर समझना और उनकी माता पिता के समान सेवा करना। सेवा मे यदि तुम्हारे प्राणों की भी जरूरत पड जाय तो तुम सहर्ष उन्हे दे देना। जो औषधि हनुमान ले जा रहे हैं यदि उस से भी लक्ष्मण के प्राण न बचें और वह मर जाय तो तुम दुखी मत होना वरन् यह सोच कर खुश होना कि लक्ष्मण ने सेवक की उच्च से उच्च गति प्राप्त की है।

सुमित्रा के सन्देश दे देने पर कौशल्या ने राम के लिए सन्देश दिया—

"प्रिय राम । मैंने तुम्हें वन को अकेला नहीं भेजा था । मैंने लक्ष्मण को भी तुम्हारे साथ भेजा था । यदि दैवयोग से लक्ष्मण की मृत्यु हो जाय तो तुम अयोध्या को मत लौटना ।" वस्तुत ये देवियाँ प्रेम और कर्त्तव्य की सजीव देवियाँ थीं । परिवारों मे ऐसे माता पिताओं और भाई बहिनों से प्रसन्नता रहती है ।

"पाडवों के पिता पॉडु के मर जाने पर उनकी धर्मपत्नी माद्री ने सती होने का विचार किया । परन्तु उनके नकुल और सहदेव दो छोटे छोटे पुत्र थे । उनके पालन का भार उसी पर था । उसने कुन्ती के पास जाकर कहा "बहिन । मेरा विचार सती होने का है । आप मुझे आज्ञा दे ।" कुन्ती ने कहा 'नहीं । मै तुम्हे सती न होने दूँगी । मै स्वय सती होने का निश्चय कर चुकी हूँ ।' माद्री ने कहा 'बहिन यह न होगा । मेरी उम्र अभी थोडी है । बच्चों की मै देख रेख नहीं कर सकती जैसी आप कर सकती हैं । इसलिए आप अपना विचार छोड दें और मुझे सती होने दें । मै नकुल और सहदेव को आप पर छोडती हूँ । मेरी अपेक्षा आप उनका अच्छी तरह पालन पोषण कर सकती हैं ।" अन्त मे माद्री सती हो गई ।

सुशीला ने पूछा 'क्या पाँचों पाण्डव दो माताओं से उत्पन्न हुए थे । मै तो पाँचों को कुन्ती का ही पुत्र समझती थी ।"

दमयन्ती ने कहा 'शील, मै भी ऐसा ही समझती थी ।"

कमला ने कहा 'यह माता कुन्ती का सम्मान है कि उन्होंने अपनी सौत के पुत्रों को अपने ही पुत्रों के समान पाला ।

स्त्री को अपने नौकरों के साथ सद्व्यवहार से पेश आना चाहिए । मैंने ऐसे घर देखे है जहाँ नौकरों और घर के लोगों मे भेद करना कठिन हो जाता है । ऐसे घर धन्य हैं ।

"सर सैयद अहमद खाँ उन महापुरुषों मे से थे जिनके महान् बनने का श्रेय उनकी माताओं को प्राप्त है । सर सय्यद की माता अपने नौकरों के साथ बडा अच्छा व्यवहार करती थीं । एक बार उनकी एक नौकरानी बीमार हुई । दैवयोग से वे स्वय भी उसी रोग से बीमार हुई, जिस रोग से उनकी नौकरानी बीमार हुई थी । सर सय्यद की माता के लिए बहुत कीमती दवाई लाई गई । गरीबी के कारण उस नौकरानी को वह दवाई मुअस्सर न हो सकती थी । अत सर सय्यद की दया-मयी माता स्वय खाने के बजाय वह दवाई नौकरानी को खिलाती रहीं । अन्त मे परमात्मा की कृपा से दोनों को आराम हो गया ।"

सुशीला ने कहा 'बहिन । यह कहानी अरुणा चाची को अवश्य सुनायेंगे। उसने कल लोला को बुरी तरह पीटा है । नौकर होते हैं तो क्या उनके मन नहीं होता ।"

दमयन्ती ने कहा 'शील । भूलना नहीं, अवश्य सुनायेंगे। यह कहानी बहुत अच्छी है ।"

स्त्रियों को परिवार के ही व्यक्तियों के साथ नहीं वरन पास पडौस और बाहर वालों के साथ अपने व्यवहार अच्छे रखने चाहिए। उनके सुख दुख मे अवश्य सम्मिलित होकर उनका प्रेम सपादन करना चाहिए ।

"पजाब प्रान्त की एक वीर कन्या की मुझे अमर घटना याद आ गई है । एक दिन शाम के समय डाकुओं ने उसके गॉव पर आक्रमण किया । इस वीर कन्या के पडौस में एक सुन्दरी लडकी थी। डाकू उसे उडाना चाहते थे। उन्होंने उस लडकी को पकडने का यत्न किया । वह घर से दौड कर इस वीर कन्या के घर आई और प्रार्थना की कि मुझे इन राक्षसों के पजे से बचाओ । इस वीर कन्या ने उस लडकी को अपने घर मे बन्द कर दिया, और डाकुओं को कह दिया कि वे किसी भी प्रकार लडकी को उसके घर से नहीं ले जा सकते। डाकुओं ने उस वीरबाला पर हमला किया । इस वीरबाला और उसकी मॉ ने उनका वीरता के साथ सामना किया । ७ डाकू उनके हाथ से मारे गये और शेष अपनी जान बचा कर भाग गए ।" पास पडौस के लिए यह त्याग महान् त्याग कहा जा सकता है ।"

स्त्रियों को दानशील होना चाहिए । गृहस्थ के सौन्दर्य के लिए यह प्रवृत्ति बडी हितकर है ।

ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का नाम तुमने सुना होगा । वे बडे दयालु थे। उन्हे यह प्रवृत्ति अपनी माता से प्राप्त हुई थी। ईश्वरचन्द्र जब ५००) मासिक पाते थे तब एक दिन ईश्वरचन्द्र के एक मित्र ने उनके हाथों मे चॉदी के कडे देख कर कहा 'ईश्वरचन्द्र की माता के हाथों मे चॉदी के कडे शोभा नहीं देते ।" ईश्वरचन्द्र की मॉ ने उत्तर दिया 'ईश्वरचन्द्र की मॉ के हाथों की शोभा सोने चॉदी के कडों से नहीं है। इनकी शोभा तो दीन दुखियों, अनाथों और सत्पात्रों की सेवा करने मे ही है। तुम्हें पता नहीं है अकाल के दिनों मे ये ही हाथ नित्य सेकडों भूखों के लिए भोजन बनाते और खिलाते थे ।"

'एक बार जब श्री कृष्ण जी वृन्दावन मे ग्वालों के साथ गऊए चराया करते

थे, जगल मे घोर तूफान और वर्षा मे घिर गए। उनके साथ कई गोप भी थे। वे सब पहाड की तलहटी मे खडे हो गए। इस प्रकार खडे २ रात हो गई। ग्वाले दिन भर के भूखे थे। भूख से व्याकुल होकर दुखी होने लगे। श्री कृष्ण जी को उनकी दशा पर बडी दया आई। वहा ही पास मे तपस्वी ऋषियों के आश्रम थे। श्री कृष्ण ने उन्हें कहा 'तुम इन ऋषियों के पास जाओ, वे तुम लोगों को खाने के लिए कुछ देंगे।' वे गोप, ऋषि आश्रमों मे गए। ऋषियों ने उन्हे निराश लौटा दिया और कहा 'हमारा अन्न पवित्र है। तुम जैसे नीच कुल के व्यक्तियों के योग्य नहीं है।" कृष्ण जी को उन ऋषि कहे जाने वाले व्यक्तियों के व्यवहार से बडा दु ख हुआ। उन्होंने कहा 'जाओ। ऋषि पत्नियों से भोजन मॉगो। वे अवश्य तुम्हे भोजन देंगी। क्योंकि वे स्त्री हैं।" यह सुन कर गोप ऋषि पत्नियों के पास गए। ऋषि पत्नियॉ तत्काल भोजन ले आईं और गोपों को देने लगीं। ऋषियों को इसका पता लगते देर न लगी। उन्होंने अपनी पत्नियों को बहुत मना किया परन्तु उन्हों ने उनकी एक न मानी।"

यह कह कर कमला चुप हो गई, और एक दम अपना मस्तक नत कर लिया। सुशीला और दमयन्ती इस बात का रहस्य न समझ सकी, और पूछा, बहिन। आप एक दम क्यों रुक गई।

कमला ने कहा 'हमारा कितना अच्छा सौभाग्य है कि हमे परमात्मा ने इस भारत भूमि में जन्म दिया है जहॉ के महापुरुषों को हमारी दयालुता के सम्बन्ध मे कोई सन्देह न था और जो यह कह कर हमारा सम्मान करते थे कि "जाओ तुम्हें वे अवश्य भोजन देंगी क्योंकि वे स्त्री हैं।"

सुशीला और दमयन्ती आगे कुछ न पूछ सकीं।

कमला ने कहा 'हमारी मालाए पूरी हो गई हैं। अब यह चर्चा समाप्त होती है। मैं एक दो दिन मे अपने घर चली जाऊगी। परमात्मा ने कृपा की तो अगले वर्ष यह चर्चा प्रारम्भ होगी।"

परमात्मा से प्रार्थना करो कि हमारे देश में और हमारे देश के बाहर सर्वत्र योग्य माताए जन्मे और समाज का निर्माण उन्हीं के हाथों मे हो।"

# आर्यसमाज की चिंगारियां

## लाला रामजीदास खजाँची लुधियाना

लाला रामजीदास जी खजाँची सदर लुधियाना श्री लाला जटमल जी खजाँची लुधियाना के सुपुत्र थे। श्री लाला साहिब का मुशी कन्हैयालाल अलखधारी जी से बहुत प्रेम था। जब अलखधारी जी की प्रेरणा से महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज ३१ मार्च सन् १८६६ को लुधियाना पधारे और बागबन्सीधर मे ठहरे, जो बाग अब खजाँची जी की मल्कियत है महर्षि जी के उपदेश १।४।७७ से प्रारम्भ होकर श्री लाला जी के रिहायशी विशाल भवन चौडा बाजार लुधियाना मे होते रहे। मेरी आयु उस समय नौ, दस साल की थी। बडे चाव से महर्षि के उपदेशों मे सम्मिलित होता था। ऋषि के उपदेशों ने शहर मे हलचल पैदा कर दी। जिसका आम चर्चा था। श्री लाला जटमल खजाँची का जहाँ हुक्मवालों मे काफी से अधिक प्रभाव था, वहा शहर मे भी आप को अतिमान की दृष्टि से देखा जाता था। यही कारण था कि महर्षि के विरोधियों की उडाई गप्पों का कुछ असर न हुआ। जनता शौक से स्वामी जी के उपदेशों में सम्मिलित होती रही। श्री स्वामी दयानन्द जी के पुण्यप्रताप क फल से श्री लाला जी के सुपुत्र ला० रामजीदास जी दृढ वैदिक धर्मी बन गय। इसके साढे पाँच साल पश्चात् २६ १०-८२ को ला० राम जी दास जी खजाची सदर क यत्न से आर्य समाज लुधियाना स्थापित हुआ। खजाची जी ने ला० शिवसरनदास सूद ठेकेदार को प्रधान बनाकर आप उप प्रधान बने। उसी समय से श्री खजाची जी आर्यसमाज की वृद्धि के लिये अधिक भाग लेते रहे। आप तहसीलदारी की परीक्षा मे चौथे नम्बर पर उत्तीर्ण हुए। मगर आपने तहसीलदारी की अपेक्षा स्वतन्त्र जीवन को मुख्यता देकर साफ इन्कार कर दिया। थोडे समय बाद खजाची की उच्च योग्यता से प्रभावित होकर गवर्नमेंट ने उनके फरायज मन्सबी के अतिरिक्त उनको आनरेरी मजिस्ट्रेटी के अधिकार भी दिये। इसके पश्चात आपको सब रजिस्ट्रार भी नियत किया गया। ऐसे जुम्मेदारी के अधिकारों को आपने जहाँ इमानदारी से निभाकर शहर में अपने न्याय की धाक बैठा दी थी वहाँ आर्यसमाज लुधियाना का मुख उज्ज्वल किया। आज यदि

आर्यसमाज लुधियाने की पजाब में चोटी के समाजों मे गिनती है तो मै कहूँगा यह सब कुछ श्री स्वर्गवासी ला० रामजी दास जी खजाची व उनके परिवार के अगाध प्रेम का प्रमाण है। आपने निहायत खुश खुल्क, इन्साफ पसन्द, मामला फहम और मेल जोल की नीति के कारण सारे नगर मे असाधारण रूप मे सर्व प्रियता प्राप्त की थी। जिस कदर कोई उनके समीप होता आपकी इज्जत उनके दिलों मे बस जाती। जिस कदर योग्यतायें खजाची जी के व्यक्तित्व मे थीं वे एक जगह कम देखने में आती हैं। कुछ उच्च नियम थे जिनकी आप निहायत दृढता से पालन करते थे। धनवान समृद्ध तथा प्रभावशाली होते हुए भी आप एक सादा जीवन व्यतीत करते थे जो कि हर एक का काम नहीं। झूठी टीप टाप, वाह्य दिखावा कभी आपने नहीं किया। प्रभावशाली व्यक्ति होते हुए भी कभी किसी व्यक्ति का पहले नमस्ते कहने का अवसर नहीं दिया। उनका व्यवहार हर एक के साथ एकसा था। ऊँच नीच का कोई भाव उनके समीप नहीं फटकता था और नाहीं कभी खजाची जी ने बडाई का अभिमान किया। प्राय देखने मे आया जब कभी भी उनको आर्यसमाज या किसी पबलिक सभाओं मे तकरीर करने का अवसर मिला इस सफाई और योग्यता से तकरीर की कि सब मोहित हो जाते थे। क्या मजाल जो एक शब्द भी काँटे के तोल न हो। यह गुण ईश्वर की देन था। शहर की हर एक तहरीक मे आपकी समूलियत काबल फख्र समझी जाती थी। जहा भी आप गये आपने आर्यसमाज का मुख उज्ज्वल किया। जिस पर आर्यसमाज लुधियाने को ठीक ठीक अभिमान है। इसके विरुद्ध प्राय धनाढ्यों मे जो नाजुक मिजाजी होती है आप मे न थी आप मे जिन्दा दिली की बडी भारी सिफ्त थी। आला सजीदगी रखते हुए भी कोई न कोई मुहज्जब लतीफा कह दिया करते थे। आपकी तालीम और तरबियत की ये खूबी थी। जो खूबियाँ एक मनुष्य मे होनी चाहिये वे सब खजाची जी मे उपस्थित थी। परन्तु मसरूफियत के होते हुए भी आर्यसमाज की बहतरी का हर समय उनको ध्यान था। आप को नव युवकों और विद्यार्थियों मे वेद प्रचार का प्रेम विशेषता से था। उस समय की आर्यकुमार सभा लुधियाने की रौनक को आँखें तरस रही हैं। कोई सप्ताह ऐसा नहीं था कि जिसमे आप उपदेश न देते हों। उन दिनों आर्य कुमार सभा के मन्त्री आपके सुयोग्य पुत्र लाला शिव-प्रसाद जी थे। आर्य हाई स्कूल लुधियाना, आर्य कन्या पाठशाला आपके और स्वर्गीय श्री ला० उमरावसिंह जी के उद्योग का परिणाम है। और इस समय

दोनों संस्थाएँ लह लहा रही हैं। श्री स्वर्गीय ला० उमरावसिंह जी ला० रामजी दास जी खजाची प्रिंसिपल रामलाल जी दीगर अधिकारियों ने स्कूल और पाठ शाला को जहाँ अपने अनथक पुरुषार्थ से उच्च से उच्च शिखर पर पहुँचाकर आर्य समाज लुधियाने का नाम रोशन किया है वहाँ आर्य हाई स्कूल मैनजिंग कमेटी ने आर्य मैडिकल स्कूल और दयानन्द हास्पिटल को अपने हाथ मे लेकर जिसमे लाखों का व्यय हो रहा है इनको उच्च शिखर पर पहुचाने का श्रेय प्राप्त किया है।

गुरुकुल कागडी और उसके सचालक पूज्य महात्मा मुन्शीराम जी और खजाची जी का अगाध प्रेम था। इसी प्रेम वश होकर खजाची जी ने अपने सुपुत्र ला० शिवप्रसाद जी का यज्ञोपवीत संस्कार महात्मा जी के कर कमलों से कराया था। महात्मा जी के प्रभाव का ही परिणाम है कि रायसाहिब ला० शिवप्रसाद आर्य समाज लुधियाना के नेता है।

गुरुकुल कागडी के उत्सव पर खजाची जी जब स्वय पधारे तो आप साधारण यात्रियों की तरह रात को हम सेवकों के साथ पहरा देते रहे। उसी समय आपके पेट मे सख्त दर्द हुआ। सारी रात बेचैन रहे परन्तु पहरे के मुकाबले मे दर्द की कुछ परवाह न की। जो सेवायें आपने आर्यसमाज लुधियाने तथा पबलिक की वे कभी भुलाई नहीं जा सकती। जब आप इगलेड की सैर के लिये गए क्योंकि आप निरामिष भोजी थे इसलिये अपने खास सेवक बुद्धा को खाना बनाने के लिए साथ ले गये। इगलैंड से बराबर लुधियाने के समाचार मगवाते रहे। आप छोटी उमर की शादी के सख्त खिलाफ थे। इगलैंड यात्रा की वापसी पर एक ट्रैक्ट नुकसानात शादी कमसनी लिखकर बाटा। ऐसे महान् व्यक्तियों का आर्यसमाज लुधियाना को मिलना दुर्लभ है।

१७ ७-१९०६ को आप साधारण तौर पर कचहरी से घर आ रहे थे। रास्ते में गाडी की घोडी बिदक गई। किसी तरह भी काबू मे न आई। आखिर घास मण्डी के कुछ दूर जाकर एक और गाडी से टकराई। खजाची जी उछलकर दाए पहलू की तरफ ऐसे गिरे कि घुटने की हड्डी टूटकर दो इच बाहर आ गई। शहर में हाहाकार मच गया। हम सब लोग भागे २ वहाँ पहुँचे तो बजाय इसके कि कुछ और कहते कहा कि पहले मेरे सईस की खबर लो। गरीब का क्या हाल है। कैसे उच्च भाव थे। अपने कष्ट का जरा भी ख्याल नहीं। सईस का इस कदर ख्याल है। यह एक उनकी महत्ता का नमूना है। उसी समय आपको तख्त पोश पर लिटा

कर लाये उसके पश्चात् सिविल सर्जन, असिस्टेएट सर्जन ने फौरन आकर मरहम पट्टी की। अगले दिन डाक्टरों के मशविरे से डाक्टर स्मिथ सिविल सर्जन को जालधर से बुलाकर आपरेशन कराया गया। मगर आपरेशन के बाद ऐसा ज्वर चढ़ा जो जान लेकर ही गया। जिस शक्ति से उन्होंने यह कष्ट सहा वह आपका ही हिस्सा था। ओ३म् २ का जाप करते रहे। बेकरारी का कोई इजहार नहीं किया। चोट लगने के बाद मेरा हाथ अपने हाथ मे लेकर फर्माया कि मिस्टर। चोट का तो कोई फिकर नहीं। डाक्टर कहते है कि चलने फिरने मे दो मास लगेंगे। पडे २ कैसे गुजरेगी। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्सग मे कैसे जा सकूगा। फिर कहा कि मै गाडी से कूद कर बच सकता था मगर न जाने ऐसा करने से कितनों को चोट पहुँचती। अन्तिम ये उच्च भाव आपके अनुकरणीय है। १५-८-१९०६ को पूज्य ला० रामजी दास जी खजाची साढे चार बजे प्रात काल सदैव के लिये हमे बिलखता छोड गये। आपकी अचानक मृत्यु पर महात्मा मुन्शीराम जी ने सद्धर्म प्रचारक मे यह लिखा " यह सदमा मेरे लिए भी सख्त है। स्वर्गीय खजाची जी के साथ मेरा विशेष सम्बन्ध था। आर्यसमाज के लिए बगैर किसी दिखलावे के जो हित खजाँची जी को था, वह कम लोगों मे देखने मे आया है। अपनी तबीयत की यकरगी मे वे अपना आप नमूना थे। बरसों न मिलने के बाद जब कभी मिला, वही प्रेम था। वही बेतकल्लुफाना रिश्ता देखा। आह। हमारे कर्म केसे हैं कि जिस खूबी का आदमी हम से जुदा होता है उसके साथ का फिर दूसरा दिखाई नहीं देता।"

परमात्मा की कृपा से आपके सुयोग सुपुत्र रायसाहिब शिवप्रसाद जी खजाची आनरेरी मजिस्ट्रेट, रायबहादुर रगीलाल जी एम. ए जज हाईकोर्ट लाहौर, रायसाहिब लाला श्रीकृष्णदास जी M S, , लाला बालकृष्ण जो डिप्टी रजिस्ट्रार कोआपरेटिव सोसाइटी पजाब, अपने पूज्य पिता ला० रामजीदास जी खजाची के चरण-चिन्हों पर चलते हुए आर्यसमाजिक कार्यों मे नुमाया भाग लेकर अपने वैदिक धर्म मे दृढ़ हैं। आर्यसमाज लुधियाना को आपके परिवार पर अभिमान है जिनकी उदारता से लुधियाना आर्यसमाज, आर्य हाई स्कूल, आर्य कन्या पाठशाला, मैडिकल स्कूल, दयानन्द की हास्पिटल जैसी सस्थाये चल रही है।

—लब्भूराम नय्यड, आनन्दाश्रम, लुधियाना।

## मौनी प्रचारक पं० विष्णुदास

पण्डित विष्णुदास जी उदासी साधु थे। आपके चाचा भी साधु थे। उनका नाम रामदास जी था। वह इनको बाल्यावस्था में अपने पास ले आए और कुछ समय के पश्चात् बाबा दयाराम जी का शिष्य बना दिया। बाबा दयाराम जी ग्राम लताला जिला लुध्याना मे निवास करते थे। आप सस्कृत पाठशाला भी चलाते थे, जिसमें मध्यसिद्धान्त कौमुदी तक व्याकरण और रघुवशादि साहित्य और चिकित्सा तथा तर्क-सग्रह न्याय के ग्रन्थ तथा शीघ्रबोधादि ग्रन्थ पढाए जाते थे। पण्डित विष्णुदास जी का जन्म स्थान मालेरकोटला राज्य मे कुठाला नाम का ग्राम था। इन्होंने प्रथम लताला मे गुरु जी के पास अध्ययन किया फिर हरद्वार मे जाकर पढा और भागवत् पुराण की कथा आश्रम मे करने लगे। पश्चात् महाभारत को कथा का आरम्भ किया। आप इनमे से किसी एक की कथा किया करते थे। फिर अमृतसर मे बाबा ज्ञानप्रकाश जी से चिकित्सा पढ कर बनारस गए वहाँ अमृतशास्त्री जी से चिकित्सा का पाठ समाप्त किया। यह शास्त्री जी के आन्तिम विद्यार्थी थे और शास्त्री जी के सुपुत्र त्र्यवक शास्त्री जी काशी जी में वैद्य है। पश्चात् यूनानी चिकित्सा पढी। इस प्रकार आप अपने समय के अपने प्रान्त मे उत्तम वैद्य और वैद्यक के अध्यापक माने जाते थे।

लताला ग्राम के समीप मैंणोरोडा ग्राम है। वहा चौधरी हरीसिह जी आर्य समाजी थे। उन्होंने आपको 'तकजीव ब्राहीन अहमदीया' नामकी पुस्तक दी उसे पढ कर आपके विचार आर्यसमाज की ओर झुके। पश्चात आपने सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका पढी। उनके पढने पर आप आर्यसमाजी हो गए। दवात उनके गुरु भ्राता पण्डित यमुनादास जी सस्कृत व्याकरण और न्याय के पण्डित थे वह भी आर्यसमाजी बाहर ही हो गए थे। उनसे इनको सहायता मिली। उनकी घटना फिर कभी लिखूँगा। तब पडित जी कुछ समय के लिए जालधर चले गए। उस समय महात्मा मुँशीराम जी जालधर रहते थे और गुरुकुल प्रारम्भिक पाठ शाला के रूप मे जालधर मे था। उस समय आपने वहाँ निवास करके आर्यसमाज के सिद्धान्त समझे और वहाँ से ही आपने शुद्धि का दृश्य देख कर उसे स्वीकार कर लिया। इस प्रकार आप उस समय से आर्यसमाज के प्रचारक बन गए परन्तु व्याख्यान कभी न देते थे। लताला आश्रम मे पढने के लिए साधु पर्याप्त

सख्या में आते थे। आप उन पर आर्यसमाज का प्रभाव डालते थे। आप ,केवल बातचीत से ऐसा किया करते थे और बातचीत का विचित्र ढंग था। एक समय प० गगेश्वरानन्द जी ने उनसे प्रार्थना की थी कि महाराज आप वृद्ध है, हमारे पूज्य हैं, आप जितना समय चाहें हमारे पास ठहर सकते हैं, परन्तु आप बातचीत न किया करे। क्योंकि आपकी बातें श्रोताओं को आर्यसमाजी बनाती है। तब आपने उत्तर दिया था यह मेरा कर्तव्य है मै उसे करूँगा, आप कहे तो मै आपके पास से चला जाता हूँ। स्मरण रहे कुम्भ पर पडित जी उनके पास ठहरे हुए थे।

आप प्रति वर्ष लाहौर, लुध्याना आदि आर्यसमाजों के उत्सव पर जाया करते थे।

जब आपके पूज्य गुरु आपको अपना उत्तराधिकारी बनाने लगे तो आप आश्रम छोड कर अमृतसर चले गये थे। परन्तु आश्रम का महन्त फिर भी उनको बनाया गया। उस समय अमृतसर मे एक साधु ने उनको लेखक के सामने कहा था कि आप मूरख है जो आश्रम छोड कर चले आए हैं। आपने उत्तर दिया था मुझे कोई व्यसन नही है। साधारण भोजन वस्त्र से मै सन्तुष्ट हूँ। यदि मुझे यह भी न मिलेगा तो मरना अच्छा है। आप त्यागी महात्मा थे।

जब आप महन्त बने तब कई लोगों ने कहा था आप आर्यसमाज को छोड दे, तब महन्ती मिलेगी। आपने उत्तर दिया था मै आर्यसमाजी हूँ आप चाहे मुझे महन्त बनाए या न बनाए मै आर्यसमाज को न छोड़ूगा। आप फिर भी महन्त बनाए गए। तब आपने प्रचार का क्षेत्र बढा लिया। आपने बिना व्याख्यान दिए शतश साधु और सहस्रों गृहस्थ आर्यसमाजी बनाए उस समय यह आश्रम साधुओं मे आर्यसमाजी आश्रम था।

जब अकालियों का उदासियों से मकानों के लिए विवाद हुआ तब इस आश्रम मे उदासियों के लिये अत्यन्त उत्तम काम किया। उस समय प० विष्णुदास जी और प० रामस्वरूपजी इन विवादों मे अग्रणी थे। उस समय पचायती अखाडे के एक महन्त ने उनसे कहा था पडित जी हमे यह आशा न थी आप उदासियों के लिये इतना परिश्रम करेंगे। आपने उत्तर दिया था यदि आपका झगडा आर्यसमाजियों से होता तब तो मै आर्यसमाजी होता परन्तु आपका विवाद सिखों के साथ है इसलिये मुझे आपका काम करने मे कोई कठिनाई नहीं है।

आपसे मिलने वाले साधुओं में से इस समय कई आर्यसमाज का काम कर रहे हैं। ग्राम में जाटों को आर्य बनाया। उनमें से सरदार कुमारसिंह जी शहीद इनके ही अनुयायी थे। इनके मिलने वाले कई कॉंग्रेस में काम करते हैं।

इस प्रकार आपने बिना व्याख्यान के प्रचार किया। अत आप मौनी प्रचारक थे। आप सस्कृत उर्दू के विद्वान् थे, उत्तम वैद्य थे, त्यागी थे। आश्रम में औषधि के साथ २ भोजन, पथ्य भी गरीबों को आश्रम से देते थे। भोजन के समय जो आवे उसे भोजन मिलता था। निवास स्थान मिलता था और बातचीत में आर्यसमाज की बातें सब को सुनाते थे आर्यसमाज की भूरि २ प्रशसा करते थे।

आर्यसमाज के क्षेत्र मे शायद ही उनको कोई जानता हो। जिस समय आपका देहावसान हुआ तो सस्कार विधि द्वारा आपका सस्कार किया गया।

आर्यसमाज को अपने इस प्रकार के कार्यकर्ताओं का नाम स्मरण करना चाहिये और उनके कार्य से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

## मौनी प्रचारक पं० यमुनादास जी

प० यमुनादास जी बाबा दयाराम जी ग्राम लताला जिला लुध्याना निवासी के शिष्य थे। आप उदासी साधु थे। आप प्रज्ञा चक्षु (जन्मान्ध) थे। प्रज्ञा चक्षु होने के कारण आपको बाल्यावस्था मे ही बाबा दयाराम जी की भेंट किया गया और आपको प्रथम आश्रम में आटा छानने का काम दिया गया। आप यह काम करके विद्यार्थियों का पाठ भी सुना करते थे। कुछ समय पश्चात् पता लगा कि आप तीव्र बुद्धि होने से कौमुदी का पाठ कठस्थ कर लेते हैं। अत उनको विद्यार्थियों में सम्मिलित किया गया। आपने लघु कौमुदी समाप्त करके अमृतसर आकर पढ़ाई आरम्भ की। फिर बनारस चले गए। बनारस में व्याकरण समाप्त किया और न्याय आरम्भ किया। पश्चात् कुरुक्षेत्र में आकर रहे।

आप कुरुक्षेत्र में ही आर्यसमाजी बने और आर्यसमाज का काम वार्तालाप से किया करते थे। आप अपने विद्यार्थियों को पुराणों की कथाएं सुना कर वेद पर श्रद्धा उत्पन्न किया करते थे। आपके विद्यार्थी प्राय आपसे व्याकरण पढ़ा करते थे क्योंकि आप व्याकरण के अपने समय के अच्छे विद्वान् थे। आपने अनेक विद्यार्थियों को आर्यसमाजी बनाया। अन्त समय तक आप आर्यसमाज का प्रचार करते रहे। अमृतसर में आप रामहलीयों की धर्मशाला में रहते थे। उस समय आपके

# सुमन-संचय

( १ )

## बुराई के बदले भलाई

कुमारी डोरा एक प्रसिद्ध पादरी की पुत्री थी। उसे प्रारम्भ से ही गरीबों अनाथों और रोगियों की सेवा का चाव था। जब वह बडी हुई तो उसने घायलों की मरहम पट्टी और रोगियों की सेवा का कार्य सीखा। वह इस कार्य को बडा उत्तम समझती थी। उसे बीमारों के मन प्रसन्न करने का भेद भी मालूम था, और इस काम मे उसको ऐसा अभ्यास था कि रोते हुए आदमियों को भी हँसा देती थी।

एक दिन कुमारी डोरा एक बीमार को देखने जा रही थी। एक शरारती लडके ने उसका मार्ग रोक लिया। कुमारी डोरा ने मार्ग देने के लिए उससे बहुत कुछ कहा सुना परन्तु उसने मार्ग न दिया। इस पर कुमारी डोरा को क्रोध आया और उसने लडके को धक्का देकर उसे मार्ग से हटा दिया। उस लडके ने क्रोध मे आकर कुमारी डोरा के एक पत्थर खींच मारा जिससे उसका माथा घायल हो गया। बेचारी डोरा ने कुछ न कहा और अपने रास्ते चली गई।

थोडे दिनों के बाद एक जगह कुछ मजदूर घायल हो गये। इनमे एक लडका

---

ब्राह्मणों को आर्यसमाजी बनाया। उनमे प० धनीराम जी, पृथ्वीचन्द जी, प० रौणकराम जी आदि विद्यार्थी थे और आर्यसमाज के प्रचार से उदासी उनको आर्य समाजी कहने लग गये थे और आपने मुक्तकंठ से स्वीकार किया था कि मैं आर्यसमाजी हूँ।

यदि प्रत्येक अध्यापक उनका अनुकरण करे तो अब भी अच्छा प्रचार हो ही सकता है।

—स्वतन्त्रानन्द

भी था। जब वह हस्पताल मे लाया गया तो कुमारी डोरा ने उसे पहचान लिया और अपने मन मे कहा "यह वही लडका है जिसने मेरे पत्थर मारा था।"

एक दिन जब वह तकिए पर सर रक्खे बेचैनी से कराह रहा था तो डोरा उसके पास गई। इस समय डोरा का माथा खुला हुआ था। उस लडके के पास जाते समय वह माथे पर पट्टी बाधे रहती थी। आज उसने जाते समय अपनी पट्टी खोल दी थी। लडके ने डोरा के माथे के घाव का निशान देखा और तत्क्षण उसका दिल भर आया। मारे शर्म के उसने तकिए मे अपना मुँह छिपा लिया और रोने लग गया। डोरा ने प्रेम से उससे पूछा "भाई। कहो तुम्हारा क्या हाल है?" लडके से अब न रहा गया। उसने कहा 'बहिन। मैने ही तुम्हे पत्थर मार कर घायल किया था?' डोरा ने कहा 'क्या तुम समझते थे कि मुझे यह बात मालूम न थी?" लडके ने कुमारी डोरा के चरण पकड लिए और रुँधे हुए कण्ठ मे कहा "और तुमने इस पर भी मेरी इतनी सेवा की।"

डोरा ने बडे प्रेमसे उस लडके का इलाज किया और जब वह अच्छा होकर हस्पताल से जाने लगा तो कुमारी डोरा ने उसके हाथ मे २०) रु० देकर कहा 'भाई। लो बहिन का यह उपहार स्वीकार करो। बीमार हो जाने से तुम मजदूरी नहीं कर सके। इस रुपए से अपना काम निकालना।"

लडके की आँखों मे आँसू आ गये। उसने रुपये लौटाते हुए कहा 'बहिन। मै जन्म भर अपने दुष्कृत्य और तुम्हारी बदी के बदले भलाई के व्यवहार को याद रक्खूँगा।" कुमारी डोरा ने वे रुपए ग्रहण न किए और वह लडका डोरा को मन ही मन धन्यवाद देता हुआ विदा हुआ।

( २ )

## स्वराज्य

कुरु देश मे एक नवयुवती सुन्दरी रानी शासन करती थी। उसका राज प्रासाद सगमरमर के पत्थर का बना हुआ था और उसके चारों ओर नाना प्रकार के रग बिरगे और सुगन्धित पुष्पों की वाटिकायें थीं। धन से जो कुछ उपलब्ध हो सकता है वह उसे प्राप्त था। इतने पर भी उसे अभिमान और स्वार्थ छू तक न गया था। अपनी प्रजा को सुखी रखना उसका एक मात्र ध्येय था। जब प्रजा के दुख और क्लेश की कहानियाँ उसे सुनाई जातीं तो उसका कोमल हृदय बडा दुखी

होता था उसकी प्राय' कई कई रातें बिना सोए इस विचार मे व्यतीत हो जातीं कि मैं किस प्रकार अपनी प्रजा को सुखी बना सकती हूँ। गरीबों के लिए उसने सदाव्रत जारी किए। रोगियों की चिकित्सा के लिए जगह जगह चिकित्सालय बनवाए। बेकारों को काम पर लगवाया। प्रजा के सुख और आमोद प्रमोद के लिए अनेक मनोरञ्जन शालाएँ खुलवाईं और प्रजा की भलाई के लिए लाखों रुपये व्यय किए। उसने नए नए कानून बनवाए और इस बात पर विशेष ध्यान रखा कि प्रजा पर अन्याय न हो। इतने पर भी खेत की घास की नाईं असन्तोष, उपद्रव, अपराध, अशान्ति और क्लेश उसके राज्य मे बढते रहे।

एक दिन रानी ने नगर के एक महान् व्यक्ति से बातचीत की। उसने रानी से कहा 'तुम्हारी प्रजा को स्वाधीनता की आवश्यकता है। अपना शासन स्वय करने की हमे आजादी दो। हम स्वय सुखी बन जायेंगे।"

रानी ने तत्काल अपना मुकुट उतार कर फेंक दिया। अपना भव्य महल छोड दिया और प्रजा को स्वराज्य दे दिया। इस पर मामला और भी खराब हो गया। स्वार्थ लोलुप चालाक व्यक्तियें ने समस्त सत्ता अपने हाथों मे ले ली और प्रजा के बलिदान पर अपने स्वार्थों की सिद्धि करने लग गए। कलह और अशाति सर्वत्र व्याप्त हो गई। लोगों की भीड रानी के स्थान पर एकत्र होने लगी और वे सब उससे पुन' राज सभालने की प्रार्थना करने लगे।

एक दिन बडे भोर वह रानी उठी और पहाड के एक शिखर पर जाकर खडी हो गई। उसके मस्तिष्क मे यह विचार सर्वोपरि था कि "मैं अपनी प्रजा को वास्तविक रूप मे सुखी बनाने के लिए और कौन सा त्याग कर सकती हूँ। इसका क्या कारण है कि शासन की स्वतन्त्रता उपलब्ध करने पर भी प्रजा सुखी नहीं हुई।"

इतने मे ही किसी ने रानी के निकट आकर धीमे स्वर मे कहा "तुम्हारी प्रजा स्वतन्त्र नहीं है।" रानी ने आश्चर्य चकित होकर पीछे फिर कर देखा और एक महात्मा को अपने पास खडा देखकर उसके आनन्द की सीमा न रही। उसने महात्मा के चरणों का स्पर्श किया और हटकर चुपचाप खडी हो गई।

महात्मा ने पुन कहा 'वे स्वतन्त्र नहीं हैं।' राज महिषी। तुमने सोचा था कि वे सुखी बन गये हैं परन्तु बात यह नहीं है। तुम्हारा मन इसलिए दुखी है कि

तुम उन्हें सन्तुष्ट नहीं कर सकीं। यह तुम्हारे हृदय की विशालता है। तुम्हारी प्रजा नाना प्रकार की बुराइयों की बेड़ियों से जकड़ी हुई है। जब तक ये बेड़ियाँ दूर नहीं हो जातीं तब तक राजनैतिक स्वतन्त्रता उन्हें सुखी नहीं बना सकती। इसलिए ऐसा उपाय होना चाहिए कि इनकी ये बेड़ियाँ दूर हो जायँ। कुछ बेड़ियाँ इनके मन पर लगी हैं और कुछ शरीर पर। आओ। इन बेड़ियों को हटाने का प्रयत्न करें।"

महात्मा के इस उत्तर से रानी बड़ी प्रसन्न हुई और मन ही मन धन्यवाद देती हुई राजधानी को वापस आ गई।

( ३ )

## विक्टोरिया और गरीब बुढ़िया

महारानी विक्टोरिया बड़ी दयालु और प्रजावत्सल रानी थीं। उनकी प्रजा वत्सलता की अनेकों कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

महारानी के महल के पास एक गरीब बुढ़िया रहती थी। उसकी इकलौती पुत्री बीमार थी जिसे फूलों से बड़ी प्रीति थी।

एक दिन उसकी गरीब मां कुछ पैसे लेकर बाग के माली के पास गई और कहा "इन पैसों के मुझे फूल दे दो। मेरी पुत्री जो फूल माँगती है वे इस बाग के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं मिलते।"

माली ने कहा 'दूर हो, महारानी फूल नहीं बेचती।"

महारानी एक लता के पीछे खड़ी यह सब बातें सुन रही थीं। वे उसी समय बाहर निकल आईं और गुलाब के कुछ बड़े बड़े फूल बुढ़िया को देकर कहा:—

"यह सत्य है महारानी फूल नहीं बेचतीं परन्तु उनकी फुलवारी में प्रजा को देने के लिए मनों फूल हैं।"

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी एस सी )

( गतांक से आगे)

क्या आप नहीं देखत हैं कि मासाहारी अधिक बुद्धिमान होते हैं फल इत्यादि तो मनुष्य की बुद्धि को मन्द करते हैं ?

इस युक्ति से बढकर और क्या हास्यास्पद हो सकता है। स्वास्थ्य और स्वस्थ मस्तिष्क से निश्चय ही बुद्धि तेज होती है परन्तु मास भक्षण स्वास्थ्य के लिए बडा हानिकारक है। भारतवर्ष में और यूनान मे ऐसे बहुत से विचारक और तत्ववेत्ता हो गए हैं जो बहुत सादे शाका हार पर निर्भर रहते थे। गौतम, कपिल, कणाद, व्यास, पाणिनी और बहुत से दर्शन शास्त्र के ज्ञाता जिन की तर्क और दर्शन शास्त्र की प्रणालिया अकाट्य और सुनिश्चित हैं। एकेश्वरवाद के अनुपम विचारक शकर, रामानुज, माधव और दयानन्द ये सब जो समस्त कालों मे भारतीय जीवन का निर्माण करते रहेंगे विशुद्ध शाकाहारी थे और उनका भोजन बडा सादा था।

उदाहरण के लिए ससार प्रसिद्ध शाकाहारी श्रीयुत बर्नडशा को ले लीजिए जो प्रसिद्ध विचारक और नाटककार हैं। उनके डाक्टरों ने उन्हें कहा कि "यदि कुछ मास न खाओगे तो मर जाओगे। श्रीयुत शाने क्या किया ? उन्होंने निर्भयता पूर्वक उत्तर दिया "अच्छा' मुझे यह प्रयोग कर लेने दो। यदि मैं बच जाता हू तो मैं आशा करू गा कि आप सब शाकाहारी बन जायेंगे।"

वह बच गए परन्तु आज ४० वर्ष के पश्चात् डाक्टर लोग वही पुरानी बात दोहरा रहे हैं। उस समय उन्होंने लिखा था —

"मेरी स्थिति गभीर है। मास भक्षण की शर्त पर मुझे जीवन प्रदान किया गया है। स्वीकार पत्र में मैंने अपनी अन्त्येष्टि के सम्बन्ध में कुछ निर्देश लिखे हैं। मैंने लिखा है मेरे शव के साथ मोटर इत्यादि न जावें वरन् बैल, भेड, मुर्गियां और एक बर्तन मे रक्खी हुई जीवित मछलियां जायें और उन सब के ऊपर श्वेत कलगी

हो जिससे यह सूचित होता हो कि वे उस व्यक्ति के सम्मान में पहनी गई हैं जिसने अपने जीवन को नष्ट करना पसन्द किया परन्तु अपने साथी प्राणियों को खाना पसन्द न किया।"

ज्यौर्ज बर्नेडशा अपने स्वास्थ्य के लिए प्रसिद्ध हैं। वे कहते हैं कि मैं अपना, भोजन सदैव नारंगी के रस के साथ समाप्त करता हूँ। वध के लिए पशुओं का पालना प्राण दण्ड योग्य अपराध ठहराया जाना चाहिए।

## ओ३म्-महिमा

(ले०—श्री० साधुराम भल्ला, आर सी ए आफिस, देहली)

ओ३म् तेरा नाम है प्रभु, ओ३म् तेरा नाम है।
सबसे उत्तम श्रेष्ठ भगवन् ओ३म् तेरा नाम है॥
तीन अक्षर का ही केवल ओ३म् अक्षर इक प्रभु।
ध्यानी जन रटते जिसे वह ओ३म् तेरा नाम है॥
कोई नारायण कहे कोई कहे परमात्मा।
अधिक सब से अर्थ का प्रभु ओ३म् तेरा नाम है॥
सकल जग असत है पर सत केवल ओ३म् है।
सकल जग का करने हारा ओ३म् तेरा नाम है॥
जल मे तू ही थल मे तू ही आकाश मे तू ही प्रभु।
अजर अमर कहते जिसको ओ३म् तेरा नाम है॥
ओ३म् मे दुनिया बसी सब सकल जग मे ओ३म् है।
सर्व शक्तिमान है तू ओ३म् तेरा नाम है॥
मैं में तू है तू मे मैं है सब जगह तू ही प्रभु।
फिर भला कैसे तजूँ मैं ओ३म् तेरा नाम है॥
तू ही दयालु तू ही कृपालु तू ही न्यायवान है।
शुद्ध रख बुद्धि हमारी ओ३म् तेरा नाम है॥
*यम नियम मे दृढ हो प्यारे सच्चा सुख गर चाहे।
है मतिमद के हृदय मे भगवन ओ३म् तेरा नाम है॥

*यम=अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अपरिग्रह
नियम=शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ईश्वर प्रणिधान




# दहेज निषेध दिवस

कई आर्य कुमार सभाओं की प्रार्थना पर तथा दहेज सम्बन्धी साहित्य के छपने मे विलम्ब के कारण दहेज निषेध दिवस ३१ अगस्त को न मनाया जाकर १४ सितम्बर १९४१ ई० को मनाया जायेगा। इस सम्बन्ध मे सब साहित्य और सूचनाएँ कुमार सभाओं को भेज दिया गया है जिन्हे न मिला हो वे शीघ्र ही परिषद् कार्यालय से मगाने की कृपा करें।

## आर्य नव युवक सभा, काशी।

आर्य नवयुवक सभा काशी ने गत मास मे अपने वार्षिकोत्सव के अवसर पर अन्य वर्षों की भाति नगर कीर्तन का भी आयोजन किया था। जिसे जिला मजिस्ट्रेट ने धारा १४४ के अनुसार यह कारण बताकर रोक दिया कि जलूस से शाति भग की आशका थी और वह अप्रचलित था अर्थात् पहले कभी नही निकला था। सभा ने डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट को रिकार्ड से प्रमाणित कर दिया कि जलूस कई साल से बराबर निकलता रहा है और इसमे साम्प्रदायिकता का कोई स्थान न था। बल्कि वह एक धार्मिक जलूस ही होता लेकिन इसका कोई असर नही हुआ। नगर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों के परामर्श से सभा ने आज्ञा का उल्लङ्घन न करना ही उचित समझा और अपना उत्सव भी स्थगित कर दिया।

इस सम्बन्ध में परिषद् की कार्य कारिणी ने अपनी ३ अगस्त की मीटिग मे निम्न प्रस्ताव पास किया है।

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् आर्य नवयुवक सभा काशी के नगरकीर्तन पर डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट बनारस द्वारा लगाये गये प्रतिबन्ध को नागरिक स्वतन्त्रता

में बाधक समझता है। सभाका यह जलूस सवथा धार्मिक है। अत सरकारसे अनुरोध करता है कि आइन्दा इस पर कोई प्रतिबन्ध न लगाया जावे। परिषद् इस बात पर सन्तोष प्रकट करती है कि आर्य नवयुवक सभा ने कोई कार्यवाही अवैध नहीं की।

## परीक्षा समिति की सूचनाएँ

१. भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् की ओर से हुई जनवरी १६४१ की धार्मिक परीक्षाओं मे उत्तीर्ण परीक्षार्थियों के प्रमाण पत्र तैयार होरहे है। तैयार हो जाने पर सभी केन्द्रों के व्यवस्थापकों को भेज दिये जावेंगे। परीक्षार्थियों को अपने केन्द्र के व्यवस्थापकों से ही प्रमाण-पत्र मिल सकेंगे।

२. परीक्षा मे सम्मिलित होने के इच्छुकों को अपने २ नगर मे परीक्षा केन्द्र स्थापित कराने के लिये केन्द्र स्थापना फार्म मँगाकर शीघ्र अपना केन्द्र स्वीकृत करा लेना चाहिये। विगत वर्ष के केन्द्र व्यवस्थापकों को कार्यालय से फार्म भेजा जाचुका है जो उन्हें शीघ्र भरकर भेज देना चाहिये।

३. सिद्धान्त सरोज, सिद्धान्त रत्न, सिद्धान्त भास्कर और सिद्धान्त शास्त्री परीक्षाओं के आवेदन पत्र छप चुके है जो कार्यालय से बिना मूल्य मँगाये जा सकते हैं। परीक्षाओं मे वे ही परीक्षार्थी सम्मिलित हो सकेंगे जिनके आवेदन-पत्र नियमानुसार भरे हुये शुल्क सहित १५ अक्टूबर से पूर्व कार्यालय मे पहुँच जावेंगे। परीक्षार्थियों को आवेदन-पत्र मँगवाने और भर कर भेजने मे शीघ्रता करनी चाहिए।

४. परीक्षाओं की पाठ्य पुस्तकों और नियमों आदि की विस्तृत जानकारी के लिये कार्यालय से नवीन पाठ विधि बिना मूल्य मँगवाकर देखें।

## पंजाब आर्य युवक परिषद्, लाहौर।

इस परिषद् की स्थापना एक वर्ष पूर्व हुई थी। तभी से इसके पुरुषार्थी कार्यकर्त्ता इसकी उन्नति मे लगे हुये हैं। गत अक्टूबर मास मे भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् के प्रधान राजगुरु धुरेन्द्रजी शास्त्री ने प्रान्तीय परिषद् की ओर से पञ्जाब की अनेक युवक समाजों मे भ्रमण किया। जिसके फल स्वरूप लगभग ८०) दशांश के रूप में अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद् को मिला।

हमारे कार्यालय से जो आदेश निकलते है उनका पूरी तरह पालन किया जाता है। स्कूल की लम्बी छुट्टियों मे युवकों द्वारा साक्षरता के प्रचार के लिये जो

अपील की थी उस पर भी पञ्जाब के सब युवक समाजों ने पालन करना शुरू कर दिया है और कई युवक समाजों में हिन्दी क्लासें भी खुली हुई है।

## आर्य युवक समाज स्यालकोट

आर्य युवक समाज सियालकोट ने १ अगस्त से २० अगस्त तक एक ट्रेनिंग कैम्प का आयोजन किया है जिसमे नवयुवकों को लाठी, गतका इत्यादि सिखाया जावेगा। और उन्हे आर्य सिद्धान्तों का पूरा परिचय कराया जायेगा। पञ्जाब परिषद् की ओर से सियालकोट युवक समाज इस आयोजन को सफल बनाने के लिये पूरा प्रयत्न कर रही है। प्रान्त के सभी युवक समाजों से अपील की गई है कि वे एक या दो युवक इस कैम्प मे अवश्य भेजे। लाहौर, भेरा, सरगोधा, भेलवाल आदि अनेक समाजो के प्रतिनिधि इस कैम्प मे आरहे है। पञ्जाब परिषद् के कई कार्यकर्त्ता भी वहा जारहे है।

## आर्य कुमार सभा डी. ए. वी. हाई स्कूल, नई दिल्ली।

सभा परिषद् के नियमानुसार चल रही है। इसके ५० मदस्य हैं। सभा ने हैदराबाद सत्याग्रह के लिये २५०) की थैली भेट की और अकाल पीडितों के लिये ८०) भेजे। सभाके आजकल श्री हरिश्चन्द्रजी एम ए बी. टी. प्रधान, श्री बालकृष्ण जी मन्त्री, और पं० देवव्रतजी धर्मेन्दु सचालक है।

## आर्य कुमार सम्मेलन

आगामी भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन कानपुर मे सम्भवत दशहरा या दिवाली की छुट्टियों मे होगा।

## बिहार प्रान्तीय आर्य कुमार सम्मेलन

बिहार प्रान्तीय आर्य कुमार सम्मेलन १६, २० व २१ सितम्बर को होना निश्चित होगया है। इसके सफल बनाने के लिये जिला आर्य कुमार सभा के प्रधान और बिहार आर्य कुमार परिषद् के मन्त्री प्रान्त का दौरा कर रहे हैं।

## आर्य कुमार सभा, सुल्तानपुर।

सभा जनवरी १६३६ मे स्थापित होकर अच्छा कार्य कररही है। १८ सदस्य हैं। स्थानीय समाज का अच्छा सहयोग है। परिषद् के सभी आन्दोलनों मे सभा ने अच्छा भाग लिया है।

### आर्य कुमार सभा, धारूर।

सभा अच्छा कार्य कर रहीं है। परिषद् मे सम्मिलित होने के लिये आवेदन पत्र और शुल्क भेजा हुआ है जो अगली अन्तरङ्ग में स्वीकृति के लिये रक्खा जावेगा।

### आर्य कुमार सभा लहेरिया सराय, दरभंगा।

सभा इसी साल जनवरी मास मे स्थापित हुई है। कार्य अच्छा चल रहा है, सदस्य २० है।

### आर्य कुमार सभा, आबूरोड।

सभा दिसम्बर १६४० मे स्थापित हुई है। और कार्य सुचारुरूप से चल रहा है। सभा मे छोटे कुमारों को जो उपदेश दिये जाते हैं उनका वे घरों पर पालन करते है। यह जानने के लिये मन्त्री श्री कैलाशनाथ जी उनके माता पिताओं से बातचीत करते है जिनका उन पर अच्छा प्रभाव पडता है और कुमार सभा में नये कुमारों की सख्या बढती है। सभा मे कुमारों के खेलों का भी प्रवन्ध है। मासिक पत्रिकाये भी आती है।

### आर्य कुमार सभा, मैनपुरी।

सभा का वार्षिकोत्सव २१ व २२ जून को श्री आनन्द प्रकाश जी के सभापतित्व मे बडे समारोह के साथ हुआ। सभा का कार्य अच्छा चल रहा है।

### आर्य कुमार सभा, बक्सर।

सभा अभी स्थापित हुई है। और स्कूल के विद्यार्थी अच्छी सख्या मे प्रविष्ट हो रहे है। सभा ने परिषद से नियमावली तथा आवेदन-पत्र मगा लिये हैं और आशा है कि वह परिषद् से शीघ्र सम्मिलित हो जावेगी।

### आर्य कुमार सभा, बिलासपुर सी. पी.।

सभा १५ अक्टूबर १६४० को स्थापित हुई। इसके २५ सदस्य हैं। प्रधान श्री के. के. चोपडा, और मन्त्री श्री राजकुमारसिह बडे उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

### आर्य कुमार सभा, गंगोह।

सभा स्थानीय आर्यसमाज की देख-रेख मे चल रही है। आशा है कि परिषद् से शीघ्र सम्मिलित हा जावेगी।

## आर्य कुमार सभा कोसीकलाँ, जिला मथुरा।

सभा नियमानुसार परिषद् से सम्मिलित होगई है और यहा पर परीक्षाओं का केन्द्र भी बन गया है। इसके कार्यकर्ता उत्साह से कार्य कर रहे हैं।

मन्त्री—

भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद्

दीवान हाल, देहली।

## महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के काशी मे शुभागमन की तिथियाँ

१ विक्रम सम्वत् १९१३ आश्विन का आरम्भ (विद्यार्थी अवस्था में आए थे)
२ „ „ १९२६ कार्तिक कृष्ण २ या ३
३ „ „ १९२७
४ „ „ १९२८ फाल्गुन
५ „ „ १९३१ ज्येष्ठ
६ „ „ १९३३ ज्येष्ठ शुक्ल ४
७ „ „ १९३६ कार्तिक शुक्ल १४

अन्तिम बार महर्षि बहुत समय तक काशी मे रहे उनका अन्तिम व्याख्यान चैत्र शुक्ल ६ सम्वत् १९३७ वि० ( १५ अप्रैल सन् १८८० ई० ) गुरुवार को लक्ष्मी कुण्ड पर हुआ था और उसी दिन काशी में आर्य समाज की स्थापना हुई थी।

रामनगर महर्षि आश्विन सम्वत् १९२६ वि० मे पधारे थे और वहीं से काशी आए थे, सम्वत् १९३३ वि० में भी एक दिन वे रामनगर गए थे।

सम्वत् १९२९ वि० मे चैत्र के शुक्ल पक्ष मे महर्षि का मोगलसराय में शुभागमन हुआ था।

काशी का सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सम्वत् १९२६ वि० मे कार्तिक शुक्ल १२ मंगलवार ( १६ नवम्बर सन् १८६९ ई० ) को हुआ था।

—महेशप्रसाद

# साहित्य समीक्षा

## आर्यसमाज का इतिहास

लें०—प० हरिश्चन्द्र विद्यालंकार।

मिलने का पता—हरिश्चन्द्र विद्यालंकार, ७५१, कटरा लच्छूसिंह देहली। पृष्ठ संख्या २०×३० १६ वां १४४+८ मूल्य ॥।), डाक व्यय पृथक्।

आर्यसमाज एक प्रगतिशील संस्था है। पिछली शताब्द में अपने जन्मकाल से इसने आश्चर्यजनक उन्नति की है। इसके मित्र और शत्रु दोनों ने इसकी उन्नति पर हर्ष प्रकट किया है। ऐसी प्रगतिशील संस्था के विकास के इतिहास का अध्ययन नवयुवकों के लिये विशेष रूप से लाभप्रद होगा।

आर्य समाज का इतिहास इससे पूर्व भी कई सज्जन लिख चुके हैं। परन्तु एक सरल, संक्षिप्त और सुबोध पुस्तक की आवश्यकता थी जो न केवल विद्यार्थियों और परीक्षार्थियों के ही काम आसके अपितु साधारण आर्य जनता भी उससे लाभ उठा सके और आर्य समाज की प्रगति के शृङ्खलाबद्ध घटना क्रम को भली भांति समझ सके। इस आवश्यकता की पूर्ति का श्रेय गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक प० हरिश्चन्द्र जी विद्यालंकार को है। निस्सन्देह लेखक को इसमें पूरी सफलता मिली है।

आर्य समाज का इतिहास अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद की परीक्षाओं का एक मात्र विषय है। उक्त परिषद् की 'सिद्धान्त भास्कर' परीक्षा में यह पुस्तक पाठ्य पुस्तक है। हमें इस बात का सन्तोष है कि विद्यालङ्कार जी की यह पुस्तक परीक्षार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। प्रकरणों की समाप्ति पर पुनरावृत्ति के लिए प्रश्नावली दी गई है। प्रस्तुत विषय को समझने में इससे विद्यार्थी को बहुत सहायता मिलेगी।

संस्थाओं का इतिहास लिखने में लेखकों को प्रायः विवादास्पद विषयों पर चर्चा करते समय कठिनाई अनुभव होती है। परन्तु इस पुस्तक में लेखक ने गम्भीरता पूर्वक आलोचना करते हुए भी किसी पक्ष विशेष का पक्ष नहीं लिया। और स्वयं भी किसी दल के प्रतिनिधि नहीं बने।

हमे पूर्ण आशा है कि लेखक महोदय इस शैली का अनुसरण करते हुए समय पाकर आर्य समाज का बृहत् इतिहास लिखकर जनता को अनुगृहीत करेंगे।

## बहिनों की बातें

लेखक—कविवर प० सिद्धगोपाल जी सिद्धान्त रत्न ।

प्रकाशक—प्रकाशन विभाग आर्य युवक सघ देहली । मूल्य—॥) पृष्ठ सख्या १२८, २०×३० का १६वा ।

इस पुस्तक मे निम्न विषयों पर विचार किया गया है.—

१—ईश्वर है या नहीं ? २—क्या ईश्वर सृष्टिकर्ता है ? ३—ईश्वर की भक्ति क्या करे ? ४—ईश्वर साकार क्यों नही ? ५—ईश्वर का ध्यान कैसे हो ? ६—ईश्वर न्यायी है वा दयालु ? ७—भूत-प्रेत क्या हैं ? ८—क्या सुख दुख ग्रहो से होता है ? ६—श्राद्ध करना चाहिये वा नहीं ? १०—यज्ञ और यज्ञोपवीत । ११—वर्ण व्यवस्था जन्म से या कर्म से ? १२—कुछ विशेष ज्ञातव्य बातें ।

उपर्युक्त विषयों को कमला और विमला दो बहिनों के पारस्परिक सम्वाद के रूप मे समझाने की चेष्टा की गई है । और इसमें लेखक को पर्याप्त सफलता मिली है । इन कठिन विषयो की अनेक व्याख्याये उपलब्ध हैं परन्तु इनके अध्ययन में इस समय प्राय लोगों की रुचि उत्पन्न नहीं होती और इसका अनेक कारणो में एक कारण यह भी है कि उनकी भाषा और शैली आकर्षक नही होती जो वर्तमान वातावरण मे बनी हुई विचार धारा को अपील कर सके । लेखक ने सवाद की शैली का आश्रय लेकर एक नूतन रूप मे इन विषयों को प्रस्तुत किया है और यह शैली इन विषयों के अध्ययन और मनन के लिए आकर्षण उत्पन्न कर रही है । यदि लेखक महोदय अपने विषय के स्पष्टीकरण में जिनम उन्हें खूब सफलता मिली है, आख्यायिकाओं और उदाहरणों से सहायता लेते तो और भी अच्छा होता । फिर भी लेखक इस प्रथम प्रयास के लिये बधाई के पात्र हैं ।

# The Aim of Education

In the course of the Convocation Address delivered at the Gurukula University, Saharanpur, late Dr Rabindranath Tagore made the following observations The love of man has its own hunger for knowing Even if we lack this concerning our fellow beings in India except in our political protestations at least love of knowledge for its own sake could have brought us close to each other But there also we have failed and suffered For weakness of knowledge is the foundation of weakness of power Until India becomes fully distinct in our mind, we can never gain her in truth , and where truth is imperfect love can never have its full sway The best function of our educational centres is to help us to know ourselves, and then along with it their other mission will be fulfilled which is to inspire us to give ourselves

To know ourselves and 'to give ourselves do indeed, sum up the whole process the end and purpose of all education, both religious and secular All knowledge is ultimately selfknowledge, and all virtues have their culmination in willing self-abnegation that leads to true self-realization The idea of Yajna (Sacrifice) being the sustaining force of creation is elaborated in the scriptures of the Hindus

Again, to know ourselves is to know our Motherland The past, the present and the future of India, her culture and traditions, her people, their present condition and other related questions are summed up in the formula 'To know ourselves Such knowledge evokes love for the thing known and also the power for ministering unto it The knowledge becomes complete when love manifests itself as the surrender of all possessions for the service of the beloved Educators, social reformers administrators, and all other who labour for social and national uplift would do well to ponder deeply over this beautiful formula given by our poet

# सम्पादकीय

## नव-प्रभात

पिछले दिनों ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० चर्चिल और अमेरिकन प्रेसीडेन्ट मि० रुजवेल्ट ने अपनी ऐतिहासिक भेंट में अटलांटिक महासागर की उत्ताल तरंगों पर बैठकर युद्ध के बाद की संसार की भावी व्यवस्था की रूप रेखा तैयार की है जिसके द्वारा संसार में नव-प्रभात लाने की सोची गई है—उस संसार की जो नर-रक्त, प्राणियों के करुण-क्रन्दन और वीभत्स चीत्कार से कराह रहा है। यह भेंट संसार के केवल मात्र दो प्रजातन्त्रों के प्रतिनिधियों के मध्य हुई है। सोवियट रूस भी साम्यवाद के रूप में एक प्रजातन्त्र राष्ट्र है। अच्छा होता उसके कर्णधार मि० स्टैलिन भी इस भेंट में हाथ बटा सकते परन्तु अपने देश के जीवन-मरण के संघर्ष में फँसा रहने के कारण उनका इस अवसर पर अपने देश से बाहर जाना असंभव था। युद्ध के प्रारम्भ होने के समय से ही संसार की मांग थी कि ब्रिटेन को अपने युद्ध उद्देश्यों का स्पष्टीकरण करना चाहिये। यह मांग अब लगभग २ वर्ष के पश्चात् इस ऐतिहासिक भेंट के फल स्वरूप संसार के समक्ष मूर्त रूप में प्रस्तुत हुई है।

इन दोनों राजनीतिज्ञों ने संसार की भावी व्यवस्था के लिये ८ बातें निश्चित की हैं। उन्होंने घोषणा की है कि ब्रिटेन और अमेरिका का इस युद्ध के लड़ने का उद्देश्य राज्य-विस्तार नहीं है।

उनका दूसरा कथन यह है कि हमारी इच्छा ऐसे भौगोलिक परिवर्तन देखने की बिलकुल नहीं है जिनके लिये प्रजा की इच्छा न हो। दूसरे शब्दों में भौगोलिक परिवर्तन आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के आधार पर ही हो सकेंगे।

उनकी तीसरी घोषणा यह है कि संसार के समस्त व्यक्ति अपने राज्य का

स्वरूप निर्धारित करने में स्वतन्त्र होंगे और जिन लोगों के अधिकार और शासन छीन लिये गये हैं वे उन्हें लौटा दिये जावेंगे।

उनकी चौथी बात यह है कि समस्त राष्ट्र छोटे व बडे, विजयी वा पराजित अपने स्वतन्त्र व्यापार के सचालन और आवश्यकतानुसार कच्चे माल की प्राप्ति के लिए समानता के आधार पर स्वतन्त्र होंगे परन्तु इन दोनों सम्मानित प्रतिनिधियों का यह भी निश्चय है कि वे अपने वर्तमान कर्त्तव्यों और जिम्मेदारियों का पूरा २ ध्यान रखेंगे।

पाँचवीं घोषणा यह है कि वे समस्त राष्ट्रों के मध्य आर्थिक क्षेत्र मे सामजस्य उत्पन्न करेंगे जिससे आर्थिक उन्नति हो, श्रम का माप दण्ड ऊचा हो और सामाजिक सुरक्षा स्थापित हो। १९१४ के महासमर के पश्चात जो भयङ्कर भूल हुई थी उसके दुहराए न जाने का उपर्युक्त राजनीतिज्ञों के शब्दों मे स्पष्ट संकेत मिलता है।

उन्होंने छटी बात यह कही है कि नाजीवाद का अन्त करने के पश्चात् ससार में सुख और शान्ति का वह युग लाया जायगा जिसमे समस्त देश अपनी सीमाओं के भीतर सुख से रहेंगे और भय तथा तगी के भय से मुक्त हुये अपने जीवन व्यतीत करेंगे।

सातवीं घोषणा यह है कि समस्त मनुष्यों की समुद्रों मे यात्रा करने की सुरक्षा स्थिर रखी जायगी।

आठवीं बात बडे मार्के की है इसमे समस्त राष्ट्रों के नि शस्त्रीकरण का सिद्धान्त स्वीकार किया गया है और कहा गया है कि जब तक सुरक्षा की स्थिर प्रणाली का प्रादुर्भाव नहीं होता है तब तक आततायीदेश निहत्ते रखे जावेंगे।

लोगों को यह शका स्वभावतया हुई थी कि यह योजना समस्त ससार के लिये अभिप्रेत है अथवा यूरोप अमेरिका इत्यादि पाश्चात्य भूखण्डों के लिये ही निर्धारित कीगई है। स्थानापन्न ब्रिटिश प्रधान मन्त्री मि० एटली की इस घोषणा से कि इस योजना के सिद्धान्त काले, गोरे, एशिया इत्यादि समस्त ससार के देशों पर प्रचारित होंगे, इस शका का निवारण हो जाता है।

योजना के निर्माताओं के सकल्पों और भावनाओं का समुचित सम्मान करते हुये भी इसे भय है कि कहीं पराधीन देश इसके लाभों से वचित न कर दिये जाय। यदि

पराधीन देश स्वतन्त्र न किये गए जबकि ससार के अन्य देश स्वाधीनता के स्वतन्त्र वातावरण का रस लेरहे होंगे तब राजनीति विशारदों के मतानुसार उनकी दासता उन देशों को ऐसा करने न देगी।

जिन उपायों से भी ससार की व्यवस्था ठीक हो, पृथ्वी का सौन्दर्य बढे और प्रजा को सुख और शान्ति प्राप्त हो सके वे सब अभिनन्दनीय हैं। इस दृष्टि से हम उपर्युक्त घोषणाओं का स्वागत करते है परन्तु इन घोषणाओं के साथ २ कई घोषणाएँ और आवश्यक हैं। यदि वे भी अटलाटिक महासागर के प्रशान्त स्थान से प्रवाहित हो जातीं तो बहुत अच्छा होता।

वहा से घोषणा होनी चाहिए थी कि —

(१) भविष्य में धर्म और राजनीति के समन्वय पूर्वक शासनों को व्यवस्थित किया जायगा।

(२) सत्य, न्याय, दया, सहानुभूति, मानव-प्रेम, निस्स्वार्थ भावना आदि शाश्वत विशेषताओं का राजनीति विशारद और शासक पूरा २ सम्मान करेंगे और लोगों की उच्च भावनाओं को जागृत करने का पूरा २ ध्यान रखा जायगा।

(३) भविष्य मे सम्पत्ति का अर्थ सोना और चादी न लिया जायगा वरन् उपयोगी पशु और धान्यादि अर्थ माने जायँगे। कामुकता को बढानेवाले पदार्थों की उत्पत्ति और प्रचार कतई बन्द कर दिया जायगा। "स्वय जिओ और दूसरों को जीने दो" की सुनहरी भावना को हर प्रकार से चरितार्थ और प्रोत्साहित किया जायगा।

(४) सृष्टि के सौन्दर्य की वृद्धि और रक्षा के लिए ही विज्ञान का उपयोग होने दिया जायगा न कि सृष्टि के विनाश के लिए जैसा आजकल हो रहा है।

(५) भविष्य में संस्कृति (Civilization) को शरीर के नहीं वरन्, आत्मा के अर्थों में व्यवहृत होने देने का यत्न किया जायगा।

इस योजना को पढकर हमे महाभारत के महासमर का स्मरण हो आता है। योगीराज श्रीकृष्णने उस समरसे समाजकी एक नूतन व्यवस्था स्थापित करने की योजना बनाई थी और यह योजना द्वारिका के समुद्र तट पर ही बनी थी। अर्जुन तो इस योजना को सफल बनाने के निमित्त बनाये गये थे। जिन कारणों से महाभारत हुआ था वे प्राय न्यूनाधिक रूप में आज भी विद्यमान हैं। योगीराज कृष्ण इसी

निर्मम नहीं थे कि अपने निजी स्वार्थों के लिये इतने भयङ्कर कांड को कराते जिस के कुफल आज भी भारतवासी भोगरहे हैं। महाभारत का सूत्रपात कराने में कृष्ण का अपना कोई स्वार्थ न था। वे उस युद्ध से धर्म की भावना को ऊँचा रखना चाहते थे जो दुर्भाग्य से नीचे गिर गई थी। वे एक चक्रवर्ती राज्य की स्थापना के द्वारा समाज और संसार का कल्याण करना चाहते थे। दुर्भाग्य से महाभारत के तत्काल पश्चात उनके निधन के कारण यह योजना मूर्तरूप धारण न कर सकी परन्तु आज ५००० वर्ष के पश्चात् भी किसी का कृष्ण के इरादों में सन्देह करने का साहस नहीं है। काश इस युग के युद्ध में ग्रस्त राजनीतिज्ञ कृष्ण की इस भावना को समझें।

## स्वर्गीय टैगोर

कवि सम्राट् श्री रवीन्द्रनाथ टैगोर के निधन से आज भारतवर्ष अपने को निर्धन अनुभव कर रहा है। उन्होंने अपनी कविताओं, उपन्यासों, नाटकों और अन्य विविध ग्रन्थों तथा लेखों से विदेशों में भारत का गौरव बढ़ाया था। भारतीय साहित्य के प्रति विदेशियों का 'प्रेम उत्पन्न और जाग्रत करने में उन्होंने देश की अमित सेवा की थी। वे उच्च कोटि के साहित्यिक कलाकार और दार्शनिक थे और एक कवि और साहित्यकार का अपने देश के गौरव को बढ़ाने और अपने साहित्यके द्वारा उच्च भावनाओं को जाग्रत करने का जो महान् कर्तव्य है उसको उन्होंने उत्तम रीति से पूर्ण किया था। गीतांजलि नामक दार्शनिक कविताओं पर उन्हे एक लाख का 'नोबल प्राइज' मिला था। गतवर्ष आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय ने उन्हें साहित्य के डाक्टर की पदवी से विभूषित करके इस पराधीन देश के एक सपूत का सम्मान किया और उसका गौरव बढ़ाया था। उनकी देश भक्ति की व्याख्या बढ़ी चढ़ी थी। जब २ उन्हे विविध पदवियों से सरकार और विदेश के व्यक्तियों ने सम्मानित किया तभी उन्हें अपने देश की पराधीनता बहुत खटकी। अमृतसर के भयंकर काड से वे इतने विक्षुब्धित हुए कि अपनी नाइट हुड की पदवी उन्होंने सरकार को वापिस कर दी थी। मृत्यु से पूर्व उन्होंने एक अंग्रेजी प्रचारिका के लेख का उत्तर देकर जो उनकी देश भक्ति के लम्बे रिकार्ड में एक ज्वलंत अध्याय है अपने उत्कट देश प्रेम का मृत्यु शैया पर से परिचय दिया था।

अपने ऐसे सपूत के निधन पर भारतवर्ष जितना शोक मनाए और उसकी अनुपस्थिति को जितना अधिक अनुभव करे कम है।

Re. No L 91 1

अथात्

# आर्य जगत् का विस्तृत विवरण

(१) गत ६६ वर्षो मे आर्य समाज ने जो उन्नति की है उसका ऐतिहासिक सिंहावलोकन।

(२) विस्तृ कार्य क्षेत्र और इसम कार्य करने वाली नाना संस्थाओं का सचित्र इतिहास और वर्तमान विवरण।

(३) गुरुकुलों, स्कूलों, कालेजों आर्य कुमार सभाओं ... कन्यापाठशालाओं, अनाथालयों, पुस्तकालयों, ... पत्रों साहित्य ... अन्य संस्थाओं की सूची और विवरण

(४) देश-विदेश मे स्थापित आर्य समाजों ... अधिकारी, सम्बद्ध संस्थाएं और विविध कार्यों का समग्र ...।

(५) आर्य जगत् के वर्तमान समस्याओं और नाना हलचलों का वर्णन।

अर्थात् आर्य जगत् के सम्बन्ध मे पूरी जानकारी आपको इस डाइरेक्टरी मे मिलेगी यह सब सामग्री प्रामाणिक साधनों से ... गई है। संग्रह और चाहे-जब देख-लेने के लिए अपूर्व पुस्तक है

इतनी उपयोगी २०×२६ के ... लगभग ४०० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १।) है। डाक व्यय पृथक।

प्रत्येक कार्यकर्ता, ... और पुस्तकालय और आर्य समाज मन्दिर मे इस पुस्तक का होना आवश्यक है। धनी मानी सज्जन सैकड़ों की संख्या मे खरीद कर ऐसी बहुमूल्य पुस्तक को पुस्तकालयों और प्रचारकों आदि को भेंट कर सकते है।

अपना अमूल्य आर्डर शीघ्र ही भेजिये। विलम्ब करने से ... संस्करण की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी।

मिलने का पता —

प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सखाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित।




वार्षिक मू

१९४१ ई०

१९९८ सं०

सम्पादक—

—श्री रघुनाथप्रसादजी पाठक

# विषय सूची


| सख्या | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | वेद की शिक्षायें | | ३५९ |
| २ | अध्यात्म-सुधा | | ३६० |
| ३ | चन्द्र और सूर्य ग्रहण | सुवर्णसिंह जी आर्योपदेशक अजमेर | ३६३ |
| ४ | वेद मे हृद्रोग तथा कमला | श्री स्वामी शिवानन्द तीर्थ सन्दलपुर मुगेर | ३६६ |
| ५ | मॉस भक्षण के पक्ष मे युक्तियॉ और उनका खडन | श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी एस सी | ३७० |
| ६ | देशी राज्यों मे समाज सुधार के कानून | श्री एन० स्वामी बी० ए० | ३७२ |
| ७ | आर्यसमाजकी चिनगारियॉ | स्वामी स्वतन्त्रानन्दजी और लभूराम नैयड | ३७६ |
| ८ | कुछ विचार | प० महेशप्रसाद जी हिन्दू यूनि० बनारस | ३८२ |
| ९ | महर्षि स्वा० दयानन्द सरस्वती के लुधियाना मे शुभागमन की तिथियॉ | लभूराम नैयड | ३८४ |
| १० | विजयादशमी | (स० विश्वमित्र कलकत्ता के सौजन्यसे प्राप्त) | ३८५ |
| ११ | सुमन सचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | ३८६ |
| १२ | आर्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या | | ३९२ |
| १३ | आर्य कुमार जगत् | | ३९४ |
| १४ | दहेज (कविता) | श्री रघुवीर जी कॉट मुरादाबाद | ३९८ |
| १५ | श्री स्वामी अच्युतानन्द जी | श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी | ३९९ |
| १६ | Hindu Philosophy and Modern Sciences | By Rai Bhadur Ram Chandra M A P E S Retired | ४०१ |
| १७ | सम्पादकीय | | ४०३ |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

सार्वदेशिक-आर्य प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष १६ | आश्विन १९९८<br>[ अक्टूबर १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७ ] | अङ्क ८ |


## वेद की शिक्षाएं

वयं जयेम त्वया युजा ।। ऋ० १।१०२।४

तुझ से युक्त होकर हम विजय प्राप्त करें।

May we attain victories in Thy company, O Lord!

* * *

मा भेम शवसस्पते। ऋ० १।११।२

शक्ति के स्वामी प्रभो! हम किसी से भी न डरें।

Thou, O Lord of Strength! Make us fearless.

# अध्यात्म-सुधा

( १ )

## संसार के पदार्थों को अनुकूल बनाना परम सुख है

ससार की रचना मनुष्य के हितार्थ ही की गई है। वह सम्यक् विचार से, सत्सग से, स्वाध्याय और सदाचार से, सच्ची लग्न में मग्न होकर जितना परमेश्वर दत्त पदार्थों के गुणों को समझकर अपने अनुकूल बनायेगा, उतना ही अभ्युदय फल सामने आयगा। यह मनुष्य और मनुष्य समाज के अधिकार की बात है।

मनुष्य के पुरुषार्थ के साथ प्रभु कृपा का सयोग सुख भोग का कारण होता है। जो प्रभु की आज्ञा का पालन करता है वह अनुचित कार्यों से डरता है।

ईश्वर की आज्ञा यह है कि अन्याय पूर्वक कोई भी किसी दूसरे के दुख का कारण न बने। किन्तु स्वय सुखी होकर दूसरे को सुखी बनाए। स्वय दुख से बचने के लिए औरों को दुख से बचाए। स्वय सन्मार्ग से चलकर दूसरों को अच्छा बनाए या बनने का कारण बने। वह ही पुरुष विचारवान है और उसी का नाम विद्वान् है जो परस्पर प्रीति, सुनीति और सदाचरण का अनुसरण करता है।

यह ब्रह्माण्ड उस पूर्ण पुरुष की महिमा है। इसको सागो पाग समझ लेना अपूर्ण पुरुष का काम नहीं है। यदि यत्न करे तो सुनियमों के पालन करने से पूर्ण पुरुष के दर्शन हो सकते हैं, यह विचित्रता है। माया के जाल को हटाने और इससे पीछा छुड़ाने का आत्म साक्षात्कार ही एक मात्र उपाय है। अनेक जन्म कृत शुभ कर्मों के उदय होने से मनुष्य को इसकी जिज्ञासा होती है कि वह कैसा है ?

( २ )

## प्रकृति की पूजा दुख है

सब प्रकार की शुद्धियों में अर्थ शुद्धि अर्थात् लोभ रहित होना विशेष है। काम, क्रोध और मोह यह तीनों प्राकृतिक पदार्थों के सम्बन्ध से उत्पन्न होते हैं और जब जीव प्राकृतिक पदार्थों से पृथक् होते हैं उस समय इनमें से कोई भी नहीं रहता। पाप का मूल प्राकृतिक पदार्थों का संग ही है। प्राकृतिक पदार्थों के संग

से मन में मैल आता है। जिस समय जीव प्राकृतिक पदार्थों की इच्छा को दूर करदे तब उस समय उसे किसी प्रकार का कष्ट हो ही नहीं सकता। परन्तु जीव चेतन अर्थात् ज्ञान वाला है। वह कभी भी ज्ञान से शून्य नहीं रह सकता। ऐसी दशा मे यदि वह प्राकृतिक पदार्थों का संग न करे तो क्या करे ? तब मन को परमात्मा का संग करना चाहिए और उसकी आज्ञा पालन करने मे इन्द्रियों को लगाना चाहिए।

एक मनुष्य सिंह को इस उद्देश्य से मारता है कि उसका मांस खाए। ऐसा मनुष्य पाप करता है, परन्तु दूसरा जो उसे जीवों की रक्षा के निमित्त मारता है वह परमात्मा की आज्ञा का पालन और जो खाने के लिए मारता है वह प्रकृति की सेवा करता है।

( ३ )

## वह क्या वस्तु है जो मनुष्य को अधार्मिक बनाती है ?

वह वस्तु लोभ है। लोभ शरीर के साथ प्रेम करने का स्वाभाविक परिणाम होता है। जब मनुष्य अपनी सत्ता से इन्कार करने लगता है अथवा अपनी आत्मा की उपेक्षा करने लग जाता है जो पवित्र और प्रकाशमान होती है और जब वह अपने को केवल भौतिक देहधारी मानने लगता है तब उसके जीवन का मुख्यतम ध्येय शरीर बन जाता है। और शरीर की रक्षा करना, उसे सुखी बनाना और उसे सजाना ही केवल मात्र उसका काम रह जाता है। वह इन्द्रियों पर आस्था रखता है और ऐन्द्रिय जगत् को वास्तविक जगत् मानकर उसका अत्यधिक मान करता है और हर सम्भव उपाय से अपनी इन्द्रियों की संतुष्टि चाहता है। परन्तु इन्द्रियां तो कभी भी संतुष्ट नहीं होतीं। वे सदैव अधिकाधिक चाहती हैं, इसी से लोभ उत्पन्न होता है और लोभ से ही स्वार्थ, घृणा अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या इत्यादि अवगुण दृष्टिगत होते हैं। जितना ही अधिक हम अपने शरीर से अनुराग करेंगे और जितना ही अधिक हम इन्द्रियों के विषयों मे अनुरक्त होंगे उतना ही अधिक इन्द्रियों का हम पर प्रभुत्व होगा। वह प्रभुत्व सम्पत्ति, शक्ति और यश भावना का हो सकता है। जब जीवन का दृष्टिकोण ऐन्द्रिक बन जाता है तब प्राकृतिक पदार्थों की अपेक्षा धार्मिक वा नैतिक विशेषतायें गौण बन जातीं हैं।

सच्चे अर्थों में धार्मिक बनने के लिए शरीर की ममता छोड़नी पड़ती है अर्थात् शरीर ही जीवन का ध्येय है वह धारणा निकालनी पड़ती है।

कोई मनुष्य भले ही अपनी धार्मिक भावना से अपरचित हो तो भी उसके मन और हृदय मे धार्मिकता का आभास होता है भले ही वह व्यवस्थित रूप मे न हो।

हमारे भीतर एक ओर तो आत्मा की प्रेरणा है और दूसरी ओर इन्द्रियों की। इन्हीं से प्रत्येक व्यक्ति मे आन्तरिक सघर्ष उत्पन्न होता है। मनुष्य जितना अधिक आत्मा की ओर चलेगा उतना ही अधिक उसका धार्मिक स्वभाव विकसित होगा और जितना अधिक शरीर की ओर चलेगा उतना ही वह भाव दुर्बल होगा। यह जान मे भी हो सकता है और अनजान मे भी। प्रत्येक धार्मिक कार्य हमे आत्मा के निकट ले जाता है और अन्त मे हम परमात्मा के निकट पहुंचने के योग्य बनते हैं।

महाभारत मे कहा है कि—

"दूसरों के साथ भलाई करना धर्म और दूसरों का अपकार करना अधर्म है। दूसरे शब्दों मे निस्वार्थ भाव रखना धार्मिक और स्वार्थी बनना अधार्मिक है।

( ४ )

## विश्व प्रेम

जो कोई ईश्वर को वन्दनीय और उपासनीय समझकर उसकी वदना और उपासना करता है उसकी सब प्राणी क्यों चाहना करते हैं? वह उपासक उपासक नहीं कहा जा सकता जिसका हृदय प्रेम से लचकीला न हो चुका हो। प्रेम से भर-पूर हृदय में प्राणी मात्र की मगल कामना के सिवा दूसरा भाव नहीं आ सकता। फिर भला जिस व्यक्ति मे प्राणी मात्र के लिए प्रेम और मगल कामना के सिवा और कुछ न हो कैसे सम्भव है कि उसकी चाहना सब न करे।

एक वार बुद्ध ने देखा कि एक राजा सहमे हुए एक हिरण को पकडे लिये जा रहा था और इच्छा कर रहा था कि तीक्ष्ण वाण से उसका काम तमाम करदे। दुख से पीड़ित होकर बुद्ध राजा के पास गये और बड़ी नम्रता और विनय से बोले राजन्। यह तीर मेरे मारदो परन्तु इस निरपराधी हिरण को मत मारो। बुद्ध के इस प्रेम को देखकर राजा का हृदय पिघल गया और उसने हिरण को छोड़ दिया। बुद्ध के इस प्रेम का हजारों वर्ष बीतने पर भी करोड़ों हृदयों पर राज्य है परन्तु नैपोलियन, नेलसन, कैसर का प्रकाश अभी से धीमा पड़ने लगा है।

# चन्द्र और सूर्य ग्रहण

( लेखक—सुवर्णसिंह जी आर्योपदेशक, अजमेर )

पुराणों मे ग्रहण का कारण अद्भुत लिखा है। यथा—जिस समय विष्णु भगवान् मोहिनी का रूप धारण कर अमृत बाट रहे थे, राहु नामक एक राक्षस देवता का रूप धारण कर वहा आ बैठा, जब विष्णु भगवान् ने उसको अमृत बाटा, तो वह उसी समय पी गया। सूर्य और चन्द्रमा ने उसकी चुगली खाई कि यह राक्षस है। विष्णु भगवान् ने क्रोध मे आकर चक्र से राहु का सिर काट डाला, परन्तु वह मरा नहीं, क्योंकि वह अमृत पी चुका था। इसी कारण वह सूर्य और चन्द्रमा को जहाँ पाता है वहीं ग्रस लेता है, परन्तु वे उसकी गर्दन के छिद्र में होकर निकल जाते है। यह पुराणों के अनुकूल ग्रहण का सक्षिप्त वृत्तान्त है। इसी कारण भ्रम मे पड कर बहुसख्यक मनुष्य साम्प्रतिक कृत्रिम तीर्थों मे मारे मारे फिरते हैं। कुरुक्षेत्र आदि कृत्रिम तीर्थों मे कई २ लाख मनुष्य एकत्रित हो जाते हैं। अनभिज्ञता के कारण अपनी अर्धाङ्गिनियों को भी दान कर आते हैं। इस अज्ञानता का भी कोई ठिकाना है।

आज हम इस विषय पर इसीलिए लिख रहे है कि बहुत से सम्भ्रान्त भाई वास्तविक बात को जान लें और व्यर्थ मे अपने धन, जन की मूर्खतापूर्ण क्षति से बचें।

वेद और ज्योतिष के ग्रन्थों में ग्रहण का कारण स्पष्ट लिखा है। जिस प्रकार पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है इसी प्रकार चन्द्रमा भी पृथिवी की परिक्रमा करता है। इसी प्रकार घूमते हुए जब सूर्य और पृथिवी तथा चन्द्रमा तीनों एक सीध मे आते हैं तब ग्रहण पड़ता है। चन्द्रग्रहण के कारण को समझने के लिए यह जानना आवश्यक है कि पृथिवी के समान चन्द्रमा भी सूर्य से प्रकाशित होता है यथा—

दिवि सोमो अधिश्रित । अथर्ववेद का० १४। अ० १। मन्त्र १॥

अर्थ—चन्द्रलोक सूर्य से आश्रित होकर प्रकाशित होता है।

नित्यमधस्थस्येन्दोर्भाभिर्भानोसितेमवत्यर्धम्।
स्वच्छाययान्यदसित कुम्भस्येवातपस्थस्य ॥ १ ॥

सलिलमये शशि निखेर्दीधितयोमूर्छितास्तयो नैशम् ।
क्षययन्ति दर्पणोदर विहिता इव मन्दिर स्थाना ॥ २ ॥

बृहत्संहितायाम्

अर्थ—धूप मे रक्खे हुए घडे के समान चन्द्रमा का आधा भाग सूर्य की किरणों से प्रकाशित हो जाता है और दूसरा आधा अपनी छाया से अन्धकार में रहता है। सूर्य की किरणें चन्द्रमा पर ( जिसके बहुत से भाग मे जल है ) पड कर प्रतिबिम्बित हो लौट जाती हैं और रात्रि के अन्धकार को नाश करती हैं, जैसे धूप में रक्खे हुए दर्पण पर सूर्य की किरणें पड कर मन्दिर के भीतर चली जाती हैं।

ऐसा ही सि॰ शि॰ मे लिखा है—

तरणीकिरण सगाद्देशपिण्डो दिनकरदिशि चन्द्रश्चन्द्रिकाभिश्च कास्ति ।
तदितर दिशिवाला कुन्तलश्यामल श्रीर्घटइव निज मूर्तिच्छायैव वातपस्था ॥

अर्थ—चन्द्रलोक का सूर्य की ओर वाला भाग उसकी किरणों के सम्पर्क से प्रकाशित होकर चमकता है। दूसरी ओर वाला भाग धूप में रक्खे हुए घडे के सदृश अपनी मूर्ति की छाया से अन्धकार मे रहता है।

इसलिए जब सूर्य और चन्द्रमा के बीच मे पृथिवी आ जाती है तो सूर्य का प्रकाश चन्द्रमा मे जाने से रुक जाता है अर्थात् चन्द्रमा मे अन्धकार आने लगता है, जितने भाग मे अन्धकार आजाता है उतना भाग कटता सा दिखाई देता है जिसको चन्द्रग्रहण कहते हैं। ज्यों २ पृथ्वी और सूर्य की सीध से निकलता जाता है उसमे सूर्य की किरणें पहुचने लगती हैं उसी को उग्रहण वा मोक्ष कहते हैं। इसके विरुद्ध जब पृथ्वी और सूर्य के बीच मे चन्द्रमा आजाता है तब सूर्य चन्द्रमा की ओट मे आने लगता है और जितना भाग चन्द्रमा की आड मे आ जाता है उतना भाग कटता सा दिखाई देता है इसी को सूर्यग्रहण कहते हैं। जब पूरा सूर्य-ग्रहण पडता है तब पृथ्वी पर प्रकाश कम हो जाता है। यह चन्द्र और सूर्यग्रहण का ठीक कारण ज्योतिष् के ग्रन्थों में ऐसा ही लिखा है।

छादयति शशि सूर्यं शशिन च महती भूच्छाया ॥ ( आर्य भट्ट )

अर्थ—सूर्यग्रहण में चन्द्रमा सूर्य को ढक लेता है और चन्द्रग्रहण मे पृथ्वी की छाया चन्द्रमा को ढक लेती है।

और भी देखिये—

छादकी भास्करस्येन्दुरधःस्थायनवद् भवेत् ।
भूच्छाया प्राङ्मुखश्चन्द्रो विशत्यस्य भवेदसौ ॥

सूर्यसिद्धान्त

अर्थ—सूर्यग्रहण में चन्द्रमा बादल के सदृश सूर्य को ढाक लेता है और चन्द्रग्रहण में चन्द्रमा पूर्व की ओर जाता हुआ पृथ्वी की छाया में आ जाता है।

कवि शिरोमणि कालिदास जी भी कहते हैं कि—

छाया हि भूपे शशिनो मलत्वेनारोपिता शुद्धिमत प्रजाभि

रघुवंश सर्ग १४। श्लोक ४० ॥

अर्थ—चन्द्रग्रहण में पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है, परन्तु लोग उसको शुद्ध चन्द्रमा में एक कलंक बतलाते हैं। ग्रहण के विषय मे एक और विशेष बात यह है कि ग्रहण होते समय सूर्य अथवा चन्द्रमा का वृत्ताकार भाग ही क्यों ग्रसित ( कटता है ) होता है यदि पुराणों के अनुसार राहु द्वारा ग्रहण माना जाय तो गोल नहीं होना चाहिए। जब कोई किसी पर शस्त्र चलाता है तो वह नाप तोल कर अथवा परिकाल से नहीं काटता प्रत्युत यथावसर प्रहार करता है। यहा ज्योतिष ही प्रमाण है क्योंकि सूर्य आदि ग्रह गोल हैं इसीलिए गोल पर गोल का प्रकाश व छाया गोल ही पड़ती है। गोल के बीच मे आ जाने से गोल ही भाग छिपता है।

ग्रहण के विषय मे सैकड़ों प्रमाण सद्ग्रन्थों मे भरे पड़े हैं। चन्द्र और सूर्य ग्रहण पृथ्वी और चन्द्रमा की छाया से चालों के अनुसार पड़ता है न कि राहु के ग्रसने से।

वेद की शाखा का एक प्रमाण देकर इस लघु लेख को समाप्त करता हूँ। यथा—

य वै सूर्यं स्वर्भानुस्तमसा विध्यदासुर।
अत्र यस्त मन्वाविदन्त ह्या अन्ये अशक्नुवन् ॥

ऋग्वेदस्याश्वलायन शाखायाम्।

अर्थ—सूर्य ग्रहण में स्वत प्रकाश सूर्य को स्वय प्रकाश रहित चन्द्रमा अन्धकार से ढक लेता है।

# वेद में हृद्रोग तथा कमला

## ( पिलिया ) रोग की चिकित्सा

[ ले०—स्वामी शिवानन्द तीर्थ उपप्रधान आर्य उपप्रतिनिधि सभा
भागलपुर कमिश्नरी, आर्य भवन सन्दलपुर मुँगेर ]

—*o*—

वेद मे सब विद्याये बीज रूप से उपदिष्ट हैं। परमात्मा ने सृष्टि के आरम्भ मे मानवी प्रजा के कल्याण के लिये अतिशय पवित्रतम अन्त करण वाले अग्नि, वायु, आदित्य और अङ्गिरा ऋषि की आत्मा म अपने ज्ञान का प्रकाश किया। उन वेदों मे ऐहलौकिक सभी उन्नति के साधन विद्यमान हैं। जो भी भूतकाल मे विद्यायें आविष्कृत हुई, वर्तमान काल म जो नूतन विद्याये आविष्कृत हो रही हैं तथा भविष्य म आविष्कृत होंगी उन सबों का मूल वेद हैं, वे सारी की सारी वेदों से ही प्रसिद्ध हुई हैं, ऐसा ही प्राचीन ऋषियों मुनियों का मत है, जैसे मनु ने लिखा है "भूत भव्य भविष्यञ्च सर्व वेदात् प्रसिद्धति" महर्षि श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी के आन्दोलन तथा उनके सस्थापित आर्यसमाज के आन्दोलन से पाश्चात्य लोग भी सब विद्याओं का मूल वेदा को स्वीकार करने लग गये। जैसा कि शर्मण्य देश निवासी मोक्षमूलर भट्ट ने अपनी निर्मित India what can teach us ( भारतवर्ष हमें क्या सिखाता है ) इस नाम की पुस्तक मे स्वीकार किया है। उन अनेक विद्याओं में से वेद में चिकित्सा ( आयुर्वेद ) विद्या का भी वर्णन आता है। वेद में चार प्रकार की चिकित्सा का विधान किया है। आथर्वणी, आगिरसी, दैवी और मानुषी। इनमे पूर्व पूर्व एक दूसरे से श्रेष्ठ है। अथर्वा अहिंसनीय, कूटस्थ, निश्चल ब्रह्म को जान कर और प्राप्त कर उस ब्रह्म शक्ति द्वारा जो चिकित्सा की जाती है, उसको आथर्वणी चिकित्सा कहते हैं, यह ब्रह्म निष्ठ लोकोत्तर पुरुष द्वारा ही सभव है। अङ्गों का रस प्राण बल द्वारा चिकित्सा का नाम आङ्गिरसी है। दिव्य गुण सम्पन्न जड़ देव पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, सूर्य, चन्द्र आदि द्वारा चिकित्सा को दैवी चिकित्सा कहा है। वेद मे तथा अन्य वैदिक और लौकिक साहित्य में पृथ्वी आदि को दीपन, द्योतन दानादि दिव्य गुणों से युक्त होने के कारण देव शब्द से सम्बोधन किया है, यथा—'अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता नक्षत्राणि देवता" यजुर्वेद। "देवा भावयताऽनेन ते देवा भावयन्तु व" गीता। एव काष्ठौषधि, अरिष्ट, आसव, अवलेह, फाण्ट, कल्क, क्वाथ आदि द्वारा चिकित्सा को मानुषी चिकित्सा कहते हैं। इन चिकित्साओं में दैवी चिकित्सा विषय में कहना है, वही प्रस्तुत लेख

का विषय है। दैवी चिकित्सा के भी अनेक भेद हैं जैसे—जल चिकित्सा, उसके भी पेड़ू स्नान, मेहन स्नान, वाष्प स्नानादि अनेक भेदोपभेद हैं, सूर्य चिकित्सा, मृत्तिका चिकित्सा आदि २। इसी सूर्य चिकित्सा द्वारा हृदय रोग और कमला रोग दूर करने का विधान वेदों के अनेक मन्त्रों में पाया जाता है। उनमें से अथर्ववेद का वह मन्त्र है, जिसमे स्पष्ट रीति से उक्त रोग दूर करने का आदेश है। यथा—"अनुसूर्यमुदयता हृद् द्योतो हरिमा च ये।

गो रोहितस्य वर्णेन तेन त्वा परिदध्मसि।" अथर्ववेद॥

अर्थ—( उदयता सूर्यमनु ) उदय होते हुए सूर्य के साथ ही (ये हृद्द्योत च हरिमा) जो हृदय की पीड़ा, चमकना, टीस मारना आदि और शरीर का पीलापन है ( त्वा ) उस तुझ रोग को वैद्य ( गो रोहितस्य तेन वर्णेन ) उस कालीन सूर्य की लाल किरणों से ( परिदध्मसि ) सब ओर से ग्रहण करता है अर्थात् दूर भगाता है।

स्पष्टीकरण—द्यु त दीप्तौ, दो अवखण्डने दिवु क्रीडादिषु इन धातुओं से "द्योत" शब्द निष्पन्न होता है, इसलिए द्योत शब्द का अर्थ चमकना, टीस मारना, पीड़ा आदि अर्थ लिया गया है। हरिमा शब्द जिस धातु से हरिद्रा शब्द बनता है उसी से इसकी भी सिद्धि होती है। हरिद्रा पीला के लिए प्रसिद्ध है, अत हरिमा का भावार्थ तद्धितात होने से पीलापन अर्थ लिया गया है। गो शब्द अनेकार्थों में रहते हुए सूर्य रश्मि अर्थ मे आता है। जैसा निरुक्त मे लिखा है "गाव सूर्यरश्मय"। रोहित लोहित लाल वर्ण के लिए प्रसिद्ध ही है। अब विचारणीय यह है कि "हृद् द्योत" से यक्ष्मा, क्षय, दम्मा, खासी आदि हृदय की सारी बीमारियों का ग्रहण होना है और हरिमा, पीलिया, पाण्डु रोग। कमला रोग आदि जिसमें शरीर और शरीर के अङ्ग पीले पड़ जाय।

ये दोनों तरह के रोग रक्त की कमी के कारण होते हैं। उसकी कमी ही के कारण यक्ष्मा आदि के कीटाणु हृदय पर आघात करते हैं। सूर्य की लाल किरणे रक्त की कमी को पूर्ण करती है तथा जीवन सहारक कीटाणुओं को भी मारती हैं। सूर्य का लाल किरणों में ये दोनों गुण पाये जाते हैं, जैसा कि अथर्ववद म निर्देश किया है "उद्यन्नादित्य क्रिमीन् हन्तु निम्रोचन् हन्तु रश्मिभि" उदय होता हुआ सूय अपनी रक्त किरणों से क्रिमियों का नाश करता है, उसी तरह अस्त होता हुआ भी क्रिमियों का नाश करता है। लाल किरणों में घातक शक्ति होने के ही कारण भगवान् मनु ने भी अपने धर्म शास्त्र में उदय और अस्त होते हुए सूर्य को देखने के लिये निषेध किया है। यथा—नेक्षेत उद्यन्तमादित्य नास्तयान्त कदाचन। वेद मे वर्णित सूर्य किरणों क गुणो को अध्ययन कर विद्वानों ने सूर्य रश्मि चिकित्सा निकाली है। सूर्य म जो सात रग की किरणें हैं, उन सबों के पृथक २ गुण हैं। सूर्य के किरणों को वेद सतारब रूप से वर्णन किया है। इस सूर्य के

आकाश के भाग को न समझ कर लोगों ने सूर्य के रथ में जुड़े हुए सात घोड़े मान लिये। कुछ महाशय इस प्रश्न से भ्रम समझा है जिसका अर्थ व्याप्ति के है। ये किरणें सूर्य से व्याप्त रहते हैं। इसलिये सूर्य के ये अश्व कहलाते हैं। सूर्य चिकित्सक लोग सात रंग वाली काँच की बोतलों मे शुद्ध जल भर काग ( डाट ) लगाकर २॥ घण्टे तक तप्त धूप में रखते हैं, इस तरह औषधि तैयार हो जाती है और उनके रंगों के गुणों के अनुसार भिन्न २ रोगों में पिलाते हैं। इन रंग वाली बोतलों मे मिश्री या तेल को भी धूप में नियत दिन तक रख कर वे गुण इन वस्तुओं में लाते हैं और रोगों मे प्रयोग करते हैं। इसी तरह दुनियाँ के सारे भिन्न २ रंग वाले होने से भिन्न २ गुणों को धारण करते हैं, जिसका विधान ऋतु के अनुकूल व्यवहार मे लाने के लिये वैद्यक शास्त्र मे लिखा है। अस्तु हृदय रोगी और पीलिया वाले को प्रातःकाल और सायंकाल शुद्ध स्थान जहाँ पर धूप और धूल न हो और जहा की हवा भी अच्छी हो ऐसे स्थान पर सुखासन से बैठ कर बिना वस्त्र पहन कर हृदय पर और सर्वाङ्ग पर सामने से रक्त किरणों को आख मूद कर ग्रहण करे जब तक सूर्य की रक्तिमा समाप्त न हो जाय। यदि अन्त समय मे उसके लेने की जरूरत पडे तो मकान की खिड़कियों और दरवाजा म लाल रंग की शीशा लगावे जो सूर्य के सामने पडे इस तरह लाल काच द्वारा लाल किरणें आयेंगी और उसके ग्रहण करने से रोग दूर होगा। उक्त रोगियों को लाल रग वाली गौओं का दुग्धादि सेवन करना चाहिये। भोजन मे लाल चावल ( सिंरटी ) का भात, लाल गेहूँ की रोटी, मसूर की दाल हलका शाक खाना चाहिये। फलों में अनार, नारंगी, खजूर, किशमिश आदि रक्त वर्ण के ही व्यवहार मे लाने चाहिये। ओढ़ने पहरने के वस्त्र भी लाल ही हों। पीने का जल लाल रग बोतल में रखकर २॥ घटे धूप लगा कर पीना चाहिये। इस तरह शीघ्र ही उक्त रोगों से मुक्त हो सकते हैं।

शरीरस्थ मणि पूरक चक्र जो नाभि स्थान में है उस चक्र मे प्रणव ( ओ३म् ) जाप के साथ रक्त वर्ण का ध्यान करे। वहाँ पर शरीर मे सूर्य का स्थान बताया गया है। इस ध्यान से भी उक्त रोग तथा अनेक विष रोग नष्ट होते देखे गये हैं। ( बेल्हा गया मे श्री प० कालिकाकुमार देव शर्मा नाम के एक योगी उक्त चक्र की जागृति द्वारा उपरोक्त रोगों की चिकित्सा करते हैं ) प्रातःकालीन लाल किरणों के उपयोग से शिरस्थ रोग शिर पीड़ा आदि भी दूर होते हैं। अथर्व वेद मे इसका निर्देश है। "शीर्ष रोगम् शीश मदक्त मे१ मनीनशद्"। शिर रोग शान्त होते हैं और अंग भेद (पीड़ा) भी दूर होती है। शिर रोग में सूर्यावर्त नाम की शिर पीड़ा में मैंने स्वयं अनुभव किया है तथा औरों पर अजमाया है, सब अच्छे हो गये हैं। उसकी विधि इस प्रकार है। शिर पीड़ा रोगी को प्रात काल शौचादि से निवट कर ऐसे स्थान पर बैठे जहाँ पर सूर्य उदय होता हुआ स्पष्ट दिखाई दे, वहा बैठकर ललाट

में गोरी या चिकनी मिट्टी का चन्दनवत् लेप कर दोनों हाथों के छिद्र युक्त अँगुलियों से अथवा झिना वस्त्र या चलनी से उन उदय कालीन लाल किरणों का मस्तक पर ग्रहण करे। इस तरह छनकर किरणों के लगने से मस्तक पीड़ा तत्काल दूर हो जाती है। जब तक लाल किरणें रहे तब तक ग्रहण करे, यदि इसी बीच में अच्छा हो जाय तो और बैठने की जरूरत नहीं। परन्तु ध्यान रहे जब सूर्य की ओर बैठें तो आँख बन्द कर बैठें। क्योंकि लाल किरणें दृष्टि शक्ति विघातक होती हैं, इसलिये देखना नहीं चाहिये।

शरीर के पीलापन दूर करने की एक विधि इस प्रकार की है। जाड़े में दश बजे दिन में और गर्मी के अवसर आठ बजे दिन की धूप में कम्मल या चटाई बिछा कर उत्तान हो विवस्त्र लेट जावे, ऊपर से केला के पत्तों से अंगों को ढक लेवे, पश्चात् एक मोटिया [illegible] भिगोकर थोड़ा निचोड़ कर उस केले के पत्ते पर डाल देवे। जब तक [illegible] हो तब तक लेटा रहे पसीना को पूर्व से रखे हुए अँगोछा से पोछता जाय। कम से कम २० मिनट तो [illegible] ही उस तरीके से लेटने का यत्न करे, इस प्रकार कुछ दिनों करने से [illegible], [illegible], [illegible] ज्वर, दमा, खांसी आदि अनेक बिमारियें दूर होती हैं। अनेक रोगियों को संयासी [illegible] [illegible] साधु [illegible] [illegible] जी वानप्रस्थ ने इस चिकित्सा से लाभ पहुंचाया है। चिकित्सा से उठने के बाद छाया में बैठना चाहिये या स्नान कर लेवे। स्नान के समय पहले सिर पर जल डाले पश्चात् अन्य अंगों पर। इस बात का ध्यान रहे कि चिकित्सा के बाद [illegible] या दो घण्टे का अन्तर देकर भोजन करे या भोजन कर डेढ़ या दो घण्टे के बाद करे। भोजन [illegible] तक [illegible] और सात्विक हो।

---

## सार्वदेशिक में विज्ञापन छपाई के रेट्स

| स्थान | १ मास का | ३ मास का | ६ मास का | १ वर्ष का |
|---|---|---|---|---|
| दूसरा पृष्ठ | १०) | २५) | ४०) | ७५) |
| एक कालम | ६) | १५) | २५) | ४०) |
| आधा ,, | ३॥) | ८) | १५) | २५) |
| चौथाई ,, | २) | ४) | ८) | १५) |

उजरत का सब नियमानुसार पेशगी आना चाहिये।

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. )

( गताक से आगे )

"यदि पशु खाए न जायँ तो ससार मे इतने अधिक पशुओं का क्या बनेगा ?"

संसार की भावना का यह सबसे अशुद्ध रूप है। हमारे दृष्टिकोण के अनुसार दो प्रकार के पशु हैं। एक तो वे जो मनुष्य से बहुत हिले मिले हैं और दूसरे वे जो स्वतन्त्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। हमारा सरोकार दूसरे प्रकार के पशुओं से है जो बिल्कुल आजाद हैं। ससार मे असख्य जीवों के रहने के लिए स्थान है। जब तक ये पशु हमे कोई बाधा नहीं पहुचाते तब तक हमें चाहिये हम उन्हें इसी भाँति स्वतन्त्रता से जीने दें। सिवा अपनी रक्षा के हमे इनको दुख देने का कोई अधिकार नहीं है, और न हमे उनकी स्वतन्त्रता का अपहरण करने के लिये उनके घरों में जाकर उन्हें अपना शत्रु बनाना चाहिए। शेरों, चीतों, साँपों, बिच्छुओं और अन्य अनेक छोटे और बडे जीवों के सम्बन्ध में यही बात सत्य है। हमे यह समझना चाहिए कि इन सब जीवों को ससार में रहने का उतना ही अधिकार है जितना हमे। परन्तु इससे रक्षा और आत्म सुरक्षा के अधिकार से हम बचित नहीं होते। आत्म रक्षा के लिए तो हमें मनुष्य को भी मारने का हक प्राप्त है। परन्तु यदि कोई मनोरजन और खेल के लिए ऐसा करता है तो वह हत्या के पाप का भागी होता है।

अब पहले प्रकार के पशुओ के साथ हमारे सम्बन्धों का प्रश्न है जो न्यूनाधिक रूप में हमारे कुटुम्बी बन गए हैं। इन पशुओं को हम प्रेम पूर्वक पालते और प्यार करते हैं। वे हमारी सहानुभूति और प्रेम का बदला देते हैं। बिल्ली, कुत्ते, घोडे, गाय, बैल, हरिण, तोते, मुर्गी और अन्य पालतू पशु पक्षी मनुष्य समुदाय के अभिन्न अंग बन गए हैं।

मनुष्य समाज के कपट, बेईमानी, और लोभ को सोचो जिसे हम बचपन से प्रेम से पालते हैं जो हमारे बच्चों के साथ खेलता और विहार करता है, जो

हमारे आँगन और घर में आनन्द और प्रमोद की वर्षा करता है उसे हम बध-गृह में भेजते हैं। उसके मास को अपनी भोजनशाला में पकाते, भूनते और उबालते हैं और वही हमारी तश्तरियों में हमारे सामने रखा जाता है। यह तो मनुष्य समाज के लिये घोर लज्जा की बात है। यह तो उस संस्कृति पर कलक है जिसका हम दम भरते हैं। पशु भी ऐसा दुर्व्यवहार नहीं करते हैं।

पश्चिम के एक बध गृह की कल्पना करो। सैकड़ों मूक पशु एक पंक्ति में खड़े हैं। एक बड़ी मैशीन जिसका निर्माण मनुष्य समाज की श्रेष्ठ बुद्धि से हुआ है, पास मे रखी हुई है और उसके एक झटके से ही उन सैकड़ों मूक पशुओं के सर कटकर गिर जाते हैं। यह सब क्यों? केवल मात्र मनुष्य की रक्त-पिपासा और क्षुधा की परितृप्ति के लिए? इस पाप का फल मनुष्य जाति भोग रही है। इसी के कारण मनुष्य, मनुष्य के खून का प्यासा बन गया है। स्वय जिओ और दूसरों को जीने दो, यही हमारे जीवन का मूल मन्त्र होना चाहिए।

प्रकृति अपना संतुलन स्वय कर रही है। हमारी अपेक्षा अपने काम को यह अधिक अच्छी तरह जानती है। जिस तरह यह सैकड़ों और हजारों जातियों का पालन कर रही है उसी तरह यह उनका पालन करेगी जिन्हें मनुष्य ने अपना भोजन चुना हुआ है। यदि कोई अपने पशुओं को प्रेम से नहीं रख सकता तो उसे उनके पालने और खिलाने पिलाने का कोई अधिकार नहीं है।

---

# देशी राज्यों में समाज सुधार के कानून

( लेखक—श्री एन० स्वामी बा. ए )

( १ )

( इन्दौर )

इन्दौर मे समाज सुधार का सबसे पहला कानून 'इन्दौर सिविल मैरेज ऐक्ट' के नाम से १६१६ मे पास हुआ था। इसका अभिप्राय प्रथाओं और रीति रिवाजों द्वारा लगे हुए प्रतिबन्धों को हटा कर विवाह के विषय मे व्यक्तियों को स्वतन्त्रता देना था। महाराज इन्दौर के आर्डर मे कानून का उद्देश्य निम्न प्रकार वर्णित है—

"जो व्यक्ति अपनी विरादरी और जाति के सकुचित दायरे से बाहर अपना सामाजिक क्षेत्र विस्तृत करने के इच्छुक होंगे, उन्हे ऐसा करने की स्वतन्त्रता देना इस कानून का मुख्योद्देश्य है।"

जाति के शिक्षित वर्ग ने इस उपाय से अमित लाभ उठाया है।

इस ऐक्ट के पश्चात 'इन्दौर तलाक कानून' पास हुआ था, इसके द्वारा व्यभिचार, पागलपन इत्यादि के आधार पर सिविल मैरेज ऐक्ट के विवाहों का विच्छेद हो जाता है। इस विवाह से उत्पन्न बच्चे वैध स्वीकृत होते हैं, यद्यपि विवाह स्वय रद्द हो जाता है।

इन्दौर का तीसरा समाज सुधार का कानून 'इन्दौर बाल विवाह कानून' है, जो १६१८ में पास हुआ था जिसके अनुसार १८ वर्ष से कम आयु के लडके और १४ वर्ष से कम आयु की लडकी का विवाह वर्जित है। अत्यन्त विशेष अवस्थाओं में १४ वर्ष के लडके और ११ वर्ष की लडकी के विवाहों की आज्ञा की कानून में विशेष व्यवस्था की गई थी। १६३८ मे इस कानून मे कॉट छॉट की गई और इसका नाम 'इन्दौर विवाह रजिस्ट्रेशन और बाल विवाह निरोधक कानून' रखा गया। इस कानून के अनुसार राज्य में होने वाले समस्त विवाहों की रजिस्ट्री कराना अनिवार्य रखा गया है।

राज्य में होने वाले बाल विवाहों का आसानी से पता लगाने के लिए ही यह कानून बनाया गया है। म्यूनिसिपैलिटीज, गावों की पचायतें और उनके सरपच स्कूलों के मुख्य अध्यापक, और पटवारी लोग विवाहों को अकित करते हैं और

बाल विवाहों के विरुद्ध मामला चलाने का भी उन्हें अधिकार प्राप्त है। लड़के और लड़की की विवाह योग्य आयु पहले कानून जैसी ही रखी गई है परन्तु उन मामलों मे विशेष आज्ञा की भी कानून मे व्यवस्था रखी गई है जिसमें लड़के की आयु १५ और लड़की की आयु १२ वर्ष से कम न हो। इस आयु से नीचे के विवाह निषिद्ध है। इस प्रकार के विवाह की सूचना मिलते ही उसे रोकने की तात्कालिक कार्यवाही के किये जाने की भी व्यवस्था की गई है। राज्य से बाहर बाल विवाह करना भी दण्डनीय ठहराया गया है।

बाल विवाह के लिए पहले १००) का दण्ड नियत था अब यह ५००) कर दिया गया है। इस कानून को प्रचलित हुए थोड़ा सा समय हुआ है परन्तु यह बड़ा व्यावहारिक और उपयोगी सिद्ध हुआ है। १९३८ मे इस कानून के आधीन १००० मुकदमे चलाए गए थे।

चौथा कानून 'इन्दौर का हिन्दू विधवाओं का पुनर्विवाह का कानून' है। यह कानून १९२८ मे पास हुआ था। इसका उद्देश्य हिन्दू विधवाओं को अपनी स्वतन्त्र इच्छा से पुनर्विवाह की सुविधा प्रदान करना और इस प्रकार के विवाहों से उत्पन्न सन्तानों को जायज करार देना है। इस विषय में एक मात्र प्रतिबन्ध यह है कि विवाह के समय विधवा की अवस्था पूरी १६ वर्ष की होनी चाहिए।

पॉचवां कानून 'बूढे पुरुष और नाबालिग लड़की के विवाह' का निरोध करने विषयक है। यह १९२७ में पास हुआ था। ४५ वर्ष से अधिक के पुरुष और १८ वर्ष से कम की लड़की का विवाह इस कानून के अनुसार निषिद्ध ठहराया गया है।

इस कानून के अनुसार एक मजिस्ट्रेट को ऐसे विवाहों को रोकने का काम सुपुर्द किया गया है जो विवाह होने की सूचना पाते ही नोटिस जारी करके विवाह को रोक देता है। कानून के उल्लंघन के लिए समुचित दण्ड का विधान किया गया है।

छठा तथा सातवॉं कानून हिन्दुओं के विवाहों और गमी के अवसरों पर अपव्ययों को रोकने के लिए निर्मित हुए हैं। इनके अनुसार कोई भी व्यक्ति इन अवसरों पर १०१ से अधिक व्यक्तियों की दावत नहीं दे सकता। असाधारण अवस्थाओं मे नुकता (गमी) की दावत मे डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की आज्ञा से ४०० और विवाह के भोज मे फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट की आज्ञा से ५०० व्यक्तियों को भोजन खिलाया जा सकता है। ये उपाय मृत उपाय नहीं हैं परन्तु इन कानूनों

के प्रचलन में उपस्थित व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण मुकदमों की संख्या प्रतिवर्ष परिमित ही रहती है। १६३८ मे मुकदमों की संख्या २८ थी। परन्तु फिर भी अमर्यादित अपव्यय को रोकने के लिये यह बड़ा कड़ा उपाय सिद्ध हुआ है।

इन्दौर का सबसे मुख्य सुधार 'अस्पृश्यता निवारण' सम्बन्धी है। जो १६३८ की महाराज की ऐतिहासिक घोषणा के द्वारा प्रचलित किया गया है। घोषणा इस प्रकार है —

( १ ) राज्य के समस्त देव मन्दिर हरिजनों के लिये खोल दिए गये हैं।

( २ ) राज्य के वर्तमान सार्वजनिक कुएँ और जो कुएँ बाद मे बनेंगे वे सबके प्रयोग के लिए खुले रहेंगे।

( ३ ) सार्वजनिक स्थानों और सार्वजनिक सवारियों इत्यादि का हरिजन भाई निर्वाध प्रयोग कर सकेंगे।

( ४ ) उच्च वर्ग के लोगों के लिए जो स्थान नियत हैं उनमे हरिजन भाई अपने मकान बना सकेंगे परन्तु म्यूनिसिपैलिटीज़ इत्यादि को आज्ञा देने का अधिकार दिया जायगा।

( ५ ) राज्य के स्कूलों, कालेजों और सर्विस मे हरिजनों के प्रवेश पर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध न लगाया जायगा।

( ६ ) हरिजन भाई, गहने पहिनने, जलूस निकालने और अपने उत्सव इत्यादि मनाने में स्वतन्त्र होंगे।

तीन वर्ष के काल मे जब से यह घोषणा क्रिया मे आई है, हरिजनों में बड़ी जाग्रति उत्पन्न हो गई है। घोषणा को क्रियात्मक रूप दिये जाने के उद्देश्य से एक 'केन्द्रीय हरिजनोद्धार समिति' बनाई गई थी और राज्य भर मे इसकी शाखाएँ खोली गई थीं। प्रचार कार्य के लिये प्रचारक नियुक्त किए गए हैं कि वे हरिजनों को उनके अधिकारों से परिचित कराएँ और उन्हें स्वच्छ जीवन व्यतीत करने की आदत सिखाएँ। इन्दौर में १६३५ से हरिजनों की शिक्षा मुफ्त थी। १६४० से कालेज की शिक्षा भी नि:शुल्क (मुफ्त) करदी गई है। गत वर्ष राज्य के हाई तथा मिडिल स्कूलों में लगभग ३५०० हरिजन लड़के और १०० लड़कियाँ शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

इस घोषणा के एक वर्ष पश्चात महाराजा साहब इन्दौर ने हरिजनों के

मकानों के निर्माण के लिए एक लाख रुपये की स्थायी सहायता की घोषणा की थी।

इसके अतिरिक्त समाज सुधार के अन्य कई कानून बने हुए हैं। जुआ रोकने का कानून, अड्डों को नियन्त्रण करने और बच्चों का कानून प्रचलित हैं। पहले दो का सख्ती से प्रचलन किया जाता है और तीसरा अभी प्रचलित नहीं हुआ है।

---

# आर्यसमाज की चिनगारियां

## चौधरी लब्भूराम जी

चौधरी लब्भूराम जी का स्थान ग्राम गोल जिला गुरदासपुर है। आप ग्राम में नम्बरदार हैं। आप कर्म काण्डी आर्य समाजी हैं। सध्या करना तो साधारण बात है, आप जिस समय तक हवन न करें भोजन नहीं करते हैं। यदि किसी समय हवन किसी कारण न हो तो आप उस दिन अनशन करेंगे।

आप हवन मे गोघृत का ही प्रयोग करते हैं। इसलिए आप यदि बाहर जांय तो घृत अपने साथ गृह से लेजाते हैं। आप अपने गृह मे उस अन्न का भोजन करते हैं जो उस खेत का हो जिसमें खाद न डाला गया हो इस लिए आप को अपने गृह मे इस प्रकार से सावधान रहकर जीवन व्यतीत करना पड़ता है।

साय प्रातः जो हवन का समय है आप उसी समय हवन करेंगे। यही नहीं कि वह स्वय हवन करलें प्रत्युत उस समय गृह के प्रत्येक सदस्य को जो नीरोग है उसमे सम्मिलित होना होगा, स्त्री गृह कार्य बन्द करके हवन मे सम्मिलित होंगी इत्यादि।

आपके भ्राता का देहान्त हो गया और उनकी सन्तान भी थी। चौधरी जी की धर्म पत्नी का देहान्त हो गया। आपके सन्तान न थी तब प्रश्न हुआ कि चौधरी जी दूसरी शादी करलें। चौधरी जी ने कहा ऋषि दयानन्द जी ने दूसरे विवाह का निषेध किया है। अतः मैं न करूंगा। तब प्रश्न हुआ कि आप अपनी भावज से पुनर्विवाह करलें। आपने कहा द्विजों के लिये उसका भी निषेध है। वह भी नहीं हो सकता है। तब तो सम्बन्धियों ने कहा, क्या हो सकता है। आपने उत्तर दिया नियोग हो सकता है और कुछ नहीं। प्रथम तो भावज उद्यत न थी। वह विवाह करने को कहती थीं। नियोग न मानती थी। चौधरी जी अपने विचारों पर दृढ़ थे। अन्त मे भावज की स्वीकृति पर बिरादरी के सम्मुख चौधरी जी ने नियोग किया।

नियोग से उनके एक लड़का और एक कन्या है। दोनों सन्तानों के जन्म के पश्चात् अब उनका पति पत्नी वत् सम्बन्ध नहीं है। मेरे ज्ञान में आर्यसमाज के नियोग का यह एक ही उदाहरण है।

## मुन्शी कृष्णचन्द जी

मुन्शी कृष्णचन्दजी ने जितने आर्य समाजी बनाए हैं शायद ही किसी और ने बनाए हों। मुन्शी कृष्णचन्द जी उन व्यक्तियों में से है जिन्होंने अनेक आर्य समाजी बनाए हैं।

मुन्शी कृष्णचन्द जी का जन्म स्थान ग्राम बलाल भाणा जिला हिसार है। आपके माता-पिता ने आपका नाम कालेखा रखा था। इस प्रकार आप जन्म दृष्टि से मुसलमान हैं। आप पांच भाई हैं।

आप युवावस्था मे महाजनी के अध्यापक थ। इसलिये आपको मुन्शी की उपाधी मिली। तब आप मुन्शी कालेखा हो गए। अपने मुन्शीपने के कार्यकालमे आपकोआर्यसमाज के पुस्तक पढने का अवसर मिला। आप कुरआन पहले पढे हुए थे। सत्यार्थ प्रकाश आदि के साथ आपने प० लेखराम जी और महामहोपाध्याय प० आर्य मुनि जी के ग्रन्थ भी पढे। उनसे ही आप आर्य समाजी हो गए और आप जिस ग्राम मे जाते थे वहा आर्य समाज का प्रचार करते थे और आर्य समाज बनाते थे। महाजनी का कोर्स साल दो साल में समाप्त करके नये ग्राम मे जाकर काम करते थ।

आपका नियम था कि यदि कोई ऐसा ग्राम जहाँ मुन्शी जी काम कर चुके थे वह मुन्शी जी को बुलाए तो वह दक्षिणा अधिक माँगते थे परन्तु नए ग्राम में न्यून पर चले जाते थे। पूछने पर कहा करते थे नई जगह आर्य समाज का प्रचार होगा, धन न्यून मिला तो क्या हुआ। जहा पहले से प्रचार है वहाँ से धन पूरा लेना चाहिये।

जब आपने नियम पूर्वक आर्य समाज में प्रवेश किया तो आपका नाम मुन्शी काले खा के स्थान पर मुन्शी कृष्णचन्द हो गया। उन्होंने एक बार मुझसे पूछा था मै घर वालों से मिलता रहूँ या सर्वथा पृथक् हो जाऊँ। मैंने उनको सम्मति दी थी आप पूर्ववत् मिलते रहें। इसलिए वह मिलते रहे और उसका परिणाम अच्छा ही हुआ क्योंकि मुन्शी जी के तीन भ्राता मास्टर रणपालसिंह जी, चौधरी अमरसिंह जी, चौधरी जीवणसिंह जी आर्य समाजी सपरिवार हो चुके हैं। शेष जो आपके ज्येष्ठ भ्राता थे उनके सुपुत्र भी आर्य समाजी हुए। उनका नाम चौधरी केहरसिंह था। परन्तु आपकी शीघ्र ही मृत्यु हो गई।

एक बार एक मुसलमान स्त्री ने आपसे पूछा मुन्शी जी मैंने सुना है कि आप प्रथम मुसलमान थे। आपने उत्तर हाँ में दिया। तब देवी ने कहा आप आर्य कैसे हो गए। आपने कहा मेरे दिल पर खुदा ने मुहर लगा दी है। इस उत्तर पर उस देवी ने कहा हाँ ऐसा ही मालूम होता है।

स्वामी अनुभवानन्द जी जिनका देहान्त आदमपुर डावा में हो गया है और जिन्होंने अछूतों के अनेक बालक स्कूल, कालेज मे पढ़ाए थे। मुन्शी जी के सत्संग से ही आर्य-समाजी बने थे।

## भगत नारायणदास जी

श्री नारायणदास जी तखतपुरी सावां राज्य पटियाला के निवासी थे। आप ग्राम में

सम्पन्न वैश्य थे। आप प्रथम सनातन धर्मी थे। परिवार में प्रथम आपके लघु भ्राता वीरुमल जी आर्य समाजी बने। पश्चात् आप भी आर्य समाजी हो गए। महाशय वीरुमल जी का युवावस्था में ही देहान्त हो गया। उसके पश्चात् भगत नारायणदास जी दृढ़ आर्य बन गए।

कई वर्ष पश्चात् आपकी पूज्य माता जी का देहान्त हो गया। उस समय तक लोगों को संशय ही था कि भगत नारायणदास जी आर्य समाजी हैं या बातें ही करते हैं। परन्तु माता के देहावसान पर उन्होंने अन्त्येष्टि आर्य समाज की पद्धति से की तब लोगों ने माना कि भगत जी आर्य समाजी ही हैं। परन्तु अभी एक परीक्षा शेष थी। वह थी माता जी की अस्थि-संचय करके भगत जी हरिद्वार भेजते हैं या नहीं।

दूसरे दिन ग्राम वासी मिलने वालों ने भगत जी से पूछा आप अपनी माता के फूल (अस्थि) गंगा भेजेंगे या नहीं। भगत जी ने उत्तर दिया जब मैं आर्यसमाजी हूँ और माता जी की अन्त्येष्टि में कोई पौराणिक रीति नहीं की है तब आप मुझसे फूल गङ्गा भेजने की आशा क्यों करते हैं। लोगों ने समझ लिया कि भगत जी अब आर्य समाजी ही बन गए हैं। वहाँ से उठकर समीपवर्ती सम्बन्धियो ने विचार किया कि चौथे दिन फूल चुनकर हम अपने व्यय से गंगा भेज दें और भगत जी को कुछ न कहें। इस विचार का भगत जी को भी किसी प्रकार पता लग गया। भगत जी ने निश्चय किया ऐसा न होने दिया जायगा। इसका उपाय भगत नारायण दास जी ने यह किया कि तीसरे और चौथे दिन के मध्य की रात को शमशान भूमि में जाकर राख सहित अस्थियाँ उठाकर पास चलते राजवाहा (कुल्या) मे डाल दी और दिन निकलने से पूर्व ही अपने स्थान पर आ गए। प्रातःकाल सम्बन्धी फूल चुनने के लिये शमशान भूमि में गए परन्तु वहा जाकर देखा कि वहाँ कुछ भी नहीं है और निराश होकर लौट आए।

भगत नारायण दास जी ने आर्य सिद्धाॅत की रक्षा की।

## भगत कृष्णचन्द जी

महाशय कृष्णचन्द जी ग्राम नौरंग जिला हिसार निवासी थे। आप वैश्य थे। प्रथम नौरंग में काम करते थे। पश्चात् रामा मण्डी राज्य पटियाला में आकर दुकान करने लग गये। आपकी दूकान साधारण ही थी। आप गुड़, शक्कर, नमक, मिर्च, चाय आदि चीजें बेचा करते थे और प्रातः सायंकाल आर्य समाज में जाकर आर्य समाज का कुछ काम भी करते थे और संध्या भी आर्य समाज में किया करते थे। आप उपदेशक न थे और विद्वान् भी न थे। परन्तु आप अपने ग्राहकों को आर्य समाज की बातें सुनाया करते थे और लोगों को हानि-कारक बातों से हटाने का यत्न किया करते थे। आपकी दूकान छोटी होने के कारण साधारण व्यक्ति ही वहा आया करते थे और आप सबको एक ही दृष्टि से देखते थे। अज्ञानी समझ कर

लोगों को ठगते न थे। इस कारण प्राय लोग उनको भगत बुलाया करते थे और उनका यत्न होता था कि वह भगत जी से ही सौदा ले क्योंकि उनको उन पर विश्वास था।

उन्होंने अपने खरीदारों में प्रचार करते २ अनेक खरीदारों को अनेक व्यसनों से हटा दिया और वह लोग व्यसनों से मुक्त होकर आर्यसमाज के प्रशंसक हो गए। इस प्रकार यदि कोई व्यक्ति प्रचार करना चाहे तो प्रत्येक अवस्था में बिना व्याख्यान दिये भी कर सकता है यह शिक्षा भगत कृष्णचन्द जी के जीवन से मिलती है।

—स्वतन्त्रानन्द

## मास्टर भानाराम जी लुधियाना

मास्टर भानाराम जी को आर्य समाज लुधियाना से प्रेम उस समय हुआ जब कि आप १८८८ ई० म गवर्नमेंट हाई स्कूल लुधियाना म विद्यार्थी थे। इस समय म मेरे छोटे भाई मूलराज नैयर आपके सहपाठी होने के कारण प्राय मास्टर जी नित्य प्रति हमारे यहा आया करते थे। जब सितम्बर १८८८ ई० मे मेरे भाई मूलराज नैयर का अकस्मात् देहान्त हो गया तो मास्टर जी का और भी मुझसे घनिष्ठ स्नेह हो गया। इस समय प० नौनिधराम वारी शर्मा ( जो बाद म डाक्टर एन० आर० धर्मवीर के नाम से प्रसिद्ध हुए ), प० देवीचद ओवरसियर मिलटरी वर्क्स लुधियाने के सुपुत्र भी मास्टर भानाराम जी और मेरे भाई के सहपाठी थ। डाक्टर जी व मास्टर जी मेरे से रोज मिल कर मेरा दु ख दूर किया करते थे। उसी दौरान मे लाला लाजपतराय थापर जो आर्य समाज लुधियाने के स्थापित होने के समय से मेम्बर थे सायंकाल की सैर मे मिलने लगे। उनकी प्रेरणा और सामाजिक वार्तालाप से मैंने और मास्टर भानाराम जी ने आर्य समाज लुधियाना के साप्ताहिक सत्सगों मे सम्मिलित होना आरम्भ कर दिया। पहले सप्ताह जब हम समाज मे गए उस समय सम्मिलित मेम्बरान "आत्मा में गंग बहे क्यों नहीं मन न्हावे रे" श्री ला० रामजीदास जी खजाञ्ची जी के साथ एक स्वर से गा रहे थे। खूब आनन्द रहा। उस दिन के प्रभाव से हम सदैव समाज मे जाने लगे। १ जनवरी सन् १८८९ ई० मे श्री लाला रामजीदास जी खजाञ्ची उप प्रधान आर्य-समाज लुधियाना ने मेरे साथ मास्टर भानाराम जी का नाम भी मेम्बरान मे अंकित करा दिया। इसके पश्चात् ला० लाजपतराय थापर मुझे हिन्दी भाषा पढाने लगे और मास्टर जी के साथ सत्यार्थप्रकाश पर बात चीत करते रहे जिसका परिणाम यह हुआ कि हम दृढ आर्य हो गए। उसी रोज से मा० भानाराम जी ने डाक्टर एन० आर० धर्मवीर से मिलकर अपने स्कूल के विद्यार्थियों में वैदिक धर्म सम्बन्धी बातचीत शुरू करदी जिसका परिणाम यह हुआ कि गवर्नमेंट हाई स्कूल के विद्यार्थी बड़ी भारी तादाद मे साप्ताहिक सत्सग म आने लग गए। आर्य समाज में खूब रौनक होने लग गई। लाला रामजीदास जी खजाञ्ची के विशेष उपदेशों

ने विद्यार्थियों पर नुमाया प्रभाव डाला। नित्य प्रति सायंकाल जब हम लोग भ्रमण को जाते तो सिवाय वैदिक धर्म की चर्चा के और कोई काम न था। जिसमे मास्टर भानाराम जी विशेष भाग लेते। मास्टर जी के एण्ट्रेस पास करने तक विद्यार्थियों की आर्य समाज मे खास तौर पर रौनक होती रही। मास्टर भानाराम जी के उत्साह से प्रभावित होकर आर्य स्कूल मैने जिंग कमेटी लुधियाना ने आपको स्कूल का सैकेन्ड मास्टर निश्चित कर दिया। जहा मास्टर जी ने अपने मुख्य कर्तव्य को निभाया वहाँ विद्यार्थियों में धार्मिक प्रभाव भी डालते रहे। इधर मेरे पूज्य पिता जी आर्य समाज म प्रविष्ट होने से बहुत कष्ट होने लगे तो मास्टर भानाराम जी ने ही ( जिनको मेरे पिता मेरे स्वर्गवासी भाई मूलराज नैयड की मित्रता की वजह से बहुत प्यार करते थे ) पिता जा को यह कहकर शान्त किया कि धार्मिक काम है कोई बुरी बात नही। आप कुछ ख्याल न करे। इससे पिता जी ने फिर मुझे कुछ नहीं कहा। मास्टर जी की कृपा से फिर तो मैने आर्यसमाज मे खुल्लमखुल्ला काम करना आरम्भ कर दिया। आर्यसमाज लुधियाने के प्रसिद्ध सभासद ला० गणेशीलाल जी पान वाला ( जिनके नाम से गणेशीलाल आर्य कन्या पाठशाला लुधियाने मे प्रचलित है ) की दूकान पर नित्य प्रति साय को मास्टर भानाराम, ला० लाजपतराय थापर, ला० चिरञ्जीलाल जी उपदेशक, डाक्टर विश्वेश्वर दयाल जी मन्त्री समाज, ला० चिन्ताराम जी सूद, लाला खुशीराम जी भावड़ा, बाबू देवीचन्द जी जलन्धरी, ला० मुरलीधर जी सूद, ला० रामनारायण जी आदि हम सब आर्य सामाजिक भाई एकत्र होकर वैदिक धर्म की चर्चा करते थे जिससे दिनों दिन प्रेम और उत्साह बढ़ता गया। इसी तरह मास्टर भानाराम जी ने लुधियाने मे वह काम किया जो उनके जानने वालों को भली प्रकार विदित है। आपने बावजूद जैनी होने के खुल्लमखुल्ला आर्यसमाज का काम करके सिद्ध कर दिया कि आपको आर्य समाज से इस कदर हित है जिसके मुकाबले मे बिरादरी की कोई परवाह नही।

एक समय वह आया कि आपकी योग्यता को देखकर भड़ौच (अचघ) के राजा हीरा सिंह जी तल्लुकेदार ने अपने सुपुत्र सरदार कर्मसिंह जी के अतालीक (अध्यापक) निश्चित करके आपको भड़ौच बुलवा लिया। वहाँ भी मास्टर भानाराम जी ने वैदिक धर्म प्रचार में कोई कमी नहीं आने दी। वहा छोटा बड़ा हर एक उनकी गम्भीरता से प्रभावित होता। वहा ला० अमीचन्द जी बुलाज जो दृढ़ सामाजिक थे। साथ मिलकर वैदिक धर्म का प्रचार खूब किया। मास्टर भानाराम जी की योग्यता और ईमानदारी का ही परिणाम था कि सरदार कर्मसिंह जी को अपने ताल्लुके का मुख्तारकार मुकर्रर फरमाया। इस जुम्मेदारी के अधिकार का मास्टर जी ने निहायत दयानतदारी और लगातार मेहनत से काम करके सिद्ध कर दिया कि आप जिस काम को भी हाथ में लेते हैं उसको भली प्रकार निभाते हैं। जब लाला लाजपतराय

जी जिला वतन हुए तो आर्य समाज को कुछ सन्देह की दृष्टि से देखा जाने लगा। उससे मास्टर जी उपराम होकर नौकरी छोड़कर भड़ौच से लुधियाने आ गये। बजाजी की दूकान का कार्य स्वीकार करके आर्य समाज के काम मे फिर लग गये। आर्य समाज लुधियाने के उपप्रधान, आर्य हाई स्कूल मैनेजिंग कमेटी के मेम्बर की हैसियत मे जो काम आपने किया वह जानने वालों को भली प्रकार याद है। आपकी दूकान पर हमेशा आर्य भाइयों का जमघट लगा रहता था। पूज्य स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी व प० विष्णुदास जी महन्त लुधियाना आते तो आपकी दूकान पर घण्टों बैठकर वार्तालाप करते। ऐसे समय में कोई ग्राहक आता तो मास्टर जी यह कह कर कि "अब नहीं" ग्राहक को टाल देते। आपको अपने आपका इतना ध्यान न था जितना धर्म सम्बन्धी बातों का। आपकी गम्भीरता के कारण शहर मे आपको मान की दृष्टि से देखा जाता था। इसी तरह आपने जो कार्य आर्य समाज लुधियाने मे पूरी लगन से किये हैं वह हम भूल नहीं सकते। शोक है कि आप जिगर की खराबी के कारण सदैव के लिये दाग जुदाई दे गये। जो भी जाता है उसकी जगह पूर्ति नहीं होती। यह हमारे मन्द कर्मों का फल है।

इस बात से सन्तोष है कि उनके सुयोग्य सुपुत्र ला० बृजभूषण जी बी० ए० लाइब्रेरियन (Librarian) गवर्नमेन्ट आफ इण्डिया, देहली आर्य समाज के सभासद हैं। वैदिक धर्म का प्रेम उन्हें अपने पूज्य पिता से विरसे मे मिला।

लब्भूराम नैयड़, आनन्दाश्रम लुधियाना

# कुछ विचार

[ लेखक—पं० महेशप्रसाद जी, मौलवी आलिम फाजिल, हिन्दू यूनीवर्सिटी बनारस ]

मैंने देखा कि श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती महाराज का कोई जीवन चरित्र ऐसा नहीं कि जिससे यह बात सुगमता के साथ जानी जा सके कि वह किसी स्थान पर एक या अनेक बार कब अथवा कब कब पधारे थे। इसी बात को विशेष रूप से लक्ष में रखकर मैंने एक सूची तैयार की। परन्तु इस सिलसिले में कुछ बातें विचारशील पाठकों के सन्मुख रखने के लिए आवश्यक प्रतीत हुई हैं।

( १ )

श्री स्वामी जी महाराज के समस्त जीवन चरित्रों से स्पष्ट है कि वह संवत् १९११ वि० (सम्भवतः अन्त) में हरिद्वार पहुँचे और उन्होंने सं० १९१२ वि० में हरिद्वार के कुम्भ को देखा। उसके पश्चात् उन्होंने उत्तराखण्ड की यात्रा की। शीत ऋतु शिवपुरी नामी स्थान में व्यतीत किया। परन्तु इसी सम्वत् की बाबत यह भी पता चलता है कि उन्होंने शीतकाल द्रोण सागर ( काशीपुर के पास ) में काटा और यह सम्वत् उस समय समाप्त हुआ जबकि वह कानपुर के निकट थे। ऐसी अवस्था में यह बात सन्तोष जनक नहीं ठहरती कि उन्होंने शिवपुरी व द्रोण सागर दोनों स्थानों पर शीतकाल व्यतीत किया हो।

दोनों स्थानों से सम्बन्ध रखने वाली सामग्री 'थियोसोफिस्ट' नामी अंग्रेजी पत्रिका के आधार पर है। मैंने उस पत्रिका को देखा उससे भी सन्तोषजनक नतीजा नहीं निकलता। मेरे विचार से उत्तराखण्ड की यात्रा लगभग ८ मास की हुई थी और महाराज ने द्रोण सागर में ही जाड़ा व्यतीत किया था। यही बात संगत युक्त प्रतीत होती है।

( २ )

जितने पदारोपित स्थानों के नाम मालूम होते हैं उनसे कहीं अधिक स्थानों को महाराज जी ने गौरवान्वित किया था। परन्तु जिन स्थानों के नाम ज्ञात हैं उनमें से बहुतेरे स्थान ऐसे हैं कि उनको लोग जानते हैं किन्तु बहुत से ऐसे भी

कि उनको एक जिले या वहाँ के आस-पास के लोग भी नहीं जानते कि वह स्थान किसी प्रधान स्थान से किस ओर और कितनी दूरी पर है और यदि ऐसे छोटे छोटे स्थानों की बाबत जीवन चरित्रों में कुछ लिखा गया है तो वह लेख वास्तव में अपूर्ण है। उदाहरणार्थ जानना चाहिये कि मसूदा से महाराज ने प्रस्थान किया और हुरड़े में पहुँचे जो कि नौ कोस की दूरी पर है। किन्तु इस सम्बन्ध में यह नहीं जतलाया गया है कि हुरडे वास्तव में मसूदा से किस दिशा की ओर है।

( ३ )

अनेक छोटे छोटे स्थानों के नाम कुछ अशुद्ध मिलते हैं। फर्रुखाबाद जिले के 'मऊ रशीदाबाद' के निमित्त 'मुर्शिदाबाद' छपा हुआ देखने में आता है। जिला एटा के दो स्थानों के नाम 'अम्बागढ़' और 'सरदोल' लिखे हुए हैं, किन्तु मुझे बतलाया गया है कि अम्बागढ़ के स्थान पर 'गङ्गगढ़' और 'सरदोल' के बदले 'सरावल' ठीक है। इसी प्रकार और भी कुछ स्थानों के नाम ठीक ठीक नहीं प्रतीत होते।

छोटे छोटे स्थानों मे महाराज के पधारने की बाबत जिन लोगों से जानकारी प्राप्त करके जीवन चरित्र लिखे गये हैं उनमें से शायद ही कोई जीता होगा। किन्तु उनके बेटे व पोते अवश्य हैं जोकि यह बतला सकते हैं कि मैने अमुक से सुना है कि महाराज ने यहाँ पदार्पण किया था। ऐसे व्यक्तियों के द्वारा स्थानों के अशुद्ध नाम ठीक किये जा सकते हैं और स्थानों की बाबत यह भी लिखा जा सकता है कि किसी प्रसिद्ध स्थान से वह स्थान किस ओर और कितनी दूरी पर है। यह बात जीवन चरित्र पढ़ने वालों के निमित्त इस समय हितकर रहेगी और भविष्य के लिए भी हितकर ही होगी।

( ४ )

महाराज जी कहाँ कब पधारे—इस विषय में कुछ गड़बड़ झाला है। पत्र व्यवहार व विज्ञापन आदि से इस सम्बन्ध की बातें कुछ हद तक ठीक हो सकती है। मेरे ख्याल से आवश्यकता है कि उक्त सारी बातें ठीक की जायँ अन्यथा भविष्य में अनेक बातें भ्रमात्मक रहेंगी। आशा है कि इस ओर उचित ध्यान दिया जायगा।

## महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के लुधियाना में शुभागमन की तिथियां

(१) चान्दापुर के शास्त्रार्थ के पश्चात् बैशाख बदी १ सम्वत् १९३४ तद्नुसार ३१ मार्च सन् १८७७ को श्री स्वामी दयानन्दजी ने अपने आगमन से इस नगर को पवित्र किया और १९ अप्रैल तक लाला वंशीधर वैश्य के बाग़ में ( जो अब राय साहिब ला० शिवप्रसादजी खजांची की मलकीयत में है ) निवास किया।

(२) १ अप्रैल सन् १८७७ को लाला जटमल खजांची के मकान चौड़ा बाजार में व्याख्यान देने आरम्भ किये जो ९-४-१८७७ तक जारी रहे।

(३) एक दिन पादरी बैरी साहिब और यहां के जज कारस्टीफन साहिब ने भी जो उपदेशों में आया करते थे स्वामी जी से फरमाया कि कृष्ण जी के ऐसे कामों के साथ उनका महात्मा होना अक़्ल नहीं मानती। स्वामी जी ने उत्तर दिया कि "जो इलजाम लगाए जाते हैं वह निर्मूल हैं। उन्हों ने कोई ऐसा काम नहीं किया। मगर अक़्ल न मानने की निसबत तो क्या कहूं। और कहा जब अक्ल यह मानती है कि खुदा की रूह कबूतर की शक्ल मे एक आदमी पर उतरी तो इसके गवारा करने में कुछ दिक्कत नही होनी चाहिये।

(४) अगले दिन लैक्चर मे एक पण्डित ने अपने साथी को कहा कि दुष्ट है। इसका मुँह देखना धर्म नहीं। चलो! स्वामी जी ने कहा कि "मेरे मुँह में तो कोई खास बात नहीं? जिसको तुम देखो अगर नफरत है तो मेरे पीछे खड़े हो जाओ। केवल मेरी बात सुनो।"

(५) स्वामी जी ने लुधियाने में सात आठ उपदेश दिये। आरम्भ मे यह कह दिया था कि मेरे व्याख्यान सुनो, बीच में मत बोलो। आठवें दिन व्याख्यान नहीं दिया बल्कि आकर उस जगह सबको चैलंज दिया। मगर किसी ने खास तौर पर कोई प्रश्न नहीं किया। हाँ, पादरी बैरी साहिब रोज़ जाते और अपनी शंकाएँ दूर करते।

(६) अमृतसर, जालन्धर से स्वामी जी १३ जुलाई को वापिस आए तो फिर उसी बाग़ में तीन चार रोज़ ठहरे। मगर कोई व्याख्यान नहीं दिया। प्रायः मुसलमान आदि भी जाया करते थे।

(७) पं० श्रद्धाराम फिल्लौरी ने यहां आकर कुछ हल्ला किया मगर फिर वह चला गया।

(८) पं० रामसरन गौड़ जिनको पादरी न्यूटन साहिब लुधियाना लाए ईसाई बनने वाले थे लोग उसको स्वामी जी के पास ले आए। स्वामी जी के उपदेश से उसने ईसाइयों की नौकरी छोड़ दी और स्वामी जी उसको अपने साथ लाहौर ले गए।

(९) स्वामीजी महाराज के साथ कई पण्डित थे जो वेदभाष्य की नकल किया करते थे।

—सम्भूराम नैयर

# विजयादशमी

[ संपादक विश्वमित्र कलकत्ता के सौजन्य से प्राप्त ]

इटली के पन्द्रहवीं शताब्दी के कूटनीतिज्ञ मेकावेली ने अपने देश के सीजर बोर्जिया को आदर्श पुरुष बताया और अपनी संसार प्रसिद्ध पुस्तक 'राजा' में तत्कालीन योरुपियन शासकों को उसका अनुकरण करने का परामर्श दिया।

इसके कई शताब्दियों बाद एक अर्द्ध जर्मन दार्शनिक का जन्म हुआ। जिसका नाम निट्ज़े था। इसने भी सीजर बोर्जिया को आदर्श पुरुष माना और आशा प्रकट की कि जर्मन युवक उसके अनुरूप होगा। निट्ज़ेने नैपोलियन को भी संसार का आदर्श पुरुष बताया और कहा कि संसार में वही जाति अन्य जातियों के ऊपर शासन कर सकेगी जिसके युवकों में इन दोनों पुरुषों के गुण मौजूद होंगे।

सीजर बोर्जिया और नैपोलियन में आकाश पाताल का अन्तर है। नैपोलियन के प्रतिभावान योद्धा होने में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। पर सीजर बोर्जिया अपने समय का सबसे अधिक घृणित और पतित व्यक्ति हुआ है। उसने अपने भाई को मरवा दिया था, एक महिला का सतीत्व नष्ट किया था, और अपनी माता के अपमान का बदला लेने के लिये निर्दोष स्विस जनता को तलवार के घाट उतार दिया था। वह विष की उपयोगिता में विश्वास रखता था और अपने शत्रुओं पर विजय पाने की चिन्ता में उचित अनुचित का ध्यान रखना आवश्यक न समझता था। उसकी तुलना अरबिस्तान के हसन बिन सब्बाह से की जा सकती है जिसने शत्रु से छुटकारा पाने के मामले में छुरे के उपयोग की धर्मादेश की पवित्रता प्रदान की थी।

मकावेली और निट्ज़े को भारतीय इतिहास का ज्ञान न था। इसके अतिरिक्त वे किसी व्यक्ति के आदर्श व देवोपम होने के लिये उसमें जिन गुणों की उपस्थिति आवश्यक समझते थे उनमें भौतिक बल कूटनीति, साम्राज्य लोलुपता और नृशंसता को विशेष रूप से महत्व दिया गया था। मकावेली स्वयं कूटनीतिज्ञ था, इसलिये उसे सीजर बोर्जिया का चरित्र विशेष रूप से रुचा। निट्ज़े का प्रादुर्भाव तब हुआ जब फैड्रिक महान और उसके कृपण पिता के द्वारा प्रशियन सैनिक

नियंत्रण को मूर्त रूप मिल चुका था। निट्ज़े को प्रूशियन सैनिक की कायदे कानून की पाबन्दी और निर्दयता विशेष रूप से रुची और उसने आशा प्रकट की कि संसार का भविष्य प्रूशियन सैनिक के हाथ में है। परन्तु चूंकि उसे वह पूर्ण रूपेण देवोपम पुरुष के रूप में देखना चाहता था इसीलिये उसने उसे सीजर बोर्जिया की मित्र घात करने की मनोवृत्ति और नैतिक चरित्र हीनता को भी अपनाने की सलाह दी।

यह कहना अनावश्यक है कि आजकल के जर्मन नेताओं के कार्य कलाप और विचार बिन्दु पर निट्ज़े की शिक्षा की गहरी छाप लगी हुई है।

परन्तु मकावेली ने योरुप के शासक वर्ग को सीजर के जिन गुणों को अपनाने की सलाह दी थी और निटजे ने प्रूशियन सैनिक को उसके जिन गुणों के कारण संसार का भावी शासक, पूर्ण पुरुष या देवोपम पुरुष समझा था वे गुण कहीं अधिक विकसित मात्रा में एशियाई विजेताओं में या मगोल और तुर्क सैनिकों में मौजूद थे।

भारतीय संस्कृति या आर्य संस्कृति की (और दोनों संज्ञायें एक दूसरे की पर्यायवाची हैं) पूर्ण पुरुष या देवोपम पुरुष की विभावना इन मध्य एशियाई, इटालियन या प्रूशियन विभावनाओं से बिल्कुल भिन्न प्रकार की रही। सीजर बोर्जिया ने अपने पिता का अनुराग स्वयं अपनाये रहने की इच्छा से अपने भाई की हत्या करवा दी। भरत ने राज्य मिलने पर भी उसे तिरस्कार पूर्वक ठुकरा दिया और भाई का अनुगामी रहकर ही सन्तोष किया। नैपोलियन ने रूस के तर क्षीन जार एलेक्जेण्डर से चिरकालीन मित्रता की सन्धि की (जिस प्रकार हिटलर ने स्टेलिन से अमर सन्धि की थी), और अवसर पाते ही मित्र के साथ विश्वासघात किया, राम ने एक बहुत ही कमजोर आदमी का पक्ष ग्रहण किया और अन्त तक उसका साथ निबाहा। औरङ्गजेब ने अपने पिता को कैद में डाल दिया और भाइयों को मरवा दिया, ठीक जिस प्रकार उसके पिता ने अपने भाइयों को मरवा दिया था, राम ने अपने दुर्बल, शक्तिहीन और स्त्रैण पिता की आज्ञा का सहर्ष पालन किया और अपने भाई भरत के विरुद्ध षड्यन्त्र करने के अपूत विचार तक को प्रेश्रय नहीं दिया गया।

तो संसार का देवोपम पुरुष या पूर्ण पुरुष होने के लिये किसी व्यक्ति के भीतर किस प्रकार के गुणों की उपस्थिति आवश्यक है? उन गुणों की जो उसकी बर्बर प्रवृत्ति को क्रीडा करने का अवसर देते हैं, या उन गुणों का जो व्यक्ति को

समाज के नियत और निर्धारित नियम-उपनियमों का पालन करने और उनमें विकास करने को प्रोत्साहित करते हैं। सीजर बोर्जिया ईसाई था, नैपोलियन भी ईसाई था। मूसा के दस आदेश वाक्य प्रत्येक ईसाई को उस समय भी मान्य थे, अब भी मान्य हैं। परन्तु मकावेली और निट्ज़े के इन दोनों पूर्ण पुरुषों या आदर्श पुरुषों ने इन सभी आदेश वाक्यों के विपरीत आचरण किया। भारतीय समाज में भी वैसे ही नियम उपनियम समाज की सृजना के आरम्भ से चले आ रहे हैं और हम राम को श्रेष्ठ पुरुष कहकर उनका सत्कार करते हैं क्योंकि उन्होंने उन नियम उपनियमों का साधारण व्यक्ति की भांति ही पालन किया। उसी प्रकार हम बालि और रावण को घृणा और तिरस्कार की दृष्टि से देखते हैं क्योंकि उनमें से एक ने अपने भाई की स्त्री के ऊपर अधिकार करके, और दूसरे ने समाज की रक्षा करने के स्थान पर उसमें आतङ्क फैलाकर सामाजिक नियमों का उलङ्घन किया। इस प्रकार जहां मकावेली और निट्ज़े के दृष्टिकोण से बालि और रावण ही पूर्ण पुरुष या देवोपम पुरुष सिद्ध होंगे, हमारी संस्कृति हमें ऐसे व्यक्तियों को समाज का शत्रु और ऐसे व्यक्तियों से समाज को त्राण दिलाने वाले व्यक्तियों को उसका रक्षक या पिता कहना सिखाती है।

बस, भारतीय संस्कृति और अवशिष्ट संसार की संस्कृतियों में यही भेद है। जहां हमारे यहाँ मानवी विकास को प्रधान्य दिया गया है, वहाँ अर्द्ध विकसित एशियाई और योरुपीय समाजों में सामूहिक विकास, वर्गवाद और भौतिक प्रदर्शन को ही अपना आदर्श समझा गया है। सांस्कृतिक विकास के जिस स्टेज से अवशिष्ट संसार गुजर रहा है, वह स्टेज हमारी संस्कृति अब से अनेक हजार वर्ष पहले पार कर चुकी थी, जिसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि भगवान् राम के समय में भी हिन्दू समाज पिता की आज्ञा पालन करना परम धर्म समझता था, दूसरे की स्त्री को अपनाने वाले व्यक्ति का विनाश करके ही सतुष्ट होता था और लोकमत को ही किसी शासन की सफलता या विफलता की अचूक तराजू मानता था। यही कारण है कि हजारों वर्ष बीत जाने पर भी हिन्दू समाज के गठन में वह विश्रृङ्खलता नहीं आने पाई है जो बाहरी आक्रमणों के अवसर पर ईरान और मिश्र की पुरानी जातियों के लिये घातक सिद्ध हुई। कोई जाति तभी तक जीवित रहती है जब तक वह मानवी विकास के प्राकृतिक कार्यकलाप में योग देती रहे। प्रकृति को शून्य से घृणा है और इतिहास बताता है कि जिन जिन जातियों ने हत्या और व्यभिचार और मक्कारी के स्टेज से आगे बढ़ने से

इन्कार किया और इन्हीं की अपनी उन्नति और तुष्टि का साधन समझा, वे नष्ट हो गयीं।

विजय दशमी का त्यौहार हमें उस दिन का स्मरण दिलाता है जब आर्य जाति का जाति-सुलभ तेज मौजूद था, जब वह अत्याचारी को दण्ड देना, पीड़ितों की रक्षा करना और शक्तिशाली अत्याचारी के मुकाबले सङ्गठनात्मक प्रतिभा के बल पर जङ्गली जातियों को ला खड़ा करना जानती थी। भगवान् राम का हम सत्कार करते हैं क्योंकि उन्होंने आर्य जाति सुलभ नेतृत्व और शौर्य प्रदर्शित किया था, पिता की आज्ञा का पालन करके आर्यपुत्र सुलभ आचरण किया था, और लोकमत को ही अपनी लोकप्रियता का माप समझा था। हम सीता जी को पूज्या कहते हैं क्योंकि वह अपने आचरण की हिन्दू स्त्री के चरित्र पर अमिट चिन्ह छोड़ गई है, क्योंकि उनका पातिव्रत्य और त्याग हिन्दू स्त्री को अपना सारा जीवन ही त्यागमय बनाने को उत्साहित करता आ रहा है। लक्ष्मण का संयम और भरत का भ्रातृ-प्रेम अब भी हम में चरित्र-बल उत्पन्न करते हैं और हमें स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

हमारा पूर्ण पुरुष या देवोपम पुरुष मकावेली या निट्‌ज़े या हसन बिन सब्बाह के देश वासियों के आदर्श पुरुष से सर्वथा भिन्न है। हमारा पूर्ण पुरुष मानवी समाज के लिए मङ्गल और स्वार्थ-त्याग और शान्ति का सन्देश लेकर आता है, उनका आदर्श पुरुष विनाश और आचार भ्रष्टता और विश्वासघात का सन्देश लेकर। भगवान् राम का वह चित्र हमें सबसे अधिक प्रिय लगता है जिसमें वह अपने भाई और पत्नी के साथ नंगे शरीर बनकी खाक छान रहे होते हैं (और इस प्रकार दरिद्र नारायण के साथ समीपता स्थापित करते हैं), उन्हें वह जिस में सीजर बोर्जिया ने विष द्वारा किसी शत्रु को समाप्त किया हो, या नैपोलियन किसी नगर पर तोप के गोलों की वर्षा कर रहा हो, या प्रुशियन सैनिक टांगें आकाश की ओर फेंकता हुआ आगे बढ़ रहा हो। हमारे और अवशिष्ट संसार के पूर्ण पुरुषों में किसी प्रकार की समानता सम्भव नहीं है, और जहाँ हमारे ऐतिहासिक पूर्ण पुरुष हमारे लिए अब भी उसी प्रकार शक्ति और स्फूर्ति के भण्डार बने हुए हैं, वहाँ ज्यों ज्यों मानवता आगे बढ़ती जाती है, उनके पूर्ण पुरुषों के कृत्यों के प्रति उसकी घृणा बढ़ती जाती है। यही अन्तर है, और इसी अन्तर में हमारी जाति के अमरत्व का रहस्य छिपा हुआ है।

# सुमन-संचय

## ( १ )

## भूत दया

एक बार एक अरब मुहम्मद साहब के पास पिड़की के कुछ बच्चे लाया और कहने लगा 'जब मैं जगल मे आ रहा था तब मैंने पिड़की के बच्चों को एक घोंसले में चू चू करते सुना। उनकी माँ पास म बैठी हुई कू कू कर रही थी। वह गिड़गिड़ाती रही लेकिन मैं उसके बच्चों को घोंसले सहित उठा लाया। वह देखिए मेरे पीछे आ रही है।'

पिड़की आकर एक पेड़ पर बैठ गई। मुहम्मद साहब ने घोंसला लेकर धरती पर रख दिया और अरब से कहा 'तुम हट जाओ' अपने बच्चों की ममता म डूबी हुई पिड़की अपने बच्चों के पास आई। मुहम्मद साहब ने कहा 'देखो, यह निडर पिड़की एक सिपाही से अधिक वीर है। जिस पेड़ से तुम उसके घोंसले और बच्चों को लाए थे वही लेजाकर रख आओ। जब उसने घोंसला वहाँ पहुँचा दिया तो पिड़की की जान मे जान आई और वह प्रसन्न होकर फिर कू कू करने लगी।

## ( २ )

## आदर्श दान

प्रात काल की बेला थी। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर गगा म खड़े स्नान कर रहे थे। उनकी दृष्टि सहसा ही किनारे पर बैठे हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। उसकी मुख मुद्रा से प्रतीत होता था कि वह बड़ा दुखी और चिन्ता ग्रस्त है। विद्यासागर जल म से निकल कर उसके पास गए और उससे चिन्ता का कारण पूछा। उस व्यक्ति ने दीर्घ श्वास लेकर कहा 'आप मेरी चिन्ता का कारण पूछ कर क्या करोगे, आप अपना काम कीजिये' विद्यासागर को इस उत्तर से सन्तोष न हुआ और उससे पुन चिन्ता का कारण पूछा। उसने पुन ठीक उत्तर न दिया। अन्त में चार-पाच बार आग्रह पूर्वक पूछने पर उसने कहा 'मैंने अपने दो भाइयों के पालन पोषण और उच्च शिक्षा मे १०००) कर्ज लेकर लगा दिया था। वह धन मुझसे पट न सका। इस पर ऋणदाता ने मुझ पर अभियोग चला दिया। आज यदि यह धन मैं जमा नहीं करता हूँ तो जेल मे ठूँस दिया जाऊँगा। मुझे अपनी तो चिन्ता नहीं है परन्तु मेरे पीछे चार बच्चे · ओह! उनका क्या बनेगा? यह कह कर वह रोने लगा।

उसकी दशा देखकर विद्यासागर से रहा न गया और उससे उसका और ऋणदाता का नाम पूछकर सध्या करने बैठ गए।

*　　*　　*

भारी हृदय के साथ वह व्यक्ति अदालत के अहाते म प्रविष्ट हुआ। लोगों की एक भीड़ उसके साथ थी। कोई उसकी दशा पर सहानुभूति प्रकट करता था तो कोई उसको मूर्ख कहकर उसकी हँसी उड़ाता था। इस प्रकार लोगों की भीड़ में से होता हुआ वह अदालत के कमरे मे गया। वहाँ पहुचते ही जब न्यायाधीश ने खड़े होकर यह फैसला सुनाया कि तुम्हारे ऋणदाता को उसका रुपया मिल गया है और अभियोग वापिस ले लिया गया है तब उसके तथा उपस्थित लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वह व्यक्ति मन्त्रमुग्ध हो न्यायाधीश की ओर खड़ा देखता रहा। कुछ क्षण के उपरान्त वह हाथ जोड़कर भूमि पर बैठ गया। अदालत से चलकर वह सीधा अपने ऋणदाता के पास पहुचा और उससे अपने उपकारी का नाम पूछा। उसके ऋण दाता ने उस उपकारी का नाम न बतलाया और कहा "उस सज्जन की मुझे सख्त ताकीद है कि मैं किसी पर भी उसका नाम प्रगट न करूं। समय आयगा जब उसका नाम प्रकट करू गा।'

वह व्यक्ति अपने उपकारी को मन ही मन धन्यवाद देता हुआ अपने घर गया। लोगों पर इस घटना का बड़ा प्रभाव पड़ा और वे कहने लगे 'दान इसे ही कहते हैं कि इस हाथ से दो और दूसरे हाथ को पता न लगे।'

## ( ३ )
## सच्चा पैतृक प्रेम

इगलैंड के एक राजा के तीन पुत्रियाँ थी। जब राजा बूढ़ा और दुर्बल हुआ तो उसने अपनी तीनों पुत्रियों म धन सम्पति और राज्य के बाटने का निश्चय किया। परन्तु इससे पहल उसने यह जानना चाहा कि तीनों पुत्रियों म कौन उसे अधिक प्रेम करती है।

उसने तीनों पुत्रियों को बुलाकर प्रत्येक से पृथक् २ पूछा। सबसे बड़ी पुत्री ने कहा 'मै आपको अपनी जान से भी अधिक चाहती हूँ।'

वृद्ध राजा इस उत्तर से बड़े प्रसन्न हुए और उसे अपने राज्य का तिहाई भाग दे दिया।

दूसरी पुत्री ने कहा 'मैं आपको समस्त ससार से अधिक प्रेम करती हूँ' राज्य का तीसरा भाग उसे भी मिला।

राजा अपनी सबसे छोटी पुत्री को बड़ा प्रेम करता था। वह बड़ी समझदार और सरल थी। खुशामद और चापलूसी से कोसों दूर भागती थी। उसने कहा 'पिता जी मैं आपको उतना ही प्यार करती हूँ जितना एक बच्चा अपने पिता को प्यार कर सकता है।'

राजा को यह बात बहुत बुरी लगी, उसने अपनी पुत्री से कहा 'फिर सोच समझ कर उत्तर दे' परन्तु उसने पुनः उसी उत्तर को दुहराया।

राजा को बड़ा क्रोध आया और कहा 'देखना, मैं तुझे इस कृतघ्नता का कैसा फल देता हूँ। तूने अपनी बहिनों के बराबर अपने बूढ़े पिता का आदर नहीं किया। तुझे कोई हिस्सा न मिलेगा।'

कुछ दिन पीछे राजा ने अपनी बड़ी और मझिली बेटी के विवाह अमीर कुलों में कर दिये और अपने राज्य का आधा आधा भाग उन्हें दे दिया। छोटी पुत्री को कुछ न मिला। फ्रांस के राजा ने उसके गुणों पर मुग्ध होकर उससे अपना विवाह किया।

अभी बहुत दिन नहीं हुए थे कि पुत्रियाँ और दामाद बूढ़े को सताने लगे और अन्त उसका आधा राज्य भी छीन लिया। अन्त मे वह बहुत दुखी होकर उनके घर से चल दिया। उस समय उसे छोटी पुत्री की बात की सचाई अनुभव हुई और वह अपनी मूर्खता पर मन ही मन पछताने लगा। वहाँ से चल कर वह अपनी छोटी पुत्री के यहाँ गया।

पुत्री ने जब सुना कि उसके पिता आये हैं और उनकी बड़ी खराब दशा है, तो वह फूट २ कर रोने लगी। वह यह नहीं चाहती थी कि वह, उसका पति या कोई दरबारी उसके पिता को बुरी दशा में देखे। उसने एक विश्वासपात्र व्यक्ति भेज कर अपने पिता को एक महल में ठहराया और अपने पति और दरबारियों सहित उससे मिलने गई और उसका बड़ा सम्मान किया।

कुछ दिन पश्चात् उसके पति ने एक बड़ी सेना लेकर इङ्गलैंड पर चढ़ाई की और उन दोनों स्वार्थी राजाओं से राज छीनकर उस बूढ़े राजा को दिलवाया।

एक दिन बूढ़े राजा ने अपनी छोटी पुत्री को बुलाकर प्रेम-पूर्वक कहा, "मैं अपनी मूर्खता पर पछताता हू। अब मेरी राज करने की बिल्कुल इच्छा नहीं है। यह मैं तुझे भेंट करता हूँ।"

पुत्री ने हाथ जोड़कर कहा, "पिता जी। मुझे परमात्मा ने सब कुछ दिया है। मुझे राज्य की इच्छा नहीं है। यदि आप स्वीकार करें तो मै प्रार्थना करूँगी कि हम तीनों बहनों में बराबर बराबर बाट दें।"

अपनी उन दोनों कृतघ्न पुत्रियो के विषय मे यह प्रस्ताव सुनकर राजा आग बबूला हो गया। उसने कहा, "तू बड़ी भोली है। उन दुष्टाओं का नाम मेरे सामने मत लेना।" पुत्री ने कहा, पिता जी। वे फिर भी आपकी पुत्री हैं और मेरी बहने हैं।"

अपनी पुत्री की इस ऊची बात को सुनकर राजा अवाक् रह गया। बाद में अपनी पुत्री के प्रस्तावानुसार तीनों में राज्य बाट दिया।

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# आर्य्य विवाह ऐक्ट की विस्तृत व्याख्या

## क्या बहु विवाह विहित है ?

१८७२ के स्पेशल मैरेज ऐक्ट अथवा १९२३ के स्पेशल मैरेज संशोधक कानून के अनुसार जिन स्त्रियों के विवाह होते हैं, उन्हें कई सुविधाएँ मिलती हैं जो हिन्दू कानून अथवा आर्य विवाह ऐक्ट के अनुसार विवाह होने पर प्राप्त नहीं होतीं। आर्य विवाह ऐक्ट से स्त्रियों की स्थिति में कोई सुधार होता है वा नहीं, यह प्रश्न अत्यन्त महत्त्व पूर्ण है। उदाहरण के लिए इन कानूनों में यह व्यवस्था की गई है कि जब तक सिविल विवाह न टूटे, तब तक पति वा पत्नी दूसरा विवाह नहीं कर सकते, अन्यथा भारतीय दण्ड-विधान के अनुसार बहु-विवाह के दंड के भागी होंगे।

दक्षिण भारत की एक महिला सम्मेलन में आर्य विवाह ऐक्ट की प्रशंसा में एक प्रस्ताव पास हुआ था। उसमें यह माँग की गई थी कि इस कानून के अनुसार होने वाले विवाहों का स्वरूप एक पत्नीवाद का रहना चाहिए।

आर्य समाज के आदर्श के अनुसार एक पत्नीवाद पर बहुत ध्यान रखा जाता है और बहु-विवाह के विरुद्ध लोकमत इतना उग्र और प्रभावशाली है कि बहुत कम व्यक्तियों को इस नियम का उलंघन करने का साहस होता है। तो भी आर्य विवाह ऐक्ट में इस विषय में कोई नियम नहीं है।

---

# सूचना

सर्व सज्जन महानुभावों को विदित हो कि श्रीमद्दयानन्द विद्यापीठ द्वारा आर्ष ग्रन्थों की परीक्षाओं का उपक्रम तीन वर्ष से चल रहा है। इस वर्ष अजमेर, चित्तौड़, हापुड़, बरेली, देवरिया (गोरखपुर) तथा लाहौर इन छः केन्द्रों में २१ अप्रेल से २८ अप्रेल १९४१ तक परीक्षायें हुईं। बरेली तथा देवरिया में बाहर से भी परीक्षार्थी छात्र आये। इस वर्ष पाँच पत्रों का परिणाम निम्न प्रकार है:—

### व्याकरण उपाध्याय प्रथम खंड

| परीक्षार्थी संख्या (रोलनम्बर) | नाम छात्र | नाम विद्यालय | पूर्णाङ्क | लब्धाङ्क | श्रेणी | विशेष वि. |
|---|---|---|---|---|---|---|
| १ | देवेन्द्र | एटा | २५० | १११ | एक पत्र में अनुत्तीर्ण | |
| २ | इन्द्रदेव | चित्तौड़ | ,, | १३५ | ,, | ,, |
| ३ | निगम व्रत | गोरखपुर | ,, | १९६ | प्रथम | |

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ४ | प्रभाकर | हापुड़ | ,, | १३८ | द्वितीय |
| ५ | वेदप्रकाश नं० १ | ,, | ,, | १६६ | प्रथम |
| ६ | ओम् प्रकाश | ,, | ,, | १३४ | द्वितीय |
| ७ | वेदप्रकाश नं० २ | ,, | ,, | १३७ | एक पत्र में अनुत्तीर्ण |
| ८ | योगेन्द्र | ,, | ,, | १३७ | ,, ,, |

व्याकरण उपाध्याय द्वितीय खंड

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| ९ | चन्द्रदेव | देवरिया | २५० | १२७ | ,, ,, |
| १० | रामविलास | ,, | ,, | १६४ | ,, ,, |
| ११ | बुद्धदेव | ,, | ,, | १३९ | ,, ,, |
| १३ | रघुनाथ | ,, | ,, | १२९ | ,, ,, |
| १४ | श्यामसुन्दर | अजमेर | ,, | १०६ | ,, ,, |

व्याकरणोपाध्याय तृतीय खंड

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १६ | लक्ष्मण | देवरिया | ,, | ११९ | ,, ,, |
| १७ | मुनीश्वर | ,, | ,, | १५२ | ,, ,, |

व्याकरणाचार्य द्वितीय खंड

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| १८ | सत्यवीर | चित्तौड़ | ,, | १२९ | ,, ,, |
| १९ | धर्मव्रत | ,, | ,, | १४३ | एक पत्र में अनुत्तीर्ण |
| २० | चन्द्रकान्त | लाहौर | ,, | १७५ | प्रथम |
| २१ | बनवारीलाल | ,, | ,, | १२६ | द्वितीय |
| २२ | वसुदेव | ,, | ,, | १३५ | द्वितीय |
| २६ | ज्ञानेन्द्र | बरेली | १०० | ६३ | द्वितीय |
| ४० | अजयवीर | लाहौर | २५० | १८६ | प्रथम |

व्याकरणाचार्य द्वितीय खण्ड

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| २३ | भीमसेन | बरेली | ,, | १८७ | ,, |
| २४ | वेदानन्द | ,, | ,, | १५१ | द्वितीय |
| २५ | सुरेश्वर | ,, | ,, | १३५ | ,, |
| २६ | ज्ञानेन्द्र | ,, | ,, | १३५ | ,, |

परीक्षा सम्बन्धी सब पत्र-व्यवहार तथा नियमावली के लिये निम्न लिखित पते पर पत्र-व्यवहार करें:—

ब्रह्मदत्त जिज्ञासु,
परीक्षाध्यक्ष दयानन्द विद्यापीठ,
पो० शाहदरा ( पंजाब )




## दहेज आन्दोलन

दहेज निषेध दिवस इस वर्ष भी कुमार सभाओंने बडे उत्साह से मनाया है। गत वर्ष जब से कुमार सभाओं ने यह आन्दोलन शुरू किया है अन्य युवकों का भी ध्यान इस ओर गया है। जैन, सनातन धर्मी तथा अन्य युवकों और उनकी सभाओं ने भी इस वर्ष में दहेज विरोधी प्रदर्शन किये हैं। आर्य कुमारों के लिये जहाँ यह गौरव की बात है कि उनके चलाये आन्दोलन मे अन्य देशवासी भी सम्मिलित हो रहे हैं वहां उनकी जिम्मेवारी बहुत बढ़ जाती है, और उनको तब तक चैन से न बैठना अति आवश्यक हो जाता है जब तक इस खूनी दहेज का कलंक हमारी जाति से सर्वथा लोप नहीं हो जाता। मुझे आशा है कि जिन कुमार सभाओं ने किसी कारणवश १४ तारीख को यह दिवस न मनाया हो वह और किसी दिन मनायें और इस आन्दोलन को जारी रक्खें।

खूनी दहेज ट्रैक्ट नं० २ अधिक सख्या में मँगावें और जल्सों और मेलों में इसको खूब बेचें, एक बेचा हुआ ट्रैक्ट कब कहां २ कितने हृदयों तक आपका संदेश पहुँचाता है, इसका कुछ ठिकाना नहीं। प्रचार का यह सर्व सुगम उपाय है। आर्य कुमारों का यह धर्म है कि वे जहाँ जिस बुराई को पावें उसे जड़ से उखाड़ फेंके।

मुझे पूर्ण आशा है कि केवल एक दिन नहीं बल्कि आप सदा इस जालिम विनाशकारी प्रथा के विरुद्ध आन्दोलन जारी रखते हुए अपनी करोड़ों मजलूम बहिनों का आशीर्वाद प्राप्त करेंगे।

—युद्धवीरसिंह

---

आर्यकुमार सभा बाजार सीताराम देहली—यह आर्य कुमार सभा परिषद् के नियमानुसार चल रही है। इसके इस समय २० सदस्य हैं, कार्य कर्ता प्रधान राजा

रामसिंह जी और मन्त्री राजेन्द्र मोहन गुप्ता हैं। आर्यकुमार सभा डी० ए० वी० हाई स्कूल दिल्ली—इस कुमार स । के साप्ताहिक अधिवेशन प्रत्येक रविवार को होते हैं अ० भा० आ० कु० परिषद् के आदेशानुसार दहेज न लेने की प्रतिज्ञायें ली गई। आर्य कुमार सभा कांठ जिला मुरादाबाद—श्री रघुवीरसिंह जी मन्त्री आर्य समाज कांठ सूचित करते हैं कि आर्य कुमार सभा कांठ ने १४ तारीख गत रविवार को दहेज दिवस बड़े धूम धाम से मनाया, स्थानीय समाज मन्दिर में हवन, भजन तथा मीटिंग हुई और बड़े शान का जलूस भी निकला। आर्य युवक समाज भेरा (सरगोधा)—परिषद् के आदेशानुसार दहेज निषेध दिवस मनाया सबसे पहले श्री देवराज जी ने दहेज निषेध दिवस मनाने की क्यों आवश्यकता हुई इस बात को बताया, इसके बाद रामलाल जी मन्त्री आर्य समाज ने अपने विचार प्रगट किये, काफी सख्या म युवकों से प्रतिज्ञा पत्र भरवाये गये। आर्य कुमार सभा बजूल बाजार सी० पी०—परिषद् के आदेशानुसार दहेज निषेध दिवस बड़े शान से मनाया प्रभात में प्रभात फेरी और बाद को एक आम जलसा किया, काफी संख्या में युवकों से प्रतिज्ञा भरवाई गई और दहेज लेने के विरुद्ध प्रस्ताव पास हुए। आर्य कुमार सभा पुरैनी जिला बिजनौर—श्री प्रेमसिंह मन्त्री आर्य कुमार सभा सूचित करते हैं कि दहेज निषेध दिवस बड़े शान से मनाया, ५० व्यक्तियों ने दहेज न लेने की प्रतिज्ञा की। दहेज प्रथा के विरुद्ध बड़े जोर शोर से भाषण हुए। आर्य युवक सभा फिरोजपुर (पंजाब)—फिरोजपुर के आर्य 'हिन्दू' सिख, मुसलमान व अन्य जातियों के स्त्री व पुरुषों का एक जलसा आर्य युवक सभा के प्रबन्ध में हुआ। इस विनाशकारी प्रथा के विरुद्ध भाषण हुए और ६० व ७० व्यक्तियों ने प्रतिज्ञा भी ली। आर्य कुमार सभा सीपरी बाजार झांसी—श्री सोहनलाल जी मन्त्री सूचना देते हैं कि यहां पर कुमार सभा स्थापित हो गई है। आर्य युवक समाज कालिज विभाग एल० आर० डी० ए० वी० हाई स्कूल करांची—श्री कृष्णलाल जी प्रधान आर्य युवक समाज सूचित करत हैं कि हमारे युवक समाज के तीस सदस्य हैं। प्रधान म० कृष्णलाल जी, मन्त्री म० अयोध्याप्रसाद जी और उपमन्त्री महाशय हर भगवान जी हैं। दहेज प्रथा के विरुद्ध भाषण हुए और स्लाईड भी दिखाये गये और ट्रैक्ट भी बांटे गये। आर्य कुमार सभा कानपुर—ता० ११ सितम्बर को वार्षिक निर्वाचन इस प्रकार हुआ—प्रधान प्रिंसिपल कालका प्रसाद जी, उप प्रधान प्रो० गोविन्द लाल जी सेठ, म० रामचन्द्र जी, श्री लाखनराम जी, तथा श्री जगदीश प्रसाद जी गुप्त, मन्त्री श्री रामप्रसाद जी, उपमन्त्री श्री जोरासिंह जी वर्मा, श्री चन्द्र देव जी, कोषाध्यक्ष श्री रघुनन्दनराय जी, पु० श्री वृन्दावन जी और आडीटर श्री निहालसिंह जी हुए। आर्य कुमार सम्मेलन के सञ्चालन के लिये एक उपसमिति बनाई गई। आर्य

कुमार सभा आजमगढ़—परिषद् के आदेशानुसार दहेज निषेध सप्ताह १४ तारीख से २१ तारीख तक मनाया। आर्य कुमार सभा विश्व भवन जौनपुर—परिषद् के नियमानुसार चल रही है और इस कुमार सभा के २० सदस्य हैं प्रधान श्री कामता प्रसाद जी, मन्त्री श्री रामनारायण जी, को० श्री पन्नालाल जी हैं। आर्य कुमार सभा सुलतानपुर—यह सभा ६ जनवरी १६३६ को स्थापित हुई इसके १८ सदस्य हैं श्री रामकिशोर जी आर्य प्रधान और श्री गंगाराम जी आर्य मन्त्री हैं। आर्य कुमार सभा नजीबाबाद—इस सभा का वार्षिकोत्सव २८ अक्टूबर को होगा कुमार सभा उत्साह से कार्य कर रही है श्री रघुवीर सिंह जी मन्त्री उत्साह से कार्य कर रहे हैं। आर्य कुमार सभा इसलामनगर यू० पी०—ता० १४ सितम्बर को परिषद् के आदेशानुसार दहेज निषेध दिवस मनाया गया, युवकों से प्रतिज्ञा भरवाई गई। आर्य कुमार सभा खड़वा (सी० पी०)—परिषद् के आदेशानुसार कार्य कर रही है श्री कृपाराम जी मन्त्री पद पर कार्य कर रहे हैं। आर्य कुमार सभा सरदारपुरा—अच्छी प्रकार कार्य कर रही है दहेज निषेध दिवस शान से मनाया गया।

आर्यकुमार सभा नागपुर सी० पी०—परिषद् के आदेशानुसार दहेज निषेध दिवस मनाया। मन्त्री जी उत्साह से कार्य कर रहे हैं। आर्य कुमार सभा ब्यावर—यह आर्य कुमार सभा परिषद् के आदेशानुसार कार्य कर रही है और इस सभा ने खूब शान से दहेज दिवस मनाया। इस कुमार सभा को समाज का पूर्ण सहयोग प्राप्त है। आर्य कुमार सभा अम्बाला—श्री वेदप्रकाश जी मन्त्री सूचना देते हैं कि वे १४ सितम्बर को दहेज निषेध दिवस मना रहे हैं। आर्य युवक समाज मिन्टगुमरी (पंजाब)—इस युवक समाज ने भी दहेज निषेध दिवस बड़े शान से मनाया। श्री राजकिशोर जी वैद्य उत्साह पूर्वक कार्य कर रहे हैं। आर्य कुमार सभा खुसरुपुर ( बिहार )—श्री देवदत्तप्रसाद जी मन्त्री आर्य कुमार सभा के मन्त्रीपद पर कार्य कर रहे हैं और परिषद् के आदेशानुसार कार्य कर रहे हैं। आर्य कुमार सभा चित्तौड़गढ़—इस कुमार सभा ने भी परिषद् के आदेशानुसार ता० १४ सितम्बर सन् १६४१ को दहेज निषेध दिवस मनाया। आर्य कुमार सम्मेलन—कानपुर में आर्य कुमार सम्मेलन की तैयारियां जोर शोर से आरम्भ हो गई हैं श्री पं० विद्याधर जी तथा आर्य कुमार सभा इसकी तैयारियों करने में लगे हुए हैं और सम्मेलन के प्रबन्ध के लिए एक उपसमिति भी बनादी गई है। शीघ्र विस्तृत समाचार कुमारों तक पहुँचेंगे।

## परीक्षाओं के काल का निर्णय

१ भारतवर्षीय आर्य कुमार परिषद की परीक्षा समिति के कार्यालय में आर्य समाज द्वारा मंसूरी का एक पत्र श्री गंगाप्रसाद जी चीफ जज टिहरी द्वारा पहुँचा है। जिस में

उन्होंने परिषद् की परीक्षाओं को अगस्त और सितम्बर मास में कर देने इच्छा प्रकट की है, परीक्षा समिति ने अपनी १६ अगस्त की बैठक में निर्णय किया है कि इस सम्बन्ध में सभी प्रान्तों के आर्य विद्वानों, परीक्षा केन्द्र व्यवस्थापकों व आर्य समाजों कुमार समाजों, शिक्षक संचालकों की सम्मतिया मंगवा कर इस विषय को पुनः विचारार्थ उपस्थित किया जावे, अतः समस्त आर्य बन्धुओं से प्रार्थना की जाती है कि वे इन परीक्षाओं के काल का निर्णय करने के लिये अपनी २ बहूमूल्य सम्मतिया लिखकर शीघ्र कार्यालय में भेज देवें।

२ परिषद् की धार्मिक परीक्षाओं मे सिद्धान्त शास्त्री, परीक्षा के तृतीय प्रश्न पत्र मे न्याय दर्शन स्वामी दर्शनानन्द जी द्वारा लिखित निश्चित है। परीक्षा समिति को ज्ञात हुवा है कि वह बाजार में अप्राप्त है। इस पर परीक्षा समिति ने निश्चय किया है कि न्याय दर्शन किसी भी आर्य विद्वान् द्वारा अनुवादित परीक्षार्थी पढ़ सकते हैं। आशा है कि इस निर्णय से परीक्षार्थियों को सुविधा हो जावेगी।

३ परीक्षा परिणाम, जनवरी सन् १६४१ में भारत भर के भिन्न २, १२५ केन्द्रों में हुई धार्मिक परीक्षाओ मे सर्व प्रथम द्वितीय व तृतीय होकर पुरस्कार प्राप्त करने वाले परीक्षार्थियों का विवरण निम्न प्रकार है।

| केन्द्र | नाम परीक्षार्थी | नाम परीक्षा | अंक | श्रेणी |
|---|---|---|---|---|
| मढ़ौना (मेरठ) | रामपालसिंह | सिद्धान्त शास्त्री | २७० | प्रथम |
| मढ़ौना (मेरठ) | धर्मपालसिंह | सिद्धान्त शास्त्री | १५१ | द्वितीय |
| देहली | रक्षावती देवी | सिद्धान्त शास्त्री | १५० | तृतीय |

वैदिक धर्म विशारद

| नाम केन्द्र | परीक्षार्थी | नाम परीक्षा | अंक | श्रेणी |
|---|---|---|---|---|
| अजमेर | चन्द्रदेव शर्मा | तृतीय खंड | २४४ | प्रथम |
| आबूरोड | गुमानसिंह | तृतीय खंड | २३७ | द्वितीय |
| मुज्जफर नगर | आनन्दस्वरूप | तृतीय खंड | २११ | तृतीय |
| जोधपुर | भैरवसिंह | द्वितीय खंड | १६३ | प्रथम |
| खंडवा | अमृतराम | द्वितीय खंड | १५६ | द्वितीय |
| रठलाई | अमरलाल | द्वितीय खंड | १५६ | तृतीय |
| दाऊदपुर | रामचन्द्रप्रसाद | प्रथम खंड | १६६ | प्रथम |
| दाऊदपुर | सूर्यनारायण | प्रथम खंड | १६७ | द्वितीय |
| सरैया | जगतप्रकाश | प्रथम खंड | १६३ | तृतीय |

# दहेज

( श्री रघुवीरसिंह मन्त्री आर्य कुमार सभा काठ मुरादाबाद )

गूँजे अब वेदों का नाद,
मिटे अविद्या का उन्माद।
भारत में पुनि हो आह्लाद,
हो निर्मूल सकल जड़वाद॥
वेद धर्म की जय जय गाएँ,
सत्य ज्ञान का पथ दिखलाएँ।
ओम् पताका ले ले धाएँ,
नभ मंडल में हम फहराएँ॥
दयानन्द का ले आदेश,
पहुंचायें घर घर, सर्वेश।
करें मनन ऋषि के उपदेश,
दुःसंकल्प मिटें सविशेष॥
सकल विश्व को हे भगवान्,
हो स्वतंत्र यह दो वरदान।

करें प्रेम-गंगा में स्नान,
मिट जायें दुख, पातक म्लान॥
सत्य ज्ञान का होय प्रकाश,
नीच प्रथाओं का हो नाश।
है दहेज का लेना पाप,
ललनाओं पर है सन्ताप॥
भारत के नवयुवको आज,
मां बहिनों की रख लो लाज।
ज्ञान भानु का हो सुविकास,
हो दहेज प्रथा का नाश॥
दहेज लेना पाप महान,
स्त्री जाति का है अपमान।
सब मिल कर व्रत, बीर धरें,
दहेज प्रथा निर्मूल करें॥

---

## आगामी परीक्षायें

परिषद की सिद्धान्त सरोज; सिद्धान्त रत्न, सिद्धान्त भास्कर, और सिद्धान्त शास्त्री, परीक्षायें, आगामी जनवरी १९४२ में भारत के भिन्न २ केन्द्रों से होगी। केन्द्र स्थापना फार्म आवेदन पत्रों और परीक्षाओं की पाठ विधि और अन्य सभी प्रकार की जानकारी के लिये परीक्षा मंत्री भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् दीवानहाल देहली के पते से पत्र व्यवहार करें।

# श्री स्वामी अच्युतानन्द जी

( लेखक—श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी )

श्री स्वामी अच्युतानन्द जी महाराज की आयु लगभग ६० वर्ष की थी। आपका ता० ३०—६—४१ को विजयदशमी के दिन लुधियाना में देहान्त हो गया है।

आपका जीवन सन्क्षेप से इस प्रकार है—

आपका जन्म पञ्जाब के जिला शाहपुर ( सरगोधा ) के खुशाब नगर में हुआ था। पुरानी रीति के अनुसार आप क्षत्रिय वंश मे उत्पन्न हुए थे। शिशु अवस्था के पश्चात् और युवावस्था के पूर्व ही साधुओं के सत्सग से आपकी प्रवृत्ति धर्म की ओर हुई, और कुछ समय ही पश्चात् आप दीक्षित होकर साधु बन गए।

आप प्रथम निर्मल पन्थ मे दीक्षित हुए। आपका शुभ नाम साधु दयासिंह था।

दीक्षित होकर आप सस्कृत पढ़ने लगे। गृह पर आपने गुरुमुखी और फारसी का अभ्यास किया हुआ था। कुछ समय अमृतसर मे पढ़कर आप काशी चले गये। वहाँ आपने व्याकरण मे अच्छा अभ्यास किया, और नवीन वेदान्त के आप अच्छे पण्डित हो गये। थोडा अभ्यास और शास्त्रों का भी किया। और स्मृतियों के अध्ययन समय मे आपके विचार बदल गए। आपने समझा कि आश्रम की दृष्टि से स्मृतियों में सन्यास आश्रम का विधान है इसके अतिरिक्त अन्य नाम से जो साधु पुकारे जाते हैं वे नाम न वैदिक हैं न ही स्मार्त हैं। इस विचार के पश्चात् आपने निर्मल पन्थ से संन्यास आश्रम की दीक्षा ली। उस समय आपका नाम अच्युतानन्द गिरी नियत हुआ।

इसके पश्चात् आप संन्यासियों मे प्रतिष्ठित सन्यासी समझे जाने लगे। इसीलिए आपको सन्यासियों मे मण्डलेश्वर से अलकृत किया गया और आप सन्यासियों की मण्डली लेकर भारतवर्ष में भ्रमण करने लगे। आप काशी से कलकत्ता की ओर जाकर जगन्नाथपुरी मे गोवर्धन मठ मे ठहरे। वहाँ से रामेश्वरम् की यात्रा को गए। अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए रामेश्वर पहुँचकर मलावार की यात्रा करके मैसूर मे शृङ्गेरी मठ में आए। वहा से बम्बई, गुजरात, काठियावाड, द्वारिका होकर भुज गए। द्वारिका में शारदा मठ में ठहरे। वहाँ के राजा ने आपसे उपदेश लेकर आपको गुरु बनाया। वहा कई मास निवास करके सिंध मे भ्रमण करके हरिद्वार होकर बद्रीनाथ की यात्रा करने गए, हरिद्वार के कुम्भ पर उन्होंने महर्षि दयानन्द से वेदान्त विषयक प्रश्न भी किए थे। वहाँ से लौटकर अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए जोधपुर गए। जोधपुर में एक मठ का मठाधीश बनाने की उन्हें प्रेरणा की गई परन्तु उन्होंने मण्डलेश्वर रहना ही उचित समझा।

इसी प्रकार भ्रमण करते हुए वे मण्डली सहित लाहौर आए। उस समय भी इनकी मण्डली में काफी सन्यासी थे। वहाँ वे उपनिषदों की कथा किया करते थे। श्री प० गुरुदत्त

को विद्यार्थी एम० ए० इनकी कथा में आया करते थे। उन्होंने कथा के समय के अतिरिक्त समय में इनसे वेद और उपनिषदों के सम्बन्ध में बात चीत आरम्भ की। उसी बात चीत का परिणाम था कि स्वामी जी आर्य समाज में आए।

जब स्वामी जी पहले दिन आर्य समाज मे आए तो अधिकारियों ने आपको एक उच्च स्थान पर बैठने की प्रार्थना की। आपने उत्तर दिया 'यदि मुझे उच्च स्थान पर ही बैठना होता तो मैं यहा आर्य समाज मन्दिर में ही क्यों आता। मैं मण्डलेश्वर हूँ। मुझे यह गद्दी प्राप्त है। साधारण रूप में शतशः सन्यासी और गृहस्थी प्रति दिवस और विशेष अवस्था मे मेलो पर सहस्रों संन्यासी मेरी आरती उतारते हैं। मान की दृष्टि से मेरे लिए यह पर्याप्त है। जब मैं उसे छोड़कर आर्य समाज में आया हू तो सेवा के भाव से आया हूँ। उच्च स्थान की प्राप्ति के लिए नहीं आया हूँ।"

इसके पश्चात् उन्होंने आर्य समाज की सेवा, उपदेशों, व्याख्यानों, शास्त्रार्थों और कथाओं द्वारा की। वे कहा करते थे कि वेद के दर्शन तथा वेद का स्वाध्याय मैंने आर्य समाज में ही आकर किया। यह महर्षि दयानन्द की कृपा है जिन्होंने हमे वेद की ओर लगाया। वे प्रायः कथा, उपदेश, व्याख्यान वेद मन्त्रों पर ही किया करते थे। बातचीत में प्रायः कहा करते थे कि 'आर्यसमाजी उपदेशकों का कर्तव्य है कि वह उपदेशों में वेदोपदेश के अतिरिक्त कुछ न करें।' ।वेद पर उनकी अटल श्रद्धा थी। किसी समय यदि कोई उपदेशक वेदमन्त्र न बोलकर इधर उधर की कहानियाँ वा समाचार सुनाता था वे उसे कह देते थे "आपने वेद का एक मन्त्र भी नहीं सुनाया और नाम वेद प्रचार लेते हैं। आप क्यों नहीं कहते कि मैं समाचार पत्र प्रचारक हूँ।"

आपके शरीर में जब तक शक्ति रही आप भ्रमण करके प्रचार करते रहे। जिस समय शरीर बहुत निर्बल हो गया तो आपने लुधियाना में एक मकान क्रय करके उसमें निवास किया। वहाँ भी आप वेद की कथा किया करते थे। यदि कोई पढ़ना चाहता था तो उसे वेद मन्त्र पढ़ाया करते थे।

आपने सबसे पहले व्याख्यान माला नामक पुस्तक लिखी। जिसमें भिन्न भिन्न विषयों पर श्लोकों का संग्रह है। पश्चात् आपने ४ शतक लिखे अर्थात् ऋग्वेद शतक, यजुर्वेद शतक, सामवेद शतक, और अथर्ववेद शतक।' इनमे ईश्वर स्तुति, प्रार्थना, तथा धर्म परक मन्त्रों का संग्रह है। आपने पहले सन्ध्या भी लिखी थी।

इस प्रकार आपने आजीवन आर्य समाज की सेवा की और वेद प्रचार का काम किया। आप दयानन्द के अनन्य भक्त थे। आपके शरीर छूटने से हम यह मुक्त कण्ठ से कह सकते हैं कि ऋषि दयानन्द का भक्त और वेद का श्रद्धालु संसार से उठ गया।

# Hindu Philosophy and Modern Sciences

[ *By*—Rai Bahadur Ram Chandra M.A.P.E.S. Retired ]

( *Continued from page 292* )

**10. Bliss,** Again among the so called intelligent entities ( existences ), some are happy, more or less. This element of happiness, too, is observed only in certain types of intelligent beings under certain conditions only, at least from our point of view. There are some other species which exhibit no sign of happiness or unhappiness whatsoever, in the least, at least so far as experience goes, but the symptoms of intelligence or consciousness are there for certain. Hence, according to some, there is a third ultimate principle, viz, happiness, which is strictly speaking a mere condition or state of consciousness, just as intelligence is also a condition of Consciousness, as pointed out above Thus all the objects of the Universe fall under three catagories, viz, ( i ) those that merely exist, showing no signs of consciousness ( or intelligence ) and happiness, e. g., the sun and moon in the higher regions, the clouds and air in the middle regions, the rivers and mountains in the lower regions ; ( ii ) these that exist and show symptoms of consciousness, however insignificant in the lowest grades of animals but gradually developing and becoming more and more apparent in the higher grades in the long course of evolution, beginning with the earliest and the tiniest member of the animal kingdom and rising right up to the highest member, man, the noblest of all creatures; and (iii) those that exist, show signs of consciousness, Volition and of happiness like man and several other species of the animal kingdom, *but of these, man alone, the noblest of all, can rationally express in language* ( i ) *that he exists,* ( ii ) *that he is conscious of his own existence, and* ( iii ) *that he is happy*.................... "*self-conscious—satisfaction*". Consequently, according to the theory under reference, there are, three ultimate causes of all

the effects in the form of events, phenomena and entities, that we come across in the Universe. The three ultimate Causes are ( i ) *Existence* ( *Sk. Sat* ), ( ii ) *Conscious existence* ( *Sk. Chit* ), or simply consciousness, the first principle of existence being necessarily implied or included in the second principle, and ( iii ) *happy intelligent existence* ( *Sk. Amanda* ), or simply happiness, the first and second principles of existence and intelligence being implied or included in the third principle. It may be mentioned here that the members of the Vegetable kingdom generally fall under category ( i ), although some plants are found to be somewhat sensitive or touchy.

**11. Happy Intelligent Existence.** In this connection it may be noted that there are some people who consider that these three separate principles may be regarded as *only one Ultimate principle,* viz, happiness or rather *Bliss* in the final or highest sense of the term, which must necessarily include the remaining two principles of existence and intelligence, as briefly set forth in the preceding paragraph.

**12. Universe and Effect.** Now these three expressions may be used in two senses, i e. infinite and finite, the infinite being the Cause ( That ) and finite ( but relatively infinite as the case may be ) being the effect ( this ). In this manner all the events, phenomena and entities which we behold in the Universe may be regarded as the effects of those three Ultimate principles or causes, nay, *the whole Universe itself, the sum total, as it were, of all events, phenomena and entities, being an effect of those ultimate causes, three in number, and yet, one in a way, since Bliss includes and implies both Existence and Intelligence.*

# सम्पादकीय

## यह ह्रास क्यों ?

न्यूयार्क ( अमेरिका ) का ३० सितम्बर का समाचार है कि नाज़ियों ने म्यूंस्टर (Muenster) के धर्म्म याजक (विशप) को इस अपराध पर बन्दी बनाया है कि नाज़ी सरकार ने चर्च (धर्म्म संघ) के उत्सवों पर जो प्रतिबन्ध लगाया था उसका उसने विरोध किया था।

जर्मन देश में ईसाइयत का अस्तित्व लगभग समाप्त हो गया है, इस समाचार से इस बात की और भी पुष्टि होती है।

मद्रास के गार्जियन नामक पत्र के ३ जुलाई के अङ्क में श्री० प्री० चैंचिआह नामक एक सज्जन के महत्व पूर्ण भाषण की रिपोर्ट प्रकाशित हुई है। उनका यह कहना है कि सख्या पर आश्रित ईसाई धर्म्म निर्बल और शक्तिहीन धर्म्म है।

युरोप में दुनियादारी (सांसारिकता) की आधुनिक विजय के सामने उन जातियों ने आत्म समर्पण किया है जिन्हें अपने सुदृढ़ धर्म्म संघों और परम्पराओं पर गर्व था। रूस में राजा और प्रजा दोनों पर धर्म्म संघ का एक छत्र प्रभुत्व था फिर भी वहां बात की बात में ईसाइयत का विशाल भवन धराशायी हो गया। स्पेन 'कैथोलिक चर्च के अभिमान' के नाम से विख्यात था परन्तु आज आधा स्पेन सांसारिकता के पाश में बद्ध देख पड़ता है।

ईसाइयत के गढ़ इटली में आज पोप की स्थिति बन्दी जैसी है और इसनी क्षेत्रों पर से उसका प्रभाव हट गया है। प्रोटेस्टेंट धर्म्म की जन्म भूमि जर्मनी आज राज्य के साथ संघर्ष में अपने को असहाय अनुभव कर रहा है। वस्तुतः १६वीं और २०वीं शताब्दी में ईसाइयत का बड़ा भयङ्कर ह्रास हुआ है। इसे युरोप पर विजय पाने में दस या बारह शताब्दियां लगी थीं। परन्तु ह्रास में केवल न शताब्दियों ही लगी हैं। इससे सहज ही जाना जा सकता है कि इसकी आधार शिला कमजोर थी और इसका धर्म्म संघ अत्याचारों के निराकरण और आत्मा के उद्धार में अपनी स्थिति प्रमाणित करने में असमर्थ रहा। गुणविहीन संख्या जितने वेग से बढ़ती है उतने ही वेग से घट भी जाती है।

यूरोप में ईसाइयत की दुर्गति का मुख्य कारण इसके सिद्धान्तों के लचरपन के अतिरिक्त जो विज्ञान की उन्नति और राजनैतिक जागृति का साथ न दे सके इसका पुरोहित वर्ग है जो सांसारिकता में लिप्त होकर और अपने ऊँचे आसन से गिरकर इसके ह्रास का कारण बना। पुरोहितों में अपने नेत्रों के सामने होने वाले अत्याचारों को रोकने और लोगों में अपने जीवन से सत्प्रेरणा जगाने की क्षमता जाती रही थी।

रूस को ले लीजिये। यह देश ग़रीब और सीधे सादे पवित्र किसानों की भूमि है। वह महात्मा टालस्टाय की जन्मभूमि है। फिर भी उसे धर्म्म संघ से अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए बाधित होना पड़ा। श्रीयुत बर्नर्डशा ने एक बार रूस से वापस आने पर कहा था कि रूस में धर्म्म विरोधी आन्दोलन धर्म्म पर नहीं प्रत्युत पुरोहित वर्ग पर आक्रमण है। हमने एक बार एक अमेरिकन पत्र में पढ़ा था कि देश में दुष्काल पड़ा हुआ था। प्रेरणा किये जाने पर भी पुरोहितों और महन्तों ने प्रजा के कष्ट निवारणार्थ अपना धन देने से निषेध कर दिया। इस पर राज्याधिकारियों को बलात् उनसे धन छीनना पड़ा।

रूस और ब्रिटेन की अभी कुछ दिन हुए मैत्री हुई है। उसपर कैन्टर बरी और यार्क के आर्क बिशप ( धर्म्म याजक ) ने आशीर्वाद दिया है। इस गठजोड़े पर यह आशंका होनी स्वाभाविक थी कि ब्रिटेन ईसाई संस्कृति की रक्षा का दावा करता है और रूस ने ईसाई धर्म्म का बहिष्कार किया हुआ है। फिर यह असंगति कैसी ? उक्त दोनों धर्म्मयाजकों ने इसका यह समाधान किया है कि जर्मनी के शासकों में जो बुराई घर कर गई है सबसे पहला काम उसका अन्त करना है। उन्होंने यह भी आशा की है कि रूस के साथ हमारे सम्पर्क से उसकी अनीश्वरवादिता का अन्त हो जायगा। यदि यह न हुआ तो वहां की अनीश्वर-वादिता पर जो सरकारी स्वीकृति है कम से कम वह तो दूर हो जायगी। देखें यह भविष्यवाणी सत्य सिद्ध होती है या नहीं ?

हम प्रायः देखते और सुनते रहे हैं कि धर्म्मयाजकों ने राजनीतिज्ञों की कुचालों का साथ देकर ग़रीबों के दोहन शोषण और नाना प्रकार के अत्याचारों का पाप प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में अपने सिर पर लादा है। स्वयं इन्द्रियों का दास बनकर भोली भाली प्रजा में इन्द्रियों को उत्तेजित करने वाले पदार्थों के प्रचार और सस्कृति का प्रसार किया और अधर्म फैलाया है। जब इटली ने अबीसीनिया पर बलात्कार किया तो इसके विरोध में धर्म्मयाजकों की आवाज़

सुनाई न दी। आवाज़ सुनाई कैसे देती ? वे तो स्वयं राजनीतिज्ञों के हाथ की कठपुतली बने हुए थे।

पुरोहित, दार्शनिक, विद्वान और धर्म्मजीवी व्यक्ति सभ्यता के प्रतीक होते हैं। अपने वचन और जीवन से वे जिन गुणों और विशेषताओं का रक्षण करते हैं वे ही सभ्य जीवन के गुण होते हैं। सौन्दर्य, सत्य और धार्मिकता सोने और चाँदी से अधिक मूल्यवान होते हैं। पशु अपनी इन्द्रियों में निवास करते हैं इसके आगे उन्हें कोई काम नहीं होता। मनुष्य के लिए यह खुला होता है कि वह ऊँचाई की ओर जाय। अपने भीतर शान्ति स्थापित करे। दूसरों को प्रेम करे और दूसरे उसे प्रेम करें। वह ऐसा कार्य्य करे कि उसे निर्मल आनन्द की प्राप्ति हो। दूसरों को उससे सुख मिले। पीड़ितों के कष्ट मिटें। लोगों के साथ न्याय हो। अनाथों और असहायों को सुख प्राप्त हो। सबसे बढ़कर वह अपने और दूसरों के लिए आशीर्वाद स्वरूप हो।

जो धर्म्म धार्मिक विशेषताओं पर खड़ा होता है वही अपनी रक्षा कर सकता है। जब इसकी धार्मिक सुगन्धि नष्ट हो जाती है और यह विशिष्ट स्वार्थों से गठबन्धन कर लेता है तभी उसका ह्रास हो जाता है। यह बात ईसाई धर्म्म पर सर्वथा चरितार्थ होती है। यही इसके ह्रास का कारण है। क्या अन्य धर्म्म वाले इससे पाठ ग्रहण करेंगे।

## जलूस पर रोक

आर्य कुमार सभा निलंगा जिला बीदर ( हैदराबाद राज्य ) के मन्त्री श्री शंकरराव नाईक वाडे ने सूचना दी है कि उन्होंने आर्य कुमार परिषद् के प्रोग्राम के अनुसार 'दहेज निषेध दिवस' के अवसर पर जलूस निकालने की आयोजना की थी परन्तु राज्याधिकारियों ने जलूस नया बतला कर उसके निकाले जाने की आज्ञा नहीं दी। फलतः निलंगा में यह दिवस नहीं मनाया गया। इस सम्बन्ध मे पूरी सूचनाएँ हमारे निर्णय पर नहीं हैं इसलिये पूर्णतया अपने विचार प्रकट करने में असमर्थ हैं। इस विषय में आर्य प्रतिनिधि सभा निज़ाम राज्य को पूर्ण अनुसंधान करके यथोचित कार्यवाही करनी चाहिए। राज्य की ओर से जलूस की बन्दिश की गई थी जल्से पर कोई प्रतिबन्ध नहीं था। ऐसी अवस्था में हमारी सम्मति में कुमार सभा को जलसा कर लेना चाहिये था।

## विधवा विवाह

कार्कल ( दक्षिण कनारा ) निवासी श्री बा० रामचन्द्र जी की सुपुत्री श्रीमती शान्तादेवी नामक एक २२ वर्षीया अक्षत योनि विधवा का ५ सितम्बर को बंगलौर ( मैसूर ) में विवाह हुआ। वर महोदय का नाम श्री एस० गणेश है और वे मद्रास की फ़र्म एस० गणेश एण्ड ब्रदर्स ( जौहरी ) के अध्यक्ष एवं आर्य समाज मद्रास के उत्साही संयुक्त मंत्री हैं। इनकी

आयु [illegible] वर्ष की है और वे मैसूर राज्य के एक सम्भ्रात कुलीन परिवार के सदस्य हैं। वधू [illegible] एक अच्छे आर्य परिवार की पुत्री हैं। इस प्रसग में यह उल्लेखनीय है कि वधू के चचा [illegible] दक्षिण कनारा में आर्य समाज आन्दोलन के एक प्रमुख कार्यकर्ता हैं।

इस विवाह की योजना श्रीयुत प० धर्मदेव जी विद्या वाचस्पति तथा आर्य समाज मद्रास और दक्षिण भारत आर्य प्रति० सभा के सुयोग्य मत्री श्री एम० कृष्णराव ने की थी। संस्कार श्रीयुत पं० धर्मदेव जी, प० सुधाकर जी सिद्धान्त विशारद, प० कानयराव और मद्रास के श्रीयुत पं० एम० सुन्दरम् द्वारा वैदिक रीति से सम्पन्न हुआ। विवाह में बहुतसे गणय मान्य स्त्री पुरुषों ने भाग लिया और बड़े समारोह के साथ हुआ। इस अवसर पर वर वधू को कई भेंटें प्राप्त हुई।

दक्षिण भारत जैसे रूढ़िवादी और कट्टर पथी प्रान्त में विशेषत' ब्राह्मण जाति मे इस प्रकार के सामाज सुधार के कार्य अभिनदनीय हैं हम इस विवाह पर प्रसन्नता प्रगट करते हुए वर और वधू को हार्दिक बधाई देते हैं। हमारी कामना है यह विवाह वर वधू दोनों के लिए मगलकारी सिद्ध हो।

## मद्रास सरकार की घोषणा

इस समय तक सरकारी प्रथा प्राय यह रही है कि दलित वा परिगणित वर्ग (Scheduled classes) ईसाई वा अन्य धर्मों मे दीक्षित हो जाने पर स्कूलों की सरकारी फीस आदि की रिआयतों से वचित हो जाया करते थे। अब मद्रास सरकार ने २६ अगस्त को यह घोषणा की है कि यतः इन वर्गों की दीक्षित हो जाने पर भी सामाजिक स्थिति पहले जैसी ही रहती है अत॰ दलितों और दीक्षितों में भेद भाव रखना उचित नहीं है। इसलिए उन्होंने इस वर्ष से दीक्षितों और उनकी सन्तानों के लिए परिगणित वर्गों को मिलने वाली सब रिआयतें स्वीकृत कर दी हैं।

## आर्य डाइरेक्टरी

आर्य जनता मे आर्य डाइरेक्टरी के प्रकाशन की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा की जा रही थी। अब यह पुस्तक छपकर प्रेस से आ गई है। जिन आर्य समाजों, सस्थाओं और आर्य नर नारियों ने पहले से अपने आर्डर अकित करा दिये थे उन्हें सार्वदेशिक सभा कार्यालय से पुस्तक भेजी जा रही है। पुस्तक का मूल्य १।) अजिल्द, १॥) सजिल्द है। जो भाई मँगाना चाहें उन्हें शीघ्रता करनी चाहिए। दुख है कि आर्य जगत को इस पुस्तक के लिए हमें काफी प्रतीक्षा में रखना पड़ा परन्तु हम विवश थे। पुस्तक बहुत बड़ी थी, मैटर की प्राप्ति तथा संकलन में प्रतीक्षा से कार्य लेना पड़ता था। इस विलम्ब के लिए हम क्षमा प्रार्थी हैं।

## मौलवी साहब का हिन्दु धर्म में प्रवेश

शिलाग सेण्ट्रल आर्य समाज मन्दिर मे बंग-आसाम आर्य प्रतिनिधि सभा के उपदेशक पं० दीनबन्धु जी वेद शास्त्री ने १२ सितम्बर के प्रातः आसाम प्रान्तीय मुस्लिम लीग के भूतपूर्व प्रचारक मौलवी मुहम्मद विलायत हुसेन को वैदिक धर्म में दीक्षा और यज्ञोपवीत देकर श्री यतीन्द्रमोहन भट्टाचार्य नाम दे दिया। मौलवी मुहम्मद विलायत हुसेन

आसाम प्रान्त में मुस्लिम लीग की तरफ से एक नामी वक्ता और आर्गनाइजर थे। एक महीने पहले से ये वेद शास्त्री जी से वैदिक धर्म के बारे में शंका समाधान कर रहे थे। शुद्धि के अवसर पर इन्होंने एक सुदीर्घ विवृत्ति देकर कहा—"वैदिक धर्म और हिन्दू समाज में आश्रय लेकर मैंने नव जन्म ग्रहण किया। भारत माता की गोद में रहकर मैं भारत-माता को माता नहीं बोल सका। मेरे पूर्व पुरुष आर्य ऋषि ही थे लेकिन मैं अपने को आर्य वंशधर बोलकर परिचय नहीं दे सका। वेद सब धर्म का मूल है लेकिन वेद से परिचय नहीं था। आज हिन्दू समाज में मेरा पुनर्जन्म हुआ। मैं बाकी जीवन को वैदिक धर्म और हिन्दू जाति की सेवा मे समर्पित करूंगा।" शुद्धि यज्ञ म सर्व श्रेणी के हिन्दू शामिल हुए थे और नव दीक्षित हिन्दू के हाथ से भोजन किया था।

मुहम्मद विलायत हुसैन का हिन्दू धर्म म प्रवेश आर्य समाज के सिद्धान्तों और शिक्षाओं की एक बड़ी विजय है। जिस विशुद्ध आन्तारक प्रेरणा ने मुहम्मद हुसैन को यतीन्द्र मोहन बनाया है वही प्रेरणा उनके आगे के सम्पूर्ण जीवन म उनकी मार्ग प्रदर्शिका रहेगी। आशा है इस महत्वपूर्ण बात पर यतीन्द्रमोहन विशेष ध्यान रखेंगे। आर्य-समाज के पास एक मात्र अपनी उदात्त शिक्षाओं की ही सम्पदा है। और वह सम्पदा है जो हम भारत सन्तानों को अतीत काल से मिलती रही है। हम प्रसन्नता है मुहम्मद हुसैन के हृदय में इस ऐतिहासिक सचाई का प्रादुर्भाव हुआ है और उन्होने अपने पूर्वजो की इस अमूल्य निधि को पुन अपनाया है।

## बिहार में शुद्धि कार्य

बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा तथा आर्य प्रतिनिधि सभा भागलपुर कमिश्नरी के प्रयत्न एव सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली की सहायता से बिहार प्रातान्तर्गत सन्थालों में शुद्धि का आन्दोलन जोरों से चालू है। हर मास में शुद्धि का ताता लगा रहता है। इन दो मास जुलाई अगस्त में ५८ व्यक्तियों की शुद्धि हुई। इस वर्तमान मास सितम्बर मे १२५ की शुद्धि की तैयारी हो रही है। शुद्ध शुदाओं की सूची इस प्रकार है।

(१) बाबूराम हेम्ब रोम सपरिवार। बाबू महल, थाना कटोरिया जि० भागलपुर स्त्री पुरुष दो लड़का ४, लड़की ४, पुत्र वधू १ कुल ग्यारह आदमी।

(२) रामसहाय हेम्ब रोम ग्राम लटेवा टोक, थाना कटोरिया (भागलपुर) सपरिवार, स्त्री पुरुष ३, लड़की ४, लड़का २, माई १, कुल १० व्यक्ति।

(३) मिर्जापुर। गॉव—कुवरपुर पटेल, पो० गोड्डा सथाल सपरिवार ५ व्यक्ति।

(४) नौरंगीलाल भागलपुर निवासी सपरिवार ५ व्यक्ति।

(५) ठाकुर चरणदास जी द्वारा मधुपुर देवघर सथाल परगना ११ व्यक्ति।

(६) श्री प० बद्रीनारायण शर्मा द्वारा मुंगेर में २ व्यक्ति।

(७) श्री ठा० कृष्णसिंह सुरखे जी द्वारा बाबू महाल कटोरिया ११ व्यक्ति।

## गौरक्षा—

गुजरात प्रान्तान्तर्गत मानसा राज्य के महाराज मे अपने राज्य में गोवध निषेधक

कानून प्रचारित करने का प्रशंसनीय कार्य किया है। इसके लिए महाराज मानसा गोरक्षक जगत् के बधाई के पात्र हैं।

गोरक्षा के सम्बन्ध मे गोवध निषेधक कानूनों के अतिरिक्त कई अन्य आवश्यक करने योग्य कार्य हैं। सबसे बड़ा कार्य दूध न देनेवाली और बूढ़ी गउओं की रक्षा का कार्य है। गोरक्षा का दम भरने अथवा इच्छा रखनेवाले हम लोग खाली गउओ को कसाइयों के हाथ बेचकर अप्रत्यक्षत गोवध के जिम्मेवार बनते रहते हैं। उनको रक्षा के नाम पर गोशालाएँ चलाई जाती हैं। परन्तु उनमे सचालकों की स्वार्थ साधना के अतिरिक्त जैसी गोरक्षा होती है उसे प्राय सब ही जानते हैं। अत आवश्यक यह है कि उन गउओं की रक्षा का घोर उद्योग किया जाय। उनके लिये चरागाहों की व्यवस्था और गोशालाओं में अच्छी नस्ल की गउओं की उत्पत्ति और पालन पोषण के द्वारा गोपालन का अच्छा आदर्श उपस्थित किया जाना चाहिये। हमारे सामने गोरक्षा की एक स्कीम है। उसके अनुसार एक दानी और सम्पन्न सज्जन ने गोरक्षा का यह उपाय किया है कि जो गृहस्थ गऊ रखेंगे उन्हें अपनी सम्पत्ति की आय मे से सहायतार्थ धन देंगे। इस प्रकार की क्रियात्मक योजनाओं से गोरक्षा का व्यवस्थित यत्न होगा। इसके अतिरिक्त इन दिनो वनास्पति घी और मक्खन निकले दूध की प्रचुरता मात्रा से खपत होने से शुद्ध घी और दूध का बाजार नष्ट हो रहा है और इससे हमे महान् शारीरिक, आर्थिक और राष्ट्रीय हानि हो रही है। यदि इस हानि की योंही उपेक्षा की गई तो भविष्य मे इसके महान् दुष्परिणाम होंगे। समाज तथा देशोपकार सोसाइटियां को इस ओर विशेष ध्यान देना चाहिए और सरकार को इस बुराई का अविलम्ब अन्त करने के लिये वाधित करना चाहिये। इस दिशा मे आर्यसमाज का भी एक महान् उत्तरदायित्व है। हम आर्यों को गोरक्षा की इस पूरी समस्या पर गम्भीरता पूर्वक विचार करके अपने कर्त्तव्य का निश्चय करना चाहिये।

**कलम परगना—**

कॉंग्रेस कार्य की दृष्टि से गुजरात प्रान्त के बारदोली तास्लुका को जो महत्व प्राप्त है वही महत्व आर्य समाज के काय की दृष्टि से हैद्राबाद के कलम परगना को प्राप्त है। यहाँ के उत्साही आर्य भाइयों ने इस परगने मे आर्य समाज की जड़ों को बहुत गहरा बना दिया है और वहा के धनीमानी हिन्दू भाई उन्हें हर तरह की सहायता देकर अपने कर्त्तव्य का उत्तम रीति से पालन करते हैं। कलम आर्य समाज के मन्त्री श्री देवदत्त जी वकील ने सूचना भेजी है कि श्री भाऊराव शकरराव पाटील वोपत्र निवासी ने ३००) (हैद्राबादी सिक्का), श्री सेठ भगवानदास जी फतेचन्द जी कलम निवासी ने १००) और श्री सेठ चन्दनमल भानमल ने १००) उक्त आर्य समाज की ग्राम प्रचार योजना की सहायतार्थ प्रदान किये हैं। हमें आशा है अन्य धनीमानी दानशील सज्जन भी इन तीनों महानुभावों का अनुकरण करके कार्यकर्त्ताओं के हाथ मजबूत करेंगे।

**स्त्री-समाज**

१४-९-४१ को आर्य समाज ग्वालियर सिटी के तत्वावधान में एक स्त्री समाज की स्थापना हुई है। इसका सम्पूर्ण श्रेय श्रीमती यमुनादेवी दुबे को है। आगामि वर्ष के लिये निम्न निर्वाचन हुआ :—

प्रधाना—श्रीमती क्रांतिदेवी 'दिनेश'

उप प्रधाना—पुश्पेश्वरी देवी

मन्त्रिणी—यमुनादेवी दुबे

उप मन्त्रिणी—कमलादेवी चौहान

स्त्री समाजों का साधारणतया प्रोग्राम पुरुष आर्य समाजों के कार्य को प्रोत्साहित और सफल बनाना है। परन्तु हम स्त्री समाजों के एक विशेष कार्य की ओर संकेत कर देना चाहते हैं और वह यह है कि उन्हें वासनाओं को उद्दीप्त करनेवाले गन्दे साहित्य के व्याप्त प्रचार और प्रभाव को निरुत्साहित करने का रचनात्मक कार्य अपने हाथ में विशेष रूप से लेना चाहिये। हमारी माताओं और बहनों के हाथों में सत्साहित्य पहुंचाने की उन्हें पूर्ण व्यवस्था करनी चाहिये और इसके लिए चलते फिरते पुस्तकालयों की आयोजना करनी चाहिये।

इस कार्य की सफलता से उनके सामाजिक कुरीतियों के निवारण और नारी सुधार के अन्य कार्यों तथा योजनाओं में बड़ी सहायता मिल सकती है। क्या हम आशा करें ग्वालियर का स्त्री समाज इस दिशा में प्रयत्नशील होगा?

**हैद्राबाद राज्य—**

हाडोली स्थान पर हिन्दुओं ने एक व्यायामशाला स्थापित करने के लिए अव्वल ताल्लुकेदार साहब बीदर की सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजा था जो अस्वीकार कर दिया गया।

मखथल ( महबूबनगर ) स्थानीय अब्दुलगनी नामक पोलीस पटेल ने चार अन्य आदमियों के साथ नरसप्पा नामक एक व्यक्ति को बीच बाजार में इसलिए मारा कि वह उस के सामने से यज्ञोपवीत पहिने हुए जा रहा था। नरसप्पा को बहुत सख्त चोट आई हैं।

इसी मखथल के मुहल्ला बुरेडवाडी में एक मन्दिर है जिसमें भक्त तिपय्या कीर्तन किया करता था। श्रावण के अन्तिम सोमवार को अमीन साहब ने उसे बुलाकर खूब पिटवाया और कीर्तन बन्द कर दिया। पुलिस मोतमीम तथा ताल्लुकेदार को दरखास्त दी गई है।

पुलामा पिडी में प्रतिवर्ष सिद्ध लिंगेश्वर की यात्रा होती थी किन्तु इस वर्ष कहते हैं इसलिए बन्द करदी गई कि इससे किन्हीं भाइयों की कोमल भावनाओं को ठेस पहुंचती है। इसके साथ ही आर्य समाज के प्रधान मन्त्री उप-मन्त्री और कोषाध्यक्ष पर यात्रा की प्रेरणा देने का अपराध लगाकर १०४ धारा के आधीन मुकदमा चलाया जा रहा है।

यादगिरी—श्री गाडगी बुआ के शिष्य श्री एनपुरे पंढरपुर पधारे। सनु रुद्रप्पा जीन फैक्टरी में आपके कीर्तन का आयोजन था जोकि चहार दीवारी के अन्दर था। परन्तु सरकारी कर्मचारियों ने उन्हें वहां से निकाल दिया।

उपर्युक्त घटनाएँ यदि सत्य हैं तो हम कहेंगे कि हैद्राबाद राज्य में इतिहास की पुनरावृत्ति प्रारम्भ हो गई है। राज्य के उच्च कर्मचारियों को इस ओर विशेष ध्यान

देकर इन घटनाओं की [illegible] देखनी चाहिये । हैदराबाद राज्य के पिछले दुर्भाग्य पूर्ण संघर्ष से हिन्दुओं और आर्यों में अपने सामाजिक और धार्मिक अधिकारों की रक्षा का जो भाव प्रदीप्त हो गया है वह [illegible] इस प्रकार की प्रभुत्वदर्शिता पूर्ण कार्यवाहियों से दब नहीं सकता वह तो उत्तरोत्तर दृढ़ ही होगा । यह बात अधिकारियों को हृदयंगम रखनी चाहिये ।

## विश्व सम्मेलन

मद्रास के 'हिन्दू' के लन्डन स्थित सम्वाददाता ने १२-९-४१ को निम्न केबिल भेजी है—

"मिनिस्ट्री आव् इन्फर मेशन के तत्वावधान मे और ब्रिटिश एसोसियेशन की सहायता से रायल इन्स्टीट्यूट म २६ सितम्बर को साइंस और संसार की नई व्यवस्था पर अखिल विश्व सम्मेलन का उद्घाटन होगा ।

सम्मेलन के उद्देश्य बतलाते हुए ब्रिटिश एसोसियेशन के प्रधान सर रिचार्ड ग्रेगरी ने कहा —

"भले और बुरे दोनों कामो के लिए साइंस प्रयुक्त हो सकती है । अब वह समय आ गया है जब विज्ञान वेत्ताओं को जो स्वय एक प्रजातन्त्रीय मण्डल है और जो जाति, रंग और सम्प्रदाय वाद से ऊपर हैं यह निश्चय करना चाहिए कि उनका कार्य मनुष्य समाज को हानि पहुचाने के स्थान म लाभ पहुचाए । सम्मेलन का [illegible] यह होगा कि विज्ञान का रचनात्मक प्रयोग होना चाहिए संहारक नहीं । हम [illegible] न म एक व्यवस्था पत्र तैयार होगा जिस पर सम [illegible] जायगा कि वे विज्ञान की उन लुटेरों [illegible] हाथों से [illegible] समाज [illegible] विध्वंस [illegible] उसका प्रयोग करते हैं ।"

"एक प्रमुख वक्ता ने बतलाया कि [illegible] के वैज्ञानिकों को [illegible] त्रण भेजे गए हैं परन्तु यातायात की कठिनाइयों [illegible] म [illegible] रतीय वैज्ञानिक सम्मिलित है भाग न ले सकेंगे पर [illegible], अमेरिका, फ्रांस, [illegible] और आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिक सम्मिलित होंगे ।"

हम कई बार विज्ञान के दुरुपयोग के सम्बन्ध म अपना दृष्टिकोण इन स्तम्भों में रख चुके हैं । सर ओलिवर लाज जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिकों ने तथा अन्य वैज्ञानिकों ने कई बार कहा है कि मनुष्य की नीति और धर्म की अपेक्षा भौतिक उन्नति अधिक हुई है इसका फल यह है कि विज्ञान द्वारा प्रदत्त शक्ति का दुष्ट उद्देश्यों के लिए प्रयोग हुआ है । अतः धार्मिक और नैतिक उन्नति के लिए यत्न होना चाहिए ।

# सार्वदेशिक सभा की उत्तमोत्तम पुस्तकें

# विषय-सूची


| सं० | लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|---|
| १ | वेद की शिक्षा |  | ४११ |
| २ | अध्यात्म-सुधा |  | ४१२ |
| ३ | दिवाली | (सम्पादक विश्वमित्रके सौजन्य से प्राप्त) | ४१६ |
| ४ | आर्य समाज की चिनगारियाँ | श्री स्वतन्त्रानन्द और लभूराम नैयड | ४१८ |
| ५ | एक आवश्यक बात | श्री प० महेशप्रसाद जी, मौलवी फाजिल, हिन्दू यूनिवर्सिटी, काशी | ४२४ |
| ६ | २७ वें भा० आर्यकुमार सम्मेलन गढमुक्तेश्वर के स्वागताध्यक्ष | श्री प० ज्ञानचन्द जी का भाषण | ४२७ |
| ७ | पाश्चात्य समाजवाद | श्री नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ | ४३५ |
| ८ | मांस भक्षण के पक्ष मे कुछ युक्तिया और उनका खण्डन | श्री डा० सत्यप्रकाशजी डी एस सी | ४३७ |
| ९ | वैदिक धर्म प्रचार शैली | श्री कृष्णचन्द्र जी विद्यालङ्कार | ४३८ |
| १० | सुमन सचय | श्री रघुनाथप्रसाद पाठक | ४४१ |
| ११ | साहित्य समीक्षा |  | ४४३ |
| १२ | आर्य कुमार जगत |  | ४४५ |
| १३ | Hindu Philosophy and ... by—Rai Bahadur Ram Chandra Medical Sciences | M. A P I S ... | ४४८ |
| १४ | घा मिलाप विरोधिनी कान्फ्रेन्स के अध्यक्ष डा० गाडगिल का गवेषणापूर्ण भाषण |  | ४५१ |
| १५ | सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महत्वपूर्ण |  |  |
| १६ | सम्पादकीय |  |  |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक


✽ सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र ✽

वर्ष १६ | कातिक १९९८ | अङ्क ८

| ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७


जीवन और गृहस्थ

न का वाया

पथ मान

✽ वेद की शिक्षाएँ ✽

पावका नः सरस्वती । ऋ० १ । ३ । १०

विद्या हमें पवित्र करने वाली हो ।

Let Knowledge make us pious and pure !

✽ ✽ ✽

विद्ययामृतमश्नुते । यजु० ४० । १४

विद्या से अमृत मिलता है ।

Knowledge begets Immortality.

# अध्यात्म-सुधा

( १ )

श्रद्धा का अर्थ है सत्य का धारण करना। पहले ठीक ठीक सत्य को जाना जाय और फिर सत्य को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे धारण किया जाय। यही श्रद्धा की वास्तविक दृढ़ भूमि है।

जो श्रद्धा पूर्वक देता है उसका भला होने मे तो कोई सदेह नहीं। जिसके पास देने को कुछ नहीं, किन्तु श्रद्धा के कारण जिनमे देने की इच्छा है उनका भी अवश्य भला होता है। मनुष्य को चाहिये कि भूखों को भोजन दे, यज्ञ करें, लोकोपकार करें। इस प्रकार के दाताओं और याज्ञिकों मे श्रद्धा युक्त दानादि के द्वारा अपना स्थान ऊँचा बनाने का सत्प्रयत्न करे। श्रद्धा से काम करने के कारण मनुष्य का यश बढ़ता है।

जो देश के लिए, जाति के लिए, धर्म के लिए, किसी सत्कार्य्य के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं ऐसे तेजस्वी तो विद्वानों तक के श्रद्धा भाजन होते हैं। मनुष्य को उचित है कि वह अपने भीतर श्रद्धा का श्रेष्ठ भाव सदा जागरुक रखे और श्रद्धेय कार्य करने वालों का सदा आदर सत्कार करता रहे। अधिक न हो सके तो सत्पात्रों को खोज कर उनकी सहायता करे। श्रद्धा का मूल हृदय की उच्च भावना है। श्रेष्ठ हार्दिक भाव श्रद्धा के उत्पादक होते हैं। श्रद्धा के कारण मनुष्य को धन मिलता है। धन आध्यात्मिक भी होता है और भौतिक भी। सदाचार, सद्विचार अहिंसा, सत्य, असत्य, ब्रह्मचर्य, आदि सात्विक भाव आत्मिक विभूतियाँ आध्यात्मिक धन है।

जिस श्रद्धा के कारण मनुष्य प्राण न्यौछावर करने पर उतारू हो जाता है, जिस श्रद्धा के कारण मनुष्य शुभ और पवित्र कर्मों मे प्रवृत्त होता है, हृदय के अन्तस्तल में रहने वाली वह श्रद्धा सारे दिन बनाए रखनी चाहिए। चाहे भगवान की उपासना और आत्म चिन्तन हो और चाहे अर्थ सचय का प्रश्न हो, श्रद्धा के बिना ये निकम्मे और थोथे होते हैं और इसी कारण विफल होते हैं। इस वास्ते मनुष्य को सासारिक और पारमार्थिक व्यवहारों मे सफलता प्राप्त करने के लिए श्रद्धा को अपनाना चाहिए। इसी में मनुष्यों का कल्याण है।

सच्चा श्रद्धालु वही है जो सत्य के ग्रहण और असत्य के त्यागने में सदा तत्पर रहता है।

सत्य और असत्य इन दोनों के लक्षण पृथक् पृथक् हैं। सत्य सरल और सृष्टि के नियम के अनुकूल होना है। सत्याचरण से आत्मा में उत्साह पैदा होता है। असत्य कुटिल और टेढ़ा होता है और वस्तु स्थिति के प्रतिकूल होता। असत्याचरण करते समय चित्त में लज्जा भय और संकोच उत्पन्न होते हैं। अविद्या ने योग्य से योग्य व्यक्तियों को भी बुद्धिहीन बना रखा है।

विषयों में सुख तनिक भी नहीं है बहुत से मनुष्य कहते हैं कि जब हमें उत्तम पदार्थ खाते हैं तब हमें सुख अनुभव होता है परन्तु नियम यह बताया जाता है कि विषय भोग में सुख नहीं। ऐसी अवस्था में किसे सत्य माना जाय ? जो लोग उत्तम पदार्थों में सुख मानते हैं वे ग़लती पर हैं। जो सुख विषय में होता है उसका कारण मन की वृत्तियों का एक होना है। जब तक मन चारों ओर से हटकर किसी विषय में न लग जाये उस समय तक उस विषय का आनन्द यथार्थ रीति पर अनुभव नहीं होता। सुख तो वृत्तियों के एकत्र होने में था परन्तु मूर्ख लोग विषय में सुख समझते हैं।

( २ )

अच्छे कर्मों को भी यज्ञ रूप बनाओ

शास्त्रों में कहा है कि यज्ञ को भी यज्ञ रूप बनाओ अर्थात् अच्छे कर्मों को भी यज्ञ बनाओ। जिला बदायूँ में एक नकल नवीस रिश्वत लिया करता था। आर्य समाज के सत्संग से उसने घूस लेना छोड़ दिया और ऐसे काम करने वालों से बोलना भी छोड़ दिया; परन्तु उसके भीतर अभिमान आया कि मैं घूस नहीं लेता। वास्तव में अच्छे कर्मों को भी यज्ञ रूप बनाना चाहिए।

( ३ )

अविद्या

आवश्यकता का होना दुख का कारण है फिर भी आजकल मनुष्य आवश्यकताओं को बढ़ाने में सुख समझते हैं। दुख में सुख मानना अविद्या समझी जाती है। इस दृष्टि से आजकल अविद्या का घोर प्राबल्य है। सुख तो मन की वृत्तियों के एकत्र होने की अवस्था में ही होता है और दुख चित्त की वृत्तियों के फैलने में होता है। जिन वस्तुओं में चित्त स्थिर न रहे उनको सुख समझना दुख को सुख मानना है और यही अविद्या है।

आज मनुष्य नौकरी अर्थात् दासता को समझते हैं और विषयों की अधिकता को सभ्यता मानते हैं। मनुष्य विषयों से मुक्त होकर सुख प्राप्त करे, इसके स्थान पर शिक्षा दी जाती है कि मनुष्य विषय भोग के साधन प्राप्त करे। इस प्रकार की शिक्षा ने भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक मनुष्य के दिमाग पर अपना पूरा प्रभाव डाल दिया है। अब इसका इस अविद्या से निकलकर सुख की ओर जाना कठिन हो रहा है। आत्मिक बलधारी मनुष्य ही इस अविद्या से देश की रक्षा कर सकते हैं।

( ४ )

**क्लेश**

तप, स्वाध्याय और ईश्वर भक्ति को कर्म योग कहते हैं।

अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और मृत्यु भय ये ५ जीवन के क्लेश कहे जाते हैं।

क्लेश का अर्थ दुख किया जाता है परन्तु दुख क्लेशों में से एक है। क्लेश का विस्तृत अर्थ बुराई ( बदी ) है।

प्राचीन यूनान के दार्शनिकों ने अच्छे शील या चरित्र के ४ प्रधान चिह्न कहे हैं। विद्या या बुद्धि, साहस, संयम, और न्याय। बाकी सद्गुणों का इनके साथ सम्बन्ध है। इनके विपरीत लक्षण आचार के दोष हैं। विद्या वा बुद्धि का अभाव अविद्या है। साहस का अभाव कायरता है। सारी कायरता अन्त में मृत्यु का भय ( अभिनिवेश ) ही है। संयम का अर्थ यह है कि मनुष्य अपने जीवन में एक रसता (संयम) स्थिर रखे। वर्तमान में जो वासनाएँ उत्पन्न होती हैं उन्हीं में डूब न जाय। उनसे अपने आपको अलग रखे। तब ही इन वासनाओं की जाँच पड़ताल कर सकता है और आवश्यकता होने पर उन्हें दबा सकता है। समता के अभाव से ही संयम का अभाव होता है। इसी को योग दर्शन में अस्मिता कहा है।

दूसरों के साथ व्यवहार में हमें न्याय का आचरण करना चाहिये। न्याय का आधार इस भाव पर है कि मानवता के विचार से सब मनुष्य समान हैं। प्रत्येक व्यक्ति एक है। कोई एक से अधिक वा न्यून नहीं है। अपने व्यवहार में हम इस नियम को नहीं बरतते उसका कारण राग द्वेष ही है। हम कुछ लोगों से स्नेह करते हैं और कुछ लोगों से द्वेष। राग और द्वेष न्याय के प्रतिकूल हैं।

योग दर्शन में कहा गया है कि इन ५ क्लेशों में अविद्या का स्थान विशेष है। दूसरे क्लेशों का फल क्षेत्र है। ये क्लेश अविद्या पर ही निर्भर हैं। अविद्या न हो तो वे फल फूल नहीं सकते। अविद्या में फँस कर अपने आपको वर्तमान वृत्ति ही समझ लेना अस्मिता है। राग द्वेष मनुष्य को मनुष्य न समझने का फल है। अविनाशी आत्मा को तो भय होना ही नहीं चाहिए। भय मनुष्य को उसी समय होता है जब अविद्या के कारण वह यह समझ लेता है कि कोई दूसरा उसका हनन कर सकता है। जिसने आत्मा के स्वरूप को जान लिया है उसे भय किस वस्तु का हो सकता है।

अनित्य को नित्य समझना, बुराई को भलाई, दुख को सुख और जड़ को आत्मा समझना अविद्या है।

# दिवाली

( सम्पादक—विश्वमित्र के सौजन्य से प्राप्त )

दीपमालिका का उत्सव हिन्दू त्यौहारों में अपना एक विशेष महत्व रखता है । इस अवसर पर हिन्दू समाज के अमीर गरब सभी अपनी सामर्थ्य के अनुसार अपने घरों को सजाते और लक्ष्मी पूजन करते हैं ।

कभी यह त्यौहार भारतवासी विशेष उल्लास के साथ मनाया करते थे । तब भारत स्वतन्त्र था और आक्रमणकारियों द्वारा बारम्बार लूटे खसोटे जाने पर भी धन धान्य से परिपूर्ण था । भारतीय सम्पदा ऐसी अगाध थी कि समस्त एशिया को सम्पन्न करने के बाद भी यह देश वैसा ही, या लगभग वैसा ही, बना रहा ।

इसके बाद एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ जिसम एक विशिष्ट जाति ने अन्य जातियों की वैज्ञानिक उपयोग करने की कला म दक्षता प्राप्त की । इस नवीन युग में उस पुरानी ~बर्बरतापूर्ण लूट खसोट को स्थान न था और पराजित जातियों को स्वय यह पता नही चलता था कि उन्हे दरिद्र बनाया जा रहा है ।

परन्तु वैज्ञानिक ढङ्ग से पराजित जातियों का अपने लाभ के लिये उपयोग करनेवाली इन विजेता जातियों की सख्या म वृद्धि हुई और एक जाति ने दूसरी जाति के इस अधिकार के ईश्वर प्रदत्त होने म सशय प्रकट करना आरम्भ कर दिया । इस प्रकार एक दूसरे युग का श्रीगणेश हुआ ।

इस समय जहा विजेता जातिया विजय की इच्छा करने वाली जातियो के सशय निवारण में सलग्न हैं, पराजित जातियों को अपनी ही कार्यशीलता मे कुछ ऐसा विश्वास सा होने लगा है कि वे पुन प्राचीन युग वापस लाने का स्वप्न देख रही हैं ।

और चूँकि इधर कई वर्षों से उनके ऊपर बाहरी आक्रमणों की एक के बाद दूसरी लहर आती रही है इसलिये उन्होने केवल स्वप्न देखने तक ही अपनी कार्यशीलता को सीमित नहीं रखा है और वे अपने पुराने समृद्धिशाली युग का वापसी के लिये सचमुच सचेष्ट हैं ।

विजेता और विजय की इच्छा रखनेवाली सशयशील जातियों की इस सलग्नता को धन्यवाद—स्वय समय हम उनकी महत्ता और उन्नति के रहस्य का पाठ पढ़ा रहा है । हम भी उद्योग धन्धों का विस्तार करने म लगे हुए हैं, और उस भविष्य की कल्पना कर रहे हैं जब हम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करने के बाद विजेता और विजय की इच्छा रखने वाली जातियों की आवश्यकताएँ भी पूरी कर सकेंगे ।

विजेता जातियाँ विजय की इच्छा रखने वाली सशयशील जातियों का सशय निवारण करने में सफल हों न हों, जहाँ तक पराजित जातियों का सम्बन्ध है, वे भविष्य की विजेता जातियों के उपभोग की वस्तु बनने से इन्कार कर देंगी। वे उनकी आवश्यकताओं की सहर्ष पूर्ति करेंगी—पर अपनी ही इच्छा से प्रेरित होकर। वह युग बीत गया जब विजेता जातियाँ के प्रतिनिधि हण्टरों का प्रचुर उपयोग करके पराजित जातिया को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन बनाने में सफल होते थे और उसके एवज में पराजित जातियों को केवल छाछ मिलती थी और विजेता जातियाँ मक्खन का व्यवहार करती थीं।

वह पुराना समृद्धिशील युग वापस आ रहा है। हमारे पूँजीपतियो के दृष्टिकोण म क्रान्ति हुई है और वे अब विजेता या विजय की इच्छा रखने वाली जातियो के दलाल मात्र बने रहने के पार्ट से ऊबकर स्वय अपने धन्धे खडे करने की ओर झुक गये हैं। भारत म व्यापारिक और औद्योगिक प्रतिभा का अभाव नही है, यह थोडे ही समय मे अनेकानेक मिलों के सङ्गठन और सचालन से प्रकट होता है।

माना अभी दरिद्र नारायण की दिवाली मे देर है पर इस औद्योगिक क्रान्ति का प्रसाद उसे भी मिले, इस ओर से देश के हितचिन्तक उदासीन नही हैं। माना कि कृषका की दरिद्रता दूर होने मे अभी समय लगेगा, पर देश म औद्योगिक विकास इस बात की गारण्टी है कि कम से कम इस बार उनके साथ खिलवाड नही किया जा रहा है, और उनकी समृद्धि का अध्याय आरम्भ होने ही वाला है।

इस समस्त व्याधियों की जड मे है आत्मविश्वास का अभाव। लगातार गुलामी करते करते हमे अपने विजेताओ पर निर्भर करने, उनके मुह की ओर देखने की कुटेव पड गई है।

ब्रिटेन ने डेढ़ सौ वर्ष के लगातार शासन के बावजूद हम अबतक आत्मरक्षा की वैज्ञानिक प्रणाली से अनभिज्ञ रखकर अच्छा नहीं किया। यदि उसके राजनेता इस मामले मे भारत के प्रति अधिक दूरदर्शिता का परिचय देते तो इस युद्ध का इतिहास दूसरे ही ढङ्ग से लिखा जाता। पर अभी कुछ नहीं बिगड़ा है और ब्रिटेन के राजनेताओ की भर्त्सना करने की अपेक्षा हमे अपने समय का उपयोग अधिक महत्वपूर्ण कार्य सम्पादन करने मे करना चाहिए।

इस वर्ष की दीवाली हमारे लिये यही सन्देश लाई है कि हमे आत्म निर्भरतापूर्वक देश की रक्षा में कटिबद्ध हो जाना चाहिये। इस आत्मरक्षा के महत्वपूर्ण कार्य मे विभिन्न वर्गो के जिम्मे भिन्न २ काम हैं, और जो आदमी उद्योग धन्धो की स्थापना और विकास के कार्य मे लगा हुआ है वह भी देश की उतनी ही सेवा कर रहा है जितनी एक सैनिक आधुनिक युग मे राष्ट्रीय सफलता का रहस्य औद्योगिक विकास मे छिपा हुआ मिलता है।

# आर्यसमाज की चिनगारियां

## पंडित चमूपति जी, एम. ए.

पंडित जी का जन्म स्थान खैरपुर टामेवाली राज्य भावलपुर था। आपका वंश मेहता नाम से प्रसिद्ध था। इस प्रकार आपका नाम मेहता चम्पत राय था। आपने प्रथम स्कूल मे दसम श्रेणी पढ़ी फिर कालेज मे एक प्रकार के आप मास्टर नियत हो गए। तब आपने बी. ए. पास किया फिर आप राज्य म कालेज के प्रोफेसर हो गए।

आपने बी. ए. तक आर्य भाषा की वर्ण माला भी न पढ़ी थी। बी ए करने पर उनको ज्ञात हुआ कि उनको सस्कृत वा आर्य भाषा पढनी चाहिये। तब आपने वर्ण माला सीख कर सस्कृत पढनी आरम्भ की, और एम. ए सस्कृत का किया। इससे आपकी योग्यता का परिचय मिलता है। आप प्रथम ही उर्दू के गद्य, पद्य के लेखक इसी प्रकार फारसी की नज़म, नस्र लिखा करते थ। अग्रेजी के अच्छे लेखक थे और फिर आर्य भाषा के गद्य, पद्य लिखा करते थ। आपका उरदू, फारसी का तखल्लुस 'सादिक' था और आर्य भाषा म उपनाम 'चातक' था।

आपने भावलपुर मे आर्य समाज के सस्कार ग्रहण किये और भावलपुर म आर्य समाज बनाने का यत्न किया। वहा के वृद्ध कहते थ आप ऐसा न करें। सत्सग के नाम से काम करें। आर्यसमाज का विरोध होगा परन्तु आप अपने विचारों पर दृढ़ रहे और आर्यसमाज बनाया जो दृढता का द्योतक है।

आपने उर्दू म एक पुस्तक लिखी जिसम महर्षि दयानन्द जी का विशेषण सवरे आलम लिखा था। इसी पर आप पर अभियोग राज्य की ओर से चला न्यायधीश ने निजी रूप मे आपको बुलाया और कहा आप इस विशेषण को वापस ले ल। आपने कहा यदि आप मुझे समझा दे तो लौटा लू गा अन्यथा नही। अत मे उसी पर आपको राज्य से बाहर निकाला गया और आप मुलतान गुरुकुल में आचार्य हो गए। मुलतान में आपने अपना नाम चमूपति कर लिया। मुलतान से आप आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब मे उपदेशक हो गए और आजीवन सेवा का व्रत लिया और उस व्रत के अनुसार वह आजीवन सभा की सेवा में रहे।

जब आप उपदेशक थे तो जिस समाज के उत्सव पर जाया करते थे उस समाज मे

अपील के समय कुछ न कुछ धन दिया करते थे। पूछने पर आप कहा करते थे मुझे सभा जो वेतन देती है उसमें मेरा भोजन भी सम्मिलित है और मैंने जो भोजन समाज में खाया है उतना न देकर जो भोजन मैं घर पर खाता उतना दाम तो देना ही चाहिये इसलिये यह धन देता हूँ।

आपको सभा ने गुरुकुल का प्रोफेसर नियत किया। आप गुरुकुल में उपाध्याय का काम करते रहे और फिर आपको आचार्य बनाया गया। उसके पश्चात् आप आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब मे उपदेशक बन गए। आपको नाम की इच्छा न थी। आप कई वर्ष तक वैदिक मेगजीन का सम्पादन करते रहे और सम्पादक के स्थान पर नाम आचार्य रामदेव जी का ही होता था।

आपने आर्य समाज म अनेक पुस्तकें अनेक भाषाओं मे लिखी। आपने अंग्रेजी मे ऋषि दयानन्द के जीवन तथा दस नियमो पर पुस्तक लिखी थीं। आपने आर्यभाषा तथा उर्दू मे अनेक छोटी तथा बड़ी पुस्तकें लिखी। आखिर म आप सत्यार्थप्रकाश का उर्दू म अनुवाद लिख रहे थे जबकि आपने भौतिक शरीर छोड़ा। आप दश समुल्लास ही लिख पाए थे।

आप हास्य मुख भी थे। एक बार आपसे किसी ने कहा आपने अपना नाम चमूपति स्त्रिया जैसा रख लिया। आपने उत्तर दिया हमारे तो पति पुरुष ही होते हैं। आपके पति स्त्रिया होती होगी इसलिये आपको ऐसा भान होता है।

आपने विशेषतया पञ्जाब म और पूर्वीय अफ्रीका म प्रचार किया। आप उत्तम वक्ता थे। आपकी भाषा म कवित्व था। बोलने म अलकारिक भाषा बोला करते थे।

आर्यसमाज को आपकी योग्यता पर अभिमान था। आप सिद्ध हस्त लेखक थे। अहमदिय ने एक पुस्तक लिखी। आपने उसका उत्तर प्रश्नो से न्यून पृष्ठो पर दिया। एक मुसलमान सज्जन ने दोनों पुस्तको को देखा और कहा मै समझता था पडित जी ने कई प्रश्न छोड़ दिये होगे परन्तु देखने पर विदित हुआ कि कोइ प्रश्न नहीं छोड़ा है और उत्तर का पृष्ठ सख्या भी न्यून है अत पडित जी उत्तम लेखक है।

एक मुसलमान ने 'जवाहर जावद' को पढ़ा और कहा था मैने जीव, प्रकृति पर अनेक बार प्रश्न किये लेकिन सतोष न हुआ परन्तु पडित जी की इस पुस्तक को पढ़कर मेरे सब सशय निवृत्त हो गए हैं।

यह दुःख की बात है कि पडित जी युवावस्था में असमय ही स्वर्ग सिधार गए।

## प० गणपति जी शर्मा

पडित जी का जन्मस्थान बीकानेर राज्य म चूरू था। पडित जी ने बाल्यकाल में संस्कृत

का अध्ययन किया। आप व्याकरण, दर्शन के प्रौढ़ विद्वान् थे। पश्चात् आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब में उपदेशक हो गए। आपकी स्मरणशक्ति उत्तम थी अत आपको पढ़े ग्रन्थों में से पाठ स्मरण रह जाते थे। मुझे एक बार एक वैद्य जी ने बतलाया कि वह पण्डित गणपति शर्मा जी से डलहौजी मिले वहाँ पर उनको पडित जी ने सस्कृत के वैद्य विषयक अनेक श्लोक सुनाए जिनका भाव था वैद्य कैसा हो, रोगी के समीप कैसे जाय रोगी से कैसे बात करे इत्यादि।

पण्डित जी उत्तम वक्ता थे। उनके व्याख्यान सुनने के लिये जनता उत्साह से आती थी। पडित प्राय शास्त्रीय विषयों पर ही बोला करते थे। ईश्वर की सिद्धि पर आप अनेक व्याख्यान दिया करते थे।

पं० गणपति शर्मा जी शास्त्रार्थ करने म अत्यन्त पटु थे। मैने उनके चार पाच शास्त्रार्थ सुने हैं। शास्त्रार्थ करते समय उनका यह नियम था कि शास्त्रार्थ के समय उनको कोई किसी प्रकार की सम्मति न दे और न हा कुछ सुझाने की इच्छा करे क्योंकि इससे उनका काम बिगड़ता था।

लुध्याना में एक बार शास्त्रार्थ था। पडित जी ने सनातन धर्मी पडित से कहा था पंडित जी मेरा और आपका शास्त्रार्थ पहले भी हुआ है। आज मै एक बात कहना चाहता हूँ यदि आप सहमत हों तो वैसा किया जाय। उस पडित के पूछने पर आपने कहा अब तक आर्यसमाजी पुस्तकों में और महर्षि दयानन्द जी से लेकर अब तक आर्य समाजी पडितो ने इस विषय पर जो प्रमाण दिये हैं मैं उनम से कोई भी प्रमाण न दू गा और इस विषय पर सनातन धर्मी पडितों ने जो पुस्तके लिखी हैं उनम जो प्रमाण दिये हैं आप उनमें से कोई प्रमाण न दे इसी प्रकार यदि आप चाहे तो जो प्रमाण आप कभी शास्त्रार्थ म दे चुके हैं और जो प्रमाण मैं दे चुका हू वे भी छोड़ दें। आज सब प्रमाण नए हो। सनातनी पडित ने यह नियम स्वीकार न किया। इससे आपकी योग्यता और स्मरण शक्ति का पूरा २ परिचय मिलता है।

आप एक बार श्रीनगर ( काश्मीर ) गए हुए थ। वहा एक बार शास्त्रार्थ हो गया। शास्त्रार्थ दर्शन विषय पर एक अग्रेज पादरी और सनातन धर्मी पडित मे था। आप उसमें दर्शक व श्रोता थे। पादरी साहब का पूर्व पक्ष था। महाराजा जम्मू काश्मीर प्रतापसिंह जी अध्यक्ष थे। तीसरी चौथी बारी म यह प्रकट हो गया कि पंडित लोग अपना पक्ष सिद्ध करने म असमर्थ हैं और पादरी साहब अपने पक्ष म अच्छे हैं।

यह देखकर पडित जी से रहा न गया। आप खडे हुए और महाराजा से कहा यदि आपकी इच्छा हो तो मै बोलना चाहता हूँ और पडितो के पक्ष को सिद्ध करना चाहता हूँ। महाराजा ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। आप बोले और पादरी जी ने उस पर कुछ कहा

आपने फिर उत्तर दिया अगली बारी मे पादरी का पक्ष शिथिल प्रतीत होने लगा तब राजा और श्रोता प्रसन्न होने लगे ।

आपने फिर कहा तब पादरी साहब ने आपसे पूछा आप कौन हैं उत्तर दिया ब्राह्मण, पादरी जी ने कहा मेरा भाव है आप आर्यसमाजी हैं वा सनातनी हैं। आपने कहा इस शास्त्रार्थ में इस प्रश्न का क्या काम। पादरी ने कहा मै जानना चाहता हूँ यदि आप आर्य-समाजी हैं तो मैं आपसे शास्त्रार्थ नही करूगा। पडित जी ने पादरी के बल देने पर कहा यह सत्य है कि मैं आर्य समाजी हू परन्तु यह विषय आर्यसमाज और सनातन धर्म का नहीं इस-लिए मुझे बोलने का अधिकार है। महाराजा प्रतापसिंह जी ने भी कहा पडित जी चाहे कोई हों पंडित जी को बोलने का अधिकार है। तब पादरी साहब ने इनसे अपनी हार स्वीकार की और महाराजा तथा जनता ने पडित जी की योग्यता को मान लिया और भूरि २ प्रशंसा की।

महाराजा जी ने पडित जी का सत्कार किया और पडित जी शीघ्र ही काश्मीर से चले आये। उसके बाद महाराजा जी ने पडित जी को पुन काश्मीर आने को सन्देश भेजा परन्तु पडित जी ने उत्तर दिया मै अभी न आऊँगा। इससे पडित जी की योग्यता का जैसा परिचय मिलता है वैसे ही पडित जी के त्याग का भी ज्ञान होता है।

—स्वतन्त्रानन्द

## लाला बालकराम जी ढंडा, ठेकेदार, लुधियाना

लाला बालकराम जी ठेकेदार का नाम मालिक ज्वालासहाय जी रईस लूनमयानी के साथ आर्यसमाज के प्रारम्भिक समय मे उच्च कोटि के दानियों मे प्रसिद्ध था। आप लुधियाने के लाला जैशीराम जी ढडा के सुपुत्र थे। आपने ठेकेदारी मे उस समय नाम पाया जब अटक पुल के पहले ठेकेदार के असफल रहने पर आपने इस काम को सफलता तक पहुंचाया। उसके पश्चात् तरकी पहाड़ी जो(सागले के समीप है) का काम उन्होंने बड़ी सफलता से चलाया। पहाड़ी के चारों ओर से निकाला हुआ पत्थर स्टेशन पर लाने के लिये लाला बालकराम जी ने छोटी लाइनों का एक जाल सा बिछा रक्खा था। अन्तिम दिनों में आप के कार्य का केन्द्र सगला पहाड़ी थी। यह कार्य अपेक्षाकृत छोटा था तो भी एक बड़े ठेकेदार की आवश्यकता रखता था पत्थरों की ही अधिकतर काम करने से आपने अपनी मातृभूमि लुधियाने में भी जो रहायशी मकान बनाया वह पत्थरों वाली हवेली से प्रसिद्ध हुआ। लाला बालकराम जी सेल्फमेड Selfmade व्यक्ति थे लाखों कमाये और लाखों खर्च किये। उनका आर्यसामाजिक जीवन अनुकरणीय था। इतने विस्तृत साधनों के स्वामी होते हुए सादा जीवन व्यतीत करते थे। अपने कार्य से जब भी अवकाश पाते ठेकेदारी के सम्बन्ध में जो लोग उनके पास आते उन्हें आर्यसमाज का सन्देश अवश्य सुनाया करते। उनकी अपनी आवश्यकताएँ बहुत कम थी यद्यपि उनके

सहारे कई काम करने वाले अमीराना जीवन व्यतीत करते थे। लाला जी जितना कि अपने लिए किफायतशार थे उतना ही पारिवारिक पालन और आर्यसमाज के लिए दान देने म उदार थे। जहां कमाते भी खूब थ वहां अपनी कमाई से दिल खोल कर दान भी देते थे। डी० ए० वी० कालेज सम्बन्धी इमारत म बड़ा मिडल स्कूल था वहां जितना पत्थर लगा हुआ है वह आपने ही दिया था। उस समय आर्यसमाज का एक ही संस्था डी० ए० वी० कालेज लाहौर मे थी। और आर्यसमाज के दान के प्रवाह का झुकाव उसी तरफ था। लाला बालकराम के कारोबारी और समाज का कार्य केन्द्र लुधियाने से बाहर था तो भी अपने वतन लुधियाने की सामाजिक सेवा म भी आपने खूब दिल खोल कर सहायता देकर नाम पाया। आर्यसमाज लुधियाना सन् १८८२ ई० म स्थापित हो चुका था। आप वैदिक धर्म की शरण म आ चुके थे इसलिये आप जब भी लुधियाने पधारते अपनी ढडा बिरादरी के नव युवकों के अतिरिक्त अपने सब जानकारों के साथ धर्म सम्बन्ध म विचार विनिमय करके उन्हें आर्यसमाज में प्रविष्ट होने की प्रेरणा करते। आपकी यह प्रबल आकांक्षा थी कि सारा लुधियाना एक दम वैदिक धर्मी बन जाय। आपके लुधियाने पधारने पर आर्यसमाज के अधिकारियों को प्रसन्नता होती क्योंकि जो आवश्यकताएं आर्यसमाज की धन के अभाव से रुकी हुई हैं वे अब पूरी होंगी चुनांचे पूरी होती रहीं। एक समय का जिक्र है कि आर्यसमाज मन्दिर की आव श्यकता बहुत अनुभव हो रही थी पर तु धन न था। लाला बालकराम जी किसी कार्यवश लुधियाने आये तो लाला शिवशरणदास जी, व लाला उमरावसिंह जी मेरे साथ लाला जी के मकान पर पहुंचे। पहिले इसके कि हम आने का असली प्रयोजन कहें उन्होंने अतिथि सत्कार के रूप मे हमें खाने के लिये आग्रह किया। उसके पश्चात् मुंह मांगा दान देकर हमारा उत्साह बढ़ाया। लाला जी को वैदिक धर्म प्रचार का इतना ध्यान था कि आपकी सदैव यह इच्छा रहती कि मेरी ढडा बिरादरी एक एक करके समाज म प्रविष्ट हो जाय। उसके लिये वह हर प्रकार से प्रयत्न भी करते थे और उस समय आपका यह प्रयत्न कुछ हद तक सफल भी हुआ। लाला सुखेराम जी ढडा, लाला गोकलचन्द ढडा आदि सब भाई आर्यसमाज के सभासद बन गये। वैदिक संस्कारों के लिये भी आपके दिल म बड़ी श्रद्धा थी। आर्यसमाज का प्रारम्भिक समय था। वैदिक संस्कार प्राय कम होते थ। जो होते थे उनका सख्त विरोध होता था। बिरादरी हर तरह का बायकाट करके संस्कारों के होने म बाधा डालती थी और उनकी यह बाधा विवाह संस्कारों में विशेष भयानक रूप धारण कर लेती थी परन्तु दृढ़ विश्वासी आर्यसमाजी उसकी परवाह न करते थ अपितु विरोध से उनका विश्वास और दृढ़ होता था। लाला बालकराम जी की बड़ी पुत्री का विवाह आर्यसमाज लाहौर के प्रसिद्ध प्रधान लाला साईंदास जी के सुपुत्र ला० गोपालदास से होना निश्चित हुआ। दोनों तरफ दृढ़ आर्य

समाजी थे। विवाह के वैदिक रीति से होने में सन्देह ही क्या था तो भी पौराणिक विरादरी ने बड़े २ डरावे दिये परन्तु लाला बालकराम जी ने किञ्चित मात्र भी परवाह न की। निहायत शानदार वेदी बनाई गई। श्री पं० लेखराम जी आर्य मुसाफिर और पं० आर्य मुनि जी आदि आर्य पंडितों ने विवाह सस्कार कराया। बरात में कई प्रसिद्ध आर्य व्यक्तियों के अतिरिक्त भी लाला हंसराज जी प्रिंसिपल डी० ए० वी० कालेज पधारे थे। इस विवाह का प्रभाव लुधियाना निवासियों पर अत्यन्त उत्तम पड़ा। आज वैदिक विवाह आदि संस्कार साधारण बात है। कोई आर्यसमाजी अपनी कमजोरियो से न करे तो दूसरी बात है वरना किसी को वैदिक संस्कारो से आज कोई मना नही करता।

लेकिन उन दिनों मे बिरादरी का विरोध विशेष था और किसी दृढ़ हृदय वाले का ही काम था कि विरादरी के आगे न झुके। लाला बालकराम जी जब आते अपने साथ बहुत से ट्रैक्ट लाकर प्रचारार्थ मुफ्त बाटते। पं० लक्ष्मणदास विद्यार्थी अवस्था में मिशन स्कूल में पढ़ने के कारण ईसाइयों के प्रभाव मे आकर ईसाई होने को तय्यार हो गये। माता पिता ने बहुत सिर मारा लेकिन वह किसी की न सुनते थे। आर्य समाज लुधियाने ने महात्मा मुंशीराम जी को जालन्धर से उन्हें समझाने के लिये बुलाया। महात्मा जी ने लगातार दो तीन दिन ईसाई मत खंडन पर धड़ल्लेदार व्याख्यान दिये और आपने प० लक्ष्मण दास जी को कुछ इस प्रकार से समझाया कि उनकी प्रबल युक्तियों से प्रभावित होकर लक्ष्मणदास ने मिशनस्कूल छोड़ दिया। उचित यह समझा गया कि लक्ष्मणदास को लुधियाने न रखा जाय। उस समय लाला बालक राम जी ढंडा ने अपनी उदारता से पं० लक्ष्मणदास का लाहौर का तमाम खर्च अपने जिम्मे लेकर मेरे साथ लाहौर डी. ए. वी. स्कूल में दाखिल करने के लिये भेज दिया। जब तक पं० लक्ष्मणदास लाहौर डी. ए. वी. स्कूल मे पढ़ते रहे लाला बालकराम जी वहा का सब खर्च देते रहे। लाहौर से वापिस आने पर पं० लक्ष्मणदास जी ने गणेशी लाल आर्य कन्यापाठशाला लुधियाने मे स्त्री शिक्षा का खूब काम किया जिसका कारण लाला बालकराम जी ही थे।

आर्य समाज लुधियानें के वार्षिक उत्सव या किसी अन्य अवसर पर सम्मिलित होने के लिये लाला बालकराम जी बड़े चाव से पधारते थे। नगर कीर्तन के समय आप एक एक दुकान पर बैठकर आर्यसमाज में आने का निमन्त्रण देते। आज इस बात की कोई आर्य समाजी परवाह नहीं करता। लेकिन पुराने आर्यसमाजियों के यही उपाय थे जिससे समाज के विस्तार में सफलता होती थी मेरे पूज्य पिता श्री लाला पोलोमल नैय्यड़ से लाला जी का विशेष प्रेम था। जब भी वह लुधियाने आते बातचीत मे यही कहते कि शम्भूराम को आर्यसमाज में जाने से न रोका करो बल्कि आप भी आया करो।

# एक आवश्यक बात

( लेखक—श्री प० महेश प्रसाद जी, मौलवी फाज़िल, हिन्दू यूनिवर्सिटी काशी )

***

महर्षि श्री स्वामी दयानन्द जी सरस्वती जहाँ जहा पधारे और जहाँ २ पर उन्होंने केवल एक ही नहीं वल्कि अनेक दिन बिताये उनमे से बहुतेरे स्थान ऐसे हैं जहाँ पर उनके जीवन काल मे ही आर्य समाज स्थापित हो गया था । बम्बई, लाहौर, मेरठ और फर्रुखाबाद आदि स्थान इस श्रेणी के हैं ।

उनके पदारोपित स्थानों मे से अनेक ऐसे है जहाँ पर उनके निर्वाण के पश्चात् आर्य समाज की स्थापना हुई है। कलकत्ता, आरा ( विहार प्रात ) और भरतपुर ( रियासत ) आदि की आर्य समाजें इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। परन्तु कुछ पदारोपित स्थान इस समय तक ऐसे हैं जहाँ पर आर्य समाज के स्थापित होने की नौबत अभी तक नहीं आई। अस्तु इस श्रेणी के केवल दो स्थानों की बाबत ही कुछ कहना काफी समझता हूँ।

( १ ) मसूदा—यह स्थान राजपूताने मे है। अजमेर से लगभग २६ मील की दूरी पर दक्षिण व पश्चिम की ओर है। यहाँ पर श्री स्वामी जी महाराज तीन बार पदारोपण कर चुके हैं।

---

महात्मा मुन्शीराम जी से लाला जी का अगाध प्रेम था। लालाजी घर जाकर महात्मा जी से विशेष मिलते और उनसे आर्यसमाज विषयक उन्नति पर वार्तालाप करते। अन्तिम बुढ़ापे में आपको अपने इकलौते सुपुत्र ला० लाभचन्द्र की अकस्मात् मृत्यु का असह्य दुःख सहना पड़ा। जिसने उनकी कमर तोड़ दी। वृद्धावस्था में काम का बोझ जो उनके सुपुत्र के कन्धों पर होना चाहिये था, उनके कमजोर कन्धे सहन न कर सके। इसलिये स्वास्थ्य बिगड़ गया जिसका परिणाम स्वरूप आपका स्वर्गवास शीघ्र हो गया।

ला० बालकराम अपने समय के सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी थे। सादा जीवन व्यतीत करते थे। दानी और अतिथि सेवा में दृढ थे। परिवार के पोषक और नमस्ते से आकर्षित होकर ज़रूरत मन्द आर्यसमाजियो की आवश्यकतायें पूरी करने म आनन्द अनुभव करते थे। काश ! आर्यसमाज में ऐसे आर्यसमाजियों की वृद्धि हो जो अपने सत्कार्यों से आर्यसमाज के नाम को उज्ज्वल करने वाले हों।

—शम्भूराम नैय्यर

( क ) सम्वत् १९३५ वि० अगहन शुक्ल ८ को पधारे। पौष कृष्ण १ को यहाँ से प्रस्थान किया।

( ख ) सम्वत् १९३८ वि० आषाढ़ कृष्ण १२ को पधारे और भाद्रपद कृष्ण ६ को प्रस्थान किया।

( ग ) सम्वत् १९३८ वि० आश्विन कृष्ण १३ को पधारे और आश्विन शुक्ल १४ को प्रस्थान किया।

श्री स्वामी महाराज के विषय में जो कुछ मैं लिख रहा हूँ उसी सम्बन्ध में मुझे कुछ जानने की आवश्यकता प्रतीत हुई। मैंने समझा कि मसूदा में आर्य-समाज होगा। अतः मैंने वहाँ के मन्त्री आर्य समाज के नाम पत्र लिखा किन्तु पं० ओंकार लाल जोशी जी अध्यापक गवर्नमेंट सेकेण्डरी स्कूल मसूदा ने मुझे अपने पत्र लिखित २६-६-१९४१ ई० द्वारा सूचित किया कि यहाँ आर्य समाज नहीं है।

( २ ) रामनगर—इस नाम के अनेक स्थान भारत में हैं, किन्तु मेरा अभिप्राय उससे है जोकि गंगा के दाहिने तट पर काशी के समीप है। काशी का जो सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ सं० १९२६ वि० में हुआ था उससे पहिले श्री स्वामी जी महाराज रामनगर में ही पधारे थे। इस नगर में एक दिन नहीं बल्कि अनेक दिन रहे थे। यह नगर पहले से कुछ कम अच्छी अवस्था में नहीं, परन्तु यहाँ पर अभी तक आर्य समाज स्थापित नहीं।

कौन नहीं जानता कि जहाँ पर महर्षि नहीं पधारे थे, उनमें से बहुतेरे स्थान ऐसे हैं जहाँ पर समाजें स्थापित हैं। ऐसी अवस्था में यह बात अति आवश्यक है कि जहाँ पर महर्षि ने अनेक दिन बिताये हों वे आर्य समाज की स्थापना से अवश्यमेव सुशोभित किये जायें। ईश्वर करे कि शीघ्रमेव ऐसा हो।

---

॥ ओ३म् ॥

२७वें भारतवर्षीय आर्यकुमार सम्मेलन गढ़मुक्तेश्वर

के

*स्वागताध्यक्ष*

# श्री पं० ज्ञानचन्द जी का भाषण

आर्यकुमार भाइयो और आदरणीय अतिथियो।

मैं आप लोगों का अपनी तथा इस सम्मेलन की स्वागत कारिणी समिति की ओर से हृदय से स्वागत करता हूँ।

जैसा आप सब जानते हैं इस सम्मेलन का यह अधिवेशन कानपुर में होना निश्चित हुआ था। कई कारणों से ऐसा न हो सका। गत अधिवेशन को हुए १॥ वर्ष हो जाने के कारण बड़ी जल्दी से इस अधिवेशन की तैयारी की गई। इसका सारा श्रेय हमारे माननीय भाई श्री डा० युद्धवीर सिंह जी तथा श्री विश्वम्भर सहाय जी प्रेमी इत्यादि सज्जनों को है। परिषद् की कार्य कारिणी समिति की आज्ञानुसार मैं आपके स्वागत के लिए खड़ा हूं। जल्दी के किये हुए काम में त्रुटिया होनी स्वाभाविक ही है। इस कारण जो असुविधायें आपको हो रही हैं उनके लिए क्षमा याचना करता हूँ। इतने थोड़े से विज्ञापन पर आप लोग इतनी बड़ी सख्या मे एकत्र हो गए हैं इसके लिये आपका धन्यवाद करता हूँ। इन शब्दों के साथ मैं अपना छोटा सा वक्तव्य आपकी सेवा में प्रस्तुत करता हूँ:—

आब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामाराष्ट्रे राजन्य शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायताम् दोग्ध्री धेनुर्वोढाऽनड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णु रथेष्ठाः सभेयो युवाऽस्य यजमानस्य वीरो जायताम् निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्ताम् योग क्षेमो न कल्पताम् ॥ यजु० २२ । २२ ॥

अर्थात्—हे सर्व महान् भगवन्! हमारे राष्ट्र में ब्रह्म तेज युक्त, ज्ञान दीप्ति सम्पन्न ब्राह्मण सब ओर हों और बहादुर बाण विद्या, शस्त्रास्त्र सचालन में चतुर शत्रुओं को अत्यन्त उद्विग्न करने वाला महारथी क्षत्रिय वर्ग हो तथा दूध देने वाली गौवें, भार उठाने वाले

वेग, शीघ्र गामी घोड़े आदि हों। इस यजमान का पुत्र जवान होकर सभा कार्य में निपुण, जयशील, रमणीय साधन से युक्त और वीर होवे। अपेक्षित समय पर हमारे लिये बादल बरसता रहे। हमारी औषधी वनस्पतियाँ फल युक्त रहें तथा हमारा योग क्षेम भली प्रकार चले।"

कैसा सुन्दर आदर्श है। सारे ससार के निवासी इस आदर्श की पूर्ति की कामना करें यह वेद का अमर उपदेश है। ससार यात्रा चलाने के लिये जिन पदार्थों की आवश्य कता होती है उन सबकी कामना इस मन्त्र में की गई है। इसी कामना की पूर्ति से संसार का कल्याण हो सकता है। आदर्श ब्राह्मण, आदर्श क्षत्रिय, तथा आदर्श वैश्य ससार भर की शान्ति और सुख के प्रतिभू हैं। यह तीनों शक्तियाँ अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, तथा वैश्य जब एक नियन्त्रण में बध जाते हैं तो विराट पुरुष ( समाज ) के शरीर के अङ्ग बन जाती हैं।

ब्राह्मणो अस्य मुखमासीद् बाहू राजन्य कृत। ऊरू तदस्य यद्वैश्य पद्भ्याम् शूद्रो अजायत ॥

इस मन्त्र में बताया है कि शरीर में जो स्थान और कार्य मुख का है वही समाज में ब्राह्मण का है। शरीर में जो स्थान और कार्य बाहु का है वही समाज में क्षत्रिय का है। जो स्थान और कार्य शरीर में देह के मध्य भाग का है वही समाज में वैश्य का है। जो स्थान और कार्य शरीर में पाँवों का है वही समाज में शूद्र का है। इन्हीं चारों के एक नियन्त्रण में बंध जाने का नाम वर्णं व्यवस्था है।

अमर शहीद श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी कहा करते थे कि वैदिक धर्म और वर्णाश्रम व्यवस्था पर्यायवाची हैं। आर्य कुमारो! तुम्हारा उद्देश्य वैदिक धर्म का प्रचार है अर्थात् वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचार है। तुम्हारा जीना और मरना इसी के लिए है।

इस समय युरोप में भयंकर युद्ध की जो अग्नि प्रचण्ड हो रही है उसने युरोप को एक दधकता हुआ श्मशान बना दिया है। हजारों मनुष्य प्रतिदिन इस आग के भीतर झोंके जाते हैं। खून की नदियाँ बह रही हैं। जनता के गाढ़े पसीने की कमाई पानी की तरह बहाई जा रही है। नगर, उपवन, रेलें, सड़कें, विश्व विद्यालय, कालेज, स्कूल, हस्पताल भस्म किये जा रहे हैं। कौन कह सकता है कि यह प्रचण्ड अग्नि कहा तक फैलती चली जायगी और किस किस देश को अपनी लपेट में लाकर इसका सर्वनाश कर देगी।

आर्य कुमारो! एक तरफ ससार के मुख्य भाग में रण चण्डी का यह नग्न नाच और दूसरी तरफ तुम यहाँ बैठे प्रतिदिन साय और प्रात काल 'ओ३म् द्यौ शान्तिरन्तरिक्ष

" शान्ति पृथिवी शान्ति          का पाठ करते हो । क्या यह कोरा और खोखला मन्त्र पाठ ही है या सचमुच इस मन्त्र के पाठ द्वारा तुम यह सकल्प धारण करते हो कि हम द्यौ लोक, पृथ्वी लोक और अन्तरिक्ष लोक में जलों में, ओषधियों में और वनस्पतियों में शान्ति का राज्य स्थापित करेंगे। हम रोज पाठ करते हैं "इन्द्र वर्धन्तोऽप्तुर' कृण्वन्तो विश्वमार्यम्। अपघ्नन्तो अरावण:" हम सकल्प धारण करते हैं कि हम ससार में प्रभु का राज्य स्थापित करेंगे। सारे संसार को आर्य बनायेंगे और ससार भरसे कुरीतियों, कुविचारों और कुप्रथाओं को मिटा देंगे।

संसार की सुख और शान्ति का सर्वनाश करनेवाले युरोप में चल रहे इस प्रलयकारी महा-युद्ध से बढ़कर कोई बुराई नहीं है। इस बुराई को मिटाना आर्य्यों का कर्त्तव्य है। कुछ लोगों का कहना है कि इस युद्ध का मुख्य कारण जर्मनों की आक्रमणकारी वृत्ति है (Aggressive-ness) है। दूसरी तरफ से जर्मनों का कहना है कि वे सूर्य्य के नीचे जीने के लिए स्थान प्राप्त करने के लिये लड़ रहे हैं। वास्तव मे इस युद्ध का मूल कारण भोगवाद पर आश्रित पाश्चात्य सस्कृति का मूल-मन्त्र है जो कि निम्न प्रकार है —

Life is struggle जीवन एक रण भूमि है। The survival of the fittest बलवान को ही जीने का अधिकार है । The weaker must go to the wall निर्बल अवश्य नष्ट होंगे।

इस सिद्धान्त पर खड़ी सभ्यता और सस्कृति का एक ही परिणाम हो सकता है और वह है 'युद्ध । युद्ध !! युद्ध !!!"

इस के मुकाबले मे वैदिक सभ्यता और वैदिक सस्कृति का मूल-मन्त्र है "आयुर्यज्ञेन"।

जीवन एक यज्ञ भूमि है जिसम सब ससार के विद्वान् देवता पुरुष मनुष्य-मात्र के कल्याण के लिए अपनी अपनी शक्ति के अनुसार त्यागपूर्वक आहुति दें । इस सभ्यता और सस्कृति म बलवान निर्बल बन जाते हैं, निधन धनवान बनते हैं, अज्ञानियों को ज्ञान प्राप्ति का अवसर होता है। परिणाम स्वरूप ससार म सुख और शान्ति की वृद्धि होती है । वैदिक सभ्यता और सस्कृति के इसी मूल मन्त्र के आधार पर वर्णाश्रम धर्म रूपी सामाजिक सगठन का भवन खड़ा होता है।

आर्य्य कुमारो! इसी भवन का निर्माण करना तुम्हारी एकमात्र आकांक्षा होनी चाहिये ताकि ससार भर के लोग इस भवन म आश्रय पाकर सुख और शान्ति का रसास्वादन करें।

एक प्रश्न यह हो सकता है कि युरोपीय जातियों ने विद्या, विज्ञान और कलाकौशल आदि में एक अपूर्व चमत्कार करके दिखाया है। फिर क्या उन्होंने संसार में शान्ति स्थिर रखने का उपाय नहीं किया? वास्तव में युरोप के लोगों ने इस दिशा में महान प्रयत्न किया प्रजातन्त्रवाद ( Democracy ) साम्यवाद ( Socialism ) बाल्शेविज्म, कम्यूनिज्म, फासिज्म League of Nations इत्यादि अनेक प्रकार के सामाजिक संगठनों का युरोप में परीक्षण किया गया। ये सब परीक्षण संसार को शान्ति और सुख देने में असफल रहे। यह बात वर्तमान युरोपीय युद्ध से स्पष्ट है। आज समाज शास्त्र के युरोपीय विद्वान् भी खोज करते करते सामाजिक विधान का एक धुन्धला सा स्वरूप प्रकट करने लगे हैं जोकि मौलिक सिद्धान्त में वर्ण व्यवस्था से मिलता जुलता है। कई भाई इस बात को सुनकर चौंक पड़ेंगे उनके लिए युरोप के विद्वानों की खोज का परिणाम बताना आवश्यक है —

(१) महात्मा H G. Wells अपनी पुस्तक Work Wealth, and happiness of Mankind में लिखते हैं कि संसार में मनुष्यों के स्वाभाविक प्रवृत्तियों के अनुसार निम्न ३ विभाग हैं :—

(क) Peasant Persona अर्थात् वैश्य
(ख) Soldier " " क्षत्रिय
(ग) Educated " " ब्राह्मण

इन्हीं ३ प्रकार के मनुष्यों के सुशिक्षित होने और एक सुनियन्त्रित संगठन में बन्ध जाने से संसार का कल्याण हो सकता है। इन शब्दों का स्पष्ट अर्थ यह है कि मानो H. G. Wells महोदय यह कह रहे हैं कि संसार का कल्याण वर्ण-व्यवस्था से ही हो सकता है। इसी प्रकार

(२) Huxley महाशय ने अपनी पुस्तक Ends and Means में मनुष्यों के ३ विभाग किए हैं :—

(क) Cerebrotonic ( ब्राह्मण )
(ख) Smatotonic (( क्षत्रिय )
(ग) Viscerotonic ( वैश्य )

इनका कहना है कि इन तीन प्रकार के मनुष्यों के ऊँची से ऊँची योग्यता प्राप्त करके उसे समाज के लिए स्वाहा करने से संसार का कल्याण हो सकता है। मानो Huxley महोदय स्पष्ट और से वर्ण व्यवस्था का समर्थन करते हैं। आर्य वीरो! इस समय पीड़ित और

दुखित मनुष्य समाज का एक मात्र आश्रय वैदिकवर्ण व्यवस्था का पुनरुद्धार है। वर्तमान घोर संग्राम जब भी समाप्त हो और जैसे भी समाप्त हो उसका एक अनिवार्य परिणाम यह होगा कि संसार की सामाजिक व्यवस्था ऐसी नहीं रहेगी जैसी कि अब है। ससारमें फिर ऐसा युद्ध न हो सके और इस युद्ध के मूल कारणों की जड़ उखेड़ दी जाये इसके लिये ससार भरके मस्तिष्क जुटेंगे। संसार की सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक व्यवस्था के लिये नव विधान तैयार किया जायेगा। आर्य कुमारो! इस नव विधान का आधार वैदिक वर्ण व्यवस्था हो इसके लिए तुम्हें अभी से यत्नशील होना चाहिये।

वैदिक धर्म सार्वभौम धर्म है। इसलिये इसके द्वारा सार्वभौम समस्याओं का हल होना चाहिये। वह हल वर्णव्यवस्था है। इसी वर्ण व्यवस्था के उद्धार के लिए तन, मन, और धन अर्पण करना हमारा उद्देश्य होना चाहिए। इससे पहले कि आप दूसरों के सामने जीवन का यह आदर्श रख सकें आपका यह कर्तव्य है कि आप स्वय यथा योग्य वर्ण धारण करें। अपनी प्रवृत्तियों और योग्यताओं का अनुशीलन करो और विद्वानों की सहायता से निश्चित सकल्प बनाओ कि आप ब्राह्मण, क्षत्रिय, अथवा वैश्य बनकर मनुष्य मात्र की सेवा करेंगे। आपके उच्च जीवन को देखकर अन्य युवकों में आपका अनुकरण करने का उत्साह पैदा होगा और आपकी सख्या बढ़ती चली जायगी।

इसके पश्चात् आपका काम यह होगा कि एक आदर्श ग्राम बनाओ जिसमें ससार के सामने यह उदाहरण प्रस्तुत किया जाय कि ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तथा शूद्र किस प्रकार मिलकर परस्पर सहयोग से अपना जीवन बिताते हैं और सर्व हित के लिए अपना सर्वस्व निछावर करते हैं। हमारे सौभाग्य से आज हमारे बीच म अद्वितीय विद्वान् त्यागमूर्ति श्री० प० बुद्धदेव जी उपस्थित हैं। उन्होंने अपना सारा जीवन वेद के स्वाध्याय के अर्पण किया है और ससार का काया कल्प करने के लिये उन्हीं ने वर्णाश्रम सघ की स्थापना की है और अपने आदर्श को क्रियात्मिक रूप देने के लिये मेरठ नगर से १३ मील के फासले पर गगा की नहर के किनारे पर प्रभाताश्रम के रूप में एक आदर्श नगर की नीव रखी है। मेरा विश्वास है कि आर्य कुमारो! यह आश्रम आपके लिए ज्योति स्तम्भ का काम देगा।

परन्तु दुख की बात है कि आर्य समाज के अन्दर कुछ भाई ऐसे भी हैं जो ऐसा कहते सुनाई देते हैं "वर्णाश्रम व्यवस्था बड़ा सुन्दर आदर्श है। वेद प्रतिपादित है। महर्षि दयानन्द भी गुण कर्मानुरूप वर्णव्यवस्था के कट्टर समर्थक थे। यदि ससार के पुनर्निर्माण का आधार वर्णव्यवस्था हो तो बहुत ही अच्छा हो। परन्तु क्या करें वर्तमान समय मे कौन ऐसे कठिन आदर्श का पालन कर सकता है। थोड़े से आर्यों की इस आवाज को संसार म कौन

सुनेगा। संसार की सामाजिक तथा राजनैतिक समस्याओं का इस भारतवर्ष जैसे पराधीन देश के युवक करें यह कैसे हो सकता है। इसलिये वर्ण व्यवस्था का आदर्श काम धेनु होते हुए भी आज के ससार में अव्यवहार्य और असाध्य है।"

इस सम्बन्ध म मैं आपसे इतना ही कहना चाहता हूं कि 'अव्यवहार्य और असाध्य' की रट लगाने वाले अपनी रट लगाते रहें और आपका काफिला आगे ही आगे बढ़ता जाये।

'कृतं मे दक्षिणे हस्ते जयो मे सव्य आहित'

अर्थात् यदि हम दायें हाथ से पुरुषार्थ करें तो सफलता हमारे बायें हाथ मे रहेगी इस वेद वाक्य में विश्वास रखते हुए अपने कर्तव्य पथ पर अपना पग बढाओ। विजय की देवी आपके पग चूमेगी।

अजैष्माद्य असनामाद्य अभूमनागसो वय।

अर्थात् हम जीतेंगे और आज ही जीतेंगे। ऐश्वर्य और सम्पत्ति के स्वामी बनेंगे और आज ही बनेंगे। हम निष्पाप हो जायेंगे।

जिस समय युवा शिवाजी ने चन्द मावलों को साथी बना मुगल साम्राज्य की जड़ उखाड़ने का सकल्प किया था क्या उस समय 'अव्यवहार्य और असाध्य' की रट लगाने वाले न थे। थे और बड़ी भारी सख्या में थे। परन्तु शिवाजी का काफिला चलता गया और शिवाजी ने मुगल साम्राज्य का विध्वन्स करके रख दिया इसमे किसे सन्देह है।

आज यूरोपियन लोग हिमालय की ऊँची बर्फीली चोटयों के दर्शन के लिए बड़ी बड़ी यात्राओं का आयोजन करते हैं। सैकड़ों मजदूर, घोडे, तम्बू, खान पान का सामान इत्यादि लेकर चलते हैं फिर भी उन चोटियों तक कोई बिरला ही पहुँचता है। परन्तु बौद्ध भिक्षु तन तनहा बिना किसी प्रकार की सामग्री साथ लिए भगवान् बुद्ध का सन्देश हिमालय के पार के देशों को सुनाने के लिय इन बर्फीली चोटियों को लाँघने के लिये चल पड़ते थे। उस समय भी 'अव्यवहार्य और असाध्य' की रट लगाने वाले इस भारत में थोडे नहीं थे। फिर भी अपने आदर्श मे विश्वास रखने वाले वे भिक्षु इन चोटियों को पार कर गए और उन्होंने चीन, जापान, तिब्बत आदि देशों में भगवान् बुद्ध का सन्देश सुनाकर उन्हें महात्मा बुद्ध का अनुगामी बना दिया।

ऐसे असख्य चमत्कार हमारे पूर्वज भारतवासियों ने करके दिखाये हैं।

आर्य कुमारो! आज यह आपका सौभाग्य है कि महर्षि दयानन्द का पवित्र संदेश ससार भर में पहुंचाने का अवसर आपके सामने खड़ा है।

उत्तिष्ठत, सन्नह्यध्वं, उदारा केतुभि सह।

अर्थात् उठो, कमर कस लो, उदार बनकर एक झण्डे के तले एकत्र हो जाओ।

श्री० अरविन्द जी ने १९१५ में अपने पत्र 'आर्य' में एक लेख लिखा था जिसमे उन्होंने आर्य 'शब्द' की निम्न प्रकार व्याख्या की थीः—

"The word 'Arya' expressed a particular ethical and Social ideal, an ideal of well-governed life, candour, courtesy, nubility, straight-dealing, courage, gentleness, purity, humanity, compassion, protection of the weak, liberality, observance of social duty, eagerness for knowledge, respect for the wise and the learned and the social accomplishments. There is no word in human speech that has a nobler history".

"The Arya is he who strives and overcomes all outside him and within him that stands opposed to the human advance. He overcomes mind and its habits, he does not live in a shell of ignorance, inherited prejudices, customary ideas, pleasant opinions, but knows how to seek and choose, to be large and flexible in intelligence, even as he is firm and strong in his will. For in every thing he seeks truth, in every thing right, in every thing height and freedom. The "Arya" is a worker and a warrior. Always he fights for the the coming of that kingdom of God within himself and the world".

"अर्थात् आर्य शब्द सुनियन्त्रित जीवन स्पष्टवादिता, शिष्टाचार, उच्चता, सद्-व्यवहार, साहस, विनम्रता, पवित्रता, मनुष्यता, दया, निर्बलों की रक्षा, उदारता' सामाजिक कर्त्तव्यों के अनुष्ठान, ज्ञान को जिज्ञासा, बुद्धिमानों विद्वानों के लिए आदर बुद्धि और सामाजिक सद्गुणों के एक विशेष नैतिक और सामाजिक आदर्श का बोध कराता है। मनुष्य की भाषा में कोई शब्द ऐसा नहीं है जो आर्य शब्द से अधिक पवित्र इतिहास रखता है।"

आर्य वह है जो प्रयत्नशील है और अपने बाहर और भीतर की प्रत्येक वस्तु पर विजय प्राप्त करता है जो कि मानवी उन्नति के मार्ग में बाधक होती है। आत्म नियन्त्रण उसके स्वभाव का प्रथम नियम है। वह मन और उसकी आदतों को अपने वश में करता है। वह अज्ञानान्धकार में परम्परागत भ्रमों. रिवाजों, विचारों और भली मालूम होने वाली सम्मतियों के खोल में रहना पसन्द नहीं करता। परन्तु वह चुनना और पसन्द करना और बुद्धि में महान् और लचकीला होना वैसे ही जानता है जैसे कि वह अपने निश्चय में पक्का और

दृढ़ होता है, क्योंकि वह प्रत्येक वस्तु में सत्य, औचित्य उच्चता और स्वतन्त्रता की खोज करता है। आर्य परिश्रमी और योद्धा होता है। वह सदैव प्रभु के राज्य को अपने भीतर और संसार में लाने के लिए युद्ध करता है।"

आर्य शब्द की इससे सुन्दर व्याख्या क्या हो सकती है? इसी प्रकार के आर्य संसार के प्रत्येक देश मे हों जो परमात्मा का राज्य संसार भर मे स्थापित करने के लिए अन्धकार अज्ञान, अन्याय, अत्याचार और अभाव को मिटाने के लिए दिन और रात निरन्तर चौमुखी लड़ाई लड़ते रहें। प्रभु करें हम सब ऐसे ही आर्य बनें और ऋषि दयानन्द की आज्ञानुसार कृण्वन्तो विश्वमार्यम् का झण्डा हाथ में लेकर सार्वभौम चक्रवर्ती आर्य साम्राज्य की स्थापना के लिए निकल पड़े और संसार को स्वर्ग बनादें।

आर्य कुमारो! भारत के बच्चे बच्चे में यह आकाँक्षा भरदो कि संसार भर की सुख शान्ति के निर्माता हम होंगे। हम संसार को आर्य बना देंगे। हम संसार को स्वर्ग समान बना देंगे। गर्मियों के अवकाश के दिनों में ग्राम ग्राम मे घूम कर यह सन्देश सुनाओ।

चीन की लड़कियों का उदाहरण तुम्हारे सामने है। वर्तमान चीन जापान युद्ध में चीन की कुमारी कन्याओं ने ग्राम ग्राम में घूमकर चीन की आत्मा को जापानी आक्रमण का मुकाबला करनेके लिए जगा दिया है। इसी का फल है कि जापान अभी तक चीन पर विजय नहीं पा सका।

भारत वर्ष की वर्तमान अवस्थाओं को दृष्टि मे रखते हुए मैं दो शब्द और आप से कहना चाहता हूँ —

आप खाकसार और पाकिस्तान के आन्दोलनों के सम्बन्ध मे बहुत कुछ सुनते और पढ़ते रहते हैं। इन दोनों का मुख्योद्देश्य भारत में आर्य सभ्यता और संस्कृति का विध्वंस करके इस देश में मुस्लिम राज्य स्थापित करना है। ऐसी अवस्था मे प्रत्येक आर्य कुमार का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने आपको आर्य सभ्यता और संस्कृति का रक्षक बनाने की योग्यता अपने अन्दर पैदा करें। कोई आर्य कुमार ऐसा नहीं होना चाहिये जो अपने स्थानिक आर्य वीर दल का सदस्य न हो। आर्य वीर दलों के संगठन में आर्य कुमारों को उत्साह पूर्वक भाग लेना चाहिये।

मैं आप सब लोगों को इस बात पर बधाई देता हूँ कि इस सम्मेलन के प्रधान पद श्री डा० परमात्माशरण जी एम० ए० पी० एच० डी प्रोफेसर बनारस यूनिवर्सिटी जैसे योग्य विद्वान् सुशोभित करेंगे और आगामी वर्ष में आर्य कुमारों का नेतृत्व करेंगे। मैं श्री प० जी से सविनय प्रार्थना करता हूँ कि सम्मेलन के प्रधान के आसन को ग्रहण करके सम्मेलन कराने की कृपा करें।

# पाश्चात्य समाजवाद

[ ले०—श्री नरदेव जी शास्त्री, वेद तीर्थ ]

[ प्रस्तुत लेख के लेखक सम्प्रति जेल में हैं, उन्होंने वहीं से इस लेख को भेजा है; लेख में आपने इस बात को सिद्ध किया है कि पाश्चात्य समाजवाद आध्यात्मिकवाद से शून्य विज्ञानवाद के आश्रित होने के कारण जनता के लिये घातक है। अध्यात्मवाद ही हमारी उन्नति का कारण है। —सम्पादक ]

पाश्चात्य समाजवाद अस्वाभाविक समाजवाद हैं। उनके वर्गवाद, साम्यवाद, समाजवाद, राष्ट्रीय समाजवाद, वैज्ञानिक समाजवाद, फैसिस्टवाद सबके सब आध्यात्मिकवाद से शून्य होने के कारण अस्वाभाविक हैं। इसीलिए वे ऋत अर्थात् पारमार्थिक सत्य ( Ethic of right and good action ) स्वभावानुरूप स्वाधिकार तथा स्वकर्म के तत्व को नहीं जानते। इसीलिए पाश्चात्य देशों मे स्वजीवन निर्वाह के लिए इतनी घोर अशान्ति रहती है। पाश्चात्यों के 'वाद' धर्म शून्य विज्ञान वाद के आश्रयीभूत होने के कारण ससार को क्लेश पहुचा रहे हैं। भारतीय समाज वाद अध्यात्म सूत्र से ओत-प्रोत था इसीलिए इतनी दासता, इतनी पराधीनता इतने परचक्र, इतनी अनर्थ परम्परा के होते हुए भी श्वास प्रश्वास लेने मे समर्थ हो रहा है। अब भी इसी अध्यात्मवाद से प्रभावित स्वसस्कृति के कारण ससार को यथार्थ मार्ग बतलाने की शक्ति रखता है इसका धर्म इसकी सस्कृति, इसका अध्यात्मवाद अब भी इसको 'ससार का गुरु' कहला रहा है—

श्री डा० भगवानदास जी ने Science of Self नामक अपनी पुस्तक में क्या ही अच्छा कहा है—

It is the ancient socialism which some are convinced is truly scientific because based on Science of Psychology the most important of all the sciences as is being widly recognised in the West also now, while modern socialism or communism, which calls itself scientific fails to be so, because it ignores and even goes positively against some fundamental facts and laws of human nature and therefore will fail to realise its objective and fail exactly in the degree in and to the extent which it violates those facts and laws.

All this world of objects which is named by the word 'this" is made of and by the ideation Hence none who knows not the Science of self can carry action to the fruitful issues He who knows the inner purpose of the laws of process and its orders ideated by the self existent he alone can rightly ascertain and enjoin the right and duties of the different classes of human beings of thair social (Varnas) occupations and vocations and of their Ashrams = stages in life

इसका अर्थ यह है कि अनेकों का विश्वास है कि प्राचीन समाजवाद ही सच्चे अर्थों मे वैज्ञानिक समाजवाद है क्योंकि वह अध्यात्मवाद पर निर्भर है। अध्यात्मवाद सब विज्ञानों मे श्रेष्ठ विज्ञान है पाश्चात्य देशों के विद्वान भी अब इस बात को मानने लग गये हैं। पाश्चात्य देशों के वर्तमान समाजवाद मौलिक प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है, मनुष्य स्वभाव से विरुद्ध हैं, इसीलिए असफल हो रहे हैं।

यह भौतिक जगत जिसको हम 'इदम्' ( यह ) इस नाम से पुकारते हैं या कहते हैं किसी विशिष्ट कल्पना अथवा व्यवस्था पर निर्भर है। इसीलिये जो लोग इसके भीतर ओत-प्रोत अध्यात्म सूत्र को नही जानते वे कभी सफल नहीं हो सकते। वे भिन्न भिन्न वर्णों अथवा आश्रमों के यथार्थ कर्तव्यों को भी नहीं जान सकते। भगवान् मनु ने ठीक ही कहा है कि—

"न ह्यनध्यात्मवित् कश्चित् क्रियाफलमपश्नुते"

जो अध्यात्म तत्व नहीं जानता उसकी क्रियाएँ कभी भी सफल नहीं हो सकतीं। यद्यपि आर्य धर्म का आर्यसस्कृति का पोषक, धारक, आर्य राज्य अथवा आर्य साम्राज्य एक सहस्र वर्ष से नहीं रहा तथापि अध्यात्मवाद के आधार पर स्थित वर्णाश्रम धर्म के जो भग्नावशेष अब भी दिखलाई दे रहे हैं उनसे भारत की स्वाभाविक समाजवाद की महत्ता ससार को विदित हो गई है। इस मानव धर्म को न समझने के कारण ही सब देशों के राष्ट्रों के समाज विस्खलित हो रहे हैं। उनकी आसुरी-वृत्ति बढ़ रही है। हमारे प्राचीन तम पूर्वज अपनी परम्परा द्वारा जिस ऋत नामक सत्य का प्रचार तथा प्रसार करते थे उसी का बलपूर्वक प्रचार करना आर्यसमाज का परम कर्तव्य है। स्वामी दयानन्द का अवतार ही इसी ऋत के प्रचार के लिये था। इसी ऋत के प्रचार मे उन्होंने अपने प्राण अर्पण किए।

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. )

( गतांक से आगे )

क्या मनुष्य सर्वोपरि पशु नहीं है ? और क्या अन्य जीवों को अपनी इच्छानुसार खाने का उसको अधिकार नहीं है ?

इसमें सन्देह नहीं मनुष्य सर्वोच्च पशु है परन्तु उसकी सर्वोच्चता का अर्थ वह नहीं है जिसका बोध युक्ति से होता है। मनुष्य तो सर्व श्रेष्ठ विकसित और संस्कृत जीव होता है अतः उसको साधारण पशुता से ऊपर रहना चाहिए। जहाँ उसके अधिकार बहुत से हैं, वहां मनुष्य ही वह प्राणी है जिस पर सामाजिक और नैतिक आदर्श लागू होते हैं। उसका चरित्र और व्यवहार दूसरों के लिये आदर्श स्वरूप होना चाहिये। श्रेष्ठत्व उसको दूसरों का गला घोंटने का अधिकार कदापि प्रदान नहीं करता। मनुष्य की इच्छा हो तो वह अन्य प्राणियों के साथ अपनी घनिष्ठता स्थापित करके अपने को पारस्परिक सहायता का पात्र बना सकता है। उच्चता को पशुता और बर्बरता के साथ मलाकर भ्रम उत्पन्न नहीं करना चाहिए।

क्या आप प्रकृति मे यह नहीं देखते हैं कि एक प्राणी दूसरे प्राणी का भोज्य पदार्थ है। तब यदि मनुष्य अपने लिए किसी प्राणी को भोज्य पदार्थ के लिए चुनता है तब आपको क्यों आपत्ति होनी चाहिए ?

मैं इस बात को स्वीकार नहीं करता कि मनुष्य शिकार पर निर्भर रहने वाला जीव है और सब जीव भी शिकारी जीव नहीं है। उदाहरणार्थ हाथी, ऊँट, घोड़ा, बैल, खच्चर, और बकरों को ले लीजिये। केलाग Kellogg ने ठीक कहा है कि बहुत से शिकारी जीव भी शुरू शुरू में शिकारी जीव न थे। केवल आवश्यकता ने उन्हें ऐसा करने के लिए बाधित किया है। मनुष्य तो कृषि के उच्च व्यवसाय के लिए अभिप्रेत है। कहा जाता है कि मनुष्य को मांस का भोजन खिलाने के लिए २२ एकड़ भूमि की आवश्यकता होती है और यही २२ एकड़ भूमि २२ मनुष्यों के लिए आटा और ८८ मनुष्यों के लिए जई का भोजन प्रस्तुत करती है। जई में माँस के लगभग बराबर प्रोटीन और शक्ति होती है अतः गो माँस के स्थान में जई उत्पन्न करना अधिक सस्ता है। पश्चिम की एक गौ अपने जीवन में औसतन १८००० क्वार्टर दूध और मरने पर ५०० पौंड माँस देती है परन्तु उसके भोजन में इन वस्तुओं से अधिक व्यय हो जाता है।

# वैदिक धर्म प्रचार शैली

( श्री प० कृष्णचन्द्र जी विद्याऽलङ्कार )

**हमारे उपदेशक—**

कोई समय था, जब आर्य समाजी उपदेशक श्रोताओं को विविध मनोरञ्जक चुटकुले सुनाकर अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे, लेकिन आज बहुत कम उपदेशक जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं। कुछ लब्ध प्रतिष्ठित आर्य विद्वानों और सन्यासियों को छोड़कर जनता किसी भी उपदेशक के भाषण के प्रति आकृष्ट नहीं होती। लोग उत्सवों में जाते हैं और बैठे भी रहते हैं, लेकिन उपदेशकों को सुनने के लिए नहीं, कुछ रौनक देखने के लिए और कुछ भजनीकों के भजन सुनने के लिए। इसके विपरीत कांग्रेस की सभाओं में भजन सुनने के लिए नहीं, वक्ताओं के व्याख्यान सुनने लोग जाते हैं। यह ठीक है कि जनता की धार्मिक विषयों में रुचि कम हो गई है, लेकिन यह केवल सत्यांश है वस्तु स्थिति यह है कि अधिकांश आर्य समाजी उपदेशक आज जनता की दिमागी और मानसिक तृप्ति करने में असमर्थ हैं। वे जहाँ आज से बीस साल पूर्व थे, आज भी वहीं हैं। उनके ज्ञान में आज भी सिवाय दो चार चुटकुलों या एक दो मन्त्रों के और कोई वृद्धि नहीं हुई। उनका सामान्य ज्ञान आज भी कुछ नहीं है। वे इधर उधर से सुनी सुनाई बातों पर विश्वास कर लेते हैं। उनके ज्ञान विस्तार का साधन सिवाय टटपुँजिए उर्दू पत्रों के कोई नहीं होता। और इसी के बल पर वे अपने भाषणों में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, भारतीय राजनीति, राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता, पाकिस्तान आदि विषयों पर धड़ल्ले से बोलते हैं। कभी कांग्रेस को कोसते हैं तो कभी गांधी जी को। उनका दृष्टिकोण इतना संकुचित होता है। प्राचीन भारतीय सभ्यता के सम्बन्ध में भी ऐसी बेतुकी हाँकते हैं, जिनका इतिहास के पुरातत्ववेत्ताओं को स्वप्न भी नहीं आता। किसी बात पर गम्भीरता से विचार करने का या तो उन्हें समय ही नहीं मिलता, या वे इसकी आवश्यकता ही नहीं समझते। उथले मन से वे काम चलाना चाहते हैं। वे यह भूल जाते हैं कि आज की जनता राजनैतिक दृष्टि से बहुत जागृत हो गई है और ऐसी बातों पर हँसी उड़ाकर रह जाती है।

**दो तीन उदाहरण—**

उपदेशकों द्वारा बड़ी २ विराट सभाओं में कही गई उपहासास्पद बातों में से सिर्फ दो उदाहरण देना चाहता हूँ। एक उपदेशक इतिहास के महान् पंडित की भांति मुसलमान

बादशाह औरंगजेब द्वारा भ्रातृवध के मुकाबले में राम और भरत के भ्रातृ प्रेम की कथा बता कर सिद्ध कर रहे थे कि इस्लाम कितना पतित और वैदिक धर्म कितना महान् है। एक दूसरे उपदेशक हिटलर के स्वस्तिक और आर्यत्व का बड़े गर्व से जिक्र करते हुए वैदिक संस्कृति के जर्मनी में भी प्रचार पर हर्ष प्रकट कर रहे थे। शंकरे ( शंकराचार्य ) को शगर कहने वाले गैर जिम्मेवार उपदेशकों की भी कमी नहीं है।

इसमे उपदेशकों का अपना दोष है, मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है वर्तमान प्रचार पद्धति अत्यन्त दूषित है, जिसमें उन्हें विचार करने, अध्ययन करने का समय ही नहीं मिलता उन्हें रात दिन रेलगाड़ियों या मोटर लारियों में बिताना पड़ता है। इन सब बातों से लेखक भली भांति परिचित है और इसलिए वह इसका दोष उपदेशकों के सिर नहीं मढ़ना चाहता परन्तु इससे उक्त स्थिति मे कोई अन्तर नहीं आ जाता। स्थिति तो शोचनीय है ही चाहे अपराध प्रचारकों का हो, चाहे दूषित प्रचार पद्धति का।

आखिर इसका हल कैसे हो ? इसी का एक उपाय मैं इस लेख में बताना चाहता हूं।

**प्रस्ताव—**

मेरा प्रस्ताव यह है कि प्रतिवर्ष साल में एक या दो दफा सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की ओर से उपदेशक सम्मेलन की आयोजना की जाया करे। यह सम्मेलन कोई एक दो दिनों के लिये न हो। यह १५ २० दिन तक हुआ करे, इसे मैं सम्मेलन के बजाय 'शिक्षण केन्द्र' कहना अधिक पसन्द करूंगा। इसका कार्य क्रम निम्नलिखित होना चाहिए—

(क) अन्तर्राष्ट्रीय, राजनैतिक समस्याओं पर भाषण।

(ख) संसार की अर्थ शास्त्र सम्बन्धी समस्याओं पर गम्भीर भाषण।

(ग) निश्चित वेद सूक्तों और सिद्धान्तों का विस्तृत अध्ययन।

(घ) भारतवर्ष की राजनैतिक, साम्प्रदायिक आर्थिक और सांस्कृतिक समस्याओं पर विस्तृत भाषण।

(ङ) समाज शास्त्र, दर्शनशास्त्र पर आधुनिक विचार व्याख्याता लोगों का केवल आर्य समाजी होना अनिवार्य नहीं विभिन्न क्षेत्रों के प्रामाणिक विद्वान सरलता से केवल मार्ग व्यय लेकर निःशुल्क भी मिल सकते हैं।

**लाभ—**

इन भाषणों से आर्य प्रचारकों का दृष्टिकोण उदार होगा, वे संसार की वास्तविक परिस्थिति से परिचित होंगे और अपने भाषणों में अज्ञात बातें कहने से बचेंगे। वैदिक सामाजिक व्यवस्था पर आज के सामाजिक संगठन, पूंजीवाद और साम्यवाद आदि सिद्धान्तों का ज्ञान हुए बिना उपयोगी भाषण कैसे दिया जा सकता है।

**शिक्षण केन्द्र का स्थान—**

ऐसे शिक्षण केन्द्रों में प्रत्येक प्रान्त के प्रचारकों का रहना आवश्यक हो। इन्हें आने जाने का व्यय प्रतिनिधि सभाओं को देना चाहिए। अपने उपदेशकों को अधिक ज्ञानवान बनाने के लिये यह व्यय आवश्यक है। दूर दूर के प्रान्तों से आने का व्यय बचाने के लिये सार्वदेशिक सभा उत्तर और दक्षिण भारत के लिए पृथक् पृथक् केन्द्र खोल सकती है। यह भी हो सकता है कि प्रतिवर्ष भिन्न भिन्न प्रान्तों म शिक्षण केन्द्र खोले जावें। गुरुकुल कांगड़ी जैसे शिक्षालय सुविधा की दृष्टि से ज्यादा उपयोगी हो सकते हैं।

**सार्वदेशिक सभा की महत्व वृद्धि—**

ऐसे शिक्षणों से दो बड़े लाभ और भी होंगे। पहला लाभ सार्वदेशिक सभा को होगा। सार्वदेशिक सभा का आज वस्तुत प्रान्तों पर कोई नियन्त्रण नहीं है। दक्षिण भारत में प्रचार के सिवा अन्य प्रान्तों पर उसका कोई प्रभाव नहीं है। ऐसे शिक्षण केन्द्रों से जहा सार्वदेशिक सभा का भारत भर के उपदेशकों से सपर्क कायम होगा, वहाँ सभा का सम्मान भी बढ़ेगा। वह समस्त प्रान्तों के कार्य भार तथा उपदेशको की योग्यता अयोग्यता की देख रेख भी कर सकेगी।

इसका दूसरा लाभ उपदेशकों को होगा। आज वे अपने अपने प्रान्त में सीमित हैं उन्हें दूसरे प्रान्त की परिस्थितियों का भी ज्ञान नहीं। विविध प्रान्तों के प्रचारक परस्पर मिलेंगे एक दूसरे प्रान्त के रीति रिवाज, धर्म, आर्यसमाज के प्रचार आदि से परिचित होंगे। और इससे भी बढ़कर परस्पर सगठन का लाभ भी प्रचारकों को होगा।

मैंने यह मोटी रूप रेखा खीची है। इस पर विस्तार से फिर भी विचार किया जा सकता है। क्या सार्वदेशिक सभा के अधिकारी इस परामर्श पर विचार करेंगे?

---

# सुमन संचय

## ( १ )
## क्षमा शीलता

समर्थ गुरु रामदास अपनी शिष्य मण्डली के साथ अपने परम प्रिय शिष्य छत्रपति शिवाजी से मिलने के लिए सितारा जा रहे थे। मार्ग मे मकई का एक खेत पड़ा। समर्थ गुरु और उनके शिष्य क्षुधा से पीड़ित थे अत, उस खेत मे से भुट्टे तोड़ और उन्हें भूनकर खाने लगे। इतने मे ही खेत का मालिक आ गया और उसने क्रोध में आकर समर्थ गुरु को कोड़ों से पीटना शुरू किया। उनके शिष्यों को यह बर्दाश्त न हुआ और वे सब उस किसान पर टूट पडे। समर्थ गुरु ने एक दम अपने शिष्यों को ऐसा करने से रोक दिया।

दूसरे दिन प्रात काल महाराज शिवाजी अपने पूज्य गुरु को स्वय स्नान करा रहे थे। गुरु की देह पर स्थान २ पर घाव देखकर उन्हे बड़ा दुख और आश्चर्य हुआ। उन्होंने घावों का कारण पूछा परन्तु गुरु जी ने वास्तविक कारण छुपा कर अन्यान्य कारण बता दिए छत्रपति शिवाजी को सन्तोष न हुआ और उन्होंने उनके शिष्यों से पूछताछ की। महाराज रामदास की चोटों और घावों का वास्तविक कारण ज्ञात होने पर शिवाजी के रोष का पारावार न रहा। उन्होंने दुष्ट किसान की मुश्कें बँधवाकर अपने सामने उपस्थित किये जाने की आज्ञा दी। आज्ञा का पालन होने मे देर न हुई और वह किसान उनके सम्मुख उपस्थित किया गया। राज सिंहासन पर महाराज शिवाजी के निकट समर्थ गुरु को बैठा हुआ देखकर किसान के होश उड़ गए। मारे भय के वह थर थर कॉपने लगा। जिस साधु को साधारण बैरागी समझ कर उसने बहुत मारा पीटा था उसे महाराज शिवाजी का पूज्य देव समझ कर उसे अपनी कुशल न देख पड़ी। वह अपनी भूल पर पछताने लगा। छत्रपति शिवाजी ने समर्थ गुरु से कहा 'महाराज! आपका और मेरा अपराधी आपके सामने खड़ा है। आप इसे दण्ड दीजिए। अपराध की दृष्टि से मृत्यु दण्ड भी इसके लिए अपर्याप्त है।' महाराज की यह गर्जना सुनकर किसान त्राहिमाम्, त्राहिमाम्, क्षमा करो, क्षमा करो। यह कहकर पृथ्वी पर गिर पड़ा।

समर्थ गुरु ने कहा 'शिवा। इसे मेरे मन के अनुसार दण्ड दो।' शिवाजी ने कहा 'अवश्य, आप इसके लिए दण्ड निश्चित कीजिए' गुरु जी ने कहा "यह किसान निर्दोष है इसे मुक्त किया जाय। हमने पर द्रव्य को चुराने का अपराध किया है अत यह नहीं वरन हम अपराधी हैं।" यह कहकर समर्थ गुरु ने किसान से अपने अपराध की क्षमा मागकर उसे अभय दान दिया। शिवाजी ने गुरु आज्ञा को शिरोधार्य कर उसकी मुश्कें खुलवादीं। परन्तु समर्थ गुरु रामदास जी का मन इससे भी सन्तुष्ट न हुआ। उन्होंने शिवाजी से कहा तुम भी इसे क्षमा करो और यह खेत सदा के लिये इसे दान दे दो। शिवाजी और उनके दरबारी महाराज की क्षमा शीलता देखकर अवाक् रह गए। शिवाजी के मुह से कोई शब्द न निकला और 'एवमस्तु' कहकर गुरुदेव के चरणों मे बैठ गए।

( २ )

## खिला हुआ फूल

यह बगाल प्रान्त की एक सच्ची घटना है। रात्रि के ८ बजे थे। घन घोर वर्षा हो रही थी। वायु प्रबल वेग के साथ चल रहा था। कृष्ण पक्ष था वर्षा और अन्धकार ने रात्रि को बहुत भयानक बना दिया था। ऐसे दुर्दिन में स्कूलों के इन्सपेक्टर नलिनी कुमार अपने २ साथियों के साथ हैडक्वार्टर्स को लौट रहे थे। वर्षा और अधकार ने उनका मार्ग दुर्गम बना दिया था। फलत आश्रय के लिए वे निकटवर्ती एक ग्राम में गए, और एक किसान की गौशाला मे जाकर बैठ गए। इतने में किसान को उनके आने का पता लगा और उसने चारपाई इत्यादि मगाकर उनको आराम से बिठाया। इसी बीच में वर्षा रुक गई। दिन भर के थके हुए उन अतिथियों को उस किसान ने आग्रह करके जाने से रोक लिया और चूंकि वह मुसलमान था इसलिए अपने हिन्दू अतिथियों के लिए भोजन की सामग्री लाकर उनके सम्मुख रख दी और प्रार्थना की कि उसके रूखे सूखे भोजन से आतिथ्य स्वीकार करें। अपने मेजबान के इस प्रेम को इन्सपेक्टर महोदय ठुकरा न सके और उस रात को उसी के यहाँ रहे। रात के लगभग १० बजे वह किसान अपने मेहमानों के पास आया। उसे यह ज्ञान कर खेद हुआ कि इन्सपेक्टर साहब के एक साथी ने भोजन नहीं खाया। कारण यह ज्ञात हुआ कि उस ग्राम में कोई भी हिंदू घर न था सब के सब मुसलमान थे और वे महाशय उस ग्राम के कुए का जल पीने के लिए उद्यत न थे। किसान दुख प्रगट करके अपने घर चला गया और मेहमान सो गए।

# साहित्य-समीक्षा

## स्वाध्याय संग्रह

संग्रहीता—वेद शास्त्री श्री स्वामी वेदानन्द (दयानन्द) तीर्थ।

प्रकाशक—मंत्री आर्य प्रतिनिधि सभा पजाब गुरुदत्त भवन लाहौर।

मूल्य—।॥) (सजिल्द)

यह दैनिक जीवन को उच्च और सुखी बनाने वाले वेद मन्त्रों का श्रेष्ठ संग्रह है। इसमें आर्य समाज के तीसरे और छठे नियम को लक्ष्य में रखकर विविध विषयों पर वेद मन्त्रों का संग्रह किया गया है और साथ ही उनकी उत्तम व्याख्या भी की गई है। वेद के स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यह अनमोल वस्तु है। वेद की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए पंजाब सभा का यह प्रयत्न सचमुच श्लाघनीय है।

## आर्य शहीदी कलेण्डर

इस कलेंडर में आर्यसमाज और आर्य सत्याग्रह हैदराबाद के हुतात्माओं के चित्र दिये गए हैं। इच्छा और प्रयत्न करते हुए भी प्रकाशकों को पूरे चित्र उपलब्ध नहीं हो सके हैं फिर भी उनका यत्न प्रोत्साहन योग्य है। आर्य समाजों, संस्थाओं और आर्य गृहों में इस कलेंडर का होना आवश्यक है।

मिलने का पता—

श्री छबीलदास हालु भिवानी (हिसार)

## विशेषांक

ऋषि दीप निर्वाण उत्सव के अवसर पर 'आर्य मित्र' (लखनऊ) 'आर्य भानु' (शोलापुर), 'प्रकाश' (लाहौर), 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) के विशेषांक हमें प्राप्त हुए हैं। इन अंकों को सर्वाङ्ग सुन्दर बनाने मे प्रकाशकों ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रखा है।

---

रात्रि के लगभग ३ बजे गाँव में शोर गुल की आवाज आई। उस शोर से इन्स्पेक्टर महोदय और उनके साथी जग गए और कारण जानने के लिए अपने मेजबान को पुकारा। मेजबान ने आकर कहा "कुछ नहीं, ये लोग एक छोटा कुआं खोद रहे थे। उसमें पानी निकल आया है इसीलिए शोर मच रहा है। अब हमारे मेहमान उस जलसे भोजन बनाकर मेरा आतिथ्य स्वीकार करें। यह कुआं हिन्दुओं से ही खुदवाया गया है और मै आपके पास से उठकर ३-४ मील दूर के एक गांव से इन लोगों को बुलाकर लाया था।" उस मुसलमान किसान के उद्योग को देख इन्स्पेक्टर महोदय और उनके साथी दग रह गए, और मन ही मन उसके प्रेम की प्रसंशा करने लगे। अन्तमें उन महाशय ने भोजन बनाकर खाया। इस घटना के बंगाल के कोने २ में गूंजने में देर न लगी और उस किसान ने अपने मानव-प्रेम और आतिथ्य सत्कार के कारण बंगाल के इतिहास में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है।

—रघुनाथ प्रसाद पाठक

## हिन्दी प्रचार समाचार ( त्यागराय नगर ) मद्रास

इस मासिक पत्रिका का अक्टोबर का अंक हमारे सामने है। यह दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास) का मासिक मुख पत्र है। इस पत्र का मुख्योद्देश्य दक्षिण भारत में हिन्दी भाषा दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा और उसके उद्देश्यों को लोक प्रिय बनाना है। हमें प्रसन्नता है कि उक्त उद्देश्यों में पत्रिका भली भांति सफल हो रही है। हिन्दी प्रचार सभा ने दक्षिण भारत में हिन्दी प्रचार के कार्य में चमत्कारिक सफलता प्राप्त की है। हमें आशा है कि उसका मुख पत्र भी इसी प्रकार की सफलता प्राप्त करेगा। यदि यह पत्र दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं की बहुमूल्य कृतियों का हिन्दी भाषा भाषी जगत को रसास्वादन कराता रहे तो बड़ा उत्तम रहे।

पत्र का वार्षिक चन्दा केवल मात्र २) है।

## BOOK REVIEWS.

Superstition by Ganga Prasad Upadhyaya M. A. published by Arya Samaj Chowk Allahabad. Price Re. 1, cheap edition, As -/8/- only.

Upadhyaya's writings, as a rule, are thought provoking. His main object in writing books seems to be, to rouse his people out of their age-long slumber and to enable them to look around them things in their real perspective. The present volume "Superstition" supremely serves the purpose of the author. He writes :- "A close study of the life of different peoples will disclose numerous types of superstitions which are as tragic as any plague, persecution, war or disaster. We have only mentioned a few in this book, hoping that readers will realize the enormity of the harm and try to uproot it."

In our opinion the author has succeeded in drawing the attention of educated people towards the citadels of superstitions, by whatever names they are called. He has exposed their so-called scientific foundations and the fabrications that uphold cheating and duping that necessarily goes with established superstitions. We agree with the learned author when he says "Just as there are hospitals to fight disease, jails to fight crimes, just so there ought to be institutions to fight superstition.

*M. Sudhakar.*




## अखिल भारतवर्षीय आर्यकुमार परिषद् का २७वाँ वृहदधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय आर्य कुमार सम्मेलन का २७ वॉ अधिवेशन १ व २ नवम्बर को गढमुक्तेश्वर में डा० परमात्माशरण एम० ए० पी० एच० डी०, प्रोफेसर हिन्दू यूनिवर्सिटी बनारस के सभापतित्व मे बडे समारोह एव सफलता पूर्वक मनाया गया। सम्मेलन मे उत्तर भारत के प्रान्तों से अनेक प्रतिनिधि आये। आर्य समाज के प्रमुख प्रमुख नेता, जिनमें प० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार, प० गगाप्रसाद जी उपाध्याय, रा० ब० गगाप्रसाद जी, प० शिवदयालु जी मेरठ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, उपस्थित थे।

ता० १ नवम्बर को दोपहर को बडे पडाल मे सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ, जिसमें स्वागताध्यक्ष प० ज्ञानचन्द्र जी ( आपका भाषण इसी अङ्क मे अन्यत्र दिया जा रहा है ) एव डा० परमात्माशरण जी के भाषण हुए। डा० परमात्माशरण ने अपने सारगर्भित भाषण में धर्म की व्याख्या करते हुए बतलाया कि सच्चा धर्म तो जीवन के हर कार्य एव वस्तु के ठीक ठीक मूल्य को निर्णय करने मे ( right values ) है। अर्थात् हम अपने कर्त्तव्य और अधिकार समझ लें। हम यह समझ लें कि हम अपने दैनिक जीवन मे और जीवन के कार्य-क्षेत्रों मे कैसे बरतें अथवा हम क्या और किस प्रकार पढें और अपने ज्ञान का किस प्रकार प्रयोग करें। इन्हीं के अन्दर उचितानुचित का निर्णय करना जीवन का महान् प्रश्न है।

आपने आगे चल कर बतलाया कि देश की प्रत्येक धार्मिक सस्था ( जिसमें आर्य समाज भी शामिल है ) आज धर्म बाट रही है और मृत्यु व परलोक के गूढ प्रश्नों पर विवाद करते अथवा मूर्ति पूजा के खण्डन मण्डन में ही अपने कर्त्तव्य की इति श्री समझ रही है। वे धर्म और दैनिक जीवन में कोई सामञ्जस्य नहीं समझतीं। वर वधू के सामने न समझ मे आने वाले मन्त्रों को पढ देना, पुत्र व पुत्रियों के विवाह में बडी २ दावतें कर देना, एकादशी कथा अथवा सत्यार्थ प्रकाश की व्याख्या करना तो धर्म में शामिल समझा जाता है। पर इन्हीं नेताओं की यह

हिम्मत नहीं होती कि हिन्दू मन्दिरों और तीर्थ स्थानों में जो गन्दगी फैल रही है उसे दूर करें। ये नेता यह भी नहीं समझते कि उनके आधीन जो लोग काम करते है उनका शोषण न करना भी धर्म का एक अङ्ग है।

आर्य-समाज की शिक्षण संस्थाओं की आलोचना करते हुए आपने कहा कि आज डी० ए० वी० कालेज व स्कूलों से ६० प्रतिशत से अधिक विद्यार्थी ऐसे निकलते हैं जिन्हें आर्य समाज और महर्षि दयानन्द के नाम से सबसे ज्यादा चिढ होती है। इन संस्थाओं में उन्हें अच्छा नागरिक बनाने का कुछ भी प्रयत्न नहीं किया जाता। इसी लिये अब यह काम आर्य कुमार परिषद् को करना चाहिए। आपने इस सम्बन्ध मे कुछ क्रियात्मक सुझाव भी पेश किये।

पहली तारीख की रात को एव २ ता० को दोपहर को सम्मेलन का खुला अधिवेशन हुआ जिसमे विषय निर्वाचिनी मे स्वीकृत प्रस्ताव पेश किये गये। इन प्रस्तावों में देश के निम्न नेताओं एव कार्य कर्त्ताओं की मृत्यु पर शोक प्रगट किया किया —

पूज्य स्वामी सर्वदानन्द जी, स्वा० नित्यानन्द जी, स्वा० अच्युतानन्द जी, बाबा काली कमली वाले, म० गुरुदत्तामल जी, डा० ज्ञानचन्द देव, मसाराम जी, स्वा० धीरानन्द जी, डाक्टर रवीन्द्रनाथ टैगोर, पडित कृष्णकात मालवीय, पडित प्यारेलाल शर्मा।

आपने अन्य प्रस्तावों द्वारा सम्मेलन ने निश्चय किया कि —

१. युवकों को शिष्टाचार सिखाने के लिये एक गाली विरोधी व शिष्टाचार सप्ताह मनाया जाये।

२. गर्मियों की छुट्टियों में किसी पर्वतीय स्थान पर कैम्प चलाया जाये।

३. साक्षरता दिवस मनाया जाये जिसमें प्रत्येक कुमार से कम से कम ५ व्यक्तियों को साक्षर करने की प्रतिज्ञा ली जाय।

४. स्वाध्याय को प्रोत्साहन देने के लिये कुमारों की आयु के अनुसार उत्तमोत्तम पुस्तकों की एक सूची तैयार की जावे। इसके लिये प्रो० सुधाकर जी, डा० परमात्माशरण जी, श्री परमेश्वरदयाल जी ( सयोजक ) की एक उपसमिति बनाई गई।

५ शिष्टाचार सम्बन्धी नियम बनवा कर प्रकाशित किया जाये।

६ आहार-विज्ञान पर पैम्फलेट प्रकाशित किया जाये।

७. ऐसे छात्रावास खोले जाये जिनमें छात्रों का चरित्र निर्माण हो।

अन्य प्रस्तावों द्वारा आर्य कुमारों से अनुरोध किया गया कि वे संकल्प सहित यज्ञोपवीत का व्रत लें और अपनी दैनिक डायरी लिखा करें; तथा किसी न किसी व्यायामशाला के सदस्य अवश्य बनें।

सार्वदेशिक एवं अन्य आर्य प्रतिनिधि सभाओं से प्रार्थना की गई कि वे परिषद् की परीक्षाओं का अपने अधीनस्थ संस्थाओं में प्रचार करें।

देवली के नजर बन्दों की भूख हड़ताल के प्रति सरकारी रवैय्ये पर असन्तोष प्रगट करते हुए सरकार से प्रार्थना की गई कि वह उनकी मांगों को शीघ्र से शीघ्र पूरा करे।

महर्षि के आदेशों को दृष्टि मे रखते हुए सभी कुमारों से खादी व स्वदेशी का व्रत लेने के लिये अनुरोध किया गया।

## पिछले वर्ष का कार्य

श्री गुलाबराय जी ( उपमन्त्री ) ने पिछले वर्ष की रिपोट पेश की जिसमें आपने बतलाया कि पिछले वर्ष में सम्मेलन की ओर से सफलता पूर्वक दहेज-प्रथा विरोधी सप्ताह, तम्बाकू सप्ताह एवं दिवस बड़ी सफलता पूर्वक मनाये गये और बहुत से ट्रैक्ट छपवा कर बांटे गये।

परिषद् के परीक्षा मन्त्री श्री देवव्रत जी धर्मेन्दु के प्रयत्नों से परिषद् की परीक्षाओं का बहुत प्रचार हुआ और अनेकों विद्यार्थी इस वर्ष परीक्षा मे सम्मिलित हुए।

२ ता० को शाम को क्रिकेट के खेलों में जीतने वाले कुमारों को पारितोषिक दिया गया और पं० ओमूप्रकाश जी ने लाठी के अनेकों खेल दिखाये जिनका उपस्थित जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

# Hindu Philosophy and Modern Sciences

[ *By*—Rai Bahadur Ram Chandra M.A.P E.S. Retired ]

( *Continued from page 402* )

13. **Objection.** But here an objection is raised by some that all the galactic Universes being infinite cannot be an effect. We all know now that there are innumerable galaxies and that each galactic system of universes is infinite from our point of view though bounded by other systems; but it may reasonably be presumed that each galaxy as emanating from an unknown cause must itself be bounded or limited (finite) according to the theory of Relativity. It has already been explained that the word infinite is used in two senses, viz, absolute and relative. *The ultimate cause or causes alone are used in the absolute sense, while the effects are obviously relatively infinite.*

14. **Various theories.** There are other theories also regarding the number of ultimate causes, which may now be taken up Some people think that there are only two ultimate causes,.viz, (i) the non-intellegent principle which may be designated as matter, energy, electronic mass, group of wave lengths, substance, Existence ( Cosmic ) etc, and ( ii ) the intelligent principle called mind, conscious mind ( Cosmic ), Cansciousness, soul, etc. It may be noted, however, that there is unanimity as regards the number of the two fundamental principles, but there are divergent views regarding the nature of either of the two or of both.

There are others who consider that there is one and only one ultimate cause, unknown and unknowable, from which the whole Universe springs in parts or by instalments, as it were, at a time; in other words, some galactic universes becoming manifest, while others relapsing into their non-manifest condition, almost by turn, or in some kind of

order. Here, again, *there are divergent views regarding the nature of tnat Ultimate Cause.* Some of the modern materialists seem to think that it is non-intellgent matter which has given rise, by gradual evolution in accordance with certain laws inherent in the non-intelligent fundamental principle, to the whole Universe. It has not been found out, as yet how and when life and consciousness entered into the arena, but both these are nothing but states or attributes of that fundamental principle, matter, like its other innumerable attributes which vary widely in the various conditions in which matter is found.

Some people hold that the Ultimate cause cannot be purely non-intelligent, but it must be intelligent also. To be more exact they would not designate it as intelligent or non-intelligent; nay, they would look upon it as some entity, indescribable in correct formal language but containing within itself all sorts of things, intelligent and non-intelligent, material and immaterial, perceptible and imperceptible, conceivable and inconceivable, known and un-knowa, in short all things that have ever existed in tne eternal past, all these that exist in the present, and all those that will ever exist in the everlasting future.

**15. Summary.** All the various theories described so far on the subject of causation, may briefly be put under a few distinct heads. In this connection it must, however, be borne in mind that the chain of ( causation ) causes & effects consists of innumerable links of cause and effect; each link is preceded by another link and is also followed by another link; the links are infinite, and the chain itself seems to have neither a beginning nor an ending. This may mean that there seems to be no utimate cause, whether that be one, two, three, or even more, If, however, anybody may insist on having a beginning of the links, it may be said to resemble the mathematical wave-lengths of chance or of probability, and according to some of ignorance or of knowledge ( Ch. 1 ).

Of course these expressions are simply metaphorical terms, but they all have something at the bottom which may be designated as the ultimate couse or somehow connected with the ultimate principle, unknown so far and possibly unknowable with the present Instruments of acquiring knowledge, the mind and other sense organs. The following theories, however, have been but forth by certain scools of thought, and these are said to have satisfied, at least theoretically a large number of people in the past, and still satisfy many who adopt them and try, however partially, to mould their character and behaviour accordingly, in the practical transactions of their daily life. These may now be enumerated as advocating —

( 1 ) *One Ultimate Cause,*
( 2 ) *Two Ultimate Causes,*
( 3 ) *Three Ultimate Causes*

There are some who would classify all the nameable objects of the world under four, five and even more catagories, considering them to be ultimate causes, as it were, but these latter eventully may fall under one of the three main theories as mentioned above Again there are differences regarding the real nature of the ultimate Cause or Causes, which will be considered later when each theory is examined separately. Before doing so, it would be helpful to make and attempt to understand and visualise the meaning and signification of some of the important terms which are constantly employed in dealing with the various objects that form the subject of our study. A somewhat detailed consideration of these important terms, therefore, will form the topic of the next chapter.

# घी मिलावट विरोधिनी कान्फ्रेंस

## अध्यक्ष डा० गोडबोले का गवेषणापूर्ण भाषण

### भारतीय कारखानों की उपज भारतीयता की नाशक !

### दूध और घी का देश में सर्वत्र अभाव

संयुक्त प्रान्तीय घी-मिलावट-विरोधी कान्फ्रेंस के अवसर पर डाक्टर एन० एन॰ गोडबोले, एम० ए०, बी० एस-सी, पी-एच० डी० 'बर्लिन' प्रिन्सिपल, कालेज आफ टेकनौलोजी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने अध्यक्ष पद से जो भाषण दिया, उसका साराश निम्न है —

इस कान्फ्रेंस का उद्देश्य घी के पक्ष में और घी मिलावट के विरोध में उपाय और साधन ढूंढ निकालना और उनको कार्य-रूप मे लाना है।

घी में मिलावट कर देने का काम इतना बढ़ गया है कि वह देश के लिए एक खतरा बन गया है और इसमें सन्देह नहीं कि अब यदि उसके रोकने का पहले से उपाय न किया गया तो स्थिति वास्तव मे घोर निराशामय हो जायगी और देश का स्वास्थ्य जोकि वैसे ही शोचनीय है और भी खराब हो जायगा।

बनस्पति घी की उत्पत्ति बराबर बढ़ रही है और उसका सब से बड़ा प्रयोग घी मे मिलावट के रूप मे इस्तेमाल होना है। वास्तव मे बम्बई, कलकत्ता आदि केन्द्रों में घी बनाने के बाकायदा इसी तरह से कारखाने हैं जैसे कि स्पेन में केसर बनाने के हैं। हम आजकल नकली चीजों के युग मे रह रहे हैं, जिसे जर्मन भाषा में "Ersatz" कहते हैं। मैने देश-विदेशों में ऐसी नुमायशें देखी हैं, जिन में सिर्फ नकली चीजों ही का, जैसे रबड़, नकली रेशम, सरेस चर्बी, कपूर, नील, बना हुआ शीशा, फूलों की रूह इत्यादि का प्रदर्शन होता है। यह व्यवस्था उन देशों के लिये ठीक है, जहाँ यह चीजें प्राकृतिक रूप मे उत्पन्न नही होतीं और जिनके हस्तगत करने में उनको सोना देना पड़ता है। सौभाग्यवश हिन्दुस्तान मे सब प्रकार के प्राकृतिक पदार्थ हमको बहुतायत के साथ मिलते हैं। किन्तु "पश्चिमी सभ्यता" का प्रहार सबसे हमारे देश के ऊपर शुरू हुआ है तब से होड़

ने हमारे हाटों और बाजारों से असली प्राकृतिक पदार्थों को खदेड़ कर दूर कर दिया है। पश्चिम की इसी मुखेड़िया और स्वार्थ भरी सभ्यता की एक देन हमारी आज की कामर्स का 'नायक' अर्थात् "वनस्पति घी" है, जोकि अपने धोखे में डालने वाले नाम के कारण भारतीय सभ्यता की आत्मा का ही हनन किये दे रहा है, क्योंकि भारत का तो यह पुराना कथन है कि "आयुर्वैघृतम्"।

पश्चिमी देशों में, अमरीका चीन तथा जापान देशों में मक्खन सस्ता नहीं मिलता। इन देशों की ठण्डी आवहवा के कारण मक्खन वहां पर 'स्टोर' किया जा सकता है और वह रखा हुआ मक्खन बहुत दिनों तक प्रयोग में लाया जा सकता है। 'मक्खन रोटी' पाश्चात्य सभ्यता की प्रमुख दुहाई है। गरीब से गरीब आदमी को सुबह के समय उसकी चाय या काफी तथा मक्खन और रोटी और अगर हो सके तो कुछ थोड़ा सा मुरब्बा अवश्य मिल जाना चाहिए। चीन में महीनों तक आहार में दूध और मक्खन के दर्शन नहीं होते। जापान में दूध और घी का प्रचार भारतीयों ने शुरू किया था। जापान में कट्टर बौद्ध पक्के शाकाहारी हैं और दूध का प्रयोग नहीं करते। जापानी बौद्ध विद्वानों से मुझे मालूम हुआ कि जापानी दूध इस डर से नहीं पीते कि कहीं उनके सींग न निकल आवें। जापान में घी 'इन्दोनो आबुरा' 'भारत का तेल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस प्रकार मक्खन अथवा घी की कीमत अधिक होने के कारण तथा उसके आसानी से न मिलने के कारण उसकी जगह पर वहां की गरीब श्रेणी के आदमियों मे ऐसे नकली पदार्थों का प्रयोग होता है जैसे जानवरों की चर्बी इत्यादि। यही नहीं, यूरोप के भोजनालयों में अब भी साफ की हुई सुअर की चर्बी तथा और जानवरों की चर्बी आलू आदि खाद्य पदार्थों के भूनने में इस्तेमाल की जाती है। हिन्दुस्तानी शाकाहारी यात्रियों को जब मैंने यह बात बतलाई तो उनको बड़ा धक्का पहुँचा। जैतून आदि के तेल इतने कीमती होते हैं कि गरीब लोग उनका इस्तेमाल नहीं कर सकते। जैतून के तेल के स्थान में मूंगफली का प्रचार इसी वजह से हुआ। साफ किया हुआ गिरी का तेल भी प्रयोग में भिन्न भिन्न नामों से चल रहा है जैसे कि 'पामिन' 'पुटीरिन' इत्यादि यह सब तेल चाहे वनस्पति से निकले हों और चाहे चर्बी हों घी का काम कदापि नहीं दे सकते क्योंकि उनमें घी का वह गुण भी नही है जिससे कि वह रोटी में चुपड़ा जा सकता है।

( क्रमशः )

## सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा के महत्वपूर्ण निश्चय

### आर्य समाजों के उपनियम तथा समाजों की पृथक् रजिस्ट्री

सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा की अन्तरङ्ग सभा ने आर्यसमाज के उपनियमों में समाजों द्वारा परिवर्तन किये जाने और आर्य समाजों की प्रतिनिधि सभाओं से पृथक् अपनी रजिस्ट्री कराने के सम्बन्ध में निम्न निश्चय किये हैं जो आर्य समाजों की सूचना के लिये प्रकाशित किये जाते हैं।

### सार्वदेशिक सभा का निश्चय सं० ६ तिथि २६।६।४१ ई०

आर्य समाज के उपनियमों के संशोधन के सम्बन्ध में श्री प्रो० ताराचन्द जी का पत्र पढ़े जाने के पश्चात् आर्य समाज का उपनियम सं० ४८ पढ़ा गया जो इस प्रकार है—

यह उपनियम आवश्यकतानुसार सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा द्वारा ,यथोचित विज्ञापन देने पर शोधे वा घटाये बढ़ाये जा सकते हैं।

सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि घोषणा की जाये कि किसी भी आर्य समाज की उपनियमों को घटाने बढ़ाने अथवा उनमें संशोधन करने का अधिकार नहीं है। उपनियमानुसार यह अधिकार केवल सार्वदेशिक सभा का ही है।

### सार्वदेशिक सभा के निश्चय सं० १८ तिथि १२।१०।४१

नोटिस का विषय स० १५ प्रस्तुत हुआ आर्य प्रतिनिधि सभा सयुक्त प्रान्त का पत्र सं० ३०२१ तिथि ७।६।४१ का पढ़ा गया। आर्य समाजों की रजिस्ट्री प्रांतीय सभाओं से पृथक् होनी चाहिए वा नहीं इस विषय पर प्रान्तीय सभाओं की सम्मतियों भी पढ़ी गई। विचार के पश्चात् सर्व सम्मति से निश्चय हुआ कि घोषणा की जाये कि प्रान्तीय सभाओं से सम्बन्धित कोई समाज अपनी सम्पत्ति और संगठन की रजिस्ट्री पृथक् न कराये। यदि कोई समाज इसका उल्लंघन करें और उस समाज की प्रान्तीय सभा चाहे तो उपनियम सं० ४१ और ४६ के अनुसार उन समाजों के विरुद्ध कार्यवाही कर सकती है। यह भी निश्चय हुआ कि इस निश्चय की प्रतिलिपि प्रान्तीय सभाओं को भेजी जाये।

सुधाकर एम० ए०
मन्त्री
सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, देहली।
ता० १५।१०।४१

# सम्पादकीय

## भारतीय एकता

सदैव की नाईं इस वर्ष भी २०–१०–४१ को आर्य संसार में ऋषि निर्वाणोत्सव समारोह के साथ मनाया गया और आर्य तथा हिन्दू जनता ने प्रेममय श्रद्धाञ्जलियाँ प्रस्तुत करके ऋषि के प्रति अपने आदर और अनुराग का परिचय दिया। ऋषि का जीवन कितना उदात्त था और उन्होंने संसार और भारत पर क्या उपकार किया यह प्रायः सभी विज्ञजन जानते हैं। यदि एक शब्द में उनके जीवन की महत्ता वर्णन की जाय तो हम कहेंगे कि उनका जीवन यज्ञमय था और उन्होंने अपने जीवन से और अपनी शिक्षाओं से जन-साधारण की विचारधारा को बदला। सुधारकों और धर्माचार्यों के जीवन और उनके मिशन की सफलता का यही रहस्य है और यही महत्व है।

इस पर भी ऋषि को ठीक २ समझने के लिए हमें आर्य समाज और उनके उपदेशों का अध्ययन और मनन करने के अतिरिक्त उनके जीवन का अध्ययन करना आवश्यक है। तभी हम उस महान् आत्मा को समझ सकने में समर्थ होंगे।

आज 'अखण्ड भारत' का आन्दोलन छिड़ा हुआ है। आज भारत की मुक्ति में साम्प्रदायिक विद्वेष भयंकर बाधा बना खड़ा है। आज भारत की मुक्ति और कल्याण के लिये साम्प्रदायिक एकता की दुहाई दी जा रही है। यह आन्दोलन और यह दुहाई दोनों ही ठीक हैं। वह दिन कैसा शुभ होगा जब भारत के विभिन्न सम्प्रदाय एक मत होकर भारत के कल्याण के लिए सोचेंगे और प्रयत्न करेंगे। आज आर्य समाज और ऋषि को हमारे देशबन्धु हिन्दू मुसलमानों के पारस्परिक मनोमालिन्य का कारण बताते हैं। परन्तु दुख है कि वे इस बात को भूल जाते हैं कि साम्प्रदायिक एकता के लिये प्रयत्न करने वाला सबसे पहिला व्यक्ति कोई था तो वह ऋषि दयानन्द सरस्वती थे।

१८७७ में भारत में तत्कालीन गवर्नर जनरल और वायसराय लार्ड लिटन ने देहली में महान् कैसरी दरबार किया था। इस दरबार में महारानी विक्टोरिया

को भारत की राजराजेश्वरी की उपाधि दी गई थी। ऋषि दयानन्द ने इस अवसर पर सुधारकों में पारस्परिक एकता का सम्बन्ध स्थापित करने के लिये एक सभा बुलाई थी जिसमें उस समय के भारत वर्ष के विभिन्न समाजों के प्रसिद्ध २ सुधारकों को आमन्त्रित किया गया था और उसमें कई प्रसिद्ध सुधारकों ने भाग भी लिया था। इस मीटिंग में स्वामी जी ने प्रस्ताव रक्खा था कि यदि हम सब लोग एक मत हो जायें और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है देश शीघ्र सुधर सकता है। दुर्भाग्य से यह मीटिंग सफल न हो सकी परन्तु ऋषि दयानन्द के इरादे और प्रयत्न को हिन्दू मुस्लिम सभी नेताओं और पत्रों ने सराहा था। स्वामी जी का आग्रह था कि वेद को आधार मान कर सब सुधारक और नेता कार्य करें परन्तु कई नेताओं को यह मान्य न था। हो सकता है कि इस मीटिंग की असफलता का लोग यही कारण समझें और प्रगट करें। इस मीटिंग की असफलता का कारण कोई २ सज्जन यही बतलाते हुए यह भी कहते हैं कि स्वामी जी व्यावहारिकता में निपुण न थे। परन्तु यह आक्षेप निर्मूल है क्योंकि महान् आत्माएँ अपने सत्य सिद्धान्तों को व्यावहारिकता पर न्यौछावर नहीं करती।

हम पढ़ते हैं इसके पश्चात् सन् १८८० ई० में उन्होंने फिर साम्प्रदायिक एकता के लिये प्रयत्न किया और सेंट पीटर्स चर्च आगरा के बिशप महोदय से कहा कि यदि हम और आप तथा अन्य धर्मों के बुद्धिमान् नेता केवल उन बातों का प्रचार करें जिन्हें सब मानते हैं एकता स्थापित हो सकती है। इन बिशप महोदय ने भी अन्य सुधारकों की भांति स्वामी दयानन्द की यह बात स्वीकार न की और स्वामी जी का यह प्रयत्न भी जो अन्तिम था विफल गया।

आज उसी महान् आत्मा और उसके अनुयायियों पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि ये देश की एकता के लिए बाधक हैं। आर्यसमाज के इतिहास में ऐसी कोई घटना न मिलेगी जिसमें आर्यसमाज पर यह आक्षेप ठीक उतरता हो।

अमेरिका के सुप्रसिद्ध लेखक एमर्सन ने कहा है कि To be great is to be misunderstood महान् होना ही गलत समझा जाना है। ऐसे कथन सदैव ठीक नहीं होते। इस प्रकार के भ्रमों से देश और जाति का सदैव ही अहित हुआ है।

लोग उनके लिखने की और शास्त्रार्थ की शैली को कटु बताते हैं परन्तु साथ ही वे यह भी मानते हैं कि जिन परिस्थितियों में स्वामी जी ने प्रचार किया था उनमें शान्त से शान्त व्यक्ति भी कठोर हुए बिना नहीं रह सकता था। इसे हम ऋषि के प्रति न्याय समझते हैं।

परन्तु एक महापुरुष के वचन के आधार पर कि 'मेरे अनुयायियों से खबरदार रहो' हम पर यह आक्षेप किया जाता है कि हमने ऋषि के उग्र स्वभाव, आलोचना शक्ति, और निर्भीकता की नकल तो की परन्तु इस बाहिरी रुक्षता के पीछे जो प्रेम से छलकता हुआ कोमल हृदय उदारता और चरित्र बल था उसे हमने सदैव के लिए ऋषि की चिता में जल जाने दिया।'

प्रत्येक आर्य भाई और बहिन को इस आक्षेप पर ठंडे दिल से विचार करके आत्म निरीक्षण करना चाहिए और यदि वास्तव में इसमें सचाई है तो ऋषि की सचाई की स्प्रिट को समझ और उसका आदर करते हुए उस बुराई को दूर करके ऋषि के सच्चे अनुयायी प्रमाणित करना चाहिए।

आर्यसमाज पर भारतीय एकता की स्थापना की भी बहुत बड़ी जिम्मेवारी है जिसका ऋषि अपने जीवन मे स्वप्न लेते थे, प्रयत्न करते थे परन्तु उनका वह स्वप्न मूर्त रूप धारण न कर सका था। उस स्वप्न को मूर्त रूप धारण कराने में हमारा क्या कर्तव्य है और हम उसमे कहाँ तक सफल हो सकते हैं इस पर आर्य नेताओं को विचार करना चाहिए।

## हा! कथले जी

हमें यह लिखते हुए अत्यन्त दुख होता है कि कलम ( हैदराबाद ) परगने के आर्य समाज के उत्साही कार्य कर्ता श्रीयुत गणपतराव जी कथले अब इस संसार में नहीं हैं। उनका गत २३-१०-४१ को विशूचिका से देहान्त हो गया है।

श्री कथले जी कलम परगना में आर्य समाज के प्राण थे। वहां आर्य समाज की जो विमल ज्योति प्रकाशमान है उसको प्रज्वलित रखने में श्री स्व० कथले जी का ही सर्व श्रेष्ठ योग है। आर्य समाज के कार्य और प्रचार के लिए वे पागल से रहा करते थे और २४ घन्टे यदि उन्हें किसी चीज का ध्यान था तो वह 'आर्य समाज' था। अपने ऐसे अलभ्य सेवक के निधन से आर्य समाज अपने को जितना अकिंचन अनुभव करे उतना ही कम है।

स्वर्गीय कथले जी अपने पीछे, वृद्ध माता, धर्म पत्नी, और ३ अबोध बच्चे छोड़ गए हैं। उनके पालन पोषण और शिक्षा की आर्य जगत पर महान् जिम्मेदारी आ गई है। आर्य समाज को इस जिम्मेदारी को सुन्दरता से निभाना चाहिए।

## शुद्धि संस्कार

गत ११-१०-४१ को आर्य समाज ( सेन्ट्रल) आदिम्पा नाइक स्ट्रीट मद्रास नगर

में दो भारतीय ईसाई महिलाओं का शुद्धि संस्कार हुआ। उनमें से एक का नाम मिस नासे आरा समाज की पूराई सिंघम है और उसकी आयु २५ वर्ष की है वे एक प्रोटेस्टेंट सम्मानित ईसाई परिवार की देवी हैं। शुद्धि के पश्चात् उनका नाम सुशीला देवी रखा गया।

दूसरी मिस मर्सिया जैनेट २६ वर्ष आयु की है और उनका सम्बन्ध भी एक अत्यन्त, उच्च प्रोटेस्टैंट परिवार से है। वे कुडप्पा जिले की निवासिनी हैं। शुद्धि के उपरान्त उनका नाम हेमवती देवी रखा गया। प० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा संस्कार हुआ।

दूसरे दिन श्री सी० के० रेड्डी के साथ (जो हिन्दू धर्म मे दीक्षित हुए हैं) श्रीमती हेमवती देवी का पाणिग्रहण संस्कार हुआ। यह सस्कार भी श्री पण्डित धर्म देव जी द्वारा हुआ। इन संस्कारों में नगर के गण्य मान्य आर्य भाइयों तथा प्रसिद्ध व्यक्तियों ने भाग लिया। इसी प्रकार मद्रास की एक ईसाई मिस वाइफ श्रीमती मनोमानी का गत २० अक्तोबर को आर्य समाज में प्रवेश हुआ। शुद्धि के पश्चात् उसका नाम मनोमानी ही रखा गया। उसी दिन श्री एम० के० राममूर्ति नामक सम्भ्रान्त हिन्दू परिवार के एक नवयुवक के साथ उसका विवाह हुआ।

## विधवा विवाह

आर्य समाज मद्रास के विधवा विवाह विभाग की देख रेख मे गत ऋषि निर्वाणो-त्सव के पुनीत अवसर पर एक विधवा विवाह हुआ। विधवा का नाम श्रीमती बी राजलक्ष्मी है और आयु २६ वर्ष की है। देवी नेलोर जिला मे हिन्दू एडेड एलीमेन्टरी स्कूल में मैनेजर के रूप में कार्य करती हैं। वर महोदय जिनका नाम आर० राधाकृष्ण है और जिनकी आयु ३१ वर्ष की है, नेलोर जिले के गुडूरपेट में गवर्नमेंट सर्विस मे हैं। वर और वधू दोनों आन्ध्र प्रांत के ब्राह्मण हैं। पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति द्वारा वैदिक रीति से विवाह संस्कार हुआ।

## दार्जिलिंग में अपूर्व शुद्धि समारोह

आर्यसमाज दार्जिलिंग के मन्त्री श्री कृष्ण प्रधान जी सूचित करते हैं कि श्रीमान् बाम्बीर जी गुरु'ग प्रधान आर्यसमाज दार्जिलिंग एवं सदस्य यक्ष आदि महानुभावों के सुप्रयत्न एवं अथक परिश्रम से गत ६-१०-४१ ई० गुरुवार को रात्रि मे ६ बजे से आर्य-समाज भवन काकझोरा में श्रीमान् प्रभुनारायण जी प्रधान एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती रुग्मी देवी का शुद्धि संस्कार पं० श्रीकृष्ण शर्मा उपदेशक द्वारा सानन्द सम्पन्न हुआ। इस शुद्धि के लिये नेपाली समाज की प्रतिष्ठित संस्था गोर्खा दुःख निवारक सम्मेलन किरात सुधार समिति ने अपनी २ पूर्ण सम्मति प्रदान की थी। इसके पश्चात् समाज भवन में

[illegible] गैंगधाम के प्रस्ताव करने पर एवं सर्व सम्मति से समर्थन करने पर श्री [illegible] सुधारक सम्मेलन के मन्त्री एवं दार्जिलिंग म्युनिसपैलिटी के कमिश्नर श्रीमान् [illegible] जी [illegible] मा के सभापतित्व में सार्वजनिक सभा हुई। उस सभा मे श्री महादेव प्रसाद के भजन के बाद शुद्धि की आवश्यकता पर प० श्रीकृष्ण शर्मा, श्री हेतराम जी चौधरी, श्री सिंहवीर जी भूतपूर्व मन्त्री एवं श्रीयुत सभापति जी का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ। उक्त अवसर पर शहर के [illegible] व्यक्ति उपस्थित थे। सबों ने उक्त दोनों शुद्ध शुदा व्यक्तियों के हाथ से [illegible], चाय ग्रहण किया। इस शुद्धि का सारा श्रेय आर्यसमाज के प्रतिष्ठित श्रीमान् [illegible] वीर जी गुरु ग को है। क्योंकि इन्हीं के उत्साह दिलाने पर श्री [illegible] जी प्रधान [illegible] उनकी धर्मपत्नी श्रीमती इम्पी देवी का शुद्धि सस्कार हो सका है। श्रीयुत गुरु ग जी की सद् प्रेरणा से ही उनको वैदिकधर्म में दीक्षित किया गया। परमात्मा श्रीयुत गुरु ग जी के उत्साह को बराबर बढ़ाते रहे।

## अबीसीनिया मे दास प्रथा का अन्त

लण्डन का १८ सितम्बर का समाचार है कि अबीसीनिया मे दास प्रथा का अन्त कर दिया गया है और अबीसीनिया की सरकार ने इस आशय का एक वक्तव्य भी प्रकाशित कर दिया है।

सम्राट् की बहुत दिनों से अपनी प्रजा को दासता के पाश से मुक्त करने की इच्छा थी, और उन्होंने कुछ वर्ष हुए इस दिशा में पग भी उठाया था परन्तु इटली की विजय के कारण यह प्रथा नष्ट न की जा सकी थी। अब उन्होंने पुन सिंहासनारूढ होने पर यह सुधार कर दिया है। मुक्ति का कार्य धीरे २ होगा जिससे समाज व्यवस्था में कोई गड़बड़ उत्पन्न न हो। नए कानून के अनुसार गुलाम की इच्छा से मालिक उसे गुलाम रख सकता है परन्तु प्रत्येक गुलाम कानूनी प्रतिबन्ध के बिना अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा में स्वतन्त्र होगा और उसका मालिक ऐसा करने से उसे रोक न सकेगा और न दुबारा पकड़वा सकेगा।

इस सुधार पर सम्राट् और उसकी प्रजा दोनों ही बधाई के पात्र हैं।

## रोम के पोप और युद्ध

अभी कुछ दिन हुए अमेरिकन प्रेजीडेण्ट मि० रूजवेल्ट ने रोम के पोप से प्रार्थना की थी कि वे नाजी विरोधी युद्ध को न्याय संगत उद्घोषित करें। परन्तु न्यूयार्क टाइम्स के रोम के संवाददाता के अनुसार सैद्धान्तिक आधार पर ऐसा करने में अपनी असमर्थता प्रगट की है।

---


श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला मसाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिण्टिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली मे मुद्रित ।




( वार्षिक मूल्य

४१ इ
८६८ स०

सम्पादक—

श्री रघुनाथप्रसाद जी पाठक

विदेश ५ शि

# विषय-सूची


| स० | लेख | लेखक | पृष्ठ |
| --- | --- | --- | --- |
| १. | वेद की शिक्षाएँ | | ४५६ |
| २. | अध्यात्म सुधा | | ४६० |
| ३ | सूर्योदय | श्री बा० पूर्णचन्द जी बी० ए० एल० एल० बी० एडवोकेट आगरा | ४६३ |
| ४. | ग्राम प्रचार | श्री ला० ज्ञानचन्द जी बी० ए० एल० एल०बी० उपमं० सा० द० सभा देहली | ४६८ |
| ५ | कन्याओं का यज्ञोपवीत | लेखिका—श्रीमतीदेवी | ४७० |
| ६. | आर्यसमाज का विनगारया | श्री स्वतन्त्र नन्द और लक्ष्मूराम नैयर | ४७४ |
| ७ | मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियाँ और उनका खण्डन | श्री ला० सत्यप्रकाश जी डी एस सी लेक्चरार प्रयाग विश्वविद्यालय | ४७ |
| ८ | यम और नियम | प्रिंसिपल दीवानचन्द जी एम० ए० | ४८० |
| ९ | सुमन-सञ्चय | श्री रघुनाथ प्रसाद पाठक | ४८३ |
| १० | साहित्य समालोचना | धर्मदेव विद्यावाचस्पति | ४८५ |
| ११ | आर्य डाइरेक्टरी के सम्बन्ध में कतिपय पत्रों की सम्मतियां | —विनोद | ४८६ |
| १२ | काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का भाषण | | ४८७ |
| १३ | आर्य कुमार जगत् | | ४९६ |
| १४ | सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली के लिये धन और जन की आवश्यकता | श्री दीवानचन्द जी बा० ए० एल० एल० बी० वकील आनरेरी उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा | ४९८ |
| १५. | आर्य ध्वज का रंग | प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा | ४९९ |
| १६. | सम्पादकीय | | ५०० |

॥ ओ३म् ॥

# सार्वदेशिक

* सार्वदेशिक-आर्य-प्रतिनिधि सभा देहली का मासिक मुख-पत्र *

वर्ष १६ | मार्गशीर्ष १९९८ | अङ्क

दिसम्बर १९४१ ई० ] [ दयानन्दाब्द ११७

## * वेद की शिक्षाएँ *

स्वस्ति मात्र उत पित्रे नो अस्तु । अ० १।३१।४

हमारे माता और पिता सुखी हों।

May our parents be pleased and happy !

* * *

दूष्या दूषिरसि । अ० २।११।१

हे मनुष्य ! तू दुष्टता का नाशक है।

Be thou destroyer of all evils, O Man !

# अध्यात्म-सुधा

( १ )

## मनुष्यत्व

मनुष्य बनने के लिए हमें ३ बातों के आचरण की वेदादि सत् शास्त्रों मे शिक्षा दी गई है। वे इस प्रकार है —

( १ ) प्रकाश का अनुसरण करना अर्थात् सदा ज्ञान प्राप्ति मे लगे रहना।

( २ ) प्रकाश मय मार्गों की रक्षा करना और उन मे अपना भाग डालना। अर्थात् अपने पुरुषाओं के पुरुषार्थ से फैले हुए विद्या प्रकाश की रक्षा करना और उस विद्या भंडार मे अपना भी भाग डालना।

( ३ ) उलझन रहित कर्म करना।

— इन तीन उपायों के अनुष्ठान से निस्सन्देह मनुष्यत्व प्राप्त होता है। मनुष्य बन कर ही हमें सन्तुष्ट न रहना चाहिए वरन् अपने पश्चात् योग्य उत्तराधिकारी भी छोड़ जाना चाहिए। ज्ञान रहित ज्ञान विरोधी, पेचीदा बाते और उलझन पैदा करने वाले कर्म करने वाला मनुष्य मनुष्य पद का अधिकारी नहीं।

( २ )

## प्रकृति का जाल

क्या गिला रकीब का क्या ताने अकरबा।
जब तेराही जी न चाहे तो बातें हजार हैं॥

परमात्मा को मिलने का रास्ता सब आदमी जानते हैं परन्तु वह कठिन है। इस लिए लाखों में से कोई एक शेर मैदान में आता है जो इंद्रियों को जीत लेता है। अपने दिल से गन्दे ख्याल निकाल देता है। संकल्प विकल्प को जड़ से काट देता है मन को शांत रखता है।

परंतु मन मे यह एक गुण है कि वह कभी खाली नहीं बैठता। जब बाहर के ध्यान छोड़ देता है तो अंदर ही अंदर अपने आप काम करने लगता है और आत्मानंद में मस्त हो जाता है।

जब तक मन संसारी धुंध में लगा रहे, तब तक उसको कभी परमात्मा का दर्शन नहीं होता। जैसे एक ही मियान में दो तलवारें नहीं समा सकतीं।

जब तक मन संसारी बना रहेगा वह शांत नहीं हो सकता और शांति बिना मन स्थिर के किए प्राप्त नहीं होती। मन के एकाग्र हुए बिना समाधि नहीं लगती और बिना समाधि के परमात्मा के दर्शन नहीं होते।

परमात्मा को मिलने के लिए कोई वस्तु बाहर से लानी नहीं पड़ती। बाहर की चीजों को और उनके ध्यान को छोड़ना पड़ता है। कोई पैसा खर्च नहीं होता। कोई चीज मोल नहीं लेनी पड़ती। केवल एकाग्र ध्यान से ईश्वर मिल जाता है। कितना आसान काम है।

लेकिन साथ ही साथ यह कार्य कठिन भी है। एक ही कार्य आसान और कठिन ऐसा क्यों ?

इस का कारण यह है कि चारों ओर प्रकृति का जाल बिछा हुआ है। इस जाल को कोई कैसे तोड़े ? शरीर प्रकृति से बना हुआ है। इसका स्वभाव है प्रकृति की ओर खींचे जाना। जैसा चुंबक लोहे को खींचता है उसी तरह प्रकृति शरीर को अपनी ओर आकर्षण कर लेती है। जिसके मन का अधिकार शरीर और उसके अङ्गों पर नहीं चलता उसके लिए ईश्वरोपासना एक कठिन काम है। मन यदि ईश्वर को मिलना चाहे तो भी बलवान शरीर कमजोर मन को प्रकृति के जाल में फसाता है। इस कारण मन प्रकृति की तरफ झुक जाता है। कितना रोको, रुकता ही नहीं। कोई २ शूर वीर इस को रोक लेते हैं। अगर वह प्रकृति के जाल में फसा है तो भी उसको वहां से छुड़ाकर ईश्वर की उपासना में लगाते हैं। ऐसे शूर पुरुष की लोग पूजा करते हैं। वही योगी, महात्मा कहलाता है। दुनिया का त्याग करते ही उसको सच्चा आनन्द और सुख मिलने लगता है। किसी योगी ने कहा है :—

भागती फिरती थी दुनिया जब तलब करते थे हम।  
जब से नफरत होगई वह बेकरार आने को है॥

एक न एक दिन इस संसार को ही छोड़ना होगा, तो मोटर, बंगले, बाग-बगीचे, धन, पत्नी, पुत्र छोड़ते समय कितना कष्ट होगा ? परन्तु जिसने जीते जी संसार से और संसार की यह सारी मोहमयी चीजों से मोह तोड़ दिया उसको मरने का कष्ट नहीं। आनन्द होता है।

शेक्सपीयर नामक इंग्लैंड का बड़ा भारी कवि हुआ। सारा यूरोप उसकी कविता का बड़ा मान करता है। लेकिन यह महा पुरुष भी प्रकृति के जाल में पूरा फँसा हुआ जान पड़ता है। वह कहता है "To die would be an awfully big

adventure अर्थात् मरना, एक बड़ा भारी कष्ट होगा। यह लोग मौत से इतना क्यों डरते हैं ? इस कारण कि उन्होंने जीने का अर्थ ही नहीं समझा। उन्होंने अपने जीवन का एक ही सार समझा है —

Eat, drink and be merry.

खाओ, पिओ और मौज करो। जो होगा, देखा जाएगा।

ईश्वर को मिलने के ३ रास्ते प्लेटो लाईसिस ने बताए हैं,

तीन प्रकार की शांति

( १ ) कम बोलना

( २ ) किसी बुरे विचार को दिल में न आने देना।

( ३ ) किसी बुरे सकल्प को मन मे न आने देना।

अगर यह तीन बातें पूरी कर दोगे तो परमात्मा के दर्शन हो जाएगे।

प्रकृति पर विजय पाना कठिन जरूर है परन्तु हिम्मत करो। जरूर जीत जाओगे। सभ्य पुरुष जिस काम को एक बार मुह से कहते हैं उसे अवश्य पूरा कर देते हैं।

राजस्थान में एक राजपूत और उसकी धर्मपत्नी कहीं जारहे थे। रास्ते में उस राजपूत की अफीम की थैली गिर गई। कुछ देर के पीछे राजपूत को यह पता चल गया। उसने अपनी धर्मपत्नी से कहा कि कहीं से अफीम ला। नहीं तो मैं मरता हू। वह साध्वी गाव मे गई और सबसे अफीम के लिये पूछने लगी। एक राजपूत ने कहा मेरे पास है परन्तु उसने एक अनुचित शर्त पेश की।

वह सुन कर चुप हो गई। लेकिन जब उसने सोचा कि पति मर जाएगा तो उसने उस राजपूत की शर्त मजूर की।

उस पर राजपूत ने कहा कि हम क्षत्रिय हैं, चोरी नहीं करते। अपने पति से पूछ कर आओ। वह जो आज्ञा दें तो अफीम मिलेगी।

वह देवी अपने पति के पास गई और सारा हाल कहा। पति ने कहा जैसे मिले वैसे लाओ।

वह देवी गाव में गई और राजपूत से कहा पति ने आज्ञा दे दी। यह सुनते ही राजपूत ने अफीम की थैली दूर से ही फेंक दी और कहा "यह थैली ले जा। मैं प्रतिज्ञा करता हू कि मैं आजसे अफीम नहीं खाऊगा।

थैली उठाकर वह देवी अपने पति के पास गई और सारा हाल कहा कि

# सूर्योदय

( ले०—श्री बा० पूर्णचन्द्र बी बी० ए०, एल एल० बी० एडवोकेट आगरा )

अहमिद्धि पितुः परि मेधामृतस्य जग्रभ ।

अहं सूर्य इवाजनि ॥ ऋ० सा० अ०

ऋ० ८, ६ १० साम० पू० २, २, ६, ८ ॥ अथर्व २०, ११५, ॥

मैंने तो निश्चय से पालक पिता सत्यस्वरूप परमेश्वर की धारणावती बुद्धि को सब तरफ से ग्रहण कर लिया । अत मैं सूय के समान हो गया हूँ । ससार में हम यह दृश्य नित्य प्रति देखते हैं कि सूर्य के उदय होते ही सारे विश्व में उजाले और प्रकाश का विस्तार हो जाता है । इसी सूर्य के प्रकाश से अन्धकार दूर होता इसी के ताप और प्रकाश से वनस्पति और औषधियों मे फल फूल उत्पन्न होते हैं और इसी सूर्य की किरणों से सागर से जल खिच कर मेघ रूप बन कर वर्षा के रूप में प्यासों की तृष्णा को मिटाता है और ससार की सब मन कामनाओं को पूरा करता है ।

सूर्य के अस्त होते ही अन्धकार फैलना आरम्भ होता है और हर एक को अन्धकार दूर करने के लिये प्रकाश के साधनों की धुन लग जाती है । आकाश मे चन्द्रमा और तारागण चमकने लगते हैं । पृथ्वी पर लैम्प, दीपक जलाये जाते हैं और बिजली, गैस इत्यादि का प्रयोग किया जाता है ।

ऐसे सब प्रकाश के साधनों का वाह्यरूप भिन्न भिन्न प्रकार का होता है, परन्तु इन सब रूपों मे जितना प्रकाश का असली अ श है उसका आधारभूत बल ही सूर्य है ।

---

ठाकुर ने दूर से ही थैली फेंक दी । मुझे छुआ तक नहीं और उसने अफीम न खाने की प्रतिज्ञा की है ।

यह राजपूत ने भी अफीम की थैली फेंक दी और प्रतिज्ञा की कि मैं भी आज से अफीम नहीं खाऊंगा ।

जो वीर पुरुष होते हैं वह एक बात सुनते ही रास्ते पर आजाते हैं । परन्तु मूर्ख को सारी आयु ज्ञान सिखाओ वह सीखता ही नहीं ।

## ऋषि का आगमन

जिस समय महर्षि दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ, उससे पांच हजार वर्ष से अधिक से पूर्व अर्थात् महाभारत के युद्ध से पूर्व वैदिकधर्म्म रूपी सूर्य अस्त हो गया था या अस्त होना आरम्भ हुआ था। उस सूर्य के अस्त होते ही अज्ञान रूपी अन्धकार फैलने लगा। सब से पहले विचार भ्रष्ट हुए, विचारों के पश्चात् आचार का नम्बर आया और फिर परस्पर का व्यवहार भी दूषित हो गया। पवित्र वैदिक-धर्म के स्थान में वाम-मार्ग प्रचलित होने लगा। उनका सिद्धान्त नास्तिकता पर आश्रित था और उनके मत का क्रियात्मक रूप अति भोग विलास था।

इस वाममार्ग के प्रचारकों और संचालकों ने केवल आचार और व्यवहार को ही भ्रष्ट नहीं किया, प्रत्युत वैदिक साहित्य की शुद्धता पर भी आक्रमण किया। वेदों के भाष्य ऐसे प्रचलित किये जैसे सायण और महीधर के भाष्य कि जिनसे सीधे या परोक्षरूप से वाममार्ग की शिक्षा की पुष्टि हो सके। मिथ्या विचारों के विस्तार और प्रचार के लिये नवीन पुस्तकें रची गईं और भ्रम उत्पन्न करने के लिये उनका नाम पुराण रखा गया। जब वाम-मार्ग से जनता तग आ गई और त्राहि-त्राहि करने लगी ऐसे समय में अनेक सुधारकों और प्रचारकों का जन्म हुआ। उन्होंने वैदिक सूर्य को पुन उदय कराने के स्थान में सम्यक् प्रकाश किया और उनके प्रयत्न से किसी अश मे और कुछ समय के लिये अंधकार दूर हुआ।

महात्मा गौतम बुद्ध ने त्याग और सदाचार की शिक्षा देकर वाम-मार्ग का बहुत बल पूर्वक प्रतिकार किया। महात्मा गौतम बुद्ध की शिक्षा वेदों पर आश्रित न थी, इसलिये समय बीतने पर नास्तिकता और कृत्रिम त्याग फैलने लगा। इनके भी प्रतिकार की आवश्यकता हुई। शकराचार्य ने बौद्ध और जैन धर्म्म का बड़े बल से विरोध किया और वेदों के पुनरुद्धार के लिये बड़ा प्रयत्न किया। परन्तु शुद्ध स्वरूप में प्राचीन वैदिक धर्म्म के सिद्धान्तों को पुन: प्रचलित करने में वह भी सफल न हुये। बौद्धधर्म की मूर्तियों के मुकाबले पर हिन्दू-धर्म्म में अनेक मूर्तियां प्रचलित कराईं और उनके आदर और सत्कार का भाव हिन्दुओं के हृदय मे उत्पन्न किया। इसी का परिणाम आज हिन्दू जाति में जड़ पदार्थों या मूर्ति की पूजा की प्रथा है।

भारतवर्ष से बाहर, परन्तु एशिया द्वीप के अन्तर्गत इसी वाममार्ग के प्रतिकार के स्वरूप ईसाई और मुसलमानों का मत प्रचलित हुआ। इन सब ने अपने

अपने स्थान और समय मे उजाला अवश्य उत्पन्न किया, परन्तु वैदिक सूर्य के दर्शन का प्रश्न अधिक कठिन होता गया। जिस काल में ऋषि दयानन्द को कार्य आरम्भ करना था उस समय एक वैदिकधर्म्म के स्थान में अनेक मत प्रचलित थे। अनेक प्रकार के नास्तिक थे और आस्तिकों की दशा नास्तिकों से भी बदतर थी। न वह ईश्वर के स्वरूप को समझते थे और न ईश्वरीय ज्ञान के सम्बन्ध में उनकी धारणा ठीक थी और ईश्वर की पूजा की विधि तो लज्जाजनक थी। विचार भ्रम-मूलक थे, धार्मिक मर्यादा मिट रही थी। वर्ण और आश्रम की प्रथा बिगड़ गई थी।

## ऋषि का उद्देश्य

ऐसी भयकर अवस्था मे ऋषि का उद्देश्य शुद्ध रूप से वैदिक सभ्यता और धर्म्म को पुन प्रचलित करना था। उस समय वेदों की शुद्ध लिपि भी न मिलती थी। वेदों के पठन-पाठन की विधि बिल्कुल बन्द हो गई थी। ऋषि दयानन्द ने वेदों का भाष्य करने की शैली बताई। वेदों के पठन-पाठन को आर्यों का नित्य और परम कर्तव्य निर्धारित किया और केवल वेदों को ही स्वत प्रमाण माना और मानने की शिक्षा दी उनका उद्देश्य थोडे से शब्दों मे "Back to the Vedas" अर्थात् वेदों की ओर जनता का ध्यान आकर्षित करना और वैदिक सभ्यता को पुन प्रचलित करना कहा जा सकता है।

## आर्यसमाज मत या सम्प्रदाय नहीं

किसी ने ऋषि दयानन्द से प्रश्न किया कि भारतवर्ष में ९९९ मत पहिले ही प्रचलित हैं। आप एक नवीन मत की स्थापना क्यों कर रहे हैं। ऋषि ने उत्तर दिया कि मैं जिस धर्म्म का प्रचार करता हूं वह एक ऐसा है जो ९९९ मे जुड कर एक हजार बना देगा। केवल एक शेष रहेगा बाकी सब शून्य होकर उन सब का इसी एक में समावेश हो जावेगा।

## बिजली—घर

स्वामी दयानन्द ने हमारे सामने प्राचीन वैदिकधर्म को एक विशाल बिजली घर या Power House के रूप में रखा। Power distributing वह Power House वेद हैं। Power House से या प्रकाश के केन्द्र से प्रकाश प्राप्त करने के लिये tributing wires अर्थात् प्रकाश डालने वाले तारों की आवश्यकता होती है और उससे वास्तविक लाभ उठाने के लिये Individual fitting की

आवश्यकता होती है इसलिये स्वामी दयानन्द ने न केवल वेदों का प्रचार किया, प्रत्युत उनके पठन-पाठन की प्रथा चलाई और व्यक्तिगत तैयारी के लिये, मनुष्य-निर्माण और समाज-निर्माण की तैयारी की।

## मनुष्य-निर्माण

मनुष्य को मनुष्य बनाने के लिये शिक्षा और संस्कारों की आवश्यकता है और इसीलिये स्वामी दयानन्द ने शिक्षा के कार्य पर सब से अधिक बल दिया। ऋषि की शिक्षा-पद्धति सर्वांग सम्पन्न थी। नि:शुल्क शिक्षा, अनिवार्य शिक्षा, और मातृ-भाषा के द्वारा शिक्षा उसके आवश्यक अंग हैं। उनकी शिक्षा शारीरिक, मानसिक और सामाजिक तीनों प्रकार की उन्नति के लिये थी। शारीरिक उन्नति के लिये ब्रह्मचर्य पर उन्होंने बल दिया। मानसिक उन्नति के लिये तर्क को धर्म्म का आवश्यक अंग बनाया।

## समाज-निर्माण

सामाजिक उन्नति के लिये विशेष प्रकार से समाज-निर्माण की व्यवस्था की। जन्म-सूचक जातियों का घोर विरोध किया और उनके स्थान मे वर्ण-व्यवस्था प्रचलित की। आश्रमों की मर्य्यादाओं को पुनर्जीवित किया।

## विवाह और व्यवसाय

गृहस्थ को सुखी बनाने के लिये बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु-विवाह को मिटाने का प्रयत्न किया और स्वयंवर-विवाह की प्रथा चलाई। व्यवसाय के प्रश्न को वंश-परम्परा, जातीय भेद और रूढ़िवाद के झंझटों से पृथक करके रुचि और योग्यता के अनुसार व्यवसाय करने की व्यवस्था चलाई। समुद्र यात्रा के लिए उत्साहित किया और कृत्रिम छुआछूत के भूत से पीछा छुड़ाया

## सार्वजनिक प्रेम

ऋषि का लक्ष्य संसार का उपकार करना था। उनका उपकार किसी देश विशेष या जाति विशेष पर सीमित न था। अनाथ-रक्षा, विधवाओं की सहायता, मातृ-भाषा की उन्नति सब इस के अन्तर्गत थे।

## तर्क और श्रद्धा

अन्ध-श्रद्धा से धर्म्म तर्क से विहीन होकर रूढ़िवाद में परिवर्तित हो जाता है और अश्रद्धा से उदासीनता उत्पन्न होती है। ऋषि दयानन्द की स्कीम में तर्क और श्रद्धा का सुन्दर समावेश था। वह धार्मिक जगत में सच्ची श्रद्धा उत्पन्न कराना चाहते थे और तर्क की कसौटी पर उसकी पड़ताल चाहते थे।

### प्रकाश-स्तम्भ

जिस प्रकार समुद्र मे जहाजों को चट्टानों से टकराने से बचाने के लिये प्रकाश-स्तम्भ बनाये जाते हैं उसी प्रकार ऋषि दयानन्द ने सत्य धर्म की नौका को मिथ्या विश्वास, अश्रद्धा, उदासीनता और रूढिवाद के चट्टानों से टकराने से बचाने के लिये आर्यसमाज की स्थापना की।

### वास्तविक प्रेम

ऋषि दयानन्द सच्चे हितकारी और प्रेम करने वाले थे। उनका खडन, मडन के लिये था। वह धार्मिक जगत के शरीर में से दूषित मवाद को निकाल कर उसको स्वस्थ और नीरोग बनाना चाहते थे।

### चौकीदार

पहरा देने वाले या चौकीदार से सोने वाले और चोर दोनों अप्रसन्न रहते हैं। सोंने वालों की नींद मे खलल आता है, और चोरों को चोरी का अवसर नहीं मिलता है। जब पॉच हजार वर्ष से सोये हुओं को ऋषि दयानन्द ने अपने सिंहनाद से जगाना चाहा तो जिनके विश्वासों और विचारों को ठेस पहुँची वह रुष्ट हुए और दूसरी ओर पोप, पुजारी, पडे, पादरी, मुल्ला और मौलवियों के स्वार्थ को धक्का लगा तो वह ऋषि का विरोध करने लगे। परन्तु ऋषि दयानन्द वास्तव मे सब के शुभचिन्तक थे और सब को सावधान करना चाहते थे।

### सिंहासन

आजकल नामधारी देवताओं को सिंहासन मे बिठाने की प्रथा है, परन्तु असली सिंहासन ऋषि दयानन्द जैसे वीरों का था जो सिंह के समान निर्भय होकर मनुष्य जाति को वर्तमान भय के कारणों से मुक्त कराना चाहते थे और भविष्य के लिये सचेत करना चाहते थे।

### हिमालय पर्वत

ऋषि दयानन्द का जीवन उस हिमालय की चोटी के समान है, जिस को आप चाहे जिस दिशा से देखें, उच्च और आकर्षक ही दृष्टिगोचर होता है। इस छोटे से निबन्ध मे ऋषि- जीवन की कुछ झलक और वैदिक सूर्य्य की कुछ चमक को आप के सामने रखने का प्रयत्न किया है।

### ऋषि बलिदान

स्वामी दयानन्द ने आर्य्यजाति के उत्थान के लिये पूरे तप और त्याग का

# ग्राम-प्रचार

(ले०—श्री ला० दीवानचन्द जी बी० ए० एल एल० बी० उपमन्त्री सार्वदेशिक सभा देहली)

आर्यसमाज को जनता का धर्म बनाना चाहिये। आर्यसमाज के इतिहास से ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यसमाज के नेता अपनी सम्पत्ति और मानसिक शक्ति को केवल मात्र बड़े बडे शहरों में लगा रहे हैं। अतः हमारे सब स्कूल, कालेज, अनाथालय यहां तक कि विद्यालय और गुरुकुल भी कई जगह शहरों के निकट खोले गए। हमारे प्रेस, औषधालय और प्रचारक मण्डलों के केन्द्र भी सब के सब शहरों में हैं। इस भांति आर्यसमाज के आन्दोलन की सारी शक्तियों को केवल शहरों में केन्द्रित करने से आपके सामने निम्न लिखित परिणाम आ चुके हैं:—

(१) आर्यसमाज के बहुधा नेताओं का जन्म और शिक्षा इत्यादि कस्बों और शहरों में हुई। आर्यसमाज के छोटे मोटे कार्यकर्त्ता भी शहरों के वायु मंडल में शिक्षित हुए। शहर के लोग प्रायः कमजोर, विलासी और बेहोसला हुआ करते हैं।

---

परिचय दिया और अन्त में अपने प्राणों की आहुति भी दी। स्वामी दयानन्द ने आर्य्य-समाजरूपी एक महान यज्ञ की रचना की।

हम अन्त में ऋषि-उत्सव के उपलक्ष मे यह श्रद्धाञ्जलि और भेंट आर्य्य जनता के सम्मुख रख कर नम्र निवेदन करना चाहते हैं कि आप ऋषि दयानन्द के चरित्र को मनन करें तथा समझें और आर्य्यसमाज के जगतोत्थान सम्बन्धी कार्य में तन, मन, धन से सहायता करें।

शुभकामना।

जो न हटा मुख फेर बढ़ा जीवन-भर आगे।
जिसका साहस हेर, विघ्न, भय, संकट भागे॥
सबल सत्य की हार, अनृत की जीत न होगी।
ऐसे प्रबल विचार, सहित विचारा जो योगी॥
उस दयानन्द ऋषिराज का, प्रकृत पाठ जनता पढ़े।
प्रभु शङ्कर आर्य्यसमाज का, वैदिक बल गौरव बढ़े॥

उनमें उच्चकोटि का तप, त्याग और वीरता कम मिलती है, इसलिए हमारे आन्दोलन में वह वीरता, निर्भयता व नियम बद्धता (Discipline) नहीं है जो थोड़े समय में परतन्त्र लोगों को स्वतन्त्र करके संसार में उच्च शिखर पर पहुँचा देती है।

( २ ) आर्यसमाज की नींव स्वामी जी ने वर्णाश्रम मर्यादा पर रखी थी। जात पात के बन्धनों में जकड़े हुए आर्य लोग बिरादरी के डर से वर्णाश्रम मर्यादा पर चलने से कतराते रहे। जिसका परिणाम यह है कि आर्यसमाज के सदस्यों की संख्या ४० लाख से भी अधिक है तो भी जाट और बनिया, जमींदार और गैर जमींदार, छूत और अछूत के भेदभावों ने इस समाज को बहुत कमजोर कर दिया है।

( ३ ) अंग्रेजी में यह कहावत है कि "Nation lives in the huts" अर्थात् "जाति जंगल की झोंपड़ी में रहती है।" परन्तु आर्यसमाज के आन्दोलन से ग्रामीण लोग बहुत दूर हैं। अतः ग्रामों और जंगल के लोगों में जब तक हमारा आन्दोलन जड़ न पकड़ ले, इस समाज की सत्ता डॉवाडोल सी रहेगी।

इस समय संसार में युद्ध की ज्वाला प्रत्येक स्थान पर उत्तेजित हो रही है। हम उससे बच नहीं सकते। स्वामी जी ने आर्यसमाज को आर्य जाति की रक्षा का भार सौंपा था, परन्तु वह उचित मार्ग पर जाने में असमर्थ सा है। अतः इस समाज को संगठित और नियमबद्ध बनाने के निम्न लिखित विचार रखते हैं:—

आगामी के लिए आर्यसमाज के प्रचार के केन्द्र शहरों के स्थान में ग्रामों में खोले जायं। वहाँ बहुत विद्वान् या बड़ी दक्षिणा वाले उपदेशकों की आवश्यकता नहीं, बल्कि राजपूत जाट आदि लोगों में से श्रद्धालु और सुरीले भजनोपदेशकों को तैयार करके उनके द्वारा बहुत थोड़े व्यय पर ऋषि के अमृत सन्देश को फैलाने का प्रबन्ध करें।

( २ ) आर्यसमाज ने प्रेस के गौरव को नहीं समझा। इस समय में तो जंगी और तिजारती विजय और उन्नति का सब से बड़ा कारण प्रेस को मानते हैं। इसलिये आगामी में आर्यसमाज अपने प्रत्येक बड़ी सभा और संस्था के साथ वैदिक धर्म को सर्वप्रिय बनाने के लिए दैनिक पत्र, मासिक पत्र, पुस्तक और ट्रैक्ट माला सस्ते दामों पर छापने का प्रबन्ध करें।

( ३ ) यदि हम वर्णाश्रम मर्यादा को अपने जीवन में क्रियान्वित करते तो अब तक आर्यसमाज में बड़े २ विद्वान् और वानप्रस्थी तथा संन्यासी संसार के कोने कोने में ऋषिवर कर सन्देश को ले जाते। आगामी आर्यसमाजों के वार्षिको

## कन्याओं का यज्ञोपवीत

( लेखिका—श्रीमतीदेवी )

❀

पौराणिक संसार में स्त्रियों के सम्बन्ध में जो विचार हैं वे तो अवैदिक हैं ही; आर्य जगत् में भी अब तक बहुत सी बातों में स्त्रियों की समस्या के सम्बन्ध में आर्य विद्वान् एक मत नहीं हो पाये हैं।

कोई कहता है कि —
स्त्रियों को संस्कार कराने का अधिकार नहीं है।
कोई कहता है कि—
स्त्रियाँ भी पौरोहित्य कर्म कर सकती हैं।
कुछ कहते हैं कि—
स्त्रियों को भी यज्ञ आदि पति से पृथक् स्वयं भी करना अनिवार्य है।
कुछ कहते हैं कि—

---

त्सवों की सफलता की कसौटी चन्दे की रकम या उपस्थिति से न समझी जावे। परन्तु स्थानीय आर्यसमाज के कितने योग्य विद्वान् केवल समाज सेवा के लिए वानप्रस्थी और संन्यासी बनें इससे ही समाज की उन्नति का निर्णय होना चाहिए।

स्वामी जी ने सारे भारत में अजमेर को ही क्यों अपनी सारी शक्तियों और आन्दोलन का केन्द्र बनाया ? राजपूत राजाओं और राणाओं में आप क्यों वैदिक राजनीति का प्रचार करने में लगे रहे और इसी में आपने अपने आपको स्वाहा कर दिया और अपना अमूल्य स्मारक अपने हाथों से वैदिक यंत्रालय अजमेर को यहाँ क्यों बनाया ? इन प्रश्नों के उत्तर में आपको ऋषि की अन्तर आत्मा और उनकी राजनीति स्पष्ट ज्ञात हो जायगी। क्या ही अच्छा होता यदि आर्यसमाज के नेता ऋषि की स्मृति में दयानन्द कालेज को अजमेर में चलाते और ऋषिवर की स्प्रिट में राजपूत राजाओं और रियासतों में ही अपनी सारी आत्मशक्ति को लगा देते तो निःसन्देह आर्यसमाज की उन्नति का नक्शा किसी और ही रंग रूप में रंगा होता।

---

पति पत्नी साथ यज्ञ करें। यदि साथ न कर सकें तो पति का यज्ञ कर लेना पर्याप्त है स्त्री न कर सके तो न सही।

किन्हीं का कहना है कि—

कन्याओं का यज्ञोपवीत स्त्री करावे और लड़कों का यज्ञोपवीत पुरुष करावे।

किन्हीं का कहना है कि—

पुरुष तो कन्या का भी यज्ञोपवीत करा सकता है परन्तु स्त्री किसी लड़के का यज्ञोपवीत नहीं करा सकती।

कुछ लोगों का कहना है कि—

कन्याओं का यज्ञोपवीत नहीं होना चाहिये।

कुछ लोगों का सिद्धान्त है कि—

लड़कों के समान लड़कियों का भी यज्ञोपवीत अवश्य होना चाहिये।

इस अन्तिम बात के सम्बन्ध में ही इस लेख में विचार करना चाहती हूं,

जो लोग कन्याओं का यज्ञोपवीत नहीं मानते उनके पास केवल एक ही युक्ति है जिसके आधार पर सारी कल्पना सृष्टि रची हुई है और वह युक्ति यह है कि—

यज्ञोपवीत की पद्धति में लिखा है कि—

"अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत्"

( आश्वलायन गृह्यसूत्र )

"वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत्"

( शतपथ ब्राह्मण )

"पयोव्रतो ब्राह्मणः"

( शतपथ ब्राह्मण )

"अरिष्टाः संचरेमहि स्वस्ति चरतायम्"

( मन्त्र ब्राह्मण )

"कस्य ब्रह्मचार्यसि प्राणस्य ब्रह्मचार्यसि"

( पारस्कर गृह्यसूत्र ) इत्यादि

ब्राह्मणम्। ब्राह्मणः। अयम्। कस्य। ये शब्द हैं।

ब्राह्मणीम्। ब्राह्मणी। इयम्। कस्याः। ये शब्द नहीं हैं।

अर्थात् पुल्लिंग का वर्णन है, स्त्रीलिंग का नहीं। इस सम्बन्ध में उत्तर तो

इतना ही पर्याप्त है कि अन्य भी सब संस्कारों में पुल्लिंग से ही निर्देश हैं स्त्री लिंग से नहीं। फिर तो कोई भी संस्कार स्त्रियों का होना ही नहीं चाहिये। नामकरण संस्कार तक में पुल्लिंग ही जैसे —

नाम चास्मै दद्युः

( आश्वलायन गृह्य सूत्र )

यहां भी अस्मै पुल्लिंग है 'अस्यै' नहीं है। लड़की का नाम भी नहीं रखना चाहिये।

वेद शास्त्रों में जिन सत्कर्मों का विधान है वे सब पुल्लिंग में ही बताये गये। जैसे—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।

चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम्।

अर्थात् — अभिवादन करने वालों और बुजुर्गों की सेवा करने वालों की आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है।

यह कार्य भी पुल्लिंग को ही लिखा है क्योंकि अभिवादन—शीलस्य "वृद्धोपसेविनः" और "तस्य" पुल्लिंग ही हैं। स्त्रियों को न तो बड़ों की सेवा करनी चाहिये और न प्रणाम आदि करना चाहिये।

जिन बातों का निषेध है वह भी पुरुषों को ही हैं स्त्रियों को नहीं जैसे—

"दुराचारो हि पुरुषो लोके भवति निन्दितः"

अर्थात्—आचार हीन निन्दा को प्राप्त होता है। यह विधान भी पुल्लिग को ही है। क्या स्त्रियाँ आचार हीन होने से पूजा को प्राप्त होती हैं।

वास्तव में बात यह है कि शास्त्रों में जिन बातों का विधान है वह स्त्री पुरुष के लिये समान हैं। जहाँ भेद है वहां स्पष्ट निषेध है या पृथक् विधान है। पुल्लिंग कहने मात्र से निषेध नहीं हो जाता। इस सम्बन्ध में शास्त्रों के प्रमाण निम्न लिखित हैं—

१— जातिं तु बादरायणोऽविशेषात्। तस्मात्
स्त्र्यपि प्रतीयेत जात्यर्थस्याविशिष्टत्वात्

( पूर्वमीमांसा, अध्याय ६ पाठ १ )

अर्थात्—शास्त्रों का विधान स्त्री और पुरुष दोनों के लिये है क्योंकि वहां पुरुष जाति से अभिप्राय है।

२— स्त्रिया न सोऽस्त्यास्ति वा
नो, पुलिंगं न तदीरणात्
प्रकृत्यर्थतया लिंग संख्यावत्र विवक्षितम् ।
अस्त्युद्देश्यगतत्वेन संख्या सदृशत्वतः
यद्धि भक्तिविकारादेरर्थस्तत् प्रकृते न तु ॥

( जैमिनीय न्याय माला )

विषय

अर्थ—स्त्रियों को भी अधिकार या विधान है वा नहीं ।

प्रश्न

विधान नहीं है क्योंकि सर्वत्र पुल्लिंग को सब काम लिखे हैं ।

उत्तर

यह बात नहीं है प्रत्युत स्त्री और पुरुष दोनों को समान विधान है ।

३— प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयन्
जपेत् सोमोऽददद् गन्धर्वाय इति ।

( गोभिल गृह्य सूत्र )

यहा स्त्री को यज्ञोपवीत धारिणी स्पष्ट लिखा है ।

४— द्विविधाः स्त्रियो भवन्ति ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च
तत्र ब्रह्म वादिनीनामुपनयनमग्नीन्धनं वेदाध्ययनं ।
स्वगृहे भिक्षाचर्या वधूनाँ तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयन
मात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः

( हारीत स्मृति )

यहां भी ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू दोनों का यज्ञोपवीत लिखा है ।

५— पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जी बन्धनमिष्यते ।
अध्यापनं तु वेदानां सावित्रीवचन तथा ।

( यम स्मृति )

इस प्रमाण में भी कुमारियों के यज्ञोपवीत का निर्देश मिलता है ।

# आर्यसमाज की चिनगारियां

## मास्टर भानाराम जी—

स्वर्गीय मास्टर भानारामजी के सम्बन्ध मे लाला लभूराम जी नय्यड़ ने लेख दिया है मैं उसी सम्बन्ध में दो बातें लिखना चाहता हू।

धैर्य। मास्टर जी के सुपुत्र श्री व्रजभूषण जी बाल्यकाल मे रोगी थे। रोग बढ़ गया। उस समय एक मित्र ने मास्टर जी से कहा बालक की अवस्था अच्छी प्रतीत नहीं होती, मास्टर जी ने बीच में ही बात काट कर कहा मेरा कर्तव्य है रोगी की सेवा करूं, अच्छा वैद्य जो मिले उसे दिखाऊं जो औषधि वह कहें वह देदू यदि उस पर भी बालक अच्छा न हो तो ईश्वर की ऐसी ही इच्छा यह मान कर सतोष कहू और ईश्वर का धन्यवाद करूं।

मास्टर जी उस समय धैर्य से रहे। ईश्वर दया से बालक अच्छा हो गया। मैं जिला हिसार के एक ग्राम में कभी २ जाया करता था। वहा बातचीत मे कभी मास्टर भानाराम जी का नाम भी आया होगा। उस ग्राम के पाच छः युवक किसी समय लुधियाना आए वहा उन्होंने कपड़ा क्रय की इच्छा की। बाजार मे दुकानों पर कपड़ा देखने और भाव ठीक करने कई दुकानों पर गए दाम ऊपर नीचे करते रहे। देखते २ मास्टर जी की दुकान पर भी पहुच गए कपड़ा देखने पर दाम पूछा गया। मास्टर जी ने उनको जो दाम बताया वह एक वा दो दुकानों पर यत्न कर के वह दाम मिलता था अन्य दुकानों पर दाम अधिक ही था। तब एक युवक ने पूछा हम मास्टर भानाराम जी से मिलना चाहते हैं, उन्हों ने कहा आप उन को कैसे जानते हैं। उन्होंने कहा स्वामी स्वतंत्रानन्द जी हमारे ग्राम मे आया करते हैं। हमने उन से सुना है कि लुधियाना में मास्टर भानाराम जी की कपड़े की दुकान है। तब मास्टर जी ने कहा वह तो मैं ही हू। उन्हों ने कपड़ा खरीदा जब रुपये देने लगे तो उस समय उन के पास पूरे रुपये न थे और उनका साथी जो स्टेशन पर था उसके पास थे। उन्हों ने कहा यह रुपये लेलें कपड़ा भी रखलें हम रुपये लाकर दे देते हैं। आपने कहा आप कपड़े ले जाय आपने स्वामी जी का नाम लिया है अतः आप रुपये स्टेशन से लाकर देदें परन्तु में ५॥ बजे दुकान बन्द कर दूगा उससे पहले दे जाना। वह कपड़ा लेकर चले गए उनको कुछ देर हो गई जब वह आए तो दुकान बन्द पाई। पास वाले दुकान दार चूहड़ियामल जी ने कहा

अभी बन्द करके गए हैं वह युवक पीछे दौड़े थोड़ी दूर जा कर मास्टर जी से मिले और उनको रुपये देदिये।

इस प्रकार मास्टर जी दुकान समय पर ही खोलते थे और समय पर ही बन्द कर देते थे, वह इस काम मे किसी की प्रतीक्षा नहीं करते थे। उन का ईश्वर पर विश्वास और सुख दुःख में धैर्य से रहना विशेष गुण था। अन्य बातें लाला लब्भूराम जी नय्यर लिख चुके हैं, वह देखें।

—स्वतन्त्रानन्द

## लाला उमरावसिंह जी लुधियाना

श्री लाला उमरावसिंह जी श्री राय मुन्नालाल साहिब एक्स्ट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर लुधियाने के पौत्र और श्री राय गुरुमुखसिंह जी डिप्टीकलेक्टर नहर (अमृतसर) के सुपुत्र थे। राय मुन्नालाल जी आप के दादा साहिब असल देहली के उच्च खानदान मे से थे। आपने लुधियाने ही बरसो एक्स्ट्रा असिस्टेन्टी की और यहीं से पेन्शन लेकर एक विशाल भवन चौड़ाबाजार मे लेकर अपना निवास स्थान बनाया। राय मुन्नालाल जी के श्री लाला रामजीदास के पिता और राय साहिब शिवप्रशाद खजाञ्ची के दादा लाला चटमल खजाञ्ची सदर से विशेष प्रेम था। इसी प्रेमवश श्री लाला चटमल खजाञ्चीजी के सुपुत्र लाला रामजीदास जी खजान्ची सदर व आनरेरी मजिस्ट्रेट लुधियाना से लाला उमरावसिंह जी का घनिष्ट प्रेम था। श्री लाला रामजीदास खजाची दृढ वैदिकधर्मी थे। उन्हीं की प्रेरणा से लाला उमरावसिंह जी भी आर्यसमाज के सभासद् बन गये। आप ऐसी शुभ घड़ी में आर्यसमाज मे प्रविष्ट हुए कि आरम्भ से ही समाज की ही लगन म मग्न रहे। राय मुन्नालाल का अपने पौत्र लाला उमरावसिंह से इस प्रकार अधिक हित था कि आँखों से ओझल न होने देते थे। यही कारण था कि इन्हें किसी स्कूल म दाखिल न किया गया। घर पर ही पढा कर मुन्शी आलम पास करा दिया। लाला उमरावसिंह जी ने आर्यसमाज में प्रविष्ट होते ही अपनी योग्यता से जहाँ अग्रेजी में पर्याप्त योग्यता प्राप्त करली वहा सस्कृत के भी विद्वान् बन गये। श्री पडित आर्य मुनि जी महामहोपाध्याय ने अपने एक लेक्चर में ठीक कहा था कि "मै पजाब में घूमा हूँ। मगर सस्कृत मे जो योग्यता आपके लुधियाने के लाला उमरावसिंह जी ने प्राप्त की है, ऐसे विरले ही समाज मे होंगे।"

चू कि प्रारम्भ में श्री स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी, स्वामी नित्यानन्द जी, प० लेखराम जी, पं० गणपति जी शर्मा, प० आर्यमुनि जी, स्वामी श्रद्धानन्द जी, स्वामी पूर्णानन्द जी आदि आर्य विद्वान् जब भी लुधियाना आर्यसमाज में पधारते प्रायः लाला उमरावसिंह जी के यहाँ ठहरा करते थे। उन्हीं दिनों के सत्सग से आपकी सस्कृत में रुचि दिनों दिन बढ़ती

गई और आर्यसमाज में उपदेश भी देने लगे। आपने वाल्मीकि रामायण के प्रक्षिप्त श्लोक निकाल कर शुद्ध वाल्मीकि रामायण प० गुज्जरमल जी विशारद आर्य हाई स्कूल की सहायता से तैयार की और लाहौर के राय रोशनलालजी बैरिस्टर की आर्यन पब्लिशिंग कम्पनी Aryan Publishing Company को मुद्रित करने के लिये दे दी। शोक कि कम्पनी के टूट जाने के कारण छपना तो दरकिनार वह शुद्ध रामायण भी हाथ न आई, जिसको याद करके लाला उमरावसिंह जी बहुत उदासीन हो जाया करते थे। लाला उमरावसिंह जी ने आरम्भ से मरण पर्यन्त जो कार्य आर्यसमाज मे उत्साहपूर्वक किया वह सामाजिक इतिहास मे अमर रहेगा। वे बरसों ही आर्यसमाज लुधियाना के मन्त्री रहे और उसके बाद जब तक आप लुधियाने में रहे, आर्यसमाज लुधियाने के प्रधान पद पर सुशोभित रहे। आर्य हाई स्कूल गणेशीलाल आर्य कन्या पाठशाला लुधियाना को भली प्रकार चलाने मे दूसरे साथियो के साथ आपका भी विशेष भाग था। कठिन समय मे आर्यसमाज लुधियाने की जो सेवाएं लाला उमरावसिंह जी ने की वे लुधियाना निवासियो से छिपी नही। मुझे अच्छी तरह स्मरण है कि जब मास्टर रामलाल जी ने पटियाला महीन्द्र कालिज से बी० ए० की परीक्षा पास की तो श्री लाला नन्दलाल जी भूतपूर्व मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कॉगड़ी (जो सर गंगाराम चीफ इन्जिनियर पटियाला के आफिस सुपरिन्टेन्डेन्ट थे) ने पत्र लिखा कि श्री लाला बनवारीलाल जी स्टेशन मास्टर के सुयोग्य पुत्र श्री लाला रामलाल जी बी० ए० ने आपके आर्य मिडिल स्कूल लुधियाना में प्रार्थनापत्र भेजा है; ऐसे योग्य व्यक्ति को अवश्य जगह दी जाय। मैंने वह पत्र लाला उमरावसिंह जी को दिखाया, तो उन्होंने कहा बहुत अच्छा। स्कूल मैनेजिंग कमेटी में जब यह विषय पेश हुआ तो सर्वसम्मति से मास्टर रामलाल जी को नियुक्त किया गया। स्कूल का चार्ज लेते ही मास्टर रामलाल जी ने अपनी सच्ची लगन और अनथक प्रयत्नों से स्कूल को शिखर पर पहुँचा कर आर्य हाई स्कूल बना दिया। उस समय लाला उमरावसिंह जी ने अभिमान पूर्वक कहा:—"मिस्टर! वह दिन याद है जब कि मास्टर रामलाल जी आये थे। वास्तव मे लाला नन्दलाल जी ने जो इनकी योग्यता सम्बधी लिखा था वह इससे बढ़कर योग्य हैं। लाला नन्दलाल जी ने हमे एक ऐसा रत्न दिया है जो आर्यसमाज लुधियाने के नाम को रोशन करेगा।" ये शब्द लाला उमरावसिंह जी के अब तक मेरे कानों में गूंज रहे हैं। अब तक प्रिंसिपल रामलाल जी ने जो सेवायें स्कूल तथा आर्यसमाज लुधियाने की हैं वे भलीभाँति विख्यात हैं। लाला उमरावसिंह जी ने अपने विचारों के अनुकूल प्रिंसिपल रामलाल जी को पाकर दिन रात आर्यसमाज की उन्नति में व्यतीत किया। जिसका परिणाम आज हम देख रहे हैं कि आर्य समाज लुधियाना पजाब मे कोटि के समाजों मे गिना जाता है। शहर में प्रायः क्या छोटा

क्या बड़ा लाला उमरावसिंह जी को मान की दृष्टि से देखते थे। कई साल लुधियाना म्युनिसिपल कमिश्नर रहे। उस समय आपको सर्वसाधारण की सेवा करने का खूब अवसर मिला। जिससे न केवल लाला जी की ही प्रसिद्धि को ही चारचाँद लगे बल्कि आर्यसमाज लुधियाने का भी मुख उज्वल हुआ। जो कोई भी काम के लिये आता फौरन छड़ी पकड़ उसके साथ हो लेते। जबकि वह काम न कर लेते अपने ऊपर बोझ अनुभव करते। आपके गाड़ी घोड़े का नाम हमने पब्लिक मेल कार्ट Public Mail Cart रख छोड़ा था। कोई भी किसी वक्त आये गाड़ी घोड़ा ले जा सकता था। प्रति दिन नित्य रात को आपके मकान पर आर्य दरबार लगता था जिसमे बहुत से मेम्बरान अन्तरङ्ग सभा और माननीय आर्य पुरुष श्री लाला रामजीदास खजाञ्ची, श्री प० नौरङ्गराय जी, रायसाहिब श्री केदारनाथ जी जज आदि भद्र पुरुष भी सम्मिलित होते और आर्यसमाज की वृद्धि के उपाय सोचने के अतिरिक्त और कोई काम न था। वह समय भी आया कि लुधियाना शहर म आपकी इस कदर प्रतिष्ठा बढ़ी कि आपको क्या छोटे क्या बड़े सब लाला जी के नाम से सम्बोधन करते थे। मुझे कई साल उनके साथ उनके उपमन्त्री रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जो प्रेम वह मेरे साथ रखते थे अब भी याद करके अश्रुपात होता है। यद्यपि मेरा कई विषयों म उनसे मतभेद था तो भी उनके प्रेम में कोई बाधा न पड़ी।

हा! शोक, अब वह उच्च हस्ती कहा? दैवयोग से उनके घरेलु कारण ऐसे कुछ हुए कि आप को लुधियाना छोड़ना पड़ा। आपके अकस्मात् वियोग से जो दुःख रायसाहिब लाला शिवप्रसाद जी, प्रिंसिपल रामलाल जी, श्री प० नौरङ्गराय जी आदि हम सब आर्य भाइयों को हुआ वह स्मरण करके आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं।

लुधियाना से आप देहरादून जाकर महादेवी कन्या पाठशाला मे संस्कृत अध्यापक हो गये। वहा जीवन व्यतीत करते हुए यथाशक्ति आर्यसमाज देहरादून की सेवा करते रहे। जब आर्यसमाज लुधियाना की ५० साला जुबली मनाने का निश्चय हुआ तो आर्यभाइयों के आग्रह पर श्री उमरावसिंह जी लुधियाना पधारे और पूज्य प्रिंसिपल रामलाल जी के बंगले पर ठहर कर आर्यसमाज लुधियाने का ५० साला इतिहास लिखा, जो सचित्र आर्यसमाज लुधियाने ने छपवा कर २००० के लगभग जुबली के शुभ अवसर पर वितीर्ण किया।

आर्यसमाज लुधियाना की जुबली पर आपने सम्मिलित होने का वचन दिया था परन्तु अकस्मात् उनका स्वर्गवास हो गया। जिससे लुधियाना आर्यसमाज के अधिकारियों तथा मेम्बरों को उनकी जुदाई खटकती रही।

आर्यसमाज व वैदिकधर्म के सम्बन्ध मे आपका ज्ञान बड़ा विस्तृत था। आप संस्कृत के बड़े विद्वान् थे जो उन्होंने स्वय प्रयत्न से प्राप्त की थी।

चंगे भले पाठशाला में पढ़ाने गये, छाती में दर्द उठा, पैदल चलकर ही अमरनाथ जी के औषधालय मे पहुँचे। वैद्य जी तुरन्त चारपाई पर लिटाकर दवाई लाते ही रहे कि आप के प्राण पखेरू उड़ गये। इस शोकजनक खबर से लुधियाना में मातम छा गया। आर्य स्कूल, आर्य कन्या पाठशाला आदि बन्द कर दिये गये। लाला जी की दिव्यमूर्ति अब भी आँखों के सामने से ओझल नहीं होती। आपमें बहुत सी योग्यतायें थी। विद्वान्, सहनशील, सर्वप्रिय होने के अतिरिक्त हरेक के लिये हृदय मे सहानुभूति रखते थे और वैदिकधर्म के लिये उनके हृदय मे अटूट श्रद्धा थी। हा शोक; मेरा वह पुराना साथी अब कहा? जिनकी स्मृति अब भी चार-चार आसू रुलाती है। ईश्वर उनके पोते ला० बलवन्तसिंह जी M. S. C. प्रोफेसर गवर्नमेंट कालेज लाहौर को चिरञ्जीव रखे।

लब्भूराम नैयड़ आनन्द आश्रम लुधियाना

# मांस भक्षण के पक्ष में कुछ युक्तियां और उनका खंडन

( लेखक—श्री डा० सत्यप्रकाश जी डी. एस. सी. लेक्चरार प्रयाग विश्वविद्यालय )

( गतांक से आगे )

( १ )

खाना और पीना व्यक्तिगत विषय है। मनुष्य की स्वेच्छा में धर्म और नीति को क्यों हस्तक्षेप करना चाहिए ?

खाने का सम्बन्ध व्यक्ति और समाज दोनों से है। उपर्युक्त तर्क के आधार पर क्या आप समाज में हिंसा वृत्ति को प्रोत्साहित करेंगे ? माँस भक्षण और हिंसा प्रवृत्ति में अणुमात्र का अन्तर है। इससे मनुष्य की प्रवृत्तियां हिंसक बन जाती हैं। इसका प्रभाव मनुष्य के व्यक्तिगत और समाजगत आचार पर पड़ता है। यदि मनुष्य अपने प्रीतिभाजन जीवों को खाने लग जाता है तो वह किसी भी भयंकर से भयंकर अत्याचार को कर सकता है। यह मनुष्य की भावना को नष्ट भ्रष्ट कर देता है। इसलिए आपकी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता में ब्रेक लगाने का धर्म को अधिकार है।

( २ )

क्या दर्शन शास्त्र यह नहीं बतलाता कि प्रत्येक वस्तु दिव्य जीवन से विभूषित है ? तब फिर आप पशुओं और बनस्पतियों में भेद क्यों करते हो ? उच्च धरातल में वे दोनों एक ही कोटि में आते हैं।

राक्षस लोग अपने पक्ष में बहुधा शास्त्रों और दर्शनों का उल्लेख किया करते हैं। दिव्यता मनुष्यत्व से ऊँची वस्तु हुआ करती है। तब फिर आप पशुता और अमानुषिकता के समर्थन के लिए दिव्यता को क्यों घसीटते हो। दर्शन शास्त्र का इससे बढ़कर और क्या दुरुपयोग होगा ? दिव्य जीवन को कष्ट और पीड़ा का अनुभव नहीं होता। यह तो समस्त मानवी भावनाओं से ऊपर होता है। परन्तु यहाँ आप असहाय जीवों को दुःख से कराहते और चिल्लाते हुए पाते हो। वे कसाई के हाथों से बचने के लिए सदैव उत्सुक दीख पड़ते हैं और दयाभरे नेत्रों से छुटकारे की अपील करते हैं और सहानुभूति से वंचित हो जाने पर छुटकारे के लिए शक्तिभर यत्न करते हैं। उनमें दिव्य जीवन हो या न हो, इन जीवों में भी आप जैसी जान है और यदि आपको उनकी स्थिति में रख दिया जाय तो आप अपनी समस्त फ़िलासफ़ी को भूल जाओगे।

# यम और नियम

( लेखक—प्रिंसिपल दीवानचन्द बी एम० ए० )

अहिंसा ( वैर त्याग ), सत्य, अस्तेय ( चोरी न करना ) ब्रह्मचर्य ( भोगों की सामग्री को एकत्र करने की चेष्टा से बचना ) जाति, काल, देश और समय कुछ हो, प्रत्येक दशा मे यमों पर आचरण करना महाव्रत है।

शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान नियम हैं।

जीवन का प्रधान चिन्ह एकता है। तो भी उसके भिन्न भिन्न आकारों को अलग अलग चिन्तन का विषय बना सकते हैं। इस प्रकार मनुष्य जीवन के शुभ गुणों को व्यक्तिगत और सामाजिक सद्‌गुणों की दृष्टि से देखा जा सकता है। यम सामाजिक सद्‌गुण हैं और नियम व्यक्तिगत सद्‌गुण।

सामाजिक सद्‌गुण यही है कि हम दूसरों के अधिकारों का मान करें। आप जिएँ और दूसरों को जीने दें। इसके लिए सब से बढ़कर आवश्यक यह है कि हम दूसरों के प्रति वैर भाव न रखें। इसी को न्याय कहते हैं। यदि हम इसके परे नहीं जा सकते, तो इतना तो अवश्य कर सकते हैं। यह अहिंसा है।

समाज का सगठन इस बात पर निर्भर है कि एक मनुष्य दूसरे के कथन पर विश्वास कर सके। प्रतिज्ञा की पवित्रता को स्वीकार किया जाय। यह सत्य है।

जीवन के लिए जीवन की सामग्री की आवश्यकता है, यह प्रत्येक मनुष्य अपने लिए आप कमाता है। यदि वह उसे अपने लाभ या सुख के लिए नहीं बरत सकता तो उसका जीवन व्यर्थ है। समाज में प्रत्येक का धर्म है कि दूसरों के अधिकारों का मान करे, अस्तेय ( चोरी न करना है )।

ब्रह्मचर्य को यमों में गिना गया है। जो पुरुष दुराचारी है वह अपनी हानि तो करता ही है परन्तु इससे अधिक दूसरों की हानि करता है। उनकी मर्यादा को मिट्टी में मिला देता है। वह समाज को हानि पहुँचाता है, क्योंकि सामाजिक जीवन का आधार पारिवारिक आचरण की पवित्रता है।

अपरिग्रह का अर्थ यह है कि मनुष्य जीवन की सामग्री में अपने आप पर सन्तोष करें। स्वयं जीवे और दूसरों को जीने दे।

जीवन के नियमों में बहुत से नियम ऐसे होते हैं जो सब मनुष्यों पर

प्रत्येक अवस्था में लागू नहीं होते। जो मनुष्य वैद्य बनना चाहता है उसके लिए विशेष शिक्षा और विशेष प्रकार के जीवन की आवश्यकता है। वैद्य बन जाने में इन नियमों में परिवर्तन होता है। इसी प्रकार के भेद, जाति, देश, काल और समय के भेद हैं। परन्तु यमों के सम्बन्ध में कहा गया है कि इन पर सब मनुष्यों को प्रत्येक दशा में आचरण करना चाहिए। ऐसा आचरण महाव्रत है।

व्यक्तिगत जीवन में हमारा उद्देश्य यह है कि हम अपनी शक्तियों का पूर्ण विकास करें। अपने आपको इतना ऊँचा ले जायँ जितना ले जा सकते हैं।

व्यक्तिगत जीवन के दो भाग हैं। प्राकृतिक और आत्मिक। शरीर के सम्बन्ध में सब से उत्तम वस्तु स्वास्थ्य है। स्वास्थ्य का आधार बाह्य अथवा अन्तः पवित्रता वा शौच है। आत्मिक जीवन में ज्ञान, कर्म और सुख दुख का अनुभव तीन अंग हैं। ज्ञान के लिए स्वाध्याय उत्तम साधन है। इच्छा शक्ति के नियंत्रण के लिए तप उत्तम साधन है। सुख प्राप्ति के लिए पदार्थों के पीछे पागल की भाँति भागना इतना ही सफल हो सकता है जितना घी के छींटों से अग्नि बुझाना।

मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को सीमित करे। इन सीमित आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए पूर्ण दान करे और जो कुछ इस यत्न का फल हो उसे हर्ष से स्वीकार करे। यह सन्तोष है। सन्तोष, तप, स्वाध्याय मनुष्य के निज जीवन के बहुमूल्य चित्र हैं। परन्तु मनुष्य का सम्बन्ध केवल इस संसार या दूसरे मनुष्य से ही नहीं है। उसका सम्बन्ध परमात्मा से भी है। धार्मिक जीवन का प्राण ईश्वर पर भरोसा करना है। ईश्वर प्रणिधान हमारी आत्मा को नए रंग में रंग देता है। यह नियमों में सर्वोत्तम है।

---

# सुमन संचय

आगरे के किले में मीना बाजार लगा हुआ था। सम्राट् जहाँगीर अपने कतिपय अन्तरंग राज कर्मचारियों और सम्राज्ञी नूरजहाँ के साथ मीना बाजार की सैर कर रहे थे। सैर करते २ वे एक दूकान पर ठहरे और कुछ देर के पश्चात् बाजार के मध्य में बने हुए मंडप में राज सिंहासन पर जा बैठे। बैठते ही उन्होंने आज्ञा दी कि जिस दूकान पर हम ठहरे थे उसपर नीले वस्त्र पहिने जो स्त्री बैठी है उसे हमारे सामने प्रस्तुत किया जाय। सम्राट् की आज्ञा का पालन होते देर न हुई। सम्राट् के इस व्यवहार पर सम्राज्ञी आश्चर्य्य चकित थी। इस अनहोनी बात को देख कर दर्शक लोग भी चकित थे। सम्राट् के सामने वह स्त्री उपस्थित की गई। उस स्त्री को संबोधन करके सम्राट् ने कहा "हजरत आप स्त्रियों के इस बाजार में क्यों आये ?"

सम्राट् के इस वचन को सुन कर बाजार में सन्नाटा छा गया। लोगों ने आश्चर्य्य के साथ देखा कि जो स्त्री सम्राट की आज्ञा से उनके सामने पेश की गई थी वह डर के मारे थर थर काँप रही है। उसने हाथ जोड़ कर कहा 'जहाँ पनाह'। क़सूर माफ़ हो। मैं यहाँ के प्रसिद्ध जौहरी का लड़का हूँ। लगभग एक वर्ष हुआ मेरी माता का देहान्त हो गया। मुझे अपनी माता से बहुत प्रेम था। वह मुझे प्राणों से भी अधिक प्यारी थी। उसके वियोग में मेरा शरीर घुलने लगा। मैं सूख कर जिस दशा को प्राप्त हो गया हूँ वह जहाँ पनाह स्वयं अपनी आँखों से देख लें। मेरी बहन ने मुझे बताया कि मेरी माँ की सूरत से मिलती जुलती एक स्त्री है। पहले तो वह पता बतलाने में बहुत झिझकी पर बाद में उसने बतलाया कि बेगम नूरजहाँ की शक्ल मेरी माँ से बिल्कुल मिलती है। मैं अपनी माँ के वियोग में व्यथित था। और एक बार उसे देखने के लिए मन अधीर हो रहा था। मैंने बेगम साहिबा के दर्शन करने के लिए बड़ा यत्न किया पर सफल न हुआ। मैं दर्शनों के लिए अवसर की ताक में रहने लगा। अन्त में मुझे एक उपाय सूझ पड़ा। मैंने सोचा क्यों न स्त्री वेष धारण कर मीना बाजार में अपनी दूकान पर बैठ जाऊँ। वहाँ बैठने से किसी को कुछ सन्देह भी न होगा और मुझे बेगम साहिबा के दर्शन

भी हो जायेंगे। अन्त में मैंने ऐसा ही किया। इस गलती के लिए सम्राट क्षमा करें। मुझे अपनी माँ से मिलने की ऐसी प्रबल इच्छा थी कि मीना बाजार के कड़े नियमों के पालन का भी मुझे ध्यान न रहा।'

सम्राट ने क्रोध पूर्वक उस युवक के चेहरे पर एक कड़ी दृष्टि डाली और कहा "तूने काम तो ऐसा किया है कि तुझे कठोर से कठोर दण्ड दिया जाय जिससे भविष्य में कोई पुरुष स्त्री के वेष में मीना बाजार में क़दम न रख सके। परन्तु तुझे अपनी माँ से प्रेम है। तेरी दशा देख कर भी निश्चय होता है कि तुझे कोई दुःख अवश्य है। अतः केवल चेतावनी देकर तुझे छोड़ दिया जाता है। भविष्य में कभी स्त्री वेष में मीना बाजार में मत आना।"

"यदि तुझे वास्तव में मलका नूरजहाँ की शक्ल में अपनी माँ के दर्शन होते हैं तो यह शाही परवाना ले तेरा जब जी चाहे महल में जाकर मलका से भेंट कर लिया कर!"

जौहरी का लड़का उस परवाने को लेकर प्रसन्न होता हुआ चला गया। बेगम नूरजहाँ ने आश्चर्य्य के साथ सम्राट से प्रश्न किया "हुजूर ने यह कैसे जान लिया कि यह स्त्री वेष में कोई पुरुष है।" यह प्रश्न सुनकर सम्राट जहाँगीर मुस्कराए और कहा "इसका उत्तर राजमहल में जा कर देंगे।"

—रघुनाथप्रसाद पाठक

# साहित्य समालोचना

## आर्य डाइरेक्टरी

प्रकाशक—मन्त्री सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली। पृ० लगभग ४०० मूल्य अजिल्द १।) सजिल्द १॥)।

मैंने इस आर्य डाइरैक्टरी को ध्यान से पढ़ा है। इसमें आर्यसमाज का संक्षिप्त परिचय, वर्तमान संगठन, आर्यसमाज का विस्तृत क्षेत्र, वेद प्रचार, गुरुकुल, उपदेशक विद्यालय, स्कूल तथा कालेज, कन्या शिक्षणालय, अनाथ संरक्षण, दलितोद्धार, शुद्धिसंगठन विषयक कार्य, सामाजिक कुरीतियों का निवारण, सामयिक आन्दोलन, हैदराबाद में धर्म युद्ध, डोला पालकी समस्या, लोहारू काण्ड, पाकिस्तान विरोधी आन्दोलन, जनगणनान्दोलन, धर्मार्यसभा, आर्यसमाज और राजनीति आदि, स्थानीय आर्यसमाजों के परिचय, देश विदेश में प्रचार कार्य तथा आर्य संस्थाएं, आर्यसमाज की साहित्य सेवा, आर्य वीर दल, आर्य शहीदों के जीवन-चरित्र इत्यादि विषयों पर बहुत उत्तम संग्रह किया गया है। इस प्रकार किसी भी निष्पक्ष पाठक को आर्यसमाज के सम्बन्ध में प्रायः सब आवश्यक जानकारी इस डाइरैक्टरी द्वारा प्राप्त हो जायगी। इसमे सन्देह नहीं कि इसके पढ़ने से यह भी ज्ञात हो जायगा कि आर्यसमाज का कितना विस्तृत कार्य क्षेत्र है और किस प्रकार वह सब रीति से जनता की सेवा में तत्पर है। इस प्रकार आर्यसमाज की लोकप्रियता में भी यह डाइरैक्टरी बड़ी सहायक सिद्ध होगी। सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा तथा देश विदेश की सब आर्य प्रतिनिधि सभाओं और आर्य संस्थाओं के उपलब्ध विवरण इसके अन्दर दे दिये गये हैं जो बड़े उपयोगी हैं। इतनी सामग्री के होते हुए आवश्यक चित्रों का अभाव पाठकों को अवश्य खटकता है और जल्दी मे प्रकाशन के कारण प्रेस की अशुद्धियाँ भी कहीं-कहीं रह गई हैं तथापि इन त्रुटियों को अगले संस्करण में दूर करने का आश्वासन भूमिका में दिया गया है। प्रत्येक आर्यधर्म और आर्य संस्कृति के प्रेमी को इसकी एक प्रति अवश्य अपने पास रखनी चाहिये और प्रत्येक सार्वजनिक पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रखवाने का प्रयत्न करना चाहिये। इसने प्रशंसनीय परिश्रम के लिये डाइरैक्टरी के सम्पादक तथा प्रकाशक आर्य जनता के धन्यवाद के पात्र हैं।

—धर्मदेव विद्यावाचस्पति

# आर्य डाइरेक्टरी के सम्बन्ध में कतिपय पत्रों की सम्मतियां

## आर्य्य-मित्र

प्रकाशक—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, बलिदान भवन देहली २०×२६, ८ पेजी ४०० पृष्ठ। मूल्य १।)

आर्यसमाज जैसी संगठित संस्था के कार्य विस्तार की जानकारी के लिए एक परिचय पुस्तक की नितान्त आवश्यकता थी। हर्ष की बात है कि इस अभाव की पूर्ति सार्वदेशिक सभा ने की है। इस महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिये सभा के अधिकारियों को बधाई।

इसमें आर्य संसार के संक्षिप्त परिचय के साथ ही वर्ष भर की प्रगतियों का सविस्तर वर्णन किया गया है। आर्यसमाज के आन्दोलन और संगठन से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं, गुरुकुलों, स्कूलों, कालेजों, आर्यकुमार सभाओं, कन्या गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं, अनाथालयों, पुस्तकालयों, समाचार पत्रों, साहित्यिक व अन्य संस्थाओं का विवरण तथा देश विदेश में स्थापित सहस्रों आर्यसमाजों का परिचय है। आर्यसमाजों के विवरण में उनका स्थान, रेलवे स्टेशन, पोस्ट आफिस, अधिकारियों, सम्बन्धित संस्थाओं और कार्यों का उल्लेख होने के कारण डाइरेक्टरी की उपादेयता बढ़ गई है। साथ ही उन आर्यसमाजों की सूची भी दी गई है जहां यात्रियों के ठहरने का विशेष प्रबन्ध है, दूसरे प्रान्तों से आने वाले आर्य प्रचारकों के लिये यह विवरण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त आर्य जगत् की वर्तमान समस्याओं व नाना हलचलों यथा हैदराबाद सत्याग्रह, लोहारू काण्ड, पाकिस्तान, खाकसार-आन्दोलन, वर्धा-शिक्षायोजना, जनगणना, गढ़वाल डोला-पालकी समस्या आदि अनेकों विषयों का वर्णन दिया है। आर्य विवाह कानून तथा सम्बन्धित फार्म, आर्यवीर दल के नियम, आदि अनेक उपयोगी विषयों का समावेश है। प्रत्येक आर्य गृह, मन्दिर व संस्था में इस अत्यन्त उपादेय पुस्तक का होना आवश्यक है।

—विनोद

## आर्य-सेवक नागपुर

'प्रकाशक—सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा बलिदान भवन, देहली। २० × २६ के आठवें आकार के ४०० पृष्ठ, छपाई सफाई बहुत उत्तम, मूल्य १।), डाक व्यय पृथक्।

आर्यसमाज के कार्यकर्ता व्याख्याता, तथा प्रचारक आदि बहुत काल से एक ऐसी पुस्तक (Refrence Book) की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे जिसमें आर्य समाज के विस्तार व प्रगति का पूर्ण विवरण हो। प्रस्तुत आर्य डायरेक्टरी इस अभाव को पूरा करती है।

इसमें आर्यसमाज का संक्षिप्त परिचय, गत ६६ वर्षों में आर्य समाज की प्रगति का सिंहावलोकन, उनका सगठन, विस्तृत कार्यक्षेत्र में कार्य करने वाली नाना संस्थाओं गुरुकुलों, स्कूलों, कालेजों, आर्यकुमार सभाओं, कन्या गुरुकुलों, कन्या पाठशालाओं, अनाथालयों, पुस्तकालयों, समाचारपत्रों, साहित्यिक व अन्य संस्थाओं का विवरण, तथा देश विदेश में स्थापित सहस्रों आर्य समाजों का पूर्ण परिचय है। आर्य समाजों के विवरण में उनका स्थान, रेलवे स्टेशन, पोस्ट आफिस, स्थापना वर्ष, अधिकारी, मन्दिर है या नहीं, संबन्धित संस्थाओं और कार्यों का उल्लेख होने के कारण डाइरेक्टरी की उपादेयता बहुत बढ़गई है। साथ ही उन आर्यसमाजों की सूची भी जहां यात्रियों के ठहरने का विशेष प्रबन्ध है दी गई है। दूसरे प्रान्तों में आने वाले आर्य प्रचारकों के लिए यह विवरण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा। इसके अतिरिक्त आर्यजगत की वर्तमान समस्याओं व नाना हलचलों—यथा हैदराबाद सत्याग्रह, लोहारुकांड, पाकिस्तान, खाकसार, आन्दोलन, वर्धा-शिक्षायोजना, जनगणना, गढ़वाल डोला पालकी समस्या, आदि अनेकों विषयों का वर्णन किया गया है। अन्य उपयोगी विषय यथा आर्य विवाह कानून तथा सबन्धित फार्मे, आर्य वीर दल के नियम आदि अनेक उपयोगी विषयों का समावेश भी है। वास्तव में इसमें आर्य जगत के विषय में ज्ञातव्य प्रत्येक विषय पर प्रकाश डाला गया है। पुस्तक के आरम्भ में संक्षिप्त विषय सूची दी गई है। अच्छा होता यह और अधिक विस्तृत (exhaustive) होती। प्रत्येक आर्य गृह, मन्दिर व संस्था में इस अत्यन्त उपादेय पुस्तक का होना आवश्यक है। इस महत्वपूर्ण प्रकाशन के लिये सार्वदेशिक सभा के अधिकारियों को बधाई।

---

## २७ वें भारतवर्षीय आर्यकुमार सम्मेलन

के

समापति

## डा० परमात्मा शरण एम० ए०, पी-एच डी०,

इतिहासोपाध्याय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

# का भाषण—

असतो मा सद् गमय । तमसो मा ज्योतिर्गमय

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

धर्म क्या वस्तु है, आज मैं इस पर कुछ कहना चाहता हू । सर्वथा अवकाश हीन होने के कारण मैं अपने कुछ ही विचार सक्षेप से आप सज्जनों के सम्मुख प्रस्तुत कर सकूंगा । आर्य-कुमार परिषद् की स्थापना को आज ३० वर्ष से ऊपर हो गये । लगभग ७० वर्ष से जो महान् कार्य एव उन्नति Y· M. C. A. ने की थी उससे प्रभावित होकर कतिपय आर्य नेतागण के मन में यह विचार उठा कि इसी प्रकार की एक संस्था आर्य युवकों की भी बनाई जाय। इस तीस बरस के अरसे में इस परिषद् को जो कुछ सफलता या विफलता अपने उद्देश्य की पूर्ति में हुई वह हम सबको विदित है । अब हमारा यह कर्त्तव्य है कि अपने बीते को सामने रखते हुए यह विचार करे कि हमारा भावी उद्देश्य एवं कार्य-क्रम क्या होना चाहिए । ससार और विशेषतया हमारे समाज की परिस्थिति बड़े वेग से बदल रही है। हमारे सामने नित नई समस्यायें, नित नये प्रश्न आते हैं । इस युग को वैज्ञानिक युग कहा जाता है, पर वास्तव में यह युग आर्थिक युग है। आर्थिक प्रभुता ही इस युग का महा सूत्र है। आर्थिक प्रभुता के लिए आज दिन समस्त मानवी शक्तियों, वैज्ञानिक आविष्कारों एवं राजकीय बल का प्रयोग किया जाता है । ये सब शक्तियाँ अर्थ की दास बनी हुई हैं। आधुनिक सभ्यता का एक मुख्य चिह्न यह है कि इसने हमारे सामाजिक जीवन, की सरलता और सीधा व सच्चापन बिलकुल मिटा दिया है। इसी कारण हमारी समस्यायें भी साधारण न रह कर अतीव जटिल, पेचीदा हो गई हैं । इन समस्याओं का सम्बन्ध वैयक्तिक व सामाजिक जीवन दोनों से ही हैं । ये प्रश्न केवल वयोवृद्ध मनुष्यों से ही सम्बन्ध नहीं रखते हैं, वरन् इनका उतना ही महत्व नवयुवकों के जीवन से भी है।

अब प्रश्न यह है कि ये समस्यायें क्या हैं ? कैसा उनका आकार प्रकार है ? जैसा मैं ऊपर कह आया हू ये समस्यायें व्यक्तिगत भी हैं और सामाजिक भी। वैयक्तिक रूप से हमारी शारीरिक, आत्मिक वा मानसिक रक्षा एव उन्नति का प्रश्न है। सामाजिक रूप से आर्थिक, राजनैतिक, सामाजिक परिस्थिति और उसके अनुसार हमारे स्वत्व एव क्या कर्त्तव्य हैं वे प्रश्न हमें घेरे हुए हैं। हम क्या और कैसे खाएँ, क्या और कैसे पहने, किस प्रकार सोयें और किस प्रकार जागें, किस प्रकार बात चीत करें, उठे और बैठें, और कुटुम्ब, मित्रवर्ग, अपने गाँव, शहर, जिले, सूबे और देश एव मनुष्य मात्र के साथ, अर्थात् मानव समाज के भिन्न २ अगों के साथ चलते फिरते, सफर करते, अथवा किसी सभा सोसाइटी मे कार्य करते समय इत्यादि, अनेकों जीवन के कार्य क्षेत्रों में कैसे बरते अथवा हम क्या और किस प्रकार पढे, और अपने ज्ञान का किस प्रकार प्रयोग करे, इत्याद २ अनेक प्रश्न हैं जो पग पग पर हमारी बुद्धि और विवेक की परीक्षा करते हैं। इन्हीं के अन्दर उचितानुचित का निर्णय करना, यही जीवन का महान् प्रश्न है। एक शब्द में सारा प्रश्न है (right Values) अर्थात् जीवन के हर कार्य एव वस्तु के ठीक २ मूल्य के निश्चय करने का। हमारी गिरावट निर्बलता का मुख्य कारण यही है कि हम धर्म के 'मूल्य" की वास्तविकता को समझने का प्रयत्न तक नहीं करते हैं। इस मूल्य को ठीक जान लेने का नाम ही धर्म है। पर क्यों हम इसमें असमर्थ रहते हैं इस प्रश्न पर मैं थोड़ा सा विचार करूँगा।

## धर्म और हमारा दैनिक जीवन

कहा यह जाता है कि पाश्चात्य देशों में religion या धर्म और जीवन का कोई परस्पर सम्बन्ध नहीं माना जाता। वहाँ पर गिरजे के अन्दर धर्म्म का पालन हर सातवें दिन हो जाता है और फिर उसको ताला लगा दिया जाता है, परन्तु भारतवर्ष में इसके विरुद्ध धर्म्म का हमारे जीवन के प्रत्येक अग से सम्बन्ध है, हमारा कोई तुच्छातितुच्छ और महानतिमहान् कार्य धर्म्म के दायरे से बाहर नहीं है। परन्तु क्या वास्तव में ऐसा है ? मैं कहूगा कि यदि निष्पक्ष भाव से हमारे और पश्चिमी नागरिक के व्यक्तिगत दैनिक जीवन की तुलना की जाय तो हम को पता चलेगा कि पाश्चात्य जातियों मे धर्म और नैतिक जीवन में बड़ा सामञ्जस्य है चाहे वे उसे religion न कह कह कर नागरिक अथवा लोकनीति (citizenship) के नाम से पुकारें। हमारे क्रियात्मक जीवन से धर्म का सम्बन्ध बहुत कम रह गया है। हाँ धर्म का नाम बहुत सुना जाता है। देश के कोने २ मे अनेक सभा समाजें मिलेंगी जो बड़ी ऊँची आवाज लगा कर धर्म को उसी खुले दिल से लूट रही हैं जिस प्रकार काशी और हरद्वार के पाण्डों को आँखों के अन्धे और गाठ के पूरे हिंदू लोग दक्षिणा लुटाते हैं। जान पड़ता है धर्म की बाढ़ आगई है, और इसी बाढ़ में हम सब बहे जारहे हैं, नहीं

नहीं उसी के अन्दर हम मर्क हो गए। परिणाम यह है कि असली धर्म अथवा संस्कृति का प्रखर आलोक हमारी आँखों से ओझल हो गया है, वह असली धर्म जिसका निचोड़ महर्षि दयानन्द के ६ वे से १० वें तक इन सात नियमों में भरा हुआ है, अथवा महात्मा बुद्ध के "चत्तारि अरिय सच्चानि" और अष्टांग मार्ग एवं अन्य महात्माओं के उपदेशों में वर्णित है।

सज्जनों! यह एक मनोवैज्ञानिक विश्लेषण (psychological analysis) का प्रश्न है। जब जब 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के मौलिक तत्त्व के मूल (value) को मानव समाज विसरा देता है तब तब 'आत्म प्रतारणा' का विनाशकारी दोष उसको ग्रस्त कर लेता है। मनुष्य की विमल विचार व मनन करने की शक्ति नष्ट हो जाती है। थोड़े से अन्तर दर्शन (introspection) से हम को यह बात पूरी तरह विदित हो जायगी कि आज कल हमारा समाज, विशेष कर हिंदू समाज जिसमें आर्य, सनातन, सिक्ख जैन, बौद्ध, इत्यादि सब ही शामिल हैं, आत्म-प्रतारणा के कार्य में बड़ा निपुण हो गया है। जितने ज़ोर से हम धर्म का डंका बजाते हैं, जितने ऊँचे २ मञ्च धर्म के नाम पर उठा कर हम दूसरों को स्वर्ग अथवा मुक्ति प्रदान करते रहते हैं उतना ही अधिक भयभीत हो कर बेचारा 'धर्म' हम से दूर भागता है और किसी अंधेरे कोने मे जा कर अपना मुँह छिपा लेता है। जब इस प्रकार धर्म का लोप होता है तब ही धार्मिक अथवा मतमतान्तरों के झगड़े, आध्यात्मिक सिद्धान्तों पर वादविवाद का ज़ोर होता है। समाज के मनमाने नेता, धर्म के ठेकेदार साम्प्रदायिक दाँत कटा कट में बड़ा जोश दिखला कर अपने और अपने भोले भाले अन्ध विश्वासी अनुयायियों के मन को सन्तोष देते हैं कि धर्म का पालन कर रहे हैं। जब मनुष्यों के हृदय से वह ईश्वर विश्वास उठ जाता है जिसके प्रति भक्ति अथवा भय से वह अपने पड़ोसी के आत्मा में, एक दुखी, दरिद्र की कोठरी में और जीव मात्र में, भगवान की ज्योति के दर्शन करता है और उनकी सेवा, उनसे प्रेम करना, अपना परम धर्म समझता है, तब वह अपने क्षुद्र मन को बहलाने और सन्तोष देने के लिए 'ईश्वर' को तर्क द्वारा सिद्ध करने का यत्न करता है और उस ज्ञानातीत वस्तु के अनेक मानसिक चित्र बनाने लगता है। जब मनुष्य के अन्दर स्वार्थ व नास्तिकता का राज्य हो जाता है, जिसके कारण वह अपने पड़ोसी को प्रेम नहीं कर सकता, तो वह अपना मन समझाने के लिए यह तर्क करने लगता है कि अपने पड़ोसी को क्षुद्र पतित और धर्म हीन मान कर उससे घृणा करना ही धर्म है।

इस धर्मान्धता का एक और पहलू है। हमारे धर्माधिकारी गण उपदेश करते हैं कि धर्म का जीवन से कोई सम्बन्ध नहीं है जितनी धार्मिक सभा, समाजें हैं उनसे यदि कहा जाता है कि अपनी मेंबरों के आर्थिक, नैतिक, व्यावसायिक आदि जीवन के बारे में, जिन पर

उनका सुखशान्ति निर्भर है, धर्म की क्या शिक्षा है, क्या व्यवस्था है, तो वे कहेंगे कि हमारा समाज तो धार्मिक समाज है, इनको छोड़ किसी प्रश्न से कोई सरोकार नहीं। सांसारिक सुख, शान्ति व सम्पत्ति के पचड़ों से वे ऊपर हैं, वे तो आसमानी बहिश्त, स्वर्ग या मुक्ति दिलाने के जिम्मेदार हैं। वे आध्यात्मिक माल बेचते हैं, भौतिक सामग्री से वे कोसों दूर हैं। धर्मोपदेशक, मौलवी, पंडित, रैवाई, पादरी, अरहंत श्रावक सब अपने अपने प्रकार के आध्यात्मिक सामान के विज्ञापन दे रहे हैं। वेदोपनिषद् वाङ्मय से बुद्ध व महावीर पर्य्यन्त, और बुद्ध से दयानन्द पर्य्यन्त अनेक सुधारकों और समाज के रोगी शरीरके चिकित्सकों ने मानव जाति के उद्धारार्थं बार बार प्रचार किया परन्तु उनके अनुयायियों ने उनकी वास्तविक आत्मा पर अर्थात् उनके बताये पुनीत मार्ग पर चौका लगा दिया और उनके भौतिक शरीर अथवा अन्य ऐसी ही वस्तुओं को उनके बताये सन्मार्ग के स्थान पर आसीन कर दिया। आर्य्य समाजी के लिए यह काफी है कि यदा कदा सध्या हवन कर लिया जाय और विवाह सस्कार में वे मन्त्र अवश्य पढ दिये जाॅय जिनका आशय, उल्टा सीधा, कोई महोपदेशक वर बधु को समझा दें और फिर एक बड़ी दावत हो जिसमे बड़े सेठ जी, लाला जी बाबू साहब, चौधरी साहब, या प्रोफेसर जी रुपये को पानी की तरह बहायें पर अपने गरीब, भूखे नौकरों से यह आशा करे कि वे काम तो१६ घण्टे करे और मजदूरी उतनी ही लें जितनी १० वर्ष पहिले लिया करते थे। कारण कि इनसान के इन बच्चों के जीवन तो धर्म के दायरे से बाहर है। सरदार जी के लिए काफी है कि पचककार नहीं तो केवल केश और कड़ा रख लिया जाय और कभी कभी गुरुद्वारे के दर्शन वा ग्रन्थ साहब को प्रणाम कर लिया जाय।

एक बार सं० ३१ में सारनाथ (बनारस) मे बौद्धों का बड़ा भारी समारोह हुआ था। ससार भर के बड़े २ बौद्ध नेता एकत्रित हुए थे। महात्मा बुद्ध की अस्थियों का कोई अंग कहीं पर मिल गया था। एक दिन उस अंग का जलूस निकाला गया, दूसरे दिन बटवृक्ष की एक शाखा का जलूस निकाला गया और वह शाखा एक स्थान पर बोई गई। इन दोनों की पूजा के लिए लाखों बौद्ध ससार के कोने २ से आये थे और आते रहते हैं। इनके बहुत से नेतागण अहिंसा आदि अन्य उपदेशो को जो बुद्ध भगवान् के अष्टांग मार्ग के स्तम्भ हैं गौण मानते हैं, पर भगवान के दाॅत, बाल, या किसी भी बड़ की शाखा की पूजा करके उनको सन्तोष हो जाता है कि इस नाव पर तैर कर भवसागर से पार हो जायेंगे। ये सब आडम्बर इन धर्मों के अन्दर कहाँ से आये? इन सब मामलों में सब मतों का गुरु, सब की रूढ़िगों इत्यादि का खजाना अनेक अंध विश्वासों, रीति रिवाजों, परिपाटियों, पूजा पाठ, इत्यादि का वह अस्त व्यस्त एवं विलक्षण गड़बड़ है, जिसे हम हिन्दू धर्म के नाम से पुकारते हैं, और

जिसकी यह महान काया गत १२०० या उससे अधिक वर्षों से उसी प्रकार बढ़ती गई है जिस प्रकार एक निर्जीव, शिथिल पाषाण शिला के चारों ओर कोई और मिट्टी जमा होते २ उसका आकार बढ़ता ही जाता है। इसके अन्दर और धर्मों की कमी नहीं। जहाँ जाइये वहीं हजारों पण्डे आपको १।) या ५) में स्वर्ग पहुँचा को तैयार हैं। "सर्व आत्मवशं सुखम्, सर्व परवशं दुःखम्" का मूल तत्त्व हमें यहां याद नहीं रहता। जब हम अपने अभ्युदय और निःश्रेयस के लिये अपने आप कष्ट नहीं उठा सकते तो यह कोशिश करते हैं कि किसी दूसरे की नाव पर चढ़ कर पार हो जायेंगे। मुहम्मद साहब, ईसा मसीह या विश्वनाथ जी के कन्धे पर सवार हो कर हमें मुक्ति मिल जायगी। हिन्दू मन्दिरों की गन्दगी, उनके पण्डों और महन्तों के निकृष्ट व पतित जीवन, लाखों मुस्टण्डों और वेश्याओं की बेकारी, जो स्वयं तो कुछ पैदा करते ही नहीं, ऊपर से इस दरिद्र देश के जान पर घुन की तरह लगे हुए हैं, इत्यादि बातें जिन के कारण ये सब धर्म-स्थान नरक बने हुए हैं और इस जाति को अकर्मण्यता व दासता की बेड़ियों मे जकड़े हुए हैं, ऐसी बातें हैं जिन की ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। परन्तु होता क्या है? आर्यसमाजी महोपदेशक का काम यही है कि या तो त्रयवाद और ऐकश्य वाद पर मुबाहसा कर लें या मूर्त्ति पूजा और कुरान और बाइबील का खण्डन कर लें। एक समय इसकी भी शायद आवश्यकता रही हो। दूसरी ओर सनातन धर्म के बड़े २ नेता मूर्त्ति पूजा के सिद्धात के मण्डन में लगे हैं परन्तु कोई उनसे पूछे कि जिस मूर्त्तिपूजा का वे तर्कसे मण्डन करते हैं क्या उसी प्रकार की पूजा मन्दिरों मे होती है अथवा होना सम्भव है। परन्तु वास्तविक बात यहीं अपने आत्मा को धोखा देने की है। हमारी जाति हजारों बरस से दासत्व की जंजीरों में जकड़ी है और एक दास जाति में ही आत्मवचना के दोष पैदा होते और फलते फूलते हैं। हिन्दू धर्म के बड़े २ महामान्य नेता आर्य समाज और अन्य ऐसी ही सोसाइटियों के सुधार प्रोग्राम का तो बड़े जोश के साथ विरोध करते रहे, गीता-प्रवचन और एकादशी कथायें करते रहे परन्तु उनकी नीति अथवा साहस ने उन्हें यह न सुझाया कि जाति की वास्तविक भलाई के लिये आवश्यक है कि लोकप्रिय बनने की नीति को छोड़ कर साहस और दृढ़ता से साफ़ तौर पर इन बुराइयों के विरुद्ध आवाज उठायें। हमारे बड़े २ नेता जो स्वाधीनता का ढोल बजा रहे हैं जब विश्वनाथ अथवा अन्य किसी नाथ के दर्शन करने जाते हैं तो वहाँ के अत्यन्त पतित जीवन और गन्दी पर आँख बन्द कर लेते हैं। आवश्यकता यह है कि हमारे इन धर्म-क्षेत्रों की सफाई की जाय, इनकी आमदनी किसी शुभकार्य में लगाई जाय और इनके लाखों बेकार पण्डा पुजारियों को इन मन्दिरो के बजाय श्रमगृहों ( work houses ) में भेज दिया जाय।

इस बात में किसी सच्चे सनातनधर्मी व आर्य-समाजी का भिन्न मत नहीं हो सकता। यही हाल मुसलमानी दर्गाहों का है जहां लाखों हिन्दू भी जाकर अपनी मूर्खता का परिचय

देते हैं। परन्तु असली काम तो यह है कि आर्य, सनातनी, जैन या सिक्ख सब मिल कर गहरे सिद्धान्तों के वाद विवाद को छोड़ कर इस क्रियात्मक सुधार के पीछे पड़ें और इन मन्दिरों की बेकारी और भिखमंगी को कानूनन बन्द करा दें। एक अंगरेज तत्ववेत्ता ने लिखा है कि हिन्दू मन्दिरों के देवताओं पर जितनी चांदी चढ़ी है और चढ़ाई जाती है यदि उसको थोरे के तेजाब में गला कर Silver Nitrate बना लिया जाता तो उसके प्रयोग से हिन्दुस्तान के लाखों गरीब बच्चे जो इस दवाई के अभाव के कारण अन्धे हो जाते हैं, इस दुख से बच जाते।

अब हमारी धार्मिक शिक्षा संस्थाओं, डी० ए० वी० स्कूल कालिजों अथवा विश्वविद्यालयों पर भी एक नजर डाली जाय। इनके विषय में कुछ विस्तार से कहने की आवश्यकता नहीं। केवल इतना बतला देना काफी होगा कि डी० ए० वी० कालिजों के निकले हुए ६० फीसदी विद्यार्थियों को आर्य समाज अथवा वैदिक धर्म के नाम से जितनी घृणा और चिढ़ होती है उतनी अन्य किसी साधारण संस्था के विद्यार्थियों को भी नहीं होती। न ही उनको नैतिक जीवन और क्रियात्मक धर्म के मूल्य पर विचार करने और उसे समझने की आवश्यकता व महत्व बतलाया जाता है। बात कड़वी है पर कभी कटु सत्य कहने की भी आवश्यकता होती है। इन संस्थाओं के वायुमण्डल को देखा जाय तो पता चलेगा कि छात्रों के सामने जो क्रियात्मक जीवन के उदाहरण एवं आदर्श रखे जाते हैं उनको देखकर तो ऋषि दयानन्द, जिनके नाम पर, किन्तु वास्तव में स्वार्थ सिद्धि के लिये, ये संस्थायें चलाई जा रही हैं, की पवित्र आत्मा सिहर उठेगी। यही दशा अन्य ऐसी ही संस्थाओं की है। महिला विद्यालयों और कन्या पाठशालाओं की कहानी भी इसी प्रकार की है। मैं अपने १५, १६ बरस के अनुभव से कह सकता हूँ कि शायद ५ फीसदी नवयुवक हमारी शिक्षा संस्थाओं में आप को ऐसे मिलें जिनमें मनन शक्ति, विवेक, गौण और मुख्य में भेद करने की योग्यता, तर्क बुद्धि, ये आवश्यक गुण पाये जाते हों। व्यक्तिगत या सामाजिक जीवन के उत्तरदायित्व, कर्त्तव्याकर्तव्य के मूल्य को पहचानने की योग्यता का उनके चरित्र में अंकुर भी कठिनता से मिलेगा। जिसको देखिये एक बहाव में बह रहा है। हर चीज़ फैशन में होने से मानी या प्रयोग की जाती है इसलिये नहीं कि उसके लाभ हानि, अच्छाई बुराई पर विचार करके किसी ने निश्चय किया हो। दिमागी दासता और निद्रा में हम मग्न हैं। अरस्तु ने इन्सान को rational animal अर्थात् विवेक या विचार युक्त जीव कहा था पर मैं जब इन धार्मिक विद्यालयों की खेती को देखता हूँ तो मुझे यह खयाल आता है कि यदि अरस्तु ने हमारी इन संस्थाओं की सैर कर ली होती तो वह इन्सान को rational animal शायद ही बतलाता। इसका कारण यह है कि इन संस्थाओं के संचालक ध्यान

दिखाने पर भी नवयुवकों के जीवन को एक नियमित, नैतिक व विवेकपूर्ण जीवन बनाने का कोई उपाय नहीं करते। हाँ लेक्चरों की भरमार है। एक ओर वेदोपनिषद् व सत्यार्थप्रकाश की व्याख्या साप्ताहिक होती है तो दूसरी ओर गीता और एकादशी कथा। परन्तु स्वास्थ रक्षा के नियमों पर, अन्दर और बाहर की स्वच्छता पर, भोजन विज्ञान पर, शायद ही कभी कोई व्याख्यान होता हो, इन बातों को क्रियात्मक रूप देना तो दूर रहा। नैतिक जीवन में भी छात्रों पर क्या असर पड़े जब शिक्षकों के एक हाथ में वेद, उपनिषद् और गीता और दूसरे हाथ में झूट, धोखा दलबन्दी, अन्याय, स्वार्थ। लोकेषणा और वित्तेषणा की वेदीपर समस्त मनुष्यत्व बलिदान कर दिया जाता है।

इस प्रकार की शिक्षा का जो फल होना है और हुआ है वह हमारे सामने है। कल के युवक जब आज जीवन में पदार्पण करते हैं, तो प्रायः उनकी क्या अवस्था होती है? उनके जीवनकार्य और धार्मिक विचारों मे कोई सामञ्जस्य नहीं पाया जाता। आर्यधर्म की दुहाई देने वाले यदि एक मजदूर से लेकर मिल मालिक तक का जीवनकार्य उन्हीं सिद्धान्तों से नियन्त्रित होता है जिनसे अन्य सम्प्रदायों व मतों के अनुयायियों का, तो क्या लाभ है, ऐसे धर्म और संस्कृति का दम भरने से। यदि कोई मत या धर्म वास्तव मे धर्म कहाने का अधिकारी है तो वही है जो अपने अनुयाइयों के जीवन के प्रत्येक काम मे एक विशेषता पैदा कर दे। यह विशेषता तब ही आ सकती है कि जब हम यह सोचना छोड़ दें कि हमारे राजनैतिक व्यवसायिक, आर्थिक अथवा नागरिक जीवन मे धर्म को दखल देने की जरूरत नही है। इसके विरुद्ध, आवश्यकता इस बात की है कि हम यह विचार करें कि हमारे भिन्न प्रकार के व्यापारों और आर्थिक व राजनैतिक इत्यादि समस्याओं के विषय मे हमारे धर्म की क्या शिक्षा है। यदि कोई धर्म इन प्रश्नों से मुह छिपा कर यह कहता है कि उसका सरोकार तो केवल अध्यात्म से है तो वह धर्म नहीं ढकोसला है और इस योग्य है कि उसको जल्द से जल्द इतना गहरा दफना दिया जाय कि फिर वह उठ न पावे।

सज्जनवृन्द! मेरे अब तक के कथन में शायद आपको निराशावाद की ध्वनि सुनाई दी हो। परन्तु मैंने जो कुछ कहा है वह केवल इस प्रयोजन से कि शायद मेरे ये विचार हमारे नवयुवकों में निर्भय और स्वाधीन विचार करने और जीवन के हर पहलू के वास्तविक मूल्य (right value) को समझने की उत्तेजना एवं उत्साह उत्पन्न करें।

## उत्कर्ष का नियम

इन मूल्यों को ठीक ठीक तौलने और समझने के लिये यह आवश्यक है कि हम क्रियात्मक जीवन के एक मौलिक सिद्धान्त को सदैव याद रखें। यह सिद्धान्त है उत्कर्ष का नियम' (Law of Progress)। इसका यह आशय नहीं है कि उत्कर्ष का कोई नैसर्गिक

नियम है और इसलिये उन्नति तो अनिवार्य रूप से होती ही जायगी; हमें उसकी चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। इसका आशय यह है कि उत्कर्ष और उन्नति को आदर्श मान कर उसके हेतु मन वचन कर्म से सतत प्रयास करते रहना चाहिये क्योंकि यह ध्येय ऐसा है जो कभी भी पूर्णतया प्राप्त नहीं हो सकता उन्नति करने के लिये सदा ही स्थान व अवसर खुला रहेगा। समस्त इतिहास की शिक्षा का और नैतिकदर्शन का यही निचोड़ है जो व्यक्ति अथवा जाति इस नियम को याद रखती है वह मर नहीं सकती। उन्नति करते रहने का मन्त्र ही हमारा प्राण है। जो जाति इस मन्त्र को भुला या ठुकरा देती है वह मृतक शरीर के समान निःशक्त और नाकारा हो जाती है। इस देश की गत १२ या १३ सदियों की संस्कृति का एवं नवीन ब्राह्मण धर्म व राजपूतों की राजनीति का समस्त इतिहास इसी नियम को भुला देने की एक महान् साक्षी है। हमारे देश का यह अभागा और अन्धकार पूर्ण 'इतिहास-काल' पुकार २ कर हमें इस मन्त्र की याद दिला रहा है अर्थात् 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्यवरान् निबोधत्'।

सज्जन वृन्द! मुझे केवल दो चार शब्द और कहने हैं। हमें यह भी सोचना है कि हमारे इस परिषद् के सामने क्या समस्यायें हैं और क्या इस का कार्य क्रम होना चाहिये। परिषद् का उद्देश है नवयुवकों के नैतिक जीवन को उत्कृष्ट बनाना। हमारे नवयुवकों के जीवन ढालने में सबसे बड़ा हाथ होना चाहिये हमारी शिक्षा संस्थाओं का। परन्तु आज कल की इन संस्थाओं से ऐसी आशा करना व्यर्थ है। न ही परिषद् इन संस्थाओं के सुधार का बीड़ा उठा सकता है। अगर किसी प्रकार हम इन संस्थाओं के दूषित प्रभाव से अपने युवकों को बचा सकें तो भी बड़ी सफलता समझना चाहिये।

एक बड़ा भारी प्रश्न हमारे नौजवानों के सामने रोटी का है। इस के लिये भी परिषद् को अवश्य कुछ योजना करनी चाहिये। कोई employment bureau इत्यादि खोलने की योजना पर विचार करना चाहिये।

शारीरिक उन्नति के लिये परिषद् प्रयत्न करता ही रहा है। इस सम्बन्ध में dietetics अथवा खाद्य विज्ञान के साहित्य, व व्यायाम आदि का प्रचार करने पर विचार करना चाहिये।

सामाजिक कुरीतियों और पुराने पाखण्डों से नवयुवकों की रक्षा करने का भी यत्न करना चाहिये। अभी तक यह परिषद् आर्य-कुमारों की ही संस्था रही है। अब आवश्यकता है कि कुमारियों की भी कोई संस्था हो जो उनके अन्दर उस विवेक और विचार शक्ति को उत्तेजित करे जिससे वे नये फैशन की कुरीतियों और पुराने पाखण्डों दोनों से बचकर, दोनों के गुणों को ग्रहण कर सकें।

सम्भव हो तो परिषद् ऐसे छात्रालय खोले जिनमें विद्यार्थियों के जीवन को आदर्श रूप से ढालने का प्रयत्न किया जाय। मैं आशा करूँगा कि परिषद् के संचालक व नेता गण इन थोड़ी सी बातों पर विचार करके उनको क्रियात्मक रूप देने का प्रयास करेंगे।




## आर्यकुमार परिषद् का आगामी-निर्वाचन

प्रधान—श्री डा० परमात्माशरण एम. ए. पी. एच. डी. ।बनारस

उपप्रधान—श्री डा० युद्धवीरसिंह जी म्यूनिसिपल कमिश्नर देहली

„ प० ज्ञानचन्द जी उपप्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा पजाब, लाहौर

„ म० विश्वम्भर सहाय जी प्रेमी, मेरठ

„ महाराज सुदर्शनदेव जी शाहपुराधीश

श्री पं० देशबन्धु जी विद्यालंकार देहली

मन्त्री—श्री पं० परमेश्वरीदयाल 'विद्यार्थी' बी. ए. एल-एल. बी. देहली

उप मन्त्री—श्री रामप्रसाद जी, चन्दौसी

श्री इन्द्रनारायण जी, देहली

श्री शिवनाथ एम. ए,

श्री राजसिंह जी, देहली

श्री धर्मसिंह जी,

कोषाध्यक्ष—महाशय कृष्ण जी, देहली।

पुस्तकाध्यक्ष—श्री पौनीकर जी, बी. ए. देहली

अन्तरंग सदस्य—म० रघुबीरसिंह जी, कांठ

श्री देवराज जी, लाहौर

श्री बलराज जी, लाहौर

श्री गंगाराम जी, गाजियाबाद

श्री नवाबसिंह जी, मवानाकलाँ

श्री कृष्णकुमार जी, हापुड़

श्री राजनारायण जी, इलाहाबाद

श्री कालीचरण जी, मुरादाबाद

श्री कृष्णचन्द्र जी, इस्लाम नगर

श्री जगतप्रकाश जी, देहली

प्रतिष्ठितः—

श्री प० देवव्रत जी, धर्मेंदु, देहली

श्री महादेवशरण जी, पटना,

श्री विनयकुमार जी, बुरहानपुर

श्री मनुराम जी, अजमेर

श्री शिवदयालु जी, मेरठ

श्री तोताराम जी, कानपुर

श्री प० हरदत्त जी, शास्त्री मुरादाबाद

श्री प० हरिश्चन्द्र जी विद्यालङ्कार देहली।

श्री यश जी, लाहौर

श्री गुलाबराय जी देहली

कार्यकारिणी सभा का चुनाव

प्रधान—डा० परमात्माशरण जी,

मन्त्री—श्री परमेश्वरदयाल 'विद्यार्थी',

कोषाध्यक्ष—श्री महाराय कृष्ण जी,

सदस्य—श्री डा० युद्धवीरसिंह जी,

,, श्री गुलाबराय जी,

,, श्री राजसिंह जी

,, श्री हरिश्चन्द्र जी

सम्मेलन पर विजयी आर्यकुमार

( १ ) श्री ताराचन्द जी ३०० गज की दौड़ में प्रथम, तीन टाँग की दौड़ में प्रथम तथा लम्बी कूद में द्वितीय।

( २ ) श्री रतनसिंह जी प्रेमी मेरठ तीन टाँग की दौड़ में प्रथम और कबड्डी में द्वितीय।

( ३ ) श्री जसवन्तसिंह जी तीनटाँग की दौड़ में द्वितीय।

( ४ ) श्री तुलाराम जी देहली ऊँची कूद में द्वितीय।

( ५ ) श्री राजसिंह जी देहली कबड्डी में प्रथम।

( ६ ) श्री रघुवीरसिंह जी दिल्ली। ३०० गज की दौड़ में द्वितीय और ऊँची कूद में प्रथम।

( ७ ) श्री रघुवीरसिंह जी कुमार आश्रम। लम्बी कूद में प्रथम तथा कबड्डी में तृतीय।

"छोटे कुमारों के खेल"

( १ ) श्री रघुवीरसिंह जी देहली १५० गज की दौड़ में प्रथम तथा तीन टाँग की दौड़ में प्रथम।

( २ ) श्री अश्वनीकुमार जी मेरठ। १५० गज की दौड़ में द्वितीय तथा तीन टाँग की दौड़ में द्वितीय।

( ३ ) श्री महेन्द्रकुमार जी मेरठ। तीन टाँग की दौड़ में प्रथम।

( ४ ) श्री मुकट बिहारी जी मेरठ तीन टाँग की दौड़ में द्वितीय।

---

# सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा देहली
### के लिये
## धन और जन की आवश्यकता

आर्य जगत् को ज्ञात है कि देहली मे इस केन्द्रीय सभा के द्वारा सारे भारत और विशाल भारत के समस्त प्रद्वीपों मे प्रचार तथा आर्य सगठन मे हर प्रकार की सहायता मिलती है। सभा की नीति यह है कि जिन प्रान्तों में प्रान्तिक आर्य प्रतिनिधि सभा की स्थापना हो जावे उनसे सम्बन्ध हो जाने पर उस इलाके मे वेद प्रचार का काम केवल मात्र उसी प्रान्तिक सभा के आधीन रहता है परन्तु उन सुदूर स्थानों पर जहाँ कोई प्रान्तीय सभा न हो अथवा पिछडे हुए स्थानों मे वहाँ इस सभा की ओर से योग्य से योग्य, विद्वान्, पण्डित प्रोफेसर और अध्यापक स्थान स्थान पर लगाकर प्रचार तथा सगठन का कार्य किया जा रहा है। उदाहरणार्थ मद्रास, हैदराबाद दकन, आसाम, सथाल परगना, गढवाल तथा यू० पी० के कई स्थानों पर विशेष प्रचार कार्य हो रहा है। पिछले साल का बजट १ लाख ४६ हजार रुपये का स्वीकार हुआ था जिसमे आय की न्यूनता के कारण अधिकारी वर्ग अपनी इच्छा के अनुसार कार्य नहीं कर सकते। हैदराबाद मे सभा की ओर से केशव आर्य्य हाई स्कूल खोला गया है। मद्रास, आसाम सथाल परगना गढवाल, आदि स्थानों पर प्रचार-व्यय तो पर्याप्त होता है परन्तु आय कुछ भी प्राप्त नहीं होती। सार्वदेशिक सभा के कार्यालय मे एक वैदिक पुस्तकालय की आवश्यकता को सम्मुख रखते हुये आर्य सज्जनों से निवेदन है कि ऋषि कृत ग्रन्थों की प्रथम आवृत्ति, सम्पूर्ण आर्य ग्रन्थ व भाष्य और मुस्लिम, सिख ईसाई, जैन तथा सनातन धर्म की आवश्यक पुस्तकों को इस वैदिक पुस्तकालय मे दान देकर कृतार्थ करें। जो योग्य विद्वान् सज्जन अपने गृहस्थ के जीवन से विमुक्त हो चुके हों या जिनके सुपुत्र घर का कार्य सम्भाल सकें उनको इस सभा की ओर से देश देशान्तरों मे और भारत में कार्य करने के लिये आगे आना चाहिये। दानी महाशय विवाह सस्कार आदि पर विशेषकर सार्वदेशिक सभा की सहायता करें।

—दीवानचन्द बी० ए० एल-एल० बी०, वकील, आनरेरी उपमन्त्री,
सार्वदेशिक सभा।

# आर्य ध्वज का रंग

मथुरा की आर्य विद्वत् सभा ने जो ऋषि दयानन्द की जन्म शताब्दी के अवसर पर संगठित हुई थी, आर्य ध्वज का रंग गेरुआ होना ठहराया था। उस समय यह विचार इसलिये स्थिर हुआ था कि उस समय तक झण्डे के रंग के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट शिक्षा श्रुति या स्मृति आदि ग्रन्थों में मिली नहीं थी। आर्य समाज एक संन्यासी का स्थापित किया हुआ है इसलिये उसकी ध्वज का रंग भी गेरुआ होना चाहिये ऐसा समझा गया था परन्तु अब अथर्ववेद में झण्डे के रंग के सम्बन्ध में स्पष्ट शिक्षा मिल गई है। अथर्ववेद का वह मन्त्र इस प्रकार है:—

१ २ ३ ४

धूमाक्षी स पततु कृधु कर्णी च क्रोशतु।

५ ६ ७ ८ १० ९

त्रिषन्धे सेनया जिते अरुणा सन्तु केतव ॥ अथर्व ११। १०। ७॥

( शत्रु की सेना ) (१) धुएँ से पीड़ित चक्षु होकर (२) भाग जाय (और वह) (३) छोटे कान करके (कान दबाकर) (४) चीखे (५) त्रिसन्धि नाम महास्त्र के बल (६) सेना द्वारा (७) शत्रु के जीत लेने पर (८) लाल रंग वाले (९) झण्डे (१०) खड़े किये जावें॥

इस मन्त्र में झण्डे के लाल रंग वाला होने का विधान है। इसलिये आर्य विद्वानों और सर्व साधारण आर्य पुरुषों से निवेदन है कि वे अपनी सम्मति प्रगट करें कि क्या उनकी सम्मति में झण्डे का रंग गेरुए के स्थान में लाल कर दिया जाय?

—नारायण स्वामी

प्रधान सार्वदेशिक आर्यप्रतिनिधि सभा।

# सम्पादकीय

## हिन्दू मुस्लिम समस्या

देश का यह दुर्भाग्य है कि उसकी राजनैतिक प्रगति के मार्ग में हिन्दू मुस्लिम समस्या अभेद्य दीवार के रूप मे खड़ी हो गई है। देश के नेता इसके हल के लिए जितना अधिक प्रयत्न करते हैं उतना ही अधिक यह पेचीदा बनती जाती है।

इस समस्या के कारण दोनों जातियों मे पारस्परिक अविश्वास इतना अधिक बढ़ गया है कि आपस में बात चीत करने, उठने बैठने और विचार करने में भी भय लगता है।

देश के सामाजिक जीवन पर भी इस समस्या का बड़ा बुरा प्रभाव पड़ रहा है। और तो और हम अपने शोक और खुशी के कृत्यों को भी सुरक्षा और स्वाधीनता के साथ नहीं मना सकते।

पहिले गोवध पर हिन्दू मुस्लिम संघर्षों की चर्चा सुनी जाया करती थी परन्तु अब तो छोटी २ बातों पर संघर्ष की आशंका बनी रहती है। मस्जिदों और देव स्थानों के सामने बाजे की समस्या वर्तमान कालीन समस्या है। इसके कारण देश और संसार ने कई बार हमारी पाशविक प्रवृत्तियों का नग्न नृत्य देखा है और इसने न मालूम कितनी बहुमूल्य जानों को उदरस्थ किया है।

हम मस्जिदों और उपासना मन्दिरों के सम्मुख सरकारी बैंडों का बजना सहन कर सकते हैं परन्तु मामूली बाजे पर सिर तोड़ने के लिये उद्यत हो जाते हैं। कैसी विडम्बना है।

उस दिन बात चीत के बीच में एक मुस्लिम सज्जन से हमें विदित हुआ कि अब से कुछ ही वर्ष पूर्व देहली की जामा मस्जिद के सामने से बाजा बजता हुआ निकला करता था। उन्होंने यह भी बतलाया कि किसी जलूस पर हिंदुओं और मुसलमानों को आपत्ति न भी हो परन्तु हमारी दयामय सरकार को न

मालूम क्यों आपत्ति हो जाती है। इस कथन में अत्युक्ति हो सकती है परन्तु इससे वह मूक वेदना व्यक्त होती है जो दोनों जातियों के विवेकशील व्यक्तियों के हृदयों को सङ्केत करने लग गई हैं। वे अपने धर्मबन्धुओं की मूर्खता पर आवाज उठाने लग गये हैं। ये चिह्न शुभ हैं।

प्राचीन उपासना गृह इत्यादि पर अपना पुन अधिकार करने की प्रकृति और अनुचित मांग के फल स्वरूप शहीदगंज और मंज़िल गाह के कांड अभी भी हम भूले नहीं हैं। इस समस्या को गम्भीर और गहरा बनाने का यह एक विचित्र उपाय प्रयोग में लाया गया था। परन्तु सन्तोष इतना ही है कि देश वासियों की विवेक और न्याय वृत्ति के सामने यह चाल न चल सकी।

इन दोनों समस्याओं से अधिक जटिल समस्या पाकिस्तान की योजना के रूप में देश के सामने समुपस्थित है। देशवासियों के तीव्र विरोध ने यद्यपि इसकी कमर तोड़ दी है फिर भी इसका सर्वथा मुंह काला नहीं हुआ है। परन्तु देश के समझदार भाई किसी भी मूल्य पर इसके विनाश के लिए कटिबद्ध देख पड़ते हैं। इसलिये इस चाल के चलने वालों को निश्चय ही मुंह की खानी पड़ेगी।

सरकारी नौकरियों के असमान विभाजन ने न्याय और औचित्य की सीमाओं का उल्लंघन किया हुआ है। सरकारी पदों और नौकरियों पर योग्यता के स्थान पर हिन्दू और मुसलमान इत्यादि शब्दों को आसीन हुआ देख कर दुख होता है। यह तो हमारी देश भक्ति और राष्ट्रीय भावना पर भयंकर आघात है जिसकी चोट से देश की अपमानित आत्मा विलाप कर रही है।

अपनी २ संख्या वृद्धि के लिये अनुचित और जघन्य उपायों के आश्रय से अशान्ति और संघर्ष विद्यमान है। यह अशान्ति एक भयङ्कर मानसिक विस्फोट में परिणत हो रही है जब हम मातृ शक्ति के प्रति होने वाले पापों और अत्याचारों की दुखद कहानियां सुनते और पढ़ते हैं। बंगाल प्रान्त में सन्तानोत्पत्ति में समर्थ हिंदू स्त्रियों के अपहरण के आंकड़े प्रतिवर्ष ७०० बतलाये गये हैं। इन आंकड़ों का उल्लेख करने में हमारा अभिप्राय यह नहीं है कि मुस्लिम स्त्रियोंका अपहरण नहीं होता। इन अपहरणों के कारण नारी जाति का कितना अपमान होता है और उन पर क्या क्या भीषण अत्याचार होते हैं इनकी कहानी बड़ी रोमांचकारी है। उनका उल्लेख करके हम अपने सहृदय पाठकों का मन दुखाना नहीं चाहते। इतना अवश्य कहेंगे कि जब हमारा साम्प्रदायिकता का नशा उतरेगा और हम अपने होश में आयेंगे तब हमारी आत्मा हमारे पापों के लिए स्वयं धिक्कारेगी।

यह सब चित्र का अन्धकार मय पहलू है। परन्तु इसका दूसरा पहलू उज्ज्वल है। भारत के अधिकांश ग्रामों में तो ग्रामवासी हिन्दू मुस्लिम समस्या क्या चीज है इस बात को जानते तक नहीं। वे आपस में बड़े प्रेम और स्नेह से रहते हैं। कई अवस्थाओं में तो हिंदू और मुसलमान का भेद करना भी कठिन हो जाता है। बहुत से स्थानों पर तो हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे के उत्सवों, जलूसों और शुभ अवसरों पर बिरादरी और भाई चारे के रूप में सम्मिलित होते हैं। नगरों में भी ऐसे उदाहरण मिलते हैं। वास्तव में यह समस्या नागरिक समस्या है।

इतिहास साक्षी है कि भारत के हिंदू और मुसलमान एक ही वंशजों की सन्तानें हैं। वे समस्त भारत में बिखरे हुए हैं भले ही उनकी संख्या मे असमानता हो। वे समान भषायें ही बोलते हैं। प्रत्येक ने एक दूसरे की धार्मिक भावना का सम्मान किया और दोनों ने मिल कर एक ही संस्कृति का निर्माण किया है। भारत की कला में गृह निर्माण विद्या में, संगीत में, चित्र कला में, और धार्मिक भावनाओं में भी दोनों धर्मों का संमिश्रण देख पड़ता है। ऐसे कई मुसलमान कवि और कलाविद हुए हैं जिन्होंने हिंदी भाषा को अपना कर भावी सन्तति के लिये अपनी अमर रचनायें और कृतियां छोड़ी हैं। बाबर ने अपने पुत्र हुमायूं को अपनी वसीयत मे आदेश दिया था कि वह अपनी हिंदू प्रजा की धार्मिक भावनाओं का आदर और न्याय का व्यवहार करे। महान् भारतीय गदर में हिंदुओं और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा भिड़ा कर देश प्रेम का परिचय दिया था। पिछली समस्त शताब्दियों मे दोनों जातियां प्रेम से एक साथ रह चुकी हैं।

युवावस्था के उदार वर्षों में हिन्दू और मुसलमान प्रायः बड़े गाढ़े मित्र रहते हैं। भारत से बाहर विदेशों में उनका देश प्रेम देखते ही बनता है परन्तु हिंदुओं और मुसलमानों को पृथक करने वाले नेताओं के भ्रम पूर्ण आन्दोलन से बहक कर वे ऐसे पृथक हो जाते हैं मानों उनमें मेल था ही नहीं।

हमारे बहुत से मुसलमान भाई मातृ भूमि भारत का गुणगान करने के बदले जहां उनका जन्म होता है जिसकी पवित्र रज में खेल करके वे बड़े होते हैं और जिसकी पवित्र गोद मे वे पूर्ण विश्राम करते हैं प्राय अरब, मिश्र, फ्रांस और अफगानिस्तान के गीत गाया करते हैं। इसका कारण यह बतलाया जाता है कि वह भूमि उनकी धर्म भूमि है और उन देशों के वासी उनके वास्तविक धर्म बन्धु हैं। इस कथन में सत्यता या ईमानदारी हो सकती है परन्तु उन्हें ज्ञात नहीं कि उन

देशों में उनके प्यारे धर्म का क्या हशर हो रहा है और वे धर्म बन्धुता का उन्हें क्या बदला देते हैं। उन मुसलिम राष्ट्रों ने अपने भारतीय धर्म बन्धुओं के प्रति कोई विशेष दिलचस्पी प्रगट नहीं की है। प्रगट की हो तो उसका देश और ससार का ज्ञान नहीं है। सीमागत राष्ट्रीयता और दुनियादारी ही उनके विकास में मुख्य प्रेरक शक्ति रही है। अरब की रियासतों ने ओटोमान साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह करके १९१८ में अपनी स्वतन्त्रता स्थापित की, और आज ये चार राष्ट्रों में विभक्त है। टर्की में स्व० कमाल पाशा ने दकियानूसी राज्य के भग्नावशेषों पर एक नये राष्ट्र का निर्माण किया। उसने खलीफा के पद को मिटा कर एक प्रजातन्त्रीय शासन समिति की स्थापना की और इसका आधार धर्म को नहीं वरन् सासारिकता को रखा। वहा राष्ट्रीयता ही मुख्य सिद्धान्त और धर्म है। वहा का प्रत्येक नागरिक तुर्क है जब तक वह राष्ट्रीय सीमाओं के भीतर रहता है और राष्ट्रीय आदर्शों को अपनाता है। मिश्र वाले अपने देश को स्वतन्त्र राष्ट्र देखने के इच्छुक हैं और यत्न शील हैं। ईरान एक पृथक राष्ट्र है और उन्हों ने आन्दोलन कारी धार्मिक साहित्य का आयात बन्द किया हुआ है। अफगान लोग भी राष्ट्रीय लाइनों पर अपने देश का निर्माण कर रहे हैं। चीन के मुसलमान जापान के मुसलमानों के विरुद्ध लड़ते हैं। सक्षेप में इन मुस्लिम राष्ट्रों को धर्म की अपेक्षा राष्ट्रीयता अधिक प्रिय है। धर्म के नाम पर होने वाली अपीलों का इन वर्तमान कालीन राष्ट्रों पर जो प्रभाव हो सकता है इसकी सहज ही कल्पना की जासकती है।

हमारी यह दृढ सम्मति है कि भारत की वर्तमान हिन्दू मुस्लिम समस्या स्वाभाविक प्रवृत्तियों और ऐतिहासिक प्रेरणाओं और शक्तियों के विरुद्ध है इसलिये स्थिर नहीं रह सकती। इस सम्बन्ध में हमारे स्कूल और कालेजों से निकलने वाले छात्रों का परम कर्तव्य है कि वे अपनी जातियों का ठीक २ मार्ग प्रदर्शन करें और नौकरियों इत्यादि के प्रलोभनों से ऊपर रह कर देश और जाति की सेवा करें।

**प्रचार यात्रा**

हैदराबाद आर्य सत्याग्रह के ६ ठे अधिनायक श्री पं० वेदव्रत जी जो गत मार्च से स्वामी ब्रह्मेदानन्द जी के रूप में हमारे सामने हैं, गत अक्टोबर मास में लगभग १। मास पर्यन्त सिन्ध प्रान्त की विस्तृत प्रचार यात्रा की। उनके साथ बिहार प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के भूतपूर्व प्रधान श्री स्वामी रामानन्द जी सन्यासी भी थे। इन दोनों महानुभावों ने सिंध प्रान्त के अतिरिक्त पजाब के कुछ नगरों में भी भ्रमण किया। इस भ्रमण में जहाँ इन्होंने

उपदेशों द्वारा प्रचार किया वहा समाजों का निरीक्षण और संगठन इत्यादि कराने के द्वारा रचनात्मक कार्य भी किया। इन दोनों महानुभावों की इस प्रचार यात्रा का बहुत अच्छा प्रभाव रहा। आर्य प्रतिनिधि सभा के द्वारा सिंध की आर्य समाजों और आर्य जनता ने श्री स्वामी जी महाराज के प्रति इस सेवा के लिए उन्हीं शब्दों में अपनी कृतज्ञता का प्रकाश किया है जिसके वे अधिकारी हैं। इस कृतज्ञता प्रकाशन मे हम भी सिन्ध सभा के साथ हैं।

श्री स्वामी जी महाराज बिहार प्रान्त के निवासी हैं। इस प्रकार आर्य नेताओं का भिन्न २ प्रान्तो में भ्रमण पारस्परिक विचार या अनुभवो से लाभ उठाने का बड़ा उपादेय साधन है। इस दृष्टि से भी इस यात्रा का महत्व बढ़ जाता है।

## हिन्दी साहित्य सम्मेलन अबोहर

इस वर्ष अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का ३७ वॉ अधिवेशन प्रयाग विश्व विद्यालय के वाइस चॉसलर प्रोफेसर अमरनाथ भा के सभापतित्व मे ता० २७, २८, २९ और ३० दिसम्बर को अबोहर में हो रहा है। पजाब मे सरकार और शिक्षा विभाग द्वारा हिन्दी के विकास मार्ग मे जो अनेक कठिनाइयॉ और बाधाएँ आये दिन उपस्थित की जा रही हैं वे सुस्पष्ट हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्र भाषा के स्वरूप का प्रश्न भी इस वर्ष सदा की भाति बड़े जोरों से इस अधिवेशन में आने वाला है। अतः यह अधिवेशन कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

यह अधिवेशन हैदराबाद दक्षिण मे होने वाला था परन्तु हैदराबाद राज्य के अधिकारियों ने अपनी सकुचित मनोवृत्ति के वशीभूत हो इस सम्मेलन के होने की आज्ञा न दी। फलत अबोहर में होने का निश्चय किया गया। निश्चय तो किया गया परन्तु सञ्चालकों को प्रबन्ध के लिये केवल मात्र ४ मास मिले, जो बहुत ही कम समय है। फिर भी वे सम्मेलन को हर प्रकार से सफल बनाने का यत्न कर रहे हैं। प्रत्येक हिन्दी प्रेमी माई का कर्तव्य हो जाता है कि वे सचालकों के काम में हाथ बटाएँ और उनके बोझ को हल्का करें। श्री मुकन्द लाल सेतिया प्रधान मन्त्री तथा श्री प० ठाकुरदत्त जी वैद्य ( अमृतधारा ) स्वागताध्यक्ष की ओर से अभी २ जो विज्ञप्ति प्रकाशित हुई है उसमें ७०००) की हिन्दी प्रेमी जनता से मॉग की गई है। इनकी माग के औचित्य पर लिखने की आवश्यकता नहीं है। यह शीघ्र से शीघ्र पूरी होनी चाहिए। सचालकों की शिकायत है कि आर्य प्रतिनिधि सभा, आर्य प्रादेशिक सभा तथा सनातन धर्म प्रतिनिधि सभा इत्यादि के मन्त्रियों के सन्देश और आदेश सब समाजों और सभाओं के नाम भेजे जाचुके हैं किन्तु २-४ स्थानोंके सिवा उन्हें न कोई सहायता

पहुंची है न प्रदर्शिनी के लिये कोई सामान आया है और न सम्मेलन में आनेवालों की सूचियाँ [illegible] प्राप्त हुई हैं। सञ्चालकों को इस शिकायत का अवसर नहीं दिया जाना चाहिये।

स्वागत समिति की सदस्यता का शुल्क ५) से १००) तक है। विद्यार्थियों, महिलाओं और हिन्दी पढ़े लिखे कृषकों के लिये केवल २) है।

## स्त्री समाज

हमें यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मद्रास नगर में [illegible] में भी आर्य समाज लोक प्रिय होने लग गया है। वहां नियमित आर्य समाज की स्थापना भी हो गई है। आगामी वर्ष के लिये पदाधिकारियों का निम्न निर्वाचन स्वीकृत हुआ।

प्रधाना—श्रीमती सुशीलादेवी इन्द्रसेन

उप प्रधाना—श्रीमती कस्तूरी देवी गुप्त

मन्त्राणी कोषाध्यक्ष—श्रीमती सीता लक्ष्मी कुमारास्वामी। इस समाज की इस समय २० सदस्याएँ हैं।

## आर्य विवाह

गत अक्टोबर मास में ईसाई धर्म से हिन्दू धर्म में दीक्षित हुई लङ्का निवासिनी श्रीमती सुशीला देवी का श्रीयुत डा० शङ्कर मेनन के साथ बड़े समारोह के साथ विवाह हुआ। श्रीयुत पं० केशवदेव जी ज्ञानी ने विवाह संस्कार कराया। यह विवाह आर्य विवाह एक्ट के अनुसार हुआ था। इस अवसर पर बहुसंख्या में डाक्टर लोग और डाक्टरी के विद्यार्थी उपस्थित थे। मद्रास आर्यसमाज जिस उत्साह से आर्यसमाज का कार्य कर रहा है वह प्रशंसनीय है।

श्री प० रघुनाथप्रसाद पाठक—पब्लिशर के लिए लाला सवाराम चावला द्वारा "चन्द्र प्रिंटिङ्ग प्रेस", श्रद्धानन्द बाजार, देहली में मुद्रित।